दर्शन के सौ वर्ष

लेखक
जॉन पैसमोर

अनुवादक
चांदमल शर्मा
कलानाथ शास्त्री

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार की
मानक ग्रंथ योजना के अन्तर्गत प्रकाशित

ⓒ भारत सरकार

प्रथम संस्करण २०००
वर्ष १९६६

प्रस्तुत पुस्तक वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
की मानक ग्रंथ योजना के अंतर्गत शिक्षा मंत्रालय
भारत सरकार के शतप्रतिशत अनुदान से
प्रकाशित हुई है ।

मूल्य पन्द्रह रुपये ।

प्रकाशक हिन्दी प्रकाशन विभाग,
राजस्थान विश्वविद्यालय,
जयपुर ।

मुद्रक भारत प्रिंटर्स
जयपुर ।

प्रस्तावना

हिन्दी और प्रादेशिक भाषाओं को शिक्षा के माध्यम के रूप में अपनाने के लिए यह आवश्यक है कि इनमें उच्चकोटि के प्रामाणिक ग्रन्थ अधिक से अधिक संख्या में तैयार किए जाएँ। भारत सरकार ने यह कार्य वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग के हाथ में सौंपा है और उसने इसे बड़े पैमाने पर करने की योजना बनाई है। इस योजना के अन्तर्गत अंग्रेज़ी और अन्य भाषाओं के प्रामाणिक ग्रन्थों का अनुवाद किया जा रहा है तथा मौलिक ग्रन्थ भी लिखाए जा रहे हैं। यह काम अधिकतर राज्य सरकारों, विश्वविद्यालयों तथा प्रकाशकों की सहायता से प्रारम्भ किया गया है। कुछ अनुवाद और प्रकाशन कार्य आयोग स्वयं अपने अधीन भी करवा रहा है। प्रसिद्ध विद्वान और अध्यापक हमें इस योजना में सहयोग दे रहे हैं। अनूदित *और नए साहित्य में भारत सरकार द्वारा स्वीकृत शब्दावली का ही प्रयोग किया जा रहा है ताकि भारत की सभी शिक्षा संस्थाओं में एक ही पारिभाषिक शब्दावली के* आधार पर शिक्षा का आयोजन किया जा सके।

दर्शन के सौ वर्ष नामक पुस्तक राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर द्वारा प्रस्तुत की जा रही है। इसके मूल लेखक श्री जान पैसमोर हैं और अनुवादक श्री चाँदमल शर्मा एवं श्री कलानाथ शास्त्री हैं। आशा है कि भारत सरकार द्वारा मानक ग्रन्थों के प्रकाशन सम्बन्धी इस प्रयास का सभी क्षेत्रों में स्वागत किया जायगा।

निहालकरण सेठी

अध्यक्ष
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग

आमुख

हिन्दी प्रकाशन विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर अपने तृतीय प्रकाशन के रूप में जान पसमोर कृत 'हंड्रेड ईयर्स आव फिलासफी' का हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत करने में प्रसन्नता और गौरव का अनुभव करता है। यद्यपि लेखक ने ग्रंथ की रचना, जैसा उसने स्पष्ट रूप से अपनी प्रस्तावना में स्वीकृत किया है, ब्रितानी दृष्टिकोण से की है तथापि विभिन्न विचारधाराओं को समाविष्ट करने की सफल चेष्टा भी इसमें दिखाई देती है। मुझे विश्वास है कि देश के विश्वविद्यालयों, शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार, तथा वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग के संयुक्त प्रयत्नों से प्रस्तुत यह अनुवाद योजना विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों के लिए पर्याप्त पाठ्य सामग्री उपलब्ध कर सकेगी।

राजस्थान विश्वविद्यालय भारत सरकार के आयोग एवं शिक्षा मंत्रालय के प्रति आभारी है कि उन्होंने ऐसे महत्वपूर्ण ग्रन्थ का हिन्दी संस्करण प्रकाशित करने का उसे अवसर दिया। मैं डा० शान्तिप्रसाद वर्मा, नियोजक हिन्दी प्रकाशन विभाग, का आभारी हूं, जिन्होंने अत्यधिक कार्य व्यस्त रहते हुये भी पुस्तक को प्रस्तुत रूप में प्रकाशित करने की व्यवस्था की।

जयपुर
२२ दिसम्बर, १९६६

मुकुट बिहारी माथुर,
उपकुलपति, राजस्थान विश्वविद्यालय

प्राक्कथन

इस पुस्तक का शीर्षक 'दर्शन के सौ वर्ष' पढ़कर पाठक को इसमें जितना पाने की प्रत्याशा हो सकती है उतना उसे मिलेगा नहीं। इसके दो कारण हैं। एक तो यह कि इस पुस्तक को केवल ज्ञान मीमांसा तर्कशास्त्र तथा तत्वमीमांसा तक ही सीमित रखा गया है, जितना कि एक आस्ट्रेलियायी के लिये ऐसा दृष्टिकोण लेना संभव हो सकता है। यह बात अवश्य कह देना चाहता हूं कि ऐसा करने में अन्य दर्शन शाखाओं, जैसे सौन्दर्य शास्त्र आचारशास्त्र, धर्मदर्शन, समाजदर्शन, विधिदर्शन, का किसी प्रकार का अपमान करना मेरा उद्देश्य कदापि नहीं था। इस मर्यादा को स्वीकार करने का निर्णायक कारण तो संक्षिप्त होने की आवश्यकता था, इस पुस्तक का जो कलेवर इस समय पाठक के सामने है वह वस्तुतः एक बहुत विस्तृत मूल कलेवर का संक्षिप्तीकृत स्वरूप है। मैंने वही विषय चुने हैं जो समन्वित किए जाकर एक विवेक-सम्मत व्यवस्थित आकार ले सकते थे। फिर भी मैं यह मानता हूँ कि सामान्य पाठक को यह पुस्तक कुछ संकीर्ण और विशेषीकृत लगेगी क्योंकि मैंने इसमें दर्शन की उन शाखाओं के बारे में बहुत कम लिखा है जिनमें एक ऐसा पाठक भी रुचि ले सकता हो जो दार्शनिक न हो।

दूसरे कारण के सम्बन्ध में, इस पुस्तक में विषय का प्रतिपादन करते हुए मैंने अपना क्षेत्र जान बूझकर ब्रितानी व सीमित रखा है। हां, कभी-कभी इस क्षेत्र से बाहर भी चला गया हूँ—जैसे यूरोपीय दर्शन को छू आया हूँ या अमरीकी दर्शन पर कुछ ठहर गया हूं। पर हर हालत में अपने ही क्षेत्र का रहा हूं विदेशी नहीं बना। अमरीकी और यूरोपीय दार्शनिकों के बारे में बहुत कम ही कह पाया हूँ। विषय का प्रतिपादन जिस रूप में मैंने किया है उस रूप में एक अमरीकी या फ्रांसीसी लेखक नहीं करता। मेरा मापदण्ड यही रहा है कि अमुक लेखक के विचारों ने इंगलैण्ड के दार्शनिक विचार क्षेत्र में किस सीमा तक प्रवेश किया है, और दर्शन शास्त्र का पाठक माइंड और द प्रोसीडिंग्स आव द अरिस्टोटेलियन सोसाइटी जैसी पत्र पत्रिकाओं में उसका नाम पा सकता है या नहीं। इसी आधार पर मैंने लेखकों को प्रतिपादनार्थ चुना है।

एक इसी प्रकार का मापदण्ड मुझे यह बतलाने में सहायक रहा है कि मैं किन लेखकों का विस्तार से वर्णन करूं और किनका केवल संक्षेप में नाम धाम ही गिना दूं। मैंने यह देखा है कि किन लेखकों ने अपने समय में होने वाले दार्शनिक विचार मंथनों और वाद विवादों में प्रमुख भाग लिया है। इस आधार पर ही मैंने उन्हें

अधिक या कम स्थान दिया है। मैंने अपने दृष्टिकोण से उनके व्यक्तिगत गुणों को परखने की चेष्टा नही की। इसमे मैं कहाँ तक सफल हुआ हूँ नही कह सकता।

इसी प्रकार मेरा यह दृष्टिकोण भी रहा है कि लेखकों के उन्ही पहलुओ को चुना जाय जिनमे दर्शन जगत ने अधिक रुचि दिखाई बजाय इसके कि उनकी सारी कृतियो की सूची दे दी जाए। मैंने एक सटिप्पण सूची बनाने का प्रयत्न नही किया है बल्कि दार्शनिक विचार मन्थन का एक इतिहास लिखना चाहा है। मेरे मापदण्ड त्रिकालातीत हैं यह मैं नही कहता। यों ही देखिये न यदि मैं सन् १६०० ई० मे यह पुस्तक लिखता तो सम्भवतः बर्कले और ह्यूम पर एकाध पंक्ति ही लिखकर रह जाता क्योंकि उस समय मुझे यह आवश्यक लगता कि डूगाल्ड स्टीवर्ट पर अधिक ध्यान केन्द्रित रखा जाना चाहिये। इसी प्रकार 1950 ई० में लिखते समय मेरा ध्यान सर विलियम हैमिल्टन पर केन्द्रित रहने की ओर होता।

पुस्तक में काफी त्रुटियां रही हैं। कुछ चीजें छूट गई हैं कहीं परख की गलती है तो कहीं सीधे-साधे भूल-चूक हो गई है। भूलें हुई हैं-यह मुझे लगता है-भूलें क्या हैं, यह नही मालूम। मुझे प्रसन्नता होगी यदि मुझे वे भूलें बताई जाएँ, ताकि आगे कभी उन्हे सुधारा जा सके।

न्यूजीलैण्ड इंग्लण्ड और आस्ट्रेलिया तीनों देशो के दार्शनिकों को मेरे इस पुस्तक लेखन के प्रयत्न के कारण कष्ट उठाना पड़ा हैं। बहुतो ने मुझे किसी न किसी रूप मे सहायता दी है पर किसी ने पूरी पुस्तक नहीं देखी है इसलिये यही अच्छा है कि उनके नाम न लिये जाएँ। मुझे केवल इन व्यक्तियो को धन्यवाद देकर ही सन्तोष कर लेना पड़ेगा-सर्व श्री आर० जी० ब्यूरट आर० ब्रैडले श्रीमती एफ० वुड और सबसे अधिक मेरी पत्नी को। इन्होंने पुस्तक लेखन के कठिन काम मे सहायता की है। पुस्तक सूची में सबसे अधिक श्रम सुश्री डगमर कारबोच ने किया है। अन्त मे मुझे न्यूयार्क के कार्नेगी कारपोरेशन को भी धन्यवाद देना है जिन्होंने पुस्तक लेखन के मध्यान्तर के रूप मे आक्सफर्ड मे मेरे एक वर्षीय निवास की व्यवस्था करवाई जो पुस्तक को पूरा करने मे सहायक रहा। इस एक वर्षीय निवास को सानन्द स्मरणीय बनाने के लिये कार्पस क्रिस्टी कॉलेज के प्रेजीडेंट तथा फलोज को भी धन्यवाद देना चाहूंगा।

ड्यूनेडिन-आक्सफर्ड-कैनबरा

जान पासमोर

संक्षिप्त संकेतों का परिचय

अर्क० अर्कें०	अर्केंतनिस
ए जे पी	ऑस्ट्रेलियन जर्नल ऑव फिलासोफी (जो 1947 तक ऑस्ट्रेलियन जर्नल ऑव फिलासोफी के नाम से निकलती थी)
एक्यु० अक्यु अलिटेस	एक्युअलिटेस साइंटिफीक्स एत इंडस्ट्रिएलिस
आर० आई० पी०	रिव्यू इंटरनेशनाल द फिलोसफाई
आर० एम०	रिव्यू ऑव मेटाफिजिक्स
आर० एम० एम०	रिव्यू द मेटाफिजिक एत द मोराल
जे० एच० आई०	जर्नल आव द हिस्ट्री ऑव आइडियाज
जे० पी०	जर्नल आफ फिलासोफी
जे० एस० एल०	जर्नल ऑव सिम्बोलिक लाजिक
डी० एन० बी०	डिक्शनरी ऑव नेशनल बॉयोग्राफी
पी० ए० एस० प्रोसी० आर० सोसा०	प्रोसीडिंग्स आव द अरिस्टोटेलियन सोसायटी
पी० ए० एस० एस०	प्रोसीडिंग्स आव द अरिस्टोटेलियन सोसायटी सप्लीमेंटरी वाल्यूम
पी० बी० ए० प्रोसी० ब्रि० अ०	प्रासीडिंग्स आव द ब्रिटिश अकडमी
पी० पी० आर०	फिलासोफी एण्ड फिनामिना लॉजिकल रिसर्च
पी० एस० सी०	फिलासोफी आव साइंस
पी० क्यू० फि० क्वा०	द फिलासाफिकल क्वाटरली
पी० आर० फि० रि०	द फिलासोफिकल रिव्यू

पी० एस० फि० स्ट०	फिलासोफिकल स्टडीज
फिलो० फिल०	फिलासोफी
बी० जे० पी० एस०	ब्रिटिश जनल फार द फिलासोफी आव साइन्स
बी० पी० एम०	ब्रिटिश फिलासफी एट मिडसेंचुरी (1957) सपादक सी० ए० मेस ।
यू० एस०	इन्टरनेशनल एनसायक्लापेडिया आव यूनिफाइड साइन्स
सी० ए० पी० I तथा II	कन्टेम्परेरी अमरीकन फिलासफी जिल्द I तथा II (1930) सपादक जी० पी० एडम्स तथा डबलू० पी० मांटेग्यू
सी० बी० पी० I तथा II	कन्टेम्परेरी *ब्रिटिश* फिलासफी *I तथा II* सीरीज (1924–5) सपादक जे० एच० म्योरहैड,
सी० बी० पी० *III*	कन्टेम्परेरी ब्रिटिश फिलासोफीस *III* सीरीज सपादक डी० एच० लुईज
एल० एल० I तथा II	लाजिक एण्ड लैंग्वेज जिल्द I (1951) तथा II (1953) सपादक ए० जी० एन० फ्लू ।

विषय सूची

अध्याय पृ० संख्या

1 मिल तथा ब्रितानी अनुभववाद 1
2 भौतिकवाद, प्रकृतिवाद एवं अनीश्वरवाद 29
3 परमात्म की ओर 46
4 व्यक्तित्व एवं परमात्म 77
5 अर्थक्रियावाद एवं समधर्मी यूरोपीय दर्शन 107
6 तर्कशास्त्र के क्षेत्र में नये विकास 145
7 आकारी तर्कशास्त्र के कुछ समालोचक 190
8 वस्तुपरकता की ओर 212
9 मूर एवं रसल 249
10 कुक विल्सन एवं आक्सफोर्ड दर्शन 299
11 नव यथार्थवादी विचारक 321
12 विवेचनात्मक यथार्थवाद एवं अमरीकी प्राकृतवाद 348
13 हठीले तत्ववादी 371
14 प्रकृति वैज्ञानिक दार्शनिक बने 400
15 कुछ कैम्ब्रिज दार्शनिक तथा विटजनस्टीन कृत ट्रैक्टटस 428
16 तर्कसम्मत वस्तुस्थितिवाद 456
17 तर्कशास्त्र, अर्थविज्ञान एवं रीतिविधान 486
18 विटजनस्टीन एवं साधारण भाषादर्शन 526
19 अस्तित्ववाद पर एक पृष्ठ लेख 568

अध्याय 1

मिल तथा ब्रितानी अनुभववाद

दार्शनिक चेतना शताब्दियों तक रुद्ध बने रहने की स्थिति को सहज स्वीकार नहीं करती। कलाकारों की भाँति दार्शनिक भी निरंतर प्राचीन युग-प्रचेताओं से प्रेरणा लेते रहे हैं और उनके अक्षुण्ण ज्ञानों से नवोत्साह प्राप्त करते रहते रहे हैं। प्रत्येक युग के पुनर्निर्माण का अपना एक विशिष्ट तरीका होता है और निश्चय ही उसमें किसी पूर्ववर्ती दार्शनिक या दार्शनिकों का स्पष्ट प्रभाव विद्यमान होता है। दांते का अरस्तू के विषय में भी यह मत था कि वह सभी तत्कालीन जिज्ञासुओं का प्रेरणा-स्रोत था। विगत शताब्दी में बर्कले तथा ह्यूम ब्रितानी दर्शनक्षेत्र की जीवंत शक्तियाँ रहीं और वहाँ एक युग के दार्शनिक कुहरे के पश्चात् प्लेटो का पुनः प्रतिपादन हुआ, उसके प्रति पुनः रुचि जाग्रत होने लगी। दर्शन के क्षेत्र में यह नवजागरण लाने के लिए दार्शनिक परम्परा के ज्ञाता विद्वानों की एक दीर्घ शृंखला का हम आभार मानना होगा जिनके अध्ययन और अध्यवसाय से हमें चिंतन के क्षेत्र में नई धाराओं के दर्शन हुए। प्लेटो, बर्कले, तथा ह्यूम[1] हमारे समय में निश्चय ही अत्यन्त महत्वपूर्ण दार्शनिकों में से हैं। फिर भी, उनकी शिक्षाओं पर शोध करने का यह उपयुक्त अवसर नहीं है।

सौभाग्य से जॉन स्टुअर्ट मिल की पुस्तक **सिस्टम आफ लाजिक** (1843) को चिंतन के क्षेत्र में अलगाव की एक स्वाभाविक सीमा-रेखा माना जा सकता है। एक ओर जहाँ यह ग्रंथ प्रतिक्रिया अथवा प्रशंसा दोनों ही दृष्टियों से सम-सामयिक दर्शन में प्रकटित अत्यन्त महत्वपूर्ण विचारधाराओं के प्रवर्तन में सहायक रहा है, तो दूसरी ओर इसे अठारहवीं शती के उत्तरार्द्ध की विचारधारा का चरमोत्कर्ष

---

[1] टी॰ एच॰ ग्रीन तथा टी॰ एच॰ ग्रोज द्वारा 1847 ई॰ में किए गए ह्यूम की कृतियों के सम्पादन के पश्चात ही विचारकों की रुचि ह्यूम में होनी प्रारम्भ हुई थी। बर्कले को तो लोग उसके दृष्टि सिद्धान्त, 'थ्योरी ऑफ विजन' के कारण अनुभववादी मनोवैज्ञानिक (एम्पिरिकल साइकोलोजिस्ट) के रूप में जानते ही थे। दार्शनिक के रूप में उनकी भी प्रतिष्ठा उस समय तक न हो सकी थी जब तक ए॰ सी॰ फ्रेजर द्वारा 1871 ई॰ में उनकी रचनाओं का एक पूरा संस्करण प्रकाशित न कर दिया गया। डब्लू॰ लूटोस्लाव्स्की द्वारा अपनी पुस्तक **ओरीजिन एण्ड ग्रोथ आव प्लेटोज लोजिक** (1279) में एल॰ केम्पबल के अनुसरण में प्लेटो की वार्ताओं को सफलतापूर्वक क्रमबद्ध कर लेने से उनके दार्शनिक महत्त्व की पुनः स्थापना हो जाती है।

भी माना जा सकता है, इस अपवाद के साथ कि मिल अपनी शती के महान विचारक ह्यूम की रचनाओ स अनभिज्ञ ही रहे ।[1] मिल की शिक्षा का तो मूल उद्देश्य ही अपने को अठारहवी शती का दाशनिक बनाना था इसलिए मिल के जीवन और काय सभी की दिशा अपने समय की दाशनिक विचारधाराओ की कमियो की आलोचना करने की ओर रही ।

मिल के शिक्षक उनके पिता जेम्स मिल थ जो स्वय एक प्रख्यात दाशनिक मनोवैज्ञानिक तथा अथशास्त्री थ । उनम भी अन्य लोगो स कुछ सीखने की अपूर्व क्षमता थी । डेविड हाटले तथा जर्मी बेन्थम उनके दो प्रमुख प्रेरणा-स्रोत थ । हाटले न अपनी पुस्तक **आब्जर्वेशन्स ऑन मैन** (1749) म एक नय मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त का प्रतिपादन किया जिसे अनुभव-साहचयवाद (एसोसिएशनिज्म) के नाम स जाना जाता है तथा जिसके अनुसार यह माना जाता है कि मनुष्य का मन सवेदना के क्षेत्र म प्रस्तुत हुई प्रतिक्रियाओ से उत्पन्न कुछ मनोवैज्ञानिक नियमो द्वारा सचालित है । आरम्भ म इस सिद्धान्त न कोई हलचल उत्पन्न नही की और उसे बहुत न्यून व्यक्तियो द्वारा जीवित रखा गया—लेकिन शीघ्र ही उस जेम्स मिल जस समथक मिले जिन्होने **द अनालिसिस आव द फिनोमेना आव दि ह्यूमन माइण्ड** (1829) नामक पुस्तक लिख कर इस सिद्धान्त का विकास और प्रवतन भी किया । बाद म जे० एस० मिल द्वारा 1869 म इस सिद्धान्त का सम्पादन और विश्लेषण भी किया गया[2] ।

---

[1] द्रष्टव्य **जोन स्टुअट मिल ए क्रिटिसिज्म विथ पसनल रिपलेक्शन्स** (1882) एक परम्परागत अनुभववादी दृष्टि के लिए मिल की विचारधारा मे हुए परिवतनो को आर० पी० एन्शूज द्वारा लिखित पुस्तक **द फिलोसोफी आव जे० एस० मिल** मे भली भाति दिखाया गया है । डबलू० एम० जेवन्स की 1890 ई० म प्रकाशित पुस्तक **प्योर लोजिक एण्ड अदर माइनर वक्स** भी देखिए । 1916 ई० म प्रकाशित जे० एफ क्राफड द्वारा लिखित पुस्तक **द रिलेशन आफ इनफरेन्स टु फेक्ट इन मिल्स लाजिक**, ओ० ए० कूबिज की **द डवलपमेण्ट आफ जान स्टूअट मिल्स सिस्टम आव लाजिक** (1932) । वतमान अनुभववादी दृष्टि के लिए ब्रिटन की पुस्तक **जॉन स्टुअट मिल** (1955) द्रष्टव्य । 1954 म प्रकाशित एम० एस० जे० पके की पुस्तक **जोन स्टुअट मिल** उनकी जीवनी के लिए 1949, म एच० जे० लास्की द्वारा प्रकाशित सस्करण म उनकी आत्मकथा मिल सकती है । ई० नेगल द्वारा लिखित पुस्तक **मिल्स फिलोसोफी आव साइन्टफिक मैथड** (1950) म मिल की तक प्रणाली सार रूप म बतायी गयी है ।

[2] द्रष्टव्य एच० सी० वारेन की **ए हिस्ट्री आव द एसोसियेशन साइकोलोजी** (1921), जे० सी० फ्लूगल की **ए हण्ड्रेड इयस आव साइकोलोजी** (1933)

पिता पुत्र दोनों को ही इस सिद्धान्त ने लगभग एक ही कारण से प्रभावित किया और वह यह था कि जिस वैज्ञानिक पद्धति से सोवियत संघ के मनोवैज्ञानिक अनुकूलित प्रतिवर्त (कण्डीशण्ड रिफ्लेक्स) का सफलता पूर्वक प्रयोग कर रहे थे। उससे इस सिद्धान्त का काफी मेल था, और इसने सोवियत संघ के मनोवैज्ञानिकों का समर्थन भी प्राप्त करना शुरू कर दिया था। इनका विचार था कि इस सिद्धान्त ने आत्मा के स्वरूप के सम्बन्ध में व्याप्त रूढ़ि और अंधविश्वास को झाड़ दिया है और इसके स्थान पर मनोवैज्ञानिक विश्लेषण का सशक्त आधार प्रस्तुत किया है। इससे भी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इस सिद्धान्त ने आत्मा सम्बन्धी, दर्शन के क्षेत्र में व्याप्त, मूल मतभेदों का निवारण करके अनन्त पूर्णता की शक्ति का परिचय दिया है। अपने पिता के सम्बन्ध में स्टुअर्ट मिल ने कहा कि उनका मूल उद्देश्य परिस्थितियों के सहारे विकसित मनुष्य के आधार पर मनुष्य की नैतिक और बौद्धिक दशा को शिक्षा के माध्यम से सुधार करना था। अपने प्रारंभिक आलेखों में उनकी अंतिम रचनाओं में भी उनकी इस धारणा में कहीं कमी नहीं दिखाई देती। अपने पिता से जो मौलिक मतभेद मिल के थे उनको उन्होंने तत्काल ही निखार दिया था। इस बात का प्रमाण उनकी 1869 में लिखी पुस्तक द सब्जेक्शन ऑव वीमेन में जितना स्पष्ट रूप में मिलता है उतना अन्यत्र मिलना दुर्लभ है। इस पुस्तक में उन्होंने संकेत दिया है कि नर नारियों में न्यूनतम समय-शील मतभेदों के समय भी ऐसी स्थितियाँ काम करती रहती हैं जिन्हें किसी स्वाभाविक विधान के अभाव में भी परिस्थितियों से उपजी हुई माना जा सकता है।

इस प्रकार यदि मिल ने हार्टले से यह सीखा कि पूर्णता प्राप्त करना संभव है तो बेन्थम से भी यह कि व्यवस्थाओं में कुछ सत्य मौलिक और विशुद्ध सच्ची स्थितियों के लिए घातक होते हैं और उनके मार्ग में बड़ी बाधा उत्पन्न करते हैं। किन्तु कुछ सीमाओं तक बेन्थम से मिल का मतभेद भी था—उतना मतभेद उनमें हार्टले के प्रति दर्शन में नहीं आया। बेन्थम पर लिखे ऐसे आलेख बेन्थम (1838)

तथा ए० बेन का आलेख एसोसियेशन कन्ट्रोवर्सीज (माइंड, 1887)। बेन की कृतियों द्वारा ब्रितानी अनुभववादी परम्परा ने मनोविज्ञान में प्रवेश किया, यह बात अब कुछ स्पष्ट है। उनकी रचनाओं के लिए द्रष्टव्य फ्लूगल की उपर्युक्त कृति। माइंड (1876) की स्थापना के लिए बेन ने बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की थी। सर्व प्रथम संपादक क्रूम रॉबर्टसन अनुभववादी परम्परा के सुपाठ्य सातत्यसाधक थे। उनका दृष्टिकोण प्रमुख रूप से मनोविज्ञान की ओर था। वैसे उन्होंने लिखा बहुत कम। उनके लेखों में से अधिकतर उनके दार्शनिक अवशेष (फिलोसॉफिकल रिमेन्स, 1894) के रूप में पुनः प्रकाशित किये गये थे।

भी माना जा सकता है इस अपवाद के साथ कि मिल अपनी शती के महान विचारक ह्यूम की रचनाओं में अनभिज्ञ ही रहे।[1] मिल की शिक्षा का तो मूल उद्देश्य ही अपने को अठारहवीं शती का दार्शनिक बनाने का था इसलिए मिल के जीवन और कार्य सभी की दिशा अपने समय की दार्शनिक विचारधाराओं की कमियों की आलोचना करने की ओर रही।

मिल के शिक्षक उनके पिता जेम्स मिल थे जो स्वयं एक प्रख्यात दार्शनिक मनोवैज्ञानिक तथा अर्थशास्त्री थे। उनमें भी अन्य लोगों से कुछ सीखने की अक्षुण्ण क्षमता थी। डेविड हार्टले तथा जर्मी बेन्थम उनके दो प्रमुख प्रेरणा-स्रोत थे। हार्टले ने अपनी पुस्तक **आब्जर्वेशन ऑन मैन** (1749) में एक नये मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त का प्रतिपादन किया जिसे अनुभव-साहचर्यवाद (एसोसिएशनिज्म) के नाम से जाना जाता है तथा जिसके अनुसार यह माना जाता है कि मनुष्य का मन संवेदना के क्षेत्र में प्रस्तुत हुई प्रतिक्रियाओं से उत्पन्न कुछ मनोवैज्ञानिक नियमों द्वारा संचालित है। आरम्भ में इस सिद्धान्त ने कोई हलचल उत्पन्न नहीं की और उसे बहुत न्यून व्यक्तियों द्वारा जीवित रखा गया—लेकिन शीघ्र ही उसे जेम्स मिल जैसे समर्थक मिले जिन्होंने **द अनालिसिस आव द फिनोमेना आव दि ह्यूमन माइण्ड** (1829) नामक पुस्तक लिख कर इस सिद्धान्त का विकास और प्रवर्तन भी किया। बाद में जे० एस० मिल द्वारा 1869 में इस सिद्धान्त का सम्पादन और विश्लेषण भी किया गया[2]।

---

[1] द्रष्टव्य **जोन स्टुअर्ट मिल ए क्रिटिसिज्म विथ पर्सनल रिफ्लेक्शन्स** (1882) एक परम्परागत अनुभववादी दृष्टि के लिए मिल की विचारधारा में हुए परिवर्तनों को आर० पी० एन्सूज द्वारा लिखित पुस्तक **द फिलोसोफी आव जे० एस० मिल** में भली भांति दिखाया गया है। डब्लू० एस० जेवन्स की 1890 ई० में प्रकाशित पुस्तक **प्योर लोजिक एण्ड अदर माइनर वर्क्स** भी देखिए। 1916 ई० में प्रकाशित जे० एफ० श्राफड द्वारा लिखित पुस्तक **द रिलेशन आफ इनफरेंस टु फैक्ट इन मिल्स लाजिक**, आ० ए० कूबिज की **द डवलपमैण्ट आफ जान स्टूअर्ट मिल्स सिस्टम आव लाजिक** (1932)। वर्तमान अनुभववादी दृष्टि के लिए ब्रिटन की पुस्तक **जॉन स्टुअर्ट मिल** (1955) द्रष्टव्य। 1954 में प्रकाशित एम० एस० जे० पैके की पुस्तक **जोन स्टूअर्ट मिल** उनकी जीवनी के लिए 1949, में एच० जे० लास्की द्वारा प्रकाशित संस्करण में उनकी आत्मकथा मिल सकती है। ई० नगल द्वारा लिखित पुस्तक **मिल्स फिलोसोफी आव साइन्टिफिक मैथड** (1950) में मिल की तर्क प्रणाली सार रूप में बतायी गयी है।

[2] द्रष्टव्य एच० सी० वारन की **ए हिस्ट्री आव द एसोसियेशन साइकोलोजी** (1921) जे० सी० फ्लूगल की **ए हन्ड्रेड इयर्स आव साइकोलोजी** (1933)

पिता पुत्र दोनों को ही इस सिद्धान्त ने लगभग एक ही कारण से प्रभावित किया और वह यह था कि जिस वैज्ञानिक पद्धति से सोवियत संघ के मनोवैज्ञानिक अनुकूलित प्रतिवर्त (कण्डीशण्ड रिफ्लेक्स) का सफलता पूर्वक प्रयोग कर रहे थे। उसमें इस सिद्धान्त का काफी मेल था, और इसने सोवियत संघ के मनोवैज्ञानिकों का समर्थन भी प्राप्त करना शुरू कर दिया था। इनका विचार था कि इस सिद्धान्त ने आत्मा के स्वरूप के सम्बन्ध में व्याप्त रूढ़ि और अन्धविश्वास को झाड़ दिया है और इसके स्थान पर मनोवैज्ञानिक विश्लेषण का सतर्क आधार प्रस्तुत किया है। इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि इस सिद्धान्त ने आत्मा सम्बन्धी, दर्शन के क्षेत्र में व्याप्त, मूल मतभेदों का निवारण करके अनन्त पूर्णता की शक्ति का परिचय दिया है। अपने पिता के सम्बन्ध में स्टुअर्ट मिल ने कहा कि उनका मूल उद्देश्य परिस्थितियों के सहारे विकसित मनुष्य के आधार पर मनुष्य की नैतिक और बौद्धिक दशा का शिक्षा के माध्यम से सुधार करना था। अपने आरम्भिक भाषणों में उनकी अन्तिम रचनाओं में भी उनकी इस धारणा में कहीं कमी नहीं दिखाई देती। अपने पिता से जो मौलिक मतभेद मिल के थे उनको उन्होंने तत्काल ही निकाल दिया था। इस बात का प्रमाण उनकी 1869 में लिखी पुस्तक द सब्जेक्शन आव वीमेन में जितना स्पष्ट रूप में मिलता है उतना अन्यत्र मिलना दुर्लभ है। इस पुस्तक में उन्होंने मवन दिया है कि नर नारियों में न्यूनतम संघर्ष-शील मतभेदों के समय भी ऐसी स्थितियाँ काम करती रहती हैं जिन्हें किसी स्वाभाविक विकास के अभाव में भी परिस्थितियों में उपजी हुई माना जा सकता है।

इस प्रकार यदि मिल ने हार्टले से यह सीखा कि पूर्णता प्राप्त करना सम्भव है तो बेन्थम से भी यह कि बयामा में कुछ सत्य मौलिक और विशुद्ध सच्ची स्थितियों के लिए घातक होते हैं और उनके मार्ग में बड़ी बाधा उत्पन्न करते हैं। किन्तु कुछ सीमाओं तक बेन्थम से मिल का मतभेद भी था—ऐसा मतभेद उनमें हार्टले के प्रति देखने में नहीं आया। बेन्थम पर लिखे ऐसे आन बेन्थम (1838)

तथा ए० बेन का आन एसोसियेशन कन्ट्रोवर्सीस (माइंड, 1887)। बेन की कृतियों द्वारा ब्रितानी अनुभववादी परम्परा ने मनोविज्ञान में प्रवेश किया, वह बात अब कुछ स्पष्ट है। उनकी रचनाओं के लिये द्रष्टव्य फ्लूगल की उपयुक्त कृति। माइंड (1876) की स्थापना के लिये बेन ने बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की थी सर्व प्रथम सम्पादक क्रूम राबर्टसन अनुभववादी परम्परा के सुयोग्य सातत्यसाधक थे। उनका दृष्टिकोण प्रमुख रूप से मनोविज्ञान की ओर था। वैसे उन्होंने लिखा बहुत कम। उनके लेखों में से अधिकतर उनके दार्शनिक अवशेष (फिलोसाफिकल रिमेन्स, 1894) के रूप में पुनः प्रकाशित किये गये थे।

म उन के प्रति मिल का विद्रोह अपनी चरम सीमा पर था। अठारहवा शती की विचारधारा जिसका प्रतिनिधित्व इग्लड मे कालरिज तथा कार्लाइल ने किया–की प्रतिक्रिया स्वरूप मिल न यह अनुभव किया कि बेंथम का सिद्धात अव्यावहारिक है, विचारक होने की भक म उनका अनुभववाद अनुभवहीनता का द्योतक बन गया है। मिल ने बताया कि बन्थम ने एक साफ सुथरे विचारक होने की भख म यह कहन *की भीषण गलती कर डाली कि जो अनुभव हम जटिल रूप से प्राप्त करते हैं वह* अनुभव ही नही है। बन्थम न इस प्रकार उन बहुत सी उलभी हुई सामान्य *परिस्थितियो को भी अस्वीकृत कर दिया जो मिल के अनुसार, समूची मानवजाति* के अनुभवो की युग युग से अविश्लिष्ट शृखला रही थी।[1]

इतना होते हुए भी मिल एव कालरिज मे अधिक समय तक समझौता चलना सभव नही था–कालरिज और उसके अनुयायी यथाथ से इतर अन्त साक्ष्यवादी (इण्ट्यूशनिस्ट) थे। इसी व्याज स मिल कई बार उनकी खिल्ली उडाया करत थे। उनके अनुसार ये लोग सीमित और निर्धारित रुचियो के अनुरूप आचरण करने वाले थे और उनका यह काय विशुद्ध अनुभव के क्षेत्र के विरोध मे था। इसके अतिरिक्त भी मिल के मतानुसार उनकी प्रणाली गलत आधार पर टिकी थी। इसलिए मिल कालरिज *स्कूल की सामान्य धारणाओ के* प्रतिकूल बन्थम की विस्तार म जान वाली प्रणाली के प्रति वफादार रह जिसके *अनुसार पूर्ण को खण्ड करके देखन, अमूत को यथाथ स्तर तक ले जाकर अध्ययन* करन व विशिष्ट मूल्यो और सामान्य स्थितियो का अलग अलग करके देखने तथा सभी समस्याओ का निदान उनको खण्ड खण्ड करके निकाल लान म था[2]। मिल

---

[1] मिल के अधिकतर निबन्धो की भाति बन्थम पर उनका निबन्ध भी **डिसर्टेशन्स एण्ड डिस्कशन्स** *(वाल्यूम–1859–75)* म सकलित है। साथ ही द्रष्टव्य **बिब्लियोग्राफी आव द पब्लिश्ड वक्स आव जान स्टुअट मिल** सपादक, एम० मकमिन जे० आर०, हेइन्डस जे० एम० मैकरिमन *(1945)* बेन्थम तथा मिल–परिवार के लिये द्रष्टव्य ई हलवी की **द ग्रोथ आव फिलोसाफिकल रडिकलिज्म** *(अग्रेजी अनुवाद 1928) तथा एल० स्टीवन द इंग्लिश* **यूटिलिटेरियन्स (1900)**। बथम तथा उसक विरोधियो के मिल के साथ सबधो के *लिये देखें–एफ० आर लीविस* **मिल आन बेंथम एण्ड, कालरिज (1950)** तथा श्री स्वामोनर (कालरिज) एव श्री मक क्वेडी (मिल के एक मित्र जे० आर० मक कुलाच) के बीच विमश (टी० एल० पीकाक की **क्रोचेट कासल** मे), इ० नफ की **कार्लाइल एण्ड मिल (1924)**

[2] इस प्रणाली के लिय द्रष्टव्य *सा० के० आगडन की बन्थमस थियरी आव* **फिक्शन्स (1932)**

कभी भी गभीर रूप से यह सोचने को विवश नही हुए कि मन अनुभूतियो का आकलन (सेट) है, समाज व्यक्तियो का तथा वस्तु एक घटनाक्रम का। उनकी दृष्टि मे तो दर्शन की मूल समस्या सही तौर पर उन सबका विस्तार मे खण्ड खण्ड वर्णन करना ही है। वैज्ञानिक जगत् मे यही बात होती आई है कि वहा पर वस्तु का अध्ययन खण्डो एव उसके विभिन्न उपकरणो को लेकर होता है।

स्वभावत मिल के नैतिक और राजनीतिक लेखन पर भी बेंथम का प्रभाव विशद रूप से था। लेकिन मिल का बेंथमवाद कुछ अर्थो मे अपनी एक सीमा भी लिए हुए था—खास तौर पर उनके तर्कशास्त्र तथा ज्ञानमीमासा के लिये यह कहा जा सकता है।

मिल की दृष्टि मे अनुभव साहचर्यवाद का यदि भली भाति परीक्षण किया जाए तो वह मात्र एक मनोवैज्ञानिक आकल्प ही नही अपितु एक विकासशील समाज नीति की पहली आवश्यकता की भी पूर्ति करता है। अनुभव-वाद भी इसी भाति केवल अनुभव से प्राप्त ज्ञान की मीमासा मात्र नही है। अनुभववादी न होने का अर्थ है कि परम्परा (एस्टाब्लिशमेट) से चिपका रहना या तथाकथित पावन मूल्यो तथा सिद्धान्तो के सरक्षण के हेतु वचन-बद्ध होना। इसीलिए मिल ने लिखा कि केवल दोषयुक्त विचारक और सस्थाए ही यह धारणा रख सकते है कि सत्य का प्रत्यक्ष अनुभव द्वारा प्राप्त न कर पाने के बावजूद भी अन्त साक्ष्य से प्राप्त किया जा सकता है। यहा मिल द्वारा प्रयुक्त की गयी शब्दावली का महत्व है। उन्होने जोर देकर लिखा है "झूठे विचारक और दोष युक्त सस्थाए।' इस प्रकार हम देख सकते है कि यदाकदा अनुभववाद पर आक्रमण करने तथा अनुभव-साहचर्यवाद की प्रामाणिकता पर सदेहवादी हो जाने के बावजूद भी मिल मे इन सिद्धान्तो के प्रति गहरी आस्था है और वे जोड तोड करके भी इनको सिद्ध कर देते है।

1830–42 ई० मे आगस्ट काम्ते [1] द्वारा लिखी गई 'कोर्स इन पोजिटिविस्ट फिलासोफी' नामक पुस्तक मे व्यक्त किये गये फ्रासीसी वस्तुस्थितिवाद के प्रति जानमिल की अभिरुचि ने भी मिल के दर्शन और विचारो पर गहरा प्रभाव

---

[1] ए० ब्रूल-ब्रेवी की हिस्ट्री आव माडर्न फिलासफी इन फ्रास (1899) मे काम्ते के सम्बन्ध मे बडा अच्छा सक्षिप्त वर्णन मिलता है। साथ ही देखें टी ह्वाइटाकर की कोम्ते एण्ड मिल (1908), ई० केयड, दि सोशल फिलासफी एण्ड रिलिजन आव कोम्ते (1885), ब्रितानी आदर्शवाद के दृष्टिकोण से एक समीक्षा। काम्ते की दिस्कोर सु ला साम्बल दु पाजितिविस्म एच० बी० एक्टन का कोम्तेज पोसिटिविज्म एण्ड द साइन्स आव सोसाइटी (फिलासफी मे, (1951), सयुक्तराज्य अमेरिका मे कोम्ते के प्रभाव के लिए द्रष्टव्य आर० एल० हाकिन्स की आगस्ट कोम्ते एण्ड द यूनाइटेड स्टेटस (1938)।

डाला है। उन्होंने कोम्त द्वारा लिखी एक अन्य पुस्तक **सिस्टम ऑफ पोजिटिविस्ट पोलिटी** (1951–54), को मानवीय मस्तिष्क में अब तक निकली आध्यात्मिक तानाशाही की सर्वव्यापिनी उपलब्धि माना है। शुरू शुरू में मिल कोम्त के समाज दर्शन में प्रस्तुत हुए उनके समग्रतावादी रूप को पहचान नहीं पाये थे। कोम्ते में उन्होंने एक ऐसा दार्शनिक जन्म लेता हुआ पाया था जो बेन्थम द्वारा प्रदर्शित की गई समाज के प्रति वैज्ञानिक दृष्टि को भी अपने में समाहित किए था और जिस दृष्टि का पूर्ण अभाव उन्हें कार्लाइल और कालरिज में साफ दिखाई दिया था। लेकिन इसके बावजूद भी कार्लाइल और कालरिज की इतिहास दृष्टि के मिल कायल थे—जो उन्हें बेन्थम में नहीं मिली थी।

कोम्ते के वस्तु स्थितिवाद (पोजिटिविज्म) और उनके द्वारा प्रस्तुत इस धारणा से कि हमारा सम्पूर्ण ज्ञान निरन्तर हो रही घटनाओं और उनके संयोजन में प्रकट हुई स्थितियों का वर्णन करने में ही निहित है, मिल पहले से भी परिचित थे। यही बात उन्होंने अपने पिता से सीखी थी। लेकिन कोम्ते की नवीनता इस ऐतिहासिक बोध में भी थी जिसके आधार पर उन्होंने यह घोषणा की थी कि मानवी जिज्ञासा का अन्तिम चरण वस्तु स्थिति का ही है। पहले इसी तथ्य को धर्म-दर्शन (थियोलाजी) द्वारा प्रतिपादित किया जाता रहा तथा बाद में तत्वमीमांसा (मेटाफिजिक्स) द्वारा ईश्वरधर्मवादी (थियोलाजिकल) स्तर पर घटनाक्रम को सब ही दैवी शक्ति के स्वेच्छाकृत कार्यों का प्रतीक माना गया है और तत्ववादी (मेटाफिजिकल) स्तर पर उन्होंने दैवी देवताओं के स्थान पर शक्ति सत्ता एवं तत्व-आदि शब्दों का रूपान्तर मात्र प्रस्तुत किया है। इसलिए केवल तीसरी अवस्था के जरिए ही जो कि वस्तुस्थिति की अवस्था है, मनुष्य घटनाक्रम के विभिन्न उपकरणों के पारस्परिक सम्बन्धों का वर्णन कर सकने में सफल हुआ है। कोम्ते को यह बात मान्य है कि वस्तुस्थिति की अवस्था को विश्लेषण से प्राप्त करते समय कुछ अनुभव दूसरे प्रकार के अनुभवों से ज्यादा सहायक होते हैं।

विज्ञान की सब विधियां एक तार्किक क्रम में अनुबद्ध होती हैं और किन्हीं खास नियमों के कारण प्रत्येक प्रकार के विज्ञान को दूसरे प्रकार के विज्ञान पर आधारित रहना पड़ता है और यही उनके विकास की ऐतिहासिक स्थिति की परिचायक है। गणित सर्वप्रथम [illegible]कों में सामान्य सिद्धान्त के रूप में हमारे सामने प्रकट हुआ। उसके बाद क्रमशः भौतिक शास्त्र, रसायन शास्त्र तथा जीव-विज्ञान उद्भूत हुए। सामाजिक विज्ञान को भौतिक शास्त्र तथा जीव विज्ञान के विकास की प्रतीक्षा करनी पड़ी बाद में वे विकसित हुए। इतना हो जाने के बाद कोम्त के मतानुसार, इस बार अब सामाजिक विज्ञानों की बारी थी। उनमें पहली बार वैज्ञानिक विधियों का प्रयोग करके समाज का अध्ययन शुरू हुआ।

बहुत अंशों में, इस निष्कर्ष के आधार पर ही कोम्ते को अर्थशास्त्र और मनोविज्ञान को अवैज्ञानिक कह कर छोड़ देना पड़ा। अर्थशास्त्र को तो इसलिए कि वह धन की अलग से समीक्षा करते हुए सामाजिक संदर्भ में उसे काट देता है और इसीलिए यह समाज में हो रही वास्तविक आर्थिक क्रियाओं को देखने में असमर्थ हो जाता है। मनोविज्ञान को भी कोम्ते इसलिए त्याज्य मानते हैं कि उसमें व्यक्ति के लिए स्वयं अपनी मानसिक अवस्था को निरन्तर एक ही रूप में देख और समझ पाना सम्भव नहीं है क्योंकि विश्लेषण की क्रियाएं मानसिक प्रक्रिया में स्वयं बदल जाती हैं। कोम्ते की इन धारणाओं का निराकरण करना मिल ने एक मनोवैज्ञानिक तथा अर्थशास्त्री के पुत्र होने के नाते भी आवश्यक माना। इसके बावजूद भी मिल कोम्ते के साथ इस सीमा तक सहमत हो गये कि सामाजिक विज्ञान काफी पिछड़ा हुआ है और उनका यह पिछड़ापन ही इस तथ्य का द्योतक है कि समाज का वैज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन ही नहीं हुआ है। मिल का यह विचार मत: साक्ष्यवादियों से इस अर्थ में विपरीत था कि समाज एक ऐसी सत्ता नहीं है जो स्वतः एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रस्तुत कर सके।

इसके अतिरिक्त भी कोम्ते की रचनाओं ने मिल को नई पद्धति पर सोचने की प्रेरणा दी। दरअसल यह वैज्ञानिक दृष्टि तो थी ही किन्तु यह वैज्ञानिक दृष्टि मौलिक रूप में उस दृष्टि से भिन्न थी जिसका उपयोग भौतिक शास्त्र और रसायनशास्त्र में होता है। मिल इसी दृष्टि का उपयोग समाज के वैज्ञानिक अध्ययन के लिए करना चाहते थे। इस उपलब्धि के साथ ही मिल अपना ग्रंथ सिस्टम आफ लोजिक पूर्ण करना चाहते थे जिस पर वे कुछ वर्षों से कार्यरत थे। मिल की इस पुस्तक का मुख्य उद्देश्य यह भी है कि वह उसके आधार पर नैतिक विज्ञानों की 'तर्क प्रणाली' का प्रवर्तन करना चाहते थे जिसे आज की भाषा में सामाजिक विज्ञानों का रीति-विधान (मेथाडालोजी) कहा जा सकता है। लेकिन पहले इसके लिए भूमि तैयार करनी थी। नैतिक विज्ञानों का विधिपूर्वक विशिष्ट तार्किक विकास करने से पूर्व एक सामान्य तार्किक प्रणाली का प्रवर्तन करना आवश्यक था। यहां कोम्ते मिल के लिए न्यूनतम उपयोग के हो सके। मिल की धारणा के अनुसार कोम्ते जानकारी प्राप्त करने की विधि वर्णन करने में सिद्धहस्त थे लेकिन प्रमाणी-करण (सिद्ध करने) के लिए कोई मानदण्ड उन्होंने कायम नहीं किया। कोम्ते में सिद्ध और झूठ अनुमानों के बीच में भेद करने जैसी स्थिति की कोई संभावनाएं भी नहीं दिखाई देती। कोम्ते विज्ञान प्रणाली का वर्णन करने में सिद्धहस्त थे जबकि मिल ने उनका औचित्य सिद्ध करने का प्रयास किया।

तर्कशास्त्र का अर्थ मिल के लिए सिद्धीकरण अथवा प्रमाणीकरण का विज्ञान (साइंस आव प्रूफ आव एविडेंस) है। प्रत्येक साध्य मूल दत्त-सामग्री (ओरिजिनल डेटा) पर निर्भर करता है लेकिन तर्कशास्त्र इन उपकरणों की प्राकृतिक

डाला है। उन्होंने काम्ते द्वारा लिखी एक अन्य पुस्तक **सिस्टम आफ पोजिटिविस्ट पोलिटी** (1951–54) को मानवीय मस्तिष्क से अब तक निकली आध्यात्मिक तानाशाही की सर्वव्यापिनी उपलब्धि माना है। शुरू शुरू में मिल काम्ते के समाज दर्शन में प्रस्तुत हुए उनके समग्रतावादी रूप को पहचान नहीं पाये थे। कोम्ते में उन्होंने एक ऐसा दार्शनिक जन्म लेता हुआ पाया था जो बेंथम द्वारा प्रदर्शित की गई समाज के प्रति वैज्ञानिक दृष्टि को भी अपने में समाहित किए था और जिस दृष्टि का पूर्ण अभाव उन्हें कार्लाइल और कालरिज में साफ दिखाई दिया था। लेकिन इसके बावजूद भी कार्लाइल और कालरिज की इतिहास दृष्टि के मिल कायल थे—जो उन्हें बेंथम में नहीं मिली थी।

काम्ते के वस्तु स्थितिवाद (पाजिटिविज्म) और उनके द्वारा प्रस्तुत इस धारणा से कि हमारा सम्पूर्ण ज्ञान निरंतर हो रही घटनाओं और उनके संयोजन से प्रकट हुई स्थितियों का वर्णन करने में ही निहित है, मिल पहले से भी परिचित थे। यही बात उन्होंने अपने पिता से सीखी थी। लेकिन कोम्ते की नवीनता इस ऐतिहासिक बोध में भी थी जिसके आधार पर उन्होंने यह घोषणा की थी कि मानवी जिज्ञासा का अंतिम चरण वस्तु स्थिति का ही है। पहले इसी तथ्य का धर्म–दर्शन (थियोलोजी) द्वारा प्रतिपादित किया जाता रहा तथा बाद में तत्वमीमांसा (मेटाफिजिक्स) द्वारा ईश्वरधर्मवादी (थियोलाजिकल) स्तर पर घटनाक्रम का सम्बन्ध ही दैवी शक्ति के स्वच्छंदकृत कार्यों का प्रतीक माना गया है और तत्ववादी (मेटाफिजिकल) स्तर पर उन्होंने देवी देवताओं के स्थान पर शक्ति सत्ता एवं तत्व–आदि शब्दों का रूपांतर मात्र प्रस्तुत किया है। इसलिए केवल तीसरी अवस्था के जरिए ही, जो कि वस्तुस्थिति की अवस्था है मनुष्य घटनाक्रम के विभिन्न उपकरणों के पारस्परिक सम्बन्धों का वर्णन कर सकने में सफल हुआ है। कोम्ते की यह बात मान्य है कि वस्तुस्थिति की अवस्था को विश्लेषण से प्राप्त करते समय कुछ अनुभव दूसरे प्रकार के अनुभवों से ज्यादा सहायक होते हैं।

विज्ञान की सब विधियां एक तार्किक क्रम में अनुबद्ध होती हैं और किन्हीं खास नियमों के कारण प्रत्येक प्रकार के विज्ञान को दूसरे प्रकार के विज्ञान पर आधारित रहना पड़ता है और यही उनके विकास की ऐतिहासिक स्थिति की परिचायक है। गणित सर्वप्रथम अ ना में सामान्य सिद्धांत के रूप में हमारे सामने प्रकट हुआ। उसके बाद क्रमशः भौतिक शास्त्र, रसायन शास्त्र तथा जीव–विज्ञान उद्भूत हुए। सामाजिक विज्ञान को भौतिक शास्त्र तथा जीव विज्ञान के विकास की प्रतीक्षा करनी पड़ी बाद में वे विकसित हुए। इतना हो जाने के बाद, कोम्ते के मतानुसार इस बार अब सामाजिक विज्ञानों की बारी थी। उनमें पहली बार वैज्ञानिक विधियों का प्रयोग करके समाज का अध्ययन शुरू हुआ।

बहुत अंशों में, इस निष्कर्ष के आधार पर ही कोम्त को अर्थशास्त्र और मनोविज्ञान को अवैज्ञानिक कह कर छोड़ देना पड़ा। अर्थशास्त्र को तो इसलिए कि वह धन की अलग से समीक्षा करते हुए सामाजिक संदर्भ से उसे काट देता है और इसीलिए यह समाज में हो रही वास्तविक आर्थिक क्रियाओं को देखने में असमर्थ हो जाता है। मनोविज्ञान को भी कोम्त इसलिए त्याज्य मानते हैं कि उसमें व्यक्ति के लिए स्वयं अपनी मानसिक अवस्था को निरंतर एक ही रूप में देख और समझ पाना सम्भव नहीं है क्योंकि विश्लेषण की क्रियाएं मानसिक प्रक्रिया में स्वयं बदल जाती हैं। कोम्त की इन धारणाओं का निराकरण करना मिल ने एक मनोवैज्ञानिक तथा अर्थशास्त्री के पुत्र होने के नाते भी आवश्यक माना। इसके बावजूद भी मिल काम्ते के साथ इस सीमा तक सहमत हो गये कि सामाजिक विज्ञान काफी पिछड़े हुए हैं और उनका यह पिछड़ापन ही इस तथ्य का द्योतक है कि समाज का वैज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन ही नहीं हुआ है। मिल का यह विचार प्रत्यक्षवादियों से इस अर्थ में विपरीत था कि समाज एक ऐसी सत्ता नहीं है जो स्वतः एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रस्तुत कर सके।

इसके अतिरिक्त भी काम्ते की रचनाओं ने मिल को नई पद्धति पर सोचने की प्रेरणा दी। दरअसल यह वैज्ञानिक दृष्टि तो थी ही किन्तु यह वैज्ञानिक दृष्टि मौलिक रूप से उस दृष्टि से भिन्न थी जिसका उपयोग भौतिक शास्त्र और रसायन-शास्त्र में होता है। मिल इसी दृष्टि का उपयोग समाज के वैज्ञानिक अध्ययन के लिए करना चाहते थे। इस उपलब्धि के साथ ही मिल अपना ग्रंथ सिस्टम ऑफ लोजिक पूर्ण करना चाहते थे जिस पर वे कुछ वर्षों से कार्यरत थे। मिल की इस पुस्तक का मुख्य उद्देश्य यह भी है कि वह उसके आधार पर नैतिक विज्ञानों की 'तर्क प्रणाली' का प्रचलन करना चाहते थे जिसे आज की भाषा में सामाजिक विज्ञानों का रीति-विधान (मेथोडालाजी) कहा जा सकता है। लेकिन पहले इसके लिए भूमि तैयार करनी थी। नैतिक विज्ञानों का विधिपूर्वक विशिष्ट तार्किक विकास करने से पूर्व एक सामान्य तार्किक प्रणाली का प्रवर्तन करना आवश्यक था। [illegible] काम्ते मिल के लिए न्यूनतम उपयोग के हो सके। मिल की धारणा के अनुसार [illegible] जानकारी प्राप्त करने की विधि वर्णन करने में सिद्धहस्त थे लेकिन प्रमाणी[illegible] (सिद्ध करने) के लिए कोई मानदण्ड उन्होंने कायम नहीं किया। काम्ते [illegible] और झूठ अनुमानों के बीच में भेद करने जैसी स्थिति की कोई संभावनाएं [illegible] दिखाई देती। कोम्ते विज्ञान प्रणाली का वर्णन करने में सिद्धहस्त थे [illegible] उनका औचित्य सिद्ध करने का प्रयास किया।

तर्कशास्त्र का अर्थ मिल के लिए सिद्धीकरण अथवा [illegible] विज्ञान (साइंस आव प्रूफ ऑव एविडेंस) है। प्रत्येक साक्ष्य [illegible] (आरिजिनल डेटा) पर निर्भर करता है लेकिन तर्कशास्त्र [illegible]

डाला है। उन्होंने कोम्ते द्वारा लिखी एक अन्य पुस्तक **सिस्टम आफ पोजिटिविस्ट पोलिटी** (1951–54) को मानवीय मस्तिष्क में अब तक निकली आध्यात्मिक तानाशाही की सर्वव्यापिनी उपलब्धि माना है। शुरू शुरू में मिल कोम्ते के समाज दर्शन में प्रस्तुत हुए उनके समग्रतावादी रूप को पहचान नहीं पाये थे। कोम्ते में उन्होंने एक ऐसा दार्शनिक जन्म लेता हुआ पाया था जो बेन्थम द्वारा प्रदर्शित की गई समाज के प्रति वैज्ञानिक दृष्टि को भी अपने में समाहित किए था और जिस दृष्टि का पूर्ण अभाव उन्हें कार्लाइल और कालरिज में साफ दिखाई दिया था। लेकिन इसके बावजूद भी कार्लाइल और कालरिज की इतिहास दृष्टि के मिल कायल थे–जो उन्हें बेन्थम में नहीं मिली थी।

काम्ते के वस्तु स्थितिवाद (पाजिटिविज्म) और उनके द्वारा प्रस्तुत इस धारणा से कि हमारा सम्पूर्ण ज्ञान निरन्तर हो रही घटनाओं और उनके संयोजन में प्रकट हुई स्थितियों का वर्णन करने में ही निहित है मिल पहले से भी परिचित थे। यही बात उन्होंने अपने पिता से सीखी थी। लेकिन कोम्ते की नवीनता इस एतिहासिक बोध में भी थी जिसके आधार पर उन्होंने यह घोषणा की थी कि मानवी जिज्ञासा का अंतिम चरण वस्तु स्थिति का ही है। पहले इसी तथ्य को धर्म–दर्शन (थियालोजी) द्वारा प्रतिपादित किया जाता रहा तथा बाद में तत्वमीमांसा (मेटाफिजिक्स) द्वारा ईश्वरधर्मवादी (थियोलाजिकल) स्तर पर घटनाक्रम को सदैव ही दैवी शक्ति के स्वेच्छाकृत कार्यों का प्रतीक माना गया है और तत्ववादी (मेटाफिजिकल) स्तर पर उन्होंने देवी देवताओं के स्थान पर शक्ति सत्ता एवं तत्व–आदि शब्दों का रूपान्तर मात्र प्रस्तुत किया है। इसलिए केवल तीसरी अवस्था के जरिए ही जो कि वस्तुस्थिति की अवस्था है मनुष्य घटनाक्रम के विभिन्न उपकरणों के पारस्परिक सम्बन्धों का वर्णन कर सकने में सफल हुआ है। कोम्ते का यह बात मान्य है कि वस्तुस्थिति की अवस्था को विश्लेषण में प्राप्त करते समय कुछ अनुभव दूसरे प्रकार के अनुभवों से ज्यादा सहायक होते हैं।

विज्ञान की तर्क विधियां एक तार्किक क्रम में अनुबद्ध होती हैं और किन्हीं खास नियमों के कारण प्रत्येक प्रकार के विज्ञान को दूसरे प्रकार के विज्ञान पर आधारित रहना पडता है और यही उनके विकास की ऐतिहासिक स्थिति की परिचायक है। गणित सर्वप्रथम अंकों में सामान्य सिद्धान्त के रूप में हमारे सामने प्रकट हुआ। उसके बाद क्रमश: भौतिक शास्त्र, रसायन शास्त्र तथा जीव–विज्ञान उद्भूत हुए। सामाजिक विज्ञान को भौतिक शास्त्र तथा जीव विज्ञान के विकास की प्रतीक्षा करनी पडी बाद में वे विकसित हुए। इतना हो जाने के बाद, काम्ते के मतानुसार इस बार अब सामाजिक विज्ञानों की बारी थी। उनमें पहली बार वैज्ञानिक विधियों का प्रयोग करके समाज का अध्ययन शुरू हुआ।

बहुत अंशों में इस निष्कर्ष के आधार पर ही कॉम्ते को अर्थशास्त्र और मनोविज्ञान को अवैज्ञानिक कह कर छोड़ देना पड़ा। अर्थशास्त्र को तो इसलिए कि वह धन की अलग से समीक्षा करते हुए सामाजिक संदर्भ में उसे काट देता है और इसीलिए वह समाज में हो रही वास्तविक आर्थिक क्रियाओं को देखने में असमर्थ हो जाता है। मनोविज्ञान को भी कॉम्ते इसलिए त्याज्य मानते हैं कि उसमें व्यक्ति के लिए स्वयं अपनी मानसिक अवस्था को निरंतर एक ही रूप में देख और समझ पाना सम्भव नहीं है क्योंकि विश्लेषण की क्रियाएं मानसिक प्रक्रिया में स्वयं बदल जाती हैं। कॉम्ते की इन धारणाओं का निराकरण करना मिल ने एक मनोवैज्ञानिक तथा अर्थशास्त्री के पुत्र होने के नाते भी आवश्यक माना। इसके बावजूद भी मिल कॉम्ते के साथ इस सीमा तक सहमत हो गये कि सामाजिक विज्ञान काफी पिछड़े हुए हैं और उनका यह पिछड़ापन ही इस तथ्य का द्योतक है कि समाज का वैज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन ही नहीं हुआ है। मिल का यह विचार अंतःसाक्ष्यवादियों के इस अर्थ में विपरीत था कि समाज एक ऐसी सत्ता नहीं है जो स्वतः एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रस्तुत कर सके।

इसके अतिरिक्त भी कॉम्ते की रचनाओं ने मिल को नई पद्धति पर सोचने की प्रेरणा दी। दरअसल यह वैज्ञानिक दृष्टि तो थी ही किन्तु यह वैज्ञानिक दृष्टि मौलिक रूप से उस दृष्टि से भिन्न थी जिसका उपयोग भौतिक शास्त्र और रसायन-शास्त्र में होता है। मिल इसी दृष्टि का उपयोग समाज के वैज्ञानिक अध्ययन के लिए करना चाहते थे। इस उपलब्धि के साथ ही मिल अपना ग्रंथ सिस्टम आफ लोजिक पूर्ण करना चाहते थे जिस पर वे कुछ वर्षों से कार्यरत थे। मिल की इस पुस्तक का मुख्य उद्देश्य यह भी है कि वह उसके आधार पर नैतिक विज्ञानों की 'तर्क प्रणाली' का प्रचलन करना चाहते थे जिसे आज की भाषा में सामाजिक विज्ञानों का रीति-विधान (मेथोडालोजी) कहा जा सकता है। लेकिन पहले इसके लिए भूमि तैयार करनी थी। नैतिक विज्ञानों का विधिपूर्वक विशिष्ट तार्किक विकास करने से पूर्व एक सामान्य तार्किक प्रणाली का प्रवर्तन करना आवश्यक था। यहां कॉम्त मिल के लिए न्यूनतम उपयोग के हो सके। मिल की धारणा के अनुसार कॉम्त जानकारी प्राप्त करने की विधि वर्णन करने में सिद्धहस्त थे लेकिन प्रमाणी-करण (सिद्ध करने) के लिए कोई मानदण्ड उन्होंने कायम नहीं किया। कॉम्त में सिद्ध और झूठ अनुमानों के बीच में भेद करने जैसी स्थिति की कोई संभावनाएं भी नहीं दिखाई देती। कॉम्ते विज्ञान प्रणाली का वर्णन करने में सिद्धहस्त थे जबकि मिल ने उनका औचित्य सिद्ध करने का प्रयास किया।

तर्कशास्त्र का अर्थ मिल के लिए सिद्धीकरण अथवा प्रमाणीकरण का विज्ञान (साइंस आव प्रूफ आव एविडेंस) है। प्रत्येक साध्य मूल दत्त-सामग्री (ओरिजिनल डेटा) पर निर्भर करता है लेकिन तर्कशास्त्र इन उपकरणों की प्राकृतिक

विशदीकरण करने की बात तत्ववाद (मेटाफिजिक्स) के लिए छोड़ देता है । अपने लिए यह कार्य सुरक्षित रख लेता है कि उस दत्त सामग्री को किस विधि से उपस्थित किया जाय—ताकि उसे वैज्ञानिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए उपयोग में लाया जा सके[1]।

इन प्रदत्त सामग्रियों के उपस्थापन की पद्धतियों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है भाषा का विश्लेषण किया जाना जो नाम देने की प्रक्रिया के लिए आवश्यक है, ऐसा मिल का मत था । इसलिए मिल ने बतलाया है कि उनकी लाजिक सर्वप्रथम भाषा के विश्लेषण के अध्याय से आरम्भ होती है । यही वह बिन्दु था जहाँ पर बाद में उनकी बहुत कड़ी आलोचना हुई । कुछ अर्वाचीन दार्शनिक तो यह मानते हैं कि नामकरण की प्रक्रिया और भाषा के प्रयोग को एक मान लेना ही दर्शन की बुराइयों की जड़ है । मिल शब्दों को दो श्रेणियों में विभाजित करते हैं । एक श्रेणी इस प्रकार की जैसे 'सुकरात' जैसा नाम जिसे अपने ही संदर्भ से जाना जा सकता है और दूसरी ऐसी जैसे 'व्याकरण की भाषा का शब्द आफ' (का) जिसे बिना किसी संदर्भ के जाना ही नहीं जा सकता । और इन्हीं के आधार पर बड़े नाम-पद जैसे (सुकरात के पिता) आदि निर्मित होने चलते हैं । मिल 'इफ' (यदि) तथा 'ऑर' (या) जैसे शब्दों के लिए कुछ भी नहीं कहते जो अपने आप में न नाम ही है और न नामकरण करने वाले पदों से ही जुड़े हैं ।

मिल तो यह मानकर ही चलते हैं कि सभी संज्ञाएं तथा सभी विशेषण संदर्भ मुक्त नाम हैं । इसलिए जब कभी भी हम इस प्रकार के शब्दों के सम्पर्क में आते हैं तो यह पूछना सार्थक है कि अमुक नाम किस वस्तु का बोधन कराता है ?

व्हाइटनैस (सफेदी) जैसी भाववाचक संज्ञाएं मिल के अनुसार किसी गुण का व्यक्त करती हैं । विशेषण 'सफेद' उन विभिन्न वस्तुओं के बारे में बताता है जिन्हें सफेद होने वाला माना जा सकता है । 'जान" द सो" द फादर आफ सोक्रेटीज" आदि वस्तुओं के नाम की ओर संकेत करते हैं । व्हाइटनस (सफेदी) और 'जान' में एक मूलभूत अन्तर यह है कि जान और इसी प्रकार की अन्य संज्ञाएं नोन-कनोटेटिव (अ-स्वगुण-निर्देशक) पद हैं । मिल स्वगुणनिर्देशक पदों (कनोटेटिव टर्म्स) की परिभाषा यह देते हैं कि ये वे पद हैं जो किसी कर्ता के बारे

---

1 यहाँ यह मेटाफिजिक्स (तत्ववाद) शब्द थोड़ा भ्रामक बन सकता है । इस पद से मिल का अभिप्राय कुछ उस अभिव्यक्ति से है जिसे साधारणत 'ज्ञान का सिद्धान्त' (थियरी ऑव नालिज) कहा जा सकता है । काम्त तथा अन्य परवर्ती वस्तुस्थिति-वादियों का इस पद से अभिप्राय किसी ऐसे सिद्धान्त से है जो उन तत्वों के बारे में हम समझाना चाहता है जो अनुभूति (एक्सपरियंस) से परे हैं, अनुभवगम्य नहीं हैं ।

न अथवा किसी गुण के बारे में बताते है। सफेद शब्द उन सभी वस्तुओ की ओर संकेत करता है जो सफेद हैं तथा साथ ही उस सामान्य सफेदी की ओर इंगित करता है जो उन सभी वस्तुओ मे समान रूप मे विद्यमान है। इसी भांति मनुष्य नामक शब्द सुकरात और अफलातून आदि के बारे मे बताता है तथा उसके मानवत्व (विवेक) और प्राणिवत्व (पशुत्व) दोनो की ओर इंगित भी करता है। इसके विपरीत सुकरात किसी एक विशिष्ट व्यक्ति की ओर उसके किसी गुण का बताये बिना इंगित करता है। इस तरह व्यक्तिवाचक संज्ञाएं (नाम) सम्बद्ध अर्थ बोधित नही कराती। हा, ऐसे पदो की जैसे 'जेण्टिपी के पति', (हसबण्ड आफ जेण्टिपी) जो किसी अर्थ का बोधन भी करते है—बात और है।

मिल द्वारा किए गए पदावली के विश्लेषण के अनुसार प्रत्येक कथन केवल विभिन्न नामो को आपस मे जोडता है। जैसे 'सभी मनुष्य मरणशील हैं' वाली पदावली मे दो सार्थक नाम हैं—'मनुष्य' तथा 'मरणशील'। इस प्रकार की पदावली का क्या मतलब हो सकता है? मिल के अनुभववादी पूर्व प्रभाव को ध्यान मे रखते हुए हम उससे यह प्रत्याशा रख सकते है कि वह यह उत्तर देगा कि यह वाक्य दो वर्गों को जोडता है यह बतलाता है कि मनुष्य नामक वर्ग मरणशील नामक वर्ग के अन्तर्गत आता है। लेकिन दरअसल मिल इस सिद्धान्त को परित्यक्त करते हैं—उनके अनुसार गुण का विचार श्रेणी के विचार से पहले का है। क्योंकि श्रेणी की परिभाषा वस्तुओ के उन गुणो के आकलन से ही होती है जो सामान्य रूप मे उनमे पाए जाते हैं—इसलिए मिल के अनुसार 'मनुष्य मरणशील है' की प्रमुख ध्वनि इस बात मे है कि मनुष्यत्व का गुण सदैव ही मरणशीलता के गुण से संयुक्त है।

चूंकि प्रत्यय गुण घटना या वस्तु के होने मे निहित होता है किसी तत्ववादी पदावली का अन्तिम महत्व इस बात मे है कि कुछ अनुभवो अथवा घटनाओ के उपकरण नियमित रूप से एक दूसरे से सम्बद्ध होते हैं। इसके दूसरी ओर, किसी पदावली का वैज्ञानिक कार्य, उसके तात्त्विक विश्लेषण से अलग, मिल के मतानुसार, यह कहना है कि किसी परिस्थिति मे किस प्रकार के परिणाम की आशा की जा सकती है। इस विचारधारा के अनुसार सभी मनुष्य मरणशील हैं का मतलब यह है कि मनुष्यत्व की उपस्थिति मरणशीलता के अस्तित्व का संकेत है एक प्रमाण है एक गवाही है। इस पदावली से निकलने वाले उपर्युक्त तीनो अर्थ समान हैं, इसलिये वे इनमे से किसी एक का भी स्वतन्त्रतापूर्वक प्रयोग करने मे कोई हिचक महसूस नही करते और उनका अपनी इच्छानुसार जहा वे सर्वोत्तम ढंग से प्रयुक्त किये जा सकते हैं प्रयोग करते हैं।

अपने स्वगुण निर्देश (कानोटेशन) सिद्धान्त के जरिए, मिल 'आवश्यक सत्यों' तथा 'विशेषक वचनो' की एक संतोषप्रद हवाला देने की आशा रखते है और अनुभववादी

सिद्धान्त से भी अपने को अलग करने की आवश्यकता नहीं देखते। 'प्रत्येक मनुष्य विवेकशील है' जैसे कथन मात्र एक शब्द समूह ही है। जैसे ही हम मनुष्य के बारे में समझने लग जाते हैं हमें यह भी ज्ञान हो जाता है कि मनुष्य विवेकशील है। इसलिए विवेकशीलता पद मनुष्य पद के एक गुण को आंशिक रूप से व्यक्त करता है। 'सभी मनुष्य विवेकशील हैं' तब, एक ऐसी ध्वनि को प्रकटाता है जो हमें शब्द के अर्थ के सम्बन्ध में तो बताता है लेकिन मनुष्य के बारे में कुछ नहीं कहता। मिल इस पदावली को कि 'सभी मनुष्य मरणशील हैं' इस प्रकार उपयुक्त 'विवेकशील' वाली पदावली से अलग करते हैं। क्योंकि मरणशीलता मनुष्य के शब्दार्थ के एक गुण को आंशिक रूप से व्यक्त नहीं करती इसलिये यह पदावली वास्तविक सूचना देती है, किन्तु इसी आधार पर वह एक आवश्यक पदावली नहीं हो जाती। आगे का अनुभव ऐसा भी हो सकता है जो इसे झूठा सिद्ध कर दे। इसलिये केवल शब्दावली द्वारा कथन ही सही अर्थों में आवश्यक कथन होते हैं।

तब फिर गणित के कथनों का क्या होगा? निश्चय ही वे वास्तविक और आवश्यक दोनों होते हैं। मिल अपने अनुयायियों की भांति यह नहीं मानते कि शब्दावली होने के कारण ही गणित के कथन आवश्यक कथन हो जाते हैं। यह बात नहीं है कि यह सम्भावना मिल के मस्तिष्क में नहीं आई थी। डूगाल्ड स्टीवर्ट ने पहले से यह बता दिया था कि गणित परिभाषाओं से उत्पन्न होने वाली विभिन्न विवक्षाओं के प्रतिपादन में निहित है और परिभाषायें, मिल के मतानुसार केवल शब्दावलियां हैं क्योंकि वे किसी अर्थ का बोधन ही कराती हैं। किन्तु मिल स्टीवर्ट का इस स्थल पर अनुसरण नहीं करते। वे उसके विरोध में कहते हैं कि गणित के स्वयंसिद्ध तथ्यों को परिभाषाओं में नहीं उतारा जा सकता। इसलिये उसका केवल एक ही विकल्प जो उसके पास बचा था वह गणित के कथनों को पूर्ण रूप से आवश्यक सत्यों के रूप में जानकर के चलने की बात का विरोध करना था।

सत्य कथनों के रूप में अनुभव से प्राप्त सामान्य बातें होना उनके लिए आवश्यक है जो निश्चय ही आगे होने वाले अनुभवों से सुधारने की गुंजाइश भी रखते हुए हैं।

इस प्रकार गणित की पदावलियों को आवश्यक सत्य मानने से इनकार करने पर मिल को अपने ही समसामयिक विचारक विलियम ह्वेवल[1] के प्रतिवाद का

---

[1] यहीं तो शुरुआत करनी ही होती है इसलिये मैंने अनायास ही यह मान लिया है कि ह्वेवल उस कालावधि के पूर्व के थे जो मेरी अवधि है। यद्यपि बहुत अंशों में उनका विज्ञान-दर्शन [illegible] अपेक्षा अधिक आधुनिक है। उनकी हिस्ट्री आव इंडक्टिव साइंसेज [illegible] जिसमें मिल ने बहुत से विचार लिये हैं। इसकी [illegible] आव [illegible] जो तीसरा

सम्बद्ध मानता है (विना परिमाण की स्थिति, तथा विना चौडाई की सरल रेख ए) आदि । हमारे अनुभवो म कभी प्रस्तुत नही होते मिल का उत्तर यही है कि हम अपने अनुभवो मे भी तो बहुत से अ शो को अनदेखा कर देते है और कुछ का ही अपना ध्यान दे पाते है । एक सरल रेखा की यह परिभाषा करना कि उसकी लम्बाई है, लेकिन चोडाई नही, हमारे इसी मन्तव्य को व्यक्त करता है कि हम ज्यामितिक सुविधा के लिए सरल रेखा की चौडाई को अनदेखा करना चाहते है । इस प्रकार हम एस निष्कर्षों पर पहु चते है जिनका उपयोग हम आवश्यक सुधार करके वास्तविक जीवन मे कर सकते हैं । किसी विशेष सरल रेखा की चौडाई के बारे म विचार करके हम इस सुधार का आरम्भ कर सकते है ।

तब अनुमान का क्या होगा ? इन मामलो म ही मिल का विचार है कि हम वास्तविक और मात्र शाब्दिक रूपा तरण म भेद करना होगा । 'कुछ सम्राट निर कुश होते हैं' को जब हम बदल कर 'कुछ निर कुश सम्राट होते है' कहते हैं तो यह रूपान्तरण स्पष्टत शब्दो का रूपान्तरण ही है । दोनो पदावलिया करीब एक ही बात कहती हैं कि कुछ अ शो म कुछ गुण दोनो ही पदावलियो म साथ विद्यमान है । इसके दूसरी ओर ऐसी सामान्य पदावलिया जिनका अनुमान अनुभव के सहारे होता है, वे मिल के मतानुसार वास्तविक अनुमान को बताने वाली होती हैं ।—इस सदर्भ मे यहा वह प्रक्रिया क्रियमाण देखी जा सकती है जहा पर ज्ञान स पहले की अज्ञात अवस्था तक पहु चा जा सकता है । मिल के अनुसार इसी प्रकार की पदावलिया दरअसल अनुमानित प्रक्रिया को प्रकट करती है । इस तरह यह बात स्वीकृत हो जाती है कि तात्कालिक अनुमान क्रियापद के रूपान्तरण से हो सकता है और इस तरह आगमन वास्तविक अनुमान कहा जा सकता है । हमारे सामने प्रश्न यही रहता है कि आगमन (इण्डक्शन) की भाति क्या हेत्वनुमान या तकपदी को भी तात्कालिक अनुमान माना जा सकता है ?

मिल की हेत्वनुमान के प्रति धारणा को प्राय गलत समझा गया है । उसे लाक की भाति परम्परागत तर्कशास्त्र म निदय आलोचक के रूप म अध्ययन किया

---

1 मिल ने कोम्ते के अथशास्त्रीय सिद्धान्तो का खडन भी कुछ इसी तरह किया है द डेफिनिशन **आव पोलिटिकल इकोनामी** निब ध (1836) म जो **सम अनसेटल्ड क्वेश्च स आव पोलिटिकल इकानामी** (1844) म पुन प्रकाशित हुआ उसने यही कहा है कि अथशास्त्र मानव से उतना ही सम्बन्धित है जितना मानव का धन से सम्ब ध है किन्तु उसे प्रायोगिक रूप देते समय हमे इस सिद्धान्त म सुधार करना पडता है और सम्पत्ति से अतिरिक्त अन्य मानव कृत्यो का भी अध्ययन करना पडता है जो मनोविज्ञान तथा अन्य सामाजिक विज्ञानो के सिद्धान्त के आलोक म समझे जा सकते है और हम उन विज्ञानो से ही उन्हे समझना भी पडता है ।

जाता रहा है।[1] जबकि वास्तव में यह बात नहीं है। दरअसल मिल तो स्वयं इस बात के लिए तत्पर हैं कि वे उन अनुभववादियों के उस दोषारोपण से तर्क पद्धति की रक्षा कर सकें जिसके अनुसार वे उसे मध्ययुगीन बकवास कहते हैं। मिल के पिता उनमें से नहीं थे और मिल का संस्कार भी तर्कपद्धति की शास्त्रीय परम्परा में ही हुआ—इसी बीच रिचर्ड व्हेटली ने अपने ग्रंथ एलीमेंट्स आफ लाजिक (1826) में दो शताब्दियों की उपेक्षा के बाद तर्क पद्धति के इंगलैंड में शास्त्रीय अध्ययन किए जाने पर बल दिया है—अपने इस प्रयास में उन्होंने परम्परागत हेत्वनुमान के लिए काफी समर्थन व्यक्त किया है।

मिल के कथनानुसार यह उस मानसिक प्रक्रिया के विश्लेषण की प्रणाली है जो प्रत्येक सही तर्कपद्धति में अनिवार्य रूप से काम में लाई जाती है। यद्यपि मिल अपने अनुभव-वादी पूर्ववर्तियों की मान्यताओं से इतने अधिक अलग हुए कि उन्होंने हेत्वनुमान को भी उपयोगी माना। फिर भी वे ह्वाटले के विरोध में उनसे इस बात से सहमत थे—कि यह प्रणाली उस प्रकार के वैज्ञानिक अनुमान की श्रेणी में नहीं आती जिसमें तर्क का आकार नियत किया जा सकता है। यह एक सत्य अनुमान न होकर गोलमोल अनुमान ही कहा जायगा। यह बात उन्हें दृढ़ता के साथ कहनी पड़ी और यही कारण है कि बहुधा उन्हें हेत्वनुमान का प्रबल आलोचक ही माना जाता है।

उदाहरण के लिए हम परम्परागत एक हेत्वनुमान (तर्कपदी) को लें। 'सभी मनुष्य मरणशील हैं सुकरात एक मनुष्य है इसलिए सुकरात भी मरणशील है। इस पर मिल का यह कहना है कि इस तर्कपदी में सुकरात की मरणशीलता के प्रति पूर्व संकेत हो जाता है। उसे तर्क द्वारा सिद्ध नहीं किया गया है। अगर यह भी मान लिया जाय कि हमने कहीं भी सुकरात का नाम भी न सुना हो और हम यह कह रहे हों कि सभी मनुष्य मरणशील हैं तो भी हम उसकी मरणशीलता को इसके द्वारा सिद्ध ही करना चाहते हैं—जब हम सभी मनुष्यों के बारे में यह कहते हैं। इस प्रकार यह सिद्ध करना कि सुकरात मरणशील है और वह भी इस पदावली के सहारे कि मनुष्य मरणशील हैं इस बात का संकेत करता है कि हम केवल किसी बात को सिद्ध करने के लिए ही सिद्ध कर रहे हैं।

इसके बाद भी यदि हम तर्कपदी का यह परम्परागत अर्थ स्वीकार कर लें कि वह एक सामान्य नियम से विशेष नियम की ओर जाने वाली तर्क पद्धति है तो हम

---

[1] इसके लिये द्रष्टव्य ए॰ शूज तथा विटन की उपर्युक्त कृतियाँ। आर॰ जैक्सन एन एक्जामिनेशन आव द डिडक्टिव लॉजिक आव जान स्टुअर्ट मिल (1941)। दुर्भाग्यवश उस पारम्परिक गलत निर्वचन को पैकी की जीवनी में भी दोहराया गया है।

उसे मात्र क्रियापदी के रूपान्तरण के रूप में स्वीकारना होगा। पहले से स्वीकृत सत्य के सहारे किसी उसी के एक अंश को उठाकर उसकी सिद्धि मात्र कर देना ही इसे माना जायगा। वास्तव में यहाँ मिल यही कहना चाहते हैं कि तर्कपदी के मूल में भी वास्तविक अनुमान ही काम कर सकता है। यह ऐसा अनुमान है जिसे तर्कपदी अपने आकार के कारण ढक लेना चाहती है। सही हेत्वनुमान उन्हीं साक्ष्यों के सहारे होते हैं जिन पर मानवी अनुभव की सम्पूर्ण स्वीकृतियाँ रखी हैं और जो हमें सुकरात के लिए भी एक निष्कर्ष तक पहुँचा देती है। यह साक्ष्य मिल के अनुसार हम एक विशेष अनुभव अथवा पर्यवेक्षण के द्वारा ही प्राप्त करना चाहिए। स्मिथ मरणशील है, ब्राउन भी मरणशील हैं और इसी प्रकार अपने अनुभव से हम यह निष्कर्ष निकालते हैं कि सुकरात भी अवश्य मृत्यु को प्राप्त होगा–आदि। यह अनुमान इस प्रकार सामान्य से विशिष्ट की ओर न होकर विशिष्ट से विशिष्ट की ओर ही हुआ। लेकिन परम्परागत तर्कपदी में यह लोप है। हाँ, इससे यह बात हमारे देखने में आती है कि सभी मनुष्य भी मरणशील हैं। क्योंकि यदि हमारा मरणशीलता के बारे में अनुमान स्मिथ और ब्राउन से लेकर सुकरात तक सही है तो इसकी वैधता उस हालत में भी अप्रभावित रहेगी जब हम सुकरात के स्थान पर किसी भी क ख ग नामक आदमी को रख देते हैं–इस तथ्य को इस प्रकार प्रकट किया जा सकता है कि अनुमान का एक ऐसा नियम हमने ईजाद किया है जिसके सहारे हम सही तौर पर यह तर्क प्रस्तुत कर सकते हैं कि मनुष्यता की उपस्थिति जहाँ भी है वहाँ मरणशीलता की भी उपस्थिति है। और यही, जैसा कि हम पहले कह चुके हैं हमारे इस चुनाव का वैज्ञानिक आधार है कि **सभी मनुष्य मरणशील हैं।**

इस तरह सभी मनुष्य मरणशील हैं, वाली पदावली एक फार्मूला है जो हमें उस पद्धति का बोध कराती है जिसमें हमने भूतकाल में विचार किया है और भविष्य में भी विशिष्ट अनुभव से विशिष्ट अनुमान तक जाने की बात सोच सकते हैं लेकिन तर्क तो इस फार्मूला के बिना भी आगे बढ़ाया जा सकता है और साधारण जीवन में हम ऐसा करते भी हैं। हम कहते हैं कि **'इस आग से मैं जल गया।'** और **'इसलिए दूसरी आग भी मुझे जला देगी।'** इस बात की चिन्ता किये बिना कि सभी प्रकार की आग जलाने वाली होती है। दूसरी ओर वैज्ञानिक अपने अनुमानों को विशद बनाना पसद करते हैं, इसलिए पहले वे विशेष नियम से सामान्य नियम की ओर अग्रसर होते हैं और तब उस सामान्य नियम से फिर किसी विशेष मामले की ओर। इस प्रकार का तरीका काम में लाकर वे उचित ढंग से अपने अनुभवों का विस्तार करते हैं। अपने नियमों का विशदीकरण करते समय वे अपनी बहुत सी कमजोरियों को भी पकड़ लेते हैं। लेकिन इस प्रणाली का जो अंश अनुमान के रूप में वर्णित किया गया है वह विशिष्ट से सामान्य की ओर जाने वाले सिद्धान्त के समर्थन की ओर सकेत करता है। अथवा यों कहें कि वह विशिष्ट की ओर ही जाने की प्रणाली है तो अधिक सगत होगा। तथा कथित अनुमान जिसमें कि सामान्य से विशेष

की ओर जाने वाला माना गया है, तो केवल एक सूत्र (एक फार्मूला) मात्र है। एक ऐसा मार्ग नहीं है जो कि किसी पहले से अज्ञात वस्तु की ओर संकेत करता है। हेत्वनुमान (तर्कपदी) के नियम इस प्रकार की चेतावनीयाँ हैं जिनके सहारे हमें यह विश्वास दिलाया जाता है कि हमारी व्याख्याएँ हमारे सूत्रों से मेल खाती हुई हैं। वे इस लिए मूल्यवान हैं क्योंकि वह मेल भी मूल्यवान् है। मिल इस सम्बन्ध में लिखते हैं कि जिसे हम परम्परागत तर्कशास्त्र कहते हैं वह इसी प्रकार के मेल का तर्कशास्त्र है।[1]

तर्कपदी का यह विश्लेषण अन्तःसाक्ष्य के विरुद्ध अनुभव की रक्षा के लिए बहुत अनुकूल पड़ता है। मिल के अनुसार अनुभव स्वयं ही विशिष्ट घटनाक्रम का उद्घाटन करता है। हम सीधे रूप में सामान्य अनुभवों को कभी नहीं भोगते। यह बात मिल ने बेंथम और हार्टले से सीखी थी। इस प्रकार यदि सर्वव्यापी पदावलियाँ सामान्य सम्बन्धों को प्रस्तुत करती हैं और यदि ये पदावलियाँ सभी वैज्ञानिक विचारधारा से अलग पड़ती हैं इनमें यह नतीजा निकलता है कि विज्ञान भी पूर्ण रूप में अनुभव पर आधारित नहीं है। यह धारणा अन्तःसाक्ष्यवादियों के लिए अनुभववादियों के विरुद्ध लड़ाई का प्रधान मोर्चा बनी। यदि दूसरी ओर यह माना जाय कि सारी तर्क प्रणाली विशिष्ट से विशिष्ट की ओर ही चलती है और सर्वव्यापी पदावलीयाँ तो केवल काम चलाने के तरीकों के रूप में उपयुक्त हैं और उनमें वैज्ञानिक अनुमान की कोई तात्त्विक सिद्धि नहीं होती तो मिल के अनुसार सारे आलोचकों की जिज्ञासा का शमन केवल अनुभववाद ही कर सकता है।

तर्कपदी में विशिष्ट से विशिष्ट की ओर जाने वाले तर्क के लिए काम में लाये जाने वाले अनुमान की व्याख्या करके मिल ने ऐसा बताया है कि सभी अनुमान अपने आप में आगमनात्मक हैं। (आगमन को साधारण रूप से एक ऐसे अनुमान के रूप में परिभाषित किया गया है जो विशिष्ट से सामान्य नियमों की ओर जाता है, किन्तु यह अनुमान मिल के अनुसार विशिष्ट से विशिष्ट की ओर जाने के अतिरिक्त कुछ नहीं) इस लिए आगमन उनके अनुसार तर्क विज्ञान का आधार नहीं बनाया जा सकता। इसका हल मिल इस प्रकार देते हैं —

परम्परा के रूप में आगमन दो प्रकार का माना गया है। पूर्ण और अपूर्ण। कभी कभी हम यह देखने की कोशिश करते हैं कि क्या एक सीमित दायरे में कोई

---

[1] आकारी तर्कशास्त्र की प्रकृति के वर्णन के लिए उसका सेंट एंड्रूज विश्वविद्यालय में दिया गया उद्घाटन भाषण (1867) विशेषतः द्रष्टव्य है जो एफ० ए० कैवनग की 'जेम्स एण्ड जान मिल आन एजुकेशन' (1931) में पुनः प्रकाशित हुआ।

तत्व सभी द्वारा प्राप्त किया जा सकता है ? उदाहरण के लिए हम एक शब्द लेते हैं —'धर्मोपदेशक' । अब हम इस शब्द पर विचार करते हुए धर्मोपदेशक वर्ग के प्रत्येक सदस्य का परीक्षण करते हैं और तब यह निष्कर्ष पूर्ण रूप से निकाल पाते हैं कि धर्मोपदेश का तत्व इस वर्ग के सभी व्यक्तियों में व्याप्त है । लेकिन कभी कभी हम केवल उस वर्ग के बहुत ही कम लोगों का परीक्षण करते हैं और ऐसे समय में हमारा आगमन अपूर्ण होता है । इस सिद्धान्त के अनुसार सभी प्रकार का आगमन पूर्णता की ओर जाने की महत्वाकांक्षा रखता है । अपने सामान्य सिद्धान्तों के प्रति वफादार होने के कारण मिल पूर्ण आगमन को शाब्दिक रूपान्तरण कह कर त्याग देते हैं । मिल का कहना है कि इन दोनों पदावलियों में जिनमें एक है 'पीटर, पाल तथा जान आदि प्रत्येक धर्मोपदेशक यहूदी थे" और इसी के आधार पर प्रणीत दूसरी पदावली कि "सभी धर्मोपदेशक यहूदी थे"—। दूसरी पदावली मात्र उन तत्वों का संक्षिप्तीकरण है जिन्हें पहली पदावली में व्यक्त किया गया है । वे तो "सभी धर्मोपदेशक यहूदी हैं" को भी सामान्य पदावली मानने को तैयार नहीं हैं । किसी सामान्य पदावली का समूचा अस्तित्व इस बात पर निर्भर करता है कि वहां पर वास्तव में अनुभव किये हुए मामलों का संकेत है या नहीं ।

इस प्रकार यह स्पष्ट लगता है कि अपूर्ण आगमन ही वास्तविक अनुभव प्रकट करने वाले अनुमान माने जा सकते हैं—। मिल के अनुसार इस सारी व्याख्या का मतलब यही है कि अनुभव पर आधारित तर्क-प्रणाली ही वास्तविक अनुमान का आधार हो सकती है । किन्तु अब अचानक उनकी धारणा में एक परिवर्तन दिखाई देता है । कुछ मामलों में अपूर्ण आगमन अथवा अनुभव किये हुए आगमन जैसा कि वे उन्हें कहना अधिक पसन्द करते हैं, ही पूर्ण रूप से तर्क सम्मत हैं । गणित के सत्य अत्यन्त महत्वपूर्ण नियम बना उन सबको मिल एक साथ प्राकृतिक एकरूपता के भी इसी प्रकार प्राप्त किये जा सकते हैं—और वे सारे सिद्धान्त भी जिनके आधार पर सिद्धान्त के रूप में वर्णित करते हैं । ये मामले विचित्र हैं बिल्कुल विशिष्ट हैं क्योंकि हमारे सारे अनुभव बहुलता से बिखरे हुए हैं । हम कदाचित ही उनमें कोई अपवाद ढूंढने में असमर्थ रहे हों । इसलिए वे अन्तिम रूप से आवश्यक सत्य नहीं हैं । यह मानना केवल हमारी हठवडाहट को ही व्यक्त करता है कि कार्य-कारण का सिद्धान्त तारक क्षेत्रों के दूरतम भागों में भी लागू होता है । इसका मतलब अधिक से अधिक यही हो सकता है कि ये सिद्धान्त केवल शाब्दिक नहीं हैं—वे हमें उन सारी आवश्यकताओं की पूर्ति करते दिखाई देते हैं जिन्हें हम अनुभवों से प्राप्त करना चाहते हैं ।

जब हम यह सिद्ध करने की कोशिश करते हैं कि कोई एक विशेष घटना अ किसी दूसरी विशेष घटना ब को जन्म देती है जैसा कि सभी भौतिक विज्ञानों में दिखाया जाता है—तो परिस्थिति पूर्णतया भिन्न होती है क्योंकि इस बारे में पहले

से सचेत होते हैं कि कोई घटना विभिन्न तथा विविध अवसरों पर अपनी पूर्ववर्ती और अनुवर्ती घटनाएँ रख सकती है और किन्हीं अन्य अवसरों पर उनके बिना भी गतिमान रह सकती है। जब हम किसी कारण को नियत एवं निरुपाधिक पूर्ववृत्त के रूप में परिभाषित करते हैं तो हम उन अवस्थाओं को उपेक्षित नहीं कर सकते जो इस बीच में घटित हो जाती हैं।

एडिनबरा रिव्यू (1820) के अंक में जेम्स मिल द्वारा लिखे हुए “ऐसे ऑन गवर्नमेंट’ पर मैकाले ने एक खंडनात्मक टिप्पणी की है जिसमें उन्होंने अनुभवों से प्राप्त की जाने वाली शिक्षा-पद्धति पर लिखते हुए मिल के उस प्रयास का विरोध किया है जिसके आधार पर उन्होंने राजनीतिक गतिविधि की एक निगमनात्मक वैज्ञानिक प्रणाली निर्मित की थी। मिल अपने पिता के विरोध में भी मैकॉले से इस बात से सहमत हो गए थे कि राजनीतिक विज्ञान के सिद्धान्त उसी प्रकार की स्वयं-सिद्ध प्रणाली पर नहीं बनाए जा सकते जिस प्रकार ज्यामिति के सिद्धान्त बनाए जाते हैं। इसके साथ ही मैकॉले द्वारा अनुभव के पक्ष में दी गई दलील विज्ञान-दृष्टि की प्रबल आलोचना है तथा बेतरतीब सामान्य ज्ञान के मुकाबले कहीं अधिक अर्थहीन है। इस प्रकार मिल को दो मोर्चों पर संघर्ष करना पड़ा। एक ओर ह्वैवेल के विरुद्ध उसे अनुभववाद की सुरक्षा करनी पड़ी तथा मैकॉले के विरुद्ध उसकी सीमाओं की ओर निर्देश करना पड़ा। इस प्रकार, मिल के कथनानुसार, अनुभववाद कटु आलोचना का शिकार हुआ है। वे इस संबंध में जिन वाक्यांशों का प्रयोग करते हैं, वे हैं 'दोषयुक्त सामान्यीकरण अथवा अनुभववाद। प्रत्यक्ष आगमन अनुभववाद से किसी प्रकार श्रेष्ठ नहीं। वह स्वयं अपने को अनुभववादी कहने के बजाय प्रयोगवादी कहना अधिक पसंद करते थे और अनुभववाद का भार मैकॉले पर छोड़ते थे। लेकिन यदि हम अनुभव के आधार पर सामान्यीकरण नहीं करेंगे तो आगे कैसे बढ़ेंगे? हमारे पास अनुभव को एक नियमित क्रम से देखने के अतिरिक्त ऐसा सामान्य नियम बनाने का और क्या आधार हो सकता है? हम एक विशिष्ट अ अवस्था से दूसरी विशिष्ट ब अवस्था तक आगे बढ़े हैं—या कि अ के प्रकटन से उसके अनुवर्ती 'ब के होने के संकेत प्राप्त हुए हैं आदि आदि। इन सब बातों का जवाब मिल ने अपनी पुस्तक ऑगस्ट कॉम्ते एण्ड पोजिटिविज्म (1865) में दिया है। वहाँ एक स्थान पर वे लिखते हैं कि एक आगमनात्मक रूप से अनुभव की गई सामान्य पदावली उसी समय सत्य सिद्ध होती है जब कार्य कारण के मुकाबले में सामान्यीकरण करते समय की गई असंगतियाँ गलत सिद्ध हो जायें और प्रस्तुत किये गये उदाहरण सही सिद्ध हो जाएँ। इसी के आधार पर इस तथ्य की सर्वव्यापकता भी सिद्ध हो जाए कि प्राकृतिक घटनाएँ अपरिवर्तनीय नियमों से परिचालित होती हैं। अब हम यह देखते हैं कि मिल अनुभववाद को त्यागते हुए किस दिशा में बढ़ने की कोशिश करते हैं?

जब हम मिल द्वारा दी गई तकपन्ी के परम्परागत विश्लेपण की आलोचना पढते है, हम र मन म हर वक्त जो बात रहती है वह यह कि पूछनाछ करने की तार्किक प्रणाली सदव ही समति योजन वाली शास्त्रीय तक-प्रणाली से श्रेष्ठ है। लेकिन अब यह सार निकलता है कि आगमनात्मक प्रणाली भी सगत तक शास्त्रीय प्रणाली का ही एक अ ग है । अ ब का कारण है यह तथ्य ही कायकारण सिद्धा त क लिए एव असगति पदा कर दगा यदि उपयु क्त से ही यह सिद्ध कर दिया जावे कि अ, ब का कारण नही है ।

एक ही प्रकार स सचालित कायकारण क सिद्धा त क पक्ष म बालत हुए मिल न स्वय ऐसा सकेत दिया है कि उसी प्रकार कायकारण क सिद्धा त तथा विशिष्ट काय-कारण-मूलक स्वीकृतिया एक सी ही है जिस प्रकार सभी मनुष्य मरणशील है तथा लाड पाममटन मरणशील है य दाना पदावलिया हैं। लेकिन स्पष्टत जसा इस पदावली से ध्वनित होता है वसी बात वास्तव म ह नही । यदि यह पदावली कि प्रत्यक घटना का एक कारण होता है प्रत्यक मनुष्य मरणशील हैं के समान ही है तो इस घटना का कोई कारण है तथा लाड पामसटन मरणशील है समानार्थी पदावलिया मानी जानी चाहिए—न कि यह कि इस घटना का कारण ब है'। लकिन दरअसल इस दूसर प्रकार की पदावली के आधार पर ही मिल यह बताना चाहते थ कि उसकी स्थिति काय-कारण-सिद्धा त के लिए भी बेमेल होगी ।

यहा पर एक खाचा है—और वह खाचा है इन दो पदावलियो के बाच कि एक घटना घटित हुई है तथा इसका अमक अमुक कारण है । अगर मिल यह स्थिति नही दख पाए ता वह उनकी इस धारणा क कारण ही है जिसके आधार पर वे एसा मानत हैं कि इन दोनो पदावलियो के बीच के खाचे का उन्हाने अपन प्रयागात्मक विधि से पूरित कर लिया है जिसके अ तगत, सहमति भेद, अवशेष (रेमीडयूज) तथा सहपरिव त त (कानकामिटनट वेरियेशन)[1] की विधिया प्रयुक्त हुई हैं। इन सभी विधियो का सामा य रूप सर्वोत्कृष्ट रूप म भद विधि (मेथड आव डिफरेंस) स उदधत

---

[1] य पद्धतिया सर जान हशल की **डिस्कोस आन द स्टडी आव नेचुरल फिलासफी (1830)** पर आधारित हैं। वे अच्छी हैं पर बहु आलोचित हैं। रख ब्रिटन एशूज तथा हैवल का **'आन मिल्स लाजिक (आन द फिलासफी आव डिस्कवरी)**, डब्लू० एस जेवन्स **मिल्स फिलासफी टेस्टड (प्योर लाजिक) (1830)**। टी० एच० ग्रीन **द लाजिक आव जे० एस० मिल, (वक्स भाग 2, 1886)** एफ० एच० ब्रेडले **द प्रिंसिपल्स आव लाजिक (1883)** कुक विल्सन **स्टेटमेंट एंड इन्फरेंस (1926)** एम० कोहेन तथा ई० नेजल **इ ट्रोडक्शन टू लाजिक एंड साइ टिफिक मेथड (1934)**

किया जा सकता है। मानलो कि हम लोहे में जंग लगने के कारण की खोज करना चाहते हैं। तब हम को कोई न कोई ऐसी स्थिति की खोज करनी पड़ेगी जिसमें लोहे में जंग लग जाता है और उसमें निहित विभिन्न अवस्थाओं का भी विश्लेषण करना होगा। हम यह भी खोज कर सकते हैं कि नमी, आक्सीजन, हाइड्रोजन तथा नाइट्रोजन सभी विद्यमान हैं—इनमें से हाइड्रोजन और नाइट्रोजन हटा देने से हम देखते हैं कि जंग लगना प्रारम्भ हो गया है और नमी तथा आक्सीजन को हटा देने से जंग लगना बन्द हो जाता है।

इस प्रकार जब जंग लगने की यह क्रिया कार्यकारण-सिद्धान्त के अनुसार निश्चय ही कोई अपरिवर्तनीय पूर्ववर्ती स्थिति लिए हुए है तो हम यही निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि यह आक्सीजन और नमी के कारण ही है जिसके होने से जंग भी लग जाता है और न होने से नहीं लगता।

इसे संक्षेप में यों प्रस्तुत किया जा सकता है। सभी घटनाओं का एक कारण होता है और चूँकि प्रस्तुत घटना में यह स्थिति आक्सीजन और नमी के कारण प्रकट हुई है इसलिए जंग का कारण नमी और आक्सीजन ही है। हम यहां यह मानना चाहिए कि यहां वास्तविक अनुमान विशिष्ट से विशिष्ट की ही प्रक्रिया को व्यक्त करने में ही प्रकट हुआ है। तब हम पूछ सकते हैं इस अनुमान की वैधता किस बात में है? हमें इसका यही जवाब मिल सकता है कि प्रस्तुत स्थिति का औचित्य इसी में है कि उसे एक साधारण अनुभव द्वारा प्राप्त किया गया है। मिल का इस सम्बन्ध में मात्र यह कहना है कि आगमनात्मक तर्क प्रणाली का कार्य उन नियमों तथा प्रकारों को प्रस्तुत करना है (जैसा कि तर्कपदी और इसके तार्किक अनुगणन (रेशियासिनेशन) के लिए बनाए गए नियमों में प्रस्तुत हुआ है) जिन्हें आगमनात्मक तर्क पुष्ट करते हैं तो वे तर्क निर्णयात्मक होते हैं, गलत नहीं। जो एक मात्र नियम वास्तव में हमारे ध्यान में आ गए हैं वे तर्कपदी के समान-धर्मी नहीं हैं किन्तु अनुभव से सिद्ध होने के कारण उन्हीं नियमों पर विवश होकर विश्वास करना पड़ता है। इस प्रकार मिल के कुछ अनुगामियों ने यह निष्कर्ष निकाला कि या तो आगमन का कोई तार्किक आधार नहीं है अथवा फिर मिल की यह धारणा गलत है। गणनात्मक अनुभव के आधार पर प्राप्त की गई निश्चयात्मकता विशुद्ध रूप में मनोवैज्ञानिक है और उसे भी अनुभव-साहचर्य के नियमों पर आधारित माना गया है। इस प्रकार आगमन की समस्या अपूर्ण आगमन का शास्त्रीय औचित्य इन की ही समस्या रह जाती है—और चाहें तो इसे सम्भावना के सिद्धान्त की सहायता से भी सिद्ध किया जा सकता है। कदाचित् इस पर मिल ने प्रयत्न नहीं किया था।

मिल के लिए दूसरी महत्वपूर्ण बात, जिसके कारण उन्हें बहुत सी मुश्किलों का सामना करना पड़ा, अनुभववाद के स्थान पर प्रयोगवाद को प्रमुखता देना था।

जब हम मिल द्वारा दी गई तकपदी के परम्परागत विश्लपरा का आलोचना पढते हैं, हम.र मन म हर वक्त जो बात रहती है वह यह कि पूछताछ करने की ताकिक प्रणाली सन्व ही सगनि गाजने वाली शास्त्रीय तक-प्रणाली से श्रेष्ठ ह। लेकिन अब यह सार निकलता है कि आगमनात्मक प्रणाली भी सगत तक शास्त्रीय प्रणाली का ही एक अग है। अ ब का कारण है यह तथ्य ही कायकारण सिद्वात के लिए एक असगति पदा कर देगा यदि उपयुक्न से ही यह सिद्ध कर दिया जाव कि अ, ब का कारण नही है।

एक ही प्रकार से सचालित कायकारण के सिद्वात क पक्ष मे बोलत हुए मिल न स्वय ऐसा सकेत दिया है कि उसी प्रकार कायकारण के सिद्वात तथा विशिष्ट काय-कारण-मूलक स्वीकृतिया एक सी हा है जिस प्रकार सभी मनुष्य मरणशील हैं तथा लाड पाममटन मरणशील है ये दानो पदावलिया हैं। लकिन स्पष्टत जसा इस पदावली से ध्वनित होता है वसी बात वास्तव म है नहा। यदि यह पदावली कि 'प्रत्यक घटना का एक कारण होता है प्रत्येक मनुष्य मरणशील हैं के समान ही है ता 'इम घटना का कोई कारण हैं' तथा लाड पामसटन मरणशील है समानार्थी पदावलिया मानी जानी चाहिए—न कि यह कि इस घटना का कारण ब है'। लकिन दरअसल इस दूसरे प्रकार की पदावली क आधार पर ही मिल यह बनाना चाहते थ कि उसकी स्थिति काय-कारण-सिद्वात क लिए भी बमेल होगी।

यहा पर एक खाचा है—और यह खाचा है इन दा पदावलियो क बाच कि एक घटना घटित हुई है तथा इसका अमुक अमुक कारण है। अगर मिल यह स्थिति नही देख पाए ता वह उनकी इस धारणा के कारण ही है जिसके आधार पर वे ऐसा मानते हैं कि इन दानो पदावलियो के बीच के खाच का उन्हान अपन प्रयोगात्मक विधि स पूरित कर दिया ह जिसके अन्तगत सहमति भेद अवशेष (रसीडयूज) तथा सहपरिवतत (कोनकोमिटेनट वरियेशन)[1] की विधिया प्रयुक्त हुई हैं। इन सभी विधियों का सामान्य रूप सर्वोत्कृष्ट रूप म भेद विधि (मथड ऑव डिफरेन्स) स उत्पन्न

---

[1] ये पद्धतिया सर जान हशल की डिस्कोस आन द स्टडी आव नेचुरल फिलासफी (1830)' पर आधारित है। वे अच्छी हैं पर बहु आलाचित है। दखें मिल्स एशूज तथा हैवल का आन मिल्स लाजिक (आन द फिलासफी आव डिस्कवरी), डब्लू० एम जेवन्स मिल्स फिलासफी टस्टेड (प्योर लाजक) (1830)। टी० एच० ग्रीन द लाजिक आव जे० एस० मिल, (वक्स भाग 2, 1886) एफ० एच० ब्रेडले द प्रिसिपल्स आव लॉजिक (1883) कुक विल्सन स्टेटमेंट एड इन्फरेंस (1926) एम० कोहेन तथा ई० नेजल इट्रोडक्शन टू लाजिक एड साइटिफिक मेथड (1934)

किया जा सकता है। मानलो कि हम लोहे में जंग लगने के कारण की खोज करना चाहते हैं। तब हम को कोई न कोई ऐसी स्थिति की खोज करनी पड़ेगी जिसमें लोहे में जंग लग जाता है और उसमें निहित विभिन्न अवस्थाओं का भी विश्लेषण करना होगा। हम यह भी खोज कर सकते हैं कि नमी, आक्सीजन, हाइड्रोजन तथा नाइट्रोजन सभी विद्यमान हैं—इनमें से हाइड्रोजन और नाइट्रोजन हटा देने से हम देखते हैं कि जंग लगना प्रारम्भ हो गया है और नमी तथा आक्सीजन को हटा देने में जंग लगना बन्द हो जाता है।

इस प्रकार जब जंग लगने की यह क्रिया कार्यकारण सिद्धांत के अनुसार निश्चय ही कोई अपरिवर्तनीय पूर्ववर्ती स्थिति लिए हुए है तो हम यही निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि यह आक्सीजन और नमी के कारण ही है जिसके होने से जंग भी लग जाता है और न होने से नहीं लगता।

इसे संक्षेप में यों प्रस्तुत किया जा सकता है। सभी घटनाओं का एक कारण होता है और चूँकि प्रस्तुत घटना में यह स्थिति आक्सीजन और नमी के कारण प्रकट हुई है इसलिए जंग का कारण नमी और आक्सीजन ही है। हमें यहाँ यह मानना चाहिए कि यहाँ वास्तविक अनुमान विशिष्ट से विशिष्ट की ही प्रक्रिया को व्यक्त करने में ही प्रकट हुआ है। तब हम पूछ सकते हैं इस अनुमान की वैधता किस बात में है? हमें इसका यही जवाब मिल सकता है कि प्रस्तुत स्थिति का औचित्य इसी में है कि उसे एक साधारण अनुभव द्वारा प्राप्त किया गया है। मिल का इस सम्बन्ध में आगे यह कहना है कि आगमनात्मक तर्क प्रणाली का कार्य उन नियमों तथा प्रकारों को प्रस्तुत करना है (जैसा कि तर्कपदी और इसके तार्किक अनुगणन (रेशियोसिनेशन) के लिए बनाए गए नियमों में प्रस्तुत हुआ है) जिन्हें आगमनात्मक तर्क पुष्ट करते हैं तो वे तर्क निर्णयात्मक होते हैं, गलत नहीं। जो एक मात्र नियम वास्तव में हमारे ध्यान में आ गए हैं वे तर्कपदी के समान-धर्मी नहीं हैं किन्तु अनुभव में सिद्ध होने के कारण उन्हीं नियमों पर विवश होकर विश्वास करना पड़ता है। इस प्रकार मिल के कुछ अनुगामियों ने यह निष्कर्ष निकाला कि या तो आगमन का कोई तार्किक आधार नहीं है अथवा फिर मिल की यह धारणा गलत है। गणनात्मक अनुभव के आधार पर प्राप्त की गई निश्चयात्मकता विशुद्ध रूप में मनोवैज्ञानिक है और उसे भी अनुभव-साहचर्य के नियमों पर आधारित माना गया है। इस प्रकार आगमन की समस्या अपूर्ण आगमन का शास्त्रीय औचित्य देने की ही समस्या रह जाती है—और चाहे तो इसे सम्भावना के सिद्धांत की सहायता से भी सिद्ध किया जा सकता है। कदाचित इस पर मिल ने प्रयत्न नहीं किया था।

मिल के लिए दूसरी महत्वपूर्ण बात, जिसके कारण उन्हें बहुत सी मुश्किलों का सामना करना पड़ा, अनुभववाद के स्थान पर प्रयोगवाद को प्रमुखता देना था।

उनके आगमनात्मक प्रमाणीकरण के लिए यह आवश्यक है कि हम किसी परिस्थिति को बहुत सी विभिन्न अवस्थाओ म विश्लेपित कर सकते है। इस प्रकार जग लगन वाले हमारे उदाहरण म हमको यह मानना पडा कि हाइड्रोजन, नाइट्रोजन आक्सीजन और नमी क अतिरिक्त कोई अन्य उपकरण वहा उपस्थित नही ह—तब दूसर प्रकार के आकारगत तक द्वारा हम यह सिद्ध करते हैं–चूकि जग लगन की अवस्थाओ क पूववर्ती के रूप म आक्सीजन हाइड्रोजन, नाइट्रोजन तथा नमी है इसलिए इनम से कोई न कोई जग का कारण है ही। विश्लेषण से भी हमने यह पाया था कि *आक्सीजन और नमी इसके कारण है। स्पष्टत यह तक* एक गम्भीर समस्या खडी कर देता है। हमारे पास इस बात का क्या प्रमाण है कि हमारे द्वारा माने गए तत्वो क अतिरिक्त उनक पूववर्ती कारणो म वे अन्य तत्व *क्रियमाण या विद्यमान नही रह* जिन्ह हमने अनदखा कर दिया है।

मिल की विचारप्रणाली इस बात पर आधारित ह कि प्रत्यक स्थिति हमार सामन बहुत स उपकरणो को लेकर प्रस्तुत होती है। उनम स कारण का पता लगाना हमारा काम है। यह परम्परागत अनुभववादियो से महत्वपूण अलगाव की स्थिति है। मिल का कहना है कि अनुभव हमारे सामने उपकरणो का विशुद्ध रूप म ही प्रस्तुत करता है जिनके सहारे सामान्य तत्व की खोज करनी ही पडती है। इस तरह आगमन एक विशेष से दूसरे विशेष की ओर जाना न होकर सम्मुख प्रस्तुत *हुए विभिन्न उपकरणो मे स एक तरीका चुनने म निहित ह। इस विधि क आधार* पर अ ब, स आदि म स यह चुनना पडता है कि कौन प्रस्तुत स्थिति का वास्तविक कारण है? और इस तरह जो तक प्रणाली इसके लिए काम म लाई जाती है वह शास्त्रीय तक प्रणाली ही है।

यदि आगमन के लिए किसी विशेष तकविधि को काम म लाया जाना तो वह सम्भवत उन नियमो की शृखला का ही रूप ले सकता था जिनके आधार पर यह कहना सम्भव होता कि किन सामान्य अवस्थाओ स कौनसी विशेष अवस्थाए हमारे चुनाव म सहायक हो सकती है। लेकिन इस प्रकार की तक प्रणाली निर्मित करने का *मिल न प्रयास ही नही किया। व्हैवेल के मतानुसार इन प्रणालियो की* दुबलता यही है कि इनमे हम उन्ही चीजो को पहल मे मानकर चलन लगत हैं जिन्ह खोज पाना अत्यन्त मुश्किल है। हम अ ब अथवा स जसी स्थितिया जीवन म कहा मिलती है? प्रकृति स्थितियो को हमारे सम्मुख इस तरह कभी नही रखती। तब हम उन्ह इस प्रकार म रखने के कसे हकदार हैं? यहा आकर भी मिल के अनुगामियो का उनस मतभेद रहा। इन अनुगामियो न एक एसी तकप्रणाली का प्रवतन करने का प्रयास किया था जिसमें धीरे धीरे एक एक असबद्ध स्थितियो की छटनी हो जाए तो व्हैवल *की आलोचना की पात्र भी न बन*।

मिल ने स्वयं भी अपनी उन बहुत सी कमजोरियों का पता लगा लिया था जिन्हें आलोचकों ने बताया है। उन्होंने यह बात स्वीकार की कि तर्क प्रणाली का विकास करते समय मैंने कुछ महत्वपूर्ण तत्वों की उपेक्षा नहीं की है। इस बारे में दृढ़तापूर्वक कह सकना असंभव है। उन्होंने बहुकारणवाद (प्लूरलिटी आव काजेज) का सिद्धांत प्रवर्तित करके तो स्थिति को और भी जटिल बना दिया था। एक 'कारण' को अविभाज्य रूप में कार्य की पूर्ववर्ती अवस्था बताने के बावजूद भी वे यह कहते हैं कि वही कार्य अन्य दूसरे कारणों से दूसरी परिस्थितियों में भी उत्पन्न हो सकता है। उनकी यह धारणा उनकी सारी तर्क प्रणाली को मटियामेट कर देती है। इसका यही अर्थ हुआ कि यदि कार्य के लिए बहुत से दूसरे कारण भी हो सकते हैं तो जो एक कारण हमने बताया है वह उसका मूल कारण नहीं। लेकिन मिल के अनुसार ये कठिनाइयाँ तो आती ही हैं। इनके बारे में जानकारी होना इस बात का द्योतक है कि वैज्ञानिक अनुसंधान कोई सरल कार्य नहीं है।

कहने का तात्पर्य यही है कि ऊपर दी गयी चार विधियाँ एक ओर हमें अनुभवों के और परीक्षणों के आधार पर किसी निष्कर्ष की ओर ले जाने में भी उपयोगी लगती हैं। इस संबंध में प्रकट रूप से उपस्थित हो जाने वाली कठिनाइयों के कारण ही भौतिक वैज्ञानिक तथा उससे भी कहीं अधिक समाज-विज्ञान-शास्त्री अपने लिए सहायक विधियों का प्रयोग करते हैं।

मिल के अनुसार भौतिक-विज्ञान-विद इन चार विधियों की सहायता से कुछ ऐसे नियमों की स्थापना करता है जिनमें से प्रत्येक सामान्य अनुभवों को व्यक्त करने वाले होते हैं। यह वह सीमा-रेखा है जहाँ तक प्रयोग विधि के जरिए मिल अपनी सामर्थ्य भर आगे बढ़ सके हों। किसी ऐसे नियम के आधार पर जो स्वयं ऐसे ही चुन लिया गया हो, कोई भौतिक-विज्ञान विद् किसी विशेष वस्तु के व्यवहार के बारे में शायद ही कोई अनुमान कर सकता हो। इसलिए इन नियमों को आबद्ध करना होगा। किसी गिरती हुई वस्तु के मार्ग की भविष्यवाणी करते समय वह गुरुत्वाकर्षण और विकर्षण के नियमों का सहारा लेता है। यह वह इसलिए भी कर पाता है क्योंकि गणित में इनके नियमों का अवकन सम्मिलित रूप में किया जाना भी असम्भव है। दूसरी बात यह है कि एक भौतिक-विज्ञान-विद अपने अंकित अनुमानों को गिरती हुई वस्तु के वास्तविक व्यवहार द्वारा भी जान सकता है। यदि वस्तु के व्यवहार में तथा उसकी भविष्यवाणियों में भेद है तो मिल के अनुसार, यह किसी अवस्था को अनदेखा किए जाने के कारण ही है। इसलिए वे इन गलतियों के होने की संभावना में भी एक नियम की खोज करते हैं। परीक्षण के दौरान हो सकने वाली भूलों के संबंध में बनाए जाने वाली विधि, जो नियमों को निष्कर्ष तक पहुँचाने में सहायक होती है और जिन्हें प्रत्यक्ष अनुभव से सुधारा जा सकता है प्रकृति के नियमों की खोज में किए जाने वाले परीक्षणों में मनुष्य की एक बहुत बड़ी विजय का प्रतीक

उनके आगमनात्मक प्रमाणीकरण के लिए यह आवश्यक है कि हम किसी परिस्थिति को बहुत सी विभिन्न अवस्थाओं में विश्लेषित कर सकते हैं। इस प्रकार जंग लगने वाले हमारे उदाहरण में हमको यह मानना पड़ा कि हाइड्रोजन, नाइट्रोजन, आक्सीजन और नमी के अतिरिक्त कोई अन्य उपकरण वहां उपस्थित नहीं है—तब दूसरे प्रकार के आकारगत तर्क द्वारा हम यह सिद्ध करते हैं—*चूंकि जंग लगने की अवस्थाओं के पूर्ववर्ती के रूप में आक्सीजन हाइड्रोजन नाइट्रोजन तथा नमी है इसलिए इनमें से कोई न कोई जंग का कारण है ही।* विश्लेषण से भी हमने यह पाया था कि आक्सीजन और नमी इसके कारण हैं। स्पष्टतः यह तर्क एक गम्भीर समस्या खड़ी कर देता है। हमारे पास इस बात का क्या प्रमाण है कि हमारे द्वारा माने गए तत्वों के अतिरिक्त उनके पूर्ववर्ती कारणों में वे अन्य तत्व क्रियमाण या विद्यमान नहीं रहे जिन्हें हमने अनदेखा कर दिया है।

मिल की विचारप्रणाली इस बात पर आधारित है कि प्रत्येक स्थिति हमारे सामने बहुत से उपकरणों को लेकर प्रस्तुत होती है। उनमें से कारण का पता लगाना हमारा काम है। यह परम्परागत अनुभववादियों से महत्वपूर्ण अलगाव की स्थिति है। मिल का कहना है कि अनुभव हमारे सामने उपकरणों का विशुद्ध रूप में ही प्रस्तुत करता है जिनके सहारे सामान्य तत्व की खोज करनी ही पड़ती है। इस तरह आगमन एक विशेष से दूसरे विशेष की ओर जाना न होकर सम्मुख प्रस्तुत हुए विभिन्न उपकरणों में से एक तरीका चुनने में निहित है। इस विधि के आधार पर *अ, ब, स आदि में से यह चुनना पड़ता है कि कौन प्रस्तुत स्थिति का वास्तविक कारण है? और इस तरह जो तर्क प्रणाली इसके लिए काम में लाई जाती है वह* शास्त्रीय तर्क प्रणाली ही है।

यदि आगमन के लिए किसी विशेष तर्कविधि को काम में लाया जाता तो वह सम्भवतः उन नियमों की शृंखला का ही रूप ले सकता था जिनके आधार पर यह कहना सम्भव होता कि किन सामान्य अवस्थाओं से कौनसी विशेष अवस्थाएं हमारे चुनाव में सहायक हो सकती हैं। लेकिन इस प्रकार की तर्क प्रणाली निर्मित करने का मिल ने प्रयास ही नहीं किया। व्हैवल के मतानुसार इन प्रणालियों की दुर्बलता यही है कि इनमें हम उन्हीं चीजों को पहले से मानकर चलने लगते हैं जिन्हें खोज पाना अत्यन्त मुश्किल है। हम अ ब अथवा स जैसी स्थितियां जीवन में कहां मिलती हैं? प्रकृति स्थितियों को हमारे सम्मुख इस तरह क्रमशः नहीं रखती। तब हम उन्हें इस प्रकार में रखने के कैसे हकदार हैं? यहां आकर भी मिल के अनुगामियों का उनसे मतभेद रहा। इन अनुगामियों ने एक ऐसी तर्कप्रणाली का प्रवर्तन करने का प्रयास किया था जिसमें धीरे धीरे एक एक असंबद्ध स्थितियों की छटनी हो जाए तो व्हैवल की आलोचना की पात्र भी न बने।

मिल ने स्वयं भी अपनी उन बहुत सी कमजोरियों का पता लगा लिया था जिन्हें आलोचकों ने बताया है। उन्होंने यह बात स्वीकार की कि तर्क प्रणाली का विकास करते समय मैंने कुछ महत्वपूर्ण तत्वों की उपेक्षा नहीं की है। इस बारे में दृढ़तापूर्वक कह सकना असंभव है। उन्होंने बहुकारणवाद (प्लूरलिटी ऑव काजेज) का सिद्धान्त प्रवर्तित करके तो स्थिति को और भी जटिल बना दिया था। एक कारण' का अविभाज्य रूप से कार्य की पूर्ववर्ती अवस्था बताने के बावजूद भी वे यह कहते हैं कि वही कार्य अन्य दूसरे कारणों से दूसरी परिस्थितियों में भी उत्पन्न हो सकता है। उनकी यह धारणा उनकी सारी तर्क प्रणाली को मटियामेट कर देती है। इसका यही अर्थ हुआ कि यदि कार्य के लिए बहुत से दूसरे कारण भी हो सकते हैं तो जो एक कारण हमने बताया है वह उसका मूल कारण नहीं। लेकिन मिल के अनुसार ये कठिनाइयाँ तो आती ही हैं। इनके बारे में जानकारी होना इस बात का द्योतक है कि वैज्ञानिक अनुसंधान कोई सरल कार्य नहीं है।

कहने का तात्पर्य यही है कि ऊपर दी गयी चार विधियाँ एक ओर हमें अनुभवों के और परीक्षणों के आधार पर किसी निष्कर्ष की ओर ले जाने में भी उपयोगी लगती हैं। इस संबंध में प्रकट रूप से उपस्थित हो जाने वाली कठिनाइयों के कारण ही भौतिक वैज्ञानिक तथा उससे भी कहीं अधिक समाज-विज्ञान-शास्त्री अपने लिए सहायक विधियों का प्रयोग करते हैं।

मिल के अनुसार भौतिक-विज्ञान-विद, इन चार विधियों की सहायता से कुछ ऐसे नियमों की स्थापना करता है जिनमें से प्रत्येक सामान्य अनुभवों को व्यक्त करने वाले होते हैं। यह वह सीमा-रेखा है जहाँ तक प्रयोग विधि के जरिए मिल अपनी सामर्थ्य भर आगे बढ़ सकने हों। किसी ऐसे नियम के आधार पर जो स्वयं एक ही चुन लिया गया हो कोई भौतिक-विज्ञान विद किसी विशेष वस्तु के व्यवहार के बारे में शायद कोई अनुमान कर सकता हो। इसलिए इन नियमों को आबद्ध करना होता। किसी गिरती हुई वस्तु के मार्ग की भविष्यवाणी करते समय वह गुरुत्वाकर्षण और विक्षेपण के नियमों का सहारा लेता है। यह वह इसलिए भी कर पाता है क्योंकि गणित में इनके नियमों का आकलन सम्मिलित रूप में किया जाना भी सम्भव है। दूसरी बात यह है कि एक भौतिक-विज्ञान-विद अपने अग्रिम अनुमानों का [illegible] हुई वस्तु के वास्तविक व्यवहार द्वारा भी जान सकता है। यदि वस्तु के व्यवहार [illegible] तथा उसकी भविष्यवाणियों में भेद है तो मिल के अनुसार [illegible] अनदेखा किए जाने के कारण ही है। इसलिए वे [illegible] में भी एक नियम की खोज करते हैं। परीक्षण के दौरान हो [illegible] संबंध में बनाए जाने वाली विधि या नियमों का निष्कर्ष [illegible] होती है और जिन्हें प्रत्यक्ष अनुभव से सुधारा जा [illegible] खोज में किए जाने वाले परीक्षणों में अनुभव के [illegible]

है और जिसके लिए मनुष्य का मन हमेशा हमेशा के लिए कृतज्ञ रहेगा । स्पष्टत वे यहाँ पर एक ऐसी स्थिति की अधिक यथार्थ स्थापना की ओर बढ रहे हैं जिसमे वैज्ञानिक स्वय अपने आपको प्रवृत्त पाता है । यहाँ पर हमको अब इस बात की अधिक आवश्यकता नही रहती कि वह एक पूर्ण रूप से विश्लेषित स्थिति पर ही कार्य करे । अब महत्व भविष्यवाणियो तथा परिश्रमो पर दिया जा रहा है । किसी मामले मे इस तरह से दृष्टिपात करना मिल के अनुगामियो ने यहाँ आकर उनसे सीखा ।

अपने द्वारा किये गये सामाजिक विज्ञानो की प्रणाली के वर्णन मे मिल अपने मौलिक वैज्ञानिक सिद्धान्तो से भी आगे बढ जाते है । यहाँ आकर सामाजिक-विज्ञान-वेत्ता एक निगमनात्मक विधि का प्रयोग करने लग जाते है ।

यह सामाजिक वैज्ञानिको के लिए बिल्कुल यथार्थ स्थिति है कि वे ज्यामिति विधि की नकल करें (जैसा कि जेम्स के पिता ने अपनी रचनाओ मे किया है) क्योकि समाज मे जो चीज घटित होती है वह मात्र विशेष समय मे निश्चित ऐतिहासिक स्थिति से प्रभावित होती है । भौतिकशास्त्र का तरीका भी अनुकरणीय तथा सन्तोषजनक नही है क्योकि वहा पर सामाजिक प्रवृत्तियो के मिले जुले प्रभाव का अन्दाज लगाने का कोई तरीका सुझाया नही गया । मेकाले की भाँति हमे समाज का सीधा अध्ययन करना होगा और तब सामान्यीकरण के सिद्धान्त बनाने होगे जो कि इतिहास के साक्ष्य पर और विकास पर आधारित होगे । इस स्थिति पर भी हम स्थायी नही रह सकते । राजनीतिक विषयो पर सही प्रणालियाँ हैं जो कि बेकन के आगमन के सिद्धान्त पर आधारित हैं ।[1] यह मानना बेहूदा विचार है और एक दिन इसे किसी युग के विचार-प्रणाली के दिवालियेपन के रूप मे प्रस्तुत किया जायगा । समाजशास्त्री को मकॉले के प्रतिकूल यह दर्शाना चाहिए कि ऐतिहासिक सामान्यीकरण सही रूप मे हमारे मनोवैज्ञानिक ज्ञान पर आधारित है । कोम्टे इसी बात को जीव विज्ञान के सहारे सिद्ध करते । इस प्रकार मनुष्य की प्रवृत्ति मे सामाजिक नियमो का प्रयोगात्मक विधि के सहारे निगमन करके समाजशास्त्री पहले ऐतिहासिक दृष्टि से सामान्यीकरण करते है और तब यह दर्शाते है कि ये नियम प्रयोगात्मक विधि से भी निगमित किए जा सकते थे । मिल द्वारा विज्ञान-विधि का विस्तृत विश्लेषण उनके निगमन के सिद्धान्त से अधिक सूक्ष्म और जटिल है ।

---

[1] एस० वी० रासमुसन सर विलियम हैमिल्टन (1925) डब्लू० ए० एस० मार्क सर विलि० हैमि० (1881) जान वीच 'हैमिल्टन' (1882) लेसली स्टीवन का हैमि० पर लेख (डी० ने० बा०) वीच ने हैमिल्टन का मिल के आक्षेप से बचाया है । मिल के एग्जामिनेशन के कुछ पहलुओ को ई० नेजला ने सकलित किया है सपा० ए० आयर व आर० विच० (1951) । द्रष्टव्य सेथ स्कॉटिस फिलासफी (1885) हैमिल्टन का एक लेख जो डिस्कशस आन फिलासफी एड लिटरेचर (1852) मे सकलित है उसकी फिलासफी आव द अनकडीशड पर प्रकाश डालता है ।

मस्तिष्क में कुछ अपेक्षाएँ विद्यमान रहती हैं अर्थात हमारा मन सम्भावित संवेदनाओं की कल्पना कर सकता है, उन संवेदनाओं की जो वर्तमान अनुभव को प्रकट नहीं कर रही है अपितु विभिन्न परिस्थितियों में विभिन्न अवसरों पर उत्पन्न हो सकती हैं। उदाहरण के लिये, जब हम अपने आप मे कहते हैं, यदि आग बुझ जायगी तो मैं ठण्डा हो जाऊँगा'। उनकी दूसरी मान्यता है कि मन साहचर्य से कार्यशील है। यदि दो संवेदनाएँ एक साथ अनुभव हुई हैं तो उनके बारे में ऐसा विचार किया जाता है कि वे नियमित क्रम से एकदूसरी के समानान्तर चल रही थी। और यदि उनका यह साहचर्य निरन्तर हो और उसे हम तत्काल अलग नहीं कर सकें तो ऐसा मान लिया जाता है।

चूँकि हम अपेक्षाएँ रखते हैं इसलिये हम उनके आधार पर ऐसे जगत् की रचना कर सकते हैं जो हमारी वर्तमान अनुभूतियों से पूरी तौर पर जुड़ा हुआ भी न हो। मानलो कि हम कमरे से बाहर आते हैं। बाहर की सभी अवस्थाओं की कल्पना का ध्यान हम वैसे ही रहता है चाहे हम अभी उन्हें नहीं देख रहे हैं। क्योंकि हम कुछ ऐसी संवेदनाएँ प्राप्त करने की अपेक्षा कमरे मे लौट आने पर रहती हैं। कमरे का निरन्तर अस्तित्व इस तथ्य पर निर्भर करता है कि एक विशेष प्रकार की संवेदनाओं को निरन्तर प्राप्त करने की स्थिति हमारे सामने उस रूप मे विद्यमान रहती है। मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया के परिणामस्वरूप अपनी सम्भव संवेदनाओं के प्रति हमारी अपेक्षाएँ जिनको मिल ने विस्तार से वर्णित किया है तत्व या वस्तु के प्रति हमारे मन में एक धारणा उत्पन्न करने में सहायक होती है और इन्हें मिल बाह्य जगत में अस्तित्वमान मानते है। मिल कहते है कि पदार्थ निश्चय ही संवेदनाओं की निरन्तर सम्भावना का नाम है और बाह्य जगत की स्थिति नियमानुसार परिचलित एक संवेदना का निरन्तर अनुसरण करती हुई दूसरी संवेदनाओं के होने के कारण ही है। मिल द्वारा प्रतिपादित यह सिद्धान्त स्कोटीय विचार–प्रणाली के चेतना से सीधी मुक्ति के सिद्धान्त से काफी अलग है, और यह सिद्ध करता है कि बाह्य जगत के बारे में हमारी धारणा मन में विचार–समुच्चय–प्रक्रिया से निर्मित होती है।

क्या हमारे मन के निरन्तर अस्तित्व के प्रति विश्वास का इसके समकक्ष कोई और उदाहरण कहीं मिल सकता है? मिल के मतानुसार कदाचित् नहीं, क्योंकि मन न केवल संवेदनाओं को समेटता है अपितु स्मृतियों और अपेक्षाओं की भी स्थिति को स्वीकारता है और ये स्थितियाँ ही अपने आप इस विश्वास को सिद्ध करती हैं कि मुझे कभी कोई अनुभव हुआ था, या आगे होने वाला है। इस प्रकार यदि हम कहें कि मन भावनाओं की शृंखला है तो हमें इसकी पूर्ति यह मानकर भी करनी पड़ेगी कि मन भूत और भविष्य के प्रति सजग अनुभूतियों की शृंखला भी है और इस तरह हम यह मानने के लिए विवश हो जाते हैं कि मन या अहम् की स्थिति किसी भी प्रकार की भावना, शृंखला से अथवा उनकी भविष्य

मस्तिष्क में कुछ अपेक्षाएँ विद्यमान रहती हैं अर्थात् हमारा मन सम्भावित संवेदनाओं की कल्पना कर सकता है, उन संवेदनाओं की जो वर्तमान अनुभव को प्रकट नहीं कर रही हैं अपितु विभिन्न परिस्थितियों में विभिन्न अवसरों पर उत्पन्न हो सकती हैं। उदाहरण के लिये, जब हम अपने मन में कहते हैं, 'यदि आग बुझ जायगी तो मैं ठण्डा हो जाऊँगा'। उनकी दूसरी मान्यता है कि मन साहचर्य में कार्यशील है। यदि दो संवेदनाएँ एक साथ अनुभव हुई हैं तो उनके बारे में ऐसा विचार किया जाता है कि वे नियमित क्रम से एकदूसरी के समानान्तर चल रही थीं। और यदि उनका यह साहचर्य निरन्तर हो और उसे हम तत्काल अलग नहीं कर सकें तो ऐसा मान लिया जाता है।

चूँकि हम अपेक्षाएँ रखते हैं, इसलिये हम उनके आधार पर ऐसे जगत् की रचना कर सकते हैं जो हमारी वर्तमान अनुभूतियों से पूरी तौर पर जुड़ा हुआ भी न हो। मान लो कि हम कमरे से बाहर आते हैं। बाहर की सभी अवस्थाओं की कल्पना या ध्यान हमें वैसे ही रहता है चाहे हम अभी उन्हें नहीं देख रहे हैं। क्योंकि हम कुछ ऐसी संवेदनाएँ प्राप्त करने की अपेक्षा कमरे में लौट आने पर रहती हैं। कमरे का निरन्तर अस्तित्व इस तथ्य पर निर्भर करता है कि एक विशेष प्रकार की संवेदनाओं को निरन्तर प्राप्त करने की स्थिति हमारे सामने उस रूप में विद्यमान रहती है। मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया के परिणामस्वरूप अपनी सम्भव संवेदनाओं के प्रति हमारी अपेक्षाएँ, जिनको मिल ने विस्तार से वर्णित किया है, तत्व या वस्तु के प्रति हमारे मन में एक धारणा उत्पन्न करने में सहायक होती हैं और इन्हें मिल बाह्य जगत में अस्तित्वमान मानते हैं। मिल कहते हैं कि पदार्थ निश्चय ही संवेदनाओं की निरन्तर सम्भावना का नाम है और बाह्य जगत की स्थिति नियमानुसार परिचलित एक संवेदना का निरन्तर अनुसरण करती हुई दूसरी संवेदनाओं के होने के कारण ही है। मिल द्वारा प्रतिपादित यह सिद्धान्त स्काटीय विचार-प्रणाली के चेतना से सीधी मुक्ति के सिद्धान्त से काफी अलग है, और यह सिद्ध करता है कि बाह्य जगत के बारे में हमारी धारणा मन में विचार-साहचर्य-प्रक्रिया से निर्मित होती है।

क्या हमारे मन के निरन्तर अस्तित्व के प्रति विश्वास का इसके समकक्ष कोई और उदाहरण कहीं मिल सकता है? मिल के मतानुसार कदाचित् नहीं, क्योंकि मन न केवल संवेदनाओं को समेटता है अपितु स्मृतियों और अपेक्षाओं की भी स्थिति को स्वीकारता है और ये स्थितियाँ ही अपने आप इस विश्वास को सिद्ध करती हैं कि मुझे कभी कोई अनुभव हुआ था, या आगे होने वाला है। इस प्रकार यदि हम कहें कि मन भावनाओं की शृंखला है तो हम इसकी पूर्ति यह मानकर भी करनी पड़ेगी कि मन भूत और भविष्य के प्रति सजग अनुभूतियों की शृंखला भी है और इस तरह हम यह मानने के लिए विवश हो जाते हैं कि मन या अहम् की स्थिति किसी भी प्रकार की भावना, शृंखला से अथवा उनकी भविष्य

की संभावनाओं से अलग नहीं है। इससे विरोधाभास के रूप में यह बात भी हमें स्वीकार करनी पड़ जाती है कि अनुभूति की शृंखला में बाह्य कारण (एक्स हाइपाथसी) रहे हैं। उनके प्रति भी मन स्वतः सजग हो सकता है। यहाँ आकर मिल के कुछ अनुवर्तियों ने ऐसा माना है कि उनके घटनावाद के सिद्धांत का भंजन हो गया है और कुछ के अनुसार यहाँ घटनावाद को चुनौती-पूर्वक अधिक संतापप्रद ढंग से पुनः स्थापित करने का प्रयास किया गया है।

हैमिल्टन स्वाभाविक विश्वास के सिद्धान्त का न केवल प्रणेता ही था वह ज्ञान की सापेक्षिकता के तथा निर्बन्धता के दर्शन (फिलोसाफी आव अनकण्डीशण्ड) का भी प्रवर्तक था। मोटे तौर पर मिल को यह दर्शन में कठिनाई नहीं हुई कि हैमिल्टन ने जिस प्रकार विभिन्न तरीकों में गुटक रनर भाषासंकेतों का प्रयोग किया—उसके अनुसार यह मानकर काम चल जाता है कि यद्यपि हम मन और पदार्थ की स्वतन्त्र रूप से विद्यमान सत्ता के प्रति सीधे सचेत होते हैं फिर भी न तो मन की न पदार्थ की स्वायत्त स्थितियों से हमारा परिचय हो ही सकता है। हम वस्तुओं को उसी रूप में जानते हैं जिस रूप में उनका हमारे अनुभव से संबंध होता है उस रूप में नहीं जिसमें वे निर्बाध रूप से हमारी इन्द्रिय-चेतना के बाहर विद्यमान रहती हैं। हैमिल्टन के सब प्रसिद्ध अनुवर्ती हेनरी मैंसल ने इस सिद्धांत का उस सीमा तक तो पालन किया जहाँ तक उसका हमारे आत्म ज्ञान से सम्बन्ध न होकर ईश्वर के ज्ञान से संबंध हो। इसका उन्होंने अपनी 1885 में प्रकाशित पुस्तक **'द लिमिटस आफ रिलीजस थाट'** में उल्लेख किया है। ईश्वर अपने आप में क्या है यह जानना असंभव है। इसलिए उसके वर्णन के लिए उपयोग में लाए जाने वाले शब्द प्रतीकात्मक ही हो सकते हैं। शब्दशः उसका वर्णन करना संभव नहीं। शब्दशः उसका वर्णन करने का मतलब विरोधाभास का आह्वान करना है।[1]

इस तरह यदि हम कहते हैं कि ईश्वर अच्छा है तो वह अच्छाई मानवी अच्छाई से न केवल आंशिक रूप से अपितु वस्तुतः भिन्न होनी चाहिए। मैंसल ने लिखा है कि हमारे भौतिक कष्ट नैतिक बुराइयाँ भले आदमी का यातना में पड़ना दुष्टों का समृद्ध होना, ये ऐसे तथ्य हैं जिन्हें निस्संदेह सुधारा जा सकता है और हो सकता है

---

[1] मैंसल की इस विचारधारा ने काफी हलचल मचा दी थी। किन्तु ये विचार ह्यूम द्वारा लिखित पुस्तक **"डायलोग्स आव नेचुरल रिलीजन"** के पात्र **'डेमिया'** से काफी मेल खाते हुए लगते हैं। फर्क इतना ही है कि इन्हें हैमिल्टन की तत्त्ववादी भाषा के जरिए पुनः स्थापित करने का प्रयास किया गया है और उनमें हैमिल्टन के द्वारा सुझाए कुछ सुधार भी विद्यमान हैं। स्काटीय विचार पद्धति के कोई भी अनुयायी हैमिल्टन के अनास्थावादी विचारों को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हुए। द्रष्टव्य एच० काल्डरवुड की पुस्तक **फिलोसोफी आफ द इनफिनिट** (1854)

इसने ईश्वर की असीम अच्छाई का हाथ हो, किन्तु निश्चय के साथ यह मान लेना सही नही है। इसका एकमात्र और संतोषप्रद रूप 'सीमित मानवीय अच्छाई' के विचार से मिल सकता है।

स्वाभाविक आध्यात्मवाद पर आक्रमण ने मिल के नतिक क्रोध को काफी भडकाया। उन्होंने लिखा कि मैं किसी भी एसे व्यक्ति को अच्छा नही मानूंगा जिसकी अच्छाई का सम्बन्ध मेरे जैसे मनुष्यों से न हो और यदि ऐसा करने के कारण मुझे यह तथाकथित अच्छा व्यक्ति नरक की सजा देता है तो मैं वहां जाने के लिए भी तयार हूं। मिल का अध्यात्मवाद विशद रूप से उनकी मृत्यु के बाद प्रकाशित हुई पुस्तक **थ्री एसेज आन रिलीजन** (1879)[1] म मिलता है। उनके पिता ने ईसाई धर्म को न केवल एक भ्रम ही कहा था किन्तु एक महान नतिक बुराई भी बताया था। वास्तव म उसे नतिकता का सबसे बडा शत्रु भी माना था। मिल ने इसी बात को जरा संजीदगी से यों कहा अनुभव ने मनुष्य की उस प्रबल आशा को झुठला दिया है जिसे कभी मनुष्य जाति के पुर्ननिर्माण का तत्व माना जाता था और जो नाकरात्मक धार्मिक सिद्धान्तो पर आधारित थी। यह बात, जसे जसे अन्ध-विश्वास दूर हुए, वसे वसे साफ होती गई। लेकिन मिल भी स्रष्टा के उस परम्परागत रूप को स्वीकार नही कर सके जिसमे उसे सवशक्तिमान और मंगलकारी माना गया है। अधिक से अधिक हम यह मान सकते हैं, और वह भी पूर्व निश्चय के साथ नही, कि यह जगत किसी विवेकशील मस्तिष्क द्वारा सर्जित किया गया है जिसकी पूर्व शक्ति सृष्टि के उपकरणों पर नही थी और न उसका जीव मात्र के प्रति प्रेम ही पूर्ण था। फिर भी वह मानव मात्र का भला चाहता था। यह सब प्राकृतिक व्यापारों के पीछे एक रचनात्मक मन (डिजाइन) होने की बात को सिद्ध करता है। मनुष्य म, अपनी शक्ति भर, प्राकृतिक व्यापारों की अनुकृति से कुछ उसी प्रकार की रचना करने की क्षमता है।

इसीलिए, सृष्टि की रचना यदि सवशक्तिमान नही तो अधिक शक्तिशाली मन द्वारा हुई, ऐसा माना गया। मिल ने कहा कि यदि मेन्सल की इस बात को सही मान लिया जाय कि ईश्वरीय मस्तिष्क मानवीय मस्तिष्क से सवथा भिन्न है तो ईश्वर के अस्तित्व के सारे विचार ध्वस्त हो जाएंगे।

---

1 तुलनात्मक दृष्टि के लिए द्रष्टव्य, डब्लू० जी० वाड की **एसेज आन द फिलोसोफी आफ थीइज्म** (1884) वाड ने, जो आक्सफोर्ड आन्दोलन के प्रमुख सदस्य थे, और जिनको 1845 म क्योलिक बना लिया गया, मिल के घटनावाद को अन्त साक्ष्य सिद्धान्तो की संज्ञा देकर काफी चोटें पहुंचाई। यह मिल का एक तरह से पुनर्जन्म माना गया है।

की सम्भावनाओं से अलग नहीं है। इसमें विरोधाभास के रूप में यह बात भी हमें स्वीकार करनी पड़ जाती है कि अनुभूति की शृंखला में बाह्य कारण (एक्स हाइपोथसी) रहे हैं। उनके प्रति भी मन स्वतः सजग हो सकता है। यहाँ आकर मिल के कुछ अनुवर्तियों ने ऐसा माना है कि उनके घटनावाद के सिद्धान्त का भंजन हो गया है और कुछ के अनुसार यहाँ घटनावाद को चुनौती-पूर्वक अधिक संतोषप्रद ढंग से पुनः स्थापित करने का प्रयास किया गया है।

हैमिल्टन स्वाभाविक विश्वासों के सिद्धान्त का न केवल प्रणेता ही था वह ज्ञान की सापेक्षिकता के तथा निबन्धता के दर्शन (फिलोसाफी आव अनकण्डीशण्ड) का भी प्रवर्तक था। मोटे तौर पर मिल को यह दर्शाने में कठिनाई नहीं हुई कि हैमिल्टन ने जिस प्रकार विभिन्न तरीकों से गुटरनक भाषासंकेतों का प्रयोग किया—उसके अनुसार यह मानकर काम चल जाता है कि यद्यपि हम मन और पदार्थ की स्वतन्त्र रूप से विद्यमान सत्ता के प्रति सीधे सचेत होते हैं फिर भी न तो मन की न पदार्थ की स्वायत्त स्थितियों से हमारा परिचय हो ही सकता है। हम वस्तुओं को उसी रूप में जानते हैं जिस रूप में उनका हमारे अनुभव से संबंध होता है उस रूप में नहीं जिसमें वे निर्बाध रूप से हमारी इन्द्रिय-चेतना के बाहर विद्यमान रहती हैं। हैमिल्टन के सबसे प्रसिद्ध अनुवर्ती हेनरी मेन्सल ने इस सिद्धान्त का उस सीमा तक पालन किया जहाँ तक उसका हमारे आत्म ज्ञान से सम्बन्ध न होकर ईश्वर के ज्ञान से संबंध हो। इसका उन्होंने अपनी 1885 में प्रकाशित पुस्तक 'द लिमिट्स आफ रिलीजस थाट' में उल्लेख किया है। ईश्वर अपने आप में क्या है यह जानना असंभव है। इसलिए उसके वर्णन के लिये उपयोग में लाए जाने वाले शब्द प्रतीकात्मक ही हो सकते हैं। शब्दशः उसका वर्णन करना संभव नहीं। शब्दशः उसका वर्णन करने का मतलब विरोधाभास का आह्वान करना है।[1]

इस तरह यदि हम कहते हैं कि ईश्वर अच्छा है तो वह अच्छाई मानवी अच्छाई से न केवल आंशिक रूप से अपितु वस्तुतः भिन्न होनी चाहिए। मेन्सल ने लिखा है कि हमारे भौतिक कष्ट नैतिक बुराइयाँ भले आदमी का यातना में पड़ना दुष्टों का समृद्ध होना, ये ऐसे तथ्य हैं जिन्हें निस्सन्देह सुधारा जा सकता है और हो सकता है

---

[1] मेन्सल की इस विचारधारा ने काफी हलचल मचा दी थी। किन्तु ये विचार ह्यूम द्वारा लिखित पुस्तक 'डायलोग्स आव नेचुरल रिलीजन' के पात्र 'डेमिया' से काफी मेल खाते हुए लगते हैं। फर्क इतना ही है कि इन्हें हैमिल्टन की तत्त्ववादी भाषा के जरिए पुनः स्थापित करने का प्रयास किया गया है और उनमें हैमिल्टन के द्वारा सुझाए कुछ सुधार भी विद्यमान हैं। स्काटीय विचार पद्धति के कोई भी अनुयायी हैमिल्टन के अनास्थावादी विचारों को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हुए। द्रष्टव्य एच० कैल्डरवुड की पुस्तक फिलोसोफी आफ द इनफिनिट (1854)

इसमें ईश्वर की असीम अच्छाई का हाथ हो किन्तु निश्चय के साथ यह मान लेना सही नहीं है। इसका एकमात्र और संतोषप्रद रूप 'सीमित मानवीय अच्छाई' के विचार से मिल सकता है।

स्वाभाविक आध्यात्मवाद पर आक्रमण ने मिल के नैतिक भाव को काफी भड़काया। उन्होंने लिखा कि मैं किसी भी ऐसे व्यक्ति को अच्छा नहीं मानूँगा जिसकी अच्छाई का सम्बन्ध मेरे जैसे मनुष्यों से न हो और यदि ऐसा करने के कारण मुझे यह तथाकथित अच्छा व्यक्ति नरक की सजा देता है तो मैं वहाँ जाने के लिए भी तैयार हूँ। मिल का अध्यात्मवाद विशद रूप से उनकी मृत्यु के बाद प्रकाशित हुई पुस्तक 'थ्री एसेज आन रिलीजन' (1879)[1] में मिलता है। उनके पिता ने ईसाई धर्म को न केवल एक भ्रम ही कहा था किन्तु एक महान् नैतिक बुराई भी बताया था। वास्तव में उसे नैतिकता का सबसे बड़ा शत्रु भी माना था। मिल ने इसी बात को जरा संजीदगी से यों कहा: अनुभव ने मनुष्य की उस प्रबल आशा को झुठला दिया है जिसे कभी मनुष्य जाति के पुनर्निर्माण का तत्व माना जाता था और जो नाकरात्मक धार्मिक सिद्धान्तों पर आधारित थी। यह बात, जैसे जैसे अन्धविश्वास दूर हुए, वैसे वैसे साफ होती गई। लेकिन मिल भी स्रष्टा के उस परम्परागत रूप को स्वीकार नहीं कर सके जिसमें उसे सर्वशक्तिमान और मंगलकारी माना गया है। अधिक से अधिक हम यह मान सकते हैं, और वह भी पूर्ण निश्चय के साथ नहीं, कि यह जगत *किसी विवेकशील मस्तिष्क द्वारा सर्जित किया गया है* जिसकी पूर्ण शक्ति सृष्टि के उपकरणों पर नहीं थी और न उसका जीव मात्र के प्रति प्रेम ही पूर्ण था। फिर भी वह मानव मात्र का भला चाहता था। यह तर्क प्राकृतिक व्यापारों के पीछे एक रचनात्मक मन (डिजाइन) होने की बात को सिद्ध करता है। मनुष्य में, अपनी शक्ति भर, प्राकृतिक व्यापारों की अनुकृति में कुछ उसी प्रकार की रचना करने की क्षमता है।

इसीलिए, सृष्टि की रचना यदि सर्वशक्तिमान नहीं तो अधिक शक्तिशाली मन द्वारा हुई, ऐसा माना गया। मिल ने कहा कि यदि मेन्सल की इस बात को सही मान लिया जाय कि ईश्वरीय मस्तिष्क मानवीय मस्तिष्क से सर्वथा भिन्न है तो ईश्वर के अस्तित्व के सारे विचार ध्वस्त हो जाएँगे।

---

[1] तुलनात्मक दृष्टि के लिए द्रष्टव्य, डब्लू० जी० वार्ड की एसेज आन द फिलोसोफी आफ थीइज्म (1884) वार्ड ने, जो आक्सफोर्ड आन्दोलन के प्रमुख सदस्य थे, और जिनको 1845 में कैथोलिक बना लिया गया, मिल के घटनावाद को अन्त साक्ष्य सिद्धान्तों की सत्ता देकर काफी चोटें पहुँचाई। यह मिल का एक तरह से पुनर्जन्म माना गया है।

शेष बातों के लिए हम अमरत्व की बात सोच ले सकते हैं क्योंकि इनके विरुद्ध कोई ठोस तर्क नहीं है। धार्मिक मामलों में विवेक का सहारा लेना न तो आस्थाशील होना ही है और न नास्तिक। सन्देहवादी होने के अलावा यह कुछ नहीं है। फिर भी आशाओं के सहारे जीना अविवेकपूर्ण नहीं है। मिल के अनुसार हमारा मूल कर्तव्य बुराई के विरुद्ध तथा अच्छाई के लिए लड़ना है। इस विश्वास के साथ कि इस संघर्ष में हम उस अदृष्ट शक्ति से सहयोग कर रहे हैं जिसमें हम जिन्दगी का सम्पूर्ण आनन्द भोग रहे हैं। मनुष्यता का धर्म कर्तव्यपरायणता का धर्म, केवल अतिप्राकृत आशाओं के सहारे उस सीमा और स्थिति तक भी नहीं टिका रह सकता जहाँ तक विवेकशील सन्देहवादिता ने भी उसे स्वीकृति दी है।[1] यह भी कहा जा सकता है कि इस परिष्कृत विचारप्रणाली ने आध्यात्मवादियों अथवा परम्परागत पदार्थवादियों में कोई नवीन प्रेरणा जाग्रत की हो।

---

[1] तुलना और विभेद के लिए द्रष्टव्य एफ० डब्लू० मायर द्वारा लिखित "ऐसेज क्लेसिकल एण्ड माडर्न (1883)। इसमें जार्ज इलियट के साथ हुई बातचीत का वृत्तान्त है। तीन शब्द मनुष्य के लिए प्रेरणा देने वाले कहे गये हैं ईश्वर, अमरत्व तथा कर्तव्य। इनकी व्याख्या करते हुए उन्होंने माना है कि इनमें से प्रथम शब्द 'ईश्वर' कितना विचारेतर है। अमरत्व अविश्वसनीय तथा कर्त्तव्य बनावटी और पूर्ण है। इस विशुद्ध रूप से कोम्ते के वस्तु स्थितिवाद के समकक्ष माना जा सकता है जिसका प्रवर्तन जार्ज इलियट के प्रेमी जार्ज हेनरी लीविस ने 1850 की दशाब्दी में किया था और जिस के समर्थक फ्रेडरिक हैरीसन और हैरियट मार्टिन थे– जिसके फलस्वरूप बाद में (1887 ई० में) लन्दन पोजिटिविस्ट सोसाइटी का प्रादुर्भाव हुआ।

अध्याय 2

भौतिकवाद, प्रकृतिवाद एव अनीश्वरवाद

अब उन्नीसवी शती का भौतिकवाद नामक मुहावरा काफी परिचित सा हो गया है। बहुधा इसका प्रयोग भी विशुद्ध रूप से उन्नीसवी शती में ही प्रकट किसी वाद का संकेत देने के लिए होता है—किन्तु एक ओर इसने औद्योगीकरण के भीषण परिणामों को दार्शनिक अभिव्यक्ति दी है, वहाँ दूसरी ओर नए रईसो की अर्थसचयी वृत्ति तथा 'मिस्टर म उम्राइ'ड' जर्मनी की दयनीय व कठिन परिस्थिति की ओर भी संकेत किया है। वास्तव में उन्नीसवी शती का यह भौतिकवाद इतना होते हुए भी काफी मात्रा में अठारहवी शती के ही भौतिकवाद का पुनरावर्तन है और इसका मूल खोजने के लिए भी हम यूनानी दर्शन क्षेत्र में बहुत दूर नही जाना पडेगा। वैसे देखा जाय तो भौतिकवाद दर्शन शास्त्र के समान ही प्राचीन है। उन्नीसवी शती के इसके प्रवर्तको ने इसे मात्र समसामयिक वैज्ञानिक भाषा का जामा पहनाकर इसकी पुनःस्थापना की है। यही कारण है कि भौतिकवादी दार्शनिको का प्रारम्भ एक विशिष्ट तिथि से भी माना जाता है लेकिन सैद्धान्तिक रूप से मौलिक कहने के लिए इनके पास कुछ नही था। बहुत से तो इनमे दार्शनिक भी नही थे। खींच-तान कर इन्हें यदि कुछ मानें तो इनको वैज्ञानिको की श्रेणी में रखा जा सकता है। और वह भी प्राय भौतिक शास्त्री तथा जीवविज्ञान-शास्त्रियो की श्रेणी में। इनका भौतिकवाद स्वय इन्ही के कथानुसार प्रकृति विज्ञान के सिद्धान्तो से प्रकट हुआ है—दार्शनिक चिंतन से उसका कोई सरोकार नही है।

अठारहवी शती की पाँचवी दशाब्दी के जर्मन भौतिकवादियो के लिए उपर्युक्त बात वस्तुत लागू होती है। एल० बूकनर[1] की सन 1855 ई में प्रकाशित पुस्तक 'फोर्स एण्ड मैटर' ने शीघ्र ही भौतिकवादियो की बाइबल के नाम से ख्याति प्राप्त करना प्रारम्भ कर दिया था। यह बात सदैव स्मरणीय रहे कि जर्मनी ने जहाँ पर राज्य संचालित विश्वविद्यालय है और दर्शन एक राजकीय स्तर प्राप्त करता रहा है वहाँ, हीगेल के प्रभाव के जरिए प्रकृतिविज्ञान के विरुद्ध आध्यात्मिक जीवन की वकालत और आमूल परिवर्तनवादियो के विरुद्ध राज्य की सुरक्षा भी की जाती रही है। स्वभावत जर्मनी में दर्शन के इस राजकीय स्तर ने ही इसका अपयश किया है।

---

[1] द्रष्टव्य, एफ लैंग हिस्ट्री आफ मैटीरियलिज्म (1866), जे०टी० मर्ज हिस्ट्री आफ यूरोपियन थोट इन द नाइण्टीन्थ सेन्चुरी (1896), आर० बी० पेरी प्रेजेन्ट फिलोसोफीकल टेंडेन्सीज (1912), पी० ए० आर० जनेट द मटीरियलिज्म आव दी प्रेजेन्ट डे (अंग्रेजी अनुवाद—जी मैसन, 1865)

शेष बातों के लिए हम अमरत्व की बात सोच ले सकते हैं क्योंकि इनके विरुद्ध कोई ठोस तर्क नहीं है। धार्मिक मामलों में विवेक का सहारा लेना न तो आस्थाशील होना ही है और न नास्तिक। सन्देहवादी होने के अलावा यह कुछ नहीं है। फिर भी आशाओं के सहारे जीना अविवेकपूर्ण नहीं है। मिल के अनुसार हमारा मूल कर्तव्य बुराई के विरुद्ध तथा अच्छाई के लिए लड़ना है। इस विश्वास के साथ कि इस संघर्ष में हम उस अदृष्ट शक्ति में सहयोग कर रहे हैं जिसमें हम जिन्दगी का सम्पूर्ण आनन्द भोग रहे हैं। मनुष्यता का धर्म, कर्तव्यपरायणता का धर्म, केवल अतिप्राकृत आशाओं के सहारे उस सीमा और स्थिति तक भी नहीं टिका रह सकता जहाँ तक विवेकशील सदेहवादिता ने भी उसे स्वीकृति दी है।[1] यह भी कहा जा सकता है कि इस परिष्कृत विचारप्रणाली ने आध्यात्मवादियों अथवा परम्परागत पदार्थवादियों में कोई नवीन प्रेरणा जाग्रत की हो।

---

[1] तुलना और विभेद के लिए द्रष्टव्य एफ० डब्लू० मायर द्वारा लिखित "ऐसेज क्लेसिकल एण्ड मॉडर्न (1883)। इसमें जार्ज इलियट के साथ हुई बातचीत का वृत्तान्त है। तीन शब्द मनुष्य के लिए प्रेरणा देने वाले कहे गये हैं ईश्वर, अमरत्व तथा कर्तव्य। इनकी व्याख्या करते हुए उन्होंने माना है कि इनमें से प्रथम शब्द 'ईश्वर' कितना विचारेतर है। अमरत्व अविश्वसनीय तथा कर्त्तव्य बनावटी और पूर्ण है। इसे विशुद्ध रूप से कॉम्ट के वस्तु स्थितिवाद के समकक्ष माना जा सकता है जिसका प्रवर्तन जार्ज इलियट के प्रेमी जार्ज हेनरी लीविस ने 1850 की दशाब्दी में किया था और जिस के समर्थक फ्रेडरिक हैरीसन और हैरियट मार्टिन थे— जिसके फलस्वरूप बाद में (1887 ई० में) लन्दन पोजिटिविस्ट सोसाइटी का प्रादुर्भाव हुआ।

अध्याय 2

भौतिकवाद, प्रकृतिवाद एव अनीश्वरवाद

अब उन्नीसवी शती का भौतिकवाद नामक मुहावरा काफी परिचित सा हो गया है। बहुधा इसका प्रयोग भी विशुद्ध रूप से उन्नसवी शती म ही प्रकट किसी वाद का सकेत देन के लिए होता है—कि तु एक ओर इसने औद्योगीकरण के भीषण परिणामो को दाशनिक अभिव्यक्ति दी ह वहाँ दूसरी ओर नए रईसो की अथसचयी वृत्ति तथा 'मिस्टर अ डग्राइ ड' जसो की दयनीय व कठिन परिस्थिति की ओर भी सकेत किया है। वास्तव मे उन्नीसवी शती का यह भौतिकवाद इतना होते हुए भी काफी मात्रा म अठारहवी शती के ही भौतिकवाद का पुनराकलन है और इसका मूल खोजने के लिए भी हमे यूनानी दशन क्षेत्र म बहुत दूर नही जाना पडेगा। वसा देखा जाय तो भौतिकवाद दशन शास्त्र के समान ही प्राचीन है। उन्नीसवी शती के इसके प्रवतको ने इसे मात्र समसामयिक वज्ञानिक भाषा का जामा पहनाकर इसकी पुन स्थापना की है। यही कारण है कि भौतिकवादी दाशनिको का प्रारम्भ एक विशिष्ट तिथि से भी माना जाता है लेकिन सद्धान्तिक रूप से मौलिक कहने के लिए इनके पास कुछ नही था। बहुत स तो इनम दाशनिक भी नहीं थ। खीच-तान कर इन्हे यदि कुछ मानें तो इनको वैज्ञानिको की श्रेणी मे रखा जा सकता है। और वह भी प्राय भौतिक शास्त्री तथा जीवविज्ञान-शास्त्रियो की श्रेणी म। इनका भौतिकवाद स्वय इन्ही के कथानुसार प्रकृति विज्ञान के सिद्धान्तो से प्रकट हुआ है—दाशनिक चिन्तन स उसका कोइ सरोकार नही है।

अठारहवी शती की पाँचवी दशाब्दी के जमन भौतिकवादियो के लिए उपयुक्त बात वस्तुत लागू होती है। एल० बूकनर[1] की सन 1855 ई म प्रकाशित पुस्तक 'फोस एण्ड मटर' ने शीघ्र ही भौतिकवादियो की बाइबल के नाम से ख्याति प्राप्त करना प्रारम्भ कर दिया था। यह बात सदव स्मरणीय रहे कि जमनी म जहाँ पर राज्य *सचालित विश्वविद्यालय है और दशन एक राजकीय स्तर प्राप्त करता रहा है* वहाँ, हीगेल के प्रभाव के जरिए प्रकृतिविज्ञान के विरुद्ध आध्यात्मिक जीवन की वकालत और आमूल परिवतनवादियो के विरुद्ध राज्य की सुरक्षा भी की जाती रही है। स्वभावत जमनी म दशन के इस राजकीय स्तर ने ही इसको अपयश दिया है।

---

[1] द्रष्टव्य, एफ लग हिस्ट्री आफ मेटीरियलिज्म (1866), जे०टी० मज हिस्ट्री आफ यूरोपियन थोट इन द नाइन्टीन्थ सेन्चुरी (1896), आर० बी० परी प्रेजेन्ट फिलोसोफीकल टेंडेन्सीज (1912), पी० ए० आर० जनट द मटीरियलिज्म आफ दी प्रेजेन्ट डे (अग्रेजी अनुवाद—जी मेसन 1865)

फिर भी यत्र-तत्र जहाँ जमनी के नए तनाव उभरे हैं—और यह बात स्पष्ट प्रकट हो गई है कि जमन आदशवाद प्रकृतिविज्ञान की अनुभववादी आत्मा को अपने म समेट लेने म पूणरूप से असफल हो गया है, वहा धीरे धीरे प्राकृतिक दशन के आधार पर आगुनभवी (अ प्रायोरी) स्थितियो का औचित्य देने का प्रयास हुआ है। बूकनर के अनुसार प्राकृतिक विज्ञान के लिए दाशनिक चिंतन की आवश्यकता नही है क्योंकि अपने ही साधनो द्वारा यह समष्टि की एक सामान्य तस्वीर-हमारे समक्ष प्रस्तुत कर सकता है—और दाशनिक चिंतन के आधार की परवाह किए बिना ही अनुभवजन्य स्थितियो को अपने निर्देशन का ठोस आधार बना सकता है।

यह समष्टि-दृष्टि भौतिकवादी थी। बूकनर के अनुसार विज्ञान शनै शनै इस बात की प्रस्थापना करता है कि वस्तु म निहित गुरु-ब्रह्माण्डीय तथा लघु-ब्रह्माण्डीय सत्ता उसकी जीवनी शक्ति और लक्षण ये सब यात्रिक नियमो द्वारा सचालित है और इनके लिए किसी भी प्रकार के अतिप्राकृतिक तत्वो का या आदशवादिता का सहारा लेना आवश्यक नही है। इस प्रतिवाद का उत्तर कि अतर्निहित जडता कभी भी सक्रिय जीवन को उत्पन्न करने म सक्षम नही है बूकनर यह देते हैं कि जड मूल रूप से अपने आप म जड होता ही नही है। शक्ति के बिना जड की कल्पना करना व्यथ है। इसी प्रकार जड के बिना भी शक्ति नही है। दोनो ही स्रोत एक दूसरे के अस्तित्व के लिए साधक हैं।

बूकनर का यह सूत्र कि 'जड के बिना शक्ति नही है शक्ति के बिना जड नही है' विशिष्टत अतिप्रकृतिवाद के खण्डन के लिए है। और अपने इसी रूप म इस सिद्धात ने व्यग्र यूरोप के आमूल परिवतनवादी आन्दोलन को एक दशन दिया जो चच और राज्य की समान रूप से आलोचना करता था।[1] अपनी पुस्तक '**फिजियोलाजिकल एपिसलस**' (1847) म काल वाग्स की यह घोषणा कि मस्तिष्क म विचारो का स्राव उसी प्रकार होता है जिस प्रकार से यकृत से पित्त का होता है। बहुत से जमन भौतिकवादियो के आदशवाद के सम्मानित सिद्धातो को जान बूझकर चोट पहुचाने के अभियान का एक हिस्सा थी।

इगलैड म सामाजिक एव बौद्धिक स्थिति बिलकुल दूसरी थी। सामान्य तौर पर यूरोपीय दशन पर लगाये गए आमूल-परिवतनवादियो के अभियोग के अनुसार निश्चय ही मिल राज्यसेवक तो नही थे न उन्होने बूकनर के आदशवाद पर लगाये गये अभियोगो के मुताबिक, अनुभव के बिना विचारो मे प्रकृति का निर्मित

---

[1] उदाहरणाथ बूकनर द्वारा लिखित पुस्तक **फोस एण्ड मैटर** को तुर्गनेव ने अपनी पुस्तक **फादस एण्ड सस** (1892) के पात्र बाजारोव के मुह से आरम्भिक अध्ययन के लिए पढी जाने योग्य बताया है।

ही माना । । जर्मनी की भांति इगलैंड म नाति जसा कुछ था भी नहीं । बूकनर की घापणा थी कि दशन का स्वभावत सामान्य रूप से बाधगम्य होना चाहिए अन्यथा उसकी कामत एक कागज म लिखे शब्दा स ज्यादा कुछ भी नहीं । तो भी जब जमन भौतिकवाद इगलड म प्रवर्तित होना शुरू हुआ, तो अपन सभी रूपा म वह अग्रेजियत लिए हुए था । इसकी शक्ति जरा कम हा गयी थी । इसका आमूल परिवतवाद क्षीण हा गया था इसकी मुखरता कुछ मुरझा गयी थी—तो भी—उत्तेजनात्मक उसम, इनके बावजूद भी, विद्यमान थी ।

अपन निबन्ध 'ऐसे मान लिवटी' म मिल न सुझाया था कि इन लोगो क लिए विधर्मी राय यही है कि कभी दूर दूर तक प्रकाशित न होओ । कवल विचारा के एक सकुचित वत्त म कूपमण्डूक की भांति सिकुडे रहा और उन मौलिक प्रतिभाओं का अनुसरण करत रहो जो वही कुछ नया प्रवर्तित कर दते हैं । और इस प्रकार एक ऐसी अवस्था कायम रहती है जो कुछ मनुष्या का काफी सतोष दन वाली होती है क्योंकि किसी को बन्दी करने अथवा किसी पर जुर्माना करने के बिना ही यह बाहर क किसी प्रभाव स तटस्थ रहकर भी सभी प्रचलित मान्यताओं की सिद्धि भी करती है । हा, यह पूर्णत बुद्धि के प्रयाग का निषिद्ध नहीं मानती जो विचार की शृङ्खला मे स्वत उतर जाते है । एक परम्परागत सामाजिक प्रभाव की नवविज्ञान-वादी प्रचेताओं न बदनामी भी की । इनम जे० टिण्डेल, टी०एच० हक्सले तथा डब्लू क० विलफड[1] जस लाग हैं । इन्होंन इसका खण्डन अपनी समादृत सामाजिक मर्यादाओं म किया । य एस लोग य जा विज्ञान का श्रमिक वग तक ले गए और विज्ञान क साथ ही ईश्वरसम्बन्धी विधर्मी विचारा को भी जो पहले बौद्धिक लोगा के एक सीमित दायर मे ही प्रचलित थे ।

---

[1] इन लेखका के विषय म दृष्टव्य, ए० डबलू० ब्राउन द मेटाफिजिकल सोसायटी (1947), डबलू० एच० मैलोक द न्यू रिपब्लिक (1877), जिसम, स्टोक्स हक्सले, स्टाकटन टिण्डल तथा सोण्डस क्लिफड हैं । निम्राल एनान लेसली स्टीवन (1951) । वर्जीनिया वुल्फ द्वारा प्रस्तुत अपन पिता लेसली स्टीवन का चित्र उनके पात्र मिस्टर रमस म देखा जा सकता है और उनके मित्रा का वणन टू द लाइट हाउस (1927) म । जाज मरेडिथ की पुस्तक 'द इगोइस्ट' (1879) वनन ह्विटफोड स्टीवन के चरित्र पर आधारित है । एफ० डब्लू० मैटलैण्ड की पुस्तक द लाइफ एण्ड लेटर्स आफ लेसली स्टीवेन (1906), एम० एच० करे फनेज आफ थोट इन इगलण्ड (1949), विलियम जम्स प्रिंसिपल्स आफ साइकोलोजी (1890) । हक्सल क सम्बन्ध म दृष्टव्य हक्सले द प्रोफेट आफ साइन्स (1932)। इ० डबलू मैकब्राइड हक्सले (1954) हक्सलेज लाइफ एण्ड लेटर्स (सम्पादित, एल० हक्सल 1900)

इनकी धारणाए अधिक प्रभाविष्णु थी—जो उन दाशनिको की विचार-पद्धति से बिल्कुल दूसरे छोर पर थी, जिसम भाषा और विचारो की गूढता और अलकरण होता है। इनकी भाषा म शब्द के चमत्कार से कही बहतर इस बात का विचार था कि वह ऐसे पाठक तक जा रही है जो दाशनिक परम्परा स अपरिचित है। इस तरह विज्ञान तेजी से अपनी जड कायम कर रहा था—प्रत्येक ऐसे इजन के साथ जो आगे धकेला जा रहा था जिसके कारण विज्ञान की प्रगति निरन्तर होती चली गई। इस प्रकार वैज्ञानिक के पास नए और चमत्कृत कर दन वाले तथ्य मौजूद होते जा रहे थे—जिनके कारण ईश्वर म विश्वास करना आवश्यक नही रह गया था। स्वतन्त्रता और अमरता लोकप्रिय शब्दावलि म विज्ञान की यही दिशा थी।

य नयी खोजें विभिन्न स्रोतो से आई। पहले पहल शारीरिक विज्ञान था। मस्तिष्क अलग कर दिए जाने पर भी मेढक साथक प्रतिक्रिया उत्पन्न कर सकता है,' न इस बात का सकेत दिया। ऊपर स साथक दिखाई दन वाली क्रियाए, बहुत सम्भव है, मूलत स्वत-ज्ञात हो या किसी बाह्योत्तेजना की प्रतिक्रिया से उपजा परावतन हो। मस्तिष्क कटे हुए इस मेढक न अध्यात्म को कुछ इस तरह ध्वस्त किया जिसे अपने पूरे मस्तिष्क स भी चच के पादरी दुबारा खडा नही कर सके।[1] ई० डु बाइस रेमड ने अपनी कृति एनिमल इलेक्ट्रिसिटी (1848) म भी शरीरिक प्रक्रियाओ म निहित रहस्यमयता को कम करके परिचित भौतिक नियमो के अनुरूप ढालकर परम्परा को काफी ठेस पहुचाई। ये सब केवल कुछ उदाहरण हैं।

भौतिकी के ऊर्जा सधारण (कजर्वेशन आफ एनर्जी) क सिद्धान्त को एच० हेमहोज (1847) न जव और अजव (ओरगनिक, इनोरगेनिक) जीवन की विवेचना म प्रयुक्त किया है।

इसम इस सिद्धान्त का विरोध किया गया है कि मनुष्य अपनी इच्छाशक्ति से घटनाक्रम को प्रभावित कर सकता है। सामान्य ऊर्जा के सिद्धान्त म इस कही भी मान्यता नही दी गई है। रसायन शास्त्र म यूरिया के सश्लेषण (1828) के सिद्धान्त ने इस मान्यता का खण्डन कर दिया है कि प्रयोगशाला की रसायन विद्या म तथा जीवन के रसायन के बीच कभी न पाटी जा सकने वाली खाई है। इसी बीच एल० ए० क्वेटेलेट न अपने नतिक अकेक्षण के

---

[1] डा० जेनकिन्सन के उपदेश द न्यू रपब्लिक म स उदधृत इस प्रसिद्ध मेढक के सबध म विस्तृत जानकारी के लिए देखें टी० एच० हक्सले की पुस्तक आफ द हाइपोथेसीस दट एनीमल्स आर ओटोमैटा (1874), पुन प्रकाशित साइस एड कल्चर (1882)।

आधार पर इस बात का उदघाटन किया (अपनी पुस्तक सु र्लु होमे (1835) मे) कि ऐसी प्रत्येक स्थिति म जिसका सबध अपराध से है, एक ही प्रकार की संख्या बार बार आवृत्त होती है और उसकी निरन्तरता को गलत नही माना जा सकता । यह बात उन अपराधा क बारे म भी सही बठती है जो मानवीय अन्तर्दृष्टि स भी परे हैं, उदाहरणार्थ हत्याए ।" निरन्तर एक ही प्रकार की इस आवृत्ति को मनुष्य की इच्छा शक्ति के परम्परागत सिद्धान्त के जरिए कसे समझा जाय ? एक दूसरे ही क्षेत्र म बाइबल पर उच्चस्तरीय आलोचना प्रस्तुत करने की कसौटी साधारण बुद्धि के सिद्धान्तो को बनाया जाना भी इस बात को सिद्ध करता है कि धीरे धीरे विज्ञान के विरुद्ध धम और आस्था के निर्विवाद रूप से सही खड़े रहने की बात को झकझोर दिया गया था ।

डार्विन[1] का प्रादुर्भाव हुआ । विज्ञान के धम को डिजरेली न अपनी पुस्तक **लोथेयर** (1870) म एक धर्माधिकारी द्वारा वर्णित करवाया है । यह बताया गया है कि इस धम के दो रूप है, पहले सिद्धान्त के अनुसार आदम के बजाय हमारी पीढ़ी जड़वत जानवरा में से निकली हुई मानी गई है हमारा चिंतन फोस्फोरस का ही एक प्रकार है और आत्मा जटिल नाडियाँ हैं । दूसरी क अनुसार हमारी नैतिकता एक विशेष प्रकार की शक्करा का स्राव है । इस धम का अ ग्रेजी तत्व जो कि डार्विन के विकासवादी सिद्धान्त म प्रतिपादित हुआ, जर्मनी के औपाधिक भौतिकवाद (मैडिकल मैटारियलिज्म) स किन्ही अर्थों म कम शक्तिशाली नही था । 1859 म लिखी अपनी **ओरिजिन आफ स्पेसीज** म स्वयं डार्विन न भी पहल पहल विकासवादी सिद्धान्त का प्रयोग नहीं किया था । 'तुम पूछोगे क्या मैं मनुष्य की चर्चा करूंगा ?', उसने 1857 म लिखा—— इस प्रकार पूर्वाग्रहों स घिरे इस विषय को मैं अभी टाल जाऊँगा । लेकिन दूसरे लोगो न, जिनमे हक्स्ले की 1863 म लिखी पुस्तक मेन्स **प्लेस इन नेचर** भी शामिल की जा सकती है—मनुष्य पर विकासवादी सिद्धान्त का प्रयोग करने म चूक नही की—डार्विन न भी इसे 1871 म अपनी पुस्तक **'द डिसेन्ट आफ मैन** म लिखा है ।

विकासवाद का यह सिद्धान्त, और उसमे प्रतिपादित यह धारणा कि पशुओ की प्रजातियाँ जो हम आवृत किए है, अपने वर्तमान रूप म दीर्घकालीन संघर्ष के कारण विद्यमान है और शनै शनै अपने विकास को प्राप्त हुई है—सर्वप्रथम डार्विन द्वारा ही प्रवर्तित नही की गई थी । यहाँ तक कि डार्विन के नाम से विख्यात उनके

---

[1] द्रष्टव्य, आर० डब्लू० जी० हिम्पटन की **'डार्विन'** (1934) । संदर्भ पुस्तक सूची भी है इसम ।

स्वाभाविक चुनाव (नचरल सलेक्शन) के सिद्धान्त का भी प्रतिपादन पहले कुछ लोग कर चुके थ ।[1]

डार्विन क हाथा म विकासवाद का सिद्धान्त एक समृद्ध सिद्धान्त के रूप म विकसित हुआ है और अत्यन्त सन्तोषप्रद ढग स इसन जीवविज्ञान और सामाजिक सिद्धान्त म प्रचलित प्रवत्तियो के साथ अपना सिलसिला बठाया है ।

न तो कोई मूलभूत एपणा और न मानवीय दष्टि स सोची गयी अपन आपको और अच्छा बनाने की कामना ही के साथ अब विकासमान प्रजाति को जोडा जाता था । केवल वे ही अलग लक्षणा वाली प्रजातिया अपन आप को मजबूती स कायम रख पाई जिनम वतमान स्थितियो स निरन्तर सघप करते रहन की क्षमता थी । यह एक एसा सघप था जिसे अथशास्त्री माल्थस ने 1798 ई० म ही मानवीय इतिहास म घटने वाली घटना क रूप म पहले से ही खोज निकाला था ।

डार्विन की कृतियो का एक और प्रभाव इस मान्यता को असिद्ध करन म हुआ कि अतिप्राकृतिक उपकरणो के हान के कारण मनुष्य मूलत प्रकृति के विरुद्ध खडा है । इसके अतिरिक्त इस सिद्धान्त ने इस धारणा का भी ध्वस्त कर दिया कि प्रकृति म निहित क्रम क लिए आवश्यक रूप से एक आध्यात्मिक दष्टि का सहारा चाहिए । क्योकि यदि वातावरण मे मनुष्य की शारीरिक क्षमता इस बात पर अवलम्बित रहती है कि उसम एकाएक उत्पन्न हो जान वाली भिन्न स्थितिया तथा बदलती हुई परिस्थितियो क साथ अपने आपको ढालने की गुजाइश होती है—तो फिर इसकी इस क्षमता को किसी भी तरह स दवी शक्ति का प्रमाण नही माना जा सकता ।

इस प्रकार धम की सम्भावनाए करीब करीब मिटन की स्थिति तक आ गयी था । भौतिकवाद की तथा डिटरमिनिज्म की एक लहर की अपेक्षा करना बिल्कुल तकसगत था और ये ही व सिद्धान्त थ जिनके बारे म प्रतिपक्षियो का एसा विचार था कि उन्ह उन्हाने हक्सल और उसके साथी लागो क दशन म खोज निकाल है ।

हक्सले ने कुछ उत्तेजना म इस बात को सिद्ध करना चाहा है कि व न ता भौतिकवादी हैं न नास्तिक निश्चय ही व यह मानते थे कि मनुष्य सचेतन स्वय-

---

[1] द्रष्टव्य टी० एच० हक्सले इवोल्यूशन इन बायलोजी (1874) पुन प्रकाशित साइन्स एण्ड कल्चर । ई० कसीरर द प्रोब्लेम आफ नोलेज (1950) ए० लवजोय द ग्रेट चेन आफ बीइग (1936), आर०एच० थियोक द स्ट्रेन्ज केस आफ वेल्सेग्स थयोरी आफ नेचुरल सेलेक्शन, 'स्टडीज एण्ड ऐसेज इन द हिस्टी आफ साइन्स एण्ड लर्निग (1946) म प्रकाशित ।

च न या आपकर्ता (आटोमटा) है, लेकिन वे अपने स्पष्टीकरण के मुताबिक, मौतिकवादी नही थे। यद्यपि उन्हान ईश्वर के अस्तिव केहर तक को अस्वीकार किया है फिर भी वे नास्तिक नही थे। वास्तव म यदि ईश्वर की परिभाषा अनन्त और पूर्ण जसे शब्दो से की जाती है तो वह अपन आपको आस्तिक मानने के लिए तयार थे क्योंकि उनके मतानुसार, ऊर्जा अनन्त और पूर्ण दोना ही है। व अपन आपको एक डिटर्मिनिस्ट मानन को भी तैयार थे। यह उनके ही मतानुसार एक समादन स्थिति थी—वे दरअसल पक्के कालविनावादी थे[1]।

मौतिकवाद के प्रति हक्सले का दृष्टिकोण अत्यन्त प्रभावशाली ढग स उनके दशन की विचित्रता का प्रकट करता है। एक सच्चे मौतिकवादी के लिए जो कुछ अस्तित्व म है वह जड या शक्ति का कोई मिला जुला रूप है—लेकिन उनके अनुसार चेतना एसा मिला जुला रूप नही हैं यद्यपि यह निकटतम रूप म जड से मिली है। इस निकटतम जुडाव के स्वभाव को अधिक गहराई से हक्सले के सघटनावाद (एपिफिनामिनिज्म) के सिद्धान्त म जिस उन्होने अपने निबंध 'आफ द हाइपोथेसिस देट एनीमल्स आर आटोमेटा' म बतलाया, देखा जा सकता है। जानवरो की चेतना उनके शरीर से ही सबधित दिखाई देती है और केवल यह उनकी क्रियाओ के साथ जुडी है—यह इजन से निकलन वाली वाष्प की भाति स्वत अपने आप म सुधार नही ला सकती, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार वाष्प इजन की मशीनरी को प्रभावित नही कर सकता। आकस्मिक तौर पर इस भाषा का प्रयाग कूनर्र द्वारा किया गया ही है।

जो बात जानवरो के लिए सत्य है—मनुष्य मात्र के लिए भी सत्य है। चेतना स्वत न तो कार्यशील होती ह और न हो ही सकती है क्योकि इसकी कोई अपनी कोई ऊर्जा नही होती। यह मस्तिष्क की कार्यप्रणाली से उद्भूत होती है—एक सत्ता म निहित अनात रहस्यमय शक्ति के रूप म।

यहा तक तो अंग्रेजी मुलम्मा चढा हुआ यह 'जमन मौतिकवाद' है। लेकिन अब इसके विचार दशन म एकाएक मोड आता है। हक्सले के कथानुसार डेकार्ट के द्वारा प्रयुक्त किया गया यह तर्क की हमारी भावानुभूति का एक विशिष्ट अंश हमारी चेतनावस्था स बाहर ही है, अपने आपम सही है। मन तो जड का विद्युत्पुज है। इसके साथ ही उन्होने यह भी कहा कि इस क्षेत्र म एक भी निश्चित रूप स की गई धारणा मनोजगत के अस्तित्व का प्रमाण है।

हक्सल को दार्शनिक भूलभुलैया काफी प्रफुल्लित करती थी। और इसीलिए उन्होने ह्यूम पर 1877 म लिखी अपनी पुस्तक के उनके न्यून सन्देहवाद की पुष्टि

---

[1] साइस एण्ड मोरेल्स (1886) पुन मुद्रित ऐसेज अपान सम कन्ट्रोवर्टेड क्वेश्चन्स (1892)।

स्वाभाविक चुनाव (नेचरल सेलेक्शन) के सिद्धान्त का भी प्रतिपादन पहले कुछ लोग कर चुके थे।[1]

डार्विन के हाथों में विकासवाद का सिद्धान्त एक समृद्ध सिद्धान्त के रूप में विकसित हुआ है और अत्यन्त सन्तोषप्रद ढंग से इसने जीवविज्ञान और सामाजिक सिद्धान्त में प्रचलित प्रवृत्तियों के साथ अपना सिलसिला बढ़ाया है।

न तो कोई मूलभूत एषणा और न मानवीय दृष्टि से सोची गयी अपने आपको और अच्छा बनाने की कामना ही के साथ अब विकासमान प्रजाति को जोड़ा जाना था। केवल वे ही अलग लक्षणों वाली प्रजातियाँ अपने आप को मजबूती से कायम रख पाईं जिनमें वर्तमान स्थितियों से निरन्तर संघर्ष करते रहने की क्षमता थी। यह एक ऐसा संघर्ष था जिसे अर्थशास्त्री माल्थस ने 1798 ई० में ही मानवीय इतिहास में घटने वाली घटना के रूप में पहले से ही खोज निकाला था।

डार्विन की कृतियों का एक और प्रभाव इस मान्यता को असिद्ध करने में हुआ कि अतिप्राकृतिक उपकरणों के होने के कारण मनुष्य मूलतः प्रकृति के विरुद्ध खड़ा है। इसके अतिरिक्त इस सिद्धान्त ने इस धारणा को भी ध्वस्त कर दिया कि प्रकृति में निहित क्रम के लिए आवश्यक रूप से एक आध्यात्मिक दृष्टि का सहारा चाहिए। क्योंकि यदि वातावरण में मनुष्य की शारीरिक क्षमता इस बात पर अवलम्बित रहती है कि उसमें एकाएक उत्पन्न हो जाने वाली भिन्न स्थितियों तथा बदलती हुई परिस्थितियों के साथ अपने आपको ढालने की गुंजाइश होती है—तो फिर इसकी इस क्षमता को किसी भी तरह से दैवी शक्ति का प्रमाण नहीं माना जा सकता।

इस प्रकार धर्म की सम्भावनाएँ करीब करीब मिटने की स्थिति तक आ गयी थीं। भौतिकवाद की तथा डिटरमिनिज्म की एक लहर का अपेक्षा करना बिल्कुल तर्कसंगत था और ये ही वे सिद्धान्त थे जिनके बारे में प्रतिपक्षियों का ऐसा विचार था कि उन्हें उन्होंने हक्सले और उसके साथी लोगों के दर्शन में खोज निकाला है।

हक्सले ने कुछ उत्तेजना में इस बात को सिद्ध करना चाहा है कि वे न तो भौतिकवादी हैं न नास्तिक, निश्चय ही वे यह मानते थे कि मनुष्य सचेतन स्वयं–

---

[1] द्रष्टव्य टी० एच० हक्सले इवोल्यूशन इन बायलोजी (1874) पुनः प्रकाशित साइंस एण्ड कल्चर। ई० कसीरर द प्रोब्लेम आफ नोलेज (1950) ए० लवजोय द ग्रेट चेन आफ बीइंग (1936), आर०एच० श्रियोक द स्ट्रेंज केस आफ वेलसंस थ्योरी आफ नेचुरल सेलेक्शन, 'स्टडीज एण्ड ऐसेज इन द हिस्ट्री आफ साइंस एण्ड लर्निंग (1946) में प्रकाशित।

यंत्र या आपकर्ता (आटोमेटा) हैं, लेकिन वे अपने स्पष्टीकरण के मुताबिक, भौतिकवादी नहीं थे। यद्यपि उन्होंने ईश्वर के अस्तित्व के हर तर्क को अस्वीकार किया है फिर भी वे नास्तिक नहीं थे। वास्तव में यदि ईश्वर की परिभाषा, अनन्त और पूर्ण जैसे शब्दों में की जाती है तो वह अपने आपको आस्तिक मानने के लिए तैयार थे, क्योंकि उनके मतानुसार, ऊर्जा, अनन्त और पूर्ण दोनों ही है। वे अपने आपको एक डिटर्मिनिस्ट मानने को भी तैयार थे। यह उनके ही मतानुसार एक समादृत स्थिति थी—वे दरअसल पक्के कॉनविनावादी थे[1]।

भौतिकवाद के प्रति हक्सले का दृष्टिकोण अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से उनके दर्शन की विचित्रता को प्रकट करता है। एक अच्छे भौतिकवादी के लिए जो कुछ अस्तित्व में है, वह जड़ या शक्ति का कोई मिला जुला रूप है—लेकिन उनके अनुसार चेतना ऐसा मिला जुला रूप नहीं है, यद्यपि यह निकटतम रूप में जड़ से मिली है। इस निकटतम जुड़ाव के स्वभाव को अधिक गहराई से हक्सले के संघटनावाद (एपिफिनोमिलिज्म) के सिद्धान्त में जिसे उन्होंने अपने निबंध 'आफ द हाइपोथेसिस देट एनीमल्स आर आटोमेटा' में बतलाया, देखा जा सकता है। जानवरों की चेतना उनके शरीर से ही संबंधित दिखाई देती है और केवल यह उनकी क्रियाओं के साथ जुड़ी है—यह इंजन से निकलने वाली वाष्प की भांति स्वतः अपने आप में सुधार नहीं ला सकती ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार वाष्प इंजन की मशीनरी को प्रभावित नहीं कर सकता। आकस्मिक तौर पर इस भाषा का प्रयोग बूनवर द्वारा किया गया ही है।

जो बात जानवरों के लिए सत्य है—मनुष्य मात्र के लिए भी सत्य है। चेतना स्वतः न तो कार्यशील होती है और न हो ही सकती है क्योंकि इसकी कोई अपनी कोई ऊर्जा नहीं होती। यह मस्तिष्क की कार्यप्रणाली से उद्भूत होती है—एक सत्ता में निहित अज्ञात रहस्यमय शक्ति के रूप में।

यहाँ तक तो अंग्रेजी मुलम्मा चढ़ा हुआ यह जर्मन 'भौतिकवाद' है। लेकिन अब हमारे विचार स्थान में एकाएक मोड़ आता है। हक्सले के कथनानुसार डेकार्ट के द्वारा प्रयुक्त किया गया यह तर्क की हमारी चेतनानुभूति का एक विशिष्ट अंश हमारी चेतनावस्था से बाहर होता है, अपने आपमें सही है। मन तो जड़ का विद्युत्पुंज है। इसके साथ ही उन्होंने यह भी कहा कि इस क्षेत्र में एक भी निश्चित रूप से की गई धारणा मनोजगत् के अस्तित्व का प्रमाण है।

हक्सले का दार्शनिक भूलभुलैया काफी प्रफुल्लित करती थी। और इसीलिए उन्होंने ह्यूम पर 1877 में लिखी अपनी पुस्तक के उनके न्यून सन्देहवाद की पुष्टि

---

[1] साइंस एण्ड मोरेल्स (1886) पुनः मुद्रित ऐसेज अपॉन सम कन्ट्रोवर्टेड क्वेश्चन्स (1892)।

हा की है । उनके नास्तिक और अनीश्वारवादी हान का यह स्थिति और भी प्रबलरूप से प्रस्तुत करती है । एग्नास्टिक नामक शब्द उन्हो के द्वारा निर्मित है ।[1] अस्तित्व के अन्तिम कारण के सम्ब ध म उठ खडी हुई समस्या एसी है जिसका समाधान करना मरे बूत से बाहर है । हक्सले का उन लोगो को हमशा के लिए यह जवाब होता था जो उन पर नास्तिक हान और भौतिकवादी हाने का अभियोग लगाते हैं हक्सले और उनके साथ निश्चय ही विवाद खडा करने वालो म ऊ च थ, व अपा म लोचको को यह कह कर हमशा टाल दत थ कि वास्तव म अधिकारपूवक हम कुछ भी जानने का दावा नही करत । लनिन क इस कथन स शायद पादरी लाग सहमत हो कि हक्सले का अनीश्वरवाद उनक भौतिकवाद की ढकामूदी मे लिए एक जामे की भाति सहार का काय करता है । लेकिन हक्सल यह उत्तर दे कर इस सबध मे सतुष्ट हा जाते थे, 'यदि मुझे भौतिकवाद और आदशवाद के बीच स कुछ चुनना पडा तो मैं आदशवाद को चुनू गा ।' अब इसस अधिक क्या कहना शेष रह गया था ?

स्वभावत इतना सुविधाजनक सिद्धान्त समयको स वचित नही रह सकता । डार्विन स्वय धमसम्ब धी अपने विचारो को अनीश्वरवादी मानते थे । लसली स्टीवन की पुस्तक, **एन एग्नोस्टिक अपोलोजी** (1893) जा 1876 म एक निब धाकार रूप म प्रकाशित हुई थी ने अनीश्वरवाद को एक ऐसी अधिकारिक स्थिति प्रदान की जिसस उसका विचारो के इतिहास म खडा होना निश्चित हो गया । जमनी म भी ई० दु बोय्स रेमण्ड ने अपन एक भाषण द्वारा जिसका विषय **द लिमिटेशन आफ नेचुरल नालेज** था, काफी हलचल मचाई । इस निब ध की विशेषता यह थी कि इसम अनीश्वरवादी व चचविरोधी भावना का अ ग्रेजी तौर–तरीके स कहा गया था ।[2] लकिन इसके बावजूद भी एक अनीश्वरवादी विकासवाद की दशन क रूप मे स्थापना का श्रेय हबट स्पेसर को ही है जिससे ससार म एक हलचल हो गई ।[3]

हबट स्पेसर द्वारा रचित पुस्तक **सिस्टम आफ सि थेटिक फिलोसोफी** (1862 1893) न एक दाशनिक ग्र थ क रूप म लोगा का ध्यान इतना आकर्षित नही किया जितना जीवशास्त्र, मनोविज्ञान और समाज–शास्त्र की पुस्तक के रूप मे किया । उनकी पुस्तक **एज्यूकेशन** (1861) का उनको प्रसिद्ध करने म काफी बडा

---

[1] आर० फ्लिट **एग्नोस्टिसिज्म** (1903) ।

[2] 1872 म दिया गया यह भाषण 1886–87 म प्रकाशित उनकी पुस्तक एड्रेसेज" म है । इस निब ध की इति इगनोरेबिमस नामक शब्द स हुई है जो बाद म जमन अनीश्वरवाद का उद्दिष्ट शब्द (मोटो) हो गया ।

[3] डबलू० एच० हडसन हबट स्पेसर (1908), एच० ईलियट हबट–स्पेसर (1817) ।

हाथ रहा और जब उन्होंने **द मैन वरसस द स्टेट** में निजी उपक्रम का जोरदार पक्ष लिया तो उनका यश ऐसे स्थानों में भी फैला जिनका दर्शन से कोई वास्ता नहीं था। लेकिन जिन दार्शनिक मान्यताओं को उन्होंने **सिन्थेटिक फिलोसोफी** के प्रारंभिक ग्रंथ में फर्स्ट प्रिंसिपल के नाम से स्थापित किया है वे मान्यताएँ ही स्वयमेव उनके समसामयिक विचारकों में उत्साह जगाने के लिए पर्याप्त थीं।

इस संबंध में उनका प्रयास दो तरह का है, पहला विज्ञान और धर्म का समन्वय करना तथा दूसरा ऐसे संसार में दर्शन को स्थानासीन करना जो निरन्तर विशिष्ट विज्ञान के क्षेत्रों में विभक्त होता चला जा रहा था। पहले पहल वे यह प्रकट करने के लिए अंतिम वैज्ञानिक कल्पमान ऐसे सत्यों का प्रतिनिधित्व करते हैं जिन्हें समझ लेना संभव नहीं हैमिल्टन एवं मन्सल दोनों के विचारों को काफी मात्रा में उद्धृत करते हैं। निष्कर्ष में कहते हैं कि वैज्ञानिक ही इस बात को जानता है कि अंतिम रूप से किसी भी चीज को जान लेना संभव नहीं है। यद्यपि भौतिक शास्त्र द्वारा सम्पूर्ण भौतिक पदार्थों का अवकाश (वरिमा या स्पेस) व समय में शक्तिमान सत्ताएँ माना गया है तथापि इस बात के लिए स्पेन्सर हमें आश्वस्त कर देना चाहते हैं कि पदार्थ के निजी स्वभाव का ज्ञान हमारे लिए आज भी सदैव की भाँति रहस्यमय है क्योंकि हमारे ज्ञान की सभी उपलब्धियों को शक्ति, अवकाश और समय पार कर जाते हैं। यदि यह भी मान लिया जाय कि सभी मानसिक क्रियाएँ संवेदनाओं का आकलन मात्र है फिर भी वैज्ञानिक के लिए मन एक पहेली रह ही जाता है क्योंकि, वैज्ञानिक, संवेदनाएँ अपने आपमें क्या है न तो इसका ही उत्तर दे पाता है और न यही बता पाता है कि इन संवेदनाओं की चेतना प्राप्त करने वाली कौन सी स्थिति हमारे अन्दर विद्यमान है। इस प्रकार स्पेन्सर के व्याख्यानुसार विज्ञान स्वयं हमें अज्ञेय सत्ता की ओर ले जाता है। इसके अतिरिक्त यह अज्ञेय ही एक शक्ति के रूप में जाना गया है, यद्यपि यह शक्ति अगम्य है। स्पेन्सर ने इन शब्दों पर विशेष जोर दिया है। स्पेन्सर के कथनानुसार हैमिल्टन की यह बात सही है कि हम मात्र सापेक्ष स्थितियों के अतिरिक्त किसी वस्तु का मूलरूप के निश्चित ज्ञान नहीं होता। उनका यह कहना गलत था कि हम निरपेक्ष रूप से किसी वस्तु के बारे में कुछ भी नहीं जान सकते, क्योंकि वास्तव में हमें वस्तु की चरम सत्ता (एवसाल्यूट) का ऐसा आभास तो होता ही है जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

यदि हम निरपेक्ष की किसी भी प्रकार की चेतना न होती, तो यह कहना भी निरर्थक होता कि सामान्य चेतना सापेक्ष के संबंध में ही होती है—क्यों कि यदि ऐसा होता तो फिर इस बात का उत्तर हमारे पास क्या है कि यह सापेक्ष भाव किसके प्रति है, अनुभव से जिस जगत का साक्षात्कार हो जाता है उसका बयान करने के लिए अनुभव हमारे लिए वस्तुओं का जो रूप प्रस्तुत करता है, उसके बारे में आवश्यक रूप से हमें सोचना होगा और तब यह मानना भी आवश्यक होगा कि

ही की है। उनक नास्तिक और अनीश्वारवादी हान का यह स्थिति और भी प्रबलरूप से प्रस्तुत करती है। एग्नास्टिक नामक शब्द उन्ही के द्वारा निर्मित है।[1] अस्तित्व क अन्तिम कारण के सम्बन्ध म उठ खडी हुई समस्या एसी है जिसका समाधान करना मरे बूत स बाहर है। हक्सले का उन लोगा को हमेशा के लिए यह जवाब होता था जो उन पर नास्तिक हाने और भौतिकवादी होन का अभियोग लगाते हैं, हक्सले और उनके साथ निश्चय ही विवाद खडा करन वालो मे ऊच थ, व अपन आलोचका को यह कह कर हमशा टाल दते थ कि वास्तव मे अधिकारपूवक हम कुछ भी जानन का दावा नही करत। लेनिन के इस कथन स शायद पादरी लोग सहमत हो कि हक्सले का अनीश्वरवाद उनक भौतिकवाद की ढकामूदी के लिए एक जामे की भाति सहारे का काय करता है। लकिन हक्सले यह उत्तर दे कर इस सबध मे सतुष्ट हो जाते थ, यदि मुझे भौतिकवाद और आदशवाद के बीच से कुछ चुनना पडा तो मैं आदशवाद को चुनू गा।' अब इसस अधिक क्या कहना शप रह गया था?

स्वभावत इतना सुविधाजनक सिद्धान्त समथको से वचित नही रह सकता। डार्विन स्वय धमसम्बन्धी अपने विचारो को अनीश्वरवादी मानते थे। लसली स्टीवन की पुस्तक **एन एग्नोस्टिक अपोलोजी** (1893) जो 1876 म एक निबन्धाकार रूप मे प्रकाशित हुई थी ने अनीश्वरवाद को एक ऐसी अधिकारिक स्थिति प्रदान की जिसस उसका विचारो के इतिहास म खडा होना निश्चित हो गया। जमनी म भी ई० दु बोय्स रेमण्ड न अपने एक भाषण द्वारा जिसका विषय व **लिमिटेशन आफ नेचुरल नालेज** था काफी हलचल मचाई। इस निबन्ध की विशेषता यह थी कि इसम अनीश्वरवादी व चचविरोधी भावना को अंग्रेजी तौर–तरीके स कहा गया था।[2] लेकिन इसके बावजूद भी एक अनीश्वरवादी विकासवाद की दशन के रूप मे स्थापना का श्रेय हबट स्पेसर को ही है जिससे ससार म एक हलचल हो गई।[3]

हबट स्पेसर द्वारा रचित पुस्तक, **सिस्टम आफ सिथेटिक फिलोसोफी** (1862 1893) ने एक दाशनिक ग्रन्थ क रूप मे लोगा का ध्यान इतना आकर्षित नही किया जितना जीवशास्त्र, मनोविज्ञान और समाज–शास्त्र की पुस्तक के रूप म किया। उनकी पुस्तक एज्यूकेशन (1861) का उनको प्रसिद्ध करने म काफी बडा

---

1 आर० फ्लिट एग्नोस्टिसिज्म (1903)।

2 1872 म दिया गया यह भाषण 1886–87 म प्रकाशित उनकी पुस्तक एड्रेसेज" म है। इस निबन्ध की इति इगनारबिमस नामक शब्द स हुई है जो बाद म जमन अनीश्वरवाद का उद्दिष्ट शब्द (मोटो) हो गया।

3 डबल्यू० एच० हडसन हबट स्पेसर (1908), एच० ईलियट हबट–स्पेसर (1817)।

निरन्तर एक ही सरणि में रूपान्तरित होती रहती है।[1] अपने ग्रन्थ सिन्थेटिक फिलोसोफी में उन्होंने जीवशास्त्र, मनोविज्ञान और समाजशास्त्र पर भी इन्हीं सिद्धान्तों को प्रयुक्त किया है। अजैव विज्ञानों को तात्कालिक महत्व का न मानकर छोड़ दिया है। और शायद उनके आलोचकों ने इसी कारण उन पर भीषण अभियोग लगाने में चूक नहीं की है। वे समूची परिस्थितियाँ जिनके कारण सिन्थेटीक फिलोसोफी को समसामयिक जगत में यश मिला था, इस बात के ज्ञान के साथ ही कि वह शीघ्रता से विकसित हो रहे जीवविज्ञान और समाजविज्ञानों के लिए तैयार की गई एक सुव्यवस्थित कुंजी है उसकी प्रसिद्धि पर बुरा असर पड़ने लगा।

मिल ने भी उनके विषय में यह लिखा कि स्पेन्सर ने जानबूझकर अपने आप को युग नवीनतम रूप से प्रचलित विकासवाद के सिद्धान्त की ऐसी धकेल में छोड़ दिया है जो बहुत अंशों में उनकी विचारधारा से मेल खा रही थी। उनका नैतिक और दार्शनिक क्षेत्र में दिया हुआ योगदान अभी भी आकर्षक है। लेकिन दर्शन की गहन चर्चा के लिए स्पेन्सर को पढ़ना व्यर्थ है। वह उन्नीसवीं शताब्दी के एक असामान्य रूप से प्रसिद्ध व्यक्ति है।

निश्चय ही इनके अलावा कुछ अन्य विकासवादी दार्शनिक भी थे। इनमें अर्नेस्ट हेकल का नाम लिया जा सकता है। इन्होंने अपनी पुस्तक द रिडल आफ यूनीवर्स (1899) में डार्विन के बाद विकसित हुए प्रकृतिवाद पर अधिकृत सूचनात्मक तौर पर लिखा है जिसे आज भी काफी पढ़ा जाता है। उनमें डार्विन की सी न तो अनिश्चितता है और न घबराहट ही। प्राकृतिक चुनाव एक ऐसी गणितीय आवश्यकता है जिसके लिए और अधिक प्रमाणों की जरूरत नहीं है। अपने आप को निरीश्वर-वादी घोषित किए जाने की आशंका में रह यह घोषणा करते हैं कि विकासवाद अब तक की खोजों में एक ऐसी खोज है जिसके द्वारा हम सभी की तमाम समस्याओं का हल प्रस्तुत हो जायगा। और नहीं तो कम से कम इतना तो होगा कि उन समस्याओं के निदान का एक मार्ग तो निश्चित हो जायगा। हेकल के लिए अनीश्वरवाद एक प्रकार की निगूहन वृत्ति (आब्सक्यारेण्टिज्म) के अतिरिक्त कुछ नहीं। इस प्रकार की निगूहन वृत्ति का आरोप उन्होंने अपनी पुस्तक फ्रीडम इन साइंस एण्ड टीचिंग (1878) से दु बोइस रेमण्ड पर लगाया है। लेकिन इस पुस्तक में उनकी आलोचनदृष्टि बहुधा अपने साथी जीवशास्त्री आर० विरचव पर ही केन्द्रित रही है। इन महोदय ने उन्हीं दिनों धर्म के साथ समझौते की दृष्टि रखी थी। विरचाव के विचारानुसार विज्ञान को अपनी दृष्टि सदैव तथ्यों पर रखनी चाहिए और चेतना-

---

[1] स्पेन्सर द्वारा प्रस्तुत इस सूत्र की आलोचना के लिए देखिए जे० वार्ड नेचुरलिज्म एण्ड एग्नोस्टिसिज्म (1899), एच०एस० शेल्टन स्पेंसर्स फोरमूला आफ इवोल्यूशन (पी० आर० 1910)।

अनुभव द्वारा वस्तु के जिस रूप का हमें ज्ञान होता है, सत्य इससे परे की स्थिति है। और अगम्य के प्रति यह चेतना ही वह अवस्था है जिस पर धर्म टिका है।[1]

ऐसी अगम्य शक्ति के अनन्त चेतना से अभिमण्डित होने के कारण, जो वर्णनातीत है, धर्म को अपना विशिष्ट अधिकार प्राप्त हुआ है। अपने विश्लेषण में ये बातें तो स्पेंसर ने कहीं लेकिन दर्शन का अपना उपयुक्त कार्य बताना अभी तक उनके लिए शेष रह गया। वे उस विज्ञान के अंशतः संगठित ज्ञान के विपरीत पूर्णतः संगठित ज्ञान की संज्ञा में अभिहित करते हैं। स्पेंसर के अनुसार दार्शनिक विज्ञानों का संगठन सामान्य तत्वों की सर्वोच्च दशा खोजकर करता है और तब वह विभिन्न विशिष्ट विज्ञानों में उन सिद्धान्तों को भी प्रदर्शित कर सकता है। इस प्रकार उन्नीसवीं शती के बहुत से दार्शनिकों की भाँति (जी॰ एच॰ लेविस उसका एक उदाहरण हैं)[2] स्पेंसर दर्शन को अनुभव प्रणीत खोजबीन मानते हैं—जिसकी आत्मा वैज्ञानिक तो है किन्तु अपनी व्यापार-सामान्यीकरण की क्षमता के कारण वह अन्य विज्ञानों से भिन्न हो जाता है।

स्पेंसर तब इन सामान्य सिद्धान्तों पर कार्य करने लग जाते हैं। इनमें विकास और विनाश संबंधी नियमों की उनकी खोज सर्वाधिक विदित है। स्पेंसर ने विकासवाद पर डार्विन से पूर्व भी सोचा था। डार्विन का जीवविज्ञान इसी सामान्यीकरण के सिद्धान्त का एक विशिष्ट उदाहरण है। 'विकास सृष्टि का नियम है' इसे केवल प्राणीमात्र तक ही सीमित नहीं किया जा सकता (डार्विन ने फिस्के को 1874 में लिखे एक पत्र में यह कहा था कि कुछ बातों के अतिरिक्त मुझे स्पेंसर का सामान्यीकरण सिद्धान्त समझ में नहीं आता) स्पेंसर का कथन है कि विकास, पदार्थ का समाकलन और गति सहवर्ती विसरण (कानमिटण्ड डिसीपेशन) है। इन्हीं के बीच पदार्थ अपने अव्यक्त रूप से अपनी असम्बद्ध समावस्था से एक निश्चित असमवायी विषमावस्था तक पहुँचता रहता है और इसी बीच उपलब्ध गति

---

[1] संदर्भ फ्रेडरिक हैरीसन द्वारा द नाइन्टीन्थ सेन्चुरी में किया गया सशक्त आलोचनात्मक प्रहार पेलीकन वाल्यूम नाइन्टीन्थ सेन्चुरी ओपीनियन (सम्पादक एम गोडविन) में 'द घोस्ट आफ रिलीजन' नामक शीर्षक से पुनर्मुद्रित। द्रष्टव्य ब्रैडले का अभिमत 'स्पेंसर महोदय का अज्ञेय के प्रति रुख एक ऐसी विवश धारणा लगती है जिसमें ईश्वर के लिए कुछ इसलिए कहा गया है कि वह क्या बना है यह हम जान नहीं सकते।'

[2] संदर्भ जे॰ केमिस्की द एम्पिरिकल मेटाफिजिक्स आफ जार्ज हेनरी लेवीस, 1952 में जे॰ एच॰ आई॰ में प्रकाशित उनकी प्रमुख रचना प्रोब्लम्स आफ लाइफ एण्ड माइण्ड (1874 9)। द्रष्टव्य, ए॰ बेन जी॰ एच॰ लेवीस आन पोस्टूलेट्स आफ एक्सपेरिएंस (पत्र, 'माइण्ड' में 1876 में प्रकाशित)

निरन्तर एक ही सरणि में रूपान्तरित होती रहती है।[1] अपने ग्रन्थ सिन्थेटिक फिलोसोफी में उन्होंने जीवशास्त्र, मनोविज्ञान और समाजशास्त्र पर भी इन्हीं सिद्धान्तों को प्रयुक्त किया है। अजैव विज्ञानों को तात्कालिक महत्व का न मानकर छोड़ दिया है। और शायद उनके आलोचकों ने इसी कारण उन पर भीषण अभियोग लगाने में चूक नहीं की है। वे समूची परिस्थितियाँ जिनके कारण सिन्थेटिक फिलोसोफी को समसामयिक जगत में यश मिला था, इस बात के ज्ञान के साथ ही कि वह शीघ्रता से विकसित हो रहे जीवविज्ञान और समाजविज्ञानों के लिए तैयार की गई एक सुव्यवस्थित कुंजी है उसकी प्रसिद्धि पर बुरा असर पड़ने लगा।

मिल ने भी उनके विषय में यह लिखा कि स्पेन्सर ने जानबूझकर अपने आप को युग नवीनतम रूप से प्रचलित विकासवाद के सिद्धान्त की ऐसी शकल में ढाल दिया है जो बहुत अंशों में उनकी विचारधारा से मेल खा रही थी। उनका नैतिक और दार्शनिक क्षेत्र में दिया हुआ योगदान अभी भी आकर्षक है। लेकिन दर्शन का गहन चर्चा के लिए स्पेन्सर को पढ़ना व्यर्थ है। वह उन्नीसवीं शताब्दी के एक असामान्य रूप से प्रसिद्ध व्यक्ति है।

निश्चय ही इनके अलावा कुछ अन्य विकासवादी दार्शनिक भी थे। इनमें अर्नेस्ट हैकल का नाम लिया जा सकता है। इन्होंने अपनी पुस्तक द रिडल आफ यूनीवर्स (1899) में डार्विन के बाद विकसित हुए प्रकृतिवाद पर अधिकृत सूचनात्मक तौर पर लिखा है जिसे आज भी काफी पढ़ा जाता है। उनमें डार्विन की सी न तो अनिश्चितता है और न घबराहट ही। प्राकृतिक चुनाव एक ऐसी गणिनात आवश्यकता है जिसके लिए और अधिक प्रमाण की जरूरत नहीं है। अपने आप को निरीश्वर-वादी घोषित किए जाने की आशंका में वह यह घोषणा करते हैं कि विकासवाद अब तक की खोजों में एक ऐसी खोज है जिसके द्वारा हम सभी की तमाम समस्याओं का हल प्रस्तुत हो जायगा। और नहीं तो कम से कम इतना तो होगा कि उन समस्याओं के निदान का एक मार्ग तो निश्चित हो जायगा। हैकल के लिए अनीश्वरवाद एक प्रकार की निगूहन वृत्ति (आब्स्क्यारण्टिज्म) के अतिरिक्त कुछ नहीं। इस प्रकार की निगूहन वृत्ति का आरोप उन्होंने अपनी पुस्तक फ्रीडम इन साइंस एण्ड टीचिंग (1878) में दु बोइस रेमण्ड पर लगाया है। लेकिन इस पुस्तक में उनकी आलोचना-दृष्टि बहुधा अपने साथी जीवशास्त्री आर० विरचव पर ही केन्द्रित रही है। इन महोदय ने उन्हीं दिनों धर्म के साथ समझौते की दृष्टि रक्खी थी। विरचव के विचारानुसार विज्ञान को अपनी दृष्टि सदैव तथ्यों पर रखनी चाहिए और अन्त-

---

[1] स्पेन्सर द्वारा प्रस्तुत इस सूत्र की आलोचना के लिए देखिए जे० वा नेचुरलिज्म एण्ड एग्नोस्टिसिज्म (1899) एच० एस० शल्टन स्पेन्सर्स फार आफ इवोल्यूशन (पी० आर० 1910)।

अनुभव द्वारा वस्तु के जिस रूप का हमें ज्ञान होता है, सत्य इससे परे की स्थिति है। और अगम्य के प्रति यह चेतना ही वह अवस्था है जिस पर धर्म टिका है।[1]

ऐसी अगम्य शक्ति के अनंत चेतना से अभिमण्डित होने के कारण, जो वर्णनातीत है, धर्म को अपना विशिष्ट अधिकार प्राप्त हुआ है। अपने विश्लेषण में ये बातें तो स्पेन्सर ने कह दीं लेकिन दर्शन का अपना उपयुक्त कार्य बताना अभी तक उनके लिए शेष रह गया। वे उसे विज्ञान के अंशतः संगठित ज्ञान के विपरीत पूर्णतः संगठित ज्ञान की सत्ता में अभिहित करते हैं। स्पेन्सर के अनुसार दार्शनिक विज्ञानों का संगठन सामान्य तत्वों की सर्वोच्च दशा खोजकर करता है और तब वह विभिन्न विशिष्ट विज्ञानों में उन सिद्धान्तों को भी प्रदर्शित कर सकता है। इस प्रकार उन्नीसवीं शती के बहुत से दार्शनिकों की भाँति (जी० एच० लेविस उसका एक उदाहरण है)[2] स्पेन्सर दर्शन को अनुभव प्रणीत खोजबीन मानते हैं—जिसकी आत्मा वैज्ञानिक तो है किन्तु अपनी व्यापक-सामान्यीकरण की क्षमता के कारण वह अन्य विज्ञानों से भिन्न हो जाता है।

स्पेन्सर तब इन सामान्य सिद्धान्तों पर कार्य करने लग जाते हैं। इनमें विकास और विनाश संबंधी नियमों की उनकी खोज सर्वाधिक विदित है। स्पेन्सर ने विकास वाद पर डार्विन से पूर्व ही सोचा था डार्विन का जीवविज्ञान इसी सामान्यीकरण के सिद्धान्त का एक विशिष्ट उदाहरण है। 'विकास सृष्टि का नियम है' इसे केवल प्राणीमात्र तक ही सीमित नहीं किया जा सकता, (डार्विन ने फिस्के को 1874 में लिखे एक पत्र में यह कहा था कि कुछ बातों के अतिरिक्त मुझे स्पेन्सर का सामान्यीकरण सिद्धान्त समझ में नहीं आता) स्पेन्सर का कथन है कि विकास, पदार्थ का समाकलन और गति सहवर्ती विसरण (कोनमिटेण्ड डिसीपेशन) है। इन्हीं के बीच पदार्थ अपने अव्यक्त रूप से अपनी असम्बद्ध समावस्था से एक निश्चित असमवायी विषमावस्था तक पहुँचता रहता है और इसी बीच उपलब्ध गति

---

[1] संदर्भ फ्रेडरिक हैरीसन द्वारा द नाइन्टीन्थ सेन्चुरी में किया गया सशक्त आलोचनात्मक प्रहार, पेन्गीकन वाल्यूम नाइन्टीन्थ सेन्चुरी ओपीनियन (सम्पादक एम गोडविन) में 'द पोस्ट आफ रिलीजन' नामक शीर्षक से पुनर्मुद्रित। द्रष्टव्य ब्रेडले का अभिमत 'स्पेन्सर महोदय का अज्ञेय के प्रति रुख एक ऐसी विवश घोषणा लगती है जिसमें ईश्वर के लिए कुछ इसलिए कहा गया है कि वह क्या बना है यह हम जान नहीं सकते।

[2] संदर्भ जे० केमिस्री द एम्पिरिकल मेटाफिजिक्स आफ जार्ज हेनरी लेवीस, 1952 में जे० एच० आई० में प्रकाशित उनकी प्रमुख रचना प्रोबलम्स आफ लाइफ एण्ड माइण्ड (1874 9)। द्रष्टव्य, ए० वन जी० एच० लेवीस आन पोस्टूलेटस आफ एक्सपेरिएन्स (पत्र 'माइण्ड' में 1876 में प्रकाशित)

निरन्तर एक ही सरणि में रूपान्तरित होती रहती है।[1] अपने ग्रन्थ सिंथेटिक फिलोसोफी में उन्होंने जीवशास्त्र, मनोविज्ञान और समाजशास्त्र पर भी इन्हीं सिद्धान्तों को प्रयुक्त किया है। अजैव विज्ञानों को तात्कालिक महत्व का न मानकर छोड़ दिया है। और शायद उनके आलोचकों ने इसी कारण उन पर भीषण अभियोग लगाने में चूक नहीं की है। वे समूची परिस्थितियां जिनके कारण सिंथेटिक फिलोसोफी को समसामयिक जगत में यश मिला था, इस बात के ज्ञान के साथ ही कि वह शीघ्रता से विकसित हो रहे जीवविज्ञान और समाजविज्ञानों के लिए तैयार की गई एक सुव्यवस्थित कुंजी है उसकी प्रसिद्धि पर बुरा असर पड़ने लगा।

मिल ने भी उनके विषय में यह लिखा कि स्पेंसर ने जानबूझकर अपने आप को युग नवीनतम रूप से प्रचलित विकासवाद के सिद्धान्त की ऐसी धकेल में छोड़ दिया है जो बहुत अंशों में उनकी विचारधारा से मेल खा रही थी। उनका नैतिक और दार्शनिक क्षेत्र में दिया हुआ योगदान अभी भी आवश्यक है। लेकिन दर्शन की गहन चर्चा के लिए स्पेन्सर को पढ़ना व्यर्थ है। वह उन्नीसवीं शताब्दी के एक असामान्य रूप से प्रसिद्ध व्यक्ति हैं।

निश्चय ही इनके अलावा कुछ अन्य विकासवादी दार्शनिक भी थे। इनमें अर्नेस्ट हैकल का नाम लिया जा सकता है। इन्होंने अपनी पुस्तक द रिडल आफ यूनीवर्स (1899) में डार्विन के बाद विकसित हुए प्रकृतिवाद पर अधिकृत सूचनात्मक तौर पर लिखा है जिसे आज भी काफी पढ़ा जाता है। उनमें डार्विन की सी न तो अनिश्चितता है और न घबराहट ही। प्राकृतिक चुनाव एक ऐसी गणितीय आवश्यकता है जिसके लिए और अधिक प्रमाणों की जरूरत नहीं है। अपने आप को निरीश्वरवादी घोषित किए जाने की आशंका में यह यह घोषणा करते हैं कि विकासवाद अब तक की खोजों में एक ऐसी खोज है जिसके द्वारा हम सभी की तमाम समस्याओं का हल प्रस्तुत हो जायगा। और नहीं तो कम से कम इतना तो होगा कि उन समस्याओं के निदान का एक भाग तो निश्चित हो जायगा। हैकल के लिए अनीश्वरवाद एक प्रकार की निगूहन वृत्ति (आब्सक्यारण्टिज्म) के अतिरिक्त कुछ नहीं। इस प्रकार की निगूहन वृत्ति का आरोप उन्होंने अपनी पुस्तक फ्रीडम इन साइंस एण्ड टीचिंग (1878) में दु बोइस रेमण्ड पर लगाया है। लेकिन इस पुस्तक में उनकी आलोचनदृष्टि बहुधा अपने साथी जीवशास्त्री आर० बिरचेव पर ही केन्द्रित रहा है। इन महोदय ने उन्हीं दिनों धर्म के साथ समझौते की दृष्टि रक्खी थी। विरचाव के विचारानुसार विज्ञान को अपनी दृष्टि सदैव तथ्यों पर रखनी चाहिए और चेतना–

---

[1] स्पेन्सर द्वारा प्रस्तुत इस सूत्र की आलोचना के लिए देखिए जे० वार्ड नेचुरलिज्म एण्ड एग्नोस्टिसिज्म (1899), एच०एस० शेल्टन स्पेंसर्स फोरमूला आफ इवोल्यूशन (पी० आर० 1910)।

सम्बन्धी सभी अनुमानों को चर्च या राज्य के लिए छोड़ देना चाहिए। दोनों संस्थाओं को यह अधिकार है कि वे चेतना सम्बन्धी ऊलजलूल मतवादों को प्रकाश में न आने दें।

हेकल को ऐसी कोई स्थिति स्वीकार्य नहीं है। सबसे पहले उन्होंने इस बात का प्रतिवाद किया कि तथ्यों एवं अनुमानों में तथा विज्ञान और दर्शन के बीच कोई विशद सीमारेखा खींची जा सकती है। सच्चा विज्ञान उनके अनुसार एक प्रकार का प्राकृतिक दर्शन है। उनका यह कथन ऐसे वक्त निश्चय ही चौंकाने वाला था। हीगलोत्तर स्कूलवादियों के व्यापक अनुमानों और प्राकृतिक दर्शन में साम्य माना जाने लगा था। इसलिए उनके अनुसार ऐसे दर्शन को एकेश्वरवादी ही होना चाहिए था क्योंकि अब एकेश्वरवाद की कल्पना एक ऐसे अन्तिम सिद्धान्त के रूप में की जानी सम्भव हो गयी थी—जिसके जरिए यह देखा जा सकता था कि किस प्रकार विशाल रूप से निरन्तर हो रही घटनाओं के विकासक्रम को प्रकृति अपने में समेट रही है। यह भी कि आकाश के ग्रहों उपग्रहों की गति से लेकर उनके टूटकर गिरने तथा उनमें वनस्पति उत्पन्न होकर जीव और चेतना का उदय होना सभी एक ही तरह से कार्य-कारण के महान नियम से परिचालित है और अन्तिमतः सभी का सम्बन्ध परमाणु विज्ञान से ही है। यह बात यहाँ विशेष रूप से जोड़ देनी चाहिए कि इन परमाणुओं की हेकल के मतानुसार एक आत्मा[1] है। लेकिन उनकी यह धारणा कि आत्माएँ हरेक जगह हैं और ईश्वर स्पेस (वरिमा), पूरे पदार्थ संसार को सार रूप में अपने अन्दर समाहित करने वाली एक सत्ता है—किसी भी प्रकार से अध्यात्मवादियों की भावना को सन्तोष प्रदान नहीं कर सकी। अपना यह मन्तव्य हेकल ने अपनी पुस्तक 'लास्ट वर्ड्स आन ईवोल्यूशन’ (1905) में व्यक्त किया है।

यही विज्ञान-धर्म था। और इसे हक्सले के अनीश्वरवाद से भी अधिक अनादर मिला। उन्नीसवीं शती के भौतिकवाद के आलोचकों ने ही विशेष रूप से इसके विरुद्ध प्रहार किया।

---

[1] इङ्गलैण्ड में इसी प्रकार क्लिफर्ड ने घोषणा की थी कि सृष्टि केवल मनस्तत्व से ही निर्मित है। यही उनके निबन्ध 'आन द नेचर आफ थिंग्स इन देमसेल्वज’ (सर्वप्रथम प्रकाशित 1878 के माइण्ड में) और 1879 लेक्चर्स एण्ड ऐसेज के रूप में पुनः मुद्रित। उनके आलोचकों ने यह बात विशेषरूप से बताई थी कि क्लिफोर्ड का मनस्तत्व असाधारण रूप से अन्य लोगों की पदार्थ की परिभाषा से मिलता जुलता है। जी० जे० रोमान्स ने अपनी 1895 में प्रकाशित पुस्तक 'माइण्ड, मोशन एण्ड मोनिज्म’ में क्लिफर्ड के सिद्धान्त को मनोभूतवादी (पैन साइकिक) दिशा में विकसित किया है।

तो भी अमेरिका में विकासवाद का एक दूसरा ही रूप प्रस्फुटित हो गया ।[1] वहाँ इसका प्रचार करने वालों में जान फिस्क थे । उन्होंने अपनी दो पुस्तकों, **आउटलाइन्स आफ कोस्मिक फिलोसोफी** (1874) तथा **द आइडिया आफ गाड एज अफेक्टेड बाई माडर्न नोलेज** (1886) में उत्साह पूर्वक स्पेंसर द्वारा प्रणीत धर्म और विज्ञान के बीच स्पष्ट विरोधाभास के सिद्धान्त को अपनाया । लेकिन फिस्के के दर्शन में 'अज्ञेय' विशिष्टत एक क्रिस्तानी रूप ले लेता है । जो अनन्त और अखण्ड सत्ता सृष्टि की धड़कन में विद्यमान है । वह सजीव ईश्वर के अतिरिक्त और कुछ नहीं है । आरम्भ में तो विकासवाद प्रकृतिवाद का मजबूती से पल्ला पकड़े रहा लेकिन शीघ्र ही उसका उपयोग आदर्शवाद के लिए भी किया जाने लगा ।[2] इस प्रकार हम देखते हैं कि वैज्ञानिक खोजों से व्यापक तौर पर और असाधारण रूप में दार्शनिकों ने अपने इरादे सिद्ध किए हैं ।

उन्नीसवीं शती के भौतिकवाद की सम्पूर्ण विविधताओं में से सर्वाधिक प्रभावशाली मार्क्सवादियों का द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद रहा (यदि यह प्रभाव अनुयायी बनाने वालों की गणना की दृष्टि से मालूम किया जाय तो) किन्तु यदि ऐतिहासिकता की दृष्टि से देखा जाय तो यह प्रभाव एक आकस्मिक घटना के रूप में ही अपना महत्व रखता है । स्कोलास्टिसिज्म की भाँति जिसके अनुगामियों की संख्या हजारों में है, यह एक ऐसा दर्शन है जिसका समाज के एक विशिष्ट प्रकार के व्यक्तियों से निकट का सम्बन्ध है—इस संदर्भ में ये संस्थाएँ सोवियत संघ और साम्यवादी पार्टी हैं । इसका प्रभाव सिवाय उन दार्शनिकों के जो इस सिद्धान्त के प्रतिबद्ध हैं, और अपनी शर्तहीन आस्था दर्शाते हैं, सामान्यतः कम ही रहा ।

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का स्पष्टीकरण कर देना आसान नहीं है ।[3]

---

[1] एम०एच० फिश **इवोल्यूशन इन अमेरिकन फिलासाफी** (पी०आर० 1957), एच०डब्लू० श्नीदर **हिस्ट्री आव अमेरिकन फिलासाफी** (1946), पी०पी० वीनर **इवोल्यूशन एण्ड द फाउण्डर्स आव प्रैगमेटिज्म** (1949) ।

[2] जेम्स मैककोश की कुशलता के विषय में कुछ भी न कहकर हम यहाँ इतना ही करते हैं कि उन्होंने अपनी पुस्तक, '**द रिलीजस आसपेक्ट आफ इवोल्यूशन**' (1888) में डार्विन के प्राकृतिक चुनाव के सिद्धान्त को काल्विनवाद की एक जीवशास्त्री अभिव्यंजना माना था जिसमें ईश्वर को महान चुनावकर्ता माना गया है ।

[3] खुलासा दृष्टि के लिए द्रष्टव्य एम० कोनफोर्थ **डाइलेक्टिकल मेटीरियलिज्म** (3 भाग 1952–53), टी०ए० जक्सन **डाइलेक्टिक्स** (1938) आलोचक एम० ईस्टमैन की **मार्क्सिज्म, इज इट साइंस** नामक पुस्तक का नाम भी गिना है । एच० एक्टन **द इल्यूजन्स आफ द इपोक** (1955) । के० पोपर **व्हाट इज डाइलेक्टिक** (माइण्ड 1940) जे० एण्डरसन **मार्क्सिस्ट फिलोसोफी** (ए० जे० पी० 1935) । मार्क्स ने अपने विचार विस्तार में कहीं नहीं लिखे—एंगेल्स ही मार्क्सवाद का दार्शनिक व्याख्याता है ।

सम्बन्धी सभी अनुमानों को चर्च या राज्य के लिए छोड़ देना चाहिए। दोनों संस्थाओं का यह अधिकार है कि वे चेतना सम्बन्धी ऊलजलूल मतवादों को प्रकाश में न आने दें।

हैकल को ऐसी कोई स्थिति स्वीकार्य नहीं है। सबसे पहले उन्होंने इस बात का प्रतिवाद किया कि तथ्यों एवं अनुमानों में तथा विज्ञान और दर्शन के बीच कोई विशद सीमारेखा खींची जा सकती है। सच्चा विज्ञान उनके अनुसार एक प्रकार का प्राकृतिक दर्शन है। उनका यह कथन ऐसे वक्त निश्चय ही चौंकाने वाला था। हीगलोत्तर स्कूलवादियों के व्यापक अनुमानों और प्राकृतिक दर्शन में साम्य माना जाने लगा था। इसलिए उनके अनुसार इस दर्शन को एकेश्वरवादी ही होना चाहिए था क्योंकि अब एकेश्वरवाद की कल्पना एक ऐसे अन्तिम सिद्धान्त के रूप में की जानी सम्भव हो गयी थी—जिसके जरिए यह देखा जा सकता था कि किस प्रकार विशाल रूप में निरन्तर हो रही घटनाओं के विकासक्रम को प्रकृति अपने में समेट रही है। यह भी कि आकाश के ग्रहों, उपग्रहों की गति से लेकर उनके टूटकर गिरना तथा उनमें वनस्पति उत्पन्न होकर जीव और चेतना का उदय होना सभी एक ही तरह से कार्य-कारण के महान नियम से परिचालित हैं और अन्ततः सभी का सम्बन्ध परमाणु विज्ञान से ही है। यह बात यहां विशेष रूप से जोड़ देनी चाहिए कि इन परमाणुओं की हैकल के मतानुसार एक आत्मा[1] है। लेकिन उनकी यह धारणा कि आत्माएं हरेक जगह हैं और ईश्वर स्पेस (वरिमा) पूरक पदार्थ संसार को सार रूप में अपने अन्दर समाहित करने वाली एक सत्ता है—किसी भी प्रकार से अध्यात्मवादियों की भावना को सन्तोष प्रदान नहीं कर सकी। अपना यह मन्तव्य हैकल ने अपनी पुस्तक '**लास्ट वर्ड्स आन ईवोल्यूशन**' (1905) में व्यक्त किया है।

यही विज्ञान-धर्म था। और इसे हक्सले के अनीश्वरवाद से भी अधिक अनादर मिला। उन्नीसवीं शती के भौतिकवाद के आलोचकों ने ही विशेष रूप से इसके विरुद्ध प्रहार किया।

---

[1] इङ्गलैंड में इसी प्रकार क्लिफर्ड ने घोषणा की थी कि सृष्टि केवल मनस्तत्व से ही निर्मित है। यही उनके निबन्ध 'आन द नेचर आफ थिंग्स इन देमसेल्व्ज' (सर्वप्रथम प्रकाशित *1878* के माइण्ड में) और *1879* **लेक्चर्स एण्ड ऐसेज** के रूप में पुनः मुद्रित। उनके आलोचकों ने यह बात विशेषरूप से बताई थी कि क्लिफोर्ड का मनस्तत्व असाधारण रूप से अन्य लोगों की पदार्थ की परिभाषा से मिलता जुलता है। जी० जे० रोमान्स ने अपनी 1895 में प्रकाशित पुस्तक '**माइण्ड, मोशन एण्ड मोनिज्म**' में क्लिफर्ड के सिद्धान्त को मनोभूत वादी (पन साइकिक) दिशा में विकसित किया है।

तो भी अमेरिका में विकासवाद का एक दूसरा ही रूप प्रस्फुटित हो गया।[1] यहाँ इसका प्रचार करने वालों में जान फिस्के थे। उन्होंने अपनी दो पुस्तकों **आउटलाइन्स आफ कोस्मिक फिलोसोफी** (1874) तथा **द आइडिया आफ गाड एज अफेक्टेड बाई माडर्न नोलेज** (1886) में उत्साहपूर्वक स्पेंसर द्वारा प्रणीत धर्म और विज्ञान के बीच स्पष्ट विरोधाभास के सिद्धान्त को अपनाया। लेकिन फिस्के के दर्शन में 'अज्ञेय' विशिष्टतः एक क्रिस्तानी रूप ले लेता है। जो अनन्त और अखण्ड सत्, सृष्टि की धड़कन में विद्यमान है। वह सजीव ईश्वर के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। प्रारम्भ में तो विकासवाद प्रकृतिवाद का मजबूती से पल्ला पकड़े रहा लेकिन शीघ्र ही उसका उपयोग आदर्शवाद के लिए भी किया जाने लगा।[2] इस प्रकार हम देखते हैं कि वैज्ञानिक खोजों से व्यापक तौर पर और असाधारण रूप से दार्शनिक ने अपने इरादे सिद्ध किए हैं।

उन्नीसवीं शती के भौतिकवाद की सम्पूर्ण विविधताओं में से सर्वाधिक प्रभावशाली मार्क्सवादियों का द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद रहा (यदि यह प्रभाव अनुयायी बनाने वालों की गणना की दृष्टि से मालूम किया जाय तो) किन्तु यदि ऐतिहासिकता की दृष्टि से देखा जाय तो यह प्रभाव एक आकस्मिक घटना के रूप में ही अपना महत्व रखता है। स्कालास्टिसिज्म की भाँति, जिसके अनुगामियों की संख्या हजारों में है, यह एक ऐसा दर्शन है जिसका समाज के एक विशिष्ट प्रकार के व्यक्तियों से निकट का संबंध है—इस संदर्भ में ये संस्थाएँ सोवियत संघ और साम्यवादी पार्टी हैं। इसका प्रभाव सिवाय उन दार्शनिकों के जो इस सिद्धान्त के प्रतिबद्ध हैं और अपनी शर्तहीन आस्था दर्शाते हैं, सामान्यतः कम ही रहा।

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का स्पष्टीकरण कर देना आसान नहीं है।[3]

---

[1] एम॰एच॰ फिश इवोल्यूशन इन अमेरिकन फिलासाफी (पी॰आर॰ 1957), एच॰डब्लू॰ श्नीडर हिस्ट्री आव अमेरिकन फिलासाफी (1946), पी॰पी॰ वीनर इवोल्यूशन एण्ड द फाउण्डर्स आव प्रैगमेटिज्म (1949)।

[2] जेम्स मैककोश की कुशलता के विषय में कुछ भी न कहकर हम यहाँ इतना ही कहते हैं कि उन्होंने अपनी पुस्तक द रिलीजस आसपेक्ट आफ इवोल्यूशन (1888) में डार्विन के प्राकृतिक चुनाव के सिद्धान्त को काल्विनवाद की एक जीवशास्त्री अभिव्यंजना माना था जिसमें ईश्वर को महान चुनावकर्ता माना गया है।

[3] खुलासा दृष्टि के लिए द्रष्टव्य, एम॰ कोर्नफोर्थ डाइलेक्टिकल मेटीरियलिज्म (3 भाग 1952–53), टी॰ए॰ जैक्सन डाइलेक्टिक्स (1938), आलोचक एम॰ ईस्टमैन की मार्क्सिज्म, इज इट साइंस नामक पुस्तक का नाम भी गिना है। एच॰ एक्टन द इल्यूजन्स आफ द इपोक (1955)। के॰ पोपर व्हाट इज डाइलेक्टिक (माइण्ड 1940) जे॰ एण्डरसन मार्क्सिस्ट फिलोसोफी (ए॰ जे॰ पी॰ 1935)। मार्क्स ने अपने विचार विस्तार से कहीं नहीं लिखे—एंगेल्स ही मार्क्सवाद का दार्शनिक व्याख्याता है।

साधारणतः इसके आलोचक मार्क्स के भौतिकवाद को बूकनर एवं उनके अनुगामियों के मैकेनिकल मटीरियलिज्म या चिकित्सात्मक द्रव्यवाद के सिद्धान्त के समकक्ष ठहराते हैं। कदाचित मार्क्सवाद के लिए बौद्धिक वातावरण तैयार करने में बूकनर ने कुछ योग तो दिया ही था जबकि सत्य यह है कि फ्रेडरिक एंगेल्स ने अपनी 1888 में लिखी पुस्तक **लुडविग फ्योरबाख एण्ड द आउटकम आफ क्लासिकल जर्मन फिलोसोफी** में भूतवादी चिन्तकों को भद्दे फेरीवाले एवं छिछले उपदेशकों की संज्ञा दी है। बूकनर द्वारा विज्ञान के व्याज से 'चिंतन से मुक्त' दर्शन पर किए गए प्रहार के प्रति न तो मार्क्स और न एंगेल्स ही कोई सहानुभूति रखते हैं। वे तो केवल हीगल और फ्योरबाख इन दो विचारकों में जरूर अपनी आस्था रखते थे।

आज भी फ्योरबाख की मान्यताओं में जो सर्वविदित है वह है भूतवादी चिकित्सा पर यह कह कर किया गया उनका प्रहार कि मनुष्य की पहचान इससे होती कि वह किस प्रकार का खाना खाता है। देखें हुक (**फ्राम हीगेल टू मार्क्स**)। लेकिन यह सिद्धान्त उनके अन्तिम दिनों का था। मार्क्स और एंगेल्स की प्रेरणा के स्रोत फ्योरबाख वही थे जहां उन्होंने अपनी पुस्तक **ए क्रिटिक आफ द हीगलियन फिलोसोफी** (1839) में यह तर्क दिया था कि हीगल का तत्ववाद छद्मवेश में एक प्रकार का अध्यात्म ही है अध्यात्म को अंतिम प्रश्रय और उसे तार्किक सहारा देकर खड़ा करने की प्रवृत्ति। अपनी दूसरी पुस्तक **इसेंस आफ क्रिश्चियनिटी** (1841) में उन्होंने अध्यात्म को सामाजिक संबंधों को प्रकट करने का एक उलझा हुआ और रहस्यमय माध्यम माना है। उन्होंने कहा है कि मनुष्य को अपनी ही प्रतिश्रुति के रूप में बनाया है। धर्म मनुष्य के मन का एक स्वप्न है। हां लेकिन स्वप्न में कोई न कोई सत्य तो रहता ही है। स्वप्न में हम वास्तविक चीजों को कल्पना की मनमोहक शान में भीगी हुई देखते हैं—सामान्य रूप से दैनिक यथार्थ व आवश्यकताओं की रोशनी में चाहे हम उन्हें न देख सकें। फ्योरबाख का उद्देश्य अध्यात्मवादियों की आंख खोल देना ही था। कौंट की तरह वह अतिप्राकृतिकवाद की फण्टेसीज के स्थान पर मानवता के धर्म की स्थापना करना चाहते थे जो कि प्रेम पर आधारित हो।

फ्योरबाख ने मार्क्सवादियों के अनुरूप एक ही चोट में धर्म और तत्ववाद को नष्ट कर दिया है मात्र प्रकृति ही अनुभव द्वारा देखी जानी शेष है विचार द्वारा नहीं। लेकिन हीगल के प्रति अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते समय मार्क्स की दृष्टि में फ्योरबाख हीगल के दर्शन के क्षेत्र में किए गए योगदान के महत्त्व का अनुमान लगाने में असफल रहे—यह योगदान उनकी द्वन्द्वात्मक प्रणाली थी। यह द्वन्द्वात्मक क्या था? एंगेल्स ने इसके तीन नियमों की अपनी 1872 से 1882 के दौरान लिखी और 1927 में प्रकाशित हुई अपनी पुस्तक **डायलेक्टिक्स आफ नेचर** में चर्चा की है (1) परिमाण का गुण में तब्दील करने का नियम (2) विपरीत स्थितियों के अन्तःस्था का नियम (3) नकारात्मकता के नकार का नियम।

इनमें पहला नियम इस तथ्य उदाहरण द्वारा दिया जा सकता है कि जब पानी का तापमान कम हो जाता है जो कि परिमाण में परिवर्तन की ही अवस्था है—यह बर्फ में बदल जाता है अर्थात् अपने गुण में भी बदल जाता है।

एंगल्स द्वारा निर्धारित नियमों में पिछले दो विवादास्पद हो गए हैं। 1875 में लिखी अपनी पुस्तक **कोर्स आफ फिलोसोफी** में ड्यूहरिंग[1] ने इनकी कटु आलोचना की। वस्तुओं में कोई विरोधाभास नहीं होता बल्कि यह कहना भी बेहूदगी की हद है कि यथार्थ में भी विरोधाभास विद्यमान है। ड्यूहरिंग की इस कटु आलोचना का उत्तर एंगल्स ने 1878 में एंटी ड्यूहरिंग लिख कर दिया—उसमें एंगल्स ने बताया कि यह बात उस समय सत्य है जब हम वस्तुओं को जड़ मानें। गति अपने आप में एक विरोधाभास है। अति सरल और सामान्य भौतिक परिवर्तन एक वस्तु के दूसरे स्थान पर आने के बिना हो ही नहीं सकता पहले उसका वहाँ होना जरूरी है फिर उसका न होना। एंगल्स एक दूसरा उदाहरण प्रस्तुत करते हैं जो उनके विरोधाभास की नई व्याख्या प्रस्तुत करता है। प्रकृति द्वारा एक ओर बहुलता से पैदा किए गए कीटाणुओं के समूह और उनमें से केवल कुछ का ही बचे होकर जीवित रह पाना इन दोनों को वे विरोधाभास मानते हैं। इसके अतिरिक्त पूंजीवादी उत्पादन की विधि में तथा पूंजीवादी उत्पादन के लिए काम करने वाली शक्तियों में भी एक बड़ा विरोधाभास है।

नकारात्मकता के नकार को ड्यूहरिंग ने हीगल का शब्द-चमत्कार कहकर अमान्य घोषित किया है। लेकिन एंगल्स ने उत्तर में कहा है कि यह सिद्धान्त विज्ञान और दैनिक जीवन के साथ पूरी तरह मेल खाता है। बीजगणित में माने गए 'अ' पर विचार करें जिसको नकारने पर (–अ) बनता है, इसी का पुनः नकार तो (अ^2) बन जाता है। इस प्रकार मौलिक 'अ' का मान अब पहले से बड़ी अवस्था प्राप्त कर लेता है। इसके अलावा जौ का पौधा उसी बीज को नकारता है जिसमें से वह उत्पन्न होता है। यही नकार फिर बीजों की एक फसल उत्पन्न करता है जो इस प्रकार नकारात्मकता का नकार है—और पौधों पर अंकुरित बीज इसका उदाहरण है।

यह पर्याप्त रूप से स्पष्ट है कि विरोधाभास जैसी नकारात्मकता को बिना परिभाषा के अजीब ढंग से समझना पड़ेगा। इसमें (1) को (–1) से, (अ) को (–अ) से गुणा करना तथा बीज के रूप में विकसित होना ये सब नकारात्मकताएं

---

[1] ड्यूहरिंग की भौतिकवाद-सम्बन्धी अपनी व्यक्तिगत मान्यता थी। द्रष्टव्य एच० हाफडिंग **हिस्ट्री आफ माडर्न फिलोसोफी** खण्ड 2। अंग्रेजी अनुवाद (1900)।

है। *लकिन क्या पदाथ की काई ठोस परिभापा दी गई है?* इस सम्बध म माक्स और एगल्स के विचार फ्योरबाख के अधिक निकट पडते है। फयारबाख ने कहा था—मैं यह नही मानता कि द्रव्य विचार स उत्पन्न हुआ है। विचार द्रव्य स ही उत्पन्न हुआ है। *उस द्रव्य स जिसका अस्तित्व* मस्तिष्क से परे है। फ्योरबाख का यह सिद्धात जो या ता यथाथवाद है या भौतिकवाद, मार्क्सवादी भौतिकवाद का मूलाधार है। मार्क्सवादी भौतिकवाद प्रतिरूपवाद (रिप्रेजेण्टेशनलिज्म) जसी प्रचलित विचारधारा से काफी *साम्य रखता है जिसम यह माना गया है कि मस्तिष्क* म उत्पन्न विचार यथाथ वस्तुओ क ही प्रतिबिम्ब है।

इस तरह वी लनिन द्वारा लिखी पुस्तक **मैटीरियलिज्म एण्ड एम्पिरियो–क्रिटिसिज्म (1908)** मे पदाथ को एक ऐसी सत्ता माना गया है जो हमारी इन्द्रिय चेतना के ससग म आने हो सवेदना उत्पन्न करती है। अर्थात द्रव्य या पदाथ हमारी इन्द्रियो का स्पश करन वाली भौतिक सत्ता है।

तब बकल की आलोचना का भी उत्तर दना होगा। उन्हान लिखा था कि यदि पदाथ अपने आप म कोई सवेदना नही है और केवल मात्र सवेदना को उत्पन्न करन वाली सत्ता है तो हमारे पास इसके हो सकने का कोई प्रमाण नही होगा। एगल्स के मतानुसार बकल को तक द्वारा परास्त किया जा सकना कठिन है। लकिन तो भी यह बात सही है कि तक स (विचार से) पहल क्रिया ही थी। शुरु आत म तो कवल क्रिया ही थी वस्तुओ के व्यावहारिक उपयोग के समय यह भेद करना सीख जात है कि कौन स ऐसे विचार है जो भौतिक पदार्थों के प्रतिबिम्ब है और कौन न नही।[1] इसी सिद्धात का माक्स न पहले ही अपनी पुस्तक **थीसेज आन फ्योरबाख** (1845) मे प्रवर्तित किया था। मार्क्सवाद का यह पक्ष उस अथक्रियावाद (प्रग्मेटिज्म) के बहुत करीब खीच लाता है।[2]

सक्षेप म यही कहना ठीक है कि द्वद्वात्मक भौतिकवाद इस सिद्धान्त का *प्रतिपादन करता है कि* वस्तुए हमारी चेतना स अलग हैं और हमारे मन म प्रति बिम्बित होकर विचार क रूप म प्रकट होती है। ये भौतिक सत्ताए और उनस उत्पन्न तत्सबधी विचार निरतर एक परिवतनशील अवस्था को प्रकटाते हैं। जा एगल्स क अनुसार विरोधाभास का समाप्त करते हुए नकारात्मकता के नकार के सिद्धान्त को ही सिद्ध करता है।

---

[1] सन्भ जी० पाल लेनिन्स **थ्योरी आफ पर्सेप्शन** (एनालिसिस 1938)।

[2] एस० हुक के द्वारा प्रस्तुत माक्स की व्याख्या 1939 म प्रकाशित पुस्तक **टुवड स द अडरस्टेण्डिङ्ग** काल माक्स म। विशेषत उन्होन प्राग्मितिवाद से माक्स वाद का काफी अशो म सादश्य दिखाया है।

इस प्रकार मार्क्स प्राकृतिक विज्ञान के सूक्ष्म भौतिकवाद (द्रष्टव्य कपिटल 1867) का खण्डन करते है क्योंकि यह इतिहास और उसकी प्रक्रिया को नही मानता। यह भौतिकवाद, प्राकृतिक वस्तुओ का केवल मात्र अपरिवर्तनशील अणुओ का क्रमबद्ध हो जाना मानता है। हीगल द्वारा प्रस्तुत इसी परिवर्तन (फलक्स) के सिद्धान्त ने द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद को बहुत से वैज्ञानिको का समर्थन प्राप्त कराया है और वह भी उस वक्त जब विज्ञान परमाणुवाद[1] के पौराणिक रूपो को अमान्य कर रहा था। उन्नीसवी शती की उन अन्य भौतिकवादी मान्यताओ के विपरीत जो उस समय प्रचलित पदार्थ और शक्ति की परिभाषा करके ही प्रतिष्ठा प्राप्त कर गये द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद ने अपनी जटिलता के सहारे प्रस्तुत अवस्थाओ को एक लचीले हथियार के रूप में उपयोग किया।

---

[1] जे० बी० एस० हाल्डेन द मार्क्सिस्ट फिलोसोफी एण्ड द साइन्सेज (1938)। एच० लेवी की पुस्तक ए फिलोसोफी फार द माडर्न मैन (1938) इस के उदाहरण के रूप में प्रस्तुत की जा सकती है।

अध्याय 3

परमात्म की ओर

उन्नीसवीं शती का कोई भी जाना पहचाना वैज्ञानिक, दार्शनिक के रूप में अधिक महत्त्व का सिद्ध न हो सका। इसके बावजूद भी उनकी रचनाओं का दर्शन के विकास पर काफी अंशों में प्रभाव पड़ा ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार निम्नस्तरीय लोगों का अस्तित्व समाज के प्रतिष्ठित नागरिकों के जीवन का उनके समक्ष में आने का साहस न रखते हुए भी प्रभावित करना है। भौतिकवाद और अनीश्वरवाद को अब केवल कुछेक विचित्र व्यक्तियों का दूषित और निजी आविष्कार कह कर पदच्युत नहीं किया जा सकता था। दार्शनिकों ने इन्हें न अपनाने के लिए भरसक यह प्रयत्न किए थे कि ये इनकी उपलब्धियों को अपने क्षेत्र में प्रवेश न करने देने के लिए अपने दरवाजे और खिड़कियां बन्द कर लें। कुछ स्थानों पर तो दर्शन का केवल धर्म और परम्परागत नैतिकता की सुरक्षार्थ वैज्ञानिक दृष्टि के विरुद्ध स्थापित करने का कार्य चल रहा था।[1] और तो और दर्शन की अपनी सुरक्षा खतरे में पड़ गई थी। अस्फुट स्वरों में तो दर्शन पर बंजरता, खोखलेपन और विनाशी मूर्खता के आरोप भी लगाए जा रहे थे।

जर्मनी में तो हीगलवाद और भौतिक विज्ञानों का सहारा लेकर कान्तातर आदर्शवाद के समूचे ढांचे को बड़ी तीव्र गति से ढहाया जा रहा था और प्रत्येक स्थान पर एक पुकार उठ रही थी—कांट की ओर दुबारा लौट चलो। किन्तु अभी कांट के ये नव-समर्थक उनके दर्शन के बारे में एकमत नहीं हो रहे थे। कुछ लोगों ने केवल कांट के **क्रीटीक आफ प्योर रीजन** पर ही अपना ध्यान केन्द्रित किया था। और उसमें दी गई मानवीय ज्ञान की व्याख्या का समालोचनात्मक विश्लेषण ही किया था। उनके अनुसार एक वैज्ञानिक युग में दर्शन का सही कार्य इसी प्रकार का विश्लेषण करना ही था। कुछ उनके **क्रिटीक आफ प्रैक्टीकल रीजन** में प्रेरणा प्राप्त कर रहे थे। उनके अनुसार विज्ञान को इसमें नैतिकता और धर्म का सहचारी माना गया है। **क्रिटीक आफ जजमण्ट** में उनके अनुसार अनुभव द्वारा स्थापित ध्येय उद्देश्य और मूल सत्ता, विज्ञान और धर्म को समझने में एक ही तरह से मदद करते हैं।

---

[1] सन्दर्भ, ए एलिओटा **द आइडियलिस्टिक रिएक्शन अगेंस्ट साइंस** (अंग्रेजी संस्करण 1914), एम० एच० कारे **फेजेज आफ थाट इन इंगलैण्ड** (1949)

[2] यह सामूहिक पुकार सर्वप्रथम ओ० लीबमन की पुस्तक **काण्ट एण्ड द एपीगोनी** (1865) में सुनाई दे सकती है।

इन सभी विभिन्नताओं के कारण जर्मनी के नव-कांटवाद का एक सामान्य प्रभाव पड़ा। विज्ञान की नकल पर दार्शनिकों ने विशेषीकरण, ज्ञान-मीमांसा, मूल्यों के विश्लेषण के सिद्धांत और धर्म-दर्शन की ओर अपना ध्यान केन्द्रित करना आरम्भ कर दिया था। नए दार्शनिक सिद्धांतों को गढ़ने में उनकी रुचि खत्म हो गई थी।

विशेष तौर पर ज्ञान मीमांसा की ललक जर्मनी में नयी नयी थी, और इस ललक के साथ ही जर्मनी में ब्रितानी अनुभववादी दर्शन के प्रति रुचि जाग्रत हुई थी। क्योंकि इस सिद्धान्त का बल सदैव ही ज्ञान मीमांसा पर ही रहा था।[1] कुछ समय तक तो परम्परागत प्रबन्ध को कौतूहलवश ही उथला जाता रहा। यह अजीब बात है कि ब्रिटेन में जर्मन पद्धति पर जिस समय महत्वपूर्ण ढंग से विचार किया जाना प्रारम्भ हुआ था ठीक उसी समय जर्मन में भी ब्रितानी तरीके से विचार होना शुरू हुआ था और बाद में तो ब्रिटेन में तैयार किए गए तथा जर्मनी में धार लगाकर तीखे किए गए वैचारिक हथियारों से बीसवीं शती के ब्रितानी अनुभववाद ने आंग्लजर्मन आदर्शवाद पर विजय प्राप्त की थी।

किन्तु सारे जर्मन दार्शनिक ज्ञानमीमांसा के लिए तत्वमीमांसा पूर्णतया छोड़ देने को तैयार नहीं थे। इस चेतना के संवाहकों में से इंग्लैण्ड में सर्वाधिक प्रभावशाली आर० एच० लात्ज रहे थे।[2] अपनी पुस्तक *मेटाफीजिक्स (1879)* में उन्होंने लिखा

---

[1] उदाहरणार्थ द्रष्टव्य एफ० लंग की पुस्तक हिस्ट्री आफ मटीरियलिज्म (1886) जो कांटवादी विचारधारा की एक बहुत महत्वपूर्ण उपज है। लंग ब्रितानी दर्शन के एक सामान्य विद्यार्थी थे एवं जान स्टुअर्ट मिल के शिष्य थे। अध्याय चार भी देखें।

[2] अनुवादकों की असाधारण श्रृंखला द्वारा उनका अंग्रेजी में अनुवाद हुआ। इनमें ग्रीन और बोसांके, नेटलशिप, (तर्कशास्त्री) कांस्टेंस जोन्स और सर विलियम हैमिल्टन की पुत्री वगैरह थे। द्रष्टव्य, एच० जोन्स ए क्रिटीकल एकाउंट आफ दी फिलासफी आफ लोत्ज़े (1895)। नवहीगलवादी दृष्टि से यह लाज के प्रभाव के ज्वार को कम करने का एक अतुलनीय प्रयास है ई० ई० टामस लात्जेज थ्योरी आफ रीअलिटी (1821) या उनका 'माइण्ड' में प्रकाशित निबन्ध लात्जेस रिलेशन टू आइडियालिज्म (1915) एल० स्टालिन कान्ट, लोत्ज़े एण्ड रिसल, (अंग्रेजी अनुवाद 1889)। टी० एम० लिण्डसे हरमन लोत्ज़े (माइण्ड, 1876), जी० सन्तयाना लोत्जेज मोरल आइडियलिज्म (माइण्ड 1890), शिलर लात्जेज मोनिज्म (पी० आर० 1896)। जर्मनी के इस सम्बन्ध के साहित्य के लिए द्रष्टव्य एफ यूबरवेग ग्रु॰ दरिस देर गेस्शीट देर फिलोसोफी। लोत्ज़ की विचारधारा पर विस्तृत विवरण के लिए देखें, जे० ई० एडमन हिस्ट्री आफ फिलोसोफी अङ्क ३ (अंग्रेजी अनुवाद 1890)। लाज पर निबन्धों के लिए देखें आर० एडमन कृत ए शार्ट हिस्ट्री आफ लाजिक। इंग्लैण्ड में लाज के प्रभाव के लिए देखें पी० डीवाउ ट्न (1911) इन्फ्लुएन्स आफ लोत्ज़ेज फिलोसोफी आन एंग्लोमेरिकन (1932)।

कि जब चाकू में कोई वस्तु काटने का काम न लिया जाता हो तो उसे लगातार तीखा करना निरर्थक है। इसलिए करणीय यही है कि दार्शनिक समस्याओं को सीधे ढंग से हल किया जाय। बेहतर यही है कि बजाय यत्नपूर्वक ज्ञान के मार्ग को खोजने के सीधा ज्ञान प्राप्त ही क्यों न किया जाय।

तो भी कुछ अंशों में लोत्जे नवकाण्टवादियों द्वारा दर्शन प्रणाली (सिस्टम) पर किये जा रहे प्रहारों के समर्थक थे। भौतिकवादी और हीगलवादी इन दोनों ही प्रकार के विचारकों ने उनके मतानुसार उसी प्रकार की गलती की थी। उन्होंने न केवल कोशिश की बल्कि एक ही सिद्धान्त से अनुभव की बहुलता में बिखरे वैभव का व्यर्थ ही व्यक्त करना चाहा। चाहे यह कोई यन्त्रवत कार्य हो, भौतिकवादियों की तरह अथवा हीगलवादियों की तरह विचार की आवश्यक परिस्थिति हो। उनके अनुसार इस प्रकार से विचारक्रम का अंग बढ़ाना तत्त्वमीमांसा की सीमाओं तथा उसकी प्रकृति को गलत समझना ही है। तत्त्व-मीमांसा एक प्रकार से सृष्टिक्रम की अवस्थाओं के बारे में ऐसी जानकारी हासिल करनी है जिसके द्वारा उन सब वस्तुओं की व्याख्या होती है जिन्हें अस्तित्वमान और घटित होने वाला गिना जाता है। कोई घटना वास्तव में कैसे घटित होती है उसके लिए हमें तत्त्वमीमांसा का नहीं अपितु अनुभव का सहारा लेना चाहिए।

लोत्जे के दर्शन[1] को आत्मवादी यथार्थ की संज्ञा दी गई है—यथार्थ से यहाँ सही तात्पर्य है कि किसी घटना का घटित होना यान्त्रिक दशाओं पर अवलम्बित रहता है और आदर्शवाद का यही कि या तो घटनाएँ एक पूर्वयोजना के सहारे घटित होती हैं अथवा वे घटित होकर किसी उद्देश्य की पूर्ति करती हैं।[2] चूँकि लोत्जे ने डाक्टरी का प्रशिक्षण प्राप्त किया था इसलिए उनकी प्रारम्भिक रचनाओं में जिनमें

---

[1] लोत्जे कृत **सिस्टम आफ फिलोसोफी** जिसे वह अपने दार्शनिक विचारों का एक सिलसिलेवार और पूर्ण ग्रन्थ बनाना चाहते थे उनकी मृत्यु के कारण अधूरी रह गयी। उनकी केवल दो पुस्तकें ही प्रकाशित हो सकीं **लोजिक** (1874) तथा **मेटाफिजिक्स**। 1856 से 1864 तक लिखे गए उनके ग्रन्थ '**माइक्रोकोस्मस**' में उनके विचार अधिक लोकप्रिय ढङ्ग से प्रस्तुत हुए हैं।

[2] ब्रितानी दर्शन प्रत्यक्षीकरण के सिद्धान्त के पूर्वग्रह के कारण दार्शनिक विचारधाराओं को अपने प्रत्यक्षीकरण की दृष्टि से ही भौतिक पदार्थों का वर्गीकरण करता है। यथार्थवाद उनके लिए ऐसा दृष्टिकोण है जिसमें यह माना गया है कि भौतिक पदार्थ अदृश्यमान हो जाने पर भी अस्तित्व में होते हैं और आत्मवाद तो यह मानता है कि पदार्थ तभी अस्तित्वमान हैं जब वे दिखाई देते हैं। इस तरह हक्सले अपने आपको आदर्शवादी कहते हैं क्योंकि वे पदार्थ को संवेदना के आकलन के अलावा कुछ नहीं मानते।

जनरल फीजियोलोजी आफ बोडीली लाइफ (1851) नामक पुस्त[illegible] यथार्थवाद मिलता है और इसमे शारीरिक क्रियाओं के यांत्रिक विश्लेषण के प्रति गहरी आस्था दिखाई गयी है—और लोत्जे की इन प्रारम्भिक रचनाओ ने जमनी की भौतिकवादी विचारधारा को हिला देने मे काफी हाथ बटाया है। किन्तु जसा उन्होंने अपनी पुस्तक 'माइक्रोकोस्मस' मे स्वय कहा है कि उनका उद्देश्य एक ओर यह दिखाना है कि समष्टि तत्व किस सीमा तक सृष्टि म निहित यान्त्रिकता के नियम का पालन करता है तो दूसरी ओर यह भी कि यान्त्रिकता का यह नियम पूर्णतया उसी पर आधारित भी है। लोत्जे के मतानुसार यह इसलिए है क्योकि यान्त्रिकता के सभी नियम समष्टि म व्याप्त आत्मा की ही इच्छा प्रकट करते हैं। ये शिवत्व के परिमाण की एक दशा के अतिरिक्त कुछ नही है। अपने ही द्वारा लिये गए इस निष्कर्ष को तक द्वारा या अभ्यास मे वे सिद्ध नही कर सकते ऐसा उन्होंने स्वय माना है। मनुष्य की वृद्धि के लिए मूल्यो की सृष्टि तथा यान्त्रिकता की सृष्टि म जमीन आसमान का अन्तर है, उस सृष्टि म जिसमे पदार्थ हैं वसे ही, जसे कि वे हैं, क्योकि वसे ही होना उनके लिए सत्य है और उस सृष्टि म जिसम वे हैं, अपनी अवस्थानुसार हैं क्योकि यान्त्रिकता की शक्तियां उन्हें उन्हीं अवस्थाओं म रहने के लिए विवश कर रही है। लोत्जे के मतानुसार हमने जब जब भी पूर्व विश्वास के साथ उन दोनो के एकीकरण का प्रयास किया है, हमारी चेतना हमें स्पष्टत यह विश्वास देती रही है कि इस प्रकार के एकीकरण का ज्ञान होना असम्भव है। इसलिए जिन लोगों म लोत्जे के द्वारा बताए गए इस पक्के विश्वास की कमी है उन्होंने कभी इस तरीके से तो कभी उस तरीके मे अपनी विचार की एक ऐसी प्रणाली ईजाद कर लेने म सफलता हासिल की है जो उनके उद्देश्यों की पूर्ति करती हो। बहुधा लोत्जे को उन लोगो का पक्षधर माना गया है जो मूल्यो और तथ्यो म वे सकारात्मक तथा अवमानात्मक जाच पडताल म स्पष्ट अन्तर मानते है चाहे यह बात उनकी विचारधारा का मूलाधार रही है कि वे इस प्रकार की प्रतिवादी स्थितियो को समाप्त करें।

लोत्जे के बारे म बनी यह सामान्य धारणा पूर्णत उचित है कि वे सफल जाच पडताल की विशिष्टता के कारण रहे हैं चाहे यह जाच पडताल तर्कशास्त्र सम्बन्धी रही हो अथवा नतिकता, सौन्दर्यशास्त्र या मनोविज्ञान सम्बन्धी ही क्यो न रही हो (क्योकि यदि उन्हें मेधावी न माना जाय तो दर्शन म उनका अस्तित्व ही नही रहेगा)। वे अपनी जाच पडताल द्वारा कभी भी सृष्टि का एक समन्वयी स्वरूप गढ़ने म सफल नही हुए। उनमे सृष्टि म एकत्व ढूढने की तीव्र चाह थी फिर भी उनकी जाच पडताल की वृत्ति उन्हें सर्व द्वैत की ओर ले ही जाती थी। इसके अतिरिक्त उन्होंने जो कुछ भी बाद म लिखा है उसके कारण जितना यश उनको मिला उतना बहुत कम लोगो को मिला होगा फिर भी उनके अनुयायी एक प्रकार से नही के बराबर ही थे। उनके बारे म यह परिचित धारणा कि वे केवल आधे दार्शनिक थे, पूरी तौर से गलत नही है। उनके द्वारा प्रवर्तित दर्शन को आगे बढ़ाना

न केवल कठिन है अपितु असम्भव भी है। कदाचित ही उसका कोई परिणाम निकले क्योंकि मूलतः उनकी दृष्टि कोई विचारधारा बनाने की ओर थी ही नहीं। लोत्ज के ब्रह्माण्ड में प्रत्येक प्रकार की स्थिति को स्थान था। लेकिन उतनी सामर्थ्य से कोई अन्य उनके उस जगत में पदार्पण नहीं कर सका।

कुछ समय के लिए इङ्गलैण्ड की ओर लौटकर देखें तो हमें पता लगेगा कि वहाँ जो घटित हुआ वह विचित्र ही था। विलियम जेम्स ने इसका संक्षिप्त चित्रण इस प्रकार किया है। जर्मनी में हीगल के शव संस्कार के बाद अमेरीका व इङ्गलैण्ड में उसका नव प्रभाव जाग्रत हो जाना आश्चर्य की बात है। मैं सोचता हूँ कि उनकी विचारधारा का क्रिश्चियन धर्म के प्रति हमारी उदार दृष्टि के विकास में काफी महत्वपूर्ण प्रभाव होगा। इसने अध्यात्म के लिए चिर-अपेक्षित तत्व-मीमांसा का योगदान देकर रीढ़ की हड्डी का काम किया है। जबकि जर्मनी में हीगलवाद भौतिकवाद की प्रगति के साथ कदम से कदम मिलाने में असफल हो गया था। शायद सत्य यही है कि ब्रिटेन में उसका प्रवर्तन उसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए ही हुआ हो।[1]

हीगल के प्रति जाग्रत हो रही नई नई रुचि की पृष्ठभूमि में जो आध्यात्मिक वृत्ति काम कर रही थी उसका प्रदर्शन जे० एच० स्टर्लिंग की कृतियों में स्पष्ट रूप से हुआ है।[2] 1865 में प्रकाशित उनकी पुस्तक '**द सीक्रेट आफ हीगेल**' जिसके बारे में आलोचकों ने लिखा है कि इस पुस्तक में सीक्रेट (भेद) बड़ी चतुराई से छिपाकर रखा गया है के साथ ही हीगलवाद सर्वप्रथम अपेक्षाकृत अधिक बोधगम्य तथा सम्यक रूप से इंगलैंड में आया।

स्टर्लिंग अपने समर्थनात्मक इरादों के विषय में पूर्ण रूप से खुले हुए थे, बिना इस बात की पर्वाह किए कि वे सही हैं अथवा गलत। उन्होंने बड़े उत्साह से लिखा कि कांट तथा हीगल का काम आस्था को पुनः स्थापित करने के

---

[1] निश्चय ही अन्य दार्शनिकों ने हक्सले पर परम्परागत अध्यात्मवाद का सहारा लेकर प्रहार किया है। इनमें सबसे अधिक परिचित राबर्ट फ्लिण्ट की **थीइज्म** (1877) है जिसके तेरह संस्करण निकले। द्रष्टव्य, डी० मैकमिलन **लाइफ आफ रोबर्ट फ्लिण्ट** (1914)।

[2] द्रष्टव्य ए० एच० स्टर्लिंग **जे० एच० स्टर्लिंग हिज लाइफ एण्ड वर्क** (1912) यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि केयर्ड तथा वेनस की भाँति स्टर्लिंग महोदय भी स्काट थे। परम्परागत स्काटलैंड के दर्शन के प्रति असन्तोष ने ही योरपीय दर्शन में नवरुचि जाग्रत की थी।

अतिरिक्त कुछ नही था। यह आस्था ईश्वर के प्रति थी आत्मा की अमरता के प्रति थी और इच्छा शक्ति की स्वतन्त्रता के लिए थी, यही नही यह आस्था ईसाईयत के एक स्वत जात धर्म होने के प्रति भी थी। और यही कारण था कि उन्होंने हीगल और काण्ट की अपने पाठकों द्वारा पढ़े जाने की भी सिफारिश की। अमेरिका में तो सेण्ट लुई के हीगलवादियों के उत्साही समूह ने एक ओर वहाँ पर उनके सिद्धान्तों को सरल और स्वाभाविक मोड़ दिया था तो दूसरी ओर उन्होंने यह भी घोषणा की थी कि हीगल ने राजनीति में निहित तीन मुखों वाले दैत्य को, धर्म में निहित परम्परामुखता को, तथा विज्ञान में निहित प्रकृतिवाद को समाप्त कर दिया है।[1] ये सब अपेक्षाएं कालान्तर में समाप्त होनी ही थी। नव हीगलवादियों ने अपना एक अलग दार्शनिक आन्दोलन खड़ा कर दिया था जो उदारतम ईसाइयों की मान्यताओं में भी काफी परे था। लेकिन यह बात सही थी कि इस प्रकार की अवस्थाओं का व्यापक तौर पर स्वागत हुआ तो उसके कारण ब्रिटेन में उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों में आदर्शवाद के प्रति एकाएक रुचि जाग्रत हो गई, इस बात में भी इन्कार नही किया जा सकता।

निश्चय ही एकाएक उपस्थित हो जाने वाली इस स्थिति पर अतिशयोक्तियां की गई और की भी जा सकती थी। इससे पूर्व दो बार आदर्शवाद इंगलैण्ड में प्रचलित हुआ था दोनों ही अवसर पर भौतिकवाद के बढ़ते हुए चरणों से बचाव के रूप में। पहले अवसर पर कैम्ब्रिज के प्लेटोवादी, डेकार्ट और प्लेटो की सहायता से 17वीं शती में विकसित हुई यान्त्रिकता एवं अनीश्वरवादी विचारधाराओं के विरुद्ध संघर्ष करते रहे। दूसरे अवसर पर न्यूटन द्वारा प्रणीत विज्ञान से उपजे भौतिकवाद एवं देववाद द्वारा बर्कन की विचारधारा को काफी धक्का लगा। यद्यपि आदर्शवाद की कोई परम्परा अब तक ब्रिटेन में विद्यमान नही थी तो भी उसका समर्थन करने वालों की वहाँ कमी नही थी। साहित्यिक विचारकों ने जिनमें

---

[1] [illegible] जे० एच० म्योरहेड प्लेटोनिक ट्रेडीशन इन एङ्ग्लोसैक्सन फिलोसोफी (1931) में हीगलवाद के इङ्गलैंड और अमरीका में प्रवर्तित होने के बारे में विस्तार से वर्णन है। अन्य उपलब्धियों में सेण्ट लुई हीगलवादी द जर्नल आफ स्पेकुलेटिव फिलोसोफी जैसी पत्रिका की स्थापना करने के लिए जिम्मेदार थे। यह पत्रिका (1867) एंग्लोसैक्सन जगत में अपनी तरह की पहली ही थी। द्रष्टव्य पी० आर० एण्डरसन और एम० एच० फिश द्वारा लिखित फिलोसोफी इन अमेरिका फ्राम दी प्यूरिटन्स टु जेम्स (1939)। जे० एल० ब्लाउ मैन एण्ड मूवमेण्ट्स इन अमेरिकन फ़िलोसोफी (1952), जी० वाट कनिंघम द आइडियलिस्ट आर्गूमेण्ट इन रीसेण्ट ब्रिटिश एण्ड अमेरिकन फिलोसोफी (1933)। डब्लू० टी० हैरिस सेण्ट लुई हीगलवाद के नेता थे।

कालरिज तथा कार्लाइल (इंगलैंड) और एमर्सन (अमरीका) आदि सम्मिलित थे—'द सीक्रेट आफ हीगल' के प्रति रुचि जाग्रत करनी आरम्भ की थी। यह शीर्षक ही एक बाह्य स्थिति की ओर संकेत करता था। इस बात का आभास देता था कि हीगल में अवश्य ही कुछ न कुछ था। और प्रमुख विचारधारा के रूप में प्रवर्तित हो जाने में पूर्व दो उल्लेखनीय व्यक्ति इंगलैण्ड में आदर्शवादी विचारक थे। ये जे० एफ० फेरियर और जान ग्रोटे थे।[1] फरियर एक ऐसे विद्वान[2] थे, जिन्हें हीगल और शैलिंग की कृतियों का कुछ परिचय था और जिन्हें बर्कले की विचारधारा के प्रति भी रुचि थी—अब तक बर्कले की विचारधारा को लोगों ने अवहेलना कर रखा था। अपनी पुस्तक इन्स्टीट्यूट्स आफ मैटाफिजिक्स में (1854) वह एक ऐसे दार्शनिक के रूप में प्रकट हुए हैं जिन्हें परम तत्त्व (एब्सोल्यूट) की खोज है। उनके अनुसार परमात्म स्पष्ट अनासक्त मुक्त सात्त्विक, शुद्ध एवं निर्विकल्प सत्ता है। ब्रिटेन में निश्चय ही इस प्रकार की साहसिक विचारधारा बहुत न्यून देखने में आती है शायद इसका कोई पूर्व सूत्र इंगलैंड में नहीं मिलता। यूरोप में चाहे इसका प्रचलन हो गया था। फेरियर की विचार प्रणाली भी इसी प्रकार अपराम्परागत थी। ब्रितानी दर्शन ने सदैव इस बात पर गर्व किया है कि वहाँ जन्मे विचारक लचीली अनौपचारिक और दार्शनिक भाषा को गढ़ने के प्रति लापरवाह रहे हैं जब कि फरियर ने प्रयास करके अपने विचारों को प्रामाणिकता की एक अटूट शृंखला में आबद्ध कर दिया था। ये विचार पूर्ण रूप से तथ्यों पर आधारित थे। इन तथ्यों की परिभाषा उन्होंने यह की थी कि ये किसी भी अकल्पनीय स्थिति के प्रतिकूल हैं—परस्पर विरोधाभास से लीन हैं असंगति से रहित और सम्भव है।

उनके निष्कर्ष कदाचित कम आश्चर्यजनक थे। कांट जियन सिद्धान्त जिन्होंने ब्रिटेन में एक व्यापक स्वीकृति प्राप्त की थी से आरम्भ करके उन्होंने यह प्रमाणित

---

[1] कालरिज से लेकर ब्रेडले तक आरम्भ हुए इस आन्दोलन के लिए द्रष्टव्य म्योरहेड और जे० प्यूमस कृत आइडियलिज्म इन इंगलैण्ड फ्राम कालरिज [illegible] ब्रेडले (1955)

[2] ई० एस० हाल्डेन जे० एफ० फरियर (1899), जी० एफ० स्टाउट फिलोसोफी (वोटिवा टेबेला (1911) में)। लेक्चर्स इन अर्ली ग्रीक फिलोसोफी एण्ड रिमेन्स (1866) नामक रचना उनकी महत्त्वपूर्ण कृति मानी जाती है। मिल द्वारा फरियर पर की गई टिप्पणी मनोरंजक है उनके विचारधारा के तंतु इतने प्रभावशील ढङ्ग से बुने गए हैं और इतने आतंक डालने वाले हैं कि लगभग उन्हें एक कलाकृति की संज्ञा में रखा जा सकता है। उनका सारा दर्शन वृत्ताकार तर्कों का एक अद्वितीय नमूना पेश करता है और काव्य के समीप होने पर भी उन्हें दर्शन समझा जा रहा है।

करने की कोशिश की कि अधिक से अधिक हम जितना जान सकते है वह न तो शुद्ध पदार्थ है न शुद्ध आत्म, किन्तु पदार्थ को जानता हुआ आत्म है। दूसरे यह भी कि भौतिक पदार्थ की भांति इसका अस्तित्वमान होना कम से कम सम्भव है किन्तु प्रकट में यही सबसे ज्यादा होने की स्थिति में है। मस्तिष्क स्वतन्त्र रूप से अस्तित्वमान परम सत्ता नहीं हो सकते क्योंकि वस्तु को अनुभव करने के कारण ही उनका अस्तित्व है और यह कहना कि परमात्म एक ऐसी सत्ता है जो हमारे ज्ञान से परे है, और जिसके बारे में हम बिल्कुल कुछ भी नहीं जानते, फरियर के मतानुसार यह मानने के बराबर है कि हम किसी सम्भव ज्ञान के उपकरण को नहीं जान सकते। यह बात स्पष्टतः स्वीकरणीय है कि हम कैन्सर के कारण से परिचित नहीं है किन्तु यह उसी समय है जब उसका कोई न कोई कारण है और उससे अनभिज्ञ है और कारण को जान सकने की स्थिति विद्यमान है।

यह निष्कर्ष विशिष्टतः ब्रितानी है क्योंकि इसके द्वारा ज्ञान का उपकरण-सापेक्ष माना गया है और यही सत्य के ज्ञान की कुंजी है। फरियर का दर्शन सामान्य बुद्धि से किसी प्रकार मेल नहीं खाता था।

स्काट विचारधारा के एक महान प्रवर्तक टामस रीड के बारे में फरियर का यह मत है (कदाचित यह इसलिए भी है कि स्वयं स्कोटलैंड में प्रोफेसर होने के कारण ही उन्होंने ऐसा लिखा) कि अपने मन्तव्यों में नेक होने तथा दर्शन के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों में श्रेष्ठतम योग्यता रखने वाले टोमस रीड में तार्किक अनुमान सम्बन्धी योग्यता नहीं थी—निश्चय ही उनका मस्तिष्क अदार्शनिक था, जिसका सामान्य बुद्धि वाले पाठकों को प्रसन्न रखने के लिए किया गया उनके द्वारा उपयोग अपनी सूझ-बूझ और नवीनता के कारण अतुलनीय माना जा सकता है। फरियर के मन में सामान्य व लोकप्रिय रुचियों की कामचलाऊ, किलेबन्दियों के प्रति एक गहरी घृणा थी जिसके परिणाम से ब्रिटेन में दर्शन के नये स्वर प्रकटने लगे थे। बाहरी क्षेत्रों में अब ब्रितानी दर्शन के प्रति यह अपेक्षा और औत्सुक्य स्वाभाविक था कि कैसे उसका विकास ठोस तथ्यों पर हो रहा है। और धीरे-धीरे सामान्य रुचि के अनुकूल प्रस्तुत की जाने वाली दार्शनिक विचारधारा के प्रति एक अनिच्छा का भाव सभी क्षेत्रों में विकसित हो रहा था।

जान ग्रोट यद्यपि इतना क्रांतिकारी नहीं था तो भी उसकी कृति **एक्सप्लोरेशियो फिलोसोफिका भाग 1** अपने उपशीर्षक रफ नोटस आन माडर्न इण्टेलेक्चुअल साइन्स (1865) के साथ घर घर में विकसित हो रहे आदर्शवाद का मनोरंजक नमूना है। जैसा कि इसके शीर्षक से ध्वनित है यह अपने आप में एक पूर्ण कृति नहीं है। इसके अधिकांश भाग में मिल, हैमिल्टन ह्वेवेल और फरियर आदि पर समालोचनात्मक निबन्ध हैं किन्तु विज्ञान को अपना अपेक्षित दर्जा दिलवाने के इनके

प्रयास से इनका सामान्य मन्तव्य प्रकट हो जाता ही है। लात्जे की भांति ग्रोट भी चाहते थे कि सभी प्राकृतिक वैज्ञानिकों को यान्त्रिक विश्लेषण के जरिए ही आगे बढ़ना चाहिए और उन्हें उसके दार्शनिक परिणामों की कोई चिन्ता नहीं करनी चाहिए। इसके बावजूद वे मिल के इस दृष्टिकोण का प्रबल विरोध करते हैं कि वैज्ञानिक प्रणाली का प्रयोग नैतिक विज्ञानों पर भी वैसे ही किया जा सकता है। *शारीरिक प्रक्रियाओं से परे मानवी भावनाएं कोई भौतिक पदार्थ नहीं हैं इसलिए* ग्रोटे के मतानुसार वे विज्ञान के क्षेत्र से बाहर हैं।

उनके अनुसार विज्ञान, वस्तुओं के बारे में ज्ञात तथ्यों के आधार पर सूक्ष्म अध्ययन करने का नाम है। इस प्रकार का सूक्ष्मीकरण मानवीय भावनाओं के बारे में किया जाना असम्भव है। हां, दर्शन की दृष्टि से उनकी ज्ञातव्यता ही उनकी वास्तविक एवं मूल अवस्था के सम्बन्ध में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रश्न है। अब हम पदार्थों पर इस दृष्टि से विचार करते हैं तो ग्रोट के मतानुसार हम इसीलिए उन्हें जान सकते हैं क्योंकि उनमें हमारी बुद्धि के साथ जुड़ जाने का एक गुण विद्यमान रहता है। दूसरे शब्दों में वे इसीलिए ज्ञातव्य हैं क्योंकि वे स्वयं में विवेक–सम्पृक्त हैं। इसका अर्थ यही हुआ कि उनमें स्वयं में अपना मस्तिष्क है—ग्रोटे के मतानुसार यही एक ऐसा निष्कर्ष है जो हमें इस ब्रह्माण्ड के साथ एक कुटुम्ब के रूप में जोड़ता है। मिल द्वारा प्रदर्शित केवल संघटनात्मक आत्मा, जो हमें एक अकथनीय एवं कष्ट–प्रद व उजाड़ अवस्था में छोड़ देती है, के विरोध में ग्रोटे ने यह सान्त्वनात्मक बात कही। इस ब्रह्माण्ड के साथ कुटुम्ब की यह भावना जो हमें इतनी अनुभूति प्रदान करती है कि इस ब्रह्माण्ड की रचना स्वयं भी की जा सकती है—आदर्शवादी दर्शन के उद्देश्य को अत्यन्त शक्तिशाली ढंग से पुष्ट करती है। ग्रोटे की इस सम्बन्ध में की गई उक्तियां काफी मुखर हैं।

लेकिन न तो ग्रोटे की भी नल्वी[1] और न फरियर जैसा विशद प्रमाणीकरण इस

---

[1] केम्ब्रिज भावना को समाहित करती कदाचित ग्रोटे की यह सर्वप्रथम विचार धारा है। *वे केम्ब्रिज विश्वविद्यालय में नैतिक दर्शन के प्रोफेसर थे। इस नैतिक दर्शन* ने अपना चरमोत्कर्ष जी० ई० मूर की कृतियों में प्राप्त किया है।

मूर का मनीषीपन उनके द्वारा प्रयुक्त बोलचाल की भाषा से युक्त प्रचार धारिक तथ्य उद्धरणपूर्ण शैली, उनकी तत्त्व, विशिष्ट किन्तु विद्वत्ता के बोझ से मुक्त आलोचना उनका सामान्य आदमी के समझने योग्य भाषा का प्रयोग करने के प्रति जोर, इन सभी बातों में झलकता है। कुछ स्थलों पर तो वे मौलिक हैं, जब वे परिचय द्वारा ज्ञान और किसी वस्तु के बारे में ज्ञान के अन्तर की चर्चा कर रहे होते हैं जिसका प्रवर्तन बाद की केम्ब्रिज विचारधारा का एक अङ्ग बन गया। ग्रोटे बहुत दृष्टियों से एक प्रभावशाली दार्शनिक रहे हैं, किन्तु उनका प्रभाव ऐसा है जिसे संक्षेप में नहीं कहा जा सकता।

ब्रितानी आदर्शवादी विचार प्रणाली में कहीं मिलता है। विदेशी प्रभावों के ज्वार ने उन्हें अपने साथ बहा लिया।[1] सातवीं दशाब्दी में ही सर्वप्रथम अनुवाद और टिप्पणियों पर बल दिया जाता रहा था। आक्सफोर्ड में बेंजामिन जोवेट द्वारा 1871 में किए गए प्लेटो के अनुवाद ने उनके विशिष्ट शिष्यों में उन्हीं के द्वारा समर्थित जर्मन आदर्शवाद से किसी प्रकार का कम प्रेम नहीं छोड़ा था। विलियम वलेस की पुस्तक द लाजिक आफ हीगल (1874) अनुवाद और टिप्पणी दोनों ही दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण थी। एडवर्ड केयर्ड ने कान्ट का एक विस्तृत अध्ययन 1817 में प्रस्तुत किया था। इनके द्वारा कान्ट को हीगल के प्रभाव के चश्मे से देखा गया है। 1833 में उन्हीं के द्वारा प्रकाशित संक्षिप्त किन्तु महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ हीगल में इन्होंने हीगल का अध्ययन प्रस्तुत किया।

केयर्ड की पुस्तक हीगल जिसमें हीगल के दर्शन के महत्त्व को समझाया गया है स्पष्टतः स्काट हीगलवादियों के प्रभावों और मन्तव्यों को ही प्रदर्शित करती है। केयर्ड की दृष्टि में हीगल सर्वप्रथम एक अध्यात्मवादी थे। उनकी विचारधारा प्रबल रूप में उत्तम मानवी जीवन जीने की व्यावहारिक दृष्टि से ही निर्मित हुई है। उनमें एक ऐसी भावना थी जिससे वे मानवी अस्तित्व के धार्मिक और नैतिक आधार को पुनः प्राप्त करना चाहते थे जिसे क्रान्तिवादी संदेहवाद ने ध्वस्त कर दिया था। और उनकी विचार प्रणाली अर्थात् उनकी द्वन्द्वात्मकता की विधि समन्वयवादी दृष्टि प्रस्तुत करती है। उनके मत में हीगल के लिए कोई ऐसी प्रतिवादी स्थिति नहीं है जिसका समन्वय न होता हो। निश्चय ही उच्चतर एकता की कोई भावना हमारे या प्रकृति के स्वभाव में निहित है, जो प्रतिवादी स्थितियों का समन्वय करवा देती है इसलिए यदि विज्ञान और धर्म में कोई विरोध है तो वह मात्र ऊपरी है। वास्तव में वे किसी उच्चतर एकता की सिद्धि में लगे हुए दो उपकरण हैं।

केयर्ड वास्तव में यह बताने की कोशिश करते हैं कि परम्परागत धर्म व भौतिकवादी विज्ञान के बीच की खाई को पाटा जा सकता है—यह एक ऐसे धर्मदर्शन से सम्भव है जो विज्ञान की इस बात का समर्थन करता है कि वैज्ञानिक नियमों के किसी प्रकार के अपवाद नहीं होते और धर्म की इस बात का कि आत्मा की या आदर्श की स्थिति ही सर्वोच्च है। इन ऊपर से विरोधी दिखने वाले सिद्धान्तों को यह कह कर जोड़ा जा सकता है कि वैज्ञानिक नियम अपने आपमें आत्मिक हैं। केयर्ड ने लिखा है कि—ऐसे विश्व में जो प्राकृतिक है पहले की भाँति अब यह दर्शन या दैवी तत्त्व

---

[1] द्रष्टव्य म्योरहेड की उपर्युक्त कृति। एफ० होआंग लोनीओहीगल्यिनिज्म एन एङ्गलेतेरी।

प्रयास से इनका सामान्य मन्तव्य प्रकट हो जाता ही है। लोत्ज़ की भाँति ग्रोटे भी चाहते थे कि सभी प्राकृतिक वैज्ञानिकों को यान्त्रिक विश्लेषण के जरिए ही आगे बढ़ना चाहिए और उन्हें उसके दार्शनिक परिणामों की कोई चिन्ता नहीं करनी चाहिए। इसके बावजूद वे मिल के इस दृष्टिकोण का प्रबल विरोध करते हैं कि वैज्ञानिक प्रणाली का प्रयोग नैतिक विज्ञानों पर भी वैसे ही किया जा सकता है। शारीरिक प्रक्रियाओं से परे मानवी भावनाएँ कोई भौतिक पदार्थ नहीं हैं इसलिए ग्रोटे के मतानुसार वे विज्ञान के क्षेत्र से बाहर हैं।

उनके अनुसार विज्ञान, वस्तुओं के बारे में ज्ञात तथ्यों के आधार पर सूक्ष्म अध्ययन करने का नाम है। इस प्रकार का सूक्ष्मीकरण मानवीय भावनाओं के बारे में किया जाना असम्भव है। हाँ, दर्शन की दृष्टि से उनकी ज्ञातव्यता ही उनकी वास्तविक एवं मूल अवस्था के सम्बन्ध में एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अंश है। अब हम पदार्थों पर इस दृष्टि से विचार करते हैं तो ग्रोटे के मतानुसार हम इसीलिए उन्हें जान सकते हैं क्योंकि उनमें हमारी बुद्धि के साथ जुड़ जाने का एक गुण विद्यमान रहता है। दूसरे शब्दों में वे इसीलिए ज्ञातव्य हैं क्योंकि वे स्वयं में विवेक-सम्पृक्त हैं। इसका अर्थ यही हुआ कि उनमें स्वयं में अपना मस्तिष्क है—ग्रोटे के मतानुसार यही एक ऐसा निष्कर्ष है जो हमें इस ब्रह्माण्ड के साथ एक कुटुम्ब के रूप में जोड़ता है। मिल द्वारा प्रदर्शित केवल संघटनात्मक आत्मा, जो हमें एक अकथनीय एवं कष्टप्रद व उजाड़ अवस्था में छोड़ देती है, के विरोध में ग्रोटे ने यह सान्त्वनात्मक बात कही। इस ब्रह्माण्ड के साथ कुटुम्ब की यह भावना जो हमें इतनी अनुभूति प्रदान करती है कि इस ब्रह्माण्ड की रचना स्वयं भी की जा सकती है—आदर्शवादी दर्शन के उद्देश्य को अत्यन्त शक्तिशाली ढंग से पुष्ट करती है। ग्रोटे की इस सम्बन्ध में की गई उक्तियाँ काफी मुखर हैं।

लेकिन न तो ग्रोटे की भी तल्खी[1] और न फरियर जैसा विशद प्रमाणीकरण इस

---

[1] कैम्ब्रिज भावना को समाहित करती कदाचित् ग्रोटे की यह सर्वप्रथम विचारधारा है। वे कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में नैतिक दर्शन के प्रोफेसर थे। इस नैतिक दर्शन ने अपना चरमोत्कर्ष जी० ई० मूर की कृतियों में प्राप्त किया है।

मूर का मनीषीपन उनके द्वारा प्रयुक्त बोलचाल की भाषा से मुक्त औपचारिक तथ्य, उद्धरणपूर्ण शैली, उनकी तल्ख विशिष्ट, किन्तु विद्वत्ता के बोझ से मुक्त आलोचना, उनका सामान्य आदमी के समझने योग्य भाषा का प्रयोग करने के प्रति जोर इन सभी बातों में झलकता है। कुछ स्थलों पर तो वे मौलिक हैं जब वे परिचय द्वारा ज्ञान और किसी वस्तु के बारे में ज्ञान के अन्तर की चर्चा कर रहे होते हैं जिसका प्रवर्तन बाद की कैम्ब्रिज विचारधारा का एक अङ्ग बन गया। ग्रोटे बहुत दृष्टियों से एक प्रभावशाली दार्शनिक रहे हैं, किन्तु उनका प्रभाव ऐसा है जिसे संक्षेप में नहीं कहा जा सकता।

पहली पीढ़ी के सभी आदशवादियों म सर्वाधिक प्रभावशाली टी० एच० ग्रीन थे। जेम्स के कथनानुसार ग्रीन की विचारधारा ने अन्य सब आदशवादियों की अपेक्षा उच सबधी उदारवादी दृष्टिकोण निर्माण करने म आधिभौतिक (तत्त्ववादी) रीढ़ की हड्डी का काम किया है—उनके इस दशन ने अपने समय के जिज्ञासु और लोकबुद्धि वाले आक्सफोर्ड के विद्यार्थियों को प्रबलरूप से प्रभावित किया। जैसा कि आर० जी० कॉलिंगवुड ने 1939 म प्रकाशित अपनी आटोबायोग्राफी म लिखा है ग्रीन की विचार-प्रणाली ने लोकजीवन म शिष्यों की एक ऐसी निर्माण परम्परा प्रवाहित की जो अपने साथ यह आस्था लिए थे कि जो दशन उन्होंने ऑक्सफोर्ड म पढ़ा है वह एक महत्वपूर्ण उपलब्धि थी और उनका ध्येय उसे व्यवहार म लाना था। इसी प्रकार की आस्था विभिन्न प्रकार के तत्कालीन राजनीतिज्ञों मे भी थी जिनमें एसक्विथ और मिलनर जैसे राजनीतिक थे, गोरो एव स्कॉट हॉलैण्ड जैसे पादरी थे और आरनोल्ड टायनबी जैसे समाजसुधारक थ। इस प्रकार के प्रभाव के जरिए ग्रीन की विचार प्रणाली 1880–

स्मरणाश (पी० बी० ए० 1921)। वे एक उत्साही और समथ अध्यापक थे—जन्म के वल्श थे, जिन्होंने अपने जीवनान्त तक केयड द्वारा प्रतिपादित हीगलवाद का प्रवतन किया (द्रष्टव्य ए फथ टेट इनक्वायरस 1922)। इसके लिए उन्हें उन तथाकथित नए विचारकों का विरोध करना पड़ा जो अपने आपको परमात्मवादी तथा वयत्तिक आदशवादी मानते थे। उनकी अत्यन्त महत्वपूर्ण कृति क्रिटिकल एग्जामिनेशन आफ लोत्ज़े फिलोसोफी (1895) है। वाटसन भी एडवर्ड कयर्ड के भाई जान केयर्ड की भाँति प्रमुखत धमदशन म रुचि रखते थ। जान कयर्ड के सबध मे देखें, सी० एल० बार कृत मेमोयर्स आफ प्रिंसिपल केयर्ड (1926)। म्यारहेड और मेकेन्ज़ी ने कयर्ड की आदशवादी परम्परा को वतमान शताब्दी की तीसरी दशाब्दी तक चलाते रहे उन्होंने इसका सबध राजनीतिक, नतिक तथा सामाजिक विचार-धाराओं के साथ स्थापित करते हुए बहुत समय बाद तक विकसित हुए विज्ञान और दशन के साथ भी उसे जोड़े रखा। किन्तु केयर्ड का दशन कभी वैसा हुआ और व्यवस्थित न रहा। और मकेन्ज़ी के हाथों म तो वह एक उदार मतवाद म विकसित हो गया। द्रष्टव्य जे० एस० मेकेन्ज़ी कृत एलीमेण्टस आफ कान्स्ट्रक्टिव फिलोसोफी (1917) और पी०बी०ए० म (1935) प्रकाशित म्योरहेड के स्मरणाश। म्योरहेड की अत्यन्त महत्वपूर्ण रचनाओं म उनका नीतिशास्त्र तथा दशन का इतिहास है। व लाइब्रेरी आव फिलोसफी एव कण्टम्पोररी ब्रिटिश फिलोसोफी (1924) नामक ग्रन्थों के सम्पादक के रूप म उन्होंने विभिन्न प्रकार के दाशनिकों को एक साथ लाकर खड़ा कर दिया है। कयर्ड की समन्वयवादी परम्परा का सदैव उन्हें स्मरण रहता था। म्यारहेड की आत्मकथा रिफ्लेक्शन्स बाई ए जर्नीमैन इन फिलोसोफी (मरणोपरान्त प्रकाशित, 1942) आदि आदि। इस युग म प्रकट हो रही नयी सामाजिक प्रवृत्तियों के निर्माण म आदशवादियों का क्या योगदान रहा यह बात म्योरहेड की इस आत्मकथा म देखी जा सकती है।

भौतिक शक्तियों का भेद करवाना और अधिक सम्भव है—हम आदर्श का कहीं भी प्राप्त करें इसके लिए यह आवश्यक है कि वह सब जगह प्राप्त हो। विशेष आत्मिक प्रक्षेप की घटनाओं को (जैसे कोई दैवी चमत्कार) जिन पर रूढ़िवादी धर्म अधिक बल देता है—अन्धविश्वास कह कर त्याग देना चाहिए। इस प्रकार के अन्धविश्वास की ऐसे जगत में आवश्यकता क्या है जो पूर्णतः आत्मवादी हो? परम्परागत अध्यात्मवाद असफलता से ईश्वर, आदमी और प्रकृति में भेद करता है। आदर्शवाद इसीलिए दरअसल सही दार्शनिक अध्यात्म है क्योंकि केयर्ड के मतानुसार वह इन तीनों में एक आत्मिक सत्ता को कार्य करते हुए देखता है। केयर्ड तथ्यों के जगत और मूल्यों के जगत जैसी परिचित धारणा को भी नहीं मानते। मूल्य वस्तुतः तथ्यों में ही सन्निहित हैं अन्यत्र कहीं नहीं, और प्रत्येक तथ्य का अपना मूल्य है।

केयर्ड के हीगलवाद का एक अन्य पहलू उनका विकास के सिद्धान्त पर जोर देना है। जिस उच्चतर सत्ता में प्रतिद्वन्द्वी विचारधाराएँ समन्वित हो जाती हैं वह एक एकात्मक सत्ता अपने आंगिक प्रक्रिया के विकास को ही प्रकट करती है। केयर्ड के मतानुसार धर्म का अध्ययन ऐतिहासिक दृष्टि से भी होना चाहिए। हम यह देखना है कि किस प्रकार धर्म आरम्भ से ही मनुष्य के जीवन में आकस्मिक शक्ति के रूप में कार्य करता रहा है। यही उनकी दो पुस्तकों **द इवोल्यूशन आफ रिलीजन** (1893) तथा **द इवोल्यूशन आफ थियोलोजी इन द ग्रीक फिलोसफी** (1904) के मूल कथ्य हैं। यह प्रश्न करना उनके अनुसार गलत है कि अमुक धर्म गलत है या सही? हमें देखना यह चाहिए कि सत्य को कितनी मात्रा में अमुक धर्म द्वारा अभिव्यक्ति मिली है और उसमें क्या विसंगतियाँ और अस्पष्ट धारणाएँ आज भी विद्यमान हैं।

डार्विन और काम्त के विषय में अन्दर से कुछ लिख सकने की स्थिति में केयर्ड अपने आप को इसलिए पाते हैं कि उन्होंने विकासवाद के सिद्धान्त की धारणा को एक बहुत बड़ा योगदान दिया है। उनकी इसी गहरी सहानुभूति ने अभिव्यक्ति की अद्भुत क्षमता ने तथा उनके प्रभावशाली व्यक्तित्व ने स्काटलैण्ड में हीगलवाद के प्रचार में काफी योग दिया। वे वहाँ पर 1866 से लेकर 1892 तक ग्लासगो विश्वविद्यालय में नैतिक दर्शन के प्रोफेसर थे। इंगलैण्ड में भी अपने ही गुरु जावेट के बाद उन्हें मास्टर आफ बलियल के रूप में प्रतिष्ठित किया गया।[1]

---

[1] केयर्ड और उसके सम्बन्ध में द्रष्टव्य एच० जोन्स एवं जे० एम० म्योरहैड कृत **द लाइफ एण्ड फिलोसोफी आफ एडवर्ड केयर्ड** (1921)। जे०एस० मकेन्जी **एडवर्ड केयर्ड एज ए फिलोसोफीकल टीचर** (माइण्ड 1909)। जोन वाटसन **द आइडियलिज्म आफ एडवर्ड केयर्ड** (पी० आर० 1909)। जोन्स, मूरहैड, मकेनजी एवं वाटसन केयर्ड के प्रमुख शिष्यों में से थे। जोन्स के लिए देखें, एच० डब्ल्यू० जे० हैथरिंगटन **लाइफ एण्ड लेटर्स आफ सर हैनरी जोन्स** (1924)। जे०एच०म्योरहैड के

पहली पीढ़ी के सभी आदर्शवादियों में सर्वाधिक प्रभावशाली टी० एच० ग्रीन थे। जेम्स के कथनानुसार ग्रीन की विचारधारा ने अन्य सब आदर्शवादियों की अपेक्षा उच्च मध्यवर्गी उत्तरदायी दृष्टिकोण निर्माण करने में आधिभौतिक (तत्त्ववादी) रीढ़ की हड्डी का काम किया है—उनके इस दर्शन ने अपने समय के जिज्ञासु और लोकबुद्धि वाले ऑक्सफोर्ड के विद्यार्थियों को प्रबलरूप से प्रभावित किया। जैसा कि आर० जी० कॉलिंगवुड ने 1939 में प्रकाशित अपनी आटोबायोग्राफी में लिखा है, ग्रीन की विचार प्रणाली ने लोकजीवन में शिष्यों की एक ऐसी निर्माण परम्परा प्रवाहित की जो अपने साथ यह आस्था लिए थे कि जो दर्शन उन्होंने ऑक्सफोर्ड में पढ़ा है वह एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि थी और उनका ध्येय उसे व्यवहार में लाना था। इसी प्रकार की आस्था विभिन्न प्रकार के तत्कालीन राजनीतिज्ञों में भी थी जिनमें एस्क्विथ और मिलनर जैसे राजनीतिज्ञ थे गोरो एवं स्कॉट हालैण्ड जैसे पादरी थे और आर्नोल्ड टायनबी जैसे समाजसुधारक थे। इस प्रकार के प्रभाव के जरिए ग्रीन की विचार प्रणाली 1880-

---

स्मरणांश (पी० बी० ए० 1921)। वे एक उत्साही और समर्थ अध्यापक थे—जन्म के वेल्श थे, जिन्होंने अपने जीवनान्त तक केयर्ड द्वारा प्रतिपादित हीगलवाद का प्रवर्तन किया (द्रष्टव्य ए फेथ देट इन्क्वायर्स 1922)। इसके लिए उन्हें उन तथाकथित नए विचारकों का विरोध करना पड़ा जो अपने आपको परमात्मवादी तथा वैयक्तिक आदर्शवादी मानते थे। उनकी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कृति क्रिटिकल एग्जामिनेशन आफ लोत्से फिलोसोफी (1895) है। वाटसन भी एडवर्ड केयर्ड के भाई जान केयर्ड की भाँति प्रमुखतः धर्मदर्शन में रुचि रखते थे। जान केयर्ड के संबंध में द्रष्टव्य, सी० एल० वार कृत मेमोयर्स आफ प्रिंसिपल केयर्ड (1926)। म्यारहेड और मकेन्जी तो केयर्ड की आदर्शवादी परम्परा को वर्तमान शताब्दी की तीसरी दशाब्दी तक चलाते रहे उन्होंने इसका संबंध राजनीतिक, नैतिक तथा सामाजिक विचारधाराओं के साथ स्थापित करते हुए बहुत समय बाद तक विकसित हुए विज्ञान और दर्शन के साथ भी उसे जोड़े रखा। किन्तु केयर्ड का दर्शन कभी कसा हुआ और व्यवस्थित न रहा। और मकेन्जी के हाथों में तो वह एक उदार मतवाद में विकसित हो गया। द्रष्टव्य जे० एस० मेकेन्जी कृत एलीमेण्ट्स आफ कान्स्ट्रक्टिव फिलोसोफी (1917) और पी० बी० ए० में (1935) प्रकाशित म्योरहेड के स्मरणांश। म्योरहेड की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रचनाओं में उनका नीतिशास्त्र तथा दर्शन का इतिहास है। व लाइब्रेरी आव फिलोसफी एवं कन्टम्पोरेरी ब्रिटिश फिलोसोफी (1924) नामक ग्रन्थों के सम्पादक के रूप में उन्होंने विभिन्न प्रकार के दार्शनिकों को एक साथ लाकर खड़ा कर दिया है। केयर्ड की समन्वयवादी परम्परा का सदैव उन्हें स्मरण रहता था। म्यारहेड की आत्मकथा रिफ्लेक्शन्स बाई ए जर्नीमैन इन फिलोसोफी (मरणोपरान्त प्रकाशित, 1942) आदि आदि। इस युग में प्रकट हो रही नयी सामाजिक प्रवृत्तियों के निर्माण में आदर्शवादियों का क्या योगदान रहा यह बात म्यारहेड की इस आत्मकथा में देखी जा सकती है।

म लेकर 1910 तक राष्ट्रीय जीवन क प्रत्येक भाग पर अपनी छाप अंकित करती रही[1]।

जान्स और बहुत स अन्य ब्रितानी आन्शवान्यिा की भाति ग्रीन एक सधे हुए अध्यापक थ यद्यपि उन्होन एक शिक्षाशास्त्री और समाजसुधारक क रूप म मुक्त रूप स व्यापक धरातल पर काय किया था। उन्होने अपन पीछ अपने तत्त्ववादी सिद्धान्तो का कोई भी पूणताप्राप्त वक्तव्य नही छोडा। उन्ह एक साचे म लान क लिए 1874 म प्रकाशित उनकी पुस्तक इण्ट्रोडक्शन टू ह्यूम्स ट्रीटीज आन ह्यूमन नेचर और 1883 म मरणोपरान्त प्रकाशित उनक ग्र थ प्रोलेगोमेना टू एथिक्स म उनकी विचारधाराओ का सम्पादन व आकलन किया जाना जरूरी था। इसके अतिरिक्त उनक कुछ ऐसे भाषण भी थ जो प्रकाशित नही हुए थे।

शुरू म ही इस सबध म एक बात पर बल दिया जाना आवश्यक प्रतीत होता है। ग्रीन को नवहीगलवाद कहन की एक परम्परा सी हो गयी थी लकिन हीगलवादी विचारधारा के प्रबल समथक मूलत कयडवादी थे ग्रीन नही थ। ग्रीन ने कयडवादियो की इसी आधार पर आलाचना भी की थी क्योकि ग्रीन क विचार म य लोग अनावश्यक

---

[1] ग्रीन के इस पक्ष क लिए द्रष्टव्य जे० ब्राउन्स कृत स्टडीज इन कण्टेम्पोरेरी बायोग्राफी (1905)। लकिन फिर भी कालिगवुड का मत है कि लोकजीवन पर हुए ग्रीन विचारप्रणाली के प्रभाव का पूण रूप स कभी भी नही बताया गया है। निश्चय ही ग्रीन निर्विवाद रूप स सब क्षेत्रो म लोकप्रिय थ। बारगोट एसक्विथ न अपनी 1980 मे प्रकाशित आटोबायोग्राफी म लिखा है कि जब उन्होंने जावट स पूछा था कि व ग्रीन को कितना चाहत थे तो फौरन ही उन्हे यह जवाब मिला था मैंने उन्ह कभी भी प्रेम नही किया। सबस अधिक उनके जीवन को उजागर करने वाले स्मरणांशो म आर० एल० नटलशिप की मेमोइस (ग्रीन की आकलित कृतियां, खण्ड 3 888) है जो अपन आप म एक महत्त्वपूण दार्शनिक कृति हो गई है। नटलशिप स्वय इस विचार प्रणाली के प्रतिभाशाली सदस्य थ। इनकी मृत्यु 47 वष की अवस्था म हो गई। उनकी भी बिखरी हुई कृतियो का सम्पादन ए० सी ब्रे डले क जीवन कथांश सहित फिलोसोफिकल लेक्चस एण्ड रिमेन्स (1897) नाम स प्रकाशित हुआ। 1896 म प्रकाशित फयरब्रादर की पुस्तक द फिलोसोफी आफ टी० एच० ग्रीन भी देख। ए० ज० बलफार का 1884 म माइण्ड म प्रकाशित निबन्ध ग्रीन्स मेटाफ्रिजिक्स आव नोलेज' ई० केयड" एट्रोडक्शन टू एसेज इन फिलोसोफिकल क्रिटिसिजम मे प्रकाशन (1883) एच० सिजविक द फिलासफी आव टी० एच० ग्रीन (माइ ड 1901) एच० बी० नाक्स ग्रीन्स रिफ्युटेशन आव आइडियलिजम (माइ ड 1900)। हम्फ्रे वाड क उपन्यास राबट एल्समेयर (1888) म ग्रीन मि० ग्र क रूप म देख जा सकते है।

रूप से हीगल के प्रभाव में आए हुए थे। (ब्रैडले ने ग्रीन पर टिप्पणी करते हुए लिखा है कि वे हीगलवादी नहीं थे और कुछ अंशों में तो हीगल के विरोध में थे।) जॉन केयर्ड की पुस्तक इण्ट्रोडक्शन टू द फिलोसोफी आफ रिलीजन (1880) के सम्बन्ध में ग्रीन ने अपनी एक टिप्पणी में लिखा है कि यदि अपने निष्कर्षों में नहीं तो अपनी विचार प्रणाली में केयर्ड हीगेल से बहुत अधिक प्रभावित लगने लगे हैं। वे हीगल के उस निष्कर्ष को कि स्वयं चेतन और आत्मिक सत्ता एक ही हैं और जो कुछ सत्य है अथवा तथ्य है वह उसी की अभिव्यक्ति के रूप में प्रकटता है, हम संसार के उपकरण हैं जो उसकी अभिव्यक्ति हैं किन्तु मूलतः ही हम इस भौतिक जगत के सचेत भोक्ता हैं—यही चेतना एक साथ ही हमें इस जगत का अंशी तथा हमें उससे असंपृक्त भी बनाती है। इसके साथ ही वे सारे तत्व जो हमें इस निष्कर्ष तक सहायक रहे अपर्याप्त ही थे इसलिए प्रारम्भ से अब तक इन सबको दुबारा से लिखना पड़ेगा।

खास तौर पर वे यह मानते थे कि हीगल द्वारा विचार पर दिया गया बल हीगलवादियों को यह धारणा बनाने के लिए विवश कर रहा था कि इस संसार में परिव्याप्त आत्मतत्व की सिद्धि इस बात से होती है कि हम वस्तु-जन्य विचारों के अतिरिक्त पीछे और किसी के बारे में सचेत नहीं होते। फेरियर के इस मत को कि कोई भी सच्चा आदर्शवादी बर्कले का मतानुयायी नहीं हो सकता वह लगातार विरोध करते रहे। इस बारे में सही दृष्टि किसी एक व्यक्ति के मन द्वारा प्राप्त की गई विश्व की जानकारी नहीं है बल्कि विश्व के जरिए एक समष्टिव्यापी मन की कल्पना करना है। इस प्रकार विश्व को अपने दर्शन का प्रारम्भिक सूत्र मानकर बहुत से अपने समय के विचारकों की भांति काण्ट की ओर ही लौटे हैं। उनका तार्किक विश्लेषण स्वयं काण्टवादी है या बहुधा प्लेटोवादी। उसमें प्लेटो की थिएटेटस वाली तर्क प्रणाली की झलक मिलती है—हीगलवादी प्रभाव उसमें नहीं हैं।

ग्रीन की पुस्तक इण्ट्रोडक्शन टू ह्यूम, आदर्शवादी परम्परा की एक स्थायी उपलब्धि है—और जे० एफ० मिल द्वारा सद्य प्रणीत अनुभववादी परम्परा से भली भांति प्रतिस्पर्धा कर सकती है। ग्रीन इस बात का प्रबल विरोध करते हैं कि यथार्थ रूप से होने का मतलब केवल संघटनात्मकता ही है—संघटनात्मकता तो हमारे अनुभवों की दी गई एक ऐसी अवस्था है जो हमें एकत्रित इन्द्रियबोध के कारण प्राप्त होती है। अधिक से अधिक जो अनुभव हम प्राप्त कर सकते हैं वे पहले से ही सम्बन्धों के आकलन मात्र हैं। उदाहरण के लिए मान लो यह कहा जाए कि हम सफेदपन की संवेदना का अनुभव हो रहा है तब इसे सफेदपन की संवेदना कहना ही इसे पहले से किसी अवस्था में सम्बन्धित कर देना है, चाहे वह उस पदार्थ से ही क्यों न सम्बन्धित हो जिसका वह गुण है। और यदि यह बात न मानकर यही मान लिया जाय कि हमारा वर्णन' हमारे पहले के इन संवेदनाओं की ही पुष्टि करता हुआ सफेदपन' का एक चित्र हमारे सामने रख रहा है तो भी पहले वाली अवस्थाओं में

से लेकर 1910 तक राष्ट्रीय जीवन के प्रत्येक भाग पर अपनी छाप अंकित करती रही[1]।

जोन्स और बहुत से अन्य ब्रितानी आत्मवादियों की भाँति ग्रीन एक सधे हुए अध्यापक थे यद्यपि उन्होंने एक शिक्षाशास्त्री और समाजसुधारक के रूप में मुक्त रूप से व्यापक धरातल पर कार्य किया था। उन्होंने अपने पीछे अपने तत्त्ववादी सिद्धान्तों का कोई भी पूर्णताप्राप्त वक्तव्य नहीं छोड़ा। उन्हें एक साँचे में लाने के लिए 1874 में प्रकाशित उनकी पुस्तक **इण्ट्रोडक्शन टू ह्यूम्स ट्रीटीज ऑन ह्यूमन नेचर** और 1883 में मरणोपरान्त प्रकाशित उनके ग्रन्थ **प्रोलेगोमेना टू एथिक्स** में उनकी विचारधाराओं का सम्पादन व संकलन किया जाना जरूरी था। इसके अतिरिक्त उनके कुछ ऐसे भाषण भी थे जो प्रकाशित नहीं हुए थे।

शुरू में ही इस सम्बन्ध में एक बात पर बल दिया जाना आवश्यक प्रतीत होता है। ग्रीन को नवहीगलवादी कहने की एक परम्परा सी हो गयी थी लेकिन हीगलवादी विचारधारा के प्रबल समर्थक मूलतः केयर्डवादी थे ग्रीन नहीं थे। ग्रीन ने केयर्डवादियों की इसी आधार पर आलोचना भी की थी क्योंकि ग्रीन के विचार में ये लोग अनावश्यक

---

[1] ग्रीन के इस पक्ष के लिए द्रष्टव्य जे॰ ब्राइस कृत **स्टडीज इन कन्टेम्पोरेरी बायोग्राफी** (1905)। लेकिन फिर भी कालिंगवुड का मत है कि लोकजीवन पर हुए ग्रीन विचारप्रणाली के प्रभाव को पूर्ण रूप से कभी भी नहीं बताया गया है। निश्चय ही ग्रीन निर्विवाद रूप से सब क्षेत्रों में लोकप्रिय थे। मारगोट एसक्विथ ने अपनी 1980 में प्रकाशित **आटोबायोग्राफी** में लिखा है कि जब उन्होंने जोवेट से पूछा था कि वे ग्रीन को कितना चाहते थे तो फौरन ही उन्हें यह जवाब मिला था मैंने उन्हें कभी भी प्रेम नहीं किया। सबसे अधिक उनके जीवन को उजागर करने वाले स्मरणांशों में आर॰ एल॰ नटलशिप की मेमोइर (**ग्रीन की आकलित कृतियाँ,** खण्ड 3 1888) है जो अपने आप में एक महत्वपूर्ण दार्शनिक कृति हो गई है। नटलशिप स्वयं इस विचार प्रणाली के प्रतिभाशाली सदस्य थे। इनकी मृत्यु 47 वर्ष की अवस्था में हो गई। उनकी भी बिखरी हुई कृतियों का सम्पादन ए॰ सी॰ ब्रेडले के जीवन कथांश सहित **फिलोसोफिकल लेक्चर्स एण्ड रिमेन्स** (1897) नाम से प्रकाशित हुआ। 1896 में प्रकाशित फेयरब्रादर की पुस्तक **द फिलोसोफी आफ टी॰ एच॰ ग्रीन** भी देखें। ए॰ जे॰ बलफार का 1884 में **माइण्ड** में प्रकाशित निबन्ध ग्रीन्स मेटाफिजिक्स ऑव नोलेज, ई॰ केयर्ड **एन इण्ट्रोडक्शन टू एसेज इन फिलोसोफिकल क्रिटिसिज्म** में प्रकाशन (1883) एच॰ सिजविक द फिलासफी आव टी॰ एच॰ ग्रीन (माइण्ड 1901) एच॰ बी॰ नाक्स ग्रीन्स रेफ्युटेशन आव आइडियलिज्म (माइण्ड 1900)। हम्फ्रे वार्ड के उपन्यास **राबर्ट एल्समेयर** (1888) में ग्रीन मि॰ ग्रे के रूप में देखे जा सकते हैं।

रूप में हीगल के प्रभाव में आए हुए थे। (ब्रैडले ने ग्रीन पर टिप्पणी करते हुए लिखा है कि वे हीगलवादी नहीं थे और कुछ अंशों में तो हीगल के विरोध में थे।) जान केयर्ड की पुस्तक इन्ट्रोडक्शन टू द फिलोसाफी आफ रिलीजन (1880) के सम्बन्ध में ग्रीन ने अपनी एक टिप्पणी में लिखा है कि यदि अपने निष्कर्षों में नहीं तो अपनी विचार प्रणाली में केयर्ड हीगल से बहुत अधिक प्रभावित लगने लगे हैं। वे हीगल के इस निष्कर्ष को कि स्वयं चेतन और आत्मिक सत्ता एक ही हैं और जो कुछ सत्य है अथवा तथ्य है वह उसी की अभिव्यक्ति के रूप में प्रकटता है, हम संसार के उपकरण हैं जो उसकी अभिव्यक्ति हैं किन्तु मूलतः ही हम इस भौतिक जगत के सचेत भोक्ता हैं—यही चेतना एक साथ ही हमें इस जगत का अंशी तथा हमें उससे असपृक्त भी बनाती है। इसके साथ ही वे सारे तत्व जो हमें इस निष्कर्ष तक सहायक रहे अपर्याप्त हो ये, इसलिए प्रारम्भ से अब तक इन सबको दुबारा से लिखना पड़ेगा।

खास तौर पर वे यह मानते थे कि हीगल द्वारा विचार पर दिया गया बल हीगलवादियों को यह धारणा बनाने के लिए विवश कर रहा था कि इस संसार में परिव्याप्त आत्मतत्व की सिद्धि इस बात से होती है कि हम वस्तुजन्य विचारों के अतिरिक्त पीछे और किसी के बारे में सचेत नहीं होते। फेरियर वे इस मत का कि कोई भी सच्चा आदर्शवादी बर्कले का मतानुयायी नहीं हो सकता यह लगातार विरोध करते रहे। इस बारे में सही दृष्टि किसी एक व्यक्ति के मन द्वारा प्राप्त की गई विश्व की जानकारी नहीं है बल्कि विश्व के जरिए एक समष्टिव्यापी मन की कल्पना करना है। इस प्रकार विश्व को अपने दर्शन का प्रारम्भिक सूत्र मानकर बहुत से अपने समय के विचारकों की भाँति काण्ट की ओर ही लौटे हैं। उनका तार्किक विश्लेषण स्वयं काण्टवादी है या बहुधा प्लेटोवादी। उसमें प्लेटो की थिएटेटस वाली नक प्रणाली की झलक मिलती है—हीगलवादी प्रभाव उसमें नहीं है।

ग्रीन की पुस्तक इन्ट्रोडक्शन टू ह्यूम, आदर्शवादी परम्परा की एक स्थायी उपलब्धि है—और जे० एफ० मिल द्वारा सद्य प्रणीत अनुभववादी परम्परा से भली भाँति प्रतिस्पर्धा कर सकती है। ग्रीन इस बात का प्रबल विरोध करते हैं कि यथार्थ रूप से ज्ञान का मतलब केवल संघटनात्मकता ही है—संघटनात्मकता हमारे अनुभवों की दी गई एक ऐसी अवस्था है जो हमें एकत्रित इन्द्रियबोध के कारण प्राप्त होती है। अधिक से अधिक जो अनुभव हम प्राप्त कर सकते हैं वे पहले से ही सम्बन्धों के आकलन मात्र हैं। उदाहरण के लिए मान लो यह कहा जाए कि हमें सफेदपन की संवेदना का अनुभव हो रहा है तब इसे सफेदपन की संवेदना कहना ही इसे पहले से किसी अवस्था में सम्बन्धित कर देना है, चाहे वह उस पदार्थ से ही क्यों न सम्बन्धित हो जिसका वह गुण है। और यदि यह बात न मानकर यह मान लिया जाय कि हमारा 'वर्णन' हमारे पहले के इन संवेदनाओं का ही [illegible] 'सफेदपन' का एक चित्र हमारे सामने रख रहा है तो भी पहले इसका [illegible]

उसका सम्बन्ध कायम करने से हमें कोई न रोक सकेगा। इसके अलावा इस एक संवेदना को सत्ता देने का अर्थ यही है कि हम उसे बहुत सी अवस्थाओं से अलग करके एक ऐसी पृष्ठभूमि से जोड़ रहे हैं जिसमें से ही उसे हमने चुना है और तब उसे संवेदना कहने का यही अर्थ है कि हम उसे सत्त्व ही किसी सावयव स्थिति से जोड़ते ही हैं। इससे निष्कर्ष यही निकला कि किसी के विषय में चर्चा करने का अर्थ उसका सम्बन्ध स्थापित करना है। इस प्रकार यह मान लेना कि संवेदना की सरलावस्था अपने आपमें मौलिक है और सत्य है अपने आपमें सत्य को निरर्थक सिद्ध करना है। एक ऐसा शून्य बनना है जिसके विषय में कुछ भी कहा जाना सम्भव नहीं है।'

ग्रीन के कथनानुसार 'सत्य या तो अगम्य निर्वचनीय नेति भाव है या सम्बन्धित सापेक्ष सत्ता है। अनुभववादियों तक ने यह बात तो मानी है कि संबंध मन द्वारा रचित अवस्था है। इसलिए यदि सत्य सापेक्ष है तो इसका अर्थ यह हुआ कि सत्य अपनी स्थिति के लिए मन के अस्तित्व का ही मुंह जोहता है। अनुभववादियों से ग्रीन वहां अलग हो जाते हैं जहां वे उनके द्वारा स्थापित यह बात नहीं मानते कि संबंध प्रस्तुत स्थितियों का ही परिणाम है। वस्तुस्थिति एक ऐसी अवस्था है जिसमें कोई सापेक्ष भाव नहीं है। किन्तु उनके अनुसार ये सम्बन्ध यदि हटा दें तो वस्तु स्वयं पूर्णत गायब हो जाती है निरपेक्ष' वस्तु-स्थिति एक भ्रामक एवं मनगढ़त आविष्कार है।

यह उनके तर्क की प्रणाली है। सम्पूर्ण सत्य सापेक्षिक है। और केवल विचारशील चेतना ही इन संबंधों को देख पाती है—इसलिए वास्तविक जगत निश्चय ही किसी न किसी मस्तिष्क द्वारा निर्मित है। दो समस्याएँ एक साथ खड़ी हो जाती है। संसार जैसा हम उसे अनुभव करते है 'भौतिक' है। वह हमारे द्वारा वहां पर अनुभव करने के लिए ही है। यदि यह मन द्वारा निर्मित है तो यह कैसे संभव है? इसके अतिरिक्त भी हम सत्य को अपने से अलग करने के अभ्यासी हो गए है। जैसा है, उसे अपने से अलग करने के अभ्यस्त हम इस प्रयास में काल्पनिक हो जाते है—और तब हम उसे अपने ही लिए फिर रचते है—इसलिए यह अन्तर प्रत्येक प्रकार की जांचपड़ताल के लिए जरूरी है। लेकिन यदि विश्व को मन से निर्मित मानलें तो यह अन्तर तुरंत हट जाता है।

ग्रीन द्वारा इन दो समस्याओं का हल करने का प्रयास उन्हें व्यक्तिगत चेतना से अनन्त चेतना की ओर ले जाता है जिसे वे ईश्वर सदृश मानते है। जानने की प्रक्रिया में हम शनै शनै एक व्यक्ति के रूप में इस बात के प्रति सचेत हो जाते है कि वस्तु अनन्त चेतना के उपकरण के रूप में ही सदैव अस्तित्वमान रही है। यही कारण है कि जिसे हम जानने का प्रयास करते है वह हमें भौतिक दिखाई देता है। मन से बिल्कुल परे हम उसे नहीं रखते। वह हमारे मन से परे है। किंतु यह बात

भी पूणत सही नही है क्योकि उसी अवस्था क प्रति सचत हो कर जिसके विषय म अनन्त चेतना पहन स ही सचत है हम स्वय अनन्त चतनामय हो जात हैं या उसके उपकरण ता हा ही जात है। हमारे अनुभव के विकास म, व अपनो ओलेगोमेना टू एथिक्स म लिखत है एव भौतिक अवयव, जो ममय की एतिहासिक स्थिति है शन शन अन त चतना के उपकरण का काम करन लग जाता है—इस तरह जा हम जानते हैं हम हमारे मन स परे है, विशेष कर हमारे व्यक्तिगत मन के। तो भी यह हमार ही उस मन द्वारा, जा अनन्त चतना का भागीदार है निर्मित है। हमारा मस्तिष्क जिस शरीर म भौतिक अवयव हान के कारण बाधित रहता है, ता कभी कभी यह उस भौतिक शरीर स कोई भी तादात्म्य सबध स्थापित करन म असफल हो जाता है जो अनन्त चतना द्वारा निर्मित है। यह उस समय वस्तु के सम्बन्ध मात्र व्यक्तिगत दृष्टिकोण से ही करन लग जाता है। सभी वास्तविक पदार्थों के स्थान पर काल्पनिक पदाथ दृष्टिगत हान लगने है। उस समय पदाथ जसे व्यक्तिगत रूप स हम उन्ह देखत है बस दिखाइ दते है—अनन्त चतना के द्वारा निर्मित पदाथ के रूप म नही।

अनन्त चतना द्वारा निर्मित जगत और अपूण मानवी अस्तित्व द्वारा रची सृष्टि म यह भेद ग्रीन क अनुसार हमारे भौतिक पदार्थों के अनुभवा का तथा दिन प्रतिदिन भी यथाथ और काल्पनिक अवस्थाओ के भेद का भली प्रकार समझा दता है। और एसा मान लन मे भी हमार इस सामान्य सिद्धान्त से हम वचित नही होना पडता कि अनुभव के सारे पदाथ मन द्वारा निर्मित है। इसी तरह स व अनन्त चतना और व्यक्तिगत चतना म सामन्जस्य और अन्तर की चर्चा भी करत है और यह मानते हैं कि यह अन्तर आदशवादी का भौतिकवाद के सत्यो का स्वीकार करन म बिना अपन मूल सिद्धान्त स विचलित हुए भी सहायता करता है। निस्सदह पदाथ 'सत्य' है किन्तु एसा करन का सीधा अथ यही है कि व विचार द्वारा निर्मित हैं। मस्तिष्क को पदाथ स उपजा मानना आधार–आधय के सही क्रम का उलटने क अतिरिक्त कुछ भी नही। हमारी क्षणिक मानसिक अवस्थाएँ हमारी लुप्त हाती हुई भावनाएँ हैं जिन्हे मनाविज्ञान अध्ययन करता है। य कदाचित भौतिक शरीर की हो दशाएँ हा, किन्तु य ग्रीन क मतानुसार पूवत मानसिक ही नही है और न इनस सबधी चतना ही है।[1] मन अपन आप म गुजरती हुई क्षणिक अवस्था नही है क्योकि यह समय सापक्ष नही है। यदि एसा हाता तो समय क क्रम म घटित हो रही घटना का सयोजन यह नही कर सकता था और न भूत और भविष्य का भेद ही कर सकता था और न पूववर्ती स्थितिया का अनुवर्ती स्थितिया स भिन्न करक ही दख सकता था। ग्रीन यह बात विजयाल्लास म कहत हैं कि मिल तक न यह बात स्वीकार की है कि काई अस्थायी मन स्थिति क्रम अनुक्रम के विषय म स्वय सचत नही हा

---

[1] व वास्तव म क्या है वह दूसरी बात है। ग्रीन क विचारा की आलाचनात्मक समीक्षा के लिए दखिय एम० अलेक्जेडर कृत द एकेडेमी (1885)।

उसका सम्बन्ध कायम करने से हमें कोई न रोक सकेगा। इसके अलावा इस एक संवेदना को मानने का अर्थ यही है कि हम उसे बहुत सी अवस्थाओं से अलग करके एक ऐसी पृष्ठभूमि में जोड़ रहे हैं जिसमें से ही उसे हमने चुना है और तब उसे संवेदना कहने का यहाँ अर्थ है कि हम उसे सदैव ही किसी सावयव स्थिति से जोड़ते ही हैं। इससे निष्कर्ष यही निकला कि किसी के विषय में चर्चा करने का अर्थ उसका सम्बन्ध स्थापित करना है। इस प्रकार यह मान लेना कि संवेदना की सरलावस्था अपने आपमें मौलिक है और सत्य है अपने आपमें सत्य को निरर्थक सिद्ध करना है। एक ऐसा शून्य बनना है जिसके विषय में कुछ भी कहा जाना सम्भव नहीं है।'

ग्रीन के कथनानुसार 'सत्य या तो अगम्य निर्वचनीय नेति भाव है या सम्बन्धित सापेक्ष सत्ता है। अनुभववादियों तक ने यह बात तो मानी है कि संबंध मन द्वारा रचित अवस्था है। इसलिए यदि सत्य सापेक्ष है तो इसका अर्थ यह हुआ कि सत्य अपनी स्थिति के लिए मन के अस्तित्व का ही मुँह जोहता है। अनुभववादियों से ग्रीन वहाँ अलग हो जाते हैं जहाँ वे उनके द्वारा स्थापित यह बात नहीं मानते कि संबंध प्रस्तुत स्थितियों का ही परिणाम है। वस्तुस्थिति एक ऐसी अवस्था है जिसमें कोई सापेक्ष भाव नहीं है। किन्तु उनके अनुसार ये सम्बन्ध यदि हटा दें तो वस्तु स्वयं पूर्णतः गायब हो जाती है निरपेक्ष वस्तु-स्थिति एक भ्रामक एवं मनगढ़त आविष्कार है।

यह उनके तर्क की प्रणाली है। सम्पूर्ण सत्य सापेक्षिक है। और केवल *विचारशील चेतना ही इन संबंधों को देख पाती है–इसलिए वास्तविक जगत निश्चय* ही किसी न किसी मस्तिष्क द्वारा निर्मित है। दो समस्याएँ एक साथ खड़ी हो जाती हैं। संसार जैसा हम उसे अनुभव करते हैं 'भौतिक' है। वह हमारे द्वारा वहाँ पर अनुभव करने के लिए ही है। यदि यह मन द्वारा निर्मित है तो यह कैसे संभव है? इसके अतिरिक्त भी हम सत्य को अपने से अलग करने के अभ्यासी हो गए हैं। जैसा है, उसे अपने से अलग करने के अभ्यस्त हम इस प्रयास में काल्पनिक हो जाते हैं–और तब हम उसे अपने ही लिए फिर रचते हैं–इसलिए यह अन्तर प्रत्येक प्रकार की जाँचपड़ताल के लिए ज़रूरी है। लेकिन यदि विश्व को मन से निर्मित मान लें तो यह अन्तर तुरंत हट जाता है।

ग्रीन द्वारा इन दो समस्याओं का हल करने का प्रयास उन्हें व्यक्तिगत चेतना से अनन्त चेतना की ओर ले जाता है जिसे वे ईश्वर सदृश मानते हैं। जानने की प्रक्रिया में हम शनैः शनैः एक व्यक्ति के रूप में इस बात के प्रति सचेत हो जाते हैं कि वस्तु अनन्त चेतना के उपकरण के रूप में ही सदैव अस्तित्वमान रही है। यही कारण है कि जिसे हम जानने का प्रयास करते हैं वह हमें भौतिक दिखाई देता है। मन से बिल्कुल परे हम उसे नहीं रचते। वह हमारे मन से परे है। किन्तु यह बात

भी पूर्णत सही नहीं है क्योंकि उसी अवस्था के प्रति सचेत हो कर जिसके विषय में अनन्त चेतना पहले से ही सचेत है हम स्वयं अनन्त चेतनामय हो जाते हैं या उसके उपकरण तो हो ही जाते हैं। हमारे अनुभव के विराम में, वे अपनी प्रोलेगोमेना टू एथिक्स में लिखते हैं एक भौतिक अवयव जो समय की ऐतिहासिक स्थिति है शन शन अनन्त चेतना के उपकरण का काम करने लग जाता है—इस तरह जो हम जानते हैं हम हमारे मन से परे हैं, विशेष कर हमारे व्यक्तिगत मन के। तो भी यह हमारे ही उस मन द्वारा जो अनन्त चेतना का भागीदार है निर्मित है। हमारा मस्तिष्क जिस शरीर में भौतिक अवयव होने के कारण बाधित रहता है, तो कभी कभी यह उस भौतिक शरीर से कोई भी तादात्म्य संबंध स्थापित करने में असफल हो जाता है जो अनन्त चेतना द्वारा निर्मित है। यह उस समय वस्तु के सम्बन्ध मात्र व्यक्तिगत दृष्टिकोण से ही करने लग जाता है। सभी वास्तविक पदार्थों के स्थान पर काल्पनिक पदार्थ दृष्टिगत होने लगते हैं। उस समय पदार्थ जैसे व्यक्तिगत रूप से हम उन्हें देखते हैं वैसे दिखाई देते हैं—अनन्त चेतना के द्वारा निर्मित पदार्थ के रूप में नहीं।

अनन्त चेतना द्वारा निर्मित जगत और अपूर्ण मानवी अस्तित्व द्वारा रची सृष्टि में यह भेद ग्रीन के अनुसार हमारे भौतिक पदार्थों के अनुभवों को तथा दिन प्रतिदिन भी यथार्थ और काल्पनिक अवस्थाओं के भेद को भली प्रकार समझा देता है। और ऐसा मान लेने से भी हमारे इस सामान्य सिद्धान्त से हम वंचित नहीं होना पड़ता कि अनुभव के सारे पदार्थ मन द्वारा निर्मित हैं। इसी तरह से वे अनन्त चेतना और व्यक्तिगत चेतना में सामञ्जस्य और अन्तर की चर्चा भी करते हैं और यह मानते हैं कि यह अन्तर आदर्शवादी को भौतिकवाद के सत्यों को स्वीकार करने में बिना अपने मूल सिद्धान्त से विचलित हुए भी सहायता करता है। निस्सन्देह पदार्थ 'सत्य' हैं किन्तु ऐसा करने का सीधा अर्थ यही है कि वे विचार द्वारा निर्मित हैं। मस्तिष्क को पदार्थ से उपजा मानना आधार–आधेय के सही क्रम को उलटने के अतिरिक्त कुछ भी नहीं। हमारी क्षणिक मानसिक अवस्थाएं हमारी लुप्त होती हुई भावनाएँ हैं जिन्हें मनोविज्ञान अध्ययन करता है। ये कदाचित भौतिक शरीर की ही दशाएँ हों, किन्तु ये ग्रीन के मतानुसार पूर्णत मानसिक ही नहीं हैं और न इनसे संबंधी चेतना ही है।[1] मन अपने आप में गुजरती हुई क्षणिक अवस्था नहीं है क्योंकि यह समय सापेक्ष नहीं है। यदि ऐसा होता तो समय के क्रम में घटित हो रही घटना का संयोजन यह नहीं कर सकता था और न भूत और भविष्य का भेद ही कर सकता था और न पूर्ववर्ती स्थितियों को अनुवर्ती स्थितियों से भिन्न करके ही रख सकता था। ग्रीन यह बात विजयोल्लास में कहते हैं कि मिल तक ने यह बात स्वीकार की है कि कोई अस्थायी मन स्थिति क्रम अनुक्रम के विषय में स्वयं सचेत नहीं हो

---

[1] वे वास्तव में क्या हैं वह दूसरी बात है। ग्रीन के विचारों की आलोचनात्मक समीक्षा के लिए देखिये एम० अलेक्जेंडर ग्रीन द एकेडमी (1885)।

सकती। तव फिर मन किस प्रकार माना जा सकता है ? ता भा व अनुभूतियां जि ह भौतिक मनोवनानिक मन' कहता है निरतर परिवतन की अवस्था म रहती हैं।

विकासवाद के सम्ब ध म प्रकट हुई नई आस्थाएँ, ग्रीन सहप स्वीकार करता है पुरातन 'प्राकृतिक अध्यात्म' का दर्जा घटाती हैं यह बात अच्छी है किन्तु सत्य तो यह है कि विकासवाद का सिद्धान्त अनन्त चतना के अनुकूल पडता है। अपितु तार्किक दृष्टि स उसकी आवश्यकता को और भी सिद्ध करता है। (द्रष्ट य लेक्चस आन द लॉजिक आफ द फोमल लाजीशियन्स) अन्यथा ता हम निश्चय ही यह सोचना पडता, कि कुछ नही म स भी कुछ प्रकट हो सकता है। और यह अवस्था सम्भव नही है। इसका परिष्कार हम उसी समय कर सकत हैं जब हम यह सोचें कि जो मात्र मानवीय दृष्टि म उपजी हुई स्थिति है वह सदव ही अनन्त चतना म पहल स विद्यमान रही है।

ग्रीन क आलोचको न उनकी तत्त्ववाद म खोच ढूढ लन म बहुत शीघ्रता दिखाई। उनम सबस बडी भूल ग्रीन की यह बतायी गई है कि व व्यक्तिगत और अनन्त चेतना क बीच विद्यमान सम्ब धो की चर्चा ही नही करत। हा परम्परागत अनुभववाद पर की गई उनकी समालोचना वास्तव म विध्वसक थी। कोइ विचारक भी उनकी इस आलोचना क कारण यह न मान सका कि इस अन्तिमरूप म नष्ट कर दिया गया है।[1] जब कुछ युवा चिंतकों न अपनी पुस्तक ऐसेज इन फिलोसोफीकल क्रिटिसिज्म प्रकाशित की जिसन सव प्रथम आदशवादी आ दोलन के क्षेत्र और सीमा का स्पष्ट निर्धारण किया था तो उसका टी०एच० ग्रीन को समर्पित किया जाना बिल्कुल उचित ही था।[2]

ब्रितानी आदशवादियो के सबस सुदृढ दाशनिक निश्चय ही एफ० एच० ब्रे डल

---

1 निश्चय ही कुछ लोगो न इसक लिए सघप भी किया द्रष्टव्य द क टेम्पोरेरी रिव्यू (1880) म प्रकाशित ग्रीन—ह्यूम स्पेन्सर विवाद।

2 इसम तकशास्त्र पर निब ध सग्रहीत है तथा सामाजिक दशन इतिहास एव तत्ववाद पर भी कुछ निब ध हैं। इसके लेखको मे एण्ड्रू सथ आर० बी० और ज० एस० हाल्डेन बोसाके, सोरले, डी०जी० रिशी डब्लू० पी० केर हनरी जेम्स एव जेम्स बोनार हैं। इनम केर न बाद मे साहित्यिक चिंतक क रूप मे ख्याति प्राप्त की। आर० बी० हाल्डेन जो बाद म लाड होगए न राजनीतिक दार्शनिक के रूप म ज० एस० हाल्डेन न एक दाशनिक वज्ञानिक के रूप म तथा बोनार न अथशास्त्र के इतिहासज्ञ क रूप म ख्यातिया अर्जित की। इस प्रकार अब आदशवाद को विभिन्न क्षेत्रो म जाने का अवसर मिला। शक्सपीयर सम्ब धी विद्वान ए० सी० ब्र डल इस दल के निकटतम सम्पक म थ।

थे[1]। और यदि ब्रितानी अनुभववाद की ब्रेडले उतनी ही तीव्रता स आलोचना कर रहे थ जितनी ग्रीन और केयड न की थी—और दार्शनिक प्रणाली मे तो वे उन दोना से अधिक प्रबल थ[2]—तो भी व बिना शर्त के ग्रीन की इस मूल धारणा का खण्डन करते हैं कि सत्य केवल सापेक्षता मे ही निहित है। और हीगेल के प्रशसक हाने के बावजूद भी ब्रेडल किसी भी भाति हीगलवादी नही हैं। उनकी द्वन्द्वात्मक तर्कप्रणाली हीगल के बजाय पारमनीडीज और जेनो की द्वन्द्वात्मक प्रणाली है। यह स्पष्ट है कि उन्होने प्लेटो द्वारा पारमेनीडीज तथा सोफिस्ट पर लिखी अलग पुस्तको से बहुत कुछ ग्रहण किया है जिनम यह द्वन्द्वात्मक प्रणाली दिखाई गई है—तथा प्लेटो के द्वारा प्रस्तुत वर्तालाप प्रणाली क माध्यम से भी उन्होने काफी सीखा[3]। उनकी पुस्तक

---

[1] द्रष्टव्य म्यूरहैड प्लेटोनिक ट्रेडीशन। इसम ब्रेडले के दर्शन का विस्तार मे देखा जा सकता है। ए० ई० टेलर एफ० एच० ब्रेडले (पी० बी० ए० 1924) आर० डब्लू० चर्च ब्रेडलेयन डायलेक्टिक्स (1942) सी० ए० केमबेल स्केप्टीसिज्म एण्ड कन्सट्रक्शन (1931) एच० रशडल द मैटाफिजिक्स आफ मिस्टर एफ० एच ब्रेडले (पी० बी० ए 1912), ब्रेडले पर लिखे निबन्ध, रचयिता जी० डी० हिक्स, जी० एफ० स्टाउट एफ० सी० एस० शिलर ए० ई० टेलर एव वार्ड (माइण्ड 1925)। एम० टी० एन्टोनेली द मैटाफिजिक्स ऑफ एफ० एच० ब्रेडले (1952) एलिनोर ग्लाइन की पुस्तक हैल्कियोन (1912) म ब्रेडल को सीरो के रूप म प्रस्तुत किया गया है।

[2] द्रष्टव्य, प्रीसपोजीशन्स आफ क्रिटीकल हिस्ट्री (1874) जहाँ पर वे यह मन्तव्य व्यक्त करते हैं कि इन्द्रियबोध सत्य के परीक्षण के सम्बन्ध मे कम से कम विश्वसनीय हैं, इन्द्रियबोध एक अन्धविश्वास ह यह दार्शनिक ज्ञान से पूर्णत अनभिज्ञ होन का प्रमाण है जो यह प्रतिदिन के हमे होन वाले अनुभव के प्रति पूर्णान्ध कर दता है—जो मात्र एक दोषपूर्ण पूर्वाग्रहिल रूढिवादिता म ही सम्भव है।

[3] जर्मन दार्शनिका म, जो ब्रेडल के समकक्ष खडे हो सकत हैं उनम जे० एफ० हर्बट का नाम लिया जा सकता है। हर्बट गोटिंजन विश्वविद्यालय मे लोत्जे के अग्रज थ। ब्रेडल न एपीयरेन्स एण्ड रिएलिटी म जो द्वन्द्वात्मक वार्त्तालाप प्रणाली अपनाई है—हर्बट म भी बहुत स स्थला पर देखी जा सकती है। ब्रेडल, हर्बट के कार्यों के प्रति पूर्ण जिज्ञासु थ। उन्हान ए० ई० टेलर को हर्बट का अध्ययन करने क लिए इसलिए कहा था ताकि वह हीगल क अत्यधिक प्रभाव स बच जाए। जब ब्रेडल द प्रिंसिपल्स आफ लॉजिक के अतिरिक्त परिशिष्ट म यह कहते हैं कि उनका (1883) हर्बट से परिचय नही है तो उनका आशय कदाचित् हर्बट क मनोविज्ञान स अपरिचित होने से है क्योंकि उन्होने इसी किताब म हर्बट के तर्कशास्त्र का सन्दर्भ दिया है। द्रष्टव्य, जे० वार्ड द्वारा एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका क नये सस्करण म हर्बट पर लिखा निबन्ध। जी० एच० सॅगल का 1913 मे माइण्ड म प्रकाशित निबन्ध द मैटाफिजिकल मेथड

प्रिंसिपल्स आफ लाजिक (1883) के कुछ अंशों में व्याप्त व्यंजनात्मकता प्लेटो की सुकरात पर लिखी व्यंजनात्मकता से कदाचित् ही मेल खाती हो "मैं मानता हूं कि मैं इस प्रकार के अपमानों की कतई पर्वाह नहीं करता। और इसके लिए मिस्टर स्पेंसर अथवा वैसे तो दूसरे महान् आधिकारिक विचारक जो इस प्रकार के अपमान को अनदेखा कर सकते हैं या उसे समझते नहीं, वे ही उसे अपने पर ले सकते हैं।

प्रारंभ से ही ब्रैडले ने अपने आलोचनात्मक अस्त्र का प्रयोग विरोधाभास पर दोषारोपण करने के लिए ही किया। तर्कशास्त्र में उनकी आस्था थी। प्लेटो की भाषा में तर्क द्वारा जहां तक जाया जा सकता हो वहां तक उदारता से जाने की प्रवृत्ति उनमें थी। यह बात अंग्रेजी दर्शन में न्यूनतम है। उन्होंने अपनी पुस्तक **प्रीसपोजीशन्स आफ क्रिटिकल हिस्ट्री** में लिखा कि यदि आलोचना आलोचना है तो सबसे पहले उसे प्रत्येक वस्तु की सत्यता पर संदेह करके चलना होगा और यदि इसके बावजूद भी कुछ ऐसे स्थल रह जाते हैं जिनको गलत बताया जाना असंभव हो जाय तो यह उन स्थलों की निजी महत्ता है। किन्तु यदि तथ्यों में और सिद्धान्तों में मेल नहीं बैठ रहा हो तो यह तथ्यों के लिए गलत अवस्था है। यदि एक महान ऐतिहासिक तथ्य' और 'एक महान सूक्ष्म सिद्धान्त' के बीच में वरण का प्रश्न सामने उपस्थित हो जाए तो ब्रैडले का मत है कि वे सिद्धान्त और महान सत्य के पक्ष में ही बोलेंगे। उलट कर अब आक्सफोर्ड की उच्च शिक्षा' का यही मार्ग हो गया था।

एपीयरन्स एण्ड रीयलिटी (1893) में तर्कशास्त्र के आधार पर विकसित किये गये तत्त्ववाद का ब्रैडले द्वारा प्रस्तुत किया गया अच्छा उदाहरण मिलता है। उनकी यह कठिन पुस्तक उनकी एक अन्य पुस्तक **प्रिंसिपल्स आफ लाजिक** के साथ में ही पढ़ी जाय तो ठीक है। विशेषकर इस के दूसरे संस्करण (1922) में जोड़े हुए **टर्मिनल एसेज** के लिए उनके **एसेज आन ट्रुथ एण्ड रीयलिटी** (1914) के लिए और उनके सापेक्षता पर लिखे अपूर्ण निबंधों के लिए जिनका प्रकाशन उनके मरणोपरान्त **कलेक्टेड ऐसेज** नामक पुस्तक (1935) में हुआ, यह बात ठीक पड़ती है। ब्रैडले कृत **एथिकल स्टडीज** (1876) और मूल्यों की विशेषतः उसमें संग्रहीत निबंध **माई स्टेशन एण्ड इट्स ड्यूटीज** नैतिक मूल्यों की दृष्टि से नयी दृष्टि से युक्त होने के कारण काफी महत्त्वपूर्ण है। यही पुस्तक उनके तत्त्ववादी सिद्धान्तों का आगे जाकर आधार बनी।[1]

आफ ह्वट। ब्रैडले ट्यूबिंगन स्कूल के प्रणेता एफ० सी० बौर से काफी प्रभावित थे। एफ० सी० बौर ने 1830 और 1860 के मध्य प्रकाशित अनेक ग्रंथों में हीगलवादी चर्च का समर्थन किया। द्रष्टव्य आर० मकाय **द ट्यूबिंगन स्कूल** (1863) ए० ए० श्वाइजर **पाल एण्ड हिज इन्टरप्रेटर्स** (1911 अंग्रेजी अनुवाद 1912)

[1] ब्रैडले ने तत्त्वमीमांसा (आधिभौतिकी तत्त्ववाद या मेटाफिजिक्स) की परिभाषा देते हुए कहा है कि मूल वृत्तियों के आधार पर खड़े हमारे विश्वासों में कुछ

एपीयरेन्स एण्ड रीयलिटी का मूल विषय विचार एवं सत्य के संबंध को उजागर करना है—जिसे उन्होंने अपनी पुस्तक द प्रिंसिपल्स आफ लॉजिक में बहुत अंशों में अपर्याप्त छोड़ दिया था। अपनी भाषा के माध्यम से जिसमें बहुत कुछ लॉज का प्रभाव है— ब्रेडले ने हीगल के इस सिद्धान्त का खंडन किया है कि सत्य होना और विचार की अवस्था में होना दोनों समान स्थितियाँ हैं। अपनी पुस्तक द प्रिंसीपल्स आफ लॉजिक में ब्रेडले ने लिखा कि यह मान्यता कि अस्तित्व संभवतः वही है जो 'विचार' उतना ही निर्जीव और काल्पनिक है जितना सूक्ष्म भौतिकवाद है। इस विश्व की गरिमा अंततः यही है कि यदि संसार को किसी अधिक पूर्ण सत्ता की झलक के रूप में देखें तो विश्व हमारे सम्मुख अधिक शानदार रूप में आता है। किन्तु केन्द्रीय आवरण एक प्रकार का छल करते हैं। हमारे सत्य यदि परमाणुओं की रंगहीन गति को हमारी ऊपरी आँख से छिपा लेते हैं सूक्ष्मतम अवस्थाओं के स्थिर रंगमय ताने बाने का दृश्य मंचन से वंचित रख देते हैं और रक्तहीन वर्गों की अपार्थिव लीला का आनंद हमें नहीं लेने देते, वे निश्चय ही तब उस परम के निर्णायक तत्व के रूप में काम नहीं करते हैं जो हमारी श्रद्धा की अपेक्षा करते हैं, सिवाय मनुष्य की बुद्धि के पार्थिव शारीरिक सौन्दर्य में रमण करके सुख प्राप्त कर लेने वाली अवस्था के।

तो भी इससे निकलने वाले निष्कर्ष की कठिनाई यही थी कि इससे सीधा अनीश्वरवादी विचारधारा की ओर उन्मुख होना पड़ता था। यदि सत्य सभी विचारों से परे है तो हमेशा हमेशा के लिए निश्चय ही हमारे लिए एक अज्ञेय सत्ता के रूप में अनुपलब्ध होगा। ब्रेडले की समस्या विचार की पहुँच और सीमाओं का [illegible] था और इसमें वह न तो तात्कालिक अनुभव का परित्याग करते थे और न परमात्म के बोध को, जो कितना ही सीमित क्यों न हुआ हो, छोड़ना चाहते थे।

ब्रेडले की तत्त्वमीमांसा इसलिए तात्कालिक अनुभव की समस्या को लेकर शुरू होती है। इसी समस्या पर विस्तार में उन्होंने 1906 में माइण्ड में प्रकाशित और 'ट्रूथ एण्ड रीएलिटी" के नाम से पुनर्मुद्रित हुए अपने निबन्ध आन अवर नालेज

न कुछ बुराई [illegible] होता है। उनकी पुस्तक माइ स्टेशन एण्ड इट्स ड्यूटीज में उन्होंने मूल वृत्तियों पर खड़े अपने विश्वासों के बारे में बतलाया है और लिखा है कि प्रत्येक वस्तु के लिए कहीं न कहीं जगह होनी चाहिए और वह वस्तु केवल अपने ही स्थान में शामिल होती है। ब्रेडले की तत्त्वमीमांसा के संबंध में द्रष्टव्य, ए० ई० टेलर कृत एलीमेन्टस ऑफ मेटाफिजिक्स (1903)। टेलर जिन्होंने भी बाद में हीगलवादी विचारधारा को छोड़ दिया उस समय ब्रेडले से काफी प्रभावित थे और उनकी पुस्तक एलीमेन्टस आफ मेटाफिजिक्स काफी अर्थों में ब्रेडले की विचारधारा का ही विवेकपूर्ण विवेचन है। उसके विपरीत उनकी पुस्तक द फेथ आफ ए मोरेलिस्ट (1930) नैतिक आधार पर ईश्वर के अस्तित्व की सिद्धि करती है और ऐसा लगता है जैसे उसे मार्गीय क्रिश्चियन धर्म के लिए लिखा गया है।

आफ इमीजिएट एक्सपीरिएन्स' म विचार किया है। हम एस अनुभव भी मिलत है जहा 'मेरे बोध म और उस अवस्था म जिसका बोध मेरी चेतना कर रही है, कोई अन्तर नही है। ज्ञान के प्रारम्भ के साथ हो जानने की और होने की तात्कालिक अनुभूति होती है। और चाहे एक तरीके म यह भेद मिट भी जाए तो भी मेरे सासारिक ज्ञान का वतमान मूलाधार स्वय यही स्थिति है। तात्कालिक अनुभूति शुद्ध और सरल है। इसम हम किसी वस्तु का अनुभव करते हुए कभी शामिल नही होते। क्योकि यही हमम और हमारी वस्तुओ म आवश्यक भेद कर देती है और यह भेद केवल विचार द्वारा ही सम्भव हुआ। यह तो यथावत अनुभूति है। यह न तो किसी की अनुभूति न किसी वस्तु के बारे म अनुभूति है।[1] इसकी भी विभिन्न अवस्थाए है लेकिन वह विभिन्नता सापेक्षिकता से पूव की है। एक लाल भडक का अनुभव उदाहरणाथ प्रस्तुत करे। हमारा यह अनुभव लालिमा और भडक के फलाव इन दोनो गुणो को अलग २ करके नही देखता। लालिमा और फलाव दोनो कही न कही किसी एक सम्बन्ध के कारण जुडे है। यह जोडने वाला तत्व भावना है लेकिन फिर भी इसम यह वभिन्नय समाया है।

जसे ही हम वस्तुसम्बन्धी भाषा की चचा प्रारम्भ करते है उसम गुणो और सम्बन्धो के बारे म सतक होते है—जो उसके सम्बन्ध म विचार करते ही निणय देने ही उसकी सत्यता सिद्ध करने के लिय आवश्यक रूप स प्रस्तुत हो जाते है। तब हम इस भावना के स्तर स परे चले जाते है। विचार पूणत चाहे अनुभव को नही छोडे लेकिन उसका सूक्ष्मीकरण कर लेता है।[2] लाल को एक धब्बे के रूप म पहली दृष्टि म अलग कर देने पर हम यह समझते है कि यह उसका एक अलग

---

[1] बर्नार्ड बासाक द्वारा यह बात अपनी पुस्तक नोलेज एण्ड रीएलिटी (1885) म शीघ्र ही कह दी गई। चाहे दूसरे ब्रेडल के उत्तरो स सन्तुष्ट न हुए हो किन्तु ये तो हो ही गए। तुलना के लिए द्रष्टव्य ए०ई० टेलर का टिप्पणी कि हीगलवादियो ने अज्ञेय पर बहुत मजे मनाए उनका परमात्मा स्वय अपने विश्वास की अवस्था म होने के कारण अज्ञेय ही है। द्रष्टव्य ए० नयूमिन्न कृत लोज ब्रेडले एण्ड बासाक (माइण्ड 1892)।

[2] जेम्स वार्ड इस बात का खण्डन करते है कि तात्कालिक अनुभव जसी कोई स्थिति हो सकती है। द्रष्टव्य, उनका लिखा मिस्टर ब्रेडलज एनालिसिस आफ माइण्ड (माइण्ड 1887) एव ब्रेडलेज डाक्ट्रीन्स आफ एक्सपीरीयन्स (माइण्ड 1925)। किन्तु ब्रेडल का मत था कि मनोविज्ञान की सामान्य प्रवृत्ति उन्ही की तरफदारी करती है विशेषकर विलियम जेम्स उनका तात्कालिक अनुभव का सिद्धान्त ही उन कुछ चन्द चीजो म स था जिन पर ब्रेडल के ही कथनानुसार हीगल का सारा प्रभाव था।

गुण है। यह अलगाव का और एक साथ जुड़ाव का प्रयास हमें तत्काल ही अपने ही विरोधाभास की ओर ले जाता है। यही एपीयरेंस एण्ड रीयलिटी के प्रथम खण्ड का मूल कथ्य है। इस बाह्य जगत के बारे में हम जो कुछ भी कह सकने की स्थिति में हैं, वह सब या उससे सम्बन्धित कोई भी सामान्य धारणा इसी प्रकार के विरोधाभासों से भरपूर है और इसलिए वह मात्र दिखावा है—माया है—सत्य नहीं।

उदाहरण के लिए यह उक्ति लें 'शक्कर मीठा है'। ब्रैडले पूछते हैं कि इस उक्ति में 'है' जिस प्रकार से वस्तु और गुण दोनों को जोड़ता है उसका क्या अभिप्राय है? हम यहाँ यह नहीं कहते कि शक्कर ठोस है, सफेद है, आदि आदि। शक्कर अपने इन विभिन्न गुणों में से किसी एक के 'तद्वत्' नहीं हो सकती, लेकिन अन्य किसी भी तरह से शक्कर को इन तमाम गुणों से युक्त, कैसे बताया जा सकता है? यदि केवल इसे इन गुणों का संयोग मात्र ही कहें तो इसकी इयत्ता समाप्त हो जाती है। और यदि इसे गुणेतर कोई अवस्था माना जाय तो वह गुणेतर जो कुछ भी है उसको बताना हमारे लिए असम्भव हो जायगा।

यहाँ यह कहा जा सकता है कि शक्कर अपने विभिन्न गुणों से युक्त होने के साथ साथ उनको एकत्व में बाँधने वाले तत्वों से भी बनी है। तब ब्रैडले कहते हैं कि ये सम्बन्ध किस प्रकार से गुणों को जोड़कर एक कर देते हैं यह एक पहेली रह जाता है। ये गुण निश्चय ही किसी दूसरे के आश्रय नहीं हैं। सफेदी ठोस नहीं है, न मीठापन ही सफेद है। फिर यह कैसे जुड़ सकते हैं? उसके अतिरिक्त प्रस्तुत उक्ति में 'है' का सम्बन्ध बताने वाले 'है' से क्या ताल्लुक है? निश्चय ही हम नहीं कह सकते कि मीठापन यहाँ सफेदी से जुड़ जाने के कारण सम्भव हुआ है। यदि 'है' के स्थान पर 'रखता है' जैसा कोई पद हम आवेश में कह दें तो भी समस्या का केवल क्रियात्मक रूपान्तर ही होता है। 'वस्तु से सम्बन्धित है' नामक पदावली में 'वस्तु से सम्बन्ध रखती है', नामक पदावली किसी भी अर्थ में ज्यादा स्पष्ट नहीं है। दुविधा वैसी की वैसी रहती है चाहे हम उससे किसी भी भाँति बचने की कोशिश करें। भाषा में हम जो कुछ करते हैं वह यही है कि या तो हम किसी दूसरे व्यक्ति के गुण को उसके कर्ता का विधेय बना देते हैं और इस प्रकार हम यह कहते हैं कि अमुक वस्तु क्या नहीं है अथवा हम कई बार ऐसी अवस्था को उसका विधेय बना देते हैं, जो उससे अभिन्न है। तब हमारा कथन मात्र एक खोखले तर्क, 'कि क क ही है' वाली अवस्था में व्यर्थ हो जाता है। कोई कथन पुनरुक्ति दोष से बचे इसके लिए यह जरूरी है कि उसमें विभिन्न अवस्थाओं को उजागर किया गया हो। लेकिन इसके साथ ही उसमें ऐक्य भाव होना ही चाहिए। किन्तु कोई भी कथन भिन्नता को एकता में मिला देने से सफल नहीं हो सकता।

एपीयरेंस एण्ड रीयलिटी के तीसरे अध्याय में इस प्रकार के कथनों पर आलोचना आगे बढ़ती हुई नजर आती है और तीसरा अध्याय तो सम्बन्धों की

सामान्य आलोचना प्रस्तुत करता है ।[1] इस अध्याय क बारे म स्वय ब्रैडल न कहा है जो पाठक इस अध्याय म दिये गए सिद्धान्तो स परिचित हो चुके हैं उन्हे आगामी अध्यायो म अपना समय बिताने की आवश्यकता ही नही है । उसने यह ता देख लिया ही होगा कि हमारे अनुभव जहा कही भी सम्बन्ध–सापेक्ष है वहा व सत्य नही है और तब उसन बिना किसी बात को सुने ही बहुत सघटनाओ को स्वीकार नही किया होगा । यह स्पष्टत सही है कि यदि सम्बन्ध ही दोषपूर्ण है ता आकाश समय काय, कारण और परिवतन सभी उसी दोष स युक्त होने चाहिए । ब्रैडल के मत म सम्बन्ध गुणो का जोड़ते हैं क्योकि कोई भी वस्तु मात्र उसके सम्बन्धो स ही निर्मित नही होती—सम्बन्ध बनाने वाली अवस्थाओ के अपने ऐसे गुण होने चाहिए जो उन सम्बन्धो स अलग हो । लेकिन गुण बताना ही एक तरह स अलग करना है अर्थात् सम्बन्धित करना है । इस प्रकार वही एक गुण सम्बन्धो पर आधारित भी है और उनके लिए आधार भी है कि गुणो के कोई सम्बन्ध नही है लेकिन बिना सम्बन्धो के गुण भी तो नही है । इस प्रकार यदि गुण यह दोहरा काय अदा करते हैं ता हम किसी गुण क के विषय म आश्रय के रूप क1 तथा उसके आश्रित के रूप म क2 की अवस्थाओ का भेद करना ही होगा । तब चू कि स्पष्टत ही यह दिखाना असम्भव है कि किन स्थितियो म शक्कर का एक कण सफेद और मीठा दोनो हो सकता है उसी प्रकार क1 तथा क2 क सम्बन्ध के बारे म किसी बोधगम्य तरीके म कोई स्पष्टीकरण देना असम्भव है । कोई भी एक दूसरे का विधेय नही है और इसके बावजूद भी किसी अन्य सम्बन्धो म मूलत भिन्न अवस्थाए जुड जाती है तो फिर क1 या क2 तथा क1 क साथ जोडने म उसी प्रकार की कठिनाई आएगी । इस प्रकार हम अनन्त उलटफेर म पड जाते हैं । और इस प्रकार हम अपनी मूल समस्या के करीब कभी नही पहुचते ।

इन तर्कों तथा इसी के समकक्ष दूसरे तर्कों क सहारे ब्रैडल अपने इस निष्कर्ष की ओर बढ़ते है कि सापेक्षिक तौर पर किया गया विचार जगत् के मायात्मक रूप को ही प्रस्तुत करते है । उसके सत्य स्वरूप का नही । यह तो सतही और व्यावहारिक तौर पर बुद्धि से किया गया समझौता मात्र है । अत्यावश्यक है फिर भी पूर्णत असुरक्षित । आवश्यक इसलिए है क्योकि बुद्धि लगातार परिवतन स अस्थायी और तात्कालिक अनुभव स तुष्ट नही होती । यह व्यावहारिक समझौता इस अथ म है क्योकि इसके आधार पर सभी अनुभवो को जोडकर ऐक्य मे गूथने का प्रयास इसके द्वारा होता है जबकि उसी अवस्था अनुभव का खण्ड खण्ड करने सूक्ष्म दृष्टि स देखने की क्रिया भी होती है । यह पूर्णत असुरक्षित इस अथ म है कि यह विरोधाभास

---

[1] पी० ए० एस० 1901 म प्रकाशित एलेज्ड सेल्फकन्ट्राडिक्शन इन द कन्सेप्ट आफ रिलेशन्स, लेखक जी० एफ० स्टाउट ।

को जन्म देती है। ग्रीन का यह विचार कि विचार स्वभावतः सापेक्ष है सही ही था। बिना सम्बन्धों के विज्ञान एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकता। लेकिन इसमें यह मानना कि विचार विज्ञान का ही एक रूप है ब्रैडले को कभी नहीं भाया।

ब्रैडले द्वारा प्रस्तुत किए गए विचार जो आदर्शवादियों की वह परिचित धारणा की ही पुष्टि करते हैं कि विज्ञान का जिस जगत से सम्बन्ध है वह पूर्ण सत्य नहीं है अब तक काफी जटिल है। किन्तु सबसे ज्यादा जिस बात ने हलचल उत्पन्न की वह थी ईश्वर और आत्म के सम्बन्ध में भी ब्रैडले द्वारा अपना इसी प्रकार का तर्क प्रस्तुत करना।[1]

आत्मा सम्बन्धी किए गए विचारों में जो कमियाँ रह गई हैं यदि उनका ख्याल न करें तो ब्रैडले के अनुसार आत्मा सापेक्ष स्थितियाँ ही उजागर करती है। यह संसरणशील है, अर्थात इसका भूत इसके वर्तमान में जुड़ा है। और यह अनेक प्रकार से इसके चारों ओर फैले विश्व से जुड़ी हुई है। जो दार्शनिक इस निष्कर्ष की अवहेलना करने का प्रयत्न करते हैं और एक शुद्ध महत् अथवा विश्वेतर 'आत्म' की स्थापना करने में लगे हैं ब्रैडले के मतानुसार वे दिन प्रतिदिन की आत्मा के विषय में कुछ नहीं कहते हैं और न ही ये दार्शनिक किन्हीं सम्बन्धों और परिवर्तनशील अवस्थाओं का सहारा लिये बिना अपनी इस विश्वेतर आत्मा को दिन प्रतिदिन की आत्मा से जोड़ सकते हैं। ईश्वर भी उनके अनुसार इसी दोष से युक्त है धर्म के ईश्वर का सम्बन्ध मानवता से है। इसके बावजूद भी मनुष्य और ईश्वर के बीच किसी भी प्रकार के ज्ञेय सम्बन्धों की स्थिति बन ही नहीं पाती है। यदि आप परमात्मा का ईश्वर से तादात्म्य करके देखते हैं तो वह धर्म का ईश्वर नहीं होगा क्योंकि परमात्म का कोई व्यक्तित्व नहीं होता। बस इसका एक मात्र मतापप्रद हल यही है कि ईश्वर मात्र एक अवस्था है और इसका अर्थ यही है कि वह परमात्मा का ही सगुणात्मक रूप है।

यह ब्रैडले का प्रथम निष्कर्ष है कि जैसे ही हम वस्तुओं, गुणों तथा सम्बन्धों का नया रूप प्रस्तुत करते हैं तो हम सगुणात्मक अथवा माया के जगत में निश्चित रूप से चले जाते हैं जो जगत विरोधी स्थितियों से भरपूर तथा अबूझ है। लेकिन क्या इसमें कोई फर्क पड़ता है? क्या हमारे पास सिवाय इसके कि इस विरोधाभास को केवल चिपका कर स्वीकार कर लें कोई अन्य विकल्प है?

एक स्तर तक तो यह अवस्था विकल्पहीन है। किसी भौतिक सिद्धान्त के विरोध में यह कहना कि यह विरोधास्पद तत्वों से बनी है तो जहाँ तक सम्बन्धों का प्रश्न है और जहाँ वह मनोविज्ञान के विरुद्ध संघटनात्मक स्पष्टीकरण की स्वीकृति

---

[1] द्रष्टव्य एस० जे० पैरी जी ब्रैडलेज व्यू आफ द सेल्फ (माइण्ड 1894)।

देता है जो पूर्णतः अबूझ है तो यह निश्चय ही तत्त्ववादी सिद्धांतों का ऐसी जगह प्रयोग करना हुआ जहाँ वे प्रयुक्त नहीं किए जा सकते। सभी जगह इस प्रकार के विज्ञान का सार तत्त्व यही है कि वे अर्द्ध सत्य का प्रयोग करें। दूसरे शब्दों में, सुविधानुसार कल्पना और झूठ को खुलकर काम में लाएँ। यह बात ब्रैडले ने अपने एक निबंध 'ए डिफेन्स आफ फिनामिनालिज्म इन साइकोलोजी' (माइण्ड 1900) में स्पष्ट की है[1]।

लेकिन तत्त्वमीमांसा के उद्देश्य इससे कहीं बड़े हैं। ब्रैडले के अनुसार तत्त्वमीमांसा का उद्देश्य एक ऐसा सामान्य दृष्टिकोण खोजना है जो मस्तिष्क को तुष्टि प्रदान कर सके। क्योंकि सत्य वही है जो मस्तिष्क को पूर्णतः संतुष्ट करे। व्यवहार में लेने पर यह दृष्टिकोण लाजे की परिभाषा के अनुकूल ही है। उन्होंने लिखा था तत्त्ववाद का केवल मात्र यह बताना है कि ऐसी कौनसी समष्टिसम्मत दशाएँ हैं जिनके बारे में हम बिना कोई विरोधास्पद बात किए ही कह सकें कि ये सत्य हैं अथवा ऐसा तो होता ही है। परमात्म के अलावा सभी जगह इस प्रकार का विरोधाभास मिलेगा। फिर भी बुद्धि इससे कम में तो संतुष्ट होती ही नहीं। परमात्म पर विचार इसलिए नहीं किया जा सकता क्योंकि विचारने का अर्थ है विरोधास्पद होना। किन्तु साथ ही साथ यह केवल मात्र अज्ञेय अथवा अगम्य भी नहीं है। हमारे अनुभव के कुछ ऐसे रूप हैं जो हमें यह अनुभूति प्रदान करते हैं कि परमात्मा किस प्रकार का होगा चाहे तुम परमात्मवान जीवन को अपने सम्पूर्ण विस्तार में स्वयं निर्मित नहीं कर सकते।

ब्रैडले को अपना प्रथम सूत्र तात्कालिक अनुभव में प्राप्त होता है। यद्यपि यह अनुभव अस्थायी और सचल है और इसीलिए स्वयं बुद्धि को ही यह तुष्ट नहीं कर सकता तो भी यह उस माध्यम की सीख देता है जिसके कारण हम एकत्व और अनेकत्व का समन्वय रख सकते हैं। हमारे सम्पूर्ण अनुभव का सामान्य विचार जहाँ आकर भावना और बुद्धि और इच्छाशक्ति सभी पुनः एक हो जाती है। इसका एक दूसरा सूत्र स्वयं विचार की प्रक्रिया से ही व्यक्त होता है—बुद्धि को अपने मुक्त प्रयास में संतुष्ट करने के लिए जिस दिशा में विचार गतिमान होता है वही गति इस बात का संकेत देती है कि परमात्म किस प्रकार का है। जब हम सोचने लग जाते हैं तो

---

[1] ए० ई० टेलर हमको बताता है कि ब्रैडले ने उनसे कहा था कि मुझे गंभीरता में अनुभववादी मनोविज्ञान का अध्ययन करना चाहिए। कलेक्टेड एसेज में संगृहीत ब्रैडले की मनोवैज्ञानिक कृतियाँ लाक की ब्रितानी मनोविज्ञान परम्परा का निर्वाह करती हैं। ब्रैडले जिस बात का विरोध करते थे वह थी मनोविज्ञान का भी दर्शन बनाने की सनक। उनकी कृतियों का अनवरत कथन यही था कि वे तत्त्वमीमांसा को मनोविज्ञान में पूर्णतः अलग रखना चाहते थे।

हमें एक ऐसी तरह का सत्य मिलता है जो अकेले विचार द्वारा हमें प्राप्त नही होता। तब हम सयोग ढूढने की कोशिश करते हैं—ऐसे सयोग जो केवल मात्र जोडने वाली अवस्थाओ से भिन्न होते हैं। हम यह देखने की आशा मे रहते है कि अमुक व्यक्ति "अ" को निश्चय ही 'ब' के साथ जाना चाहिए। केवल यही नही कि अ, ब के पास गया विचार हमें सदैव क्रूर सयोजकता के फेरे में छोडकर चले जाते हैं। क्योंकि यदि हमें यह मालूम भी पड जाय कि अ 'ब' के पास इसलिए गया कि 'स' वहाँ था तो भी 'अ' और 'ब' को एक साथ रखकर 'स' को सयोजक करके देखा है। जब तक हम अलग अलग सत्यो के सबन्ध मे खोज करते रहेगे और उन्हे अन्य अवस्थाओ से तथा परस्पर जोडते रहेगें तो हम वह सयोग प्राप्त नही हो सकता—जो इनमें अन्तरग रूप से व्याप्त है और जिसकी खोज हम कर रहे हैं। और न परमात्म के सबध में अभावों दृष्टि से ही हम कुछ ऐसी पूर्णता प्राप्त कर सकेंगे जिसका विचार हम निरन्तर प्रवृत्त करता रहता है। सत्य उस समय तक सतुष्ट नही होता जब तक सम्पूर्ण तत्व हमारे सन्मुख न हो और जो कुछ हमारे पास है उसे हम पूर्ण रूप से जान न लें। और सच तो यह है कि जब तक सगति में सभी चीजें हमारे सम्मुख न हो तब तक उन्हे पूर्ण रूप से समझना हमारे लिए सभव भी नही है। वे सब उपकरण भी ऐसी अवस्था में होने चाहिए कि तब हम उनसे अच्छे या बुरे की उस सबन्ध में कोई कामना न करें।

ब्रेडले का मत है कि विचार का अपने ही द्वारा रचे उपकरणों (खोजे गए सत्यों) के प्रति असन्तोष हमें यह देख लेने में सहायता करता है कि मन के सतुष्ट हो जाने की अवस्था में सत्य का क्या स्वरूप होगा। यह सर्वात्म, परिपूर्ण, और पूर्णत सगत होना चाहिए। यदि मन शक्ति और भावना के दृष्टिकोण से भी देखा जाए तो भी हम परमात्म के सबन्ध मे इसी प्रकार के निष्कर्ष पर पहुँचते हैं। इस प्रकार के परमात्म में हम केवल अपनी नैतिक भावनाओ की पूर्ण तुष्टि कर सकते है। परमात्म से इतर किसी भी विचार में मनुष्य स्वय सिद्धि एव आत्मोत्सर्ग के लक्ष्यो के मध्य पिसता रहता है और अपनी इच्छाओ के विरोधाभास से मुक्त नही हो पाता और उसे सतोष या शक्ति उसी समय मिलती है जब वह पूर्णत अपना विनाश करले।

परमात्म केवल एक होना चाहिए क्योंकि ब्रेडले एकत्व के रूप में ही अनेकत्व सापेक्षिकता को निमन्त्रण देता है। तो भी एकत्व अनेकत्व को अपने में समाहित किए है क्योंकि इस अनेकत्व के अभाव में परमात्म केवल शून्य ही होगा। इसी जगह आकर ब्रेडले की ठोस समष्टितत्वो की धारणा उभर कर सामने आती है। हम वस्तुओ को वर्गीकृत करके देखने के आदी है—घोडो को चौपायो में, चौपायों को जानवरो मे और जानवरो को प्राणियो में आदि आदि। और इस प्रकार यह वर्गीकरण जैसे जैसे अन्तत हम सामान्यता की ओर लगातार लेता चला जाता

है—कम वस वस्तु–सम्ब धी धारणा समात होती जाती है । प्राणी नामक शब्द घोड़ जस शब्द से कम विशिष्ट है तथा प्रमूत हो गया है । इसी तक प्रणाली पर यदि परमात्म के विषय म सोचें तो उसके निर्मायक तत्व भी अत्यन्त निकृष्ट कोटि के हाग अन्तत शून्य म विनष्ट हो जाएँगे ।

इस प्रकार का वर्गीकरण प्रमूत समष्टियो का प्रयोग करता है । विचार इस प्रकार की प्रमूत समष्टियो के निर्माण म अधिक लगा रहता है । इस प्रकार की समष्टियो के बिल्कुल विपरीत ब्रेडले अपनी ठोस समष्टिया क प्रयोग का सुझाव दत हुए कहत हैं कि य वस्तुओ के अमूर्ती–करण नही अपितु उसक विभिन्न नियामक तत्वो का आकलन मात्र है । उनका समुदाय है । यह एक व्यक्ति है, हम इसक स्वभाव से परिचित हो सकते हैं । ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार हम एक व्यक्ति तथा समाज स । एक समाज अपन सदस्यो की सम्पन्न बहुलता को अपन सभी सघर्षों और सहयोगी प्रयत्नो को अपन म समाहित किए रहता है । यह समाज क एक व्यक्ति स अधिक सम्पन्न है अपनी इस बहुलता को एकता म बाधते हैं जस एक जाति बाधती है । किन्तु यह समष्टि एक व्यक्तित्व हो जाता है और जाति नही रहता ।

तो भी ब्रेडल क अनुसार इसकी वयक्तिकता अपूर्ण है । पूर्ण व्यक्ति तो परमात्म ही हो सकता है । जबकि व्यक्ति अथवा समाज कुछ अशो म सदा ही वातावरण और परिस्थितियो क सहारे रहते हैं । इस प्रकार अपूर्ण व्यक्ति सत्ता हो सकता है । एक एसी सत्य और सवव्यापी व्यष्टि जिसम समष्टि का भाव भी समाहित है और यह समष्टि शून्य की समष्टि नही है ।

ब्रेडल यहाँ तक तो स्वीकारन के लिए तयार है कि यह परमात्म अनुभव–सिद्ध है । एक अननुभूत सत्य दोषपूर्ण अमूर्तीकरण पर आधारित होता है जिसका अस्तित्व ही निरथक है जो किसी भी भाति अनुभवसिद्ध नही है वह मेरे लिए अथ हीन है । यहाँ आकर ब्रेडले आदशवादी ज्ञान मीमासा की विशिष्ट तकप्रणाली अपनाते हैं । हम किसी वस्तु के विषय मे उस समय तक नही सोच सकत जब

---

1 अमूत एव ठोस समष्टियो क लिए द्रष्टव्य एन० क स्मिथ द नचर आफ यूनीवसल्स (माइण्ड 1927) । एम० बी० फोस्टर द कोक्रीट यूनीवसल माइण्ड 1931) । एच० बी० एक्टन थ्योरी आफ कोक्रीट यूनीवसल्स (माइण्ड 1936-7) । एव परिसवाद (ज० डब्लू० स्काट जी० इ० मूर एच० विल्डन कार जी० हाउम हिक्स) क्या ठोस समष्टि ही सही प्रकार का समष्टि दशन है ? ((पी० ए० स० 1919) द्रष्टव्य स्वय आदशवादियो की रचनाए बी० बोसाके द प्रिसिपल आफ इण्डवीजुएलिटी एण्ड वेल्यू (1912) ब्रेडले प्रिंसिपल्स आफ लोजिक, हीगल द फिनोमेनोलोजी आफ स्पिरिट (1807) ।

तक कि वसा सोचने की अनुभूति हमम नही और इसीलिए अनुभवहीन काई विचार विचार हो ही नही सकता। ता भी कही भी वे यह नही कहते कि परमात्म का अनुभव किया जा चुका है। क्योंकि इसका अथ यही होता कि उसकी अनुभूति करने वाला व्यक्ति उसस अलग होता। इसलिए वह तो केवल अनुभूति मात्र है।

यहा ब्रेडले का परमात्म एक सवव्यापी एव निरपक्ष अनुभूति है। यह न तो मन है न आत्मा।[1] मन द्वारा अनुभव की गई अवस्था से तो यह निश्चय ही कुछ और है क्योंकि उपयुक्त दोनो प्राक्ल्प उसको सापेक्षिक बना देते हैं। हम पारमात्मिक अनुभूति का एक ऐसा सामान्य रूप बना सकते हैं जिसम सघटनात्मक विशिष्टताए एकीकृत हो जाती हैं। उच्च स्तर पर एव सम्पूण एकत्व की एसी तात्कालिक अनुभूति होनी है जिसम उसकी बहुलता का कोई भी अश छूटता नही। यही विचार, जिस हम बिल्कुल समझ नही पाते, विस्तार म—अनुभूति पाने पर परमात्म का विचार हो जाता है।

तब यह परमात्म अपनी प्रकट बहुलता स किस प्रकार सयुक्त है? परमात्म के विषय म उसके सबधो का जिक्र करना उसके बारे म गलत सोचना है। वास्तव म परमात्म के विषय म अथवा उसकी माया के बारे म जो भी कथन हम कहते हैं निश्चय ही दोषपूण होगा क्योंकि इसके लिए विचार की भाषा का प्रयोग हम करना पडेगा और अमूर्त सत्यो का सहारा लेना पडेगा। किन्तु सभी भिन्नताये, परमात्म की सवव्यापिनी शक्ति म अपने लिए स्वय स्थान ले ही लेंगे।[2]

जब प्रतीतिया स्वत विरोधी हो और परमात्म सम्पूण रूप से स्वत सगत, तो फिर इन दोनो का निभाव कसे सभव है? यही प्रश्न स्वाभाविक तौर पर हम करते है। ब्रेडले ने इस प्रश्न का उत्तर अपने विरोधाभास के विशिष्ट सिद्धान्त के आधार पर दिया है। इसे उन्होने अपनी पुस्तक 'द प्रिंसिपल्स आफ लाजिक' के नकारात्मक विवेक वाले अध्याय म विकसित किया है। सामान्य तौर पर क का विरोधाभास अ—क होगा अर्थात् यह अ—क क का आन्तरिक रूप से विरोधी है।

---

[1] इसके बावजूद भी ब्रेडले अपनी कृति अपिएरेन्स ऐण्ड रिएलिटी का हीगल के इस आवश्यक सदेश के साथ समापन करते हैं आत्मा से परे कोई भी सत्य न तो है और न ही हो सकता है और जो वस्तु जितनी अधिक आत्मिक है उतनी ही अधिक वह सत्य भी है। यह रूढ आदशवाद ही है—लेकिन ब्रेडले ने 'अपियरेन्स एण्ड रियेलिटी' म इसे ऐसा ही स्वीकार नही किया है।

[2] सदभ, आर० एफ० ए० हानले प्रेग्मेटिज्म वसज एब्सोल्यूटिज्म (1) (माइण्ड 1905) एव जी० डाउस हिक्स 'एफ० एच० ब्रेडले द्वारा प्रणीत प्रकृति पर विचार (माइण्ड 1925, पुनर्मुद्रित क्रिटीकल रिएलिज्म' 1938)।

इस प्रकार कोई परमात्म, चाहे वह कितना ही व्यापक क्यों न हो इन दोनों विरोधी तत्वों को एक साथ अपने में समाहित कर सकता है। किन्तु ब्रेडले के मतानुसार अ-क का अर्थ क में विरोधी न होकर क से भिन्न अथवा कोई अन्य स्थिति का होना ही माना जाना चाहिए जो घूम फिर कर एक दूसरी सकारात्मक अवस्था ख को हमारे सामने प्रस्तुत करता है।[1] इस प्रकार हमारा यह कहना कि अ लाल नहीं है इस बात की ही स्वीकृति है कि यह कोई दूसरा रंग है जैसे हरा आदि।

निस्सन्देह यह बात असम्भव है कि एक ही समय में कोई वस्तु लाल भी हो और हरा भी। किन्तु ब्रेडले के अनुसार इस प्रकार क्षणों और अवस्थाओं की बात करना विज्ञान की कल्पना का ही प्रयोग करना हुआ। यदि हम विभिन्न प्रणालियों के विषय में जैसा हमें सोचना चाहिए वैसा अलग अलग ढंग से सोचें तो इस बात को देखने में कोई मुश्किल नहीं है कि लाल और हरा एक ही वस्तु में एक साथ कैसे रखा जा सकता है – यदि किसी एक व्यवस्था द्वारा उन्हें विरोध में खड़ा कर दिया गया है तो एक उससे भी बड़ी व्यवस्था में यह भेद मिट जाना चाहिए और दोनों को एक साथ ही संगति से अपने में समाहित कर लेना चाहिए। निश्चय ही इतने पर भी हमारे लिए यह समझना कि हमारे दैनिक जीवन के सभी विरोधाभास कैसे दूर हो जायेंगे काफी मुश्किल है। किन्तु ब्रेडले के अनुसार हमें यह जानने की आवश्यकता भी नहीं है। हमारे लिए तो यही जान लेना पर्याप्त है कि विरोधाभासों का दूर किया जाना सम्भव है और परमात्मा ही इनको पार कर सकता है। एक प्रसिद्ध सूत्र इस संबंध में द्रष्टव्य है जो सम्भव है और होगा वह है भी।”

इस अर्थ में सभी प्रतीतियां ब्रेडले के परमात्म द्वारा पार कर ली जाती हैं सत्य शिव और सुन्दर यह आदर्शवादी मूल्यों की त्रिविधा अपने किसी भी परिचित रूप में वहां विद्यमान नहीं रहती। बुरा भद्दा और झूठा ये भी इसी क्रम के रूप हैं और परमात्म में इनकी भी विद्यमानता रहती ही है। लेकिन ब्रेडले यहां यह बात कतई नहीं मानते हैं कि परमात्म के इस पारकरण में गुणों का यह मौलिक भेद मिट जाता है। कुछ प्रतीतियां अन्यों की अपेक्षा परमात्म के अधिक करीब हैं ये प्रतीतियां सर्वाधिक सत्य और सर्वाधिक मूल्यवान हैं। इन प्रतीतियों में से प्रत्येक के विषय में हमें यह-प्रश्न पूछना चाहिए कि कितने और संयोग से यह परमात्म में

---

[1] तकनीकी भाषा में ब्रेडले विरोधास्पद और विसंगत में कोई भेद नहीं मानते। (द्रष्टव्य एपियरेन्स एण्ड रिएलिटी का परिशिष्ट नोट—1।) प्लेटो ने सोफिस्ट नामक ग्रन्थ में जिस तरह विचार किया है ब्रेडले के संबंध में भी यही कहा जाता है कि उन्होंने भी लगभग वैसा ही किया है। किन्तु ब्रेडले पर तात्कालिक प्रभाव हीगल का ही था। द्रष्टव्य द लाजिक आफ हीगल' (अनुवाद वलेस) अध्याय 7।

विलीन हो जाएगा। जितने कम संयोग की अपेक्षा होगी उस प्रतीति की उतनी ही अधिक महत्ता होगी। और इस सत्य का परीक्षण प्रतीतियों में निहित संगति और व्यापकत्व-भाव से ही होगा।

जिसे हम भूल कहते हैं,[1] उसे गंभीर रूप से समंजित किया जाना आवश्यक है। वे इस बात का पूर्व खण्डन करते हैं कि भूल में कोई सत्य नहीं है। हमारी अन्य धारणाओं की अपेक्षा केवल ये अधिक भ्रामक होती हैं। अन्य सभी धारणाएं भी किसी न किसी तरह दोषपूर्ण होती हैं। क्योंकि वे किसी ऐसी अकेली अवस्था की ओर इंगित करने में असफल हो जाती हैं जो ही एक मात्र सत्य है। यह कहते हैं कि पुस्तक लाल है और हम ऐसा कह कर उसके विषय में सन्तोष भी प्राप्त कर लेते हैं किन्तु वर्तमान परिस्थितियों में पुस्तक देखने में उसका जो रूप हमारे सामने आता है उसी के आधार पर दुर्भाग्यवश हम यह समझ लेते हैं कि पुस्तक पूर्णत: लाल है। किन्तु यह गलत है क्योंकि जो सम्पूर्ण अवस्थाएं उस पुस्तक के लाल रंग को देखने के लिए हमारे पास होनी चाहिए पुस्तक की प्रस्तुत अनुमति के कारण वे हमारे पास पूर्ण रूप में नहीं हैं। इसलिए हमारी यह धारणा कि पुस्तक लाल है—हमारे उस झूठे बोध पर ही आधारित लगती है जिसके अपूर्ण होने पर भी हम उसे पूर्ण मान हुए रहते हैं।[2] इस प्रकार का अपूर्ण बोध इतना मूल्यवान तो होता है कि यह पुस्तक सम्बन्धी हमारे अन्य बोधों से किसी न किसी रूप से जुड़ा है। यदि यह गलत भी हो तो भी इसके कुछ न कुछ सत्य तो है ही क्योंकि इस वस्तु में नहीं तो किसी अन्य वस्तु के विषय में यह कुछ बताता है। सिर्फ वर्तमान सन्दर्भ में इसका गलत होने का अर्थ यही है कि प्रस्तुत वस्तु में सम्बन्धित सत्य से इसका कम से कम संयोग हो सका है।

दोनों ही अवस्थाओं में किताब लाल है वाली धारणा ब्रेडले के अनुसार दुर्बलतम धारणा है क्योंकि इसका व्यापकत्व से जरा सा भी सम्बन्ध नहीं है। दृश्यमान तथ्यों के सम्बन्ध में भी यही बात सही है जिनमें सत्य खोज लेने की आशाएं करते हैं। इन्द्रिय संवेदना द्वारा परीक्षित अनुभूतियां निम्न कोटि के सत्य होती हैं। इसके विपरीत ब्रेडले के मतानुसार ईश्वर में सत्य की उच्चतर अवस्था है, क्योंकि इसकी पूजा एक व्यापक सत्ता के रूप में की जाती है और इसका स्पष्टीकरण एक व्यापक भाव के रूप में ही दिया जाता है।

---

[1] जी० एफ० स्टाउट ब्रेडले आन ट्रूथ एण्ड फाल्सिटी (माइण्ड 1928) 1930 में पुनर्मुद्रित स्टडीज इन फिलोसोफी एण्ड साइकोलोजी। सी० डी० ब्राड मिस्टर ब्रेडले आन ट्रूथ एण्ड रीएलिटी (माइण्ड 1914)

द्रष्टव्य प्रिंसिपल्स आफ लोजिक में से दूसरा टर्मिनल एस्से। जी० एस० स्टाउट मिस्टर ब्रेडलेज थ्योरी आफ जजमेण्ट (पी० ए० आर० 1903—स्टडीज में पुनर्मुद्रित)

केवल यही ब्रेडल का भौतिकवादियो का अतिम जवाब है। भौतिकवादियो के तथ्य ही न कवल सत्य स शून्य होते हैं अपितु प्रतीतियो के रूप म उनकी सत्यता की अवस्था निम्न कोटि की होती है। इसी प्रकार के सिद्धान्त क प्रतिपादनाथ ब्रेडले न 'एपीयरेंस एण्ड रीएलिटी' क परिशिष्ट म लिखा है कि जो हमारी दृष्टि म सर्वोच्च है वही समष्टि के लिए सर्वाधिक सत्य है और उसकी सत्यता के अपदस्थ होने का कोई प्रश्न ही नहा उठता दूसरी ओर सामान्य भौतिकवाद म थ तत वस्तु के बारे मे हम जो कुछ जानते है उसक सत्य की अवस्था न्यून होती जाती है क्योंकि अनुभव स उसका सम्बन्ध टूट जाता है और अन्तत प्राप्त की गई अवस्था मूलत अपनी पूर्वावस्थाओ स ही जुडी होती है और उसी का परिणाम होती है। इस अवस्था तक तो ब्रेडले ने विश्वास के साथ लिखा किन्तु प्रत्यक प्रकार की प्रतीति के विश्लेषण की बात उसन तत्ववादियो पर छोड दी।

कोई भी आदशवादी ब्रेडले क इस निष्कष म सहमत न हो सका कि आत्मा यद्यपि पूर्ण सत्य नही है तो भी कम स कम प्रकृति से तो वह अधिक सत्य ही है। आत्मा और प्रकृति तथ्य और मूल्य और यन्त्रीकृत विश्व सम्बन्धी दृष्टिकोण और आदशवाद के प्रस्तुत द्वत तथा सघष को समाप्त करन म ब्रेडल का प्रमुख हाथ था। लेकिन बहुत स आलोचको की दृष्टि म एसा करके ब्रेडल ने धम और नतिकता का तो ध्वस ही कर डाला।

अध्याय 4

व्यक्तित्व एवं परमात्म

ब्रैडले की पुस्तक 'एपीयरेंस एण्ड रीएलिटी' के प्रकाशन से 6 वर्ष पूर्व एण्ड्रू सेथ की[1] पुस्तक 'हीगेलियनिज्म एण्ड पर्सनलिटी' (1887) प्रकाशित हो चुकी थी। उससे 4 वर्ष पूर्व सेथ की जिम्मेदारी तथा सहयोग में नवहीगलवादी निबंधों का संग्रह 'ऐसेज इन फिलोसोफीकल क्रिटिसिज्म' भी प्रकाशित हो चुका था। इस संग्रह में स्वयं उनका एक निबंध था जिस पर हीगल का प्रभाव था। तो भी उपर्युक्त पुस्तक 'हीगेलियनिज्म एण्ड पर्सनलिटी' हीगलवाद की समूची वृत्तियों के प्रतिरोध में एक आवाज है और इसमें हीगलवाद द्वारा प्रतिपादित चेतना के एक मात्र साध्य के सिद्धान्त का तो डटकर विरोध है—यही प्रतिरोध आगे जाकर ब्रैडले की व्यक्तित्व मूलक आदर्शवादी समालोचना का आधार बना।

कुछ अंशों में सेथ स्काट परम्परा का कायापलट करते हुए लगते हैं। इसका सूत्र हम उनकी पुस्तक 'स्कोटिश फिलोसोफी: ए कम्पेरीजन आफ द स्कोटिश एण्ड जर्मन आन्सर्स टू ह्यूम' (1885) में आसानी से खोज सकते हैं। यहां आकर वे यह मानने लग जाते हैं कि दर्शन को किसी न किसी भांति ईश्वरविषयक हमारी आस्था को औचित्य देना ही होगा चाहे वह आत्मा परमात्म से तादात्म्य के जरिए हो अथवा हमारी चेतना से परे अलग खड़े हुए बाह्य वस्तुगत अथवा जागतिक सत्ता के जरिए ही क्यों न हो। लेकिन सेथ लोज को भी दृष्टि में रखने की आवश्यकता स्वीकार करते हुए कहते हैं कि उनका दर्शन तो स्काट विचारधारा के काफी अनुकूल पड़ता है। ब्रैडले ने लिखा था कि एक मननक पाठक के लिए भी लोज की इस मान्यता का पता लगा लेना कठिन है कि उनके लिए एकात्म सदैव ही संघटनात्मक विशेषणों में कुछ अधिक

---

[1] कौटुम्बिक कारणों से उन्होंने बाद में अपना नाम बदलकर प्रिंगल पैटीसन रख लिया था। द्रष्टव्य जी० एफ० बारबर की उनके मरणोपरान्त प्रकाशित पुस्तक 'बालफोर लेक्चर्स आन रीएलिज्म' (1933) एवं जे० बी० बनी एवं जे बी० बपर के निबंध (पी० बी० ए० 1931), एच० एफ० हैलेट की श्रद्धांजलि (माइण्ड 1934), एवं ई० एम० मैरिंगटन की ए० जे० पी० 1931 में प्रकाशित स्मरणांजलि। वे ए० केम्पबलर फ्रेजर के विद्यार्थी थे और लाक तथा बर्कले की कृतियों के सम्पादक थे और इनके द्वारा लिखित पुस्तक 'वेराइटी आफ थीज्म' वैयक्तिक आदर्शवाद पर काफी प्रकाश डालती है। इस पर हुए सुवाद के लिए द्रष्टव्य सेथ द्वारा 1919 में माइण्ड में प्रकाशित निबंध 'द आइडिया आफ गोड' जिसमें उन्होंने कुछ आलोचनाओं का जवाब दिया है।

अपना अधिक ध्यान केंद्रित रखा है। कट्टर आध्यात्मवादी उनकी इस बात में सहमत न हो सके कि ईश्वर मात्र एक अपूर्ण सत्ता है।

यदि उसे मनुष्य से अलग कर दिया जाय तो तब आदर्शवादियों को यह शिकायत थी कि सेथ ने प्रकृति को पर्याप्त स्वतन्त्रता नहीं दी है। मनस्तत्ववादियों का मत था कि उन्होंने प्रकृति और मन में बहुत भेद रक्खा है। लेकिन सचाई तो यह है कि सेथ की विचारधारा सामान्य मस्तिष्क वाले बुद्धिजीवियों के लिए काफी आकर्षक रही और उनके द्वारा अपेक्षित इस स्थिति की कि दर्शन को प्रकृतिवाद तथा परमात्मवाद के बीच में कोई माध्यम खोज निकालना चाहिए—सेथ की यह विचारधारा काफी अंशों में पूरा करती है। इसमें धर्म और विज्ञान का भी सन्तुलन है तथा व्यक्तित्व के अधिकारों तथा समुदाय की माँग के लिए भी पर्याप्त जगह है। मैज[1] के शब्दों में—इस प्रकार एक साधारण आदर्शवाद का प्रादुर्भाव हो गया था और इसका प्रवर्तन प्रान्तीय एवं उपनिवेशी विश्वविद्यालयों में काफी हुआ। इसके अनुयायियों में से कुछ तो सांस्कृतिक परम्परा के व्यक्ति थे जिनकी व्यापक रुचियों ने सेथ के मठवाद में ही सन्तोष पाया था लेकिन कुछ का मत था कि इस प्रकार का विभाजन निश्चय ही ठस दिमाग की ही उपज हो सकता है—। दर्शन इस प्रकार के लोगों के हाथों में पड़कर गम्भीर चिंतन मनन से हट कर विविध प्रकार की सजावट का माध्यम बन गया था।

हीगलियनिज्म एण्ड पर्सनालिटी नामक पुस्तक में प्रतिपादित अपने व्यक्तिवाद में यदि सेथ थोड़ा मुकर गये हों तो इसका कारण यही था कि आदर्शवाद की एक नई प्रजाति प्रवर्तन में आ चुकी थी इस आदर्शवाद ने व्यक्ति को उस सीमा तक स्वतन्त्र माना जिसके सेथ भी कभी प्रतिवादी रहा करते थे। और व्यक्ति यहाँ आकर इतना स्वतन्त्र हो गया था कि ईश्वर और प्रकृति की सत्ताओं को यह एक चुनौती थी। यह प्रवृत्ति अमरीकी आदर्शवादी विचारक जी एच होवीसन में देखी जा सकती है।[2]

होवीसन ने अपने दार्शनिक जीवन का समारम्भ सेन्ट लुईस फिलासोफीकल सोसाइटी के अग्रणी सदस्य होकर किया और यह भी सेथ की भाँति समझौतावादी

---

[1] अपनी श्रेष्ठ कृति **ए हण्ड्रेड ईयर्स आफ ब्रिटिश फिलोसोफी** (1935 अंग्रेजी में अनूदित 1935) में मैज ने इस प्रकार का मन्तव्य व्यक्त किया है। उनका मैं काफी आभार मानता हूँ।

[2] विशेषत द्रष्टव्य **द लिमिटस आफ इवोल्यूशन** (1901) 1905 के इसके द्वितीय संस्करण में आलोचकों का जवाब दिया है। मेकरेगट का माइण्ड के 1902 में प्रकाशित रिव्यू, 1934 में प्रकाशित जेडब्लू० बूखम एवं जी एम स्ट्रेटन की पुस्तक **जोज होम्स होवीसन फिलोसोफर एण्ड टीचर** इत्यादि।

छोड़कर नहीं। वे व्यक्तित्व के लिए हीगल के विरुद्ध हो गए। उनके अनुसार परमात्मवाद पौर्वात्य सिद्धान्त है और पाश्चात्य आदमी में जमा हुई वैयक्तिक सूझ बूझ के प्रति एक जन्मजात आग्रह है। उनमें दायित्व एवं पैठ के लिए भी एक आग्रह है। उसके इस आग्रह को कोई भी एकतत्ववादी दर्शन संतुष्ट नहीं कर पा रहा था चाहे वह एक-तत्ववाद प्रकृतिवादी हो अथवा आदर्शवादी—ही क्यों न हो।[1] अनेकतावादी आदर्शवाद जिसके अनुसार सत्य परस्पर जुड़े हुए मनों का तथा उनसे संयुक्त ईश्वर का एक ऐसा अनन्त गणराज्य है जिसका बिना वैयक्तिकता का समापन किए ही प्रकृतिवाद के विरुद्ध प्रयोग किया जा सकता है। वह यह बात स्वीकार नहीं करना चाहते हैं कि मनस्तत्व ईश्वर में ही निःसृत है। होवीसन ने लिखा कि कोई दैवी निमित्त भी अपने से भिन्न एक स्वतः कर्मशील बुद्धि को किसी भी उत्पादक कर्म द्वारा प्रकट नहीं कर सकता। प्रत्येक मन आत्माओं के समाज में अनन्त रूप से अस्तित्वमान रहता है और ईश्वर केवल मात्र वहां बराबरी का दर्जा पाने वालों में सबसे अग्रज है। हां यह एक ऐसा अग्रज है जिनका अन्य सभी आत्माएं निरन्तर संदर्भ प्राप्त करती रहती हैं।

इसलिए हेनरी स्टर्ट के द्वारा सम्पादित एक पुस्तक के शीर्षक के रूप में 1902 में पर्सनल आइडियलिज्म प्रकाशित हुआ तो होवीसन को क्रोध हो आया। इसमें बहुत से नए युवक विचारकों ने अपने आपको ब्रैडले की सम्पूर्ण आदर्शवादी परम्परा का अनुयायी माना है। स्पष्टतः ही होवीसन को अपना कापी राइट खतरे में पड़ता हुआ लगा और होवीसन के मतानुसार जो इससे भी अधिक खराब बात थी वह यह थी कि इनमें से बहुत से लेखक तो व्यक्तिमूलक आदर्शवादी भी नहीं

---

[1] यहां प्रस्तुत व्यक्तित्वमूलक आदर्शवाद बड़े ही स्पष्ट तौर पर एक प्रजातान्त्रिक दर्शन की मांग को पूरा करता है। इसी योजना को उत्कर्ष तक ले जाने वालों में होवीसन के शिष्य एच० ए० स्ट्रीट का नाम लिया जा सकता है। उनका 1913 ई० में हिबर्ट जर्नल में प्रकाशित यह निबन्ध दर्शनीय है डेमोक्रेटिक कन्सेप्शन आफ गॉड जिसमें इस बात पर अभियोग लगाया गया है कि प्रजातान्त्रिक समाज में किसी ऐसी सत्ता को जो सर्वोच्च हो—तथा सभी दृष्टियों से पूर्ण हो—और बहुलता से पहले उससे संघर्षहीन प्रयोजनत्व के बीच भेद कायम रखना सरासर गलत है। इस प्रकार की यह अमरीकी दृष्टि एक यूरोपीय को विचित्र सी ही लगती है। कदाचित इसका कारण यह हो कि यह अपने विषय वस्तु की भिन्नता की परवाह नहीं करती। होवीसन की इस बात की सहमति दी जा सकती है कि भारतीय दार्शनिक पूर्ण आदर्शवाद या परमात्मवाद की ओर उन्मुख थे और उन्हीं के कारण कदाचित ब्रैडले का नाम ऐसे समय में भी जीवित है जिसमें पश्चिमी जगत में उनका कोई अनुयायी शेष नहीं है। द्रष्टव्य द फिलोसोफी ऑफ एस० राधाकृष्णन्, लाइब्रेरी आफ द लिविंग फिलोसोफर्स वाला संस्करण (सम्पादन पी० ए० शिल्प 1952)

थ। वे तो विलियम जेम्स के अनुयायी थ जिसके विरुद्ध होवीसन न अपनी वक्त य शक्ति का पूरा उपयोग किया था।[1]

हेस्टिग्स रेशडल अपन निबन्ध **पसनलिटी, ह्यूमन एण्ड डिवाइन** म हावीसन के निकटतम पहुचे है। उन्हान लिखा है कि परमात्म, ईश्वर और आत्म दोनो को समाहित किये है अपने द्वारा जानन एव अनुभव करन की सभी अवस्थाओ क साथ। लकिन होवीसन की तरह रेशडल आत्माओ का अनन्तता की स्वीकृति नही दत। प्रत्यक आत्मा ईश्वर द्वारा निर्मित है। किन्तु कट्टरपन्थिया क लिए दी गई इस छूट का सतुलन इस धारणा स होता है कि ईश्वर अपनी सृष्टि क उपकरणा स ही सीमित और उनसे ही प्रनिबद्ध है।[2]

अब तक यह बात काफी स्पष्ट हो गई है स्वतन्त्र आत्माओ क समुदाय क रूप मे सत्य का विचार सरलता स ईश्वर के विचार स मल नही खाता। सथ को यह बताने म कोई कठिनाई नही हुई कि हावीसन ईश्वर को प्रारम्भिक अन्त निया शील स्थिति के रूप म सीमित नही कर सक। रेशडल और होवीसन फिर भी न्यायपूर्ण ढग स सेथ को यह उत्तर दे सकते है कि उनक स्वय द्वारा निर्मित ईश्वर और एकात्म सत्ताओ के बीच का सम्बन्ध कट्टर अध्यात्म एव प्रगतिशील आदश वादियो के बीच एक अकुलाहट भरा सयोग मात्र ही है। इसका उद्घाटन बाद म जे० ई० मकटेगट न किया। ईश्वर का पलायन होना चाहिए क्योकि सत्य तो सीमित आत्माओ क समुदाय की समवायी सत्ता ही है।

मकटेगट का व्यक्तित्व मूलक आदशवाद सेथ हावीसन व रेशडल की ढीली ढाली विचार प्रणालियो स सवथा भिन्न है। उन्ह अपनी योग्यता के कारण व्यक्तित्व मूलक आदशवाद का ब्रेडले कहा जा सकता है। ब्रेडले की ही भाति न कि होवीसन एव सथ की तरह उनको आदशवाद के समसामयिक विरोधियो द्वारा

---

[1] स्टट क लिए देख सी०ज० कव (माइण्ड 1947)। एफ सी एस शिलर पर लिखा हुआ अध्याय ८ दख। दूसरे निबन्धकारो म जी० एफ० स्टाउट है। उन पर अध्याय 13 को दखा जा सकता है। डब्लू आर बाइस गिब्सन योरोपीय दशन क अनुवादक एव टिप्पणीकार क रूप म प्रसिद्ध हैं। (देखें डब्लू ए मैरीलीन ए ज पी 1930) एव नतिक सिद्धान्तवादी हस्टिग्स रेशडल (देखें मथियसन द्वारा लिखित द लाइफ आफ एच० रेशडल (1928)

[2] इसी प्रमय के लोकप्रिय प्रस्तुतीकरण के लिए देख एच जी वेल्स कृत ब्रिटलिंग सीज इट थ्रो (1961) गाड द इनविजिबल किग (1917, एव स्पष्टो सिज्म आफ द इस्ट्रूमेन्ट (1904)

कटु आलोचना की गई है।[1]

किन्तु जहां ब्रैडले द्वारा तत्ववाद का कार्य यह माना गया है कि जिस बात पर हम सहज रूप में विश्वास कर लेते हैं उन विश्वासों की व्यवस्था की गलतियां निकाली जाय वहीं मैकटेगर्ट सहज रूप में कुछ विश्वास करने में बहुत कुछ सचाई देखते हैं। हम हमारे सहजात विश्वासों के लायक ही नहीं यदि हम उन्हें दार्शनिक विचारधारा में पुष्ट नहीं कर सकें। कोई भी ऐसा आदमी धार्मिक भाव रखने का अधिकारी नहीं है जब तक उसने उनका दार्शनिक अध्ययन न कर लिया हो। यह बात मैकटेगर्ट ने अपनी पुस्तक सम डॉग्माज ऑफ रिलिजन (1906) में लिखी है।

इस पुस्तक का उद्देश्य मूलतः नकारात्मक है। यहां मैकटेगर्ट ने यह दिखाने का प्रयास किया है कि लोकप्रिय अध्यात्म-दार्शनिक आलोचना के समक्ष खड़ा नहीं रह सकता।[2] अपनी दूसरी रचनाओं में वे एक ऐसे तत्ववाद की खोज में हैं जो धार्मिक भाव की पुष्टि कर सके और वे धार्मिक भाव की परिभाषा एक ऐसे विश्वास से देते हैं जो हमारे और वस्तुजगत के बीच कोई संगति बैठा सके। यह संगति होने के लिए निम्नलिखित शर्तें पूरी होना जरूरी हैं। पहली कि यह ब्रह्माण्ड आत्माओं से निर्मित है, दूसरी कि आत्मा अमर है। तीसरी यह कि आत्मा प्रेममय है अथवा अपने प्रमुख तत्वों में वह यथार्थ उपकरणों को लिए है। चौथे, यह ब्रह्माण्ड शिवमय है और निरन्तर पूर्ण शिवत्व की ओर अग्रसर हो रहा है।

---

[1] सन्दर्भ 1935 से 38 में प्रकाशित सी० डी० ब्राड कृत ऐग्ज़ामिनेशन ऑफ मैकटेगर्ट्स फिलोसाफी (दोनों खंड)। किसी भी समसामयिक दार्शनिक पर इतनी टिप्पणियां नहीं लिखी गईं। जब केम्ब्रिज के विचारक तत्ववादी युक्तियों का विश्लेषण करते हैं तो उनमें मैकटेगर्ट का उद्धरण देने की विशेष वृत्ति रहती है—जिसमें उन्होंने इस बात से इन्कार किया है कि समय सत्य है। द्रष्टव्य डिकिन्सन कृत जे० ई० मैकटेगर्ट 1931। एस० वी० कीलिंग मैकटेगर्ट दर्शन के स्मृति ग्रन्थ। सी० डी० ब्राड के स्मरणार्थ (पी बी ए 1927। पुनर्मुद्रित संशोधन सहित 1930)। जी० ई० मूर की श्रद्धांजलि (माइण्ड 1928)। मैकटेगर्ट द्वारा अपने ही दर्शन का सारांश एन आण्टोलोजीकल आइडियलिज्म (सी० बी० पी०)

[2] मैकटेगर्ट सामान्यतः व्यक्तित्वमूलक आदर्शवादियों के विपरीत क्रिश्चियन धर्म के प्रबल आलोचक हैं। वे इसे नीतिशास्त्र अथवा अध्ययन मात्र ही मानते हैं। अपने एक पत्र में उन्होंने लिखा है—इन सब से परे कोई क्रिश्चियन है तो उसे ईसा मसीह की पूजा करनी पड़ेगी। और मैं ईसा मसीह को बहुत ज्यादा पसन्द नहीं करता। क्या तुम किसी ऐसे आदमी या औरत को दरअसल पसन्द करोगे जो ईसा मसीह की नकल करते हों? द्रष्टव्य एच० रेशडेल मैकटागर्ट्स डोग्माज ऑफ रिलीजन (माइण्ड 1906)

पहले पहल तो उन्होंने यह सोचा कि वे अपनी इन शर्तों की पूर्ति हीगल की द्वन्द्वात्मकता के जरिए कर सकते हैं। अधिकांश ब्रितानी दार्शनिकों ने इस द्वन्द्वात्मकता को न्यूटानियों की भांति रहस्यलोक में विचरण करने की प्रवृत्ति कह कर उसे अस्वीकार कर दिया था। मेक्टगट ने लिखा कि इसके बावजूद भी इन सभी ने हीगल के निष्कर्षों को तो स्वीकार किया है किन्तु उनके द्वारा दिये गये प्रमाणों को व्यर्थ का कह कर अस्वीकार किया है। 1896 में लिखी अपनी पुस्तक **स्टडीज इन द हीगेलियन डाइलेक्टिक** में तथा 1910 में लिखी **ए कमेण्ट्री ऑन हीगल्स लोजिक** में उन्होंने हीगल की भांति विचार करने का निश्छल प्रयास भी किया है किन्तु इसके बावजूद भी यह स्पष्ट हो जाता है कि हीगेल को भी उन्हें अपने द्वारा निर्धारित निष्कर्षों के समनाथ ही पड़ा है। कोई भी इस बात से सहमत नहीं हुआ है कि जिस हीगल का वर्णन वह करते हैं वह कहीं भी उनकी कल्पना से बाहर का कोई हीगल है। 1910 में लिखी उनकी पुस्तक **स्टडीज इन द हीगेलियन कोस्मोलोजी** निश्चय ही उनके हीगल–विषय के अध्ययन की भ्रम–पूर्ण सूचना देती है। यह तो उनके सामने ही प्रस्तुत नैतिक और धार्मिक प्रश्नों के समाधान के लिए लिखी गई एक विचारपूर्ण पुस्तक है। उन्होंने यह भी स्वीकारा है कि हीगल ने प्रश्नों को न्यूनतम रूप में छुआ है। मेक्टगट की प्रकट मुश्किल यह थी कि हीगल ने अमरत्व के प्रति एक बहुत ही आकस्मिक दृष्टि रखी थी। फिर भी उनकी मान्यता है कि जो विचार उन्होंने अपने हीगल संबंधी अध्ययनों में व्यक्त किए हैं जिनमें अधिकतर लाज और ब्रैडले की आलोचना ही है अपने स्वभाव में हीगलवादी ही हैं चाहे वे हीगल की मूल विचार शृंखला से कितने ही कठिनाई से क्यों न जुड़े।

ये ही कुछ ऐसे वर्ष थे जिनमें हीगलवादी दर्शन पर करारी चोटें की जा रही थीं। विशेष तौर पर मेक्टेगट के केम्ब्रिज सहयोगियों द्वारा। बर्टेण्ड रसल जो हीगलवाद के प्रबल विरोधी हो गए थे और जी० ई० मूर जो स्वयं हीगल दर्शन में अधिक रुचि नहीं रखते थे इन दोनों ने मक्टेगेट द्वारा प्रतिपादित नव हीगलवादी विचारधारा का अध्ययन करना प्रारंभ किया था[1]। मेक्टेगट अभी भी यह बात मानते थे कि हीगलवादी द्वन्द्वात्मकता सर्वोच्च अवस्था है, लेकिन जैसे जैसे वह अपनी श्रेष्ठतम कृति **द नेचर आफ एक्जिस्टेन्स** (2 अंक 1921 27) लिख रहे थे वे निश्चय ही हीगल प्रणाली से विपरीत जा रहे थे।

द नेचर आफ एक्जिस्टेन्स दर्शन के इतिहास में बहुत सावधानी से तैयार की गई रचनाओं में से एक मानी जानी चाहिए। आंग्ल विचारधारा की दृष्टि में तो यह अद्वितीय है। इसलिए नहीं कि फरियर ने भी यही प्रणाली अपनायी थी– बल्कि

---

[1] द्रष्टव्य 1936 में प्रकाशित मकडोनाल्ड की पुस्तक **रसेल एण्ड मेक्टेगट**, जी० ई० मूर कृत **मिस्टर मेक्टेगट्स स्टडीज इन हीगेलियन कोस्मोलोजी** (पी०ए०एस० 1901) एवं 1903 में प्रकाशित **मिस्टर मेक्टेगट्स एथिक्स** (ऐथिक्स 1930)

इसलिए कि एक निगमनात्मक तत्त्ववाद तयार करने म जिसम सारे दार्शनिक निष्कर्षपूर्ण निर्धारित कुछ असदिग्ध तर्क वाक्यो पर विकसित होते हैं, इसका कोई मानी नही हैं।

मकटेगट प्रारम करते हुए कहते हैं कि 'अमुक वस्तु अस्तित्व म है', यह बात असदिग्ध है। इसको जिस ढग से व सिद्ध करत हैं वह कार्टेजियन तर्क प्रणाली की याद दिलाती है। यदि हम अमुक वस्तु के अस्तित्व के प्रति सदहशील है तो हमारा वह सदेह भी अस्तित्वमान् हो जाता है। इस प्रकार हमारा सदह करने का प्रयत्न अपन आपको ही पराजित करने वाला सिद्ध होता है। इस तरह यह *कुछ अमुक गुणो स युक्त होनी चाहिए क्योकि गुणहीन वस्तु मात्र एक खोखली* सत्ताहीनता क अतिरिक्त कुछ भी नही और शून्य म और उसम कोई भद नही हैं। इस प्रकार हम यह निष्कर्ष निकाल सकत हैं कि अमुक वस्तु न केवल अस्तित्वमान है अपितु गुणो स युक्त भी है। और इमसे यह भी निष्कर्ष निकलता है कि यह अमुक वस्तु चू कि अन्य सभी वस्तुओ के सभी गुणो को अपन म धारण नही करती इसलिये निश्चय ही इस वस्तु स बाहर कुछ ऐसे गुण भी हैं जो इस अमुक वस्तु म नही हैं—क्योकि एक विशष गुण उसम नही है-। उदाहरणार्थ यदि कहा जाए कि अमुक वस्तु एक वर्गाकार है तो निश्चय ही एक त्रिकोण नही है। इस प्रकार अमुक वस्तु क विषय म कुछ भी कह कर हम उसम नये गुणो की हमारे इस कथन के साथ ही स्थापना करत है। क्योकि त्रिकोणात्मक न होने का मतलब अ–त्रिकोणात्मक होना है, अर्थात् यदि किसी वस्तु म कोई गुण नही है तो उसम उन गुणो का अभाव होना चाहिए। इस प्रकार प्रत्यक अस्तित्वमान् वस्तु म बहुत से गुण होने चाहिए—इस असदिग्ध तथ्य क साथ किसी वस्तु के होने का अर्थ ही उसम आवश्यक रूप से गुणो का होना ही है। *(यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि मेक्टेगट न गुण शब्द का प्रयोग व्यापक सदर्भ म किया है)* अत् अस्तित्वमान एव बहुत से गुणो स युक्त होना, य तीनो अवस्थाए ही मूलत अपने आप म सभी गुणो को समाहित कर सकती हैं।

कोई वस्तु सगुण है यही तथ्य उसके अस्तित्व की प्रकृति पर काफी प्रकाश डालता है। यदि इसम कुछ गुण हैं तो निश्चय ही उन गुणो का धारण करने वाली कोई अवस्था होनी चाहिए जसे कि कोई तत्त्व वही है जिसे मेक्टेगट के शब्दो म सगुणात्मक रूप से वर्णित किया जा सके जसे ब्लेक ताश के खिलाडी लाल बोलो वाले आकडीकन पशुओ की जाति य प्रत्येक एक तत्त्व है। लेकिन इससे आगे इनमे एक से अधिक तत्त्व रहने चाहिए और यह मक्टेगट का अनेकतावाद की तरफ जाता हुआ कदम है। इस बार फिर उनका तर्क अपने आकार म कार्टेसियन है। यदि हम इस बात पर सन्देह करेंगे कि वस्तु म एक स अधिक तत्त्व कैसे हैं तो हमारे सदेह की इस क्रिया म ही कम स कम दो तत्त्वो की सत्ता सिद्ध हो ही जाती है। एक सदेह करने वाला तथा दूसरा जिसके विषय म सदह किया गया है। इस प्रकार हमारा सदह अपने को ही पराजित करने वाला ह।

इसके साथ जो एक नकारात्मक बात सिद्ध की जा सकती है वह यह है कि ऐसा कोई ससार नही है जिसे हम अनुभव द्वारा निर्मित कर—और वह हमारी आधिभौतिक (तत्त्ववादी) आवश्यकताओ की पूर्ति कर सकता है । इस प्रकार प्रकृतिवादियो के द्वारा वर्णित विश्व कभी भी सत्य नही हो सकता ।

इस तरह की ही विचारधारा मे से जिससे उनकी पुस्तक का दूसरा भाग भरा पड़ा है समय की सत्यता पर उनके द्वारा किया किया गया प्रहार सर्वाधिक चर्चित हुआ है ।[1] यह विचार 1908 म सर्व प्रथम माइण्ड नामक पत्र मे प्रकाशित हुआ था किन्तु अब तो उसका एकतत्त्ववादी सिद्धान्त के रूप म भी पूर्ण विकास हो चुका है । और यह उनकी सामान्य विचारधारा के प्रतिनिधित्व के लिए एक विशिष्ट उदाहरण के रूप म लिया जाता रहा है । सामान्य रूप से हम जिसे सामयिक कहते हैं उसकी दो शृखलाएँ हैं । पहली शृखला है जिसे सुविधा के लिए अ नाम दिया जा सकता है, के अन्तर्गत घटनाए अपना स्थान भूत वर्तमान या भविष्य म कही न कही रखती ही हैं । दूसरी शृखला जिसे ब की सज्ञा दी जा सकती है घटनाए केवल पहले या पीछे का एक क्रम रखती है । समय के कल्प के लिए अ शृखला अनिवार्य है । क्यो कि जब इन घटनाओ को समय क्रम म वर्णित करते है तो हम केवल यही नही कहते कि उनके पहले और पीछे की अवस्थाए दो रही हैं । हम यहा पर वर्तमान भूत और भविष्य के किसी भी निश्चित क्रम घटित होने के लिए उसका विशिष्ट स्थान खोज रहे होते है । यह अन्तत इस सत्य को उद्घाटित करता है कि समय परिवर्तनशील है जिसका ब शृखला से कोई ताल्लुक ही नही है । रोम का पतन सदैव ही जनजागरण काल से पहले हुआ था और वह रहेगा ही । यहाँ कोई परिवर्तन नही है, यह परिवर्तन उस समय दिखाई देता है जब हम यह मानें कि पुनर्जागरण का काल कभी था और अब नही है । अर्थात उसी समय इसकी महत्ता है जब हम अ शृखला को नष्ट कर दें तो समय और परिवर्तन उसके साथ ही विलुप्त हो जाएगे ।

इसके बावजूद भी मैक्टेगर्ट का कथन है कि वे अ शृखला की असत्यता को और भी कई तरह से साबित कर सकते है । उनके कथनानुसार भूत वर्तमान और भविष्य अपने आपमे असम्बद्ध स्थितिया हैं । और अ शृखला फिर भी आवश्यक रूप से प्रत्येक कड़ी को जोड़ने की कोशिश करती है । स्पष्टत यह बात तो सभी को दिखाई देती है कि चू कि घटनाए एक दूसरे के बाद घटती है इसलिए कोई विरोधास्पद बात सोचने का कारण है ही नही । वे भूत मे रही हैं वर्तमान म हैं और भविष्य म होगी ही लेकिन इन सबका अर्थ यही हुआ कि घटना के घटित होने के लिए इन तथाकथित अवस्थाओ के बीच एक क्षण होना जरूरी है जिसमे वह घटती हैं । इसके वर्तमान

---

[1] द्रष्टव्य पी मार्हेकी कृत मैक्टेगर्ट स एनेलीसस आफ टाइम (कैलिफोर्निया पब्लिकेशस इन फिलोसाफी 1935)

होने और भविष्य मे आने के भी क्षण बने हैं। अर्थात् यह स्वय ही भूत और वतमान है और भविष्य भी। इस प्रकार हमारी मूल समस्या फिर आ खडी होती है और जो भी हल हम प्रस्तुत करेंगे उसी वक्त वह फिर उठ खडी होगी। घटना के सम्बन्ध के भूत भविष्य और वतमान का कल्प ही एक विरोधास्पद स्थिति खडी कर देता है जिसका कोई हल नही है इसलिए विरोधास्पद होने ने समय सत्य नही हो सकता।

किन्तु मेक्टेगट महोदय हमे यह पूछने की छूट फिर भी देते हैं कि वह आखिर क्या है जो समय की तरह लगता है? समय की विशेष प्रकार की शृ खला के बारे म हमारी गलत धारणा है। इसम हमारी दृष्टि अथवा पयवेक्षण मे एक प्रकार का भ्रम-सम्बन्धी आग्रह हो जाता है। और तब पहले का प्रत्येक पयवेक्षण इस भ्रम मे जुडता चला जाता है। (इस सुविधाजनक धारणा पर जिसे हम अभी तक देखते आये हैं उसे, और जिसे आग के क्षण मे भी यदि वसा ही देख सके तो उसे भी, हम वतमान कहते हैं।) इस प्रकार मक्टेगट यह बताना चाहते हैं कि जिसे हमन समय का आभास माना था वह पयवेक्षणो के सम्बन्धो को एक भ्रम म बदल जाता है।

इस प्रकार के तक द्वारा, बल्कि उससे अधिक ठोस रूप से, मेक्टेगट यह बताने का प्रयास करते हैं कि पदाथ भी असत्य है। वास्तव मे तो आत्म तत्वो के अतिरिक्त कुछ भी है ही नहीं जो कि परस्पर एक दूसरे को देखती हैं और जिसे देखते हैं। यह उनके प्रेम क कारण है और यही प्रेम अपने आपम परिपूण एव परस्पर की सच्ची समझ पर आधारित है। सत्य को गलत समझ लेने से ही प्रत्येक प्रकार की मानसिक अवस्था समय और पदार्थों की उलझन म खो जाती हैं। यदि वह निष्कप विरोधाभासी है तो मेक्टेगट की समझ मे कोई अन्य इसका विकल्प दिखता ही नही। कोई भी दशन अभी तक विरोधाभास को दूर कर सकने म सफल नही हुआ है क्योकि किसी भी दशन ने इस सृष्टि को जसा वह दिखती है वसा ही मान लेने म ही सन्तोष प्राप्त नही किया है। केवल जिस एक ही विरोधाभास से हमे बचना चाहिए वह है स्वभञ्जक विचार प्रणाली। और इस अथ मे तत्त्ववाद (आधिभौतिकी) विरोधाभासी नही है। लोकबुद्धि ही विरोधाभासी है।

यदि केम्ब्रिज को बेवाजबी तौर पर प्रोत्साहन मिला या उस बवाजबी तौर पर निरत्साहित किया गया तो सामान्य विधक की यही माग है कि मेक्टेगट को उसे स्मरण रखने देना ही होगा।

जेम्स वाड[1] भी कैंब्रिज की ही उपज थे। और ये ओक्सफोड की परमात्मवादी धारणा के प्रति विद्रोही भी थ। अबतक जिसको वास्तव मे अन्य केम्ब्रिज वालो से भी

---

[1] द्रष्टव्य उनकी पुत्री ओ० डब्लू वेम्पबेल की स्मारिका, उनके ऐसेज इन फिलासफी की भूमिका के रूप म मरणोपरान्त मुद्रित। ए०एच० मरे द फिलासफी

समथन प्राप्त नही हुआ । इसके अलावा भी केम्ब्रिज क तथा ओक्सफड के दार्शनिको म बहुत कम साम्य है । मक्टेगट न या तो विज्ञान का अनदेखा कर दिया या फिर विज्ञान के प्रति उनकी घृणा ही थी । वाड एक पक्के लाज-वादी थ और लाज ने विज्ञान को दशन का एक अविभाज्य अ ग मान लिया था । मक्टगट का धम अपनी तरह का एक ही था । उसम क्रिश्चयन धम का निश्चय ही लेश भी नही था। वाड पहल पहल एक पादरी थे और क्रिश्चियन अध्यात्म म आस्था रखन वाले ता अन्त तक रहे । तो मक्टेगट दाशनिको क दाशनिक थ यदि यह माना जाय कि कोई ऐसा हा सकता है । वाड की रचनाए इसक विपरीत, लोकप्रिय रुचि की है और ऐस आध्यात्मिका एव वज्ञानिको के लिए भी हैं जिनका दशन की ओर झुकाव है ।

जहाँ तक मक्टेगट का सवाल है व मूल रूप म अपनी विचार धारा का प्रवतन करते हैं जब कि वाड दाशनिक महत्व के मामला के सबध म अपना क्या मतव्य है यही निश्चय करन म व्यस्त दिखाई दन हैं । यह बात स्पष्ट ह कि भिन्नता एव परमात्मत्व तथा वयक्तिकता एव ईश्वर क लिए उन्होने कही न कही काई जगह छोड दी है । एक प्रणाली के रूप म इन सभी का कोई समन्वय कर पा सकन और इस अवस्था स अनुस्यूत माँग का निराकरण करने का काई इरादा भी उनका दिखाई नही देता ।

मनोविज्ञान पर सवप्रथम उन्होन एक मनोवज्ञानिक के रूप म प्रसिद्धि प्राप्त की और यह प्रसिद्धि उन्हें अपने द्वारा एनसाइक्लोपेडिया ब्रिटानिका' (1886) म लिखे गए निबध म मिली थी[1] । इनके इस लेख ने ब्रितानी सहचर्यावादी परम्परा को गहरा धक्का पहुचाया । सहचर्यावादी सिद्धान्त के अनुसार मन विचारो का आकलन मात्र है–और ज्ञान की वृद्धि तथा विकास भी इन विचारो को सहचर्या वादी ढग स युक्त कर लन म ही तथा उन्हें व्यापक पूण मे बाट लेने पर ही सभव माना है । इस सिद्धात म सम्पूण प्रक्रिया की बुनावट आणविक भौतिकी की समता पर की गई है । विचार अ णुओ की भाति एक दूसरो को आकर्षित विकर्षित करत रहते हैं । इसके विपरीत वाड मन की अवस्थाओ को एक जीवशास्त्री के ढग से पकडते है । व कहते हैं मन सक्रिय है–इच्छालु है अनुभव–सवेगो का निर्जीव अ कन ही न होकर प्रयोग पर प्रयोग करते हुए अधिक सिद्ध होने की प्रक्रिया है ।

आफ जेम्स वाड (१६३७) ड ब्लू० आर० सोर्ली जेम्स वाड, जी०डी० हिक्स द फिलासफी आफ जेम्स वाड उनके द मोनिस्ट म प्रकाशित वाड पर लेख । वाड एक सुशिक्षक तथा ऊच व्यक्तित्व वाल थ उनक शिष्य उनकी बहुत प्रशसा करते हैं, वे शिष्य भी जो उनके दार्शनिक सिद्धान्तो के अनुयायी नहीं हैं जसे जी०ई० मूर ।

[1] दाशनिको क लिए वाड का मनोविज्ञान अधिक आकषक साबित हुआ है बजाय उसक परवर्ती दशनिको के । एफ० आर० टेनेन फिलासाफिकल थियोलाजी

अनुभव का यह सिद्धान्त, और भौतिकवादी ढंग से दर्शन की समस्याओं का निरूपण करने के प्रति यह आलोचनात्मक मार्ग उन्हें अपने मनोवैज्ञानिक क्षेत्र में खींच कर तत्त्ववाद के क्षेत्र तक ले आया है।[2] उनके अनुसार डेकार्ट ने यह भौतिकहकर बड़ी भारी गलती की थी कि भौतिकी हमें यह बता सकती है कि यह संसार वास्तव में किस प्रकार का है और चूँकि एक भौतिकशास्त्री के लिए यह संसार मात्र अणुओं का संचलन संकलन ही है इसलिए उसका वर्णन हमारी रोजमर्रा की जिन्दगी के अनुभवों से बिलकुल मेल नहीं खाता। और यही कारण है कि डेकार्ट को द्वैत को स्वीकार करना पड़ा। द्वैतवादी परम्परा और डेकार्ट की विचारधारा दोनों में ही विश्व को दो भागों में विभक्त किया गया है। एक बाहरी या भौतिक जगत, जिसका संचार भौतिकी में दिखाई गयी अवस्थाओं के अनुरूप नियन्त्रित ढंग से होता है और दूसरा आन्तरिक या आत्मिक जगत् जिसकी गुणात्मक भिन्नता नैतिकता धर्म और कलाओं को जन्म देती है। इस प्रकार की विचारधारा के कारण इस अदम्य कठिनाई का अनुभव एक दार्शनिक को करना पड़ता है। ये दोनों मूलतः भिन्न जगत् एक दूसरे से संबंधित हो जायेंगे। उदाहरणार्थ किस प्रकार हमारा मांस का लोथड़ा हमारे चेतन मन से जुड़ेगा? इस कठिनाई का हल प्रस्तुत करने के उत्तर में कार्टेजियन दार्शनिकों को यह निष्कर्ष ले लेना पड़ा कि उपर्युक्त प्रकार के जगतों में से केवल एक ही सत्य है। दूसरा मात्र उसका दिखावा है—उससे सहज उत्पन्न कोई स्थिति है। कुछ तो यहाँ तक भी सोचने लगे कि दोनों पूर्ण सत्य नहीं हैं क्योंकि दोनों ही परमात्म की माया हैं।

(2 भाग, 1928 30) के लिए इसने नींव का काम दिया है। हेगल के अनुसरण में ब्रेडले ने दर्शन के स्थान पर एसोसियशनिस्ट मनोविज्ञान की स्थापना का खंडन किया था पर आश्चर्य है कि मनोविज्ञान के क्षेत्र में वे एसोसियशनिस्ट परम्परा के पृष्ठपोषक लगते हैं। ब्रेडले ने वार्ड की मनोवैज्ञानिक उद्भावनाओं की इस आधार पर आलोचना की थी कि वे दर्शन और मनःशास्त्र का सांकर्य पैदा करती है। वार्ड की सहचर्यावादी समीक्षा की परम्परा का निर्वाह जी० एफ० स्टाउट ने उनकी एनेलीटिक साइकोलॉजी (1896) में किया है। साथ ही देखें, जी० डी० हिक्स का प्रो० वार्डस् साइकोलोजिकल प्रिंसिपल्स (माइण्ड में 1921)। जी० एफ० स्टाउट का वार्ड एज ए साइकोलाजिस्ट (मोनिस्ट में 1926 तथा स्टडीज में)

[2] ब्रेडले ने विशेषकर वार्ड के क्रियाशीलता पर बल देने पर आक्षेप किया है। इन दोनों के विरोध के लिए द्रष्टव्य एपीयरेंस एण्ड रियालिटी की वार्ड कृत समीक्षा तथा ब्रेडले का उत्तर (माइंड 1894)। साथ ही द्रष्टव्य इ० ई० सी० जोन्स कृत वार्डस रेफ्यूटेशन आव ड्यूआलिज्म तथा ए० ई० टेलर का वार्डस नेचरलिज्म एण्ड एग्नॉस्टिसिज्म (माइंड में 1900)

वाड दूसरा माग ही अपनाते हैं उनके अनुसार भौतिकी अमूर्तीकरण का आकलन मात्र है। अणु और उभी प्रकार के तत्त्ववनानिको क मस्तिष्क की देन है। अपने आप म ठोस सत्ताएं नही। भौतिकशास्त्रियो के लिए यह मुश्किल इसीलिए आती है कि व पदार्थों का एक मात्र सत्ताओ के रूप म अध्ययन व वणन करते हैं और मन से जोडने की भी कोशिश नही करते। प्रकृतिवाद इस प्रकार के अमूर्तीकरण को अतिम रूप स स्वीकार कर लेता है। इस तरह 1899 म लिखी वाड की पुस्तक नेचरलिज्म एण्ड एग्नास्टिसिम के अनुसार प्रकृतिवाद अमूत स्थितिया एव सत्यो मे घोल मल कर देता है-और यहा भौतिकी को ही तत्त्ववाद (आधि भौतिकी) मान लिया जाता है।

यदि हमे सत्य क भौतिक रूप का दशन करना है ता हम और भौतिकी की ओर नही इतिहास की ओर जाना होगा। ऐतिहासिक खोजबीन म इससे जो भिन्नता है वह यह है कि वहा व्यक्ति को सक्रिय प्रयत्नशील और बाह्य जगत स निरतर सघप करती सत्ता के रूप म देखा गया है। और वहा पर उसे अपना विकास तथा रक्षा स्वय करने वाली सत्ता क रूप म भी देखा गया है। 1905 म ह्यूबट जरनल म प्रकाशित अपने एक शोध निबध मिकनिज्म एण्ड मोरल्स म उन्होंने लिखा कि इतिहास तथ्या का हमार व्यक्तियो को उनक उद्देश्या को उनके उत्थान पतन को व्यक्त करता है और य सारी ऐसी स्थितिया हैं जिन्हें तान्त्रिक जगत मे कोई स्थान नही। इतिहास म कर्ता से कम की ओर जाते समय कोइ झूठा अमूर्तीकरण नही होता। इतिहासकार का तो कथ्य ही मनुष्य को अपनी परि स्थितियो के बीच देखना है और यही हमारे दनिक अनुभवो की ठोस सच्चाई है।[1]

जिस क्षण हम व्यक्ति और परिस्थिति की यह इकाई देख लेते हैं और उसे अपने विवेचन के आरम्भ म स्वीकार लेते हैं तो हम मन और पदाथ के बीच किसी निरन्तरता के टूटने का भी भान नही होगा। भौतिकवादी कुछ अश तक तो उस स्वीकारते हैं किन्तु य लोग मनुष्य के सघप एव मूल्याकन करते हुए व्यक्ति की सत्ता को कोई महत्व नही देते—जबकि व्यक्ति को समझने के लिए हमे भौतिकवादियो द्वारा छोड दी गई सोद्देश्यता की स्थिति को फिर स्वीकारना पडेगा। किन्तु यदि हम यह मानें कि परिस्थितिया स्वय भी सोद्देश्य है तो सारे झगडे ही समाप्त हो जायेंगे।

---

[1] इतिहास तथा भौतिकी के भेद पर बल देना डब्लू० विडलबड (हिस्ट्री एण्ड नेचरल साइन्स 1894) तथा आर० रिकेट (कल्चरल एण्ड द नेचरल सायसेज 1899) जसे लात्शे के परवती जमन दाशनिको के विचारो स काफी साम्य रखता है। वाड पुन देकात परपरा क विरुद्ध विद्रोह करता है देकात इस आधार पर इतिहास को हेय बतलाता था (डिस्कोस आन मेथड मे) कि जो वास्तव म है उसका यह स्वभावत बडा एकपक्षीय तथा अपर्याप्त चित्र ही प्रस्तुत करता है।

इसके कारण ही हम यह समझ सकेंगे अन्यथा तो कतई नहीं कि किस प्रकार परिस्थितियों में से हमारा मन अपने विचारों को पूर्ण कर लेने का अवसर खोज निकालता है। लेकिन तब शीघ्र ही वार्ड यह कहते हैं कि इसका यह मतलब नहीं कि वैज्ञानिक सिद्धान्तों को छोड़ ही दिया जाए। हमें यही देखना है कि किसी निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए बनाया गया सिद्धान्त भी हमारे ही मन की तो उपज है—और वह भी हमारे परिस्थितियों के प्रति, सजग होने को ही सिद्ध करता है। मनुष्य जिस समुदाय का अंग है, उसमें जैसे सिद्धान्त बनते हैं विधान व नियम भी उन्हीं के अनुरूप हैं।

अभी तक तो ऐसा लगता है जैसे वार्ड की विचारधारा व्यक्तित्ववादी आदर्शवाद का ही, जीव विज्ञान के पुट के साथ, नया रूपान्तरण है। अब हम उनसे इस आशय के कथन की भी अपेक्षा करते हैं कि सत्य सहयोगी एवं संघर्षशील सत्ता की बहुलता में ही निहित है। उनके दर्शन का समसामयिक विचारकों ने भी अभिप्रायतः इसी प्रकार का अर्थ लगाया है। यद्यपि यह सत्य है कि वार्ड हावीसन की विचारधारा से बहुत प्रभावित थे तथापि वे बहुलवादी नहीं थे। वे इस बात की स्वयं भी घोषणा करते रहे थे। सन् 1911 में प्रकाशित उनकी कृति द रैल्म आफ एण्ड्स यद्यपि बहुलवादी दर्शन पर एक सहानुभूतिपूर्ण टीका है तो भी इसका 'निष्कर्ष यही है कि" बहुलवाद अपने आप में पर्याप्त नहीं है।" बहुलवादियों का सम्पूर्ण अनुभवों का पूर्णत्व तो है लेकिन सम्पूर्ण अनुभव नहीं है। प्राणिमात्र का पूर्णत्व है किन्तु एक जीवन्त पूर्णत्व नहीं, सत्ता का पूर्णत्व है लेकिन सम्पूर्ण एवं निष्कलंक सत्ता नहीं। केवल ईश्वर ही इस बहुलता को एक समष्टि में बदल सकता है। लेकिन उनके पास ईश्वर के अस्तित्व का कोई प्रमाण नहीं है। अपनी बहुत सी रचनाओं में जहाँ पर वे अध्यात्म पर चर्चा करते निकलते हैं, स्पष्टतः उन्हें एक उपदेशक के रूप में ही अधिक देखा जा सकता है। दार्शनिक के रूप में नहीं। और यही कारण है कि उनके दर्शन को व्यक्तित्वमूलक की संज्ञा दी जाती रही है।[1]

---

[1] तुलना कीजिए डा० राधाकृष्णन् द रेन आफ रिलीजन इन कन्टेम्पररी फिलासफी (1920)। इसमें वार्ड के ईश्वरवाद ने किस दूरी तक उसे एक बात की ओर भटका दिया इसका पूर्ण विवेचन है। यह ध्यान देने की बात है कि जिन बहुलवादियों की इस अध्याय में बात की गई है वे सभी आत्माओं की बहुलता को अपने आप में एकीभूत प्रणाली को जन्म देने वाली चीज मानते हैं। इस प्रकार वे अपने आपको इस आलोचना का पात्र बना देते हैं कि वे अन्ततः एक ही सत्य अर्थात् प्रणाली के अस्तित्व का समर्थन ही करते हैं। उनके दर्शनों में खींचतान इसी कारण है कि वे प्रणाली की एकता तथा उसके विभिन्न तत्वों की विभिन्नता में संगति बिठाने का प्रयत्न करते रहते हैं। वार्ड के अभिप्रायों का अन्दाज उनके विलियम

व्यक्तित्वमूलक आदशवाद की दगज टीकाओ स असतुष्ट होने के कारण ब्रितानी दशन न योरोप की अन्य विचारधाराओ का आयात किया। वर्नार्डिनो की स्पष्टत वाड जसी विचारधारा—इनके द्वारा प्रदत्त आई मेसिकी प्रोब्लमो (1910)[1] के विचार का 1914 मे द ग्रेट प्रोब्लेम के नाम स अग्रेजी अनुवाद भी हुआ और उसका प्रभाव भी काफी पडा था। रूडाल्फ यूकन की विचारधारा के प्रति ता और भी ज्यादा उत्साह यहा देखने को मिल रहा है क्याकि उसकी प्राय सभी रचनाओ का अग्रेजी अनुवाद हो गया।

यूकन की रचनाओ म आदशवाद खुल रूप स आध्यात्मिक पुनरावतन की एक नइ विधा म रूपान्तरित हो गया है। 1912 म प्रकाशित अपनी पुस्तक द मेन **करेण्टस आव माडन थोट** के अग्रेजी सस्करण के आमुख म उन्हाने लिखा है कि इस कृति का प्रथम लक्ष्य यह है कि वतमान समय म बौद्धिक और आत्मिक स्तर पर जो उलझन पदा होगई है उस पर प्रतिक्रिया जाहिर करना—यह उलझन केवल सिद्धान्तो से ठीक नही हो सकती। यूकन तो एक नये प्रकार के आत्मिक जीवन की खोज कर रहे थ। ऐसा आत्मिक जीवन जा आत्मनिभर हो। स्वय सत्य का उद्घाटन कर सकता हो। यह एक ऐसा जीवन है जिसस मानवी जगत की सामान्य क्रियाए कोसा दूर हैं, फिर भी इसे एक महान् लक्ष्य मानकर इस तक पहुचने म मानवी जीवन सक्रिय तो है ही।

इस प्रकार की घोषणा म हीगल के आदशवाद की गन्ध आती है। जबकि सत्य यह है कि यूकन की आत्मिक जीवन सम्बन्धी विचारधारा उस अथ म कोई दशन नही हैं जिस अथ म ब्रेडले एव हीगल किसी विचारधारा को दशन मानते थ। बर्नार्ड बासाके द्वारा यह तथ्य उस समय प्रकट हुआ था जब उन्हाने पौराणिक आदशवाद का बचाव व्यक्तिगत अटकलपच्चियो के विरुद्ध किया था। 1914 ई० म उन्हाने **क्वाटरली रिव्यू** म लिखा है—

यूकन की प्रबल साहित्यिक कृतिया को दरअसल किसी भी भाति विचार विज्ञान को गभीर योगदान की सज्ञा से विभूषित नही किया जा सकता। उनके वास्ते नतिक बल स्वच्छन्द ज्ञानोपलब्धि से कही अधिक महत्व का हागया है।"

जेम्स को 1899 म लिखे गये पत्र स जो आर० डी० परी कृत द थाटस एण्ड **करेक्टर आव विलियम जेम्स** (1936) मे छपा था लगाया जा सकता है।

[1] टिप्पणियो के लिए द्रष्टव्य डब्लू० आर० बोयस गिबसन कृत रूडोल्फ यूकन्स **फिलोसोफी आफ लाइफ**, एम० बूथ कृत **यूडोल्फ यूकन, हिज फिलोसोफी एड इन्फ्लुएन्स** (1913) डब्लू० ट्यूडर जोन्स कृत एन इन्टरमिटेशन आफ यूकन्स फिलोसोफी (1912) जिसे स्पोतोजी मे

बोसांके पराजित युद्ध को फिर से लड़ रहे थे। दार्शनिक परम्परा में सुकरात के समय से ही जिन दो धागों से एक सी बुनावट की गई है—उनमें पहला है विश्लेषण का धागा जिसका उदाहरण प्लेटो के वार्तालाप में यूथाइफ्रो नामक अंश में देखा जा सकता है। इनमें दूसरा है नैतिक धार्मिकता का धागा जिसे अपोलोजी में देखा जा सकता है। किन्तु तत्कालीन दर्शन प्रणाली में इन दोनों का निर्वाह किया जाना बन्द हो गया था। सुकरात ने इन दोनों का एक साथ निर्वाह इसलिए भी किया था कि उनकी विचारधारा में अच्छाई को ही ज्ञान माना गया है। केवल दार्शनिक ही जान सकता है कि सर्वश्रेष्ठ जीवन जीना कैसा होता है और इस ज्ञान के बिना कोई भी भलीभांति रह नहीं सकता। किन्तु नव आदर्शवादियों के लिए जिन्दगी तर्क से कहीं बड़ी है और अच्छाई के साथ ज्ञान का तादात्म्य मात्र कर देना केवल शुद्ध बौद्धिकता के अतिरिक्त कुछ नहीं। इस प्रकार यूकन की रचनाओं का उद्देश्य यह दिखाना है कि जीवन का उदात्तीकरण ही दर्शन का जन्मदाता है और इस प्रकार की प्रक्रिया में परम्परागत दार्शनिक विश्लेषण और शोध प्रणाली का कोई स्थान नहीं है। दूसरी ओर ब्रितानी युवक विचारक यह दावा करने लगे थे कि दर्शन विश्लेषण प्रणाली के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं। दार्शनिक का कोई व्यवसाय नहीं है और वह केवल निजी तौर पर एक प्रकार का जीवन चुन कर नागरिक होने के अपने अधिकारों का ही उपयोग करता है। परिणामत दर्शन के क्षेत्र में दरारें पड़ गई थीं और बोसांके ने इस अवस्था को भली प्रकार देख लिया था।

बोसांके एक अत्यन्त मेधावी दार्शनिक थे।[1] ये उन थोड़े से ब्रितानी दार्शनिकों में से एक हैं जिन्होंने सौन्दर्यशास्त्र पर गंभीरतापूर्वक मनन किया। उनके द्वारा लिखी हिस्ट्री आफ एस्थेटिक (1892) आज भी स्तरीय रचनाओं में अपना स्थान रखती है। राजनीतिक एवं सामाजिक सिद्धान्तों पर उनका व्यापक प्रभाव रहा है। उनके द्वारा लिखी गई ठोस कृतियां समसामयिक दर्शन में अपना ऐतिहासिक महत्व रखती हैं। कोई भी मानवीय तत्व उनसे अछूता नहीं रहा था। अपने साथी

---

[1] उनका दार्शनिक जीवन 1883 से शुरू हुआ जब उन्होंने ऐसेज इन फिलोसाफिकल क्रिटिसिज्म में लिखना शुरू किया। यह तब तक चला जब उन्होंने 1923 में अपने जीवन व दर्शन पर कंटेंपरेरी ब्रिटिश फिलासफी के लिये लेख लिखा। देखो जे० एच० म्योरहेड बर्नार्ड बोसांके एण्ड हिज फ्रेंड्स (1924) जिसमें उनके पत्र भी हैं। हेलन बोसांके कृत बर्नार्ड बोसांके ए शार्ट अकाउंट आफ हिज लाइफ (1924), जे० एच० म्योरहेड का बर्नार्ड बोसांके (माइण्ड में 1923), एच० विल्डन कार का इन मेमोरियम बर्नार्ड बोसांके, ए० सी० ब्रेडले व लार्ड हाल्डेन का बर्नार्ड बोसांके (प्रो० ब्रि० ए० 1923)

दाशनिको पर भी उ हाने मुक्तहस्त से लिखा। इसके बावजूद भी उनकी बहुमुखी बौद्धिकता उ ह अ य लोगो की तरह मठवादी नही बनने देती और न ही युक्ति युक्तता के प्रति उनकी धारणा म कोई अन्तर आने देती। व ब्र डल की अपेक्षा निश्चय ही कम प्रबल विचारक हैं—सम वय के प्रति उनके उत्साह के कारण प्राय उनके द्वारा अपने विरोधियो को भी कुछ असमाव्य छूट दी गई है। अच्छा जीवन जीने के लिए उनका उत्साह कभी-कभी तक और युक्ति से परे उ ह भावावेश म बहा ले जाता है लेकिन तो भी इनके अ दर उच्चस्तर आत्मिक सत्यान्वेषण के माग म युक्ति का आश्रय छोड देना उनका उद्दिष्ट कतई नही था।

उनकी सबसे पहली रचनाओ म जो आदशवादी तकप्रणाली के हित म एक ठोस योगदान थी। लोजिक आर द मोरफोलोजी आफ नोलेज (1888) महत्वपूण कृति थी और इस प्रकार की युक्तियुक्तता के प्रति 1920 म फिर उनकी रुचि हुई जब उ होने इम्प्लीकेश स एण्ड लीनियर इनफेरेन्स नामक पुस्तक लिखी। 1912 म प्रकाशित उनकी पुस्तक द प्रिंसिपल आव इ डीविजुएलिटी जो उनकी तत्व मीमासा की प्रमुख रचना मानी जाती है उसमे भी तक प्रणाली का काफी जोर दिखाई देता है। बोसाके का कथन था कि तक प्रणाली के जो आदशवादी विरोधी हैं वे दर असल तक क्या है इसीसे परिचित नही। वाड का उदाहरण देते हुए उ होने कहा कि ऐसे व्यक्तियो के लिए तार्किक विचार प्रणाली जीवन की खोखली अमूतता पर काम करने की प्रक्रिया है और उसमे हम जीवन के ठोस धरातल से हट कर सामा य सूत्रों की जटिलता म उलझ जाना पडता है। इस तरह से हम कभी भी दनिक जीवन की बहुमुखी गरिमा पर सोच पाने म असमथ हो जाते है। तक के इस रूप पर ही विचार करने से तार्किक लक्ष्य के रूप मे हमारे सामने ठोस धरातल न रहकर अमूत धरातल ही रह जायगा।[1] बोसाके की समझ म तक जीवन को पूणता से समझने का प्रयास है क्योकि सत्य स्वय पूण है। तार्किक दृष्टि से सोचने का मतलब खण्ड खण्ड से चलते हुए एक ऐसी प्रणाली तक पहुचना है जिसम हमारे खण्ड अनुभव उसके क्रम म जुडे रहे और दूसरे अनुभवो के सहयाग से पूणता तक पहुचते-पहुचते पहल स भी अधिक सम्पन्न हो सकें।

बोसाके के मतानुसार हम किसी अनुभव को पहली बार उसी समय समझते है जब हम उसे किसी परिचित प्रणाली के अग के रूप म देखते हैं अथवा उस समय भी समझ सकते हैं जब उस अनुभव म कोई परिचित प्रणाली हमे दृष्टिगत हो आए। तक भी हम इसी प्रकार का बोध देता है।

---

[1] कान्क्रीट यूनिवसल के विवचन हेतु इसी पुस्तक का तीसरा अध्याय देख, बोसाके के तक के लिए अध्याय 7 देखें। साथ ही देखें, जी० एच० सबाइन का बोसाकेज लाजिक एण्ड कान्क्रीट यूनिवसल (फिला० रिव्यू 1912)

इस प्रकार तर्क सम्पूर्णता की आत्मा है। और अपने इसी रूप म वह सत्य मूल्यबोध एव स्वतन्त्रता की कुजी भी है। बडे विचार, महान् चरित्र तथा कला की महान् रचनाए अपनी तार्किक क्षमता ही पर शक्तिशाली मानी जाती हैं। उनकी यह क्षमता सम्पूर्णत्व के साथ मेल बठान म ही निहित होती है। इस तरह मूर्खता-पूर्ण बनावटीपन के उदाहरणो म से जो सर्वाधिक मूर्खतापूर्ण है वह है तर्क विरोधी भावना।

मूलत बोसाके यहा पर ब्रेडले की तत्वमीमासा को स्वीकारते हुए लगते है। फिर भी दोनो म कुछ अन्तर है ही। ब्रेडले की शक्ति परमात्म-सिद्धि की ओर लगती थी जबकि बोसाके की कला विज्ञान तथा समुदायो की ओर। यदि तत्व-मीमासा विषयक कोई प्रश्न बोसाके के समक्ष उठे तो वे निस्सदेह यही कहेंगे कि सभी को एकत्व म समेटता हुआ कोई परमात्म विद्यमान नही है। ब्रेडले के इस कथन का कि यह ससार परमात्म का दिखावा मात्र है बोसाके इस प्रकार से रूपान्तरित करके मजाक उडाते हैं-, हाँ, परमात्मभाव का यह झूठा दिखावा मात्र ही तो है। उन्होने लिखा कि किसी भी विशिष्ट प्रकार के व्यक्ति के दैनिक जीवन का सतर्क विश्लेषण ही परमात्म भाव के लिए अपेक्षित किसी भी सिद्धान्त को सफलतापूर्वक स्थापित कर सकता है। यह हमे यह ज्ञान देगा कि किस प्रकार हम अपने जीवन म बुराई को भलाई म बदलते रह सकते है। और उसी जीवन म हम यह देख सकते हैं कि अपने इस सिद्धान्त के पालन के लिए किसी व्यक्ति ने किस प्रकार संघर्ष को सुखमय करके स्वीकार लिया है। पीडाओ को प्रेम से रूपान्तरित करके और कठिनाइयो को साहस से रूपान्तरित करके इस बात की सिद्धि की है कि मनुष्य मूलत किस धातु का बना है। इसके अतिरिक्त यह तो हमारे व्यक्तित्व का अत्यन्त महत्वपूर्ण अश है कि हम सहज ही उन अपने से गहरे और उदात्त व्यक्तित्वो को अपने अन्दर उतारने का प्रयास करने लग जाते है।

ये गहन और व्यापक अनुभव जो कला विज्ञान, धर्म एव सामाजिक आदान प्रदानो म प्रकटते हैं जिसकी परिभाषा बोसाके ने 'अच्छे से तादात्म्य भाव' होने म दी है, ये ही बोसाके के अनुसार हमारे जीवन के सही मूल्य रखते हैं। बोसाके के अनुसार परमात्म भाव तक यदि कोई पहुँच है तो वह इन्ही के जरिए सम्भव है। बोसाके द्वारा वैयक्तिकता पर दिया गया बल यदाकदा उनके सतही पाठको को भ्रम म डाल सकता है-वे उनके वैयक्तिकता के विश्लेषण म यह अर्थ लगा सकते है कि मूल्य सामान्यत एक एक व्यक्ति के लिए ही है। यह व्यक्तित्वमूलक आदर्शवादी भी कहते रहे हैं। इससे बडी गलती बोसाके के बारे म और नही हो सकती।[1]

---

[1] देखें बोसाके द्वारा आयोजित गोष्ठी जिसमे प्रिंगल पैटीसन स्टाउट एव हाल्डेन ने भाग लिया। इसका विषय था लाइफ एण्ड फाइनिट इण्डीविजुयलटी

बोसांके लिखते हैं कि व्यक्ति जिसमें मूल्य भी निहित है अपनी सत्ता पर खड़े होने की क्षमता से युक्त है। कोई अन्य मात्र व्यक्ति नहीं हो सकता। मनुष्यों के जीवन की महनतम तथा उदात्ततम उपलब्धि किसी एक व्यक्ति के पश्चात्तापपूर्ण अलगाव में नहीं होती। 1899 में लिखी **फिलासोफिकल थ्योरी आव स्टेट** के आमुख में उन्होंने ऐसा मन्तव्य व्यक्त किया है। पश्चात्तापपूर्ण अलगाव उस समय की दार्शनिक रचनाओं का एक लोकप्रिय मुहावरा बन गया था। मनुष्य की उपलब्धि उसकी अपने से बाह्य परिस्थितियों के साथ सफलतापूर्वक खड़े होने में ही है। चाहे यह उसे प्रकृति से संघर्ष में करना पड़े अथवा सामाजिक जीवन में व्यापक रूप से भाग लेते वक्त। इस प्रकार के संघर्ष से अलग और इस प्रकार के भाग लेने की स्थिति से भिन्न व्यक्ति की कोई सार्थक सत्ता ही नहीं है।

पन-साइकिज्म अर्थात् सर्व मनस्तत्ववाद का विरोध करने का उनका आधार यही है। यह सब वस्तुएं ही हैं जो व्यक्तियों के लिए समस्याएं खड़ी करती हैं—और यदि आप सभी वस्तुओं को व्यक्तियों में बदल देते हैं तो जो भेद जीवन के प्रति रुचि उत्पन्न करता है वह कुछ कम हो जाता है। बोसांके ने नव-यथार्थवाद का इस सीमा तक स्वागत किया जहां तक कि उसमें मन में प्रस्तुत उपकरणों को मन से स्वतन्त्र सत्ता के रूप में देखा जाता है—और वे आदर्शवाद के नाम से ही नाक भौं सिकोड़ते थे क्योंकि उसमें प्रकृति को हमारे मस्तिष्क से ही उत्पन्न माना गया है। मन के शारीरिक अवयव के रूप में विकसित होने वाले सिद्धान्त से उन्हें कोई एतराज नहीं था। यही कारण था कि मक्टेगट ने 'माइण्ड' में 1912 में प्रकाशित द **प्रिंसिपल आफ इण्डिवीजुएलिटी एण्ड वल्यू** नामक पुस्तक की रिव्यू में यह शिकायत की है कि मन और पदार्थ के सम्बन्ध को प्रकट करने वाला जो भी शब्द डा० बोसांके ने लिखा है विशेषतः उसके सातवें अध्याय में वह किसी पूर्ण भौतिकवादी द्वारा ही लिखा जा सकता था।

यही बोसांके की विचारधारा एक मुश्किल खड़ी कर देती है क्योंकि वे वास्तव में एक भौतिकवादी नहीं है। अन्त में ये यह स्वीकारने को विवश हो जाते हैं कि प्रकृति किसी मन शक्ति पर आवृत है। ऐसा कैसे हो सकता है जब प्रकृति का अस्तित्व मन के अस्तित्व के लिए पूर्व आवश्यक है।[1] प्रकृति तो वरिमा (स्पेस) और समय का समष्टि रूप है—हमारी क्षणिक अभिवृत्तियों का सूक्ष्म रूप है—और स्वयंभू है। इसके साथ ही यह गुण धर्मा भी है जिसका अर्थ यही है कि उसके

(पी० ए० एस० एस० 1915) आर० ई० स्टेडमान का 1931 के माइंड में प्रकाशित निबन्ध एन एक्जामिनेशन आव बोसांकेज डाक्टिन आव सेल्फट्रांसडेंस।

[1] आर० ई० स्टेडमन नेचर इन द फिलोसोफी आव बोसांके (माइण्ड 1930)।

प्रारम्भ में कोई सचेत सत्ता की स्थिति है ही—और यह सचेत सत्ता सोद्देश्य इन्द्रिय संवेद तथा भावमयी है ही। इस विचारधारा के आधार पर मन ही प्रकृति में एक सम्पूर्णता की स्थिति को प्रकटाता है। उस अवस्था के बिना प्रकृति खण्ड खण्ड हो जाती है लेकिन इसके साथ ही प्रकृति के बिना मन सभी उपकरणों से शून्य है। मन एक सक्रिय सम्पूर्णता के भाव के अलावा अपने में कुछ भी नहीं। प्रत्येक भाव वह प्रकृति से ग्रहण करता है। व्यक्तित्व मूलक आदर्शवादी को इस सम्बन्ध में यह शिकायत थी कि यदि प्रकृति और मन दोनों इस प्रकार एक दूसरे पर अन्योन्याश्रित हैं तो फिर मन की पदार्थ पर वरिष्ठता का क्या होगा !

भौतिकवाद के सम्बन्ध में वार्ड जैसे विचारकों की जो धारणाएं थीं, उनके एक एक अंश का बोसांके खण्डन करते हैं। वार्ड ने उद्देश्यवाद (टीलियोलोजी) को पुनः *स्थापित करने का प्रयास किया था।* प्राकृतिक प्रक्रियाएं उस समय तक अबूझ हैं जब तक हम यह नहीं मानते कि वे किसी लक्ष्य की ओर जा रही हैं अथवा उनका कोई उद्देश्य है। इस तरह या तो वे स्वयं ही मनस्तत्व से युक्त हैं या उसके द्वारा निर्देशित हैं। बोसांके इस प्रकार की युक्ति स्वीकारना नहीं चाहते। निर्देशन की बात करना केयर्ड द्वारा प्रतिशोधित उस स्थिति की ओर लौटना है जिसमें उन्होंने प्राकृतिक जगत में आदर्श की अंतःक्रियात्मक स्थिति का विरोध किया था।

वार्ड को लिखे एक पत्र में उन्होंने बताया है कि इस आधार पर मन और प्रकृति दो भिन्न सत्ताएं लगती हैं। और उनमें से एक दूसरे को निर्देशित करती हुई दिखाई गयी है। इस प्रकार का वर्णन बोसांके के अनुसार प्रकृति और मन की ठोस पूरकता के भाव को समाप्तप्राय कर देता है।

द मीनिंग आव टीलियोलोजी (उद्देश्यवाद की सार्थकता) नामक विषय पर ब्रिटिश एकेडेमी में भाषण करते हुए उन्होंने नव उद्देश्यवाद की आलोचना का अधिक मुखर रूप प्रदान किया था। उन्होंने कहा कि यदि मेरा इस विचारधारा का अध्ययन सही है तो तान्त्रिकता के विरुद्ध बढ़ती हुई प्रतिक्रिया कानून एवं व्यवस्था के क्षेत्र को समाप्त कर रही है और सजीव आत्माओं को प्रकृति और इतिहास का निर्देशक बनाकर उन्हें सिंहासनासीन किया जा रहा है। यदि यह सही है तो हम इतिहास और दर्शन एवं धर्म की भलाई के लिए यान्त्रिकतावादियों को स्पिनोज़ा के व्याज से पुनः नियन्त्रित करना पड़ेगा। नव उद्देश्यवाद से उन्होंने स्पष्टतः दो प्रवृत्तियां देखी थीं, एक यह कि प्राकृतिक क्रियाएं किसी उद्देश्य की ओर अभिमुख हैं तथा दूसरे कि यह ध्येयशीलता में मूल्यवान है। इस प्रकार मूल्य अपनी सम्पूर्णता में प्राप्त होने के नाते भविष्य मुखी हो जाते हैं लेकिन एक विशिष्ट मूल्य की सार्थकता तो यहां और इसी समय होने में निहित है। आदर्श सम्पूर्णता के बोध का नाम ही है। इस सम्बन्ध में विवेकपूर्ण कहा जा सकने वाला उद्देश्यवाद इस अभिमान में निहित है कि प्रत्येक विशिष्ट

बोसांके लिखते हैं कि व्यक्ति जिसमें मूल्य भी निहित है अपनी सत्ता पर खड़े होने की क्षमता से युक्त है। कोई अन्य भाव व्यक्ति नहीं हो सकता। मनुष्यों के जीवन की गहनतम तथा उदात्ततम उपलब्धि किसी एक व्यक्ति के पश्चात्तापपूर्ण अलगाव में नहीं होती। 1899 में लिखी **फिलोसोफिकल थ्योरी आव स्टेट** के आमुख में उन्होंने ऐसा मन्तव्य व्यक्त किया है। पश्चात्तापपूर्ण अलगाव उस समय की दार्शनिक रचनाओं का एक लोकप्रिय मुहावरा बन गया था। मनुष्य की उपलब्धि उसको अपने से बाह्य परिस्थितियों के साथ सफलतापूर्वक खड़े होने में ही है। चाहे यह उसे प्रकृति से संघर्ष में करना पड़े अथवा सामाजिक जीवन में व्यापक रूप से भाग लेते वक्त। इस प्रकार के संघर्ष से अलग और इस प्रकार के भाग लेने की स्थिति से भिन्न व्यक्ति की कोई सार्थक सत्ता ही नहीं है।

पैन-साइकिज्म अर्थात् सर्व मनस्तत्त्ववाद का विरोध करने का उनका **आधार यही है**। यह सब वस्तुएं भी हैं जो व्यक्तियों के लिए समस्याएं खड़ी करती हैं—और यदि आप सभी वस्तुओं को व्यक्तियों में बदल देते हैं तो जो भेद जीवन के प्रति रुचि उत्पन्न करता है वह कूच कर जाता है। बोसांके ने नव-यथार्थवाद का इस सीमा तक स्वागत किया जहां तक कि उसमें मन में प्रस्तुत उपकरणों को मन से स्वतन्त्र सत्ता के रूप में देखा जाता है—और वे आदर्शवाद के नाम से ही नाक भौं सिकोड़ते थे क्योंकि उसमें प्रकृति को हमारे मस्तिष्क से ही उत्पन्न माना गया है। मन के शारीरिक अवयव के रूप में विकसित होने वाले सिद्धान्त से उन्हें कोई एतराज नहीं था। यही कारण था कि मक्टेगर्ट ने 'माइण्ड' में 1912 में प्रकाशित **द प्रिंसिपल आफ इण्डिवीजुएलिटी एण्ड वेल्यू** नामक पुस्तक की रिव्यू में यह शिकायत की है कि मन और पदार्थ के सम्बन्ध को प्रकट करने वाला जो भी शब्द डा० बोसांके ने लिखा है विशेषतः उसके सातवें अध्याय में वह किसी पूर्ण भौतिकवादी द्वारा ही लिखा जा सकता था।

यही बोसांके की विचारधारा एक मुश्किल खड़ी कर देती है क्योंकि वे वास्तव में एक भौतिकवादी नहीं हैं। अन्त में वे यह स्वीकारने को विवश हो जाते हैं कि प्रकृति किसी मन शक्ति पर आवृत है। ऐसा कैसे हो सकता है जब प्रकृति का अस्तित्व मन के अस्तित्व के लिए पूर्व आवश्यक है।[1] प्रकृति तो वरिमा (स्पेस) और समय का समष्टि रूप है—हमारी क्षणिक अभिवृत्तियों का सूक्ष्म रूप है—और स्वयंभू है। इसके साथ ही यह गुणधर्मा भी है जिसका अर्थ यही है कि उसके

(बी० ए० एस० एस० 1915) आर० ई० स्टेडमान का 1931 के माइंड में प्रकाशित निबन्ध एन एक्जामिनेशन आव बोसांकेज डाक्ट्रिन आव सेल्फट्रांसडेंस।

[1] आर० ई० स्टेडमन नेचर इन द फिलोसोफी आव बोसांके (माइंड 1930)।

प्राग्मात्र म काइ सचेत सत्ता की स्थिति है ही-और यह सचेत सत्ता साद्देश्य इन्द्रिय सवद तथा भावमयी है ही। इस विचारधारा के आधार पर मन ही प्रकृति म एक सम्पूर्णता की स्थिति का प्रकटाता है। उस अवस्था के बिना प्रकृति खण्ड खण्ड हो जाती है लेकिन इसके साथ ही प्रकृति के बिना मन सभी उपकरणो से शून्य हैं। मन एक सक्रिय सम्पूर्णता के भाव के अलावा अपने म कुछ भी नही। प्रत्यक भाव वह प्रकृति मे ग्रहण करता हैं। व्यक्तित्व मूलक आदर्शवादो को इस सम्बन्ध म यह शिकायत थी कि यदि प्रकृति और मन दोनो इस प्रकार एक दूसरे पर अन्योन्याश्रित हैं ता फिर मन की पदार्थ पर वरिष्ठता का क्या हागा।

भौतिकवाद के सम्बन्ध म वाड जैसे विचारका की जो धारणाए थी, उनके एक एक अंश का बोसाके खण्डन करते हैं। वाड ने उद्देश्यवाद (टीलियोलोजी) को पुन स्थापित करन का प्रयास किया था। प्राकृतिक प्रक्रियाए उस समय तक अबूझ हैं जब तक हम यह नही मानत कि वे किसी लक्ष्य की ओर जा रही हैं अथवा उनका कोई उद्देश्य है। इस तरह या तो वे स्वय ही मनस्तत्त्व से युक्त है या उसके द्वारा निर्देशित हैं। बोसाके इस प्रकार की युक्ति स्वीकारना नही चाहते। निर्देशन की बात करना वेयड द्वारा प्रतिशोधित उस स्थिति की ओर लौटना है जिसमे उन्हाने प्राकृतिक जगत म आदर्श की अंत क्रियात्मक स्थिति का विरोध किया था।

वाड का लिखे एक पत्र म उन्होने बताया है कि इस आधार पर मन और प्रकृति दो भिन्न सत्ताए लगती हैं। और उनम से एक दूसरे को निर्देशित करती हुई दिखाई गयी है। इस प्रकार का वणन बोसाके के अनुसार प्रकृति और मन की ठोस पूरकता के भाव को समाप्तप्राय कर देता है।

द मीनिंग आव टीलियोलोजी (उद्देश्यवाद की सार्थकता) नामक विषय पर ब्रिटिश एकडेमी म भाषण करते हुए उन्हान नव उद्देश्यवाद की आलोचना का अधिक मुखर रूप प्रदान किया था। उन्हाने कहा कि यदि मेरा इस विचारधारा का अध्ययन सही है तो तात्त्विकता के विरुद्ध बढती हुई प्रतिक्रिया कानून एव व्यवस्था क क्षेत्र को समाप्त कर रही है और सजीव आत्माओ को प्रकृति और इतिहास का निर्देशक बनाकर उन्हें सिंहासनासीन किया जा रहा है। यदि यह सही है तो हम इतिहास और दर्शन एव धर्म की भलाई के लिए तात्त्विकतावादियो का सिंहासना के व्याज स पुन नियन्त्रित करना पडेगा नव उद्देश्यवाद स उन्हाने स्पष्टत दो प्रवृत्तिया देखी थी एक यह कि प्राकृतिक क्रियाए किसी उद्देश्य की ओर अभिमुख हैं तथा दूसरे कि यह व्यग्रशीलता म मूल्यवान है। इस प्रकार मूल्य अपनी सम्पूर्णता म प्राप्त हाने क नाते भविष्य मुखी हो जात हैं लेकिन एक विशिष्ट मूल्य की सार्थकता तो यहाँ और इसी समय होन म निहित है। आदर्श सम्पूर्णता के बोध का नाम ही है। इस सम्बन्ध म विवेकपूर्ण कहा जा सकने वाला उद्देश्यवाद इस अभिमान म निहित है कि प्रत्यक विशिष्ट

वस्तु अपना स्थान वस्तुओ की किसी प्रणाली म ही रखती हैं और वह विशिष्ट प्रणाली अन्तत परमात्म ही है। इस प्रकार की प्रणाली म नियमित एव प्राकृतिक प्रक्रियाओ क अस्तित्व को भी पर्याप्त स्थान है और इसी मे स ससीम चेतना स्वत प्रकट जाती है। मानवी उद्देश्य तो शरीर धम हैं। व उसी के जरिए निधारित होते और स्वीकृति पाते है–सावयविक क्रिया प्रतिक्रियाओ से ही वस्तुओ म निहित उद्देश्य पूण योजना का आभास मिल जाता है। इस तरह की परिपूण योजना ही विशिष्ट प्रक्रिया नही आदश का निर्माण करने म सलग्न हैं। इसी आधार पर एक व्यक्ति के लिए अमरत्व की माग करना निरथक है। मूल्यो का स्थायित्व ही हैं' इस सम्बन्ध म साथक है और इस प्रकार की योजना ही इसकी गारटी देती है।

बोसाके क प्रत्ययवाद के अनुयायी बहुत कम हुए। तार्किक विश्लेषण क साथ दशन का मेल देखने वाले दार्शनिको जिनकी सख्या निरन्तर बढती जा रही थी की दृष्टि म बोसाके एक पुरातन चलन के प्रवक्ता मात्र थे फिर अध्यात्मवादियो को प्रसन्न करने योग्य वे पूणत क्रिश्चियन भी नही थे। और न इतने विज्ञान वादी थे जो आदशवादी विचारधारा म विश्वास रखने वाले भौतिकशास्त्रियो का भी ध्यान अपनी ओर खीच सकते। उनके पदचिन्हो पर चलन वाला म सर्वाधिक परिचित आर० एफ० ए० हानली थे।

होनली बोसाके की विशालहृदयता से प्रभावित थ जिसे व एक प्रारूपाभिमुख दशन की ओर जाते हुए देखते हैं। होनली का कहना है कि बोसाके की प्रतिभा दशन के नए सिद्धान्त गढने के बजाय[1] उसकी सहानुभूति एव चतुरतापूण व्याख्या करन म लगी हुई थी।

अमरीका मे बोसाके के द्वारा प्रतिपादित आदशवाद न जे० ई० क्रेटन जस दाशनिको मे एक प्रतिक्रिया जागृत की जिन्होने बोसाके की तक–प्रणाली का आधार लेकर जोर शोर से बढते हुए अमरीकी अथक्रियावाद (प्रैग्मटिज्म) का प्रतिरोध किया था।[2] लेकिन अमरीका इससे पूव भी जोसिया रोयस के परम आदशवाद से परिचित था ही। और रोयस न अपने हावड के साथियो तथा विलियम जेम्स जस

---

[1] द्रष्टव्य डी० एस० एविसन की मरणोपरान्त प्रकाशित पुस्तक स्टडीज इन फिलोसोफी (1952) मे दिया गया स्मरणाश।

1925 म प्रकाशित पुस्तक स्टडीज इन स्पेकुलेटिव फिलोसोफी म इनके निबन्धो को सग्रहीत किया गया है। क्रेटन ने बहुत कम लिखा–लेकिन फिर भी वे प्रभावशाली अध्यापक थे। पी० आर० 1925 म प्रकाशित जी० एच० सबाइन और एफ० थिएली के क्रेटन पर लिखे निबन्ध देखने योग्य हैं।

सम सामयिक विचारको का सहारा लकर इग्लड को अमरीकी दशन स परिचित कराया था।[1] रोयस के हाथो म परम आदशवाद व्यक्तित्वमूलक आदशवाद से मुक्ति पाने की जो तोड कोशिश करता हुआ दिखाई देता है और विलियम जेम्स की नई दार्शनिक विचारधाराओ म तो यह कोशिश और भी प्रबल रूप स देखी जा सकती है। नय रूप स विकसित हुए विचारो के कारण मान्शवाद को जो खतरा उत्पन्न हो गया[2] उससे इन दोनो ने इसको बचाया था।

यहा उल्लखनीय बात यही है कि रोयस की दार्शनिक प्रणाली ज्ञानमीमासा का आधार ग्रहण करती है। परमात्म के माग म सत्य का सिद्धान्त नही ज्ञान के सिद्धान्त का सहारा लेना होगा। 1882 म माइण्ड म प्रकाशित एक निबन्ध माइण्ड एण्ड रीएलिटी म उन्होने लिखा कि जीव-विकास-विधान तो खेल है, ज्ञान का सिद्धान्त खिलौना। जीव-विकास-विधान एक ऐसा बच्चा है जो साबुन के भागा के बुलबुले उठा रहा है। दार्शनिक विश्लेषण सोना खानने वाला मजदूर है। इस प्रकार इन दोनो स्थितियो की भिन्नता म काण्ट की ओर लौटने की वृत्ति देखी जा सकती है। ब्रैडले और बोसाके न जिसके विरुद्ध अभियान किया था उसी ज्ञानमीमासा के प्रवतन का प्रश्न फिर उपस्थित था।

रोयस क अनुसार मिल और बकल यह सिद्ध करन म लग थ कि हमारे सारे अनुभव घटनाओ या विचारो स उद्भूत हैं। उनक तर्कों म इस सृष्टि को अस्वीकार करने की पर्याप्त सामर्थ्य थी जो मात्र प्राकृतिक है और मनस् स युक्त है।

---

[1] जे० एच० म्योरहैड कृत द प्लेटोनिक ट्रेडीशन इन एंग्लोसेक्सन फिलोसोफी म रायस के दशन का विस्तृत वणन है। द्रष्टव्य जी० मासल की आर० एम० एम० 1918-19 म प्रकाशित और 1945 मे पुस्तकाकार रूप म प्रकाशित रचना 'ला मेटाफिजीक डी रोयस।' 1920 म प्रकाशित जोज सण्टयाना कृत करेक्टर एण्ड ओपीनियन इन द यूनाइटेड स्टेटस, पेपस इन आनर आफ जोसिया रोयस (सपा० ज० ई० क्रेटन 1916) आर० बी० परी द थाट एण्ड केरेक्टर आफ विलियम जेम्स (1935) और डिक्शनरी आफ अमरिकन बायाग्राफी म प्रकाशित पैरी का रायस पर लेख। डी० एस० राबिन्सन कृत जोसिया रोयस दशन के क्षेत्र म कोलिफोनिया का एक योगदान (पसनलिस्ट 1950)। जे ई स्मिथ रोयस, सोश्यल इनफिनिट (1950) जे एच कोटन रोयस आन द ह्यूमन सेल्फ (1945), डी मोन्समेन रायस कन्सेप्शन आफ एक्सपीरिएन्स एण्ड द सेल्फ (पी० आर० 1940), जे० पी० 1956 का रोयस विशेषांक।

[2] बोसाके का कथन है, मैं वास्तव म ज्ञानमीमासा म विश्वास नही करता। (1914) और ब्रैडले की यह व्यग्यात्मक उक्ति, ज्ञानमीमासा मे कौन सी स्थिति सही होगी इसके बारे म अपनी राय देने का मैं अपने को अधिकारी नही मानता।'

तो भी वह मिल की इस धारणा से कि भौतिक पदार्थ संवेदना की अनन्त सम्भावनाएं हैं इसलिए असन्तुष्ट थे कि इन सम्भावनाओं के बारे में कोई स्पष्ट बात नहीं कही थी। रोयस यहां एक प्रश्न पूछते हैं। ठोस असनियत नाम का मुहावरा कौन से झूठ सत्य की ओर इंगित करता है? हमारे सामान्य दैनिक जीवन में जब हम किसी वस्तु को सम्भव कहते हैं तो उसका अर्थ यही होता है कि हम उसके घटित होने की कल्पना कर सकते हैं। ये सम्भावनाएं केवल मात्र हमारे विचार ही हैं। ये हमें इन विचारों से परे कहीं नहीं ले जाते और जहां तक मिल का प्रश्न है उनकी अनन्त सम्भावनाएं उस समय भी विद्यमान रहती हैं जब हम उनके प्रति सचेत नहीं होते और यहां एक ऐसा जगत है जिसे निर्मित सृष्टि से परे हम खोजते रहते हैं। रोयस के अनुसार विशृंखल एवं विभक्त जगत को निरन्तर एवं व्यवस्थित जगत् में बदलने का एक ही तरीका है और वह यह है कि हम यह मान लें कि कहीं अनुभव की एक निरपेक्ष सत्ता है जिसे सारे तथ्यों की जानकारी है और जिसके समक्ष सारे तथ्य समष्टिव्यापी मर्यादा में कार्य कर रहे हैं।

रोयस के अपने मतानुसार ही इस प्रकार की विचार प्रणाली किसी तात्विक दिशा की ओर न ले जाकर मात्र एक अभिधारणा का ही कार्य करती है। इससे यह भी सिद्ध नहीं होता कि पारमात्मिक अनुभव की स्थिति कहीं है भी। यह तो केवल इतना बोध ही देती है उपर्युक्त प्रकार का अनुभव कहीं न कहीं होना चाहिए क्योंकि हम यह विश्वास किए बिना नहीं रह सकते कि तथ्यों का निरन्तर एवं व्यवस्थित संसार है ही। यह सिद्धान्त इतना कह चुकने के बावजूद भी इस आशय को भी व्यक्त करने में नहीं चूकता कि प्रस्तुत धारणा गलत भी हो सकती है। रोयस इस प्रकार की संदेहास्पद विचारभूमि पर खड़े होकर सन्तुष्ट नहीं हो सकते थे वे तो पारमात्मिक अनुभव की सिद्धि का अवसर खोजने में व्यस्त थे।

और अब रोयस द्वारा स्थापित हुए के फाप (बुद्धिव्यायाम) का सिद्धान्त सम्मुख आता है। पारमात्मिक आदर्शवाद की भीषण बाधा उसका दोष स्वीकारना था। उसके विरोधी सहजता से प्रश्न करते कि किस भांति दोषमुक्त अवस्था को सत्य में स्थान प्राप्त हो सकता है। किन्तु रोयस के आदर्शवाद में दोष की स्थिति असंदिग्ध है क्योंकि उसे इन्कार करने का अर्थ उस दृष्टिकोण का समर्थन करना है जिसमें दोष को दोष कहकर स्वीकार किया गया है। और यही स्थिति हमें पुनः परमात्म को स्वीकार करने के लिए बाध्य करती है। परम्परात्मक अनुभववाद के अनुसार दोष उस विचार-स्थिति का नाम है जो उस सम्बन्ध में वर्णित किसी पदार्थ के साथ मेल स्थापित करने में असमर्थ हो जाता है। वहां रोयस एक एतराज प्रस्तुत करते हुए कहते हैं—किसी के साथ मेल खाने में असमर्थ होने के विचार को ही दोष की संज्ञा नहीं दी जा सकती—अपितु दोष वहां है जहां हमारा

तत्सम्बन्धी विचार उन सभी स्थितियो से मेल खाने मे असमर्थ हो जाए जिनके द्वारा हम किसी वस्तु की सिद्धि करते है। किसी बात को गलत समझना एक चीज है और उसका अर्थ है कोई अन्य तरह की धारणा रखना—जबकि दोषपूर्ण विचार का अर्थ है अपने उद्देश्य मे जाकर असफल हो जाना। और यहा हम क्या चाहते थे इसका कोई संकेत भी नही मिलता। मुडी हुई बेत के विचार मे उस समय दोष होगा जब हम सीधी बेत पर विचार करते समय मुडी हुई अवस्था की कल्पना भी करें। इस प्रकार रोयस के अनुसार कोई विचार दोषपूर्ण तभी है जब हमारी बुद्धि यह अन्तर करने की स्थिति मे हो कि हमारा विचार क्या था और उसकी कौन सी अवस्थाओ से हम तत्सम्बन्धी विचार की संगति पाने मे असफल रहे है।

अपनी पुस्तक द रिलीजस आस्पेक्ट्स आफ फिलोसोफी (1885) मे उन्होने दोष की परिभाषा देते हुए कहा है—एक पूर्ण विचारश्रृंखला मे अपूर्ण विचार का होना ही दोष है और जिस उद्देश्य की ओर स्पष्टत पूर्ण विचार बढ रहा था उस श्रृंखला मे अपूर्ण विचार को रखकर उसके दोष को जाना जा सकता है। अर्थात् पूर्ण विचार अपूर्ण विचार की सीमाओ को उजागर कर सकता है और इसे किसी स्थिति मे पूर्णता प्राप्त हो जाने पर बडी सरलता से देखा जा सकता है। हम अपने दोषो का ज्ञान उस समय होना प्रारम्भ हो जायगा जब हम एक पूर्ण विचार-सत्ता मे अपनी आंशिक क्षमताओ को जोडकर देखना प्रारम्भ करेंगे। लेकिन सम्भावित दोषो की संख्या अनन्त है क्योकि प्रत्येक सत्य अपने साथ अन्तहीन दोषो की भीड लेकर प्रस्तुत होता है।[1] अमुक वस्तु को झूठ मानने का दोष अमुक दोष के बारे मे यह मानना कि वह दोष नही आदि आदि। केवल पारमात्मिक अनुभव इस तरह दोष के सत्य को उद्घाटित कर सकता है। ससीम अनुभव किसी भी भाँति दोषो के जगत् व्यापी कुछ सूत्रो से परिचित करने के अतिरिक्त कुछ नही करता।

रोयस की दृष्टि मे दोष कुछ ऐसी वस्तु नही है जिसके हम मानव मात्र होने के कारण शिकार हो जाते हैं—अपने अस्तित्व के लिए मानवी अस्तित्व का उसके लिए होना आवश्यक नही है। यहा यह घडी है, यह बल्ला है, यह बर्फ का टुकडा है, इन तीनो प्रकार के अनुभवो मे भी अनन्त दोष हो सकते हैं। न केवल हो सकते हैं अपितु दर असल हैं भी। आप अपने विचार से इनकी सचाई और झूठ को निर्मित नही कर सकते। इसीलिए तो उस अनन्त विचार मे ही किसी

---

[1] जहा ब्रेडले अनन्त अपवर्तन का किसी विचार से विरोधाभास होने का प्रमाण कहते हैं वहा रोयस अनन्त अपवर्तन को स्वीकृति देने मे कोई हानि नही देखते। द्रष्टव्य 1900 मे द वर्ल्ड एण्ड द इंडिवीजुअल मे रोयस द्वारा ब्रेडले को दिया गया उत्तर।

माति प्रारम्भ स ही यह विचार विद्यमान था। सेण्याना न इसके प्रतिरोध म कहा कि इस प्रकार के तक स रायस जीव-विकास-प्रक्रिया की आकस्मिकता पर दशन का निर्माण करना चाहते है। यह तो सही है कि मनुष्य गलती करते है लकिन दरअसल रोयस ने भेप को जीव-विकास-प्रक्रिया के आकस्मिक रूप म कही भी नही देखा। यह तो एक तार्किक आवश्यकता थी सत्य का आवश्यक रूप से दूसरा पहलू क्योकि यह कहना ही कि सत्य मालूम कर लिया गया है इस बात का आभास देता है कि कुछ दोषो की घोषणा हो गई है। उदाहरणाथ-यह मानने का दोष कि सत्य मालूम नही किया गया था।

अभी तक परमात्मा को परम्परागत आदशवादी तरीके म भी अनुभव-सिद्ध माना गया है। रायस ने अपनी कृति द रिलीजस आस्पेक्ट आव थोट' के शुरू के अध्याय म जिन म व धार्मिक और नतिक प्रश्नो पर चर्चा कर रहे हैं और जो उनके मतानुसार मानव मात्र का सर्वाधिक रुचि के है वहा पर परमात्म को पारमात्मिक इच्छा के रूप मे प्रदर्शित किया गया है। रायस की नीति काण्टवादी है। नतिक जीवन मानवी जीवन का दवी इच्छा से तादात्म्य करने का ही नाम है।

इस प्रकार यह परमात्म जिसके साथ उनका नीतिशास्त्र जुडा है, एक दवी इच्छा है। नीतिशास्त्र का यह परमात्म उनकी ज्ञान की व्याख्या करते समय के परमात्म से काफी भिन्न लगता है।

द वल्ड एण्ड द इण्डीवीजुयल म जो कि उनकी सर्वाधिक प्रभाव-शाली कृतियो म स एक है इच्छाशक्ति प्रबल रूप से प्रवतन मे आ जाती है। रोयस की अपनी नतिक मान्यताओ म जेम्स की विचारधारा का तारतम्य बठने लगता है।[1]

---

[1] सन्तयाना के अनुसार रायस के परमात्मवाद के लिए अमरिका के नतिक आदश काफी प्रबल थे। परमात्मवाद के लिए बुराई समष्टिव्यापी योजना का एक अनिवाय अ ग है लेकिन नतिकता के लिए बुराई एक ऐसी अवस्था है जिसका शमन किया जा सकता है यदि उसे पर्याप्त मात्रा मे अच्छाई का आधार मिल सके। रोयस इन दोनो प्रकार की दृष्टियो म मेल बठाने म कभी सफल नही हुए। वे तो अपने से अधिक इनकी विरोधी अवस्थाओ म पूण निष्ठा से नम्रता स तथा दयनीयता से जुडे है। उनकी नतिकता उन्हे इच्छाशक्ति पर जोर देने के लिए विवश करती है। लकिन उनके परमात्म के सम्मुख जिसे वे छोडना नही चाहते और जहा यह सिद्ध भी हो जाता है कि इच्छाशक्ति अपूण होने के कारण दिखावा मात्र है इच्छाशक्ति का दर्जा कम हो जाता है। द्रष्टव्य सी एम बेकवल का 1930 मे सातवी दार्शनिक परिषद् म पढा गया निबन्ध द सिग्निफिकेंस आफ रोयस इन अमरिकन फिलोसोफी। प्रतिनिधित्ववादी एव अथ—क्रियावादी सिद्धान्तो म सत्य की व्याख्या के लिये एनसायक्लोपिडिया आव एथिक्स एण्ड रिलिजन मे उनका निबन्ध देखें।

तो भी रोयस ज्ञानमीमांसा पर लगातार जोर दिए जाने के पक्ष में हैं। हाँ, यहाँ आकर कोई कल्प अब एक प्रतिनिधित्व मात्र नहीं है। यह तो, यदि स्टाउट के शब्दों में कहें, तो वस्तु का विवेचन करने की योजना मात्र है और केवल यही उद्देश्य कोई कल्प पूरा कर सकता है। मान लो हम अपने ही लिए कोई स्वरावलि गुनगुनाते हैं—तो उस स्वरावली की अन्तरिम सार्थकता ही वह उद्देश्य होनी चाहिए जिसे वह गाना संतुष्ट करता है। लेकिन फिर भी वह स्वरावली हमारे द्वारा कहीं सुनी किसी गीत की अनुवृत्ति भी हो सकती है जैसा कि 'गॉड सेव द क्वीन' जैसे प्रचलित गीत की कड़ी है। उस समय हम उस उक्त स्वरावली की अपनी सार्थकता मात्र मान सकते हैं।

सबसे पहले रोयस कदाचित अन्तरिम सार्थकता और ऊपरी सार्थकता का यह भेद हमारी संकल्पात्मक (कानटिव) तथा ज्ञानाश्रित (कोग्निटिव) विचार प्रणाली का परिचय देने के लिए करते हुए लगते हैं। अन्तरिम सार्थकता हमारी उस संकल्पात्मक शक्ति का परिचय देती है जो किसी उद्देश्य की ओर इंगित करती है। और ऊपरी सार्थकता जो ज्ञानाश्रित है हमारे द्वारा बाहरी जगत को समझने की शक्ति का ही नाम है। फिर भी रोयस इस प्रकार किसी बाह्य जगत के विचार के होने को अबूझ कहकर अस्वीकृत कर देते हैं। अब वह मक्टगर्ट की भाँति (द्रष्टव्य द नेचर आव एग्जिस्टेन्स) यह कहते हैं कि कोई दो वस्तुएँ एक दूसरे से भिन्न हो सकती हैं। फिर भी एक में परिवर्तन दूसरे में परिवर्तन ले आएगा। इस प्रकार समानताओं तथा असमानताओं का क्षरण होता रहता है। इस तरह ऐसे संसार का विचार जो केवल है, चाहे उसे कोई जाने अथवा नहीं वह तो वैसा ही रहेगा और जो मन से स्वतन्त्र अस्तित्व रखता है रोयस उसे कभी स्वीकृति नहीं देते। उसे वे तर्कसम्मत नहीं मानते।

इस प्रकार रोयस के लिए विचार और बाहरी सार्थकता, दो भिन्न अवस्थाएँ नहीं हैं। वे अपनी बात को समझाने के लिए एक उदाहरण देते हैं, कि मान लो हम दस जहाजों को गिन रहे हैं। अब साधारणतः यह तो कहा ही जा सकता है कि दस की संख्या उन जहाजों से अपने आपमें अलग है लेकिन यह सच कैसे घटित होता है कि हम मस्तूल गिनने की बजाय जहाजों को गिनते हैं। हम केवल इन्हीं जहाजों को क्यों अपने विचारों में सम्मिलित करते हैं और अन्य का विचार क्यों नहीं करते ? इसका उत्तर उनके अनुसार यह होगा कि हमारे सारे उद्देश्य या सभी योजनाएँ उस पदार्थ का ही निर्माण करते हैं जिसे हम गिन रहे हैं। यह हमारे इरादों के उद्दिष्ट के रूप में ही विद्यमान है। बाहरी सार्थकता, विकासमान होते हुए भी आन्तरिक सार्थकता पर अवलम्बित है।

विचार परमात्म का ही एक सूक्ष्मांश है। इसी बात को वे भी कहते हैं कि एक विशिष्ट विचार अथवा कल्प, एक विभक्त और अपूर्ण उद्देश्य ही है—और

उसम सदव अपनी सीमाओ का अतिक्रमण कर अपने को पूणता की ओर ले जाने की वृत्ति विद्यमान होती है। किसी व्यापक प्रणाली की खोज म जिसम कोइ कल्प अपनी पूर्ति कर सकता है यह कल्प अपनी नानात्मक अवस्था म रहता है—और उसकी बाह्य साथकता उसके द्वारा इ गित की जा रही अपने से बाहरी अवस्था म निहित रहती है। लेकिन इसका अथ यही होगा कि अब एक विशिष्ट कल्प न एक व्यापक उद्देश्य म अपना स्थान निर्धारित कर लिया है। यह अपन ही द्वारा कभी भूल नही हुआ है।

इस बिन्दु पर रोयस एक बार फिर अपने द्वारा निर्धारित समय और स्थान के सिद्धान्तो स परमात्मवादी सिद्धा त स भटकते हुए लगते है। व यह नही कहना चाहते कि व्यक्तिगत उद्देश्य समष्टिगत योजना म विलीन हो जाते हैं अथवा कि उनकी वयक्तिकता केवल एक दिखावा है--रोयस की दष्टि म प्रत्यक अ श सम्पूण है अपना एक विशिष्ट योगदान दता है और उसी म उसकी वयक्तिकता है। परमात्म म आकर प्रत्येक व्यक्ति अपनी वही स्थिति रखता है जो उसने अपन साथियो की दष्टि म प्राप्त की थी। हा वहा आकर वह अद्वितीय रूप से मूल्यवान और अपदान्तरकारी हो जाती है। ओ मुक्त पुरुष तब उठ तरे इस ससार म आग बढ। यह ईश्वर का ससार है। यह तेरा भी है।

यही निष्कष रोयस द्वारा अपनी कलोफार्निया वादी प्रबल तक क्षमता द्वारा व्यक्त किया गया है। यूरोपीय परमात्मवादियो के लिए रोयस द्वारा वयक्तिक इच्छा शक्ति को दी गइ छूट आदशवादी परम्परा के प्रति एक धोखाधडी है। बहुत स अमरीकियो के लिए तो वह अमरीकी यक्तिवाद के प्रति भी एक धोखा है। विलियम जेम्स जस लोग जब परमात्मवाद पर प्रहार करते है तो अमरीकी लोगो की यह धारणा है कि एसा रोयस क प्रभाव के कारण हो रहा है। बोसाके न लिखा है कि अग्रेजी आदशवाद को प्रबल रूप से गलत समझा जाना, जिसका आधिक्य वतमान अमरीकी लेखका म पाया जा रहा है—मूलत रोयस के कारण ही है। (द्रष्टव्य व मीटिंग आफ एक्स्ट्रीम्स इन कटेम्पोरेरी फिलोसोफी (1921)। रोयस के दशन के सहारे ही अमरीका की नवोदित प्रतिभाओ ने अपनी बुद्धि को तीक्ष्ण किया। उसी प्रकार जिस प्रकार इगलड म विचारको ने अपने दाता को ब्रेडल क सहारे तीक्ष्ण किया था।

अध्याय 5

अथक्रिया-वाद एव समधर्मी योरोपीय दशन

आधुनिक दशन इस सिद्धान्त पर स्थापित है कि दाशनिक रूप से विचार करन का अथ उसी बात को सत्य मानना है जिसे हमारी बुद्धि स्वीकृत कर यह धारणा डेकाट न निर्विवाद रूप स अपन दशन म स्वीकार की थी। इसके विपरीत अदाशनिक होने का अथ है इच्छाशक्ति के द्वारा व्यभिचरित हो जाना—इसके कारण मनुष्य बुद्धि द्वारा निर्धारित सीमाओ के बाहर चले जाते हैं और दोषपूण स्थलो के जगलो म भटक जाते हैं। इग्लण्ड म लाक ने इस कार्टेजियन आदश को दशानुकूलित बनाया था—उन्होन लिखा था कि एक ऐसी दोषहीन अवस्था भी है जिसके द्वारा मनुष्य यह मालूम कर सकता है कि वह सत्य के लिए ही सत्य को प्रेम कर रहा है या नही और वह है—किसी कथन को तभी विश्वास के साथ स्वीकारना जब कि पुष्ट प्रमाण उस स्वीकार को पूर्णत समर्थित करते हो। उन्नीसवी शती के अनीश्वरवाद न लाक के इस कथन को गहरी नतिकता के साथ पुन स्वीकृत किया। डब्लू के क्लिफोड की रचना 'द एथिक्स आफ बिलीफ' म एक प्रमुख सारभूत उद्धरण द्वारा इस सरणि को सुझाया गया है। सभी स्थानो म किसी के द्वारा बिना पर्याप्त कारणो के किसी बात पर विश्वास कर लेना गलत है।'[1]

क्लिफोड ने विश्वास के साथ इन शब्दो को लिखा। उनके इस कथन म एक ऐसे मनुष्य का सकेत मिलता था जिसे वज्ञानिक विकास का आधार मिला था। फिर भी बुद्धिवाद के विरुद्ध हुआ विद्रोह जिसे उसके आलोचको न कार्टेजियन आदश की सज्ञा भी दी है—जमनी म ठीक स प्रवतन मे आ गया था। हमने नव स्वच्छन्दवाद' का पहले ही क्रियाशील अवस्था म देख लिया है—खासतौर पर लाज के दशन म अक्षीण नमावस्था म और यूकन, रोयस और वाड के दशन म तो इसके और भी प्रबल रूप म दशन होते हैं। लकिन विलियम जेम्स के हाथो मे आकर इसने और भी क्रान्तिकारी रूप ग्रहण किया क्योकि उनके द्वारा प्रस्तुत विचारधारा ब्रिटानी पाठको के अनुकूल थी।

एक बार फिर काण्ट इस सबके सूत्रधार हो जाते है। उन्होने लिखा था मुझे ज्ञान का उन्मूलन करना होगा—और विश्वास के लिए कही न कही स्थान रखना पडेगा—(सदम, क्रिटीक आव प्योर रीजन के दूसरे सस्करण का आमुख) इस

---

[1] कटेम्पररी रिव्यु (1876) म प्रकाशित। लेक्चस एण्ड एसेज (1879) म पुन प्रकाशित।

बात को प्रदर्शित करन का कोई तरीका नही है कि कायकारी घटनाओ के बाहर कोई ऐसी स्थिति है जो हमारे अनुभव का निर्माण करती है। लेकिन नतिकता का दाय हम अपने आपको स्वतन्त्र अभिकता मानने को विवश करता है और तब हम अपन उस सत्य अथवा स्वस्थित आत्म का ज्ञान होता है जो काय–कारण–सयोग स परे है। इस तरह उच्च नतिकता के नाम पर यह सिद्धान्त बुद्धि पर प्रहार करता हुआ दिखाई द सकता है।

एकत्व को आदश मानने वाल हीगल काण्ट के द्वारा किए गए सघठन (फिनोमीना) एव स्वस्थन (नामीना) के अन्तर को नष्ट कर दते हैं। उनक समसामयिक विचारक शोपनहावर इसी को पुनर्व्याख्या करत हुए इसे बुद्धिविरोधी आत्म मानते हैं।[1]

शोपनहवर ने सब प्रथम काण्ट के सघटन को प्रत्ययो म बदला है। ब्रितानी अनुभववाद ने प्राय बुद्धि के अपदश के विरुद्ध सघष म काफी सहयोग दिया है। बर्कले के इस कथन म निश्चय ही सचाई थी कि जो कुछ दृश्यमान है वह केवल द्रष्टा के लिए ही उपस्थित है। किन्तु दूसरे प्रकार के 19 वी शती के बर्कले के प्रशसको की भाति शोपेनहवर इस निष्कष पर नही पहुचते कि विचारो के अतिरिक्त कोई भी वस्तु अस्तित्वमान नही हैं। इस निष्कष से उनकी धारणा के अनुसार

---

[1] शोपेनहवर की 18 वी शती की पूर्वी दशा गी स पुव तक कोई निश्चित विचारधारा नही बनी थी। उसक बाद भी उनके विचारो की जितनी उनक निबन्धो (परगा एण्ड परालिपोमना–1851 म देखा जा सकता है) उतना उनकी व्यवस्थित विचारप्रणाली (दि वल्ड एज विल एण्ड आइडिया 1818) म नही मिलता जिसने ही उनके प्रशसको म वृद्धि की है। हीगलवाद पर उनका यह प्रहार इस विचार धारा की प्रबल शक्ति उनक आदश म नही है चाहे उस कितनी ही स्वीकृतिया और बढावे दिये जायें। उनकी शक्ति मूलत उन वास्तविक उद्देश्यो म निहित है जो व्यक्तिगत व्यावसायिक लखन सम्बन्धी राजनीतिक और सक्षप म कहे तो भौतिक रुचियो मे निहित है –एक राज्य दशन के खिलाफ प्रतिक्रिया प्रकट करन वाल लोगो के लिय स्वागत का विषय था। शोपनहवर का निराशावाद भी बहुत से व्यवसायी आदशवादी दाशनिको की अपेक्षा अधिक उत्तेजक था। उनका दशन अपेक्षाकृत अधिक सगत लगता था। विशेषत उन सजनशील वेल्टसमज–विचार–धारा को मानने वाले लोगो के लिए जो 19 वी शती की जमन सभ्यता का एक विशिष्ट अग बन गई थी और जिसके अन्तगत देवताओ की रोशनी के नाम से बहुत स सगीत प्रधान नाटको की रचना की गई थी। द्रष्टव्य, डब्लू० वलस कृत लाइफ (1880) एफ० कपल्स्टन कृत आथर शोपेनहवर, फिलोसाफर आफ पेसीमिज्म (1946 टामसमन दलिविंग थौटस ऑव शोपेनहवर (1939)।

कोई भी मनुष्य स्थायी तौर पर उपमत नही हो सकता। अनिवार्य रूप से हम वस्तु की अपनी सत्ता की खोज म रहते हैं और यह सत्ता उन प्रत्ययो को धारण करने वाली है जिन्ह हम देखते हैं और उन्ह सार्थकता और महत्व प्रदान करते हैं।

किन्तु हमें यह कहा उपलब्ध होगी? शोपनहवर के अनुसार इसे हम निश्चय ही अपने चारो ओर फैले जगत म प्राप्त नही कर सकते हैं क्योंकि वहा पर हम अपने ही प्रत्ययो के अतिरिक्त किसी अन्य वस्तु से साक्षात्कार नही कर सकते। यह रहस्य तो स्वयं हममें है और हमारी उस चेतना म निहित है जिसके द्वारा हम अपने को इच्छाशक्ति रखने वाले एक व्यक्ति के रूप म देखते हैं। क्योंकि जब हम अपने किसी कार्य को अपनी इच्छा शक्ति के प्रकटीकरण के रूप म देखते और समझते हैं तो यह एक तरह से केवल मात्र प्रत्ययो का आपसी सम्बन्ध नही रह जाता। कोई भी कार्य अपना एक इच्छित भाव रखता है जिसे यदि हम अनदेखा कर दें तो उस कार्य को समझने म कठिनाई होगी। तो भी हमारे कार्य यदि हम उन्ह दृश्यमान जगत का एक अंश मानें अपने आप म प्रत्यय ही हैं। उनके ही पहलू होते हैं। संघटन के रूप म वे प्रत्यय हैं और अपनी सार्थकता के रूप म इच्छाशक्ति के प्रकटीकरण हैं।

इसी प्रकार का द्वन्द्व शोपेनहवर के अनुसार प्रत्येक प्रत्यय का मूलतत्व होना चाहिए। हम इच्छाशक्ति के अलावा किसी भी ऐसी वस्तु से परिचित नही हैं जो हमारे विचारो को महत्व प्रदान कर सकें और यह तो निश्चय ही है कि कोई भी विचार या कार्य बिना महत्व का नही है। हम उनके सम्बन्ध म निश्चय ही हमारी इच्छाशक्ति के ठोस उद्धरण के रूप म स्वीकृति देनी होगी और चूंकि प्रत्ययो मे ही सत्य की एक प्रणाली निर्मित होती है इसलिए शोपनहावर के अनुसार वस्तु की अपनी स्वायत्त सत्ता होनी जरूरी है और वह सत्ता है उसकी इच्छाशक्ति जिसका यह समस्त भौतिक जगत एक प्रतिरूप है। यह इच्छाशक्ति निश्चय ही हमारी इच्छाशक्तियो से भिन्न होगी ही—विशेषकर अपने इस रूप म कि उसम यहा चेतना नही होती—किन्तु हमारी अपनी चेतना भी शोपनहवर के अनुसार और यही शोपनहवर के सिद्धान्त का सर्वाधिक प्रभावशाली स्थल था—इच्छाशक्ति के लिए साधन होने के अतिरिक्त कुछ नही थी। इच्छाशक्ति द्वारा उपयोग म लाई गई यह एक ऐसी क्रिया है जो वह व्यक्ति की सत्ता को कायम रखने के लिए काम म लेती है और इस तरह उसकी प्रजाति की स्थापना करती है। शोपनहावर केवल कलाओ के लिए ही इतनी छूट देते हुए यह स्वीकार करते हैं कि चूंकि वहां पर वस्तु के शुद्ध रूप पर अनासक्त विचार होता है इसलिए एकाध क्षण के लिए विचार वस्तु म निहित अनन्त संघर्ष कुंठाओ एव निराशाओ, संतोष एव विषाद इन सभी अवस्थाओ से अपने को मुक्त कर लेता है जिनम इच्छाशक्ति निरन्तर प्रकट होती रही है।

यहा तक कि मधावी व्यक्ति की मधा भी शोपनहवर क अनुसार वस्तुओ के विषय म एक तटस्थ दष्टि प्राप्त कर लने के अतिरिक्त और कुछ नही कर पाती और वह कला के स्तर का स्पश यदा कदा ही कर पाती है। इस तरह शापनहवर यह निष्कष निकालते है कि मनुष्य स्थायी तौर पर अपने कष्टो एव सघर्षों स उस समय तक मुक्ति नही पा सकता जब तक कि वह सम्पूण रूप स वस्तुस्थिति स अपना अलगाव न करल—यही पूर्वी धर्मों म निर्वाण की अवस्था मानी गई है और यहां आकर ही इच्छाशक्ति स्वय का अभिनिष्क्रमण कर लती है।

शापनहवर के निराशावाद न मानवी सस्कृति पर एक अमिट छाप अकित की है। विशेषत फ्राइड[1] और वान हाटमन पर तो उसका काफी प्रभाव रहा है। विचार को साधन क रूप म देखना अब हम भली प्रकार जचन लगा है। और डार्विन की नई जीवशास्त्रीय प्रणाली के तो यह काफी अनुकूल हैं। उपकरणवादियो द्वारा किया मानवी विचारधारा का विश्लपण भी इमस काफी मल खाता हुआ दिखता है—और विलियम जम्स तो इस विचारधारा को सीधे ही ग्रहण करने वालो म से है।[2]

इस परम्परा का दशन काण्ट से लेकर जम्स तक म किया जा सकता है। जम्स के पास काण्ट की ओर लौटने क अलावा कोई अय चारा नही था—और वे

---

1 ई० वोन हाटमन कृत फिलोसोफी आव द अनकोशस (1869) जहा पर शोपनहवर की इच्छा शक्ति अचेतन म परिणत हो गइ है। इस पुस्तक के दस सालो के अदर आठ मस्करण प्रकाशित हुए— वोन हाटमैन जस निराशावादी के लिए इस प्रकार की लोकप्रियता एक विचित्र बात ही थी। द्रष्टव्य, (जमन भाषा म लिखित) डबन्नू वोन श्नहन एडुवाड वोन हाटमान (1929) जे डब्ल्यू काल्डवन का माइण्ड 1863 म प्रकाशित लख द एपिस्टिमालोजी आव एडवड वोन हाटमन डबलू० एस० नाथरीज कृत मोडन थ्योरीज आव द अनकोशस (1924)

2 जेम्स, जो सामायत सहिष्णु प्रकृति के थ शोपेनवहर के प्रति बडे कठोर रहे किन्तु यह सब इसीलिए था क्योकि वह उनसे काफी आतकित थे। द्रष्टव्य पेरी का थोट एण्ड करेक्टर म लिखा एक उल्लेखनीय पत्र जिसम उहोंने शोपनहवर का स्मारक बनाने वालो को चदा दने से इन्कार किया है। इसी पुस्तक का 45 वां अध्याय इसी सम्बध म देखने योग्य है।

इस दृष्टि से नवकाण्टवादी एफ० ए० लंग से भिन्न थे। लंग द्वारा की गई काण्टवाद[1] की टीका जिसे उन्होंने हिस्ट्री आव मैटीरियलिज्म के दूसरे संस्करण में विकसित किया है, वह भी काण्ट को ब्रितानी अनुभववादी तरीके से परखने के अलावा कुछ नहीं। यहां संघटनों को संवेदनाओं में रूपान्तरित कर दिया गया है— और काण्ट ने जहाँ विचारों के सामान्य रूपों का निर्धारण करने की कोशिश की है और जिसे परम्परागत तत्त्वशास्त्र के प्रति आदर भाव सहित अनुभव द्वारा सिद्ध किया गया है लंग इन्हीं को मनोवैज्ञानिकता में से ढूंढ निकालने का प्रयत्न करते हैं। वे कहते हैं कि यह मनुष्य की प्रकृति और उसका स्वभाव है। जो उसी प्रकार के जगत का निर्माण करता है जैसा उसे हम अनुभव करते हैं। शापनहॉवर की भांति, एक बार फिर लंग यह मानने के लिए भी तैयार नहीं कि हमारा अनुभव केवल संवेदनाएं ये हैं न वे वस्तु-स्थिति वादियों की यह बात मानते हैं कि जो अनुभव हमारे संवेदनाओं के पारस्परिक सम्बन्धों का वर्णन करते हैं वे ही सही अनुभव हैं।

मिल की इस बात से लोग सहमत थे कि संवेदनाओं के अलावा कोई अनुभव सिद्ध करने योग्य हमारे पास वास्तव में नहीं है लेकिन यह हमारे प्रभाव की अक्षमता ही है। मनुष्य को अपना स्वयं का एक आदर्श विश्व निर्माण करके सत्य का एक पूरक खड़ा करना चाहिए। काण्ट को वे आत्मा का सदन निर्माण करने की प्रक्रिया मानते हैं। तत्त्वदर्शन को वे निरर्थक कहकर छोड़ देते हैं। और ज्ञान की शाखा के रूप में उसकी आलोचना करना समूची स्थिति का मटियामेट कर देना है।—"पलस्ट्रिना द्वारा चित्रित मास का खण्डन कौन करेगा तथा रफल कृत मजिना पर कौन अभियोग लगाएगा?" बाद में तो धीरे धीरे यह बात भी सामने आने लगी कि तत्त्वज्ञान एक प्रकार का काव्य ही है।

---

[1] कूनो फिशर का हिस्ट्री आफ मॉडर्न फिलोसोफी (1860) में लिखा निबन्ध एक्सपोजीशन आव काण्ट्स फिलोसोफी काण्ट पर किया गया प्रथम गंभीर अध्ययन—माना जा सकता है। परन्तु दर्शन के विद्वान ए० ट्रेण्डेलनबर्ग द्वारा इस सम्बन्ध में जो सुवाद (कान्ट्रोवर्सी) खड़ा किया गया है वह काण्ट की विचारधाराओं को अधिक स्पष्ट करने में सहायक रहा है। इस सुवाद का संतोषप्रद जवाब एच० कोहेन ने काण्ट्स थ्योरी आफ एक्सपीरियन्स (1871) में दिया है। लंग की व्याख्या इसी पुस्तक पर आधारित है। यद्यपि 'मारबर्ग' विचारधारा के नवकाण्टवादियों ने कोहेन के नेतृत्व में मनोवैज्ञानिकीकरण का काफी विरोध किया था और काण्ट की अफलातूनी व्याख्या पर बल दिया था। द्रष्टव्य कसियर कृत, एच० कोहेन 1842–1918, सोशल रिसर्च (1943)

लग के अनुयायी जिनम खासतौर पर काण्टवाद के विद्वान वेहिगर[1] का नाम लिया जा सकता है अपन प्रवतक से भी आग निकल गए है। उनका कहना है कि तत्व दशन के लिए जितना गल्प अनिवाय है उतना ही विज्ञान के लिए भी है। विनान की अगु की खोज ऐसी ही है--चाहे अगु पर प्रस्तुत विचारो म परस्पर असगतिया विद्यमान है।—इसस यहा सिद्ध होता है कि अनुभव क विनान के लिए गल्पात्मकता का होना काफी उचित है। इस गल्पात्मकता के अभाव म आग बढना दशन जीवन और विज्ञान क लिए भी घातक है– विलफोड का बात को गम्भीरता पूवक स्वीकार न करन का अथ विज्ञान का विनष्ट करना धम और तत्वदशन का हत्या करना होगा।

इसी प्रकार के विचार नाटकीय और सशक्त ढग से फ्रेडरिक नीत्शे द्वारा भी यक्त किय गय थ। फ्रेडरिक नीत्श एक व्यवस्थित शास्त्रीय विचारक न होत हुए भी अद्भुत प्रतिभा और चमत्कारी साहित्यिक याग्यता क यक्ति थ। उहोने 1886 ई० म प्रकाशित अपनी पुस्तक **बियोण्ड गुड एण्ड ईविल** म लिखा कि सार दाशनिक एसा प्रदर्शित करने का प्रयास करत हैं माना कि उनकी वास्तविक धारणाय स्वविकासशील शुद्ध नियोजित एव एक तटस्थ दनिक द्वद्वात्मकता स नि सृत है जबकि वास्तव म उनके सारे कथन विचार और सुझाव उनकी हार्दिक इच्छाओ क सूक्ष्म और परिष्कृत रूप के अतिरिक्त कुछ नही और ही को लकर वे बाद म अपन तर्कों द्वारा अपना बचाव करते रह हैं। वे एक ऐसी तरह क वकील हैं जो अपने को वकील मानन के लिए तयार नहो। (ब्रेडल द्वारा किया गया तत्व दशन का यह वणन तुलना क याग्य है कि जिसे हम अपनी मूल वृत्तियो पर आधारित मानकर विश्वसनीय मानते हैं तत्व दशन उसी की प्रसिद्धि करता है।) नीत्शे के मनस्तत्व के सिद्धात स इसस अधिक कुछ आशा नही की जा सकती उनके लिए विशुद्ध विवक की कोई भी ऐसी स्वतन्त्र विचार-सरणि नही जिसका हमारे भावनात्मक जीवन स पथक कोई प्रश्शन योग्य अस्तित्व हो। उन्होने लिखा है विचार हमारी सवेदनाओ का परस्पर सम्बन्ध मात्र हैं। हमारी *भावनाओ क घषण स जो निरन्तर एक दूसर पर बलाधिकार प्राप्त करना चाहते हैं एक साधन के रूप म दशन का जन्म होता है।* इस तरह वे इस निष्कप पर पहुचते हैं कि कोई भी तक अथवा कोई भी प्रकृतिसम्बन्धी सामान्य नियम दोषपूण ज्ञान के लिए बाध्य है। यह एक ऐसा रूप है जिस हमे वस्तुओ पर आरोपित कर देते हैं। वस्तुए अपन आप म इस प्रकार के किसी भी रूप को प्रदर्शित नही करती।

---

[1] दृष्टव्य, **दि फिलासफी आव एज इफ** नामक दशन ग्रथ जो 1877 तक जाकर पूण हुआ लकिन 1911 तक प्रकाशित न हो सका 1924 म हुए अग्रजी अनुवाद म लिखित *लेखक का आमुख देखिए।*

किन्तु इसका यह मतलब नहीं कि दर्शन के बिना ही काम चल जायगा। उनके अनुसार गलत से गलत धारणाएँ भी हमारे लिए इसलिए अत्याज्य हैं क्योंकि उनकी गलती को अनदेखा करके हम जीवन के सत्य का इन्कार करते हैं।

यदि तत्व दर्शन सम्बन्धी कोई सत्य निर्धारित करना दर्शन का काम नहीं है तो भी एक दार्शनिक के लिए क्या करणीय है? नीत्शे के मत में निश्चय ही उसे अपने आपको एक ज्ञान मीमांसक बनाना आवश्यक नहीं है। दर्शन को ज्ञान के एक सिद्धान्त में बदल देना उसे अपनी मरणावस्था की दुःखान्त दयनीय और करुण अवस्था में ले जाता है। उन्होंने ब्रितानी अनुभववाद पर यह अभियोग लगाया था कि वह पूर्णतः दार्शनिक आत्मा का दूषितीकरण है। एक दार्शनिक का इससे भी बड़ा काम है और वह है एक संस्कृति के शरीर चिकित्सक के रूप में कार्य करना। वह एक मुक्त आत्मा है जो हमारे जीवन के दृष्टिकोण को निर्धारित मूल्यों के पुनर्मूल्यांकन की दृष्टि देकर रूपान्तरित करता है। ईसाइयत, समाजवाद परहित-वाद (आल्ट्रुइज्म) ये सब नीत्शे के अनुसार पतन के प्रतीक हैं और जीवन को हीन मानने के लक्षण हैं। इन प्रत्ययों की गरीबी और संकीर्णता को छोड़कर ही दार्शनिक एक शक्तिशाली दर्शन के विकास में सहायता कर सकता है।[1]

नीत्शे के दर्शन में एक दार्शनिक की यह व्याख्या कि वह मानव जीवन के तौर तरीकों का व्याख्याता है—वर्तमान योरपीय दर्शन में व्यापक रूप से स्वीकृत हुई और इसका सर्वाधिक प्रभाव वहीं पड़ा।

इंगलैण्ड में यह बुद्धि प्रतियोगी भाव चाहे कम विशद रूप में ही क्यों न हो पर प्रवर्तन में अवश्य था और इसे विशेषकर दो प्रसिद्ध दार्शनिकों ने जो अन्य क्षेत्रों में महत्वपूर्ण कार्य कर रहे थे—अपनाया। इनमें से पहले विचारक कार्डिनल

---

[1] नीत्शे पर लिखा गया साहित्य प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। 1934 से लेकर 1945 के मध्य ही लगभग उन पर 400 पुस्तकें और कुछ निबन्ध प्रकाशित हुए हैं। अंग्रेजी में नीत्शे साहित्य बहुत कम मात्रा में है। द्रष्टव्य डी० हलेवी कृत द लाइफ आव फ्रेडरिक नीत्शे (1909) डब्लू ए काफमन कृत नीत्शे (1950) एच सी ब्रिन्टन कृत फ्रेडरिक नीत्शे (1942)। किन्तु नीत्शे पर स्तरीय कार्य फ्रेंच में ही हुआ है। द्रष्टव्य सी एण्डलर कृत नीत्शे सा वीए ऐट सा पेनसी (छः अंक, 1920-30)। आधुनिकतम जर्मन-व्याख्या के लिए देखिए कार्ल यास्पर्स कृत नीत्शे (1936)। 1922 में प्रकाशित नीत्शे व वेग्नर का पत्र-व्यवहार (अंग्रेजी अनुवाद उपलब्ध है) भी देखिए।

जे० एच० यूमेन हैं जिन्होने इस 1870 म प्रकाशित अपनी पुस्तक एन ऐसे[1] इन एण्ड आफ ग्रामर ऑन एसेन्ट म प्रवर्तित किया। जीवन कार्यानुगामी है यही सिद्धान्त उन्होने इस पुस्तक म प्रवर्तित किया। 'धम को प्रदर्शन योग्य तर्क द्वारा समझना ऐसा ही है जसा एक रसायन शास्त्री से हमारे लिए भोजन बनाने की आशा करना है तथा खनिजनो से चिनाइ का काम।' हम हमारी विवेकशील चेतना ही न कि कोई सिद्ध प्रमाण ईश्वर की ओर ले जाने म सहायक होती है। न्यूमैन की यह पुस्तक धम के नाम पर विस्फोट के इस सिद्धान्त की प्रबल आलोचना थी जिसम उन्होने यह कहा था कि हमे उसी बात पर विश्वास करना चाहिए जिसे हम सिद्ध कर सकते हैं।

ऐ० जे० बल्फोर जसे राजनयिक दार्शनिको की बहुचर्चित रचनाओ म भी इसी प्रकार का दष्टिकोण प्रस्तुत किया गया है। उनके विषय म यह कहा जाता हैं कि राजनयज्ञ उन्ह दशन के लिए पसन्द करते थ और दाशनिक उन्हे राजनीति के लिए। लेकिन ब्रेडले जसे दार्शनिक क लिए जो मृत और अमृत किसी वस्तु का महत्व देना नही चाहते थ व भी आदर क पात्र थे और जेम्स ने अपने लेटस म उनकी प्रशसा म ही कुछ शब्द लिखे हैं। 1879 मे प्रकाशित अपनी पुस्तक म (ए डिफेन्स आव फिलोसोफिक डाउट बींग एन ऐसे आन द फाउण्डेशन आव बिलीफ) बाल्फोर ने इस प्रकार का मन्तव्य यक्त किया है कि उन्नीसवी शती का प्रकृतवाद प्रकृति की एकरूपता के सिद्धान्त पर आधारित है और ऐस सिद्धान्तो को प्रदर्शित नही किया जा सकता। यह। नकारात्मक निष्कष द फाउन्डेशन आव बिलीफ का मूल स्रोत है। प्रकृतवाद हमारी नतिक धारणाओ और सौंदय-दृष्टि के प्रतिकूल पडता है जबकि अध्यात्म उन्हे सतुष्ट करता [illegible]। यदि प्रकृतवाद प्रदशन योग्य हो जाए तो *अपनी सभी अरुचिकारक अवस्थाओ के सहित यह अध्यात्म की अपेक्षा* स्वीकाय है किन्तु चू कि ऐसा नही है इसलिए हमारी भावनाओ को अवसर मिलना ही चाहिए। वे इसका खण्डन करते हैं कि इस प्रकार भावनाओ क प्रति समर्पित होन से कोई हीनता निहित है। हमारे विश्वास अधिकाशत बुद्धि के जरिए निर्धारित नही होते।

---

[1] सी० एफ० हेरल्ड की भूमिका सहित सस्करण द्रष्टव्य। एम० सी० डार्की द नेचर आव बिलीफ (1931) एल० स्टीफन अन ऐग्नास्टिक्स अपोलोजी (1893) सी० बोनर्जेट ल थियेर द ला सर्निल्यूज दा यूमेन (1920)। यह घटना 1879 क बाद की है कि पेपल पादरियो ने रोमन कथोलिक धर्मावलम्बियो को अपने जीवन दशन को जानने के लिए एक्विनास जसे दाशनिको की ओर मुखातिब किया। न्यूमेन के लेखो मे—स्कूलमेन का प्रभाव बहुत कम है। उसके मुख्य आदर्श ता हैं लाक और बकले।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि बेल्फोर और न्यूमैन के दर्शन में विश्वास की प्रकृति पर चर्चा को ही मूल कथ्य माना गया है क्योंकि यह एक ऐसा विषय था जिस पर ब्रितानी अनुभववादी मनोविज्ञान कभी कोई संतोषप्रद उत्तर न दे सका। केवल विश्वास एक सीधे सादे विचार से कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। तो भी परम्परागत मनोविज्ञान में विश्वास के इस पक्ष पर विचार ही नहीं किया गया है। जे० एस० मिल ने अपने पिता द्वारा अपूर्ण छोड़े गए विश्वास के सिद्धान्त की समीक्षा की है और ए० बेन ने भी जो परम्परागत मनोविज्ञान की व्याख्या से उतने ही असंतुष्ट थे इसके दूसरे विकल्प पर चर्चा की है। उन्होंने विश्वास की व्याख्या यह की है कि यह वह अवस्था है जिस पर कोई मनुष्य कार्य करने को सहज प्रवृत्त हो जाता है। सी० एस० पीयर्स के अनुसार अर्थक्रियावाद इस परिभाषा के काफी निकट पड़ता है। इस तरह ब्रितानी अनुभववाद एवं जर्मन स्वच्छन्दतावाद जिस पर ब्रितानी दार्शनिकों का प्रभाव रहा था दोनों ही एक दिशा में प्रवाहित हो रहे थे। वे यह मानने लगे थे कि कार्य के लिए हमारी तत्परता ही हमारे विश्वास का आधार है।

चार्ल्स रेनोवियर की[1] विचारधारा में जर्मन और ब्रितानी अनुमानों का मिश्रण दिखाई दे सकता है। चार्ल्स रिनोवियर जो कि फ्रांस की नवकाण्टवादी विचारधारा के नेता थे लॅग की ही भांति काण्ट के आधार पर ही ब्रितानी अनुभववाद का संस्करण कर रहे थे। उन्होंने ऐसेज डन जनरल क्रिटीक (1954–64) में लिखा है कि वस्तुएँ ज्ञान की प्रक्रिया में केवल संघटन मात्र है। और संगठन ही वस्तु है। किन्तु फिर भी वे बर्कले की भांति इस निष्कर्ष पर नहीं पहुँचते कि वस्तुएँ अपने अस्तित्व के लिए 'मुझ' पर आधारित हैं जिसे मैं मुझ पर कहता हूँ वह स्थिति स्वयं प्रतिनिधि स्थितियों का समन्वय मात्र है। जिस किसी भी भांति इसी प्रकार के अन्य समन्वयों पर जैसे उसे अथवा मुझ से बाहरी किसी अवस्था' पर कोई वरिष्ठता प्राप्त नहीं है।

---

[1] उन्नीसवीं शती के उत्तरार्द्ध के फ्रांसीसी दर्शन में रिनोवियर एक प्रभाव स्तम्भ के रूप में रहे हैं। 1890 में स्थापित प्रसिद्ध पत्रिका, ले एनो फिलोसोफी के सम्पादक एफ० पिलोन थे, जो रिनोविय के शिष्य थे। उनके दूसरे शिष्य एल प्रेट 1937 में प्रकाशित चार्ल्स रिनोविये फिलोसोफे के लेखक थे। रिनोवियर संबंधी फ्रांसीसी साहित्य में जी० सी० ऐलेस कृत ला फिलोसोफी दे चार्ल्स रिनोवियर 1905, आर० वेर्नियो कृत रिनोविया डिसाइपेल दे काण्ट (1945) द्रष्टव्य। एस० जे० होगसन कृत मिस्टर रिनोवियस फिलोसोफी (माइण्ड 1881) जे० ए० गन कृत रिनोवियर (1932 का फिलोसोफीकल जर्नल) सदृश लोगों द्वारा ब्रितानी अनुभववाद की एक कठिन परम्परा का निर्वाह किया गया है।

यह नानमीमासा उह जम्स क बहुत करीब ल आती है। लकिन जम्स मिल क दशन म इसी प्रकार हा रह विकास क निकटतम द्रष्टा थ इसलिए अनुभववाद उनक लिए कोई इन सवस बडी बात नही थी।[1] फिर भी व किसी ऐस दशन म सतुष्ट नही हो सकते कि जिसका आधार अनुभव न हा। रिनोवियर म जा बात उन्ह रुची वह यह थी कि उन्होन उनक अनुभववाद का इच्छाशक्ति क साथ पूण क्षमता स जोड दिया था। अनुभववादिया की यह परम्परा नियतवादी थी।

लकिन जेम्स की स्वय की स्थिति उनक इस निष्कप क कारण दयनीय हा गई कि हम भौतिक नियमा से पूणत अनुकलित है—हमारी इच्छा का कोई भी अश भौतिक नियमो क परिणाम क अतिरिक्त और कुछ नही है। उनका यह निष्कप उनक अनुभववाद के अध्ययन और जीव विकास विनान म आस्था के आवश्यक परिणाम थ। इस सिद्धा त क प्रतिकूल उनकी स्वय की प्रकृति न विद्राह किया था और वह एक ऐसी गफलत की स्थिति म आगए थ जिसस व आजीवन मुक्त न हा सके।[2]

इस तरह 1859 म रिनोविया द्वारा किया गया **एसेज इन जनरल क्रिटिसिज्म** म इच्छा शक्ति का समथन जेम्स क लिए मुक्ति का सदेश सिद्ध हुआ। इस स्वीकार करते हुए उन्होन मरणोपरा त प्रकाशित हुई अपनी पुस्तक **सम प्रोबलम्स आव फिलोसोफी** (1911) के आमुख म लिखा कि मैं जिस एकेश्वरवादी अध विश्वास म चला गया था उसस मुझ यहाँ मुक्ति मिली है। यद्यपि व रिनोविया की बाद की रचनाओ की तत्वमीमासक दृष्टि स सहमत नही थ फिर भी उनके प्रति जेम्स के आदर म कोई कमी नही आई। रिनोविया की इस बात से व आश्वस्त हो गए थ कि अनुभववाद और स्थितिवाद के बीच कोई मध्यस्थिति कायम भी की

---

[1] मिल के एक हावड मित्र चासी राइट द्वारा ब्रितानी अनुभववाद का एक कट्टर सस्करण प्रस्तुत गया था। द्रष्टव्य, डब्लू जेम्स कृत **चान्सा राइट** (कलक्टड ऐसज एण्ड रिव्यूज, 1920) जी० कनडी कृत द प्रेग्मटिक नेचुरलिज्म आव चासी राइट' (**कोलम्बिया स्टडीज इन द हिस्ट्री आव आइडियाज अक 3** 1935) और ई० एच० मडन द्वारा द चाल्स पर लिखित लेखा की एक शृखला जो विभिन्न पत्रिकाआ म प्रकाशित हुई है। इसकी सूची के लिए उनका आखिरी लेख देखें (आर० एम० 1956) राइट के निबधा का सग्रह **फिलोसोफिकल डिस्कशस** (1877) म देख।

[2] द्रष्टव्य उनक लेटस (सपादक हेनरी जम्स जूनियर 1920) और (1935 ई० आर० ऐम० एम०) मे पुन मुद्रित रेनोविया क साथ उनका पत्रव्यवहार। मिल अपनी **आटोबायोग्राफी**, मे कहते है कि उन्हे इसी प्रकार अनुभव हुआ था।

जा सकती है और जेम्स की विचारधारा का प्रमुख उद्देश्य यह मध्य स्थिति कायम करना ही था।[2]

1895 म प्रकाशित उनके निबध द विलटू बिलीव की यही पृष्ठभूमि है। ग्लो–सक्सन देशो म योरपीय दशन की विकासमान धाराओ के प्रति जो अज्ञान फला था वह सम्पूर्ण इस निबध की प्रतिक्रिया के रूप म देखा जा सकता था। जेम्स का मूल कथ्य सरल शब्दो मे यह है कि मनुष्य प्रमाण स बाहर जान स अपन को रोक नही सकता। उन्होने अपन लेख द सेटीमेंट आफ रेशनलिटी (1879) म यह लिखा था कि किसी भी मानसिक प्रक्रिया द्वारा शाब्दिक तौर पर किय गय प्रमाणो के आधार पर तथा सभावना का सतर्क अनुमान लगा कर किया गया वेहूदा अमूर्तीकरण और वह भी ऐसे वहद विभाजन द्वारा जिसम अनुमानकर्त्ता और अनुमान मात्र ही अवस्थित रहते है वास्तव म अनावश्यक है और असभव भी। दूसर शब्दो म यह क्लिफोर्ड का ही अनुकरण मात्र है।

यह तय करन म कि प्रयोगशालाओ म किए गए परीक्षणो अथवा एक रहस्यवादी की स्वीकारोक्तियो मे स किस बात को प्रमाण माना जाए, जेम्स क

---

[2] चरित्रकथा क लिए द्रष्टव्य सी० एच० प्रेटन कृत द श्री जेमसेज (1932) यह परी के प्रशसनीय एव विशाल ग्रथ थाट एड केरेक्टर आफ विलियम जेम्स क अतिरिक्त देखने योग्य है। उन लोगो के लिए जो केवल विलियम जेम्स क सबध म सूचना ही प्राप्त नही करना चाहते हैं, उनके द्वारा १६१३ म प्रकाशित कृतिया ए स्माल बाय एड अदर्स और 1914 म प्रकाशित नोटस आफ ए सन एण्ड ब्रदर। दर्खें, 1908 म प्रकाशित एसेस फिलासोफीकल एण्ड साइक्लोजिकल इन आनर आव विलियम जेम्स। 1942 म प्रकाशित इन कमेमोरेशन आव विलियम जेम्स, ई बाउट्राउ कृत विलियम जेम्स (1911) अग्रेजी अनुवाद 1912 टी फ्लोरनोय कृत द फिलोसफी आफ विलियम जेम्स (1911) अग्रेजी अनुवाद (1997) टी ब्लाक कृत विलियम जेम्स स थौरी डे ला कोनाइ सेंस एट ला वेरी टे (1933), जी सेन्टयाना कृत केरेक्टर एड ओपिनियन इन युनाइटेड स्टेटस (1820), जे० रायस कृत विलियम इन द जेम्स एण्ड अदर एसेज आन द फिलासफी आफ लाइफ (1912) जान डयूई कृत केरेक्टर एण्ड ईवन्टस (1992)। एफ० सी० एम० शिलर कृत विलियम जेम्स एड एम्पिरिसिज्म (जे० पी० 1928), आर० पी० परी कृत आन द स्प्रिट आफ विलियम जेम्स (1932) एव द फिलासफी आफ विलियम जेम्स (पी० आर० 1911)। परिशिष्ट के रूप म रीसेन्ट फिलासफीकल टेन्डसीज। विशेषत आस्था मूलक इच्छाशक्ति के लिए द्रष्टव्य डी० एम० मिलर कृत जेम्सेज डोक्ट्रिन आव द राइट टू बिलीव (पी० आर० 1972) एल० टी० हॉबहाउस कृत फेथ एण्ड द विल टू बिलीव (पी० ए० एस 1903)

अनुसार स्वय हम इस निष्कप पर माना पडता है कि हम पूणत प्रमाण के आधार पर चल नही सकते । और न प्रमाण क पक्ष म लिया गया यह एकल निणय पर्याप्त ही है । अपने आपको यह कहना असभव है कि मैं केवल प्रशिक्षित वनानिको क अनुभव और पयवक्षणो के अतिरिक्त किसी भी वस्तु को प्रमाण नही मानूँगा । और नब मे माग बढूगा । क्योकि हम चाहे अथवा न चाहे हमारे लिए निश्चय ही कुछ एसे मामले है जिनम हम मात्र प्रमाण स बाहर की अवस्था का स्वीकारना पडता है क्योकि वहा प्रमाण पर्याप्त नही होते ।

यहा आकर जेम्स नवकाडवादियो के अनीश्वरवाद का स्वीकार कर लेते हैं । तत्वदशन की मूलभूत चर्चा म तो प्रमाण का उसके अनुसार प्रश्न ही नही उठता । विशुद्ध धार्मिक अनुभव म निहित सत्य को बौद्धिक प्रक्रिया द्वारा समझाया जा सकने का प्रयास पूणत निराशाजनक है यह बात उन्होने 902 म प्रकाशित द वराइटीज आव रिलीजस एक्सपीरिएन्स नामक पुस्तक म लिखी है । लेकिन इमस यह निष्कप निकालना कि हम ईश्वर पर किसी प्रकार की आस्था को अपनी स्वीकृति नही देनी हैं, जेम्स के अनुसार इस प्रकार यवहार करने का निश्चय करना है मानो ईश्वर नामक कोई सत्ता अस्तित्व म नही है । लेकिन इस निष्कप का भी तो कोई प्रमाण नही है । इस प्रकार की अनिश्चयात्मक अवस्थाओ मे स ही एक का चुनाव करने का अवसर रहता है और वही हमारी आस्था का अधिकृत रूप है । हमारी भावनात्मक प्रकति न केवल निश्चयात्मक रूप स दो प्रस्तुत अवस्थाओ म स एक का चुनाव कर सकती है बलिक उस की प्रकति ही कुछ ऐसी है कि वह उनम से एक का तो वरण करेगी ही । और हमारा यह वरण कब और कसे साथक होगा इस बात का निणय बौद्धिक धरातल पर नही किया जा सकता क्योकि इस प्रकार की परिस्थिति मे यह कहना कि कोई निणय मत लो ’ और प्रश्न को खुला छोड दो, स्वय अपन आप म एक भावनात्मक निणय ही है ।

अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि क्या स्वतत्र इच्छाशक्ति अथवा नियति वाद के लिए प्रस्तुत बौद्धिक जिज्ञासाओं के समय कोई ऐसा सही विकल्प रहता है जिसे निणयात्मक कहा जा सके ? जेम्स क लिए इस प्रकार की कोई सृष्टि रहने योग्य नही है जिसम विविधता और नवीनता अपने मौलिक रूप म विद्यमान नहा । यही कारण था कि वे स्पेन्सर की उबा देने वाली स्थितिया और परमात्मवादियो की ठोस सृष्टि की धारणा क बजाय रूमानी स्वत स्फूतता को महत्व देते थे । वह इस बात को स्वीकार करने को तयार थे कि उनकी यक्तिगत अभिरुचियाँ प्रस्तुत स्थिति का कोई हल नही निकाल सकती । किन्तु फिर भी उनके लिए कम स कम इस बात का कोई अ तिम जवाब नही दिया गया है । रिनोविये ने भी उन्हे अनुभववाद और इच्छाशक्ति दोनो का एक साथ बचाव कर सकने की सम्भावना का सुझाव

दिया था। लेकिन जेम्स का विचार था कि रिनोवियर की बजाय सी० एस० पीयस द्वारा नवीनता के बचाव मे लिखे गये लेखो से कही अधिक तात्विक मान्यताएँ ग्रहण की जा सकती थी।

पीयस ने जेम्स से अपनी विचारधारा को श्रेष्ठ बताते हुए लिखा है कि वह इतना जीवन्त और ठोस है कि मैं जो सूक्ष्म हू और दुविधा मे पड़ा हुआ हू उसके समक्ष केवल विषयो की एक तालिका मात्र रह जाता हूँ।[1] अन्य स्थानो पर उनके धैर्य के उपकरण टूटते हुए से नजर आते हैं जब वे जेम्स के द्वारा प्रयुक्त अटपटी प्रणाली पर विचार करते हैं। परेशानी के इन क्षणो मे उस समय और भी असाधारण उत्तेजना आ जाती है जब जेम्स चुपचाप अपने आपको पीयस की शिष्य परम्परा मे सम्मिलित होता हुआ देखते है। इसके बावजूद भी जो तथ्य शेष रह जाता है वह यह है कि पीयस की विचारधारा मे कुछ ऐसे अंश भी हैं जिनकी यदि जेम्स की भी मौलिक व्याख्या की जाय तो बहुत अच्छे ढग से वे जेम्स के उद्देश्यो की पूर्ति करते हुए ही लगते हैं।

पीयस का भाग्यवाद (टाइकिज्म) यहाँ चर्चा का विषय बन सकता है। जेम्स की ही भाँति पीयस ने प्राकृतिक नियमो के यन्त्रीकृत विचार का खण्डन किया है— इस विचारधारा के अनुसार कोई भी नियम एक क्रूर तथ्य है। यह पूछना कि एक नियम दूसरे के मुकाबले मे क्यो किसी परिस्थिति मे अपेक्षाकृत अधिक लागू होता है एक ऐसे प्रकार का प्रश्न खड़ा करना है जिसका इस प्रकार की प्रणाली मे कोई भी उत्तर सम्भव नही हैं। इसलिए पीयस के करीब कोई नियम एक ऐसा

---

[1] पीयस के बहुविध लेख भाषण और दोषपूर्ण प्रारम्भ सभी 1939 मे हार्टशोन और वीस द्वारा सम्पादित कलक्टेड पेपर्स में संग्रहीत हैं। एम० आर० कोहिन द्वारा 1932 मे प्रकाशित चांस लव एण्ड लौजिक मे इस सम्बन्ध मे किया गया चयन अच्छा है। जे० बूचलर कृत फिलासफी आफ पियर्स मे भी पीयस के सम्बन्ध मे काफी प्रकाश डाला गया है। द्रष्टव्य स्मृति अंक (जे० पी० 1916) जे० बूलचर कृत चार्लस पीयर्सस एम्पीरिसिज्म (1939) टी० ए० गाउज कृत द थोट आफ सी० एस० पीयस (1950) सम्पादक पी० पी० वानर एण्ड एफ० एच० यग, स्टडीज इन द फिलासफी आफ सी० एस० पीयस (1951), डब्लू बी० गली कृत पीयस एण्ड प्रैग्मेटिज्म (1951) ई० नजल कृत चार्ल्स सी० एस पीयस, पायनीयर आव मोडन एम्पीरिसिज्म (1949) (पी० एस० सी), आर० बी० ब्रेथवेट कृत माइन्ड 1934 के अंक मे कलक्टेड पेपर्स का रिव्यू, जे० एच० मुरहैड कृत द प्लेटोनिक ट्रेडीशन [1931]। पीयस के द्वारा जेम्स को लिखे गये पत्रों के लिए अन्ने परी कृत थॉट एण्ड करेक्टर।

अभ्यास है जो भौतिक पदार्थों द्वारा शनै शनै ग्रहण कर लिया जाता है। और कोई भी स्थिति इन नियमों के आधार पर पूर्णत वर्णित की जा सके ऐसी नही है। किसी भी समय एक संयोग अचानक शेष रह सकता है और इस प्रकार के संयोग उस समय तक शेष ही रहेंगे जब तक कि समस्त सृष्टि एक पूर्ण, विवेकपूर्ण और एक ऐसी नियोजित व्यवस्था में नहीं बदल जाती जिसमें सुदूरतम भविष्य की अनन्त कल्पना को मस्तिष्क में पारदर्शी अवस्था तक स्पष्ट कर धारण न कर लिया हो।

भाग्यवाद (टाइकिज्म) की तीन अवस्थाएं हैं–(1) तत्वमीमांसा जिसके अनुसार यह संसार स्पेन्सर की भाषा में एक निर्वैयक्तिक ऊहापोह की भावना से एक विवेकशील और व्यवस्थित प्रणाली की ओर विकसित हो रहा है (2) विज्ञान दर्शन जिसके अनुसार प्राकृतिक नियम अपेक्षित नियमितताएं हैं और उनके अतिरिक्त कुछ नही है। (3) व्याख्यात्मक सिद्धान्त जिसके अनुसार उन सब वस्तुओं के लिए जिनमें विवेक की आवश्यकता रहती है नियम ही परम सत्ता है। यह उस सामान्य धारणा के विपरीत है जिसमें व्याख्या को किसी नियम से जुड़ा हुआ ही माना गया है। जेम्स के दर्शन में दूसरी ओर भाग्यवाद एक ऐसी युक्ति का काम करता है जिसमें बुद्धि की मांग को महत्व नही दिया गया है। और अनियमितताओं को एक अवर्णनीय क्रूर तथ्यों के रूप में प्रस्तुत किया गया है। यह एक ऐसा प्रस्ताव था जिसे स्वीकार करना पीयर्स के लिए उतना ही कष्टप्रद था जितना यह सिद्धान्त कि नियमितताएं केवल घटित हो जाती हैं। वास्तव में जेम्स यह मानने लगे थे कि पहले उन्होंने तारतम्य की आवश्यकता से अधिक महत्व दे दिया था। कम से कम उस उस अवस्था तक तो पुनः परिभाषित किया जाना आवश्यक था जिस समय तक वह परिपूर्ण न हो। दर असल प्रकृति में कोई वास्तविक उछाल नही है। एक बार फिर वे पीयर्स में इस मामले में अपील करते हैं और विशेष कर उनके पूर्णांशवाद (साइनेसिज्म) के सम्बन्ध में उन्होंने 1903 में बाल्डविन द्वारा तैयार की गई डिक्शनरी आफ फिलासफी एण्ड साइकालोजी में लिखा कि वह एक ऐसी दार्शनिक वृत्ति है जो निरन्तरता के सिद्धान्त को प्रमुख स्थान देती है। और विशेषकर वास्तविक निरन्तरता के प्रमेय के रूप में होने की आवश्यकता पर भी बल देती है। पीयर्स ने रेखांकित शब्दों पर विशेष बल दिया है। वह इस प्रकार की मान्यता को हटा देना चाहते हैं कि कहीं पर भी पूर्ण अकथनीयता विद्यमान रह सकती है। प्रत्येक वैज्ञानिक कथन उनके अनुसार एक प्रकार की निरन्तरता को ही व्यक्त करता है। यह एक ऐसी अवस्था की ओर संकेत करता है जिसमें और विशेषताएं खोजी जा सकती हैं और कुछ ऐसे मामले अभी भी शेष रह गये हैं जिनका स्पष्टीकरण किया जाना बाकी है। उदाहरण के लिए पूर्ण निरन्तरता-रहित परमाणुओं के अस्तित्व के लिए प्रमेय बनना विज्ञान की आत्मा के विरुद्ध एक पाप

है क्योकि परमाणुओ को यदि निरन्तरण हीन मान लिया जाय तो फिर व याग की वज्ञानिक जाच पडताल क विषय नही बन सकते ।

जेम्स का भाग्यवाद इससे बिल्कुल भिन्न था । उन्होने अपने निबन्ध **आन द नचर आव रियलिटी** एण्ड चजिग जिसे उन्होने ए प्लूरलिस्टिक यूनिवस नामक 1909 म प्रकाशित ग्रन्थ के परिशिष्ट म दिया लिखा था कि नवीनताओ को स्वीकार करने मे जो सामान्य आपत्ति है वह यह कि एक साथ शून्य म उछाल लेने क कारण य नवीनतावादी ससार की आनिक निरन्तरता को छिन्नविच्छिन्न न कर दते हैं । पीयस इस आपत्ति का निवारण भाग्यवाद और पूर्णाशवाद अथवा निरन्तरता के सिद्धान्त को एक साथ मिलाकर कर दत हैं । उनका कथन है कि नवीनता जिसे हम अनुभव द्वारा प्राप्त करते हैं, उछल कूद से सिद्ध नही की जा सकती । यह तो हमारी अब तक की अनभिज्ञता म से ही निकलकर आ जाती है । इस प्रकार जेम्स का पूर्णाशवाद यह आशय व्यक्त करता है कि परिवतन निरन्तर विद्यमान है नवीनताए पुरानी स्थितियो मे स ही विकसित होती है उनम वैसी ही विद्यमान नही होती । इस बात को अनावादियो (रेशनलिस्टस) ने गलत मान लिया था ।

एक परम्परा कायम करने की चाह के कारण जेम्स ने पीयस के पूर्णाशवाद को हेनरी बगसा व डिवनीग रील के सिद्धान्त स मिलाया था उससे पीयस सतुष्ट नही हुए थे । 1909 म उन्होने जेम्स को लिखा था कि दशन के क्षेत्र म से जो एक मात्र काय करने का प्रयास कर रहा हू वह यह है कि मैं बिखरे हुए विचारो को अधिक यथातथ्य विश्लेषण कर सकू । बगसा के साथ मुझ एक श्रेणी म रखना मेरी भावनाओ को इसलिए सतुष्ट नही कर सकता कि वह सभी प्रकार की विशेषताओ को एक साथ मिला दने का सुन्दरतम प्रयास करना चाहते थे । पीयस के लिए या तो दशन एक विज्ञान था अथवा कुछ भी नही और उनकी यही बात उन्ह बगसा और जेम्स दोनो से एक साथ अलग करती है । इच्छाशक्ति म आस्था के सिद्धान्त ने उन्ह धक्का पहुचाया था और उनके मतानुसार जेम्स-बगसा की पद्धति का पूर्णाशवाद दशन के लिए आत्महनन करना था । (जेम्स)[1] और बगसा दोनो ही एक आश्चयजनक अ श तक विज्ञान की प्रकृति और सीमाओ के सम्बन्ध म एक ही प्रकार क निष्कष पर पहुचे थे ।

---

[1] एच डब्लू कार कृत हेनरी बगसा द फिलासफी आव चेन्ज (1911) आर० टी फ्लुएलिंग कृत बगसा एण्ड पसनल रीयलिज्म (1020), जे० ए० गन कृत बगसा एण्ड हिज फिलासफी (1920), ए० डी० लिन्डस कृत द फिलासफी आव बगसा (1911) जे० मकेस्टीवट कृत ए क्रीटीकल एक्सपोजीशन आफ बगसा फिलासफी (1911), एच० एम० कैलन कृत विलियम जेम्स एण्ड हेनरी बगसा

जेम्स के लिए बगसाँ का यह महत्व था कि उन्होने बुद्धिवाद क विरुद्ध सघप करने मे उन्ह बल प्रदान किया था। जेम्स हमशा यह विचार करते रहे और उन्होंने उस अपनी पुस्तक ए प्लूरलिस्टिक युनिवस म भी बताया है कि बौद्धिक कठिनाइया का उत्तर भी बौद्धिक होना चाहिए। उन्होने बगसाँ क इन विचारो का उत्तर देने क लिए कि हमारे आस पास बिखर हुए जगत की विविधता, बहुलता और नवीनता का मात्र माया के अतिरिक्त दिखाया जा सकना असमव सा है एक नयी तक प्रणाली की खाज की थी। बगसाँ ने उन्ह इस बात पर आश्वस्त कर दिया था कि उनकी यह खोज व्यथ थी जबकि सचाई तो यह है कि तकशास्त्र का सामान्य धारणाओ पर ही काम चलता है।

ए प्लूरलिस्टिक यूनिवस नामक अपनी पुस्तक मे जेम्स सदा इस धारणा स आक्रान्त रहे है कि बुद्धिजीवियो की कठिनाइयो का उत्तर भी बुद्धिसम्मत होना आवश्यक है। अपने चारो ओर जगत म व्याप्त विविधता, बहुलता और नवीनता क लिखे जिन्ह ब्रेडले माया स अधिक कुछ नही मानते थ जेम्स ने एक नई तक प्रणाली की खोज करके ब्रेडले की धारणा की असमा यता की ओर सकेत देने की कोशिश की है। बगसाँ न उन्हे यह विश्वास दिला दिया था कि उनकी खाज निरथक है–क्योकि वास्तविकता ता यह है कि तकशास्त्र जिसका सम्बन्ध एक सामान्य विचार की खोज करना है जीवन का सही निरूपण करने के लिए उपयुक्त माध्यम नही है और न ही वह सत्य को अपने सम्पूण रूप मे देख पाता है। जब विचारवाद जीवन को स्वय एक विचारवादी औचित्य देने का प्रयत्न करता है ता वह ता एक ऐसी चुनौती की भाति है जो अपने ही काय म न्यस्त किसी न्यक्ति को विदेशी भाषा म दी गई है।

बगसो का दशन–जिसका समारम उन्होन अपनी पुस्तक टाइम एण्ड फ्री विल (1910) म किया था समय के विश्लेषण से प्रारम होता है। व समय को दा तरह से बाटते हैं–(1) पहला जसा हम उस विषय म सोचते है तथा (2) समय

(1914) बगसा फासीसी अध्यात्मवादी दाशनिको के मत के मानने वाल है और अपना प्रभाव मैनेडीबिरा से ग्रहण करते हैं। द्रष्टव्य, एच० गाहिय कृत मैनेडी, बिरौ एट बगसा (लेस एटयूडिस बगसोनिएनस भ क एक 1948) और उन्नीसवी शताब्दी के उत्तराध मे जिसका प्रतिनिधित्व एफ रेवसन जे लसेलियर एव ई बाउट्राउ जसे दाशनिको द्वारा किया गया जिन्होने नवकाटवाद के साथ फासीसी परम्परा जोडी थी। द्रष्टव्य ए० लवजाय द्वारा माइण्ड 1613 मे लिखित सम एन्टीसीडन्टस आव द फिलासफी आव बगसा नामक लख। रवीसन के लिय दख, बगसा लाइफ एण्ड वकस आव रेवोसन (1904), क्रिएटिव माइन्ड (1946) म पुन प्रकाशित। लेशलियर के लिय देखें ए राबिन्सन द्वारा लिखित शोकलख (माइन्ड

जैसा हम उसे अनुभव करते हैं। वैचारिक दृष्टि से समय वरिमा (स्पेस) में मिला हुआ है-और उसे एक ऐसी सरल रेखा की भाँति वर्णित किया गया है–जिसमें क्षण बिन्दुओं के रूप में उसकी पूर्ति कर रहे हैं जबकि अनुभूत समय अवधि को व्यक्त करता है-और वह क्षणों का अनुसरण नहीं है। वह एक अविभक्त निरन्तरता में प्रवाहित रहता है। प्रवाह हमारे सम्पूर्ण अनुभवों की ही मूलभूत प्रकृति है। हमारे अनुभव चेतनावस्था के स्पष्टतः रेखांकित आकलन नहीं हैं। हमारे अनुभव की अवस्थाएँ एक दूसरे में पिघलकर एक हो जाती हैं और एक सावयव पूर्णांक (आर्गेनिक होल) का निर्माण करती हैं।

हम क्यों सामान्य तौर पर इससे उलटा सोचते हैं हम क्यों वस्तुओं को विभिन्न और विशिष्ट रूप में देखते हैं-समय को क्षणों में रचित एवं वरिमा को बिन्दुओं से निर्मित देखते हैं यह सब बर्गसाँ के अनुसार इसलिए है कि हमारा मन अपनी व्यावहारिक सुविधा के लिए इस निरन्तर प्रवाहित समय को इस वास्तविक होते रहने की प्रक्रिया को खण्ड २ देख लेना चाहता है और उन्हें स्पष्टतः परिमापणीय, सरलता से ग्राह्य एवं विचारसत्ताओं में निरूपित कर लेना चाहता है।

बर्गसाँ का मत है कि इस प्रकार के विभागीकरण से उस समय तक कोई हानि नहीं है जब तक कि उपर्युक्त विचार सृष्टि को स्वयं सत्य ही न मान लिया जाय। क्योंकि ऐसा भ्रम सरलता से उत्पन्न हो सकता है, हमारी भाषा अपनी पूर्व परिमापित सामान्यों के शब्दों का प्रयोग करती है। यहीं आकर हम शब्दों और अनुभवों को एक करके उनके द्वारा अनुभवों के संसार को प्रतीक रूप में व्यक्त होता हुआ स्वीकार कर लेते हैं।

1919), टी० ग्रीनवुड द लॉजिक आव ज्यूल्स लशलियर (पी० ए० एस० 1934) ई० जी० बलार्ड ज्यूल्स लशलियर्स आइडियलिज्म (आर० एम० 1964)। बाउट्राउ की बहुत सी कृतियाँ अंग्रेजी में अनूदित हो चुकी हैं। इनमें सर्वोत्तम है द कन्टिंजेंसी आव द लॉज आव नेचर (1874 अंग्रेजी अनु० 1916)। 'स्पष्ट एवं सुभिन्न सन्निकर्षों' की कार्टेजियन परंपरा के, जिसे बर्गसाँ ने खंडित करना चाहा था समर्थकों की कमी नहीं थी। देखिये जे० बेंडा बेल्फगोर (1918 अंग्रेजी अनु० 1929) तथा द ट्रेजन आव द इंटेलेक्चुअल्स (1928)। फ्रांसीसी साहित्य पर विशेष कर प्रूस्ट पर बर्गसाँ का काफी प्रभाव रहा है। उदाहरणार्थ देखें, एफ० देलात्रे बर्गसाँ एत प्रूस्त एकाडेम ऐन डिमोने सेज ते एत्यूदिस बर्गसानियनिस 1948)। यह अवश्य ही स्मरणीय है कि गाइड ने अपने जर्नल्स (भाग 4) में यह टिप्पणी की थी कि भावी इतिहासकार बर्गसाँ के प्रभाव को बढ़ा कर रख सकते हैं केवल इसलिए कि उन्होंने युग–चेतना का बहुत बड़ी मात्रा में प्रतिनिधित्व किया है।

यहाँ तक तो बर्गसाँ का मत असाधारण तौर पर जेम्स के द्वारा निर्धारित अनुभव के वृत्तान्त से मिलता है। जेम्स ने 1890 में प्रकाशित अपनी पुस्तक **प्रिंसिपल्स ऑव साइकोलोजी** में अनुभव का आत्मचेतन–प्रवाह की संज्ञा देकर कुछ इसी प्रकार की धारणा कायम की है। यहाँ जेम्स ने इस बात की ओर भी ध्यान आकर्षित करने का प्रयास किया है कि परम्परागत अनुभववाद का मूलभूत दोष इस बात में था कि उन्होंने अनुभव का पृथक् संवेदनाओं[1] और प्रभावों के रूप में ही परिभाषित किया है। चेतना कभी भी खण्ड खण्ड प्रकट होती हुई नहीं लगती। यह जुड़ी हुई नहीं है–यह तो सतत प्रवहमान है। प्रारंभ से ही हमारे अनुभव–जेम्स के अनुसार–सम्बन्धमूलक होने लग जाते हैं। और यह ऐसा तथ्य है जो हमारे ध्यान से इसलिए उतर जाता है कि हमारी व्यावहारिक सुविधा के लिए हमारी वाणी केवल अपने अनुभव के साधक अंशों को ही ग्रहण करती है और प्रवहमान अवस्था का उसके लिए अस्वीकार करती चलती है—यही बात बर्गसों ने भी कहा है। लेकिन बर्गसों तादात्म्य के तर्क–सिद्धान्त को बड़ी आसानी से खण्डित करने में सफल हुए हैं जो उनके ही अनुसार जेम्स द्वारा प्रयास करने पर भी संभव न हो सका था।

---

[1] 1880 में एरिस्टोटेलियन सोसाइटी की स्थापना करने वाले 19 वीं शती के एक अद्वितीय व्यक्ति शेडवर्थ होगसन की विचारधारा के जेम्स काफी ऋणी हैं। प्रारंभ में रुचिवान नौसिखियों के एक दल ने जिसका नाम एरिस्टोटेलियन सोसाइटी रखा गया था लन्दन दर्शन का आधार बनाया और ऑक्सफोर्ड में प्रत्ययवाद के विरुद्ध अनुभववाद के नजदीक दर्शन को ले जाने का श्रेय प्राप्त किया। ब्रितानी दार्शनिकों के संस्थान के रूप में यह सर्वाधिक ज्ञात संस्थान है और एरिस्टोटेलियन सोसाइटी के प्रोसीडिंग्स अपने आप में ब्रितानी दर्शन के क्रमबद्ध इतिहास हो गए हैं। होगसन, एक सीमा तक उन सभी वादों के पक्षपाती रहे जैसे भौतिकवाद, नियतिवाद और अफलातूनवाद–जिन्हें जेम्स द्वारा पर्याप्त घृणा मिली थी लेकिन *1878 में प्रकाशित **द फिलोसोफी ऑव रिफ्लेक्शन** एवं 1898 में* प्रकाशित **द मेटाफिजिक्स ऑव एक्सपीरिएन्स** में किए गए ज्ञानमीमांसा संबंधी विश्लेषण पर जेम्स की बहुत सी धारणाओं का असर दिखाई देता है। यह बात जेम्स ने स्वयं मानी है। द्रष्टव्य एच० डब्लू० कार द्वारा माइन्ड 1912 में तथा **पी० ए० एस०** 1911 में प्रकाशित मरणोपरान्त अभिनन्दन (ओबीचुएरी) जी० एफ० स्टाउट की समालोचनात्मक कृति द **फिलोसोफी** ऑफ मिस्टर **शैडवर्थ होगसन** (पी० ए० एस 1892) एवं पेरी कृत **थोट ऐण्ड केरेक्टर ऑव विलियम जेम्स**।

ब्रेडले की विचारधारा का अध्ययन नियतिवाद पर की गई उनकी समालोचना के जरिए किया जा सकता है।[1]

नियतिवादियों के अनुसार एक ही प्रकार के उद्देश्य की बात एक ही प्रकार के व्यक्तियों पर यदि लागू हो तो उनकी परिणति भी एक ही प्रकार से की होगी। यह रूढ़ विचार निरर्थक है, क्योंकि बर्गसाँ के अनुसार उद्देश्य व्यक्ति और प्रभाव कभी एक से नहीं होते। केवल विचार-सृष्टियों में इस प्रकार की एक जैसी परिस्थितियों की कल्पना की जा सकती है जबकि वास्तव में सारे अनुभव प्रवहमान हैं।

तादात्म्य के तर्क से स्वतन्त्रता पर प्रहार करना और हर जगह एकरूपता की बात करना जीवन के प्रतिरोध में हथियार लेकर खड़ा हो जाना है। जबकि वास्तव में इस सिद्धान्त को हम मात्र एक मानवी अनुभवों की व्याख्या कर सकने वाला सुविधाजनक उपकरण ही मानना चाहिए। जीवन पहले है और तर्क उसके किसी भी एक संस्करण से ज़्यादा मूल्यवान नहीं है।

बर्गसाँ की धारणा है कि यदि हम वास्तव में 'जीवन' को समझना चाहें तो हम तर्कशास्त्र द्वारा किए गए स्पष्ट विभाजनों का विस्तृत करना होगा। हम जीवन के उतार चढ़ाव को मूल साक्ष्य से परखना होगा। और हम उस बुद्धि के द्वारा कट्टर व संकीर्ण विभागों में बटकर व्यभिचरित होने से बचाना होगा। जेम्स ने उनकी बातों की व्याख्या इन शब्दों में की," बर्गसाँ कहते हैं यदि आप सत्य को जानना चाहते हैं तो वह इस विश्वास के कारण ही सम्भव है कि केवल परिवर्तन ही श्रेष्ठ हैं यद्यपि अफलातूनवाद अपरिवर्तनीयता को ही श्रेष्ठ मानता है। अपना ध्यान जरा देर के लिए संवेदन की ओर ले जाए वह संवेदन जो दैनिक क्रिया है और जिसकी प्रनावाद ने काफी बुराई की है।

प्रगतिशील अनुभववादी जिनकी ओर अन्तत जेम्स प्रवृत्त हो गए थे बर्गसाँ के इस सुझाव पर गंभीरता से मनन करने का प्रयास करते हैं कि जीवन के प्रवाह में गोता लगा जाओ। अपनी पुस्तक प्रिंसिपल्स में उन्होंने यह अनुभव किया है कि वे पर्याप्त मात्रा में वहाँ पर प्रगतिशील नहीं हो सकते हैं क्योंकि उस समय तक भी वे वस्तु और विचार के द्वैत के बीच संघर्ष कर रहे थे। उन्होंने यह स्थापित करने का प्रयत्न किया है कि विचार निरंतर क्रियमाण है।

इसके बावजूद भी यह संभव था कि वस्तुओं को जो स्वयं तथ्य हो यों प्रवाहहीन और एक दूसरे से अविच्छिन्न माना जाय। यह एक ऐसी स्थिति थी

---

[1] संदर्भ डी बलसिली कृत प्रोफेसर बर्गसाँ ऑन टाइम एण्ड फ्री विल (माइण्ड 1911)

जिसे कोई भी सामान्य बौद्धिक भी सहज रूप से स्वीकार कर सकता था। किन्तु जैसे ही जेम्स ने प्रगतिशील अनुभववाद को स्वीकार किया वैसे ही विचार और वस्तु का भेद उनके दिमाग से गायब हो गया। अब अनुभव का केवल एक ही जगत था—विचार और वस्तुएं केवल मात्र विभिन्न मन स्थितियों के अतिरिक्त और कुछ नहीं थे। सामान्य तौर पर अब यह विश्वास किया जाने लगा था कि ज्ञान के क्षेत्र में विचारक और विचारणीय अवस्था में भेद किया जाना सम्भव है। इस बात का जेम्स ने खण्डन किया। मरणोपरान्त 1912 में प्रकाशित अपने एक निबंध ऐसे इन रेडिकल एम्पिरिसिज्म में उन्होंने लिखा मेरी मान्यता तो यह है कि यदि हम इस धारणा को स्वीकार करें कि संसार में केवल मात्र मूलभूत पदार्थ एक ही है जिससे सभी चीजें बनी हैं और हम उस पदार्थ को विशुद्ध अनुभव ही कहें तो ज्ञान सरलता से एक विशेष प्रकार का अपने अनुभव के उपकरणों के बीच विद्यमान पारस्परिक सम्बन्ध के जरिये सरलता से समझाया जा सकता है। हमको न तो वस्तुओं और न चेतना के विषय में ही यह कल्पना करने की आवश्यकता है कि वे ज्ञान का ब्यौरा देने के लिए तत्वों के रूप में प्रस्तुत होती है।[1]

यदि हम केवल मस्तिष्क में विद्यमान कुछ अनुभवों को अलग करें और शेष को सत्य या वास्तविक मानें तो यह जेम्स के मतानुसार इसलिए है क्योंकि वे विभिन्न प्रकार के पारस्परिक सम्बन्धों का हमारे अन्य अनुभवों से जोड़ते हैं। वे लिखते कि मानसिक अग्नि वास्तविक लकड़ियों को जला नहीं सकती। मानसिक चाकू तीखे तो हो सकते हैं किन्तु वे वास्तविक लकड़ी को नहीं काटेंगे।

वास्तविक पदार्थों में इसके विपरीत सदैव परिणाम भी होते हैं और इस प्रकार वास्तविक अनुभव केवल मानसिक अनुभवों से अलग हो जाते हैं। वस्तुएं हमारे उनके सम्बन्ध विचारों से भिन्न हो जाती हैं जो चाहे सत्य हों अथवा काल्पनिक और इस तरह हमारे अनुभवों के सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड[2] के एक स्थायी [illegible]ग बनकर वे एक

---

[1] यह सिद्धान्त सबसे पहले स्पष्टतः जेम्स ने अपने निबन्ध डज कांशसनेस एक्जिस्ट में प्रतिपादित किया था (जे० पी० 1904) इस सम्बन्ध के पहले निबन्ध ऐसेज इन रेडिकल एम्पिरिसिज्म के रूप में पुनर्मुद्रित हुए। द्रष्टव्य जोन डेवी कृत द वनिशिंग सबजेक्ट इन द साइकोलोजी आव जेम्स (जे० पी० 1940) प्राबलम्स आव मन 1946 में पुनर्मुद्रित।

[2] इसी प्रकार का दृष्टिकोण, यदि मिल के संघटनात्मकवाद की बात न भी करें तो, ई० मच द्वारा ऐनालिसिस आव सेंसेशन में (1886) व्यक्त किया गया है

भौतिक जगत के नाम से सिद्धि पाता है। इस प्रकार द्वैत के चगुल से मुक्त होकर यह धारणा बनाने योग्य स्थिति हुई कि जो कुछ भी अनुभव के लिए सत्य है वह वास्तविकता के लिए भी सच होगा। और इस तरह जेम्स बहुलवाद की अधिक विश्वास के साथ रक्षा कर सकते हैं। और इसके साथ ही ब्रेडले के परमात्म के विरुद्ध नवीनता की सम्भावना को प्रगट कर सके। उनके अनुसार परमात्म को ध्वस्त करना ही था क्योंकि उससे मानवी कर्म का अनादर होता था और सृष्टि का सुन्दरतर बनाने का अवसर उस म नही रहता था। इसस बुराई की एक दुगम समस्या निर्मित हो जाती है क्योंकि बुराई की कल्पना उसी समय की जा सकती है जब एक सगुण ईश्वर की स्थापना हो और उसे एक ऐसी शिव शक्ति के रूप मे स्वीकार किया जाय जो प्रतिवादी बहुलता के विरुद्ध कार्यशील रह। इसके अतिरिक्त इसके द्वारा उस वास्तविक जगत का भी खण्डन हो जाता है जिसे हम वस्तुत अनुभव करते है। भौतिकवाद से किसी भी प्रकार कम इसके द्वारा निर्मित जड जगत सृष्टि नही है, जिसम न तो निरन्तरता है न नवीनता और न विविधता। इस प्रकार जेम्स द्वारा प्रतिपादित बहुलवाद जो उनके मानवी आस्था के अधिकार के बचाव के सिद्धान्त की तरह है इस धारणा के प्रति उनके विरोध मे नि सृत लगता है जिसम मनुष्य को विवश होकर कार्य करता हुआ, विश्वास करता हुआ और वस्तुओं की व्यवस्था मे स एक प्रस्तुत योजना का चुनता हुआ सा बताया गया है। जेम्स के अनुसार मूल

आर० एवेनेरियस कृत क्रिटीक आव प्योर एक्स्पीरियेन्स (1888–90) पीयसन कृत द ग्रामर आव साइ स (1892)। मन और पदार्थ दोनो ही एक तत्व के बने हुए मान गय है यो अपने आप म न ता मानसिक है न भौतिक। यही उनके सिद्धान्त का सारतत्व है। य सभी लाग एक ऐसा मत तैयार करने के प्रयत्न म है जो द्वैत की कठिनाइयों का बिना प्रत्ययवादी या भौतिकवादी हुए हटा सकें। किन्तु य सारे के सारे लेखक जेम्स के विपरीत वस्तुस्थितिवादी भी थे। एन० के० स्मिथ को 1908 म लिखे पत्र म जेम्स ने एवेनेरियस की आत्मिक रूक्षता और कृत्रिम शब्दावली के विषय मे लिखा है। जेम्स एक प्रकार के सभी का सार निकालने वाली ज्यूसियर) विचारधारा क लिए प्रयत्न शील थ। इसके विपरीत और वह मच के बडे प्रशसक है। उनस उन्होंने बहुत कुछ सीखा भी था। द्रष्टव्य एक कार्स्टेन्जन द्वारा लिखित रिचार्ड एवेनेरियस (माइण्ड 1897) एन के स्मिथ द्वारा लिखित एवनेरियस फिलासफी आव प्योर एक्सपीरियेंस (माइण्ड 1906) डब्लू० टी० बुश द्वारा लिखित एवेनेरियस एण्ड द स्टैंडपाइंट आव प्योर एक्सपीरियेंस (आरकाइव्ज आव फिलासफी एण्ड साइंटीफिक मथड्स (प्र क दो 1905), सी० बी० वीयनबर्गकृत मचेस ऐम्पीरिकोक्रिटिसिज्म इन फिजिक्स साइंस (1935), पी० फ्रैंक कृत माडर्न साइंस ऐण्ड इटस फिलासफी (1949)

चर्चा का विषय यह है कि क्या सापेक्षता समझे जाने योग्य है ? जम्स[2] के अनुसार ब्रेडले ने भी बहुलतावाद का इस आधार पर खण्डन किया था कि उसमे बाहरी सापेक्षताओं की सत्ता को स्वीकृति दी गई थी और यह भी माना था कि एक ही वस्तु विभिन्न प्रकार के सम्बन्धों को बिना अपना स्वरूप खोये कायम रख सकती है और यह ब्रेडल के अनुसार हमे विरोधाभास की ओर ले जाता है क्योंकि यदि एक वस्तु अ ब से सम्बन्धित है तो यह भिन्न होनी चाहिए उस मान ब से सम्बधित माना गया है। किसी भी ऐसे अ को जो वास्तव में स से जुडा हुआ हो तो वह वही अ नही हो सकता जो कि ब से भी जुडा हुआ है और स से भी।

बुद्धिवादी तर्कशास्त्र हमे जिस प्रकार की बेहूदगियो की ओर ले जाता है उसका जेम्स की दृष्टि में इससे अच्छा उदाहरण और कही नही मिल सकता है। जेम्स स्वय मानते है कि निश्चय ही जो अ केवल ब में जुडा है वह उस अ से भिन्न है जो स से जुडा है, किन्तु ब्रेडल के इस निष्कर्ष को वे स्वीकृति नही देते कि इस स्थिति मे अ अपने दोनो रूपो मे भिन्न होना चाहिए। विचार अपनी प्रकृति से ही अलग और प्रवाहहीन होते है। यदि किसी भी तरह हम अनुभव की ओर हमारा अपना ध्यान ले जाये तो हमे तत्काल ही मालुम होगा कि वह एक साथ प्रवहमान भी है और प्रवाहहीन भी। और अपने अन्दर कुछ ऐसी स्थितियो लिये हुए हैं जो बाह्य तौर पर उससे सम्बन्धित है अथवा सम्पृक्त है एक दूसरे मे। जेम्स का कथन है अब मुझे यह तर्क आवश्यक रूप से देना पडेगा कि जिस कागज पर मैं लिख रहा हूँ वह अपने दो सतहो के कारण मेरे पेन के नीचे भी है और उस टेबिल के ऊपर भी है जिस पर मैं लिख रहा हूँ। इससे यह माग करना कि यह एक के बजाय दो कागज हैं बिल्कुल निरर्थक तर्क है। इसके बावजूद भी मुझे परमात्मवादियो की ईमानदारी पर सदेह है। यह संसार जैसा कि जेम्स उसे देखते है एक ऐसा आकलन मात्र है जिसके कुछ हिस्से तो जुडे हुए है और कुछ विभक्त। यह एक सिलसिलेवार एकता मे निबद्ध है। बजाय इसके कि वह कोई एक ही तरह की विशिष्ट सत्ता हो जिसका प्राय एकस्वरवादी स्थापित करते हैं। यदि प्रत्ययवादी इस अन्य प्रकार से देखते है तो यह इसलिए है कि वे अपने जटिल बुद्धिवाद के कारण अन्ध हो गये है जो उन्हें यह निष्कर्ष निकालने की ओर प्रेरित करता है कि जुडाव और बिखराव दो भिन्न परिकल्पनायें है। क्योंकि एक ही प्रकार के अनुभव का जुडा हुआ और बिखरा हुआ होना

---

[2] सदर्भ ब्रेडल कृत ऐसेज ऑन ट्रथ एण्ड रियलिटी परिशिष्ट, तृतीय अध्याय-5 आन प्रोफेसर जेम्सस रेडीकल एम्पीरिसिज्म)। ब्रेडले इस बात पर आपत्ति करते है कि उनके लिए वस्तुए भी उतनी ही असत्य हैं जितने सम्बन्ध। जेम्स की विचार धारा को पूर्णत 1905 में प्रकाशित द थिंग एण्ड इट्स रिलेशन्स में देखा जा सकता है। एसेज इन रेडीकल ऐम्पीरिसिज्म नाम से पुनर्मुद्रित।

असम्भव है। एक बार जब हम इस प्रकार के बुद्धिवादी तर्क को भली प्रकार देख लेते हैं तब हमारे लिए यह स्पष्ट हो जायगा कि बहुलवादियों की सिलसिलेवार एकता वास्तव में वही एकता है जिसे दैनिक अनुभव हमारे समक्ष प्रकट करता है। तो भी जेम्स यह कहना नहीं चाहते कि सम्पूर्ण बौद्धिक प्रक्रिया छलपूर्ण है। परिकल्पनाएं उनके अनुसार दुर्व्यवहृत की जा सकती हैं। लेकिन साथ ही उनका सही उपयोग भी हो सकता है। बुद्धि कभी कभी धोखा देती है तो कभी कभी निर्देशित भी करती है। तब फिर कल्पनाओं का सही उपयोग क्या है? यही वह प्रश्न है जिसका जेम्स द्वारा प्रतिपादित अर्थक्रियावाद में जवाब दिया गया है।

1907 में प्रकाशित पुस्तक प्रेगमेटिज्म, जिसमें जेम्स ने अपने अर्थक्रियावादी सिद्धान्तों को पूर्ण विस्तार से व्यक्त किया है को एक उप-शीर्षक भी दिया गया है। वह है पुरानी विचार धारा का नया नामकरण। और उसे जान स्टुअर्ट मिल की स्मृति को समर्पित किया गया है जिनसे मैंने सर्वप्रथम मुक्त हृदय के अर्थक्रियावादी सिद्धान्त को सीखा’। जेम्स यहां पर ब्रितानी अनुभववादी परम्परा से अर्थक्रियावाद का सही तारतम्य बैठाने की कोशिश करते हैं। एक अर्थक्रियावादी सर्व-प्रथम जिस बात को कहना चाहता है वह परम्परावादी अनुभववाद की मात्र ऐसी पुनर्व्याख्या है जिसमें कहा गया है कि किसी परिकल्पना के उपयोगी होने का प्रमाण यही है कि उसे अनुभव पर आधारित होना चाहिए।[1] 1867 तक जेम्स ने चूंकि अनुभववाद के अलावा अन्य दर्शनों का अध्ययन कम किया था इसलिए उन्होंने अपनी मां को दिये गये पत्र में तत्वदर्शन के विषय में यह लिखा, ये माथी लोग इतनी शीघ्रता से प्रत्यक्ष और आन्तरिकता इत्यादि में बैठ जाते हैं कि प्रत्येक वस्तु की व्याख्या का भार अपने ऊपर ले लेते हैं। तथ्य प्रकट होने पर जिसका भेद स्पष्टतः खुल जाता है। यह सब इस प्रकार की तर्कवादिता है जो निराशाजनक और हताश करने वाली है और भविष्य में एक इंच भी आगे जाने के योग्य नहीं है। यहां पर पहले से ही परम्परागत तत्वदर्शन की सार रूप में अर्थक्रियावादी आलोचना रूप ग्रहण करती हुई दिखाई देती है। जेम्स ने इसके बावजूद

---

[1] अर्थक्रियावाद की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के लिए पी० वियनर कृत इवोल्यूशन एण्ड दी फाउण्डर्स आफ प्रेगमेटिज्म (1949) एम० बोम द्वारा लिखित द डेवलपमेंट आफ जेम्सेज प्रेगमेटिज्म नम्बर टू (1879) (जे० पी० 1933) ए० एफ० ब्रोशार द्वारा लिखित लोजज इन्फ्लूएन्स आन द प्रेगमेटिज्म आफ विलियम जेम्स (ज० एच० आई० 1940) सी० एस० पीयर्स के ऐतिहासिक नोट (कलेक्टेड पेपर्स 5 11) जो काण्ट [illegible] उनके सम्बन्धों पर भी प्रकाश डालता है, ज० डेवी कृत फिलोसफी एण्ड सिविलाइजेशन, 1931।

सी० एस० पीयस क प्रति अपनी कृतनता प्रकट की है जिनसे ही उ होन प्रेगमटिज्म' नामक शब्द लिया था और पीयस क सार्थकता क सिद्धात का भी उपयोग किया था। (इन लोगो के परस्पर रहे विशेष प्रकार क सम्बधो क कारण ही शीघ्र ही अपन सिद्धात को प्रेगमटिज्म (अथक्रियावाद) का नाम दिया था जो नकल करने वाला स बचाव की दृष्टि से काफी सुरक्षित है। पीयस क दशन म अथ क्रियावाद सार्थकता नियत करन की एक प्रणाली है और इस प्रणाली का सबस पहल इन्होन 1878 म **पोपुलर साइन्स म थली**[1] म लिखे एक निबन्ध **हाऊ टू मेक अवर आइडियाज क्लीयर** मे व्यक्त किया है। इस समय इस प्रणाली का साराश उ होन इस प्रकार दिया था व्यावहारिक धरातल पर हम अपन विचार मे पदार्थो क लिए कौनसे परिणामो की कल्पना करत हैं इसके सम्बन्ध म जरा विचार कर तब हम दखग कि इन परिणामो से सम्बन्धित हमार विचार ही किसी वस्तु क सम्बन्ध म पूण विचार होते हैं। प्रकटत यह सोच विचार कर दी गयी एक परिभाषा है, क्योंकि सचाई यह है कि इसे सरलता स समझा नही जा सकता। बाद म भी पीयस न अपन अथक्रियावादी सिद्धात का वस्तुत अपने को ही सन्तुष्ट करने क लिए समझाने के बहुत से प्रयास किय और यह कोशिश की कि दाशनिक जाच पडताल म आने वाली बाधाओ और निरथकताओ से किस प्रकार बचा जा सके।

पीयस का विचार था कि जेम्स न अथक्रियावादी प्रणाली को इतनी अतिवादी सीमा तक धकेल दिया था कि हम कुछ ठहर कर विचार करन की आवश्यकता है ताकि हम अथहीनता को स्वीकार करन की दिशा म कही न चल जाय। इसके साथ ही एक दूसरा खतरा यह भी था कि कही इसका अस्तित्व ही अथहीनता और केवल मात्र गणित की एक शाखा के रूप म शेष रहकर समाप्त न हो जाय। 1905 म **मोनिस्ट** मे लिख एक निबन्ध म इन खतरा स बचन के प्रयास म उन्होन अथक्रियावादी विचारधारा की पुनर्व्याख्या इस प्रकार की है।

---

[1] अथक्रियावाद वज्ञानिक प्रणाली क सतक विश्लेषण से ही उद्भूत हुआ है। रूगीरो ने जसा इसे समझा है यह वसी कतई नही है—उनके अनुसार यह व्यापारियो का दशन है। निश्चय ही जसा कि रोयस न 1908 म **द फिलोसफी आव लायल्टी** म लिखा है जेम्स जानबूझ कर रूपको के प्रयोग को पसन्द करते हैं (उदारणाथ केश वल्यू) जो केवल व्यापारिक जगत म ही प्रवतन मे है किन्तु जेम्स परमात्मवादियो की सूक्ष्मताओ पर भी अपनी फिलिस्तीन जसी प्रवुद्ध दिखायी दन वाली जबान का भी प्रयोग करने से नही चूकते। उनके प्रौफिट (लाभ) एव एक्स्पीडिए सी (शुभ) नामक पद व्यापारी लोगो की भाषा से बिल्कुल भिन्न है।

किसी भी प्रतीक की समग्र बौद्धिक इयत्ता विवेकशील व्यवहार की सामान्य अवस्थाओं के योग पर निर्भर रहती है, जिन्हें यदि संभावित एवं विभिन्न परिस्थितियों और इच्छाओं के संसर्ग में रखा जाये तो वे इस प्रतीक के स्वीकरण का ही काम करेंगी, यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि इस बार अब केवल परिकल्पना से हटकर अधिक सामान्य अवस्था की ओर चला गया है, जिन्हें पीयर्स चिह्नों की संज्ञा देते हैं। पीयर्स के दर्शन का अधिकांश दरअसल प्रतीकवाद के सिद्धान्त की एक संतोषप्रद व्याख्या मानी जा सकती है। इसके अतिरिक्त व्यावहारिक स्थितियाँ प्रायः विवेकशील व्यवहार में रूपान्तरित हो गई हैं। पीयर्स इस बात से आतंकित थे कि उन्हें विज्ञान का सर्वाधिक उपयोगी सिद्ध करने जैसी संकीर्ण अवस्था तक गलत समझा गया है। किसी प्रतीक का अर्थ उनके अनुसार वह विवेकशील व्यवहार है जो उसी से उत्पन्न होता है। इस प्रकार अन्य खनिज पदार्थों से लीथियम को अलग करने की दिशा में जो कदम उठाये जाते हैं उनसे हम परिचित हों तो हम लीथियम को अच्छी तरह समझ सकते हैं। कोई भी चिह्न भ्रामक है यदि बहुत से परम्परागत तत्व दर्शन के चिह्नों की भाँति वह हमें विवेकपूर्ण व्यवहार की एक मौलिक अवस्था की ओर न ले जाय।

इससे यह सिद्ध होता है कि हम वास्तव में इस बात का तो निर्णय कर सकते हैं कि कौनसा व्यवहार विवेकपूर्ण है। पीयर्स इस निर्णय को प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करते हैं कि व्यवहार के प्रतिमान जाँच पड़ताल के लिये तो आवश्यक हैं ही। पीयर्स की परिभाषा का जो एक और परिणाम निकलता है वह यह है कि उनके लिए किसी भी बात का अर्थ सामाजिक ही है। उनके लिए एक प्रतीक का अर्थ केवल इस बात में ही नहीं है कि वह हमारे मस्तिष्क में प्रत्ययों के पुनः प्रेषण करता है जैसा कि बहुधा मान लिया गया है। किसी प्रतीक को समझने के लिए हम केवल यह देखना है कि किसी विवेकशील मनुष्य में वह किस प्रकार के व्यवहार करने की भावना का उदय करता है।

जेम्स के दर्शन में यह बात सिद्ध की गयी है कि अर्थक्रियावादी सार्थकता के सिद्धान्त का एक सन्तोषप्रद सृजन करने के लिए पीयर्स ने जितना संघर्ष किया उसका कोई सानी नहीं है। इसके विपरीत जब ए० ओ० लावजाय ने अपने जे०पी० 1908 में प्रकाशित एक निबन्ध दी थर्टीन प्रेगमेटिज्म में यह बताया कि अर्थक्रियावादी स्वयं अर्थक्रियावाद की ही कोई स्थायी और एक परिभाषा देने में असफल रहे हैं तो जेम्स ने उनकी इस बात का स्वागत करते हुए कहा कि यह तो बहुत अच्छा है इससे तो यही सिद्ध होता है कि अर्थक्रियावाद का सिद्धान्त कितना मुक्त है और यह एक ऐसा दृष्टिकोण भी है जो पीयर्स की दोषान्वेषी एवं आत्मशोधी वृत्ति से कितना भिन्न है।

जेम्स अर्थक्रियावाद के सार्थकता के सिद्धान्त में मूलतः इसलिए रुचि ले रहे थे क्योंकि यह उनके अनुसार ऐसी प्रणाली तो थी जो तत्वदर्शन के इन झगड़ों का, जो अन्यथा अनन्त थे, निपटारा करती थी। उदाहरण के लिए आत्मवाद एवं भौतिकवाद के बीच चल रहे झगड़े को लिया जा सकता है। उनके अनुसार अर्थक्रियावादी *प्रणाली इस प्रकार के प्रत्येक तत्वदर्शनसम्बन्धी सिद्धान्तों के विकल्प की व्याख्या* क्रमशः उनके द्वारा हो रहे परिणामों से करती है। जेम्स सर्वप्रथम यह दर्शाना चाहते थे कि यदि हम तत्वदर्शन सम्बन्धी प्राक्कल्पनाओं का परीक्षण उसी प्रकार करें जिस प्रकार वैज्ञानिक प्राक्कल्पनाओं का करना चाहिए मूलतः इस बात का ध्यान रखते हुए कि यदि हमारे प्राक्कल्प सही होते गये तो उनसे किसी विशिष्ट घटना पर क्या असर पड़ेगा तो हमें पूर्णतः *उन दोनों में कोई भी भेद नहीं दिखाई देगा। कोई भी ऐसी* अवस्था नहीं है जिसके बारे में हम यह कह सकें कि जब तक कि संसार आत्मपरक अथवा ईश्वर द्वारा रचित अथवा ऐसे मनुष्यों द्वारा निवासित नहीं हो जो अमर आत्मा के धनी हैं अथवा मुक्त इच्छाशक्ति के धारी हैं तो यह घटना घटित नहीं हो सकती है। इस तरह किसी भी तत्वदर्शन सम्बन्धी वैकल्पिक सिद्धान्त की सम्भावना को अनदेखा नहीं किया जा सकता। लेकिन हम वस्तुस्थितिवादियों की तरह यह निष्कर्ष भी नहीं निकालते कि तत्वदर्शन खोखला और घातक है। जेम्स इसका स्पष्टीकरण करते हुए कहते हैं कि तत्वदर्शन सम्बन्धी विकल्पों का यदि भूतलक्षी रूप में अध्ययन किया जाय तो उस समय वे हमें कितने तटस्थ दिखायी देते हैं उतने ही यदि हम उन्हें सलक्ष रूप में लें तो वे हमारे अनुभवों को पूर्णतः दूसरे ही दृष्टिकोण से प्रस्तुत करती हैं।

वे अपने मत को भौतिकवाद एवं धर्मदर्शन के भेद से धृत करते हैं। वे कहते हैं कि भौतिकवाद चल सृष्टि की एक भीषण रूप से अचल तस्वीर खींचकर भविष्य के लिए किसी प्रकार की गुंजाइश नहीं रखता।[1] यह धर्मदर्शन द्वारा प्रदत्त आशावादी आत्मा का विनाश कर देना है। इसी प्रकार इच्छाशक्ति के सिद्धान्त को ही लें जिसमें जेम्स बड़ी रुचि लेते थे तो अर्थक्रियावादी ढंग से इसका अर्थ संसार में नवीनता की सृष्टि करना है। यह हमें इस बात का संकेत देता है कि कम से कम वर्तमान स्थिति में सुधार सम्भव है। यदि हम संसार के पुनर्निर्माण में सहायक

---

[1] यहाँ पर नाइटमेयर आफ एण्ट्रोपी का सन्दर्भ दिया गया है जिसने 19वीं शताब्दी के युगमानस को काफी परेशान किया था। एण्ट्रोपी नामक शब्द क्लासियस नामक भौतिक शास्त्री द्वारा प्रचलित किया गया था और उनका निर्देश इस तथ्य की ओर था कि प्रत्येक ऊष्मा युक्त परिवर्तन वर्तमान ऊर्जा में किसी न किसी प्रकार का क्षरण प्रस्तुत करता है। यह भौतिकी सिद्धान्त अत्यन्त सजीव ढंग से यह कहकर पुनः प्रस्तुत किया गया था कि ब्रह्माण्ड शनैः शनैः क्षरित होता जा रहा है और यह एक ऐसी स्थिति है जिसने विभिन्न क्षेत्रों में तो काफी चकाचौंध उत्पन्न की है।

हो तो हम यह शांति का आश्वासन देता है। हमारे कार्यों के प्रति इसी प्रकार का उत्साह प्रकट करना ही इस वाद का उद्देश्य है। हमे मुक्त इच्छाशक्ति मे विश्वास करने का अधिकार देना ही द विल टू बिलीव का मूल मन्त्र था। तार्किक दृष्टि से भी असम्भव कहकर इसे हम छोड नही सकते। यही उनकी दृष्टि मे भाग्यवाद का भी महत्व है। जहा तक विश्वास का सम्बन्ध है अर्थक्रियावादियो का कहना है कि यही सर्वोत्कृष्ट ग्रहण करने योग्य विश्वास है।

जेम्स अब से अधिक सत्य मे आस्था रखते थे और एफ० सी० एस० शिलर के मानववाद तथा जान डीवी के उपकरणवाद से उत्साह प्राप्त करके यथाशीघ्र अर्थक्रियावादी सत्य के सिद्धान्त की स्थापना करना चाहते थे।[3] सामान्य धारणा के अनुसार सत्य वास्तविकता के साथ सहमति मे निहित होता है। इस परिभाषा का सामान्य अर्थ यही लगाया जाता है कि सत्य वास्तविकता की अनुकृति करता है। इस प्रकार का अर्थ निकालना जेम्स द्वारा लिखित ह्यूमनिज्म एण्ड ट्रुथ (माइण्ड 1904) नामक निबन्ध की दृष्टि से सत्य को अर्थहीन बना देता है एवं अपूर्ण द्वितीय संस्करण कहकर तथा एक दुर्बल एवं बिन्दुहीन प्रतिकृति मानकर।

कभी कभी वे यह स्वीकारते है कि वास्तविकता का चित्र भी हमारे लिए सहायक हो सकता है। उदाहरण के लिए भविष्य के सम्बन्ध मे कुछ कहना यद्यपि इस परिस्थिति मे भी एक प्रतीकवादी सूत्र अनुकृति से कही अधिक उपयोगी सिद्ध होता है—किन्तु जब कोई चित्र उपयोगी होता है तो वह केवल इसीलिए उपयोगी नही होता कि वह एक अनुकृति है दर असल होता यह है कि ऐसी विशेष परिस्थितिया मे अनुकृति ही हमे अपने अनुभव के संबंध मे कुछ अधिक संगतिमय ढंग से कह सकने योग्य बनाती है। यह तो वास्तविकता के साथ सहमति का सिद्धान्त ही है

प्रत्ययवादी आलोचना के लिए द्रष्टव्य ब्रेडले कृत एसेज आन ट्रुथ एण्ड रियलिटी, मेक्टेगट द्वारा प्रस्तुत प्रेगमेटिज्म नामक पुस्तक का रिव्यू (माइण्ड 1905) आर० एफ० ए० हानली द्वारा लिखित निबन्ध प्रेगमेटिज्म वर्सस एब्सोल्यूटिज्म (माइण्ड 1905) ए० ई० टेलर द्वारा लिखित ट्रुथ एण्ड प्रेक्टिस पी० आर० 1908) यथार्थवादी दृष्टिकोण के लिये द्रष्टव्य, जी० ई० मूर की (पी० ए० एस० 1907) मे प्रकाशित प्रोफेसर जेम्स प्रेगमेटिज्म की समालोचना जो फिलोसोफीकल स्टडीज मे पुनर्मुद्रित हुई। डब्लू० पी० माण्ट्यू द्वारा लिखित एच जे० पी० 1909 मे प्रकाशित ए रियलिस्ट बि ए प्रेगमेटिस्ट आर० बी० परी कृत प्रेजेण्ट फिलोसोफीकल टेण्डेंसीज, बर्ट्रेण्ड रसेल कृत फिलोसोफीकल ऐसेज 1903 से लेकर 1909 ई० की जर्नल आफ फिलोसोफी नामक पत्र मे जेम्स और उसके सहयोगियो द्वारा लिखे बहुत से निबन्ध देखे जा सकते हैं।

जेम्स अर्थक्रियावाद के साथकता के सिद्धा त म मूलत इसलिए रुचि ले रहे थे क्योंकि यह उनके अनुसार एसी प्रणाली तो थी जा तत्वदशन के इन झगडो का, जा अ यथा अन त थे, निपटारा करती थी। उदाहरण के लिए आत्मवाद एव भौतिक वाद क बीच चल रहे झगडे को लिया जा सकता है। उनके अनुसार अर्थक्रियावादी प्रणाली इस प्रकार क प्रत्यक तत्वदशनसम्ब धी सिद्धान्तो के विकल्प की व्याख्या क्रमश उनके द्वारा हो रहे परिणामो स करती है। जेम्स सवप्रथम यह दर्शाना चाहते थ कि यदि हम तत्वदशन सम्ब धी प्राकल्पनाओ का परीक्षण उसी प्रकार कर जिस प्रकार वज्ञानिक प्राकल्पनाओ का करना चाहिए मूलत इस बात का ध्यान रखत हुए कि यदि हमारे प्राकल्प सही होते गय ता उनसे किसी विशिष्ट घटना पर क्या असर पडेगा ता हम पूणत उन दोनो मे काई भी भेद नही दिखाई दगा। कोई भी एसी अवस्था नही है जिसक बारे म हम यह कह सक कि जब तक कि ससार आत्मपरक अथवा ईश्वर द्वारा रचित अथवा ऐसे मनुष्यो द्वारा निवासित नही हो जो अमर आत्मा के धनी है अथवा मुक्त इच्छाशक्ति के धारी है तो यह घटना घटित नही हो सकती है। इस तरह किसी भी तत्वदशन सम्ब धी वकल्पिक सिद्धा त की सम्भावना को अनदखा नही किया जा सकता लकिन हम वस्तु स्थितिवादियो की तरह यह निष्कष भी नहा निकालते कि तत्वदशन खोखला और घातक है। जेम्स इसका स्पष्टीकरण करत हुए कहते हैं कि तत्वदशन सम्ब धी विकल्पो का यदि भूतलक्षी रूप म अध्ययन किया जाय ता उस समय वे हम कितने तटस्थ दिखायी देते हैं उतने ही यदि हम उ हे सलक्ष रूप म ले तो वे हमारे अनुभवो को पूणत दूसरे ही दृष्टिकोण से प्रस्तुत करती हैं।

वे अपने मत का भौतिकवाद एव धमदशन के भेद स धृत करत हैं। वे कहते हैं कि भौतिकवाद चल सृष्टि की एक भीषण रूप से अचल तस्वीर खीचकर भविष्य क लिए किसी प्रकार की गु जाइश नही रखता।[1] यह धमदशन द्वारा प्रदत्त आशावादी आत्मा का विनाश कर दना है। इसी प्रकार इच्छाशक्ति के सिद्धान्त को ही लें जिसम जेम्स बडी रुचि लेते थ ता अथक्रियावादी ढग स इसका अथ ससार मे नवीनता की सृष्टि करना है। यह हम इस बात का सकेत दता है कि कम से कम वतमान स्थिति म सुधार समव है। यदि हम ससार केपुर्नानर्माण म सहायक

---

[1] यहा पर नाइटमेयर श्राफ एन्ट्रोपी का स दभ दिया गया है जिसन 19 वी शताब्दी के युगमानस को काफी परशान किया था। एण्ट्रोपी नामक श द क्लासियस नामक भौतिक शास्त्री द्वारा प्रचलित किया गया था और उनका निर्देश इस तथ्य की ओर था कि प्रत्यक ऊष्मा युक्त परिवतन वतमान ऊर्जा म किसी न किसी प्रकार का क्षरण प्रस्तुत करता है। यह भौतिकी सिद्धा त अत्यन्त सजीव ढग मे यह कहकर पुन प्रस्तुत किया गया था कि ब्रह्माण्ड शन शन क्षरित हाता जा रहा है और यह एक एसी स्थिति है जिसन विभिन्न क्षेत्रो म तो काफी चका चौंध उत्पन्न की ह।

हों तो हमें यह शान्ति का आश्वासन देता है। हमारे कार्यों के प्रति इसी प्रकार का उत्साह प्रकट करना ही इस वाद का उद्देश्य है। हमें मुक्त इच्छाशक्ति में विश्वास करने का अधिकार देना ही व विल टू बिलीव का मूल मन्त्र था। तात्विक दृष्टि से भी असम्भव कहकर इन्हें हम छोड़ नहीं सकते। यही उनकी दृष्टि में भाग्यवाद का भी महत्त्व है। जहाँ तक विश्वास का सम्बन्ध है अर्थक्रियावादियों का कहना है कि यही सर्वोत्कृष्ट ग्रहण करने योग्य विश्वास है।

जेम्स अर्थ से अधिक सत्य में आस्था रखते थे और एफ० सी० एस० शिलर के मानववाद तथा जान डीवी के उपकरणवाद से उत्साह प्राप्त करके यथाशीघ्र अर्थक्रियावादी सत्य के सिद्धान्त की स्थापना करना चाहते थे।[3] सामान्य धारणा के अनुसार सत्य वास्तविकता के साथ सहमति में निहित होता है। इस परिभाषा का सामान्य अर्थ यही लगाया जाता है कि सत्य वास्तविकता की अनुकृति करता है। इस प्रकार का अर्थ निकालना जेम्स द्वारा लिखित ह्यूमनिज्म एण्ड ट्रुथ (माइण्ड 1904) नामक निबन्ध की दृष्टि से सत्य को अर्थहीन बना देता है एवं अपूर्ण द्वितीय संस्करण कहकर तथा एक दुर्बल एवं बिन्दुहीन प्रतिकृति मानकर।

कभी कभी वे यह स्वीकारते हैं कि वास्तविकता का चित्र भी हमारे लिए सहायक हो सकता है। उदाहरण के लिए भविष्य के सम्बन्ध में कुछ कहना यद्यपि इस परिस्थिति में भी एक प्रतीकवादी सूत्र अनुकृति से कहीं अधिक उपयोगी सिद्ध होता है—किन्तु जब कोई चित्र उपयोगी होता है तो वह केवल इसीलिए उपयोगी नहीं होता कि वह एक अनुकृति है—दर असल होता यह है कि ऐसी विशेष परिस्थितियों में अनुकृति ही हमें अपने अनुभव के संबंध में कुछ अधिक संगतिमय ढंग से कह सकने योग्य बनाती है। यह तो वास्तविकता के साथ सहमति का सिद्धान्त ही है

प्रत्ययवादी आलोचना के लिए द्रष्टव्य ब्रेडले कृत एसेज आन ट्रुथ एण्ड रियलिटी, मेक्टेगर्ट द्वारा प्रस्तुत प्रेगमेटिज्म नामक पुस्तक का रिव्यू (माइ० 1905) आर० एफ० ए० हार्नली द्वारा लिखित निबन्ध प्रेगमेटिज्म वर्सस एब्सोल्यूटिज्म (माइण्ड 1905) ए० ई० टेलर द्वारा लिखित ट्रुथ एण्ड प्रेक्टिस पी० आर० 1908) यथार्थवादी दृष्टिकोण के लिये द्रष्टव्य, जी० ई० मूर की (पी० ए० एस० 1907) में प्रकाशित प्रोफेसर जेम्स प्रेगमेटिज्म की समालोचना जो फिलोसोफीकल स्टडीज में पुनर्मुद्रित हुई। डब्लू० पी० माण्टेग्यू द्वारा लिखित एवं जे० पी० 1909 में प्रकाशित रियलिस्ट बि ए प्रेगमेटिस्ट आर० बी० पैरी कृत प्रजेण्ट फिलोसोफीकल टेण्डेन्सीज, बर्ट्रेण्ड रसल कृत फिलोसोफीकल ऐसेज 1903 व तत्पर 1909 ई० दी जर्नल आफ फिलोसोफी नामक पत्र में जेम्स और उनके सहयोगियों द्वारा लिखे बहुत से निबन्ध देखे जा सकते हैं।

जिसमें से कुछ कहने योग्य बातें हैं। व्यापक तौर पर वास्तविकता के साथ सहमत होने का अर्थ है कि सीधा सत्य की दिशा में निर्देशित होना या फिर उसके करीब पहुँच जाना अथवा स्वयं ही एक ऐसी अवस्था को प्राप्त हो जाना जो उसके जीवन स्पर्श से युक्त है अथवा फिर उससे संबंधित किसी स्थिति से जुड़ने का अवसर प्राप्त करना है जो निश्चय ही सत्य से असहमत होने की अवस्था से कहीं बेहतर है। हाँ या तो बौद्धिक रूप से अथवा फिर व्यावहारिक रूप में दोनों में से किसी एक अवस्था में तो वह निश्चय ही बेहतर है। इस प्रकार जेम्स की दृष्टि में सत्य विचार वही हैं जिन्हें हम यह मानकर स्वीकारें कि वे हमारे लिए आगे जाकर श्रेष्ठतम सिद्ध होंगे। इस प्रकार सत्य शिव की ही एक उप प्रजाति बन जाती है।[1]

जैसा कि जेम्स के विरोधी उस पर अभियोग लगाते हुए कहते हैं और जिसे जेम्स स्वयं नहीं मानते वह यह है कि प्रत्येक ऐसा विचार जिसकी हम कल्पना करते हैं वह सत्य है। किसी वस्तु में निहित 'शिवत्व' अथवा 'सत्य' की परख के लिए हमें उसकी उपयोगिता देखनी होगी। उदाहरण के लिए जेम्स उपयोगितावादी ढंग से ही यह कहते हैं कि किसी कार्य में निहित भलाई को उसके परिणामों से हमें जाँचना होगा। तब प्रत्यय का मापदण्ड भी वास्तविकता की तराजू पर रखकर करना होगा। वास्तविकता जेम्स के अनुसार उन संवेदनाओं को पूर्वाग्रहों को और हमारी विभिन्न धारणाओं के बीच विद्यमान सूक्ष्म संबंधों को अपने में समेटती है जो गणित के विषय वस्तु का निर्धारण करते हैं। जब तक कोई स्थिति अधिक अच्छे ढंग में वास्तविकता के साथ हमारा संबंध कायम न कर सके जेम्स हमें उसे झूठा मानकर छोड़ देने की सलाह देंगे चूँकि वास्तविकता स्थिर नहीं है इसलिए जेम्स के अनुसार सत्य भी होने की प्रक्रिया में ही होगा। यह तो मात्र वह अवस्था है जो किसी प्रत्यय को अपनी परिणति प्राप्त करते समय उपलब्ध हो जाती है। स्पष्टतः सत्य भी अंशानुगामी होना चाहिए। जेम्स के अनुसार परमात्मवादियों में भी सत्य का कुछ अंश विद्यमान था। यह बात जब सहिष्णुतापूर्वक जेम्स ने कही थी तो भी उनके

---

[1] सन्दर्भ जी० टी० फेकनर कृत जेण्ड ऐवस्टा (1851) 'मैं सोचता हूँ कि कोई ऐसी वस्तु कभी सत्य नहीं हो सकती जिस पर विश्वास करना अच्छा न हो। और जो सर्वाधिक सत्य है वही श्रेष्ठतम भी है। जेम्स फेकनर के गहनविचारशील सर्वमनस्तत्ववाद से काफी प्रभावित थे। द्रष्टव्य, उनके द्वारा लिखी प्लूरलिस्टिक यूनिवर्स एवं डब्ल्यू० टी० बुश कृत विलियम जेम्स एण्ड पैनसाइकिज्म (कोलम्बिया स्टडीज इन द हिस्ट्री आव आइडियाज अंक 2 1925)। जेम्स के मित्र सी० ए० स्ट्राँग द्वारा भी सर्वमनस्तत्ववाद की वकालत की गई। (द्रष्टव्य—ह्वाई द माइण्ड हैज ए बोडी 1903) लेकिन जेम्स उनसे पूरी तरह संतुष्ट न हो सकते थे।

प्रत्ययवादी विरोधी उनसे बहुत बहुत तग हो गये थे। जहाँ व हम यह सिखाते है कि यह समष्टि किसी अच्छे हाथो म हैं वहाँ वह हम बहुत सी नतिक छूट भी दते हैं– ससार को बहतर बनाने की अटूट परिश्रमशीलता क बावजूद भी और हो सकता ह कभी कभी इस प्रकार की छुट्टियाँ मनाना हमारी प्रकति के अनुकूल ही है।

इग्लण्ड म जेम्स के दशन न बहुत स लोगो का समथन प्राप्त किया जिनम सर्वाधिक प्रसिद्ध एफ० सी० एस० शिलर थे।[1] 1891 म प्रकाशित पुस्तक द रिडल आव स्फिक्स म शिलर न यह माना है कि व बिना किसी बौद्धिक द्वद के उसम अथक्रियावादी हो गए हैं। और निश्चय ही, यद्यपि यह कृति अपन अधिकाश म विकासवादी तत्वदशन की ही एक साफ सुथरी प्रजाति थी, तो भी शिलर तो इसस पूव ही यह घोषणा कर चुके थे कि विज्ञान भूयमान विकमिंग) का ग्रहण कर सकन म अक्षम है। जो वस्तुए दरअसल है ही व सत्य को मूल्य एव ईश्वर को याय के पक्ष म खडी अनन्त प्रकृति और जो बुराई का उत्तरदायी विधाता नहीं ह– य तमाम जेम्स क विशिष्ट सिद्धान्त ही है।

किन्तु इस तथ्य न कि जेम्स तो एक जीवशास्त्री अनुभववादी मनोवैज्ञानिक थ और शिलर ने एक तत्वदशनसबधी विचारक क रूप म अपना जीवन प्रारम्भ किया था उनके दशन क आकार प्रकार म काफी भेद प्रकटाया है। शिलर के लिए केन्द्र बिन्दु मानवतावाद था। यही 1903 म प्रकाशित उनकी पुस्तक का शीषक भी था। वास्तविकता और सत्य दोनो ही मानव निर्मित हैं। प्रोटेगोरस की यह मान्यता सही थी कि मनुष्य ही सभी वस्तुओ का मान है। 1902 म पसनल आइडियलिज्म म प्रकाशित एक निबन्ध एक्जियम्स एण्ड पोस्चूलेटस' जिसम पहल पहल उन्होंने अपन आपको एक अथ क्रियावादी माना है व इस बात का खडन करत हैं कि हम से पर कोई ऐसा वस्तुजगत है जो स्वय का परिज्ञान दने क लिए हमार मनो पर जोर देता रहता है। जेम्स इतनी दूर तक जाना नही चाहते थे। शिलर न उन पर नवयथाथवादियो

---

[1] द्रष्टव्य आर एबल कृत द प्रेग्मेटिक ह्यूमेनिज्म आव एफ सी० एस० शिलर। आर मरट फर्डिनण्ड केनिंग स्काट शिलर पी०बी०ए० 1938। जे०आई० मर्की, डा० एफ सी एस शिलर माइण्ड 1938।, आर० टी० फ्लवलिंग व एल० ज० होपकिन्स पसनलिस्ट 1938, अथक्रियावाद का अन्य ब्रितानी रूप एच० वी० नोक्स की रचना द फिलोसोफी आव विलियम जेम्स (1914) म दखा जा सकता है। 1930 म लिखी ट्रूथ एण्ड अदर ऐसेज नामक पुस्तक म भी दखन योग्य है, ऑक्सफोर्ड के निम्न स्नातको म बड़े शिलर क प्रभाव के लिये कॉम्पटेन मकन्जी का उपन्यास सिनिस्टर स्ट्रीट 1913) दखन योग्य है।

के प्रति बहुत उदार होने का अभियोग लगाया था। और यथार्थवादी उनको इसलिए बुरा भला कहते थे कि उनके अनुसार उनमें आत्मपरक प्रत्ययवाद का रंग चढ़ा हुआ था। जबकि तथ्य यह है कि जेम्स इन दोनों ही विचारधाराओं से स्वयं खुश नहीं थे।[1]

शिलर का मूल कार्य अर्थक्रियावादी सत्य के सिद्धान्त का बचाव करना था। एक ऑक्सफोर्ड परम्परा के ही एक व्यक्ति होने के कारण अपने ही अन्दर विद्यमान रूढ़ियों एवं अनुदारता के प्रति वे विद्रोहशील थे। और ऑक्सफोर्ड में उनकी इस वृत्ति को काफी प्रोत्साहन भी मिला। उनकी शैली स्वयं ही एक प्रतिरोध है। उनकी व्यवहार की तर्रारी और उनके विवादास्पद विषयों की प्रबलता के कारण स्वयं जेम्स को उन्हें यह राय देनी पड़ी कि वे अपना ध्यान शास्त्रीय पक्ष की ओर अधिक दें। ब्रेडले उनके एक योग्य प्रतिरोधी थे। शिलर ने उनके विषय में लिखा व्यंग्यात्मक फुटनोट एवं बेलिहाज उक्तियों के बाहुल्य के कारण ब्रेडले ने दर्शन के क्षेत्र में एक आतंकपूर्ण शासन की स्थापना की है।

ब्रेडले की निरन्तर यही धारणा बनी रही कि अर्थक्रियावाद अस्पष्ट पहेलियों से भरपूर है और इन्हीं पहेलियों पर इसका चमत्कार निहित है। इसकी व्याख्या करें, तो कभी तो यह एक सामान्य विचारधारा सी लगती है और कभी अर्थहीन बेहूदगी से युक्त। इस प्रकार एक साथ ही दोनों प्रकार की व्याख्याओं को प्रकट कर सकने के कारण अर्थक्रियावादी यह दर्शाने की कोशिश कर रहे थे कि वह संसार में एक नया संदेश सुनाने के लिये आया है जो संसार को प्रकाशित कर देगा। इसी के लिए उन्होंने आगे लिखा है 'यह एक ऐसा संदेश है। जो सामान्य जीवन के पुराने उपदेशों में *बहुतायत में मिलता है और जिसे इन्कार करना कोई मूर्ख* ही चाहेगा।' शिलर का ब्रेडले को इस सम्बन्ध में दिया गया उत्तर भी समझौता प्रस्तुत करता हुआ नहीं लगता। उन्होंने लिखा 'मिस्टर ब्रेडले बड़ी बहादुरी से इस बात की शपथ लेते हुए आगे बढ़ते हैं कि उन्हें इस नयी विचारधारा का ज्ञान नहीं है। इसी के आधार पर इस संबंध में आगे कुछ कहना ब्रेडले जैसी क्षमता वाले *समालोचक के लिए शोभित नहीं होता।* मैंने भी इसका अध्ययन नहीं किया था—मैं भी ब्रेडले की बात से ही सहमत था।' (द्रष्टव्य ट्रूथ एण्ड मिस्टर ब्रेडले माइण्ड 1904 जो 1907 में स्टडीज इन ह्यूमेनिज्म के *रूप में पुनर्मुद्रित हुआ।) शिलर के* अनुसार ब्रेडले ने अर्थक्रियावाद को बौद्धिकता के *बैले चश्मे से देखने की कोशिश*

---

[1] माइण्ड में 1913 15 तक चला शिलर और ब्रेडले के बीच संवाद द्रष्टव्य है। परिशिष्ट 10 (ब्रेडले कृत थोट एण्ड करेक्टर) शिलर के ह्यूमेनिज्म (माइण्ड 1904) का जेम्स द्वारा *किया गया रिव्यू।*

की है। सत्य उनके लिए स्थिर है—उसका निर्धारण केवल एक बार होता है—और वास्तविकता की वह एक अनुकृति मात्र है। ब्रैडले ने शिक्षण की धारणा का ही यथार्थ की अनुकृति कहकर इसका जवाब दिया है। उन्होंने तो हमेशा यही माना है कि यह स्वीकार करने में कोई बाधा नहीं है कि सत्य एक प्रत्युत्तर है। वे कहना यही चाहते हैं कि सत्य को अपनी चरमावस्था में किसी का समवायी होना चाहिए।

सत्य का यह विशिष्ट सिद्धान्त जिसे उन्होंने **एपीयरेंस एण्ड रीएलिटी** ने प्रस्तुत किया है—इसी बीच प्रत्ययवादी तत्त्वशास्त्री एच० जे० जोकिम द्वारा 1906 में प्रकाशित **द नेचर आफ ट्रुथ** नामक पुस्तक में आगे बढ़ाया गया है। जोकिम ने यह संकेत किया है कि पूर्ण रूप से कोई वस्तु सत्य हो ही नहीं सकती। समवायी सत्य का सिद्धान्त जो स्वयं मनुष्य द्वारा निर्मित है वह भी आंशिक रूप में ही सत्य हो सकता है। इस तरह शिलर अन्त में यही निष्कर्ष निकालते हैं कि अब तो प्रत्ययवादी भी मानवी सत्य की प्रभुता को स्वीकार कर ही लेते हैं। ईश्वर अथवा कोई परमात्म वस्तुओं का मानदण्ड न होकर मनुष्य ही होना चाहिए। क्योंकि ये सब हमारी ग्राह्य शक्ति से बाहर चले जाते हैं। ब्रैडले ने भी यह बात स्वीकार की थी कि हम सत्य की खोज हमारी ही बुद्धि के संतोष के लिए करते हैं। शिलर कहते हैं कि क्या ब्रैडले 'अभी' और 'अब' सम्बन्धी लिए गए निर्णयों में, जो दृश्यमान सत्ताएं हैं, अर्थक्रियावादी प्रणाली का सहारा नहीं लेते? और यह करीब करीब वही स्थिति है जिसकी हम सिद्धि करना चाहते हैं। ब्रैडले द्वारा उन पर जो कठोर टिप्पणियाँ की गई हैं उनका उत्तर देने में जेम्स ने काफी बेरुखी बरती है। यह बात शिलर ने अपने निबंध **द न्यू डेवेलपमेण्ट आव मिस्टर ब्रैडलेज फिलोसोफी** (माइण्ड 1905) में सुझाई है और कहा है कि इसका कारण यह था कि ब्रैडले पर ही वस्तु एवं तथ्य सम्बन्धी उलझाव की बात छोड़ दी जाए तो अच्छा है क्योंकि इससे अन्त में उनकी जो परिणति होगी वह आश्चर्यजनक रूप से अर्थक्रियावाद की ही तरह से होगी।

यद्यपि शिलर पर ब्रैडले निरन्तर छींटाकशी करते रहे फिर भी उन्होंने इस बात का अनुभव किया कि उनमें जेम्स से कुछ साम्य तो है। और वह साम्य न केवल तात्कालिक अनुभव'[1] तक ही सीमित है अपितु प्रत्यक्ष सम्बन्धी धारणाओं में भी दोनों में कुछ साम्य है। हाँ 'वास्तविक 'सत्य' धारणाओं में उनका और जेम्स का मत नहीं मिलता।

जॉन ड्यूई ने अपने सम्पूर्ण दार्शनिक जीवन से यह स्थापित करने की कोशिश की है और वे अभी भी इसका समर्थन करते हैं कि अर्थक्रियावाद एवं

---

[1] इसके लिए द्रष्टव्य डब्लू जेम्स कृत ब्रैडले या बर्गसाँ? (कलेक्टेड ऐसेज एण्ड रिव्यूज, 1920)।

परमात्मवाद म क्वल बनावटी साम्य ही नही है अर्थात् उनम काफी समानता है ।[1]

हक्सल की शरीरविज्ञान-सम्ब धी रचनाग्रो ने सवप्रथम उनम दाशनिक रुचि उत्पन्न की । उन रचनाग्रो न उमक समक्ष वस्तुग्रों क ग्रान्तलित हो जाने स सम्ब धित एक एसा नमूना रखा था जिसकी ग्रोर किसी भी पदाथ का ग्रावश्यक रूप से जाना पडता था । तब हीगल का प्रादुर्भाव हुग्रा, जो ग्रपने साथ मुक्ति की बडी भारी धारणा लाए[2] क्योकि हीगल ने ग्रात्म व जगत क बाच के व्यवधान का तोड डाला ग्रात्मा व शरीर के बीच का भेद मिटा दिया, एव ईश्वर एव प्रकृति के बीच की खाई का पाट दिया य ही व व्यवधान थे जिन्होने मानवी ग्रात्मा को शेप जगत स काट कर ग्रलग कर दिया था । ड्यूई का दशन प्रकृतवाद के सहारे हीगल द्वारा सुझाई नवीन प्रकार की एकता का पुन निर्धारण करता है । इस प्रकार के पुन निर्धारण की प्रेरणा उन्ह जेम्स स प्राप्त हुई । मूलत प्रिंसिपल ग्राव साइकोलोजी म विद्यमान जीवशास्त्रीय विकासवृत्ति के ग्राधार पर जेम्स के लिए मानव सजीव है । वे उनको ऐनाटोमी के नमूने के रूप म नही मानते । ड्यूई क दशन का विषय भी यही मनुष्य है । ग्रन्तर इतना है कि यहा ग्राकर वह एक सामाजिक प्राणी हो गया है । ड्यूई की इस मा यता पर निश्चय ही हीगल की विचारधारा का प्रभाव था ।

ड्यूई ने ग्रपने शिक्षण क सम्ब ध म फ्रोम एब्सोल्यूटिज्म टू एक्स्पेरीमेण्टलिज्म (कण्टेम्पाररी ग्रमेरिकन फिलासाफी वाल्यूम 2 1930) म विवरण दिया है ।

[1] पी० ए० शिल्प के विभिन्न निब ध दश—द फिलासोफी ग्राव जान ड्यूई (1937) म एव विशपत 1939 म एस हुक की कृति जॉन ड्यूई एन इ टेलेक्चुग्रल पोरट्रेट म स्वय ड्यूई द्वारा दिय गए उत्तर दशन योग्य । जी सतयाना कृत ग्रोबीटर स्क्रिप्टा (1936) । एम० जी० व्हाइट कृत व ग्रोरीजिन ग्राव डयूईज इ स्ट्रूमेण्टलिज्म (1943) एस० एस० व्हाइट कृत ए कम्पेरीजन ग्राव द फिलोसोफीज ग्राव एफ० सी० एस० शिलर एण्ड जॉन डयूई (1940) ज० लेण्टर द्वारा ग्राकलित ग्रौर स्वय की लम्बी भूमिका सहित इण्टेलाजेन्स इन मोडन वल्ड (1939) । रशेल हिस्ट्री ग्राव वेस्टन फिलोसोफी (1946) एव एन इनक्वायरी इनटू मीनिंग एण्ड ट्रुथ (1940) । दा गोप्ठिया जान डयूई मैन एण्ड हिज फिलोसोफी (1930) एव दि फिलोसोफर ग्राफ द कोमन मन (1940) जे० पी० 1939 मे एव पी० ग्रार० 1940 म प्रकाशित ग्रनेक निब ■ ।

[2] ड्यूई म हीगलवाद का प्रभाव जी० एम० मौरिस क जरिए ग्राया । मौरिस का गतिमान प्रत्ययवाद (डायनेमिक ग्राइडियलिज्म) ग्रपन ग्राप म ही हीगल के दशन का जीवशास्त्रीय एव प्रयोगवादी तरीके स सस्करण मात्र है । द्रष्टव्य फिलोसोफी एण्ड क्रिश्चिएनिटी (1883) एव ग्रार० एम० मनले कृत द लाइफ एण्ड वक्स ग्राव जो० एस० मौरिस (1917) ।

शिकागो सहयोगी प्रक द्वारा प्रकाशित स्टडीज इन लोजीकल थ्योरी (1903) में ड्यूई की मौलिक शैली सर्वप्रथम प्रकाश में आई जिसे उन्होंने 1616 में ऐसेज इन एक्सपेरीमेन्टल लोजिक में पुन मुद्रित करवाया। उनका उद्देश्य एक तरह से प्रत्ययवादी तर्कप्रणाली को किसी प्रकार ठोस बनाना था। वे ब्रेडले और बोसांके की ही भांति यह मानते है कि तर्क निर्णय करने का सिद्धान्त है। लेकिन कोई निर्णय सदैव इस बात की ओर संकेत देता है कि कोई कुछ निर्णय कर रहा है। ड्यूई उन प्रक्रियाओं पर विचार करते है जिनके जरिए कोई जांच पड़ताल करने वाला किन्हीं निष्कर्षों पर पहुंचता है—वे उसे या तो निर्णय मानते हैं अथवा ज्ञान।

ड्यूई के वर्णनानुसार ज्ञान किसी स्थिति का चिंतन–प्रधान अथवा बौद्धिक स्तर से ग्रहण करने की क्रिया है, जो अनुभव से विकसित तो होती है लेकिन तब फिर वैसी की वैसी नहीं रहती। अनुभव उनके अनुसार किसी स्थिति को देखने का चिंतनरहित तरीका है। जैसे खाना खाना किसी पाचन संस्थान का अध्ययन करने से भिन्न है। एक ऐसा अनुभव है। और उसी प्रकार किसी चित्र को पसन्द करना अपने मित्रों से बात करना–एक गरेज बनाना और प्रेम करना भी सब अनुभव हैं। दार्शनिकों की जो एक ही प्रकार की भूल है वह यह कि अनुभव से परे किए गए उनके चिंतन अपने आप में अनुभव ही है।

नीले रंग के प्रति संवेदना कम से कम वही नीला रंग तो नहीं है जिसे हम अनुभव करते समय देखते हैं। हमारे अनुभव वस्तुओं के किन्हीं स्थितियों में होने की बाबत होते हैं। नीले रंग की संवेदना अनुभव पर हुए चिंतन के परिणाम स्वरूप होती है। वे परम्परागत अनुभववाद का इस आधार पर खण्डन करते हैं कि उनके लिए हमारा तात्कालिक अनुभव इसी प्रकार की संवेदनाओं के परिणामस्वरूप निर्मित है। इस प्रकार अनुभववाद पूर्णत अनुभव की मूल स्थिति को बौद्धिक क्रिया द्वारा व्यभिचरित कर डालता है।

यह कहना महान् भूल है कि सचल वस्तु का ठोस अनुभव हो सकता है। यदि किसी वस्तु को ठीक ढंग से समझा जाए तो वह स्वयं में एक सत्ता है स्थिति है और कारण है। और किसी राजनीतिक आन्दोलन जैसा कुछ है या फिर पक किये हुए टमाटरों के अतिरिक्त भण्डार से मुक्ति पाने जैसा है, या फिर स्कूल जाने जैसा अथवा किसी युवती की ओर ध्यान से देखने जैसा है। संक्षेप में यही है कि वे स्थितियां हैं जिनसे हम अनुभव की चिंतन रहित व्याख्या कर सकते हैं। इस ग्रंथ में ही वे वस्तुएं हैं, पदार्थ नहीं जो हमारे अनुभवों का निरन्तर निर्माण करती रहती हैं। ड्यूई अनुभव का प्रारंभ से वर्णन करते हुए कहते हैं कि यह एक घटित होने की स्थिति है-वस्तुओं की सचल अनुभूति है और तब उनके बन चुकने की स्थिति है।

और अपनी इस विविधता के कारण अनुभव म सघषण और तनाव की स्थिति विद्यमान रहती है। इसी तरह के सघष से कोई समस्या खडी होती है इसलिए अनुभव को सुधार करके देखना समस्या का हल खोजना ही है। इसलिए एकसी जाच पडताल का पहला कदम समस्या का विश्लेषण करना है और तब उसके समाधान के लिए साधन (प्राक्कल्प) जुटाना है। यह विश्लेषणात्मक प्रक्रिया अपने आप म ज्ञान नही हो सकती। य तो व साधन है जिनसे ज्ञान प्राप्त किया जाता है। हमे ज्ञान उसी समय हो सकता है जब हमने स्थिति को ऐसे सगठित कर लिया है कि हम तब उस माग मे प्रस्तुत हो जाने वाली मुश्किलो पर विजय प्राप्त कर सकते है। और इसी क्रिया के द्वारा हमारे अनुभव समृद्ध होते है। यहा आकर वह स्थिति जिसस हमने प्रारम्भ किया था अब बहुत व्यापक रूप धारण कर लेती हैं। और उसम अब कुछ ऐसी सभावनाएं निहित हो गयी हैं जिनके विषय म हम पहले से सचेत नही होते। यही वह बिन्दु है जहाँ से ड्यूई अपनी जाच पडताल के सिद्धान्त स आगे आकर आनुभविक नीतिशास्त्र एव सौन्दयशास्त्र पर चर्चा करने लग जाते है। विचित्र रूप स सौन्दय एव बुद्धिसम्बन्धी आनन्द अनुभवो स ही प्राप्त किए जा सकते है किसी परानुभवी अथवा व्यवहारेतर जगत के विचार स नही।[1]

यही कारण है कि ड्यूई ज्ञान को सफलीभूत अभ्यास कहते हैं और इस तरह व्यवहार के सिद्धान्त का भेद करना दोनो ही स्थितियो के लिए घातक है। इसके बावजूद भी वे इस कथन को स्वीकार नही करते कि विचार काय के लिए ही है। विचार स्वय एक क्रिया है जो किसी वस्तु का पता लगाने अथवा प्रयोग करने को प्रकट करती है।

ड्यूई का सत्यसम्बन्धी यह सिद्धान्त जाच पडताल की प्रक्रिया के परिणाम स्वरूप प्रकटा है। वह अपने निष्कर्षो म जेम्स के बजाय पीयस के अधिक करीब है।

---

[1] इस प्रकार ड्यूई की शिक्षा पद्धति पर प्रस्तुत की गई प्रभावशाली रचनाओ के कारण यह दृष्टिकोण निमूल हो जाता है कि उदार शिक्षा एव व्याव सायिक शिक्षा एक दूसरे की विरोधी है। शिक्षा तो बुद्धि म प्रवीणता प्राप्त करते जाने का नाम है। प्रशिक्षण का अथ है वह क्षमता विकसित करना जिसके कारण प्रस्तुत किसी स्थिति का कोई ऐसा परिवतन करना है जो बेहतर हो। यह एक ऐसी शिक्षाप्रणाली की आवश्यकता पर बल देता है जो एक साथ व्यावहारिक भी है– क्योकि इसके आधार पर हमारे लिए यह जानना जरूरी है कि इस ससार को कैसे बेहतर बनाया जाय और उदार इसलिए कि यह उत्तमता किस बात म निहित है। लेकिन यह भी विचार मात्र स प्राप्त नही हो सकती। इसके लिए प्रयोग की आवश्यकता रहेगी।

पीयस और ड्यूई दोनो इस कथन से असतुष्ट थे कि सत्य वही है जो सतोषप्रद हो। और जेम्स के द्वारा समय समय पर प्रस्तुत किय गये अन्य सब प्रक्षिप्तांशो का भी व अपर्याप्त मानते है। क्योकि य धारणाएं अधविश्वास एव काल्पनिकता का प्रश्रय देने वाली हैं। उनकी धारणा के अनुसार सत्य वही है जिससे वनानिक सतुष्ट हो सक। इसके लिए यह पर्याप्त नही है कि अमुक व्यक्ति उसस सतुष्ट हो गया है। सत्य का यह सिद्धात, पीयस के सामाव्य दोष के सिद्धान्त द्वारा और भी जटिल बना दिया गया और जिसे ड्यूई न स्वीकार भी कर लिया।

सभाव्य दोष के सिद्धात का अथ पीयस क अनुसार किसी वनानिक का यह अभिमान है कि वह गलत भी हो सकता है क्योकि व सब धारणाएं जिह वह स्थापित सत्यो के रूप मे स्वीकार कर चुका है उसक लिए उसी समय तक ही स्थापित है जब तक कि वह उनके विषय म आगे जाच पडताल करन की आवश्यकता अनुभव न करे। व इस रूप मे सत्य नही है कि व सवथा दोषमुक्त है। वनानिक सत्य के रूप म उनम भी यह भाव निहित है कि कुछ अशो म दोष-पूण हैं। सत्य, इस तरह हमारी निधारित सीमा म किसी अमूर्तीकृत सिद्धान्त का वस्तु स्थिति से मेल खाने का नाम है जिस, वनानिक विश्वास प्रदान करने के लिए अनत प्रयास करने होग। यह बात पीयस ने बाल्डविन द्वारा सम्पादित डिक्शनरी म सत्य की व्याख्या करते हुए लिखी थी। यह परिभाषा ड्यूई न भी स्वीकार की।

जाँच के दौरान सत्य सम्बधी प्रश्न दो अवस्थाओ पर उपस्थित होता है—सवप्रथम तो उस समय जब हम किसी समस्या को डाइग्नोज (आवयविक जाच) करते हैं और दूसरे जब हम उस हल कर लते हैं। लेकिन ड्यूई ता आवयविक जाच क दौरान आने वाली किसी भी स्थिति को पूणत सही अथवा गलत नही मानत। क्योंकि व जाँच पडताल के मात्र उपकरण क रूप म प्रयुक्त हो रही हैं। व, कारगर और बेकार, उपयुक्त अनुपयुक्त, व्यथ और साथक सभी हो सकती है, सही और गलत नही। कवल इन धारणाओ स निकलने वाल निणय ही उह सत्य अथवा गलत बना सकत हैं। यहा पर भी हम उस सत्य न कह कर खतर स युक्त स्वीकृतियां मानना चाहिए। निणय सत्य है यह स्वीकार करन म हम सतक रहना है। क्योकि वनानिक विधि स उनका निर्धारण उस आदश सीमा म हुआ है जो सब विनाना की विवशता है।

एक्स्पीरिएन्स एण्ड नेचर (1935) एव द क्वेस्ट फोर सरटेन्टी (1929) इन दो पुस्तका म सामाय जाच पडताल के इस सिद्धात का व दार्शनिक समस्याओ क हल के लिए भी प्रस्तुत करते हैं। य दोना पुस्तकें एतिहासिक उद्धरण-द्वर दृश्यमान नान क सिद्धान्त पर प्रहार करती हैं—यह सिद्धा त प्लेटोवादियो क लिए

भी उतन ही महत्व का था जितना यथाथवादियो के लिए और जिसक अनुसार ज्ञान को अनन्त सत्य के लिए एव निष्क्रिय विचार माना गया था।

ड्यूई इन दोनो बातो का खण्डन करते हुए कहते है कि न तो ऐसा कोई स्थायी सत्य ही है और न ज्ञाता अपने को केवल दशक मानकर-ही सतुष्ट हो सकता है। जिन वस्तुओ की अनुभूति हम करते है व प्रश्नवाचक है। वे हमारे सामने समस्याए रखती है, और हम चुनौती देती हैं। हम उनके साथ ही उनका अनुसरण करते हुए प्रकृति का पुनर्निर्माण करते हैं। केवल उस पर विचार नही करते। दशकवादी सिद्धात एक ऐसे समाज का कल्प प्रस्तुत करता है जिसमे मनुष्य वास्तव मे शक्तिहीन है, और केवल दूसरे जगत का ही स्वप्न ले सकता है। एक ऐसे जगत का जो सब परिवतन से मुक्त है-क्योकि यही वह सुरक्षित स्थिति है जिसकी वे कामना करते रहते है। लेकिन आधुनिक मानव, ड्यूई सगव घोषणा करते हैं अब अशक्त नही है उसने प्रकृति का रूपान्तर करना सीख लिया है और इसी आधार पर वह सीमित अवस्था मे एक सही एव सुरक्षित स्थिति अपने लिए खोज सकता है। प्रयोगात्मक विधि के उपयोग मे वे यह सभव मानते हैं कि जो अब तक अनिश्चित एव अवश स्थितिया थी उन्हे निश्चित एव वशीभूत किया जा सकता है। सदेहास्पद एव जटिल स्थितियो को सरल एव व्यवस्थित किया जा सकता है।

ड्यूई विशेषत इस बात के लिए चितित हैं कि किस प्रकार प्रकृतिसबधी अनुभवो पर सदेह करने वाले हम विश्व मे दर्शन अपना आदरपूण स्थान बनाए। यहा यह बात ध्यान देने की है कि सदेह स्वय प्रकृति मे भी विद्यमान है केवल हमी मे नही। वे दशन को मात्र विश्लेषण तक ही सीमित नही रखना चाहते। न वे यही चाहते हैं कि दाशनिक एक छोटा मसीहा ही हो जाए। ड्यूई के अनुसार दाशनिक सस्कृति का डाक्टर है [नीत्शे के मुहावरे को यदि काम मे लें तो] और एक तकशास्त्री भी। दशन बुद्धिप्रवीणता की अपनी प्रवत्ति एव प्रणाली से साक्षात्कार कर लेने का नाम है। *क्योकि हम आज चेतना प्राप्त है इसलिए हमारी* यह चेतना कला विज्ञान एव शिल्प के बीच मध्यस्थता का काय कर सकती है। दाशनिक वैज्ञानिक के काय को सरल बनाने मे उसकी सहायता कर सकता है क्योकि बुद्धिप्रयोग सम्बन्धी प्रणालियो की जानकारी उसे वैज्ञानिक से कही ज्यादा प्राप्त है। और चूकि वैज्ञानिक की रुचि किसी अनुभव के सीमित होने से होती है इसलिए एक दाशनिक उसकी सकीणता मे सुधार कर सकता है। इस प्रकार दाशनिक आलोचना की आलोचना मे निहित अनबूझ स्थिति का स्पष्टीकरण करने वाला है तो भी यह एक दृष्टि है जो अपने आपको विशाल व उदार प्राकल्पो मे अभिव्यक्त करता है। जिसके जरिये मनुष्य यह ज्ञान प्राप्त करता है कि मूल्य निर्धारण की सम्पूण प्रणाली का किस प्रकार उपयोग एव विकास किया जाना चाहिए।

अमरीका क बहुत स दूसरे दाशनिकों[1] ने भी अथक्रियावाद क प्रभाव म रचनाए की है और योरोप महाद्वीप मे भी उसका कम प्रभाव नही रहा । इटली म तो जी॰ पपीनी के सहयोगियो के एक वग न तथा लियोनार्डो नामक पत्र ने 1903–1907 तक) जेम्स क इस अथक्रियावाद को मानव कम सम्बन्धी एक सदेश माना है । और मुसोलिनी ने भी जेम्स को अपन गुरु होन का सदहास्पद स्थान दिया था ।[2] फ्रास म इससे भी अधिक अथक्रियावाद म लोगो की रुचि हुई । इसका कारण जेम्स का फ्रासीसी दशन स परिचित होना था । अथक्रियावाद न बहुत सी समालोचनाओ को जन्म दिया और जोर्जेस सोरल जस प्रतिभावान दाशनिक का समथन प्राप्त किया ।

सोरल इससे पूव बगसा क प्रभाव मे आ चुके[3] थ । 1908 म लिखे उनक रिफलेक्शन्स आन वायोलेंस सामाजिक क्रिया क सम्बन्ध म विज्ञानवादी

---

[1] उदाहरणाथ द्रष्टव्य 1917 म प्रकाशित ड्यूई एव अन्य विचारकों द्वारा लिखित सहयोगी ग्रन्थ क्रिएटिव इण्टेलीजेन्स । बाद के अथक्रियावादियो म कदाचित् जी॰ एच॰ मीड सबस महत्वपूण है । 1938 मे उनक मरणोपरान्त प्रकाशित द फिलसोफी आव द एक्ट नामक ग्रन्थ क्रिया का विस्तार से विश्लेषण करता है और उसकी पृष्ठभूमि म ड्यूई का जाच पडताल का सिद्धान्त क्रियामाण है । द्रष्टव्य, सी॰ डबलू मोरिस कृत पीयस–मीड एण्ड प्रेग्मेटिज्म (पी॰ आर॰ 1938) ए॰ ई॰ मर्फी कान्सर्निंग मीड्स द फिलोसोफी आव द एक्ट (जे॰ पी॰ 1939) अन्य अथक्रियावादी रचनाओ म उदाहरण के लिए द्रष्टव्य, एस॰ हुक्स कृत मेटाफिजिक्स आव प्रेग्मेटिज्म (1927) । ए॰ एफ॰ वण्टले कृत बिहेवियर, नोलेज, फक्ट । (1935) ए॰ डबलू मूर कृत प्रेग्मेटिज्म एण्ड इट्स क्रिटिक्स (1910) । सी॰ डबलू॰ मोरिस कृत सिक्स थियरीज आव माइन्ड (1932)

[2] द्रष्टव्य परी कृत थोट एण्ड केरेक्टर जी॰ मेगारो, मुसोलिनी इन द मेकिंग (1938) । निश्चय ही जेम्स का टाटेलिटेरिएनिज्म (एकदलवाद) क प्रति कोई सहानुभूति नही थी जिसके लिए जी॰ जेण्टाइल जसे प्रत्ययवादियो ने बौद्धिक ढिठाई का काय किया था–लेकिन फासिज्म अपनी आरम्भिक अवस्था म काय क लिए अपनी पुकार और उत्साहित होन के प्रति उसकी अपील सहित बिना बेहूदगी के जेम्स को अपने समथकों म सम्मिलित मान सकता है । द्रष्टव्य मकिन पर लिखा जेम्स का निबन्ध जो पपीनी एण्ड द प्रेग्मेटिस्ट मूवमेण्ट इन इटेली जे॰ पी॰ 1909)

[3] जेम्स पर लिखी गई इन रचनाओ के अलावा द्रष्टव्य, जे॰ ए॰ वाह्ल कृत प्लूरलिस्ट फिलोसोफीज आव इगलण्ड एण्ड अमरीका (1920 अग्रेजी अनुवाद 1925 ई लिराऊ कृत ल प्रग्मातिज्म अमरीकेन एत एग्लस (1922) । सोरल के लिय देख, आर॰ हम्फ्रे जार्जिस सोरेल प्रोफेट विदाउट आनर (1951)

प्रणाली से सोचने तथा केवल वचारिक आधार पर कुछ कहने के विरोध म उनका यह प्रहार है । 1921 म प्रकाशित यूनिट आव प्रेग्मेटिज्म मे सोरल न जेम्स का स्वागत विज्ञानीकरण के विरुद्ध सघष करन म अपने सहयोगी के रूप म किया है। योरोप मे उनके अनुसार चू कि जेम्स का पक्ष नही लिया गया इसलिए उनके दशन को अतलान्तिक क्षेत्र म उपजी काल्पनिकता की सज्ञा भी दी गई है । सुवाद के समय एक उपकरण के रूप मे उपयोग करने के लिए सोरल न अथक्रियावाद का प्रयोग उपयुक्त माना है । यहा फिर अथक्रियावाद सामाजिक दशन से भी ऊपर उठ जाता है—जबकि आज के समाजशास्त्री सिद्धान्तको द्वारा यह वाद सर्वाधिक सदभयाग्य माना जा रहा है ।

अध्याय 6

तर्कशास्त्र के क्षेत्र मे नये विकास[1]

ब्रितानी अनुभववादी आकारी तर्कशास्त्र को हेय मानने मे एकमत थे। वे यह मानते थे कि यदि इसका कोई भी उपयोग है तो वह उसे विचारकला मानकर चलने मे ही उनकी धारणा थी कि विचार को किसी कला की आवश्यकता नही और यदि उसका विकास स्वाभाविक तौर पर हो तभी वह श्रेष्ठतम रूप मे क्रियमाण रहता है। उस आकारी तर्कशास्त्र के नियमो के पालन की आवश्यकता नही। इस प्रकार सत्रहवी और अठारहवी शताब्दियो मे आकारी तर्कशास्त्र ने ग्रेट ब्रिटेन के सक्रिय दार्शनिक जीवन मे शायद ही कोई योग दिया हो। हा ओक्सफोर्ड के जो मध्ययुगीन विचारधारा का आखिरी पोषक शेष रह गयी थी, *उपस्नातको* मे अभी भी आकारी तर्कशास्त्र के प्रति कुछ रुचि थी। जावट के अनुसार तर्कशास्त्र न तो विज्ञान ही है और कला ही—यह तो एक खुराक सी है। अभी तक पढ़ाये जाने वाले अथवा तोते की तरह रटा दिये जाने वाले तर्कशास्त्र का यह एक सीमा तक सही मूल्यांकन है। ए० एडरिच कृत आर्टिस लोजीकीए कम्पेण्डियम (1691) जो तकनीकी पदो का ऊटपटांग आकलन था उपस्नातको की स्मरण शक्ति मे बैठाने के लिए उन्हे पद्यात्मक रूप मे बड़े सतर्क ढंग से रखा गया था—और 1831 तक तो तर्कशास्त्र ऑक्सफोर्ड के उपस्नातको के लिए एक अनिवार्य विषय था।

---

[1] यह एक ऐसा विषय है जिसे बड़े नाजुक एवं समुचित ढंग से अध्ययन किया जाना चाहिए। इससे हमारी समझ के लिए विस्तार से अध्ययन किये जाने वाले तकनीकी प्रश्न भी छूटने नही पाएगे। मैंने तो मात्र वस्त के लिए उन बातो की चर्चा की है जिनकी आधुनिक तर्कशास्त्रियो द्वारा अत्यन्त सामान्य तौर पर चर्चा की गई है। अधिक संतोषप्रद सामग्री के लिए देखें सी० आई० लेविस कृत ए सर्वे आव सिम्बोलिक लोजिक (1915) जे० जारजेनसन कृत ए ट्रीटीज आव फार्मल लोजिक (1931), एल० लियार्ड कृत ल लोजीसीएन्स एंगलाइस कण्टेम्पोराइन्स (1907-संस्करण), ए० टी० शीयरमन कृत द डेवलपमेण्ट आफ सिम्बोलिक लोजिक (1906), पी० ई० बी० जोरडेन कृत डेवलपमेण्ट आव द थ्योरीज अव मैथेमेटिकल लोजिक एण्ड मैथेमेटिक्स (क्वाटरली जरनल, प्यार एण्ड एप्लाइड मैथ्स (1910-12)। 1936 के द जरनल आव सिम्बोलिक लाजिक (ए० चर्च कृत) मे उत्तम पुस्तकसूची देखें। 1938 के संस्करण मे उन्हे परिष्कृत एवं परिवर्धित किया गया है और साथ ही परवर्ती वर्षो मे प्रकाशित पुस्तको की एक सूची भी है।

1826 में प्रकाशित आर० व्हाटले की पुस्तक एलीमेण्ट्स आव लोजिक उपर्युक्त पुस्तक की ऊटपटांग प्रणाली के विपरीत एक सुनियोजित कृति थी। व्हाटले परम्परागत तर्कशास्त्र की पुनः सिद्धि तथा उसका बचाव करने के पक्ष में थे। लेकिन व्हाटले द्वारा किया गया पुनः स्थापन एडरिच की चमत्कारोक्तियों से कहीं अधिक समीचीन और जीवन्त था। अनुभववादियों द्वारा तर्कशास्त्र का खण्डन उनके द्वारा उसकी प्रकृति और उद्देश्यों को न समझने के कारण हुआ है और परिणाम यह हुआ है कि उन्होंने सामान्य बुद्धि की शक्तियों को अनावश्यक महत्व दे दिया है। वे अपनी लाजिक नामक पुस्तक के बाद के संस्करण में इसलिए बड़े न्यायोचित ढंग से यह घोषणा कर सके कि उनकी रचनाओं ने तर्कशास्त्रीय अध्ययन सम्बन्धी पुनः उत्पन्न हुई रुचि के लिए महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

सर विलियम हैमिल्टन ने भी अपना अविस्मरणीय प्रभाव उसी दिशा में डाला। आज का तर्कशास्त्र का इतिहास-लेखक हैमिल्टन का अत्यन्त अरुचि से सन्दर्भित करता हुआ उन्हें एक चमत्कारी स्काटवासी बहादुर की संज्ञा से अभिहित करता है जब कि उनके समसामयिक उन्हें निश्चय ही अपने समय का सर्वश्रेष्ठ दार्शनिक एवं विद्वान मानते थे। बूले ने जिन्हें असहानुभूतिपूर्ण आलोचक कहा जा सकता है 1847 में लिखा कि सर विलियम हैमिल्टन के विषय में कुछ अन्यथा कहें उससे पूर्व यह जरूरी है कि हम उनकी विद्वत्ता और प्रतिभा के प्रति वह आदर दिखाएँ जो वे हमसे स्वतः प्राप्त कर लेते हैं। जब हैमिल्टन ने न केवल यह सुझाया कि तर्कशास्त्र का अध्ययन आवश्यक है अपितु यह भी घोषणा की कि तर्कशास्त्र सम्बन्धी नये अन्वेषणों का युग प्रादुर्भूत होने वाला है तो उनके पाठकों में इसका बड़ा प्रभाव पड़ा। उन्होंने अरस्तू के अनुसरण में चलने वाले बहुत से तर्कशास्त्रियों को सतर्क किया कि वे उनके निष्क्रिय अनुक्रमण (पैसिव सीक्वेसिटी) के सिद्धान्त का अन्धानुकरण करना छोड़ दें। उन्होंने इस तथ्य की ओर उसका ध्यान खींचा कि अब तो बहुत से सामान्य प्रचलन के निर्णय एवं तर्कनात्मकता के लिए वैध मान लिए गए हैं और कुछ सम्बन्ध (रिलेशन्स) जो अभी तक अज्ञात थे अब प्रकाश में आने शुरू हो गये हैं।[1] यह काण्ट की इस मान्यता से

---

[1] हैमिल्टन ने तर्कशास्त्र के अंश समय समय पर प्रकाशित करवाये थे। इनके एडिनबरा रिव्यू 1833 में प्रकाशित एवं डिस्कशन्स आन फिलोसोफी एण्ड लिटरेचर नाम से पुनर्मुद्रित इनका लोजिक द रीसेण्ट इंगलिश ट्रीटीजेज आन द सब्जेक्ट नामक लेख काफी महत्वपूर्ण था। उनके तर्कशास्त्र पर दिए गए भाषणों का संग्रह लेक्चर्स आन लोजिक, जिसमें बाद के तर्कशास्त्रियों की तर्क प्रणाली को उद्धरणों से समझाया गया है 1861 में उनके मरणोपरान्त प्रकाशित हुआ। 1850 में प्रकाशित एन ऐसे आन द न्यू एनालिटिक आव लोजिकल फार्म्स

अलग भी कोई बात थी कि तर्कशास्त्र ने अपनी पूर्णता प्राप्त कर ली है। या फिर ह्वाटले की इस धारणा को निर्मूल करना था कि तर्कपदी ही वैध तर्कप्रणाली का आधार है। अब ऐसा लगता था कि तर्कशास्त्र की पुनः सिद्धि की आवश्यकता नहीं थी अपितु उसके नये जन्म की भूमिका बन चुकी थी।

हेमिल्टन के जिन तकनीकी नवोन्मेषणों ने अपने समसामयिक विद्वानों की प्रशंसा प्राप्त की उनमें बहुविदित था विधेय-परिमाणन (क्वान्टिफिकेशन आव द प्रेडिकेट) का सिद्धांत जो यद्यपि उनके स्वयं के लिए मौलिक नहीं था[1] और न ही तर्कशास्त्र में हुए बाद के विकास में अधिक सहायक ही रहा लेकिन अत्यन्त आकर्षक रूप से इसने उस दिशा की ओर संकेत किया था जिसकी ओर तर्कशास्त्र भविष्य में जाने वाला था।

नामक ग्रंथ में परिशिष्ट में टी० एम० बेन्स द्वारा हैमिल्टन के विभिन्न लेखों को संगृहीत कर लिया गया है। 1842 में डब्लू टोमसन द्वारा प्रकाशित लाज आव थोट नामक पुस्तक में हैमिल्टन के प्रभावान्तर्गत लिखी गई अत्यन्त महत्वपूर्ण रचनाओं का संग्रह है। उनमें संयोजित सारणियों के लक्ष्यार्थ को उन्होंने नये ढंग से परम्परागत तर्कशास्त्र के तात्कालिक लक्ष्यार्थों की समता में खड़ा कर दिया।

[1] यदि महाद्वीपीय लेखकों की चर्चा करें तो जोर्ज बेन्थम ने 1827 में आउटलाइन आव ए न्यू सिस्टम आव लोजिक लिखकर हेमिल्टन की तर्कशास्त्र-संबंधी धारणाओं का पूर्वानुमान सा दिया था। यह रचना उन्होंने अपने चाचा जर्मी बेन्थम की अवशिष्ट हस्तलिपियों में से तैयार की थी। यह कभी कभी कहा जाता है (उदाहरण के लिए जोर्जेंसन द्वारा) कि हैमिल्टन बेन्थम के विचारों से परिचित नहीं थे लेकिन वास्तव में हैमिल्टन ने एडिनबरा रिव्यू में उनकी उपर्युक्त पुस्तक का रिव्यू लिखा था।

डी मोर्गन के साथ चले लम्बे विवाद में जहाँ उन्होंने परिमाणक रूप में अपनी पूर्ववर्तिता (प्रायारिटी) सिद्ध की है उन्होंने यह बात मानी है कि उस पत्र में छपे अपने निबंध के समय से ही उन्होंने तत्संबंधी शोध-कार्य प्रारंभ कर दिया था। आज भी इतिहास के लिए यह एक जिज्ञासा का विषय बना है। लेकिन ईमानदारी से बेन की इस दृष्टि को स्वीकार लेना चाहिए कि हैमिल्टन ही परिमाण के सिद्धांत का विस्तृत रूप से प्रयोग करने वाले सर्वप्रथम तर्कशास्त्री थे। हैमिल्टन भी इससे अधिक किसी स्थिति का दावा भी नहीं करते। द्रष्टव्य हेमिल्टन कृत डिस्कशन्स एवं डी० मोर्गन कृत फोरमल लोजिक जिसमें यह विवाद विस्तृत विवेचित है।

परम्परागत तकशास्त्रानुमार सभी कथनो को चार रूपा म व्यक्त किया जा सकता है : सब क–ख हैं कोई क–ख नही हैं कुछ क–ख है–कुछ क–ख नही है। इन सबम विधेय म किसी परिमाण का सकत नही मिलता। इसके विपरीत हेमिल्टन क तकशास्त्र म विधय को परिमाणित किया गया है। उदाहरण के लिए सब क–सब ख है इसका उद्देश्य हेमिल्टन के लिए सभी तक वाक्यो को समानात्मक पदो का रूप दना था। उन्होने लिखा–एक तक वाक्य म सदव ही कता और उसके विधेय के बीच समानाथक सभावना देखी जाती है। परम्परागत तकशास्त्र म कोई भी तकवाक्य अपने कर्ता को सदव ही गुणो स युक्त करता है।– नवीन विश्लेपण क अनुसार तकवाक्य द्वारा दानो स्थितियो अथवा श्रेणियो म तादात्म्य खोजा जाता है। इसका परिणाम यह हुआ कि हेमिल्टन के द्वारा निरन्तर गणित क प्रति किय गय प्रहार क बावजूद भी उनका विधेय परिमाणन का सिद्धात यही सिद्ध करता है कि उनक तकशास्त्र का आधार समीकरण का सिद्धात ही रहा। इसके अतिरिक्त भी अपनी समीकरण अभिवृत्तियो के साथ उन्होन तकशास्त्रीय कलन (लोजिकल कलकुलस) के सिद्धात को भी जोड दिया और उसे तकशास्त्रीय शब्दाकन (नोटेशन) का रूप भी द दिया। तकवाक्यीय एव तकपदीय दोनो ही प्रकार की तकप्रणालियो के नये एव पुरान प्रयोगो को यात्रिक सरलता से व्यक्त करन की अपनी क्षमता का परिचय भी उन्होने दिया। हेमिल्टन की प्रतिभा उनकी महत्वाकाक्षा के अनुकूल नही थी लेकिन सभावनाओ का प्रकटाना ही अपने आपमे एक ऐतिहासिक महत्व की वस्तु तो है ही।

ए० डी० मोरगन कृत फोरमल लोजिक (1849) के प्रकाशन क साथ ही तकशास्त्र म क्राति का सूत्रपात हो गया था।[1] डी० मोरगन आजकल अधिक चर्चित नही है। उनक द्वारा किये गये नवोन्मेपण तकशास्त्रीय परम्परा के साथ घुलमिल गय है। उनकी यह उपेक्षा अ शत इस तथ्य के कारण है कि उनकी क्रातिकारी रचना ट्राजेक्शन्स आव द केम्ब्रिज फिलोसोफीकल सोसाइटी (1849–64) अभी तक छिपी पडी रही–। हा, सिलेबस आव ए प्रोपोज्ड सिस्टम आव लोजिक (1860 नामक ग्रन्थ म उसके कुछ सक्षिप्त अ श अवश्य प्रकाशित हुए थ। उनकी फोरमल लोजिक

---

[1] द्रष्टव्य जी० बी० हाल्स्टड का डी० मारगन एज लोजिशियन जनरल स्पेकुलेटिव फिलोसोफी (1884) एस० ई० डी० मोरगन कृत मेमोयर आव आगस्त डी० मोरगन (1882) सी० आई लीविस ने उपयुक्त रचना म डी० मोरगन के तकशास्त्र का पूण विवरण दिया है। ए० डी मोरगन का 1860 के द इगलिश साइक्लोपीडिया के पाचव अक म तकशास्त्र पर लिखा निबध और उनके द्वारा उसक समसामयिक तकशास्त्र पर की गई टिप्पणी द्रष्टव्य है।

नामक पुस्तक आज के तर्कशास्त्रियों के लिए अधिक उपयोग की नहीं है। उसमें अभी भी अरस्तू का प्रभाव देखा जा सकता है। बस इसमें अरस्तू के तर्कशास्त्र को नये दृष्टिकोण से देखा गया है।

बाद के कार्टेजियन दार्शनिकों की सामान्य धारणा यह थी कि तर्क का कार्य प्रत्ययों को संयोजित करना है। डी॰ मोरगन ने हाब्स की इस अपधर्मिता का पुनरुद्धार किया कि तर्क नामों अथवा शब्दों से संबंधित है। हाब्स ने यह भी कहा था कि तर्कशास्त्र कलनात्मकता का ही एक प्रकार है। ये दोनों सिद्धान्त स्वाभाविक तौर पर परस्पर जुड़े हैं। एक प्रत्यय अपने आप में एक अर्थ को व्यक्त करता है जबकि शब्दों को बिना अर्थ के इधर उधर प्रयुक्त किया जा सकता है। बीजगणितीय कलन के आधार पर यह आसानी से समझा जा सकता है कि किस प्रकार तर्कशास्त्र कभी नाम के सिद्धान्त की प्रणाली रही होगी।

लेकिन अभी तक तो यह माना गया था कि बीजगणितीय प्रतीक सदैव ही परिमाण हैं और उनके फलन को व्यक्त करते हैं—जैसे जोड़। लेकिन परिमाण के सहारे तर्कशास्त्र और बीजगणित की क्षमता बताये जाना बहुत दूर तक संभव नहीं है। उन्नीसवीं शती के प्रारंभ के अंग्रेज बीजगणित शास्त्री अपनी बीजगणित संबंधी पुरानी धारणाओं का महत्वपूर्ण तरीके से दो तरह का प्रयोग कर रहे थे। उन्होंने सर्वप्रथम इस बात का खंडन किया कि बीजगणित के इस नियम में

$$\text{अ} + \text{ब} = \text{ब} + \text{अ}$$

अ और ब दोनों परिमाणसूचक हैं। उन्होंने तो यहाँ तक माना कि जो कोई मूल्य अ और ब दोनों की तरह का है वह इस नियम की सिद्धि करेगा ही। और इस कथन का कि केवल परिमाण ही यदि इस नियम को सिद्ध करता है क्योंकि परिमाण ही जोड़ा जा सकता है यह उत्तर दिया गया कि तो फिर धन का चिह्न जोड़ के लिए प्रयुक्त नहीं होना चाहिए। वह तो एक ऐसी अवस्था को व्यक्त करता है जिसे यदि किसी विशिष्ट समान अवस्था में रूपान्तरित किया गया तो वह उसके लिए उपयोगी सिद्ध होगी। डी॰ मोरगन का उदाहरण लें तो धन के चिह्न का अर्थ है बंध आना और यदि अ ब से बंधा है तब स्वतः ही ब अ से बंधा होगा। इस तरह अ + ब अभी भी ब + अ के बराबर होते हैं।

डी॰ मोरगन ने इस नवीन दृष्टिकोण द्वारा 'है' नामक क्रिया का स—प है।' जैसे परम्परागत तर्कवाक्य के उदाहरण से नई व्याख्या की। स एवं प उन सामान्य प्रतीकों के रूप में सदा से ही अध्ययन किए जाते रहे हैं जिन्हें किसी पद द्वारा बदला जा सकता है। लेकिन यह मानना कि है का एक निश्चित अर्थ है, इस पर

है, ज्ञान और विश्वास दोनो को एक फलाव दिया जा सकता है ।' इसी कारण स्वय मोरगन के समक्ष समावना (प्रोबेबिलिटी) का विवरण देने म भी प्रत्यक्ष मुश्किल आई । विशेष रूप से मनोविज्ञान और गणित शास्त्र के बीच कोई समत्व स्थापित करने मे । वे य कहना चाहते थ कि समावना कभी भी वस्तुपरक नही होती । वह तो हमारे मन की अवस्था पर निभर करती है ।

किसी विशेष प्रकार के तथ्य मे उसका कोई तादात्म्य नही और न उसी आधार पर कोई विश्वास समाव्य हो सकता है । लेकिन इसी के साथ डी मोरगन यह स्वीकारते है कि किसी विश्वास की समाव्यता उन व्यक्तियो की विश्वसनीयता के साथ मेल नही खा सकती जिस अ श मे व उसे स्वीकारते है । किसी विश्वास की समाव्यता म हमारी आस्था का होना, यदि हम विवेकशील हैं तो अनिवाय है । यह एक ऐसी छूट थी जिससे उनके अनुयायियो को मनोवज्ञानिक एव आत्मपरक समाव्यता के सिद्धा त को छोड देने मे बल प्राप्त हो सका । डी मोरगन के समय से ही समाव्यता के सिद्धा त का एक अधिक सतोषप्रद ढाचा खडा करने और उसे गणितीय एव प्रतीकात्मक तकशास्त्र के समाना तर स्थापित करने के प्रयास प्रारभ हो चुके थे ।

आधुनिक पाठको के लिए अधिक परिचित रूप म तकशास्त्र अपना आकार ग्रहण करने लगा था और इस आकार को मूत रूप देने वालो म जाज बूले[1] का नाम लिया जा सकता है । बूल के समय म आधुनिक तकशास्त्र का एक निरन्तर

---

[1] द्रष्टव्य आर० हारले द्वारा ब्रिटिश क्वाटरली रिव्यू (1866) म लिखा गया स्मरणाश, जिसे स्टडीज इन लोजिक एण्ड प्रोबेबिलिटी (आर० रीज द्वारा सपादित सम्करण 1952) म पुनमु द्रित किया है । उसी अ क मे सम्पादकीय टिप्पणी भी देख । माइण्ड 1876 म प्रकाशित जेवन कृत बूलेज लाजिकल सिस्टम एव 1881 म प्रकाशित सिम्बोलिक लोजिक । डब्लू एस० जेवस का एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका 1870 मे बूले पर लिखा अ श पी० ए० एस० 1901 मे प्रकाशित एस० ब्रायण्ट कृत लेख द रिलेशस आव मैथेमेटिक्स टू जनरल फोमल लोजिक । डब्लू नील कृत (माइण्ड 1948) बूले एण्ड रिहाइवल आव लोजिक । ए० एन० प्रायर (ए० जे० डी० 1949) केटेगोरिकल्स एण्ड हाइपोथेटिकल्स इन जॉज बूले एण्ड हिज सक्सेसस । बूल का अपने समय के गणित से जो सबध रहा उसके लिए देखें ई० नजन द्वारा लिखित इम्पोसिबल नम्बस (कोलम्बिया स्टडीज इन द हिस्ट्री आव आइडियाज तृतीय 1935) ई० टी० बेल कृत मैन आव मैथेमेटिक्स (1937) एव द डवलपमेण्ट आव मैथेमेटिक्स 1940) ए० मकफारलेन कृत लेक्चस आन टन ब्रिटिश मैथेमेटिशियन्स (1916)

इतिहास हैं। डी० मोरगन की भाति बूले भी एक गणितज्ञ थे और उ होंने तक शास्त्र को बीजगणितीय दृष्टि से देखा था। यह बात विशेषकर उनकी 1847 मे प्रकाशित कृति द मैथेमेटिकल एनालिसिस ग्राव लोजिक बीग एन ऐसे टुवड स ए केलकुलस ग्राव डिडक्टिव रीजनिंग तकशास्त्र को यहा पर बीजगणित की प्रजाति के रूप म एक ग्रपरिमाण मूल बीजगणित के रूप म प्रस्तुत किया गया है।

सवप्रथम तो यह वर्गों का बीजगणित है—जिन्हें सामान्य नामो के रूप म वस्तुग्रा स जोड दिया गया है। उसम उन प्रक्रियाग्रा का भी जिक्र है जिनके जरिए वग चुना जाता है और जुड जाता है और इन्हें ही बूले न तकशास्त्रीय ग्रनुमान का मूलाधार माना है। यदि हम इन प्रक्रियाग्रो की जाच करें तो हमे शीघ्र ही यह मालुम पड जायगा कि उनम स बहुतो का तो बीजगणितीय नियमो मे ढाला जा सकता है।

उदाहरण के लिए, यह बात बेमानी है कि पहले हम किसी एक वग म उन वस्तुग्रो को चुनते हैं जो क्ष हैं और तब निष्कर्षो मुख वग से सभी य चुन लते हैं ग्रथवा पहले य चुनकर हम तब उनम से क्ष ग्राज निकालते हैं। [illegible] चुनन की प्रक्रिया का क्ष के प्रतीक से प्रतिनिधित्व करते हुए बूले यह इस तथ्य को मूत रूप दते हैं कि हमारे चुनन का क्रम समीकरण क लिए बेमानी है।

क्ष य=य क्ष

स्तनधारी प्राणिया के वग जो चौपाय हैं उस चौपाय वग स तादात्म्य रखता है जा स्तनधारी है।

इसी तरह हमारे द्वारा क्ष का एक विशप वग से चुन लिया जाना ग्रथवा वग क भी और उपवर्गो से उसका चुन लिया जाना हमारे लिए बेमानी है। ससार मे व्याप्त चौपाय जानवरा का वग दक्षिणी गोलाद्ध म रहन वाले चौपायो म मल खाते हुए हैं ही और निश्चय ही व उत्तरी गोलाद्ध के चौपायो स भी भिन्न नही हैं। यह एक ऐसा तथ्य है जिसे बूले इस प्रकार क बीजगणितीय सूत्र म रखता है।

क्ष (म+न)=क्षम+क्षन

ग्रभी तक तो य नियम केवल परिमाण मूलक तकशास्त्र क क्ष य म और न द्वारा मानी गई सख्या एव तकशास्त्रीय बीजगणित क वर्गों का प्रतिनिधित्व करन वाले प्रतीको क रूप म प्रयुक्त होते थे। लेकिन बूले के तकशास्त्रीय बीजगणित से सबधित दूसरे नियम भी है जो साधारणत परिमाणमूलक बीजगणित क चेत्र म बाहर चले जाते हैं। मान लो कि हम पहले—चौपायो म से सब स्तनधारी प्राणिया को चुन लें और तब हम ग्रपन द्वारा इस चुन हुए वग म स चौपायो का चुनें तो

यहां यह तो स्पष्ट है कि पहले से बडा तो कोई चौपायो का वग अब हमारे सामने नही है, लेकिन चौपायो का वही वग ता है । इसी तथ्य को बूले इस प्रकार स मून रूप दते हैं—

$$\text{क्ष} \times \text{क्ष} = \text{क्ष}$$

भौर अधिक सामा य रूप स

$$\text{क्ष}^{\text{न}} = \text{क्ष}$$

अब यह निश्चय ही यह नियम नही है जिस हम स्कूल के बीजगणित म कही पढ सकें । लेकिन इस प्रकार के भद्भुत सिद्धान्तो के उद्भव न बूले को भपन बीज गणितीय भध्ययन स तनिक भी विचलित नही किया क्योंकि उनके पूववर्त्तिया क सामने भी एसी विचित्रताए प्रस्तुत हुई थी भौर उनके माग मे बाधक बनी थी । बीजगणितीय नियमा स सबधित यह सघटना, जो केवल जीवित रूप म प्रयुक्त की जा सकती है 'क्वाटरनियन सिद्धा त म पहले स ही "यक्त कर दी गई थी जिस 1843 के भासपास ही भाइरिश गणितशास्त्री सर हेमिल्टन द्वारा प्रयुक्त किया गया था । इसके भतिरिक्त ही बूले ने कहा था कि

$$\text{क्ष}^{\text{न}} = \text{क्ष}$$

की परिमाणमूलक "याख्या भी की जा सकती है यदि हम यह बात मानलें कि क्ष का मूल्य 1 अथवा 0 है । बूले ने भपने महत्वपूण समीकरणों स यह सिद्ध किया था कि विचार के नियम द्विधात्मक बीजगणित के नियमो स मेल खात है ।

इस तादात्म्य की खोज बूले क मतानुसार केवल मात्र गणितीय जिज्ञासा ही नही थी । इसस एक ऐसी प्रणाली के लिए माग प्रशस्त हो गया जिससे प्रतिदिन के कथनो क भाशया का परीक्षण एव ताकिक विश्लेषण किया जा सकता है । इस प्रकार क कथनो को निश्चय ही पहले समीकरण मे रूपा तरित करना होगा । परम्परागत तकशास्त्र के चार प्रकारा का जि ह बूल कथनो क महत्वपूण प्रकार मानते हैं इस प्रकार पुन प्रस्तुत करते हैं—

सब क्ष य हैं $\text{क्ष}\,(1-\text{य}) = 0$

कोई भी क्ष य नही है $\text{क्षय} = 0$

कुछ क्ष य हैं $\text{क्षय} = \text{व}$

कुछ क्ष य नही है $\text{क्ष}\,(1-\text{य}) = \text{व}$

यहा पर 1 समष्टि का[1] प्रतिनिधित्व करता है एव 1–य उस समष्टि म स य निकाल लिये जाने के बाद बने हुए अ श का। व की व्याख्या को जानी अपेक्षाकृत अधिक कठिन है। बूले इसकी परिभाषा किसी वग के कुछ, कि तु अनिश्चित सख्या वाले सदस्या के प्रतीक के रूप मे करते हैं। इस प्रकार

क्ष य=व

का अथ यह है कि बहुत स सदस्यो सहित एक ऐसा वग है जो क्ष और य दोनो को अपने म समाहित किये है। बूले व क प्रतीक को कलन प्रणाली के लिए इसलिए उपयोगी मानते हैं क्योंकि इस एक ही प्रणाली क द्वारा क्ष और य दोनो अवस्थाओ का उपयोग किया जा सकता है। उ होने इस प्रणाली का वद्ध मान स्वत त्रता के साथ प्रयोग किया है और उ होने तो 'सब क्ष य–हैं' को इस रूप म भी व्यक्त कर दिया है।

क्ष=व य

जिसका यह अनुमान भी लगाया जा सकता ह कि क्ष य के किसी अनिश्चित अ श के साथ तादात्म्य रखता ह बजाय इस समीकरण क जो अधिक विशद है—

क्ष (1–य)=0

उनके अनुयायी इसके विपरीत व को नापस द करते थे क्योंकि वह एक भद्दी और बेहूदी तथा एक ऐसी अभिव्यक्ति की ओर ल जाता था जिसकी व्याख्या नही की जा सकती हो। समानताओ और असमानताओ का उपयोग करके उ होने इस पद को

कुछ क्ष य नहीं हैं यो लिखना पसन्द किया।

क्ष (1–य)=0

वे इसे एमे लिखना पस द नही करते —

क्ष (1–य)=व

---

[1] बाद म बूले ने डी मोरगन के प्रवचन प्रसग क सिद्धा त को अपना लिया था। इसके अनुसार किसी कथन की सीमा उसके प्रसग से निर्धारित हो जाती है। हेमलेट फाल्स्टाफ की अपेक्षा कम समाहृत ह" इस नियम के अनुसार औप यासिक जगत के सन्दभ को प्रस्तुत करता ह जबकि 'ग्लेडस्टन डिजराइले की अपेक्षा कम आदरणीय ह औप यासिक जगत के प्रसग को न उठा कर वास्तविक-जगत के इतिहास को प्रस्तुत करता है। प्रत्यक कथन इसी प्रकार की समष्टि की ओर इ गित करता ह जिसम ही वह सही अथवा गलत है। बूले ने अपनी बाद की रचनाओ म 1 का उपयोग प्रवचन प्रसग को व्यक्त करन के लिए ही किया है न कि समष्टि को व्यक्त करन क लिए।

यह प्रत्यक्ष तकनीकी बिंदु बूल की विधि का समझने के लिए कुछ महत्व का है। द्विधात्मक बीजगणित म एक प्रकार के कथनो को समीकरण मानकर उनसे कुछ सिद्धिया करना तथा उन्ह सीमित अवस्थाओं म बीजगणितीय प्रक्रियाओ के साथ जोडना और तब उनके परिणामो की तकभाषा म पुनर्व्याख्या करना ही बूल की प्रणाली थी। वे इस बात स तनिक भी विचलित नही होते थे कि इस सिद्धता के विश्लेषण म आई विभिन्न अवस्थाओ से उपज समीकरण उन्ह तार्किक पदावली की ओर ले जा रहे हैं अथवा नहीं। दूसरे शब्दो मे, उन्होने तकशास्त्र को विशुद्ध बीजगणित के रूप म देखा था, जिसका उनके कोई भी अनुयायी अनुकरण करना नही चाहते थे।

एक ऐसे बीजगणित से प्रारम्भ करके जहा पर अक्षर, प्रतीक–वर्गों का प्रतिनिधित्व करते थे बूल ने अपने बीजगणित की एक वकल्पिक व्याख्या प्रस्तुत करने की सम्भावना बहुत शीघ्र ही देख ली थी। सबसे पहले वे इस कथन का कि 'यदि अ ब है तो स द है' इस तरह सक्षिप्तीकरण करते है यदि क्ष सत्य है तब य भी सत्य है'–। यहा पर क्ष और य दोनो किसी वर्ग का प्रतिनिधित्व करने वाली पदावली नही हैं। तब वे अपने बीजगणित म प्रयुक्त 1 0 और क्ष की पुनर्व्याख्या करते हुए कहते हैं कि 1 सब परीक्षणयोग्य अवस्थाओ का प्रतिनिधित्व करता है और क्ष उन अवस्थाओ का जब क्ष सत्य है। य उन अवस्थाओ का जब य सत्य है। इस प्रकार वे यह प्रतिमान बनाते हैं कि यदि क्ष सत्य है तो य भी सत्य है[1] और उसे बीजगणित की भाषा म ऐसे लिखते है—

$$क्ष\ (1-य) = 0$$

इसका यह मतलब हुआ कि ऐसी कोई अवस्था नही है जब क्ष सत्य है और य असत्य। इसी के समानान्तर बूल के मतानुसार सयोजक पदावलियो को भी समीकृत रूप म व्यक्त एव बीजगणितीय रूप मे विकसित किया जा सकता है। यह पता लगाने वाले

---

[1] बूल यह विचारने लगे थे कि ऐसी अवस्थाओ पर विचार करना कि क्ष सत्य है मुश्किलो से भरा हुआ है। क्योकि कोई भी कथन या तो सही है अथवा गलत। वह कुछ मामलो म तो सही और कुछ मामलो म गलत नहीं हो सकता है। यह कथन कि अ ब है' यदि इस रूप म प्रयुक्त किया जाय कि 'यदि अ ब है' तो वे सदव ही एक विशेष समय की ओर सकेत करते हैं। और तब क्ष का अर्थ यह समझना चाहिए कि 'वही समय जिसमे क्ष सत्य है।' केवल 1 अनन्तता को व्यक्त करता है। यहा पर ऐसा लगता है कि वह हैमिल्टन के अन्दर के दार्शनिक से प्रभावित न होकर उनके अन्दर के गणितज्ञ से प्रभावित हो गये थे। हैमिल्टन ने बीजगणित की व्याख्या समय बताने वाली अवस्थाओं के सिद्धात के रूप म की थी।

वे पहल ही व्यक्ति थ कि तक–कथनो के एव वर्गा क लिए एक ही प्रकार क तार्किक विश्लेपण से काम चलाया जा सकता है।

बूले ने अपने जीवनकाल म ही अपन प्रथम प्रकाशन का इस प्रकार वणन किया कि वह दुर्भाग्यवश बुर रास्ते पर निर्मित हुआ है। स्पष्टत उन्हान अपन आप पर भी गणितीय प्रत्ययो के अत्यधिक प्रभाव म रहन का अभियोग लगा लिया। यह एक ऐसा प्रभाव था जिसे उन्होन **एन इन्वेस्टीगेशन ग्राव द लाज ग्राव थोट** (1854) म सुधार लिया था और 1847–62 के दौरान लिख गय बहुत से निबन्धो म जिन्ह **स्टडीज इन लोजिक एण्ड प्रोबबिलिटोज** (1952) म सकलित कर लिया था उन्हाने प्रभावशाली ढग से यह सुधार किया था। उन्होन यह सिद्ध कर दिया था कि तकशास्त्र बीजगणित की ही एक शाखा थी फिर भी उन्होन उस विचारसबधी नियमो को प्रकटाने वाली पद्धति ही माना था, और जो, उनक अनुसार, अपन स्वभाव से ही गणितीय कलन स कही श्रेष्ठ था। वे इस सम्बन्ध म प्रस्तुत हुई मुश्किलो पर विजय पान म सतोषजनक रूप स सफल न हो सके। बूल की पुस्तक **द लॉज ग्राव थाट** के तत्वदशन सम्बन्धी अश उनके बीजगणित क साथ सावयविक रूप म जुडे होने के बजाय घुसपैठिए ही अधिक लगत हैं– जिसे व तकशास्त्र सम्बन्धी अपने भविष्य म किये जाने वाल योगदानो के रूप म कभी भी पूरा नही कर सके।

बूले के बाद के निबन्धो तथा **द लोज ग्राव थोट** म एक महत्व पूर्ण तकनीकी विकास दिखायी देता है। सम्भाव्यताओ के प्राक्कलन म प्रतीकात्मक तक को प्रयुक्त करन का प्रयास विशेषकर निम्नाकारी समस्याओ के समाधान क लिए —मान लो कि किसी घटना क्ष की सम्भाव्यता प है और य की फ है तो किसी घटना भ्र की सम्भाव्यता का पता लगाने के लिए क्ष और य स उसक सम्बन्धो को काम म लाया जायगा। बूले यहा यह मत व्यक्त नही कर रहे हैं कि इस प्रकार की समस्यायें बिना परिमाण मूलक गणित की सहायता स विशुद्ध तकशास्त्र द्वारा तय की जा सकती हैं। वे तो इन घटनाओ के तक सम्बन्धो क नियत किय जाने वाल महत्व पर बल देते हैं ताकि परिमाण मूलक भाषा म उसका कोई हल खोजन का अपरिपक्व प्रयास न हो। बूल न लाप्लास और डी मोरगन द्वारा प्रस्थापित सम्भाव्यता सम्बन्धी गणितीय सिद्धान्तो म रही भारी कमियो की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए तकशास्त्रीय मामलो म मात्र उनके उपयोग किय जाने म ही सताप व्यक्त किया है।[1]

---

[1] द्रष्टव्य, लीविस कृत उपयुक्त कृति म बूल के सिद्धात की व्याख्या और **स्टडीज इन लोजिक एण्ड प्रोबेबिलिटीज** म लिख गय अध्याय **ग्रोन द थियरी ग्राव प्रोबेबिलिटीज** (1959)। बूल के ग्राधुनिक सांख्यिकी परिगणन के लिए द्रष्टव्य ग्रार० ए० फिशर कृत **स्टटिस्टीकल मथडस एण्ड साइंटिफिक इन्फरेंस** (1956)

एक अन्य बिन्दु जो बूल के सम्भाव्यता के सिद्धांत में प्रकट हुआ है, ऐतिहासिक महत्व का है। सम्भाव्यता का यह सिद्धांत सर्वप्रथम जुए सम्बन्धी अनिश्चितता का पता लगाने के लिए प्रयोग में लाया गया था। उस अवस्था में इसका उपयोग आसानी से विश्वसनीय समस्याओं तक भी किया जा सकता है। और डी मोरगन विशेष रूप से इसी बात में रुचि रखते थे। बूले का क्षेत्र इससे अधिक व्यापक था। वे क्वेतलेत के सामाजिक सांख्यिकी के आकलन से काफी प्रभावित थे। उनकी रुचि का जो मूल बिन्दु था वह सम्भाव्यता के सिद्धान्त की सांख्यिकी के उस प्रयोग में था जिससे समाज-शास्त्री सफल सामाजिक भविष्यवाणियां कर सकता है। यह तथ्य कि लाप्लास के सिद्धांत विभिन्न अवस्थाओं में कार्य करती हुई ऐसी स्थितियों के साथ मेल नहीं खाता था जो परस्पर एक दूसरे को प्रभावित करती रहती हैं और जो जुए विशिष्ट समस्याओं से भिन्न है जहां पर गोलियां अथवा पत्ते को स्वायत्त और स्वतन्त्र स्थितियों के रूप में स्वीकार किया जाता है– यही वह बात थी जिसने बूल को एक अधिक व्यापक सामान्य सिद्धांत बनाने की ओर प्रेरित किया। उन्होंने लिखा था कि अधिक व्यापक सामान्य सिद्धांत बनाने की आवश्यकता परिस्थितियों के कारण ही उत्पन्न हुई है। विशेष कर सामाजिक संघटनाओं के परिवीक्षण के बाद जो किसी भी प्रकार सरल घटनाओं की सम्भावनाओं को हमारे सम्मुख प्रस्तुत नहीं करती और उन्हें एक विशेष संयोग में सम्बद्ध ही जोड़े रखती है चाहे वह सम्बन्ध कार्य-कारण का हो अथवा संयोग से उत्पन्न। यहां हम बाद में विकसित हुए सम्भाव्यता के सामान्य सिद्धांत की मूल प्रेरणाओं को कार्यशील देखते हैं विशेषकर अर्थशास्त्रीय तार्किक जे० एम० कीन्स की रचनाओं में। इंग्लैण्ड में बूल की रचनाओं को बहुत से तर्कशास्त्रियों ने विभाजक रेखा के रूप में स्वीकार कर लिया है। इनमें सर्वविदित डब्लू० एस० जेवन्स[1] और जे० वेन हैं। जेवन्स ने एक तर्कशास्त्री एवं रीतिविधायक के रूप में काफी ख्याति अर्जित की थी। उनकी प्रारम्भिक रचनायें कई बार पुनर्मुद्रित हुई और पाठ्यपुस्तकों के रूप में उपयोग में लाई गई। उन्होंने ही मोरगन से गणित की शिक्षा प्राप्त की लेकिन उनका मानसिक विधान गणितीय नहीं था। उन्होंने प्योर लौजिक (1864) में यह संकेत किया है कि उनका उद्देश्य बूले की तर्कशास्त्रीय प्रणाली को उसके नग्न रूप में प्रस्तुत करना था जिसे उन्होंने गणित की ऐसी पोशाक पहन कर प्रस्तुत किया जो उसे फबती नहीं थी, जो उसको लिए आवश्यक नहीं थी)। उनकी दृष्टि में बूले

---

[1] एक अर्थशास्त्री थे। बाद के वर्षों में इंग्लैण्ड में तर्कशास्त्र एवं अर्थशास्त्र का गहन सम्बन्ध रहा। रेमज और कीन्स आदि सभी दार्शनिक अर्थशास्त्री थे। द्रष्टव्य जेवन्स लेटर्स एण्ड जरनल (सम्पादक एच० ए० जेवन्स 1886) जो सी० रोबर्टसन द्वारा लिखित मिस्टर जेवन्स एण्ड लोजिक (माइण्ड 1876) डब्लू० मेज तथा डी० पी० हेनरी जेवन्स एण्ड लोजिक (माइण्ड 1653)

की प्रणाली तर्कशास्त्र के प्रतिबिम्ब, एक प्रेत, की छाया है। जब [illegible] तो उसके नग्न शरीर की खोज में ही निकले थे[1]। उनका तर्कशास्त्र बूल के तर्कशास्त्र से अधिक उपयोगी है उसमें प्रत्येक प्रक्रिया स्वयंसिद्ध है और व्याख्या न किये जा सकने वाले और असंगत परिणाम प्रस्तुत नहीं करती है, और उनसे यांत्रिक सरलता की भांति अनुमान लगाये जा सकते हैं। ये सारे दावे उचित हैं यदि हम उनमें प्रावधान रख दें कि यद्यपि एक तरह से वे अपेक्षाकृत अधिक सरल हैं, तो भी अनुमान की जो प्रक्रियाएँ वे हमारे समक्ष रखते हैं, जटिल एवं परिश्रम साध्य हैं। लेकिन जेवन्स की चतुराई ने यह कठिनाई भी पार कर ली है। उन्होंने एक ऐसी कलन मशीन का आविष्कार किया जो आवश्यक यांत्रिक प्रक्रिया को खोज लेती थी और जिसे सहज ही हमारे समय के विद्युत संचालित विचार यंत्र का अग्रगामी माना जा सकता है।[2]

जेवन्स के कलन के बहुत प्रशंसक नहीं रहे। क्योंकि जिस बीजगणितीय अवस्था को उन्होंने बूल के तर्कशास्त्र में दोषपूर्ण माना था वह धीरे धीरे उपयोगी होने लगी। यद्यपि जेवन्स का यांत्रिक परीक्षण का विचार सर्वथा भिन्न रूप में सत्य सारणी के रूप में बाद के तर्कशास्त्र में पुनः प्रकट हो गया था। फिर भी इनके द्वारा किये गये कुछ नवान्वेषण आकारी तर्कशास्त्र के विकास में स्थायी प्रभाव डालने वाले रहे हैं।[3] उन्होंने तो गणितशास्त्र में अशिक्षित दार्शनिकों के शिक्षण के लिए अर्थहीन बूल को ही प्रस्तुत किया था। यह जेवन्स का ही तर्कशास्त्र था जो अपने अधिकांश रूप में 19 वीं शती के उत्तरार्ध की पाठ्य पुस्तिका में गणितीय प्रतीकात्मक एवं समीकृत तर्कशास्त्र के रूप में प्रचलित था।

सामान्य तौर पर गणितमूलक तर्कशास्त्र के कुछ सिद्धान्त वास्तव में उनकी विचारधारा में निहित थे चाहे गलती से उन्होंने उन्हें उसके आवश्यक तत्व मान

---

[1] बूल मे रहे उनके सम्बन्धों के लिए द्रष्टव्य रिमार्क्स आन बूलेस सिस्टम अध्याय 15, शीर्षक प्योर लोजिक। उनके द्वारा बूल को लिखे गये पत्र जो जोर्डन कृत उपर्युक्त कृति में पुनः मुद्रित हुए हैं। जी० बी० हाल्स्टेड द्वारा लिखित जेवन्स क्रिटीसिज्म आव बूलेज लोजिक (माइण्ड 1875)। जोर्डन और जारज सन की उपर्युक्त कृति में जेवन्स सम्बन्धी पूर्ण वृत्तान्त मिलता है।

[2] रोयल सोसायटी में 1870 में पढ़े गये एवं आर० एडम्सन के सम्पादन में 1990 में प्योर लोजिक एण्ड अदर माइनर वर्क्स नाम से पुनर्मुद्रित उनकी कृति आन द मकैनिकल परफोरमेंस आव लोजिकल इन्फरेंस देखें। मेज और हेनरी द्वारा लिखित रचनाएँ और उनके सम्बन्ध में दिये गये संदर्भ देखें।

[3] द्रष्टव्य, लोविस कृत उपर्युक्त रचना उनकी सर्वविदित 'प या फ' की 'या तो प अथवा फ अथवा दोनों' के रूप में की गई व्याख्या की बूले की इस व्याख्या से तुलना की गई है कि 'या तो प अथवा फ अथवा दोनों नहीं'। इस नवान्वेषण ने तार्किक कलन के निर्माण में काफी योग दिया है।

लिया था। यह विशेष रूप से जेवन्स की इस धारणा को सिद्ध करता है कि प्रत्येक तर्कवाक्य एक समीकरण अथवा तादात्म्य बनाने वाली प्रजाति है जब कि डी मोरगन की यह मान्यता थी कि हेमिल्टन द्वारा सुझाया गया यह पद कि सब क्ष सब य हैं दो तर्कवाक्यों के होने का संकेत देता है, सब क्ष य हैं और सब य क्ष हैं। जेवन्स ने इसे एक ही तर्कवाक्य माना जिसका अर्थ था क्ष=य यद्यपि बाद में उन्होंने घूम फिरकर यह स्वीकार कर लिया था कि उनके कथनयन्त्र में भी इसकी द्विधात्मकता अंकित होती है। 1869 में प्रकाशित अपनी पुस्तक द सब्स्टीट्यूशन आव सिमिलर्स, द ट्रू प्रिंसिपल आव रीज़निंग में उन्होंने परम्परागत तर्कवाक्यों के आकार पर अत्यन्त प्रबल प्रहार किया है। उन्होंने लिखा कि सब स प हैं जैसा तर्कवाक्य निर्मित करके अरस्तू ने विज्ञान के इतिहास में एक महानतम एवं पश्चाताप करने योग्य भूल की है। और उसी ने सब तरह के तर्कवाक्यों के लिए सही मानकर अपने तर्कसिद्धान्त की स्थापना की है। जेवन्स के लिए सही प्रकार का तर्कवाक्य समीकरण ही है और सही प्रकार का अनुमान समानार्थकों का परस्पर एवजी होना है जो इस सिद्धान्त पर आधारित है कि एक वस्तु दूसरी वस्तु में जिस किसी प्रकार के सम्बन्ध से जुड़ी है उसी सम्बन्ध से वह उसी के अनुसार और समानार्थी किसी दूसरी वस्तु से भी जुड़ी रहेगी। यह एक ऐसा सिद्धान्त है जो तर्कपद्धति का उद्धरण प्रस्तुत कर सकता है। किन्तु यह उदाहरण उस तर्क से अधिक स्पष्ट नहीं है जिसमें कहा गया है– यदि अ ब से बड़ा है और ब स के बराबर है तो अ ब से बड़ा होगा। समीकृत तर्क इसी प्रकार का था जिसे ब्रैडले और बोसांके जैसे लेखकों ने तर्कशास्त्रीय बीजगणित का मूलतत्व माना[1] था। जेवन्स की रचनाओं का दूसरा पक्ष जिसमें उन्होंने मिल पर कड़ा प्रहार किया था, प्रत्ययवादियों द्वारा स्वागत योग्य माना गया। जेवन्स ने लिखा[2] था कि मैं मिल के द्वारा प्रस्तुत किये बुरे दर्शन एवं

---

[1] स्पष्टतः इस प्रकार तर्कशास्त्र हेमिल्टन से उनके निकटतम मेल को दर्शाता है। चूँकि जेवन्स ने बूले की पुनर्व्याख्या करना स्वीकार किया था, उसने एक ऐसा आख्यान खड़ा कर दिया था जो हमेशा के लिए विश्वकोशों में स्थायी रूप से स्थापित हो गया था कि बूले का प्रमुख उद्देश्य हेमिल्टन के सिद्धान्त का बीजगणितीय रूप देना था।

[2] 1877 से लेकर 1879 के दौरान प्रकाशित कराये गये कंटेम्पोरेरी रिव्यू नामक पत्रिका में उनके उन प्रहारात्मक निबन्धों को जिनका 1890 में प्योर लोजिक नाम से पुनः मुद्रण हुआ देखा जा सकता है। 1878 के माइण्ड में जेवन्स द्वारा किये गये विद्रोह का रूप देखा जा सकता है जिसके कारण एक साथ बहुत से स्वनामधन्य दार्शनिक मिल के बचाव को दौड़ पड़े थे। टी० फाउलर कृत द एलीमेंट्स आव इंडक्टिव लाजिक के तृतीय संस्करण का प्राक्कथन भी देखें जिसमें जेवन्स की कटु आलोचना की गई है।

युरे तकशास्त्र के खुटन से म ति स वठना स्वीकार नहीं कर सकता। व स्व म प्रदशनयोग्य सम्पूर्ण आगमात्मक प्रणालियों पर जव म ने प्रहार किय थे। प्रिंसिपल्स आफ साइंस (1874) म, जो एक बहु संस्करण वाली पुस्तक थी–उन्होने वनानिक प्रणाली का एक वकल्पिक सिद्धान्त प्रस्तुत किया था। जव स का कथन था कि मिल की प्रमुख भूल उनके कारण खोजने की संभावनाओ मे विश्वास रखना था और व उन्हे आवश्यक और पर्याप्त दशा मानते थे। इस प्रकार का प्रारूप हम सृष्टि कर्त्ता की इच्छा का व्यक्त करते हुए अस्तित्वा मे रहस्य की खोजो की दिशा म हमारी क्षमताओ से भी परे ले जाना है। इस सबन्ध म तथ्य यही है कि विज्ञान कभी निश्चित प्राकल्पो स परे जान का प्रयास नही करता क्योंकि वे प्राक्कल्प भी ज्यादा या कम मामलो म सम्भाव्य ही होत हैं।

सम्भाव्यता के सैद्धान्तिकों का एक प्रचलित उदाहरण लेकर और उसे अपने उद्देश्यों म साथ जोड़कर जैवन्स वज्ञानिक की तुलना एक ऐस व्यक्ति स करते हैं जिसके समक्ष बहुत सी गेंदो से भरा हुआ एक बड़ा प्याला रखा है। इसम स प्रत्येक गेंद निकालते समय (यहाँ पर गेंद एक तथ्य को व्यक्त करती है) वज्ञानिक कुछ नियमितताएँ देखता है। यदि उसने दस गेंदे निकाली हैं तो उनम स तीन सफेद और सात काली हैं।

उसका दूसरा काय ऐसे बहुत स प्रमेय बताना है जो नियमितता के अनुकूल हो। तब उसे इस प्रकार के प्रत्येक प्रमेया के आधार पर क्रम से अपना रूप ग्रहण करती हुई स्थितियो की सभाव्यता की तुलना करनी होती है। उदाहरण के लिए वह इस सभावना की कि जो तीन गेंद उसन प्याले म से निकाली हैं केवल व ही सफेद गेंदें प्याले म हैं तुलना उस सभावना स करता है जब प्रारम्भ म उसने प्याले मे आधी गेंदो को सफेद और आधी को काला माना था, और अब इस सभावना से भी, कि उनम से तीन दहाई गेंदें सफेद है और सात दहाई काली इसके पश्चात् ही वह इनम से उस प्रमय को ही स्वीकार करें जिसमे सर्वाधिक सभावना विहित हो। स्पष्टत कई बार सर्वाधिक सभाव्य प्रमेय भी गलत सिद्ध हो सकता है। लेकिन जव स क अनुसार इसका यह अर्थ नही है कि हम जब तक निश्चितता प्राप्त न करें तब तक प्रतीक्षा करें। वह कभी प्राप्त नही होती क्योंकि या तो हम सभाव्यताओ क अनुकूल ही काय म जुट सकते है अथवा हम केवल अनिश्चित अवस्था मे काय करते हैं इसलिए इन दोनो म पहली स्थिति अपेक्षाकृत श्रेष्ठ है।

वून द्वारा की गई लाप्लास की आलोचना को जैवन्स कभी गम्भीरता स नही स्वीकारते। इसका परिणाम यह हुआ कि उनका सिद्धान्त लाप्लास के सभाव्यता क विश्लेषण से प्रभावित हो गया है। कई बार तो जव स डी मोरगन की प्रमय–निर्माण

लिया था। यह विशेष रूप से जेवन्स की इस धारणा को सिद्ध करता है कि प्रत्येक तर्कवाक्य एक समीकरण अथवा तादात्म्य बनाने वाली प्रजाति है जब कि डी मोरगन की यह मान्यता थी कि हैमिल्टन द्वारा सुझाया गया यह पद कि 'सब क्ष सब य हैं' दो तर्कवाक्यों के होने का संकेत देता है, सब क्ष य हैं और सब य क्ष हैं। जेवन्स ने इसे एक ही तर्कवाक्य माना जिसका अर्थ था 'क्ष=य', यद्यपि बाद में उन्होंने घूम फिरकर यह स्वीकार कर लिया था कि उनके कलनयन्त्र में भी इसकी द्विधात्मकता अंकित होती है। 1869 में प्रकाशित अपनी पुस्तक द सब्स्टीट्यूशन आफ सिमिलर्स, द ट्रू प्रिंसिपल आव रीजनिंग में उन्होंने परम्परागत तर्कवाक्यों के आकार पर अत्यन्त प्रबल प्रहार किया है। उन्होंने लिखा कि 'सब स प हैं' ऐसा तर्कवाक्य निर्मित करके अरस्तू ने विज्ञान के इतिहास में एक महानतम एवं पश्चाताप करने योग्य भूल की है। और उसी ने सब तरह के तर्कवाक्यों के लिए सही मानकर अपने तर्कसिद्धान्त की स्थापना की है। जेवन्स के लिए सही प्रकार का तर्कवाक्य समीकरण ही है और सही प्रकार का अनुमान समानार्थकों का परस्पर एवजी होना है जो इस सिद्धान्त पर आधारित है कि एक वस्तु दूसरी वस्तु से जिस किसी प्रकार के सम्बन्ध से जुड़ी है उसी सम्बन्ध से वह उसी के अनुसार और समानार्थों किसी दूसरी वस्तु से भी जुड़ी रहेगी। यह एक ऐसा सिद्धान्त है जो तर्कपद्धति का उद्धरण प्रस्तुत कर सकता है। किन्तु यह उदाहरण उस तर्क से अधिक स्पष्ट नहीं है जिसमें कहा गया है- यदि अ ब से बड़ा है और ब स के बराबर है तो अ ब से बड़ा होगा। समीकृत तर्क इसी प्रकार का था जिसे ग्रैडने और बामाके जैसे लेखकों ने तर्कशास्त्रीय बीजगणित का मूलतत्व माना[1] था। जेवन्स की रचनाओं का दूसरा पक्ष जिसमें उन्होंने मिल पर कड़ा प्रहार किया था, प्रत्ययवादियों द्वारा स्वागत योग्य माना गया। जेवन्स ने लिखा[2] था कि मैं मिल के द्वारा प्रस्तुत किये बुरे दर्शन एवं

---

[1] स्पष्टतः इस प्रकार तर्कशास्त्र हैमिल्टन से उनके निकटतम मेल को दर्शाता है। चूंकि जेवन्स ने बूले की पुनः व्याख्या करना स्वीकार किया था, उसने एक ऐसा आख्यान खड़ा कर दिया था जो हमेशा के लिए विश्वकोशों में स्थायी रूप से स्थापित हो गया था कि बूले का प्रमुख उद्देश्य हैमिल्टन के सिद्धान्त का बीज गणितीय रूप देना था।

[2] 1877 से लेकर 1879 के दौरान प्रकाशित कराये गये कन्टेम्पोररी रिव्यू नामक पत्रिका में उनके उन प्रहारात्मक निबन्धों को जिनका 1890 में प्योर लोजिक नाम से पुनः मुद्रण हुआ देखा जा सकता है। 1878 के माइण्ड में जेवन्स द्वारा किये गये विद्रोह का रूप देखा जा सकता है जिसके कारण एक साथ बहुत से स्वनाम धन्य दार्शनिक मिल के बचाव को दौड़ पड़े थे। टी० फाउलर कृत द एलीमेंट्स आव इन्डक्टिव लोजिक के तृतीय संस्करण का प्राक्कथन भी देखें जिसमें जेवन्स की कटु आलोचना की गई है।

चुके तर्कशास्त्र के घुटन में शान्ति से बैठना स्वीकार नहीं कर सकता। वास्तव में प्रदर्शनयोग्य सम्पूर्ण आगमनात्मक प्रणालियों पर जेवन्स ने प्रहार किये थे। प्रिंसिपल्स आफ साइंस (1874) में जो एक बहु संस्करण वाली पुस्तक थी—उन्होंने वैज्ञानिक प्रणाली का एक वैकल्पिक सिद्धान्त प्रस्तुत किया था। जेवन्स का कथन था कि मिल की प्रमुख भूल उनके कारण खोजने की सम्भावनाओं में विश्वास रखना था और वे उन्हें आवश्यक और पर्याप्त दशा मानते थे। इस प्रकार का प्राक्कल्प हमें सृष्टि कर्त्ता की इच्छा को व्यक्त करते हुए अस्तित्वों में रहस्य की खोज की दिशा में हमारी क्षमताओं से भी परे ले जाता है। इस संबंध में तथ्य यही है कि विज्ञान कभी निश्चित प्राक्कल्पों से परे जाने का प्रयास नहीं करता, क्योंकि वे प्राक्कल्प भी ज्यादा या कम मामलों में सम्भाव्य ही होते हैं।

सम्भाव्यता के सैद्धान्तिकों का एक प्रचलित उदाहरण लेकर और उसे अपने उद्देश्यों में साथ जोड़कर जेवन्स वैज्ञानिक की तुलना एक ऐसे व्यक्ति से करते हैं जिसके समक्ष बहुत सी गेंदों से भरा हुआ एक बड़ा प्याला रखा है। इसमें से प्रत्येक गेंद निकालते समय (यहाँ पर गेंद एक तथ्य को व्यक्त करती है) वैज्ञानिक कुछ नियमितताएँ देखता है। यदि उसने दस गेंदें निकाली हैं तो उनमें से तीन सफेद और सात काली हैं।

उसका दूसरा काम ऐसे बहुत से प्रमेय बताना है जो नियमितता के अनुकूल हों। तब उसे इस प्रकार के प्रत्येक प्रमेय के आधार पर क्रम से अपना रूप ग्रहण करती हुई स्थितियों की सम्भावना की तुलना करनी होती है। उदाहरण के लिए वह इस सम्भावना की कि जो तीन गेंदें उसने प्याले में से निकाली है केवल वे ही सफेद गेंद प्याले में हैं तुलना उस सम्भावना से करता है जब प्रारम्भ में उसने प्याले में आधी गेंदों को सफेद और आधी को काला माना था, और अब इस सम्भावना से भी, कि उनमें से तीन दहाई गेंदें सफेद हैं और सात दहाई काली, इसके पश्चात् ही वह इनमें से उस प्रमेय को ही स्वीकार करे जिसमें सर्वाधिक सम्भावना विहित हो। स्पष्टतः कई बार सर्वाधिक सम्भाव्य प्रमेय भी गलत सिद्ध हो सकता है। लेकिन जेवन्स के अनुसार इसका यह अर्थ नहीं है कि हम जब तक निश्चितता प्राप्त न करें तब तक प्रतीक्षा करें। वह कभी प्राप्त नहीं होती, क्योंकि या तो हम सम्भाव्यताओं के अनुकूल ही कार्य में जुट सकते हैं अथवा हम केवल अनिश्चित अवस्था में कार्य करते हैं, इसलिए इन दोनों में पहली स्थिति अपेक्षाकृत श्रेष्ठ है।

बूल द्वारा की गई लाप्लास की आलोचना को जेवन्स कभी गम्भीरता से नहीं स्वीकारते। इसका परिणाम यह हुआ कि उनका सिद्धान्त लाप्लास के सम्भाव्यता के विश्लेषण से प्रभावित हो गया है। कई बार तो जेवन्स डी मोरगन की प्रमेय-निर्माण

सम्बन्धी इस धारणा को ही पुन सिद्ध करते हुए लगते हैं कि यह एक काल्पनिक उछाल की ही क्रिया है–कोई विशेष प्रकार का अनुमान नही । इसके अतिरिक्त आगमन ही सम्भाव्यता का सिद्धान्त है। किन्तु जेवन्स द्वारा स्वीकृत प्रमेय–सम्बन्धी यही रचना जिसमे उन्होने वैज्ञानिक प्रणाली से विश्लेषण किया था मिल के लिए स्तरीय विकल्प सिद्ध हुई ।

जेवन्स के विपरीत वेन[1] एक गणितशास्त्री थे । उनकी पहली पुस्तक **द लौजिक आव चान्स** (1866) सम्भाव्यता के सिद्धान्त के इतिहास मे एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है ।

उन्होने सबसे पहले[2] सुव्यवस्थित रूप से सम्भाव्यता की आवृत्ति के सिद्धान्त का विकसित किया। इसके अनुसार किसी घटना की विशेष अवस्थाओ की सम्भाव्यता यदि उन्हे घटना का ही उपकरण माना जाये और द्रष्टा के अनुभव से भिन्न माना जाये तो इस तथ्य पर आश्रित होगी कि उनके एक निश्चित प्रतिशत मे वही तत्त्व निहित हैं । उदाहरण के लिए किसी सिक्के के उछलकर गिरने की सम्भावना $\frac{1}{2}$ है, इसका अर्थ यही है कि यदि उस सिक्के को निरन्तर अन्त तक उछाला जाय तो उसमे आधे सिरे वाले हिस्से होगे ।

सम्भाव्यता के विश्लेषण मे प्राप्त आवृत्ति के सिद्धान्त का उस समय तक समर्थन नही किया जा सका जब तक कि वर्तमान शताब्दी की दूसरी दशाब्दी न आ गयी और अभी भी इस सिद्धान्त मे सन्देहो का घटाटोप एवं प्रतिबन्धन है। लेकिन वेन पर इसका यह तात्कालिक प्रभाव पड़ा कि उन्होने सम्भाव्यता के आगणन मे आगमनात्मक अनुमान ही काम मे लाया जाय इस बात का खंडन किया क्योकि इस प्रकार का कोई भी आगणन उनकी व्याख्या के अनुसार स्वयं एकरूपता को व्यक्त करता है और इस बात पर जोर देता है कि उछालो के समूह मे एक निश्चित प्रतिशत सिर होंगे। यह कथन अपने आगमनात्मक औचित्य को कमोबेश रूप मे इस कथन से कही भी अच्छे ढंग से सिद्ध नही करता कि सब मनुष्य मरते हैं। इस प्रकार वेन के रीति विधान मे सम्भाव्यता अपना बहुत न्यून महत्त्व रखती है। यह बात उन्होने अपनी

---

[1] द्रष्टव्य जोर्जेसन की पूर्वोक्त रचना ।

[2] यहाँ लेसली ऐलिस के सुझावो को देखना होगा । 'मैथेमेटिकल एण्ड अदर हाईडिंग्स' शीर्षक मे 1863 ई मे प्रकाशित ऐलिस द्वारा लिखे गये 1842 और 1854 के निबन्ध देखे । वेन द्वारा की गयी ब्रेयस और अनुक्रम के नियम की आलोचना का ऐतिहासिक महत्त्व हो गया है । द्रष्टव्य फिशर कृत स्टेटिस्टिकल मैथड्स ।

पुस्तक द प्रिंसिपल्स आव एम्पिरीकल और इण्डक्टिव लॉजिक में (1889) जो मिल की सिस्टम आव लॉजिक के प्रभाव में लिखी गयी है सिद्ध की है।

वेन की ऐम्पिरीकल लॉजिक का महत्वपूर्ण पक्ष यह दिखाने में है कि मिल की आगमन विधि इस मान्यता पर आधारित है कि हम अपनी जाँच पड़ताल के दौरान कार्यों के कारणों से पूर्व-परिचित होते ही हैं। उन्होंने व्यंग्य करते हुए लिखा है कि इस प्रकार की घोषणा करने वालों की संख्या भी सीमित होगी और उनको ऐसी घोषणा करने से पूर्व अपने नाम हमें लिखा देने चाहिए ताकि हमारे समक्ष केवल उनके क्रमिक गुणों की छटनी का काम ही शेष रह जाय। वेन का कथन है कि इससे यह सिद्ध नहीं हो सकेगा कि अमुक अमुक लोग ही घोषक हैं और न यह ही कि हमने कम योग्य व्यक्तियों की छटनी कर दी है। जेवन्स की ही भाँति वेन इस बात पर जोर देते हैं कि ऐसे मामलों में सदैव गलती हो जाने का खतरा हमारे साथ बना रहता है। उनकी इस विचारधारा के कारण उनको एक सन्देहवादी का गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त हो गया है।

वेन कृत सिम्बोलिक लॉजिक (1881) आकारी तर्कशास्त्र के क्षेत्र में एक उच्चस्तरीय मौलिक आगमन नहीं है, किन्तु इसमें उनके द्वारा जो आरेखण विधि काम में लाई गयी है वह वेन के आरेखण के रूप में प्रसिद्ध हो गयी है। यह प्रतीकात्मक तर्कशास्त्र के समसामयिक विकास का एक सम्यक सर्वेक्षण है।

इस बार सबसे पहले अपने महाद्वीपीय पूर्ववर्तियों एवं अमरीकन तथा जर्मन अनुवर्तियों से, जिनकी अब तक काफी उपेक्षा की जा चुकी थी, बूले की रचनाओं का सम्बन्ध जोड़ा गया। इस प्रकार वेन ने प्रतीकात्मक तर्कशास्त्र की रचना करने वालों में एक ऐसी प्रवृत्ति का समसामयिक दार्शनिकों से सर्वथा भिन्न प्रवर्तन किया जो आगे जाकर अपना अन्तर्राष्ट्रीय रूप बना सके।

तर्कशास्त्र के प्रति अपनी सामान्य अभिधारणा में वे बूल का अनुकरण करते हैं और वे यह देखने का परिश्रम भी करते हैं कि बूल ने क्या क्या स्थापनाएं की थी। जेवन्स ने बूले की स्थापनाओं से परिचित न होते हुए भी उनके सम्बन्ध में उनके बारे में अपनी राय जाहिर की थी। उन्होंने लिखा है कि जेवन्स द्वारा तर्कशास्त्र में किए गए व्यक्तिगत सुधार मूलतः इस बात पर आधारित हैं कि उन्होंने बूले की तर्कप्रणाली में जहाँ कहीं भी आकारगत अस्पष्टता, जटिलता रहस्य और अंधाधुंधी देखा है वहाँ उन्होंने उन पर अपनी कलम चलाई है। यह बात उन्होंने अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से लिखी है। इसका परिणाम यह हुआ है कि बूले की प्रणाली में से वे उस प्रत्येक बात को छोड़ गए हैं जो महत्वपूर्ण और आवश्यक है। वेन ने तर्कशास्त्र में हैमिल्टन द्वारा किए गए नगण्य सुधारों, और गूर द्वारा अपनाई

पूर्णत नयी प्रणाली म एक बहुत बडा भेद करते हैं। वे स्पष्टत यह बताते हैं कि बूले के लिए बीजगणित का क्या महत्व था और उनके सिद्धान्त म परिमाणत्व कितनी न्यून मात्रा मे है। वास्तव मे तो वन न ही सवप्रथम बूल द्वारा प्रयुक्त बीजगणित की सार्थकता को सिद्ध किया है। उन्होंने जिस रूप म बूले को प्रस्तुत किया है उसम से उन्होंने गणितीय जटिलता को निकाल दिया है। फिर भी बूल की मूल भूमि स वे दूर नही हट हैं।

वन के तकशास्त्र म एक आकषक नवीनता उनकी परम्परावादिता थी जिसके कारण बाद मे उनके बहुत से समथक हुए। जवन्स की भांति वन अरस्तू और परम्परागत तकशास्त्र की भूल चूकों की ओर ध्यान आकर्षित नही करते रहे। परम्परागत तकशास्त्र शिक्षा का एक अमूल्य माध्यम है। इसलिए नही कि प्रतीकात्मक तकशास्त्र की अपेक्षा वह दनिक जीवन से अधिक करीब है, अपितु इसलिए कि प्रतीकात्मक तकशास्त्र का क्षेत्र अनिवायत सीमित है। वन की परम्परावादिता उनकी अस्तित्व-मूलक धारणाओं के जरिए देखी जा सकती है। प्रतीकात्मक तकशास्त्र की ओर यदि ध्यान द तो यह दिखाई देगा कि उसमे समष्टिव्यापी तकवाक्य अपने कर्ता क अस्तित्व क बार म कुछ नही कहता है, जबकि एक विशिष्ट तकवाक्य ऐसा कह देता है। उनक तक इस वाक्य का कि सब क य हैं, अथ यह न निकाला जाय कि वह श्रेणी जो क को व्यक्त करती ह लेकिन य को नही उसक कोई भी सदस्य नही है, और कुछ क य हैं, का यह अथ लिया जाए कि क और य दोनो सदस्य हैं, प्रतीकात्मक तकशास्त्र की एकानुरूपता को, जिस पर उसक सामान्यीकरण की शक्ति आधारित है, पूर्णत भग कर देता है। वे यह नही कहते कि एक समष्टि-व्यापी तर्कवाक्य का कोई अन्य अथ निकाला ही नही जा सकता। उनक अनुसार परम्परागत तर्कशास्त्रियो की यह मान्यता कि यदि सब क य हैं को सत्य माना जाए तो कम से कम एक क तो ऐसा होना चाहिए जिसका सामान्य जीवन स निकट का सबध है और सुविधा का प्रश्न है। इसका मतलब है कि प्रतीकात्मक तक शास्त्र को ही एक मात्र सभव तकशास्त्र मानकर नही चलना चाहिए। यह तो कुछ ऐसे उद्देश्यो की पूर्ति करने की एक नई तार्किक प्रणाली है जिनको परम्परागत तकशास्त्र पूरा नही कर पाता। इस युग के उत्तराद्ध म उनके द्वारा सुझाई गई यह नई बाते है।

इसी सदी के बाद के वर्षों मे इगलण्ड एव अमरीका म बहुत से तकशास्त्री इसी दिशा मे कार्यरत थे। केम्ब्रिज मे वेन के ही एक अनुज सहयोगी

1 लुइस केरोल उर्फ डाजसन ने सिबोलिक लोजिक (1896) लिखा वन क समान मनोरंजक लाजिक खेल तैयार किया (1887) तथा कुछ पहेलियाँ भी बनाईं

जे० एम० कीन्स का मौलिकता एव चतुराई का गलन अ दाज लगा लना बहुत आसान है।[1] तकशास्त्री के रूप म उनकी प्रसिद्धि पर उनक ही कम्ब्रिज साथी डबलू० जा सन का साया पड गया जि हान की स द्वारा किए गए परम्परागत तकशास्त्र क रूपान्तर को एक दाशनिक तकशास्त्री क रूप म स्थापित किया। जासन की प्रमुख रचना लाजिक 1921 तक प्रकाश म न आ सकी और इसीलिए उसका बाद की रचनाओ के साथ मूल्याकन किया जाना चाहिए। किन्तु 1842 क माइण्ड म प्रकाशित उनके प्रारम्भिक निबध द लोजीकल केलकुलस उस कम्ब्रिज दशन क प्रारम्भिक सूत्र मान

माइ ड (1894 5), जिन पर अब तक विवाद चल जाता है। उदाहरणाथ द्रष्टव्य ए० डब्लू० बक्स तथा आई० एम० कोपी (माइण्ड 1950)। जान हापकि स यूनिवर्सिटी के सदस्यो द्वारा की गई स्टडीज इन लोजिक (1883) तकपदी की वधता को परखने क लिए एटीलोजिस्म के रूप म सी० एम० फ कलिन न एक पद्धति प्रस्तावित की (माइण्ड 1928 म तथा बाल्डविन की डिक्शनरी म सिबालिक लाजिक)। प्रो० एच० माइके न एक बुद्धिमानी-पूण तथा विस्तृत तकशास्त्र बीजगणित को ज म दिया। एच० मेकाल न अपने धारावाहिक लेखा म (माइ ड 1880-1906 तक) जो बाद म सिबालिक लौजिक एण्ड इटस एप्लिकेश स नाम स सकलित हुए, एक ऐसे तकशास्त्र का पद्धतिबद्ध किया जिसमे कथनो को मूल आधारशिला माना गया था, वर्गों को नही। मेकोल अपन आप विचार करके कुछ निणयो तक पहु चा था जिनके लिए अब अ य कई तकशास्त्रियो को श्रेय दे दिया जाता है। उस पर यह आरोप लगाया जाता है कि उसन तकशास्त्र और मनोविज्ञान का मिश्रित कर दिया, क्याकि उसने कथनो को असमव और अथहीन बताया है, सत्य एव मिथ्या तथा और कई तरह स वर्णित किया है। उसक शुद्ध तक क सिद्धात का अनुपालन न करन स हम यह अ दाजा लगा सकत है कि उस उपक्षित क्या किया गया। देख रसल द्वारा माइ ड 1906 मे प्रकाशित समीक्षा तथा 1907 म मकाल का उत्तर। जे० एम० की स ने अपनी पुस्तक स्टडीज एण्ड एक्सरसाइजेज इन फोरमल लोजिक म बूल तथा वन के नवा वेषणो को परम्परागत तकशास्त्र के आकार मे ढालने का प्रयास किया था। इसी प्रक्रिया मे उन्होने वेन द्वारा प्रस्तुत की गई अस्तित्वमूलक शास्त्र सबधी उठाई गयी कठिनाई को हल करन का प्रयास भी किया है। उनके द्वारा की गई चर्चा और दिए गए इन उद्धरणो से कि समष्टि व्यापी तकवाक्य अपने कर्त्ताओ के अस्तित्व के बारे म कुछ नही कहते, बाद म खडे हुए सुवाद का प्रारम्भिक बि दु था।

[1] जो सन की प्रारम्भिक रचनाओ के लिए द्रष्टव्य ए० एन० प्रायर का लेख कटेगोरिकल्स ऐ ड हाइपोथीटिकल्स इन जाज बूले एण्ड हिज सक्सेसस (ए० जे० पी० 1949) तथा अध्याय 15 (इस पुस्तक का भी)।

जाने चाहिए जिनका श्रेय मूर और रसेल जैसे दार्शनिकों को बाद में मिला। कलन पर भी यदि फिलहाल विचार न करें तो भी जॉनसन की रचनाओं का समसामयिक तार्किक समस्याओं को गणितीय प्रणाली से हल करने का जेवन्स और वेन के बाद दूसरा महत्त्वपूर्ण प्रयास कहा जा सकता है। किन्तु जॉन्सन मुख्य रूप से किसी धारणा की सिद्धि करने के लिए काम में लाये जाने वाले विभिन्न प्रकार के कलन बनाना चाहते थे कि उनमें से किसी का भी आवश्यकतानुसार सुविधापूर्वक प्रयोग किया जा सके। जॉनसन के लिए स्वयं तकनीकी चातुर्य का प्राथमिक महत्त्व नहीं था।

हम किसी कलन को काम में लाते समय प्रयुक्त चातुर्य की मात्रा का निम्नानुमान सहज ही लगा सकते हैं। उदाहरण के लिए जेवन्स ने यह सोचा था कि समानार्थकों के एवजी जैसे एक ही सिद्धांत को यदि एक बार वैध करार दे दिया जाए तो कलन के लिए चातुर्यपूर्ण विचार की आवश्यकता नहीं रह जाती। किन्तु जॉनसन के अनुसार जेवन्स का कलन धारणाओं के एक जटिल रूप को ही व्यक्त करता है। उदाहरण के लिए उनकी ये धारणाएँ कि प्रत्येक प्रतीक का एक अबूझ रूप होता है कि बहुत से प्रतीक एक ही वस्तु का सन्दर्भ दे सकते हैं कि ऐसे प्रतीक जो एक ही वस्तु का सन्दर्भ देते हैं एक दूसरे की एवज में प्रयुक्त हो सकते हैं। अस्पष्ट धारणाओं को धराशायी करना ही कैम्ब्रिज के तार्किक विश्लेषण का प्रमुख अंग रहा है।

जॉनसन का यह कथन भी कि तर्क का कार्य विश्लेषण ही है, कैम्ब्रिजवादी ही है। अर्थात् किसी प्रणाली को उसके आधारभूत भागों में खण्ड खण्ड करके देखना। (यहाँ ऑक्सफोर्ड के प्रत्ययवादियों की यह मान्यता उल्लेखनीय है कि तर्क एक ऐसी प्रणाली की खोज है जिसमें निर्णय फिर किए जा सकते हैं।) वे यह तो मानते हैं कि प्रत्येक वास्तविक तर्कवाक्य जटिल होता है। उनका कहना है कि फिर भी पारमाणविकी तर्कवाक्य के विचार को आदर्श के रूप में ग्रहण किया जा सकता है जिसे रसेल ने बाद में आणविकी तर्कवाक्य की संज्ञा से अभिहित किया है। इन तर्कवाक्यों का और आगे विश्लेषण नहीं किया जा सकता सिवाय उन्हें पदों में विभाजित करने के। उसी प्रकार जिस प्रकार एक परमाणु का खंडन अणुओं के विचार से ही हो सकता है। प्रत्येक तर्कवाक्य जॉनसन की दृष्टि में उसी प्रकार के पारमाणविक तर्कवाक्यों का सेट है जिन्हें मौलिक तार्किक सम्बन्धसूचना में संयोजित किया जाता है ये संबंध **और** अथवा **नहीं** से प्रकटते हैं। आकारी तर्कशास्त्र तर्कवाक्यों के समन्वय के दौरान जो कर सकता है वह ‘और’ एवं ‘नहीं’ को नियमित करने वाले व्याकरण के नियमों में मिल सकता है।

एक बार यह तथ्य ज्ञात हो जाए तो हम ऐसी ही गंभीर दिखने वाली समस्या का हल पा लेते हैं। हमें यह मालूम पड़ सकता है कि कैसे कोई तथ्य आकल्पिक एवं

सयाजक तकवाक्यो क ही अनुकूल हाता है । य तकवाक्य सत्य हात है लकिन फिर
भी प्रकृति एसी किसी स्थिति की समान अवस्था नही रखती जा 'यदि' व 'या की
स्थिति को स्पष्ट करती हो । लकिन यह तभी होगा जब हम यदि प तो फ की
व्याख्या स प और प नहीं' म निहित सत्य को अस्वीकृत करे । तथा प अथवा फ'
को न तो प न फ' स विपरीत मानें । ये कठिनाइया पूणत विलीन हा सक्ती है,
क्योकि 'और तथा 'नहीं' तथ्यात्मक सम्बन्ध सूचक है—'नहीं स हम यह सूचना
मिलती है कि कोई वस्तु वाक्य म दिखाई गई अवस्थाआ के अतिरिक्त किसी भी
अवस्था का अपन म समाहित किए है और वस्तुत उम अवस्था का नाम लेन की
आवश्यकता नही है ।

जान्सन के विश्लेषण म परम्परागत तकशास्त्र स एक उल्लेखनीय अलगाव
है – वहा पर ' यदि है ता एक मौलिक तार्किक अभिव्यक्ति है ।
अनुमान का तकशास्त्र के लिय अलगाव का एक साधारण बिन्दु माना जा सकता
ह । जानसन यह जानत थे कि उनकी आलोचना इस आधार पर की जायगी कि
हमारा मानसिक दृष्टिकोण उस समय, जब हम यह सिद्ध करते ह कि यदि प ह तो
फ' हमारे उस मानसिक दृष्टिकोण से बिल्कुल भिन्न ह जब हम, प न कि फ'
के सत्य को अस्वीकृत करते हैं ।

इस प्रकार आक्सफडवादी भाषा म य निणय भिन्न सिद्ध हा जाते है ।
जॉनसन का कहना है कि आकारी तकशास्त्र से हमारे मानसिक दृष्टिकोण का कोई
तालुक नही है । तकशास्त्र तकवाक्यो का सिद्धान्त है और उसकी परिभाषा किसी
अवस्था का सत्य अथवा दोष बतान वाली अभियुक्ति के रूप म की गई है । किसी
निणय के सम्बन्ध म जा मानसिक दृष्टिकोण व्यक्त करते है वह निणय नही दता ।
केम्ब्रिज तकशास्त्रिया द्वारा दिया गया तकवाक्यो पर मत विशेष रूप स उनका
परिचायक है

इसी बीच अमरीका म सी० एस० पीयस की रचनाआ म तक एक मौलिक
एव उल्लखनीय रूप ग्रहण कर रहा था ।[1] उनकी तार्किक रचनाओ की भिन्नता

---

[1] पियस के तक के लिय द्रष्टव्य, सी आई लीविस, पूर्वोक्त कृति जिसन
सबस पहले पियस को तकशास्त्री के रूप म रचनात्मक सिद्ध किया था । जी० डी०
वेरी के स्टडीज इन द फिलोसोफी आफ सी० एस० पियस (वाइनर) तथा यग द्वारा
1952 म सपादित म उसकी तकशास्त्र को देन पर लिखा है । पाल वीस न
डिक्शनरी आव अमेरिकन बायोग्राफी म उस पर लिखा है । कलेक्टेड पेपस म पियस
के लेख सकलित है । (भाग 2, 3, व 4 पीयस का मध्यकालीन कृतियो का अध्ययन
विशाल था । तक के क्षेत्र म आधुनिक विचारो पर मध्यकाल का प्रभाव है । स्कूलवाग्नी
तकशास्त्रिया की सूक्ष्म दृढ़ता को जहा पियस ने प्रशसा की है वहीं उनकी 'पशुवत्
छिछलपन' तथा सामान्याकरण करने वाली बुद्धि के अभाव की निन्दा भी की है ।

ही उनकी व्याख्या को कठिन बना देती है। इसके अतिरिक्त उनके विश्लेषण प्रायः इतने गूढ़ हैं कि आसानी से समझ में नहीं आते। वह एक गणितशास्त्री के पुत्र और स्वयं एक गणितज्ञ थे। उनके लिए गणितीय प्रतीकों से स्पष्ट और कोई चीज नहीं है। उनका कथन है कि जब कोई व्यक्ति यह कहता है कि उसे गणित समझ में नहीं आती उसका यही अर्थ है कि उसे स्वयं-सिद्ध सत्य समझ में नहीं आता। क्या इससे यह सिद्ध नहीं होता कि सारा मार्ग ही अवरुद्ध हो गया है? वे तो कई बार केवल अपने निष्कर्षों को ही व्यक्त करना पर्याप्त मानते हैं जबकि उनका पाठक उनसे उद्धरणों की चाहना करता है। उनकी रचनाओं के 1931–5 तक प्रकाशित न हो पाने का एक कारण यह भी था। उनकी रचनाओं की व्याख्या का कार्य अन्य लोगों के लिए रह गया। यह कार्य चाहे उन्होंने देर से किया किन्तु उसे अधिक बुद्धिगम्य बना कर किया। इसका यह अर्थ नहीं कि समसामयिक प्रतीकात्मक तर्कशास्त्रियों ने उनकी अवज्ञा की। इसके विपरीत सभी विद्वान् लोग उनकी योग्यता के कायल थे जबकि अन्य क्षेत्रों में वे जरा भी प्रसिद्ध नहीं थे। लेकिन उनके नवान्वेषणों की पूरी जानकारी समसामयिक विद्वानों को भी नहीं थी।

उनकी तर्क रचनाओं को सामान्यतः इस तरह समझा जा सकता है। पीयर्स ने बूले कृत तार्किक बीजगणित में कई तरह से सुधार किया और उनके बीजगणित को भी कायम रक्खा। किन्तु उनके विशुद्ध तार्किक रूपों को उन्होंने गणितीय प्रतीकों में बदल दिया और तब उन्होंने यह मत व्यक्त किया कि डी० मोरगन के तार्किक सबंधसूचकों का सुधरा संस्करण एक कलन में निर्मित किया जा सकता है। इस प्रकार पहली बार वे बूले एवं मोरगन के तर्कशास्त्र को एक तार्किक आकार देने में सफल हो जाते हैं।

किन्तु बात को यों प्रस्तुत करने से लगता है कि पीयर्स एक मतक निर्मायक से अधिक और कुछ नहीं थे। यह बात सत्य से काफी दूर है। पीयर्स की रचनाओं का मूल तत्व है उनमें निहित दोषहीन मौलिकता। कभी कभी वे विचित्र और गुंथी हुई हैं—लेकिन वे केवल शब्द चमत्कारी ही नहीं हैं। उनके द्वारा किए गए नवान्वेषण में वे महत्वपूर्ण हैं, और उल्लेखनीय भी क्योंकि अन्ततः उन्हें दार्शनिक विश्लेषण के क्षेत्र में भी प्रवेश मिल गया है। चाहे उन्हें यह प्रवेश अन्य छोटे लोगों के अप्रत्यक्ष प्रभाव द्वारा ही मिला हो।

सर्वप्रथम है विधेय को तीन भागों में बाँटना जिसे उन्होंने (मोनिस्ट 1897) क्रमशः एककिक (मोनेडिक) द्वयिक (डायेडिक) एवं अनेकिक (पोलिएडिक) कहा है। एककिक विधेय किसी कथन के इस आकार में देखा जा सकता है।—

एक मनुष्य है,' जिसकी पूर्ति रिक्त स्थान मे एक शब्द भरने से होती है। का प्रेमी है' मे ऐसे दो रिक्त स्थान हैं। इसलिए वह द्वयिक सबध को प्रकट करता है। ग्रौर' ने' 'को' 'दिया' मे तीन रिक्त स्थान है ग्रौर यह ग्रनेकिक सबधो का सूचक है।

सबधसूचको का सवप्रथम प्रादुर्भाव कराने वाले डी० मोरगन ने तकशास्त्र की एक शाखा को काफी प्रभावित किया था ग्रौर ग्रनेकिक सबधसूचको से यह बात ग्रौर भी स्पष्ट हो सकी। उनके कथनानुसार इससे पहले की उन ग्रबूझ दाशनिक समस्याग्रो का भी हल सभव हो सका। विशेषकर साथक पदान्वय सबधी सतोषप्रद विश्लेषण करने मे ग्रनेकिक सबधसूचको का ग्रावतन काफी सहायक ग्रौर महत्त्व का सिद्ध हुग्रा है। हीगेल की भाति ग्रपनी ही इस ग्राविष्कृति से पीयस भी सम्मोहित होते हुए कहते हैं कि इस भेत से प्रथमत्व, द्वितीयत्व एव तृतीयत्व के बीच का भेद बहुत स्पष्टत समझ मे ग्रा सकता है ग्रौर दशनसबधी उनके तत्वमीमासा विषयक उद्देश्यो की पूर्ति करता है। विधेय का यह त्रिमुखी विभाजन ग्राधिभौतिकी ग्रथवा तत्त्वदशनसबधी वर्गीकरण को साफ साफ व्यक्त करता है। वे यह बताने मे भी सलग्न थे कि ग्रनेकिक सबधसूचक सदव त्रयिक सबधसूचको को ही व्यक्त करता है।[1]

पीयस का दूसरा महत्वपूर्ण नवान्वयण एक दूसरी ही तरह का था। वे केवल एक व्यापक सामान्यीकरण की खोज मे थे, न कि किसी नई सिद्धि की। वे परम्परागत तकशास्त्र से ग्राए पदो तकवाक्यो एव ग्रनुमानो का वगसबध-सूचको विधेयो एव ग्रभिप्रायो के पारस्परिक सबधो की व्याख्या को, नये तक के लिए ग्रसमीचीन मानकर छोड देते हैं। परम्परागत दृष्टिकोण से जब हम पद से ग्रनुमान की ग्रोर जाते हैं तो जटिलता मे भी वृद्धि होती है। एक पद किसी तकवाक्य का ग्रश है ग्रौर एक तकवाक्य किसी ग्रनुमान का।

---

[1] तुलना कीजिये, प्रथमता द्वितीयता व तृतीयता पर ग्राई० स्टन्स के विचारो मे (वीनर व यग द्वारा सपादित स्टडीज इन फिलोसफी ग्राव चाल्स सडस पीयस मे। रसल, जिसने पीयस द्वारा बताये गये मोनेडिक, डायेडिक तथा पोलीएडिक सबधो मे सत्य के सिद्धात मे) भेद का पूण उपयोग किया है रोयस का हवाला देता है पीयस का नही। उसने ट्रायेडिक सबधो पर रायस द्वारा दिये गये बल का भी मजाक उडाया है। पीयस की तत्वमीमासा के सन्दभ मे यह बल देना निराधार नही है।

इसके विपरीत पीयर्स यह कहते हैं कि हमारे द्वारा किये गये साधारण भेदों की वैधता उतनी ही है जितना हम उन्ही मूल अंशो से निर्मित एक परिचित तार्किक आकार के विभिन्न रूपो का अपनी सुविधानुसार उपयोग करते हो।

हम इस धारणा से भ्रमित हो गए हैं कि अंग्रेजी या किसी भी योरोपीय भाषा मे जातिवाचक संज्ञाएं हैं। बहुत से अंग्रेजी वाक्यो में ये संज्ञाएं, क्रियाओं सबंधबोधकों से जुडी होने के कारण बडी स्पष्ट लगती हैं। भाषा के इस आकस्मिक रूप से ही पद और तर्कवाक्य मे भेद दिखाई देने लगता है। पदो को सामान्यत परिवाचक संज्ञाएं माना गया है और तर्कवाक्यो को उन संज्ञाओ द्वारा प्रस्तुत किया गया विचार या तर्क। किन्तु दरअसल प्रत्येक संज्ञा मौलिक रूप से अपनी सिद्धि भी करती है। यह बात मिल की पद की इस परिभाषा में आई है, जहा उन्होने कहा है कि पद कुछ अवस्थाओ को अभिहित करता है और उस स्थिति की ओर संकेत करता है जो इन अवस्थाओ को धारण करती है। किसी त्रिकोण के विषय में सोचने का अर्थ हमारे मस्तिष्क के सम्मुख वस्तु का एक आकार प्रस्तुत करना है। इस संबंध मे एक ऐसे ज्यामितिक आकार की कल्पना करना हैं जिसकी तीन भुजाएं है। इस तरह जो कुछ हमारे मन के सामने है वह उस पूर्णत परिणाम बताने वाले तर्कवाक्य— 'सब मनुष्य मरणशील हैं' की तुलना में कही अधिक मौलिक है। किन्तु यह भेद मात्र अंशो का ही है—प्रकार का नही।

उतनी ही प्रबलता से वे यह मानते हैं कि तर्कवाक्य एक मौलिक अनुमान ही है। एक अनुमान में एवं तर्कवाक्य मे यही भेद है कि किसी सामान्य तर्क में तो हम ऊपरी तौर पर कुछ धारणा कायम करते हैं—जबकि तर्कवाक्य मे हम केवल तार्किक सम्बन्धों का पता लगा कर संतुष्ट हो जाते हैं। इस तरह यह उदाहरण कि— ईनोक एक आदमी था इसलिए मरणशील था इसी बात को सिद्ध करता है कि ईनोक वास्तव में मरणशील था। यह तर्कवाक्य कि यदि *ईनोक एक आदमी था तो वह मरणशील था ईनोक की मरणशीलता को व्यक्त* नही करता।

तो भी तर्कवाक्य एवं अनुमान एक ही प्रकार के तार्किक सम्बन्धसूचकों की ही व्यंजना करते हैं। इस तरह यदि सम्बन्धसूचकों की अवस्थाओ को ध्यान में रखें तो तर्क की दृष्टि से अनुमान एवं तर्कवाक्य एक ही आकार को व्यक्त करते हैं। और सभी तर्कवाक्यो को यदि है, तो है वाले आकार में व्यक्त किया जा सकता है। 'अ ब है' इसका यही अर्थ है कि अ में जो गुण है वही ब में भी हैं। और इसका दूसरा आशय यह भी है कि यदि कोई वस्तु अ है तो वही वस्तु ब भी है। तब यह दिखाना कि 'यदि है तो है' आकार के तर्कवाक्य मौलिक अनुमान

हैं, यह सिद्ध करते हैं कि तर्कवाक्य मौलिक अनुमान हैं उनके समेत, जिन्हें पद होने के कारण हम मौलिक अनुमान कहते हैं।

तब मूलभूत तार्किक अभिधारणा यदि है तो है" के आकार से अथवा 'इसलिए " से व्यक्त किए जाने वाले 'इलेटिव सम्बन्धसूचक' ही हैं। 1896 में मोनिस्ट में प्रकाशित एक निबन्ध, द रीजनरेटेड लोजिक में उन्होंने लिखा कि '1867 से ही मेरी यह मान्यता रही है कि प्राथमिक और मूलभूत तार्किक सम्बन्धसूचक आकार एक ही है, और वह है इल्लेशन। एक तर्कवाक्य मेरे लिए केवल मात्र एक युक्ति है जो अपने प्रेमियों एवं निष्कर्षों से बिल्कुल अलग है। यह प्रत्येक तर्कवाक्य को मूलतः एक दशानुकूलित तर्कवाक्य में बदल देता है। इसी प्रकार एक पद या वर्गनाम मेरे लिए एक ऐसा तर्कवाक्य है जो कर्ता से अथवा आधारभूत तत्व से रहित हो अथवा कोई अनिश्चित धारणा हो। यह सिद्धान्त इस तरह तर्कशास्त्र को एक श्लाघनीय एकरूपता प्रदान करता है।

यही 'इलेटिव सम्बन्धसूचक' बाद में भौतिक अभिप्रेत (मटीरियल इम्प्लिकेशन) के नाम से जाना गया। क्योंकि यदि प, फ—' इससे अधिक कुछ अर्थ नहीं रखता कि—'इसका यह अर्थ नहीं कि प तो सही है और फ गलत'। इस तरह से व्याख्यायित करने में यदि है तो है के आकार का मेल वर्ग सदस्यता सम्बन्धसूचक से भी बढ़ाया जा सकता है। इससे तो यही सिद्ध होता है कि प के सत्य होने को व्यक्त करने वाले जितने भी मामले हैं—वे फ के सत्य होने के उन मामलों को भी अपने अन्दर समाहित किये हैं लेकिन अन्य लोगों की भाँति पीयर्स यह कतई नहीं चाहते थे कि तर्कवाक्यों के सम्बन्धसूचकों का वर्ग सम्बन्धसूचकों [illegible] रूपान्तरित किया जा सकता है। उनके विचार की दिशा तो बिल्कुल इससे उलटी थी। उन्होंने लिखा है इस प्रकार 'कोपूला में व्यक्त किए गए सम्बन्ध का इलेशन के साथ मिला देने से हम तर्कवाक्य को अनुमान के साथ मिला देते हैं और पद का तर्कवाक्य से तादात्म्य बढ़ा देते हैं। उदाहरण के लिए मनुष्य' नामक पद का अर्थ है कि मेरे समक्ष अब एक ऐसी वस्तु है जिसमें क्ष तत्व मौजूद है और इसका यही अर्थ है कि ये दोनों अवस्थाएं कि कहीं मेरे समक्ष कोई वस्तु है और उस वस्तु में [illegible] तत्व मौजूद नहीं है एक साथ सही नहीं हो सकती—तब इसका यह मतलब हुआ कि यदि मेरे सामने कुछ भी है तो वह क्ष ही है। तर्कशास्त्र इसी प्रकार इलेशन अथवा भौतिक अभिप्रेत के आसपास संयोजित हो गया है।

पीयर्स ने इसे देख तो लिया था लेकिन वे भौतिक अभिप्राय में उत्पन्न हो जाने वाले विरोधाभास से बिल्कुल विचलित नहीं हुए। उदाहरण के लिए यह तथ्य कि यदि प 'फ' की सिद्धि करता है, उस समय भी जब यह स्थिति न हो कि 'प'

सत्य है और फ असत्य तब प का असत्य किसी भी ऐसे तर्कवाक्य के सत्य की सिद्धि करेगा जिसे हम उस सदभ म व्यक्त करेंगे। इस प्रकार पीयस के इस उदाहरण से यदि कोई दानव सयुक्त राज्य अमरीका का राष्ट्रपति चुन लिया गया तो वह अमरीका के आध्यात्मिक विकास के लिए बहुत सहायक सिद्ध होगा" यही निष्कप निकलता है कि वहाँ ऐसा चुनाव कभी नही होगा। इस प्रकार के निष्कर्षों स बिचकने की बजाय पीयस उनका उपयाग अपने तकशास्त्र म करते हैं—उदाहरणाथ नकारात्मकता को अभिप्राय के रूप म परिभाषित करने के अपने प्रयास म उन्होने इस सूत्र का ऐसा उपयोग किया कि प नहीं=सब फ, यदि प तो फ।' उन्होने कहा कि हमे तार्किक उद्देश्यो की पूर्ति के लिए यदि तो का विशेष रीति से प्रयोग करना चाहिए। यदि यह बात हमे ध्यान म रहेगी तो कोई उलझन नही होगी।

पीयस का आकारी तकशास्त्र के लिए योगदान तकशास्त्र की इस सव-सामान्य प्रवृत्ति के सिद्धात के विरुद्ध ही हुआ है कि तकशास्त्र प्रतीका का सिद्धात है।[1] तकशास्त्र की यह परिभाषा निश्चय ही कोई नयी बात नहा कहती। लाक ने भी पहले तकशास्त्र को प्रतीको का सिद्धात कहा ही था। उनके अनुसार तकशास्त्र का काय उन प्रतीको पर विचार करना है जिन्हे वस्तुओ को समझते समय मन निर्मित करता है अथवा उस समय, जब वह उसे दूसरो तक सम्प्रेषित करना चाहता है।' *लेकिन पीयस इस पर यह आपत्ति करते हैं कि* उनके पूववर्तियो ने इन प्रतीको का पर्याप्त सूक्ष्मता से परिश्रम सहित विश्लेपण नही किया है। निश्चय ही पीयस की रचनाओ के लिए इस सबध म तो कोई शिकायत कर ही नही सकता। उन्ह इन विशिष्टताओ की गुत्थियो के जरिए समझने के बजाए हम उनके मूल उद्देश्यो की झलक तो प्राप्त कर ही सकते है।

उनके अनुसार, तकशास्त्र आमतौर पर प्रतीको के सामान्य नियमो का विधान है जबकि विशेष रूप से प्रतिमानो का विधान कहा जा सकता है। इसकी तीन शाखाए हैं *(एक बार फिर उनमे त्रयी के प्रति मोह झलकता है)* जो एक दूसरे से भिन्न हैं। इस बात को 1897 म लिखे अपने किसी लेखाश म उन्होने सर्वाधिक स्पष्ट रूप से प्रदर्शित किया है। सबसे पहले विशुद्ध व्याकरण है जो यह विचार करता है कि किसी प्रतीक के सबध मे ऐसी कौनसी स्थिति सत्य है जिसे वैज्ञानिक बुद्धि द्वारा भी प्रयोग म लाया जा सकता है। पीयस के अनुसार यह स्थिति ऐसी है जिसे प्रत्येक अवस्था म साथक रूप से काय म लाया जा सकता है। तब मूल तक

---

[1] द्रष्टव्य डब्लू बी० गली कृत पीयस एण्ड प्रैग्मैटिज्म नामक पुस्तक मे पीयस थ्योरी आफ नोलेज' शीपक अध्याय।

शास्त्र का स्थान है। उसे 'सटीक तकशास्त्र' भी कह सकते हैं। यह तकशास्त्र वस्तु सबधी अनुभव म खडे हो जाने वाले सभी प्रतीको का वणन करता है और अन्तत विशुद्ध शास्त्रीयता प्योर रेटरिक) या रीतिविधान (मेथडोलोजी) हैं–जो ऐसे नियमो का निर्धारण करता ह जिसके जरिए एक प्रतीक दूसरे प्रतीक को ज म देता है और विशेषत एक विचार दूसरे विचार को।

यह त्रिमुखी विभाजन पीयस द्वारा की गई प्रतीक की इस परिभाषा पर आधारित है कि प्रतीक वह है जो किसी के लिए किसी अवस्था या क्षमता म किसी वस्तु का प्रतिनिधित्व कर सकता हो। अर्थात् उसे अपनी परिभाषा मे भी आवश्यकरूप मे अनक्कि सबधसूचको[1] की ओर जाना होता है। पीयस उसे जसा समझना चाहत हैं उसी रूप म प्रतीक का आभास हम हो जाना चाहिए। कोई प्रतीक आवश्यक रूप से एक शब्द नही है। यह एक विचार भी हो सकता है, काय हो सकता है और ऐसी प्रत्येक अवस्था हो सकता है जिसकी व्याख्या हो सके। दूसरे शब्दो म जो आग जाकर नये प्रतीकों को ज म द सकने की क्षमता रखता हो। इस तरह बादल एक प्रतीक है क्योकि इसका अथ वर्षा है। यह एक क्रियाशीलता की ओर इ गित करता है। य काय स्वत फिर प्रतीको के रूप मे प्रयुक्त हो सकते हैं, क्योकि उनका अथ भी उन लागो के लिए वर्षा ही होगा जि हाने किसी न किसी कारण से बादल नही देखे हा और ब द खिडकियो से वषा को सुना हो।

पूरी तौर पर पीयस इन प्रतीका को छिहत्तर प्रकारो म बाटते है। यह विभाजन व विभाजन सबधी विभिन्न नियमो के जरिय करते है। इस प्रकार यदि एक उदाहरण लें तो–एक प्रतिमा इस प्रकार का प्रतीक है जो उसे ही व्यक्त करती है जिसके लिए उसका निर्माण हुआ है, ठीक उसी तरह जसे एक फोटो किसी व्यक्ति का प्रतीक होता है। कोई सूचक (इ डेक्स) उन परिणामो को व्यक्त करता है जो कोई वस्तु अपने ऊपरी तौर पर ग्रहण कर लेती है। जैसे कोई छाया सूय के किसी कोण का प्रतीक इ डेक्स)होती है। कोई प्रतिमान वस्तुओ के साथ केवल परम्परा से ही जुडता है–और अधिकाश शब्द इसी प्रकार के होते हैं। इनका और अ य सभा विशुद्ध भेदो का क्या मूल बि दु है? क्या यह विभाजन केवल विभाजन के लिए है?

---

[1] वास्तव मे प्रतीको म रुचि होने के कारण ई० पीयस ने अनकिक सबध सूचको की चर्चा की है जिसे मूल रूप उ होने 'प्रतिनिधि सबधसूचक' कहा है। लेकिन बाद म उनके दिमाग म यह बात साफ हो गई कि इनका व्यापक प्रयोग भी किया जा सकता है।

हम काफी मात्रा में तथ्यो को इकट्ठा कर लें तो वहा जितने प्रतिशत म उन मामलों के विषय म कोई बात सही होगी उतनी मात्रा मे उसका प्रतिनिधित्व करने वाले वग के लिए भी सही होगी। आगमन का सावलौकिक (टिपीकल) उदाहरण इस तरह का होगा —

हमारा प्राकल्प यही है कि नीग्रो जाति म लडकिया के ज म लेने का प्रतिशत लडको के ज मने के प्रतिशत से कही अधिक है। हम इस प्राकल्प का परीक्षण सयुक्त राज्य अमरीका के परिगणना विभाग के आकडो स करते हैं। यदि हमारा यह अनुमान उन आकडो से मेल खाता है तो हम विश्वास-पूवक यह स्वीकार कर लेते है कि हमारा प्राकल्प सही है।

पीयस यह बात स्वीकारते हैं कि यह विधि उन मामलो म मुश्किल से ही काम मे लाई जा सकती है जहा प्राकल्प यही सिद्ध करते हैं कि अमुक वस्तु का स्वरूप अमुक अमुक है। जसा कि अमुक आदमी एक कथोलिक पादरी है। इस प्रकार के उदाहरणो मे हमारा आगमनात्मक अनुमान अदाज पर आधारित होगा क्योकि कथोलिक पादरी का स्वरूप कि ही इकाइयो मे बधा हुआ नही है। और इसी कारण से उसका साख्यिकीय चुनाव नही हो सकता। पीयस इसके बावजूद भी उस समय सवाधिक सतुष्ट होते हैं जब वे किसी बात की सिद्धि साख्यिकी उदाहरणो के जरिए कर सके हो और वहा उत्पन्न हो जाने वाली कठिनाइयो का उनके द्वारा किये गये सतक विश्लेपण मे) जसे मान लो उन्हें अच्छे नमूने की परिभाषा देनी हो, तो इस दौरान) वे उन सब समस्याओ को भी देख लते हैं जो बाद म उसी क्षेत्र मे उपस्थित हो सकती हैं।

यह स्पष्ट है कि पीयस का आगमनसम्ब धी वणन उ हें सभा यता के सिद्धान्त के बहुत करीब खीच लाता हैं। उ होन लिखा भी है कि सभा यता का सिद्धान्त केवल मात्र तकशास्त्र को परिमाणात्मक रूप से देखने का विज्ञान है। वह विज्ञान जो यह अनुमान लगाता है कि अमुक अमुक उपायो के जरिए अमुक अमुक निष्कप आने की कितनी सभावना हो गई है।

पीयस के सामने प्रमुख समस्या यही है कि वे सभाव्यता के इस विचार को वन से उद्धृत किय गये सभा यता के बारबारी विश्लेपण के अनुकूल देखना चाहत हैं। उनका हल इस प्रकार है, किसी निष्कप को सभव मानना यह कहना है कि वह एक ऐसी तकशृ खला से निकला है जो बहुत ज्यादा मामलो मे एक सही निष्कप की ओर ले जाती है। इस हल के दौरान उपस्थिति हो जाने वाली बहुत सी कठिनाइयो का स्पष्टीकरण दशन के क्षेत्र म किये गये उनके किसी भी योगदान से कम नहा है।

पीयर्स द्वारा बूले के बीजगणित में किया गया संशोधन तत्काल ही महत्वपूर्ण मानकर स्वीकार कर लिया गया है—इस संशोधन में प्रमुखत: जर्मन तर्कशास्त्री ई० श्रॉडर का ध्यान आकर्षित किया है और बाद में 'बूले श्रॉडर-बीजगणितीय तर्कशास्त्र' के रूप में प्रसिद्ध धारणा के निर्माण में भी वह काफी सहायक रहा। द्रष्टव्य, लक्चर्स आन द एलजेब्रा आव लोजिक 1890 1905)। लेकिन श्रॉडर की रचनाओं ने दर्शन के क्षेत्र में कोई नये विचार प्रस्तुत नहीं किए। पीयर्स व्यंग्य से इस बात को कहते हैं कि डी० मोरगन के सम्बन्ध-सूचक सिद्धान्तों का प्रभाव परोक्षत एक अ-तर्कशास्त्री" (विलियम जेम्स) की रचनाओं में आ गया है।

प्रिंसिपल्स आव साइकोलोजी के अपने प्रसिद्ध अन्तिम अध्याय में विलियम जेम्स इस धारणा का खंडन करते हैं, जिसका मिल ने भी पक्ष लिया, कि 'अनुभववादियों को तार्किक एवं गणितीय सिद्धान्तों की व्याख्या अनुभवों के सामान्यीकरण के आधार पर करनी चाहिए। लाक एवं ह्यूम का दृष्टान्त सामने रखते हुए विलियम जेम्स कहते हैं कि तर्कशास्त्र एवं गणित प्रत्ययों के सम्बन्धों को अपने विषय वस्तुओं के रूप में स्वीकार करते हैं। ये सम्बन्ध अनुभव-निरपेक्ष हैं यद्यपि प्रत्यय स्वयं अनुभवों की ही उपज हैं। जेम्स के अनुसार मूलभूत तार्किक एवं गणितीय सम्बन्ध एक तुलना है। प्रमाण की सही विधि तर्क है और गणित तो मध्यबिन्दुओं को पार करने का काम करता है। जब गणितज्ञ यह निष्कर्ष निकालते हैं कि यदि अ ब के समान है और ब स के तो अ स के समान है तो इसमें यह निष्कर्ष ब को पार करके ही ले लिया गया है। केवल यह तथ्य कि इस प्रकार से पार करना बहुधा सम्भव नहीं, (और यहीं जेम्स विशेषत डी० मारगन का दृष्टान्त देते हैं) क्योंकि यही बात इस क्रम में नहीं कि अ ब को प्रेम करता है और ब स को तो इसका यह अर्थ कदापि नहीं हुआ कि अ स को प्रेम करता है ये उदाहरण हमें यह भी संकेत देते हैं कि ये सम्बन्ध हमारे द्वारा प्रयास से बनाए हुए नहीं हैं। और न हमारे ही करने से मध्यबिन्दुएं पार की जा सकती हैं। यह निष्कर्ष उन्नीसवीं शती के उत्तरार्ध का मनस्तत्वविज्ञान की आलोचना के दौरान विशेषत प्रकट हुआ है।

इस आलोचना के अपने अन्य आधार भी हैं। एक बार फिर गणित का विकास तर्कशास्त्र के लिए काफी महत्व का हो गया था। चाहे इस समय इसके रूप में भिन्नता ही थी। बूले ने तर्कशास्त्र में नए प्रकार के बीजगणित की उद्धरण क्षमता देखी थी। हमारे समय गणित ने इनका ध्यान प्रतीकात्मक तर्कशास्त्र की ओर कर दिया, क्योंकि वे अपने इस कार्य में बीच में पड़ने वाले गणित के व्यवधानों को भी पूरित करना चाहते थे और उसके लिए उन्हें किसी सहायक की आवश्यकता थी। इस बिन्दु पर आकर अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में विचित्र प्रकार के आदान प्रदान हुए।

बूले डी० मोरगन का तर्कशास्त्र इंग्लैण्ड में प्रादुर्भूत हुआ था, लेकिन अपना शास्त्रीय रूप उसे जर्मनी के श्रादर के हाथों में मिला। गणितीय तर्कशास्त्र महाद्वीपीय रचना थी जिसे रसल और व्हाइटहैड की सर्व प्रसिद्ध कृति प्रिंसिपिया मैथेमेटिका में अपना शास्त्रीय स्वरूप मिल सका।

अनेक तरह से उन्नीसवीं शती के गणितज्ञों ने गणित और अनुभव के मध्य रही स्पष्ट कड़ी को तोड़ ही दिया था। बीज गणित अब परिमाणात्मक नहीं रह गया था। ज्यामिति भी आयामों संबंधी सीमाओं के पाश अपने सामान्यीकरण कर रही थी। गणित में ईजाद हुए नए पारसीम (ट्रांसफाइनाइट) अंक स्पष्टतः ही असामान्य प्रकार की धातु बताने वाले थे। उदाहरणार्थ पारसीम वर्ग में यह बात आवश्यक रूप से सत्य नहीं मानी जा रही थी कि पूर्ण अंश से बड़ा है। प्राकृतिक अंकों की अनन्त शृंखला सम अंकों की अनन्त शृंखला से बड़ी नहीं है।[1]

इन नवान्वेषणों के परिणाम स्वरूप गणित के वाक्य अधिकतर तर्क के वाक्यों जैसे होते जा रहे हैं। अब यही कहा जाने लगा था कि गणित केवल मात्र क्रम का विज्ञान है। 'वरिमा एवं परिमापा के संबंध में वे सारे संदर्भ जो उसे तर्क से भिन्न करते हैं उसके वास्तविक रूप में जोड़ दिए गए कुछ संदर्भहीन प्रक्षेप हैं। इस आधार पर लिखा गया यह निष्कर्ष इस दिशा में एक नन्हा सा कदम ही माना जाना चाहिए कि शुद्ध गणित को तार्किक नियमों से परिचलित प्रदर्शित किया जाना संभव मान लिया गया था।

नव गणित उसके प्रमुख प्रवर्तकों की दृष्टि में केवल अभिधारणाओं का विश्लेषण मात्र है सत्यों का कोई प्रदर्शन योग्य सिद्धांत नहीं। प्लेटो के समय से ही सामान्य धारणा तो यह थी कि गणित वस्तुओं की आदर्श अवस्था के संबंध में

---

[1] एन लोबाचेवस्की की अयूक्लिडियन ज्यामिति 1855 में प्रकट हुई थी। के वीयरस्ट्रास ने अठारहवीं शती की छठी दशाब्दी में ठोस गणितीय प्रमाणों के विचार का प्रवर्तन किया। सही अनन्त (रियल इंफिनिट) के पारसीम अंकों का यह सिद्धांत भी आर डेडेकाइंड की रचनाओं में अठारहवीं शती की नवीं दशाब्दी के दौरान देखा जा सकता है और उन्नीसवीं शती की अंतिम अवधि में जी० केण्टर की रचनाओं में भी इसी प्रकार की ध्वनि है। द्रष्टव्य, ई टी बेल कृत द डेवलपमेण्ट आव मैथेमेटिक्स, बी रसेल द्वारा मिस्टिसिज्म एण्ड लोजिक में लिखा गया मैथेमेटिक्स एण्ड द मेटाफिजिक्स' शीर्षक निबंध (1921) यह 1901 के इंटरनेशनल मंथली नामक पत्र से उक्त पुस्तक में पुनः मुद्रित किया गया।

निर्धारण किये जाने वाले सत्यों का एक आकलन मात्र है। जैसे सम्पूर्ण वस्तु। उसी प्रकार के [illegible]य आकार और इन आदर्शों तथा प्रतिदिन अनुभवों को उजागर करने वाले तथ्यों के बीच वास्तविक संबंधों के विषय में हुए दार्शनिक सुवाद उल्लेखनीय हैं। किन्तु अब यह धारणा बन रही थी कि गणित सत्यों के विषय में कुछ नहीं कहता। इसका प्रमुख उद्देश्य यही खोज करना है कि अमुक स्थितियों में क्या परिणाम निकलते हैं। इस संबंध का एक कुख्यात उदाहरण लें तो विभिन्न प्रकार की ज्यामितियों को विभिन्न आधारभूमियों के बावजूद भी साथ साथ रखा जा सकता है। गणितज्ञों के अनुसार यह प्रश्न ही नहीं उठता है कि उनमें कौन सी ज्यामिति सही है जब तक कि इनमें कोई विरोधाभास नहीं है इनमें प्रत्येक का वध विचार किया जाना सही है-यद्यपि कुछ ज्यामितियाँ विशिष्ट उपयोगी सिद्ध हुई हैं।

गणित का यह नया विचार अपने साथ प्रमाण की एक महती माँग लेकर प्रस्तुत हुआ था। गणितज्ञों ने हमेशा ही प्रबल और उपयोगी प्रमाणों की खोज की थी किन्तु उन्होंने यह नहीं माना था कि यही उनका एक मात्र उद्देश्य था—। अब तो वे यह भी मानने लगे हैं। इस प्रकार वे गणित के सिद्धांतों को तार्किक आकार देने के प्रयास में थे जिसमें उनका तार्किक आकार तत्काल ही स्पष्ट हो जाय और उस आकार में निहित बाधा शीघ्र दूर की जा सके। परम्परागत तर्कशास्त्र सरलतापूर्वक गणित की युक्ति को प्रतीकात्मक रूप न दे सका था। बूले का तर्कशास्त्र आंशिक आशाजनक लगता है और उसको भी नये उद्देश्य की पूर्ति के लिए व्यापक तौर पर पुनः निर्माण किया जाना बाकी था।

इस विकास के संबंध में एक महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि उसने तर्कशास्त्रियों को एक विषयवस्तु प्रदान की थी। पीयर्स ने यह खतरा भी लिया कि तर्कशास्त्र इस प्रकार शीघ्र एक गणितीय मनोरंजन बन कर रह जाएगा। वेन जैसे तर्कशास्त्रियों ने पुराने आकारी तर्कशास्त्र की तुलना में नये तर्कशास्त्र में अधिक सुविधापूर्वक हल की जा सकने वाली समस्याओं को सबके सम्मुख रखा। किन्तु कीन्स ने यह बताया कि वे समस्याएँ पुराने तर्कशास्त्र द्वारा हल न की जा सकती हों यह गलत है। वास्तव में ते समस्याएँ बनावटी ही हैं और इनका किसी वास्तविक जाँच पड़ताल से कोई ताल्लुक नहीं है। प्रतिदिन की बात—चीत में उभरने वाले तथ्यों को परम्परागत तर्कशास्त्र द्वारा अधिक सुविधापूर्वक समझा जा सकता था। यह बात वेन ने भी स्वीकार की है। तब बूल व उनके अनुयायियों द्वारा अन्वेषित प्रणालियों की क्या उपादेयता थी ? इन प्रणालियों की यही उपयोगिता थी कि इनसे गणितीय युक्ति का विश्लेषण संभव हुआ।

जी० पीयानो के नेतृत्व में इटली के तर्कशास्त्रियों के एक समुदाय ने तर्कशास्त्र के गणितज्ञों के लिए उपयोग व प्रयोग किये जा सकने की संभावना पर विचार

बूले डी० मारगन का तकशास्त्र इग्लण्ड म प्रादुभूत हुआ था लेकिन अपना शास्त्रीय रूप उसे जमनी के श्रादर के हाथो म मिला। गणितीय तकशास्त्र महाद्वीपीय रचना थी जिसे रसल और व्हाइटहैड की सव प्रसिद्ध कृति प्रिंसिपिया मथेमटिका म अपना शास्त्रीय स्वरूप मिल सका।

अनेक तरह स उन्नीसवी शती के गणितज्ञो न गणित और अनुभव के मध्य रही स्पष्ट कडी का तोड ही दिया था। बीज गणित अब परिमाणात्मक नही रह गया था। ज्यामिति भी आयामो सबधी सीमाओ के आगे अपने सामान्यीकरण कर रही थी। गणित म ईजाद हुए नए पारसीम (ट्रासफाइनाइट) अक स्पष्टत ही अमा माय प्रकार की धातु बताने वाले थे। उदाहरणाथ पारसीम वग म यह बात आवश्यक रूप से सत्य नही मानी जा रही थी कि पूण अश से बडा है। प्राकृतिक अको की अनन्त शृखला सम अको की अनत शृखला स बडी नही है।[1]

इन नवान्वेषणो के परिणाम स्वरूप गणित के वाक्य अधिकत तक क वाक्यो जसे होते जा रह हैं। अब यही कहा जाने लगा था कि गणित कवल मात्र रूप का विज्ञान है।'वरिमा एव परिमापा के सबध म व सार सदभ जो उसे तक से भिन्न करते हैं उसके वास्तविक रूप म जाड दिए गए कुछ सदमहीन प्रक्षेप हैं। इस आधार पर लिखा गया यह निष्कप इस दिशा म एक नन्हा सा कदम ही माना जाना चाहिए कि शुद्ध गणित को तार्किक नियमो स परिचलित प्रदर्शित किया जाना सभव मान लिया गया था।

नव गणित उसक प्रमुख प्रवतको की दृष्टि मे केवल अभिधारणाओ का विश्लेपण मात्र है सत्यो का कोई प्रदशन योग्य सिद्धात नही। प्लेटो के समय से हा सामान्य धारणा तो यह थी कि गणित वस्तुओ की आदश अवस्था के सबध म

---

[1] एन लोबाचेवस्की की अयूक्लिडियन ज्यामिति 1855 मे प्रकट हुई थी। क वीयरस्ट्रास ने अठारहवी शती की छठी दशाब्दी म ठोस गणितीय प्रमाणो के विचार का प्रवतन किया। सही अनन्त (रियल इफिनिट) के पारसीम अको का यह सिद्धात भी आर डेडेकाइड की रचनाओ मे अठारहवा शती की नवी दशाब्दी के दौरान देखा जा सकता है और उन्नीसवी शती की अतिम अवधि म जी० केण्टर की रचनाओ म भी इसी प्रकार की ध्वनि है। द्रष्टव्य, ई टी बेल कृत द डेवलपमण्ट आव मथेमेटिक्स बी रसल द्वारा मिस्टिसिज्म एण्ड लोजिक मे लिखा गया मैथेमेटिक्स एण्ड द मटाफिजिक्स ' शीपक निबध (1921) यह 1901 के इटरनेशनल मथली नामक पत्र से उक्त पुस्तक म पुन मुद्रित किया गया।

निर्धारित किये जाने वाले सत्यों का एक आकलन मात्र है। जैसे सम्पूर्ण वस्तु। उसी प्रकार के अन्य आकार और इन आदर्शों तथा प्रतिदिन अनुभवों को उजागर करने वाले तथ्यों के बीच वास्तविक संबंधों के विषय में हुए दार्शनिक संवाद उल्लेखनीय हैं। किन्तु अब यह धारणा बन रही थी कि गणित सत्यों के विषय में कुछ नहीं कहता। इसका प्रमुख उद्देश्य यही खोज करना है कि अमुक स्थितियों में क्या परिणाम निकलते हैं। इस संबंध का एक कुख्यात उदाहरण में तो विभिन्न प्रकार की ज्यामितियां को विभिन्न आधारभूमियों के बावजूद भी साथ साथ रखा जा सकता है। गणितज्ञों के अनुसार यह प्रश्न ही नहीं उठता है कि उनमें कौन सी ज्यामिति सही है, जब तक कि इनमें कोई विरोधाभास नहीं है, इनमें प्रत्येक का वैध विचार किया जाना सही है-यद्यपि कुछ ज्यामितियां विशिष्ट उपयोगी सिद्ध हुई हैं।

गणित का यह नया विचार अपने साथ प्रमाण की एक महती मांग लेकर प्रस्तुत हुआ था। गणितज्ञों ने हमेशा ही प्रबल और उपयोगी प्रमाणों की खोज की थी किन्तु उन्होंने यह नहीं माना था कि यही उनका एक मात्र उद्देश्य था—। अब तो वे यह भी मानने लगे हैं। इस प्रकार वे गणित के सिद्धान्तों को तार्किक आकार देने के प्रयास में थे जिसमें उनका तार्किक आकार तत्काल ही स्पष्ट हो जाए और उस आकार में निहित बाधा शीघ्र दूर की जा सके। परम्परागत तर्कशास्त्र सरलतापूर्वक गणित की युक्ति का प्रतीकात्मक रूप न दे सका था। बूले का तर्कशास्त्र अधिक आशाजनक लगता है और उसका भी नये उद्देश्य की पूर्ति के लिए व्यापक तौर पर पुनः निर्माण किया जाना बाकी था।

इस विकास के संबंध में एक महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि उसने तर्कशास्त्रियों को एक विषयवस्तु प्रदान की थी। पीयर्स ने यह खतरा भी लिया कि तर्कशास्त्र इस प्रकार शीघ्र एक गणितीय मनोरंजन बन कर रह जाएगा। वेन जैसे तर्कशास्त्रियों ने पुराने आकारी तर्कशास्त्र की तुलना में नये तर्कशास्त्र में अधिक सुविधापूर्वक हल की जा सकने वाली समस्याओं को सबके सम्मुख रखा। किन्तु कीन्स ने यह बताया कि ये समस्याएं पुराने तर्कशास्त्र द्वारा हल न की जा सकती हों यह गलत है। वास्तव में ये समस्याएं बनावटी ही हैं और इनका किसी वास्तविक जांच पड़ताल से कोई ताल्लुक नहीं है। प्रतिदिन की बात-चीत में उभरने वाले तथ्यों को परम्परागत तर्कशास्त्र द्वारा अधिक सुविधापूर्वक समझा जा सकता था। यह बात वेन ने भी स्वीकार की है। तब बूले व उनके अनुयायियों द्वारा अन्वेषित प्रणालियों की क्या उपादेयता थी? इन प्रणालियों की यही उपयोगिता थी कि इनमें गणितीय युक्ति का विश्लेषण संभव हुआ।

जी० पीयानो के नेतृत्व में इटली के तर्कशास्त्रियों के एक समुदाय ने तर्कशास्त्र के गणितज्ञों के लिए उपयोग व प्रयोग किये जा सकने की संभावना पर विचार

किया । 1895-1908 म प्रकाशित उनकी कृति **फोरमूलयरे डी मथमटिक्स** म पीयानो और उसक सहयोगियो न यह बतान का प्रयास किया था कि बीजगणित और गणित को कुछ सामान्य तार्किक सिद्धातो के आधार पर समझाया जा सकता है । जसे वग, वग सदस्यता, वग-मिश्रण, मौलिक अभिप्रेत एव वर्गों स विस्तृत आशय, तीन आदि गणितीय प्रत्यय, (शून्य, अक, और एक अक क आगे का दूसरा अक) और प्रारभिक वाक्य आदि आदि । कार्टेजियन प्रत्यय जिसमे गणित कुछ सामान्य ध रणाओ पर आधारित माना गया है-अब करीब करीब अपनी सिद्धि की ओर जाता हुआ लगन लगता है । इस निगमन को और सुविधाजनक बनाने के लिय पीयानो ने एक तार्किक प्रतीकवाद का आविष्कार किया जो पहल उपयोग म लाई गयी किसी भी प्रणाली स बेहतर था और यही वह प्रतीकवाद था जिसे रसेल और व्हाइटहेड ने अपनी रचनाओ म प्रयुक्त किया ।

पीयानो की रचनाओ म समस्याओ को या की यो साफ रख दिया गया था । व्यापक तार्किक मामले की उन्होन व्याख्या नही की थी और महत्वपूण विभागा को अनदेखा कर दिया था । जी०[1] फ्रेग की रचनाओ म ही सवप्रथम तार्किक गणित की समस्याओ का निदान किया गया । 1884 मे प्रकाशित **द फाउण्डशन्स आव अरियमटिक** तथा **फडामेन्टल ला आव अरियमैटिक** (1893-1903) म फ्रेग ने तक क नियमो का आधार लेकर गणित को सुरक्षित करने का प्रयास किया है । उनका दशन उन्ही समस्याओ से उपजा है जो उनक प्रयत्न के दौरान प्रगटी हैं । उनकी समस्याए तकनीकी है । उसी रूप म जिस रूप म आज का दशन तकनीकी है । उनकी उलझन को समझन के लिए प्रयास मात्र ही दशन के क्षेत्र मे हुए विकास को काफी हद तक समझ जाना है । यह प्रक्रिया करीब करीब

---

[1] बी० रसल द्वारा लिखित **द लोजीकल एण्ड अरियमेटिकल डोक्टरिन्स आव फ्रेगे** नामक निबध उनकी 1903 म प्रकाशित पुस्तक **द प्रिंसिपल्स आव मेथेमेटिक्स** म देखा जा सकता है । ई० ई० सी० जोन्स द्वारा लिखित **मिस्टर रसेल्स आब्जेक्शन्स टू फ्रेगेज एनालिसिस आव प्रोपोजीशन** (माइण्ड 1910) । एच० आर० स्काट **फ्रेगज लोजिक** (पी० आर० 1940) । उसके साथ ही जे० एस० एल० 1945 मे प्रकाशित ए० चच का रिव्यू भी देख । आर० एस० वल्स कृत **फ्रेगज ओण्टोलोजी** (आर० एम० 1950) पी० डी० वियनपाल **फ्रेगेज सिन अण्ड बडेउटुग** (माइण्ड 1950) डबलू० मारशल **फ्रेगेज थ्योरी आव फक्शन्स एण्ड ओबजक्टस** (पी० आर० 1953) एव एम० डयूमेट द्वारा दिया गया उसका जवाब (पी० आर० 1955) और इसी के क्रम मे आगे लिखा उनका एक नोट तथा मारशल द्वारा उसका जवाब (पी० आर० 1956) । आरडेन एव जोरजेन्सन द्वारा विस्तार से लिखित फ्रेग के प्रतीकवाद पर निबध ।

उसी प्रकार की है जिस प्रकार मक्टगट के दशन की स्थिति है क्योकि उनकी विचार धारा को समझने के लिए उनकी युक्ति को समझना मानो ही जरा कठिन है।

अपने तकनीकी रूप के कारण, फ्रेग का दशन शीघ्रता स लोगो का ध्यान आकर्पित न कर सका। उनकी शिकायत थी कि दाशनिक प्रतीकवाद के चक्कर म उलझ गए थे और गणितन सद्धातिक विवादो म। बर्ट्रेण्ड रसल न प्रिसिपल्स आव मथेमेटिक्स क परिशिष्ट म उनकी विचारधारा के कुछ अ शा की ओर ध्यान आकर्पित किया है। लेकिन इस प्रकार के प्रोत्साहन के बावजूद भी फ्रेग को वतमान शती की दूसरी पचीसी तक बहुत कम पढा गया। जबकि तथ्य यह है कि उनक दशन की विषयवस्तु म ही अपक्षाकृत नये दशन की प्राकछवि मौजूद थी।[1]

फ्रेग अपन समय मे प्रचलित गणित के दशन की आलोचना स ही प्रारम करते हैं। व ऐसी तीन प्रचलित विचारधाराओ के नाम गिनात है, ककड और बिस्कुटो का सिद्धात मनस्तत्त्ववाद एव आकारवाद। मिल का विचार था कि अ क सचल वस्तुओ के समहीकृत अनुभव का सामान्यीकरण मात्र है। यह ककड और बिस्कुट का सिद्धात है। मनस्तत्त्ववाद व्याख्या के प्रति हुए उत्साह की लहर म बहुत स दाशनिको न अ को की ऐसी व्याख्या की है जिससे व हमारी मन प्रक्रिया के साथ तादात्म्य रखते हुए से लगें। यही मनस्तत्त्ववाद है। दूसरे जिन्होने मिल और मनस्तत्त्ववाद की खामियो को हटा लने का प्रयास किया, और ऐसा करते समय जिन्होन प्लेटो के आइडियाज (प्रत्ययो) को पुन स्थापित करने का विचार भी नही किया उन्होने वहा यही कहा है कि अ क प्रतीको से अधिक कुछ नही है, और गणित इन प्रतीको स खेला जान वाला खेल है, उसी प्रकार जिस प्रकार शतरज मोहरो का खेल है। यही आकारवाद है। इन दोनो म से कोई भी सिद्धात फ्रेगे के अनुसार गणित की सारी सभावनाओ को प्रकटान योग्य नही हैं। आकारवाद अनुभवजन्य स्थितियो के लिए कही भी प्रयुक्त नही हो सकता, न मनस्तत्त्ववाद अपनी मुक्तता एव वस्तुपरकता के लिए। मिल के अनुभववाद का प्रयोग भी निश्चित एव सामान्य धरातल पर नही हो सकता। (फ्रेग पूछते हैं कि 0 या —1 ककडो के समूह की ओर किस प्रकार इ गित कर सकता है?)

इसी प्रकार क असतोषजनक सिद्धातो की ओर विवश होकर बहुत से दाशनिक बढ़ गए हैं क्योकि सभी ने गलती से यह सोचा था कि ऐसी प्रत्यक वस्तु जब

---

[1] पी० टी० गीच द्वारा माइण्ड, 1950 म लिखा सबजक्ट एण्ड प्रेडीकट इस का उल्लखनीय उदाहरण है जिसे कोई भी देखकर कह सकता है कि यह फ्रेगे की विषयवस्तु का ही एक रूपान्तर मात्र है।

म ही प्रकाशित इसी सम्बन्ध म उनका एक और निबन्ध है-भ्रान सेन्स एण्ड रेफरेंस।

व कायफलन (फक्शन) एव युक्ति (आरग्यूमट) म दिखाये गय बीजगणितीय भेद का सामान्यीकरण कर देते हैं। इस प्रकार की बीजगणितीय अभिव्यक्ति म जैसे २ क्ष^{3} + क्ष मे कायफलन वही है जो अक्षर क्ष क ऊपर लिखकर व्यक्त किया गया है। इसको सम्यक रूप से यो लिखा जा सकता है २ (   )^{3} + (   ), यहाँ युक्ति के लिए क्ष रिक्त कोष्ठको म भरा जा सकता है। कायफलन का एक महत्वपूरण पहलू यह है कि वह अपन आकार पर उसी तरह स खडा नही रह सकता है जिस तरह क्ष रह सकता है। तव कायफलन फ्रेगे के अनुसार असतृप्त है। इसकी पूर्ति क लिए किसी युक्ति का सदभ होना आवश्यक है ताकि कोई कथन अभिव्यक्ति योग्य हो सके। अपने निष्कप मे व कहत हैं कि यह प्रश्न कि काय-फलन किस मूलभूत तत्व की ओर इगित करता है निरथक है, क्योकि कायफलन किसी मूलभूत तत्व की ओर इगित नही करता। तो भी काय-फलन की कोई साथकता तो है उसका कोई भाव तो है, विशेप रूप से बीजगणितीय वाक्य के सदभ म तो अवश्य ही।

फ्रेगे के अनुसार प्रतिदिन के कथनो म एक विधेयात्मक अभिव्यक्ति ही कायफलन का काय कर देती है। यह अभिव्यक्ति कि   ने गाल पर विजय प्राप्त करली   उसी समय साथक है जब इसम जो रिक्त स्थान है, उसम एक व्यक्तिवाचक सना को   अभिव्यक्ति का एकजी बनाया जाए। उसी प्रकार यह अभिव्यक्ति "(   ) २" उसी समय साथक है, जब कोई युक्ति कोष्ठको क बीच भर दी जाए। इस तरह   न गाल पर विजय प्राप्त की" एक असतृप्त अभिव्यक्ति है फिर भी यह एक काय-फलन का ओर तो इगित कर ही देती है, चाहे यह किसी वस्तु का भवभ न भी दे। हम शायद उस समय उलझन म पड जायगे जब हम यह खोज करें कि किस प्रकार इस तरह का प्रत्येक अथपूर्ण वाक्य साथक हो सकता है और यह साथकता उस वाक्य से भिन्न है जिसमे उस प्रयुक्त किया जाता है। फ्रेग, इस प्रकार की उलझन स हम बचाने क लिए यह सिद्धान्त अगीकार करते हैं कि कभी किसी शब्द का अलग से अथ न पूछो। केवल किसी वाक्य मे ही उसका सदभ ढूढो।

साथकता के सिद्धान्त म जिसका विकास व अपनी विचारधारा म करते हैं विधेयात्मक अभिव्यक्तिया शन शन न्यून होती जाती हैं। बल केवल अब व्यक्तिवाचक सनाओ पर दिया जा रहा है। व्यक्तिवाचक सनाओ का व्यापक काय म यहाँ प्रयोग हुआ है। जितने भी आगू मेट हैं वे सब व्यक्तिवाची सनाए हैं। जो प्रमुख बात इन दोनों के बीच भेद करने की है वह है उनके भाव और सदभ को देखना।

यह बात तो फिर भी सत्य है कि दो अभिव्यक्तिया अपने सदभ म मेल खाती हुई भी हो सकती हैं—क्योकि उनकी साथकता एक ही लक्ष्य का प्रदशन है। लेकिन तो भी उनके भाव मे वे भिन्न होती ही हैं इस अभिव्यक्ति के 2+2 एव 4 दृष्टा त हैं। यदि ये एक ही प्रकार के लक्ष्य का सदभ नही देते तो गणित क समीकरण मे उनका एक दूसरे की एवजी म रखा जा सकना असभव हो जाएगा लेकिन फिर भी यदि वे अपन भाव म भि न नही है तो 2+2=4 कहने का कोई अथ ही नही होगा।

इसी प्रकार का विचार साँझ का तारा' एव भोर का तारा' नामक अभि-व्यक्तियो से भी प्रकट होता है। दोनो ही अभिव्यक्तिया एक ही लक्ष्य की ओर इ गित करती हैं लेकिन फिर भी खगोलशास्त्र क चेत्र की यह महत्वपूण खोज थी कि भोर का तारा और साझ का तारा दोनो एक ही हैं। इस तथ्य का सम थय कि दोना अभिव्यक्तिया एक ही वस्तु का सदभ दे रही हैं, इस तथ्य से करना कि साझ के तार स सबधित कोई कथन भोर के तारे से भी सबधित है सूचनात्मक है। जबकि यह कहना कि साझ का तारा साझ के तारे म मेल खाता है कोई सूचना नही देता। हम यह पहिचानना होगा कि ये दोनो अभिव्यक्तिया अपने भाव मे भिन्न हैं चाहे वे एक ही वस्तु का सदभ प्रस्तुत कर रही है। तब भाव और सदभ म यह भेद किए विना यह हमारे लिए असभव हो जाएगा कि किसी वस्तु की विभि न अभिव्यक्तिया का उपयोग हम कस कर सकते हैं।

इसी प्रकार हमे किसी वाक्य के सम्पूण अथ म भी भाव और सदभ का यह अ तर स्वीकारना होगा। प्रत्येक वाक्य किसी विचार को व्यक्त करता है। यह बात उस समय स्पष्ट सामने आती है जब हमे भाषा अनुवाद करते समय किसी वाक्य क भाव को सुरक्षित करन की आवश्यकता महसूस होती है।[1] क्या यही विचार उस वाक्य का भाव अथवा सदभ है? यह मान लना सरल है कि यह तो सदभ है जिसका अथ है कि किसी वाक्य म निहित व्यक्तिवाचा सज्ञा क लिए किसी विचार का वहन करना आवश्यक है। लकिन फ्रेगे का कहना है जब हम किसी वाक्य का रूपा तर उसम स कोई शब्द या वाक्यांश बदल कर करते हैं और सदभ वही रखते है केवल भाव बदल दते हैं तो उसम निहित विचार भी बदल जायगा।'

भोर का तारा एक ऐसा ग्रह है जो सूय द्वारा प्रकाशित है' यह उस वाक्य स एक दूसरा ही विचार है जिसम कहा गया है साझ का तारा एक ऐसा ग्रह है जो

---

[1] द्रष्टव्य द थाट ए लाजिकल एन्क्वायरी' (1918) माइ ड 1956 में अनूदित।

सूय द्वारा प्रकाशित है'। लेकिन तो भी दोनो वाक्या का सदभ परिवर्तित नही हुआ है। इस प्रकार वे यह निष्कष निकालते हैं, विचार किसी वाक्य का सदभ नही हो सकता, वह तो उसका भाव है।"

तो क्या हम यह निष्कष निकालें कि किसी वाक्य म कोई सदभ ही नही होता ? यदि किसी कलात्मक रचना मे वाक्य उसके उपकरण क रूप म प्रयुक्त होते हैं तो फ्रेग के मतानुसार उनका सदभ महत्वपूण हो जाएगा। 'ग्रोडीसियस गहरी निद्रा की प्रवस्था म इथाका के तट पर फेंक दिया गया' म स्पष्ट ही कोई भाव है, और यहा इस बात का कोई महत्व नही है कि ग्रोडीसियस का कोई सदभ भी है या नही। किन्तु जसे ही हम प्रस्तुत वाक्य की सचाई और दोषपूणता म रुचि लेने लग जाते हैं तो स्थिति बदल जाती है। उसी समय हम सदभ की माग करते हैं।

इस तरह फ्रेगे के अनुसार किसी वाक्य की प्रामाणिकता (ट्रूथ वेल्यू) उसके सदभ द्वारा निर्मित होती है। क्योकि इसका सदभ या तो सही अथवा गलत होता है। फ्रेग का कहना है कि ऐसी घोषणा करने वाला प्रत्येक वाक्य जिसका सदभ अपने शब्दो से जुडा हो, एक व्यक्तिवाची सना माना जाना चाहिए और उसके सदभ को, यदि उसम कोई सदभ हो तो सही अथवा गलत माना जाना चाहिए। इससे यह बात तो साफ ही है कि प्रत्येक सत्य वाक्य मे इसी तरह का सदभ होता है और दोषपूण वाक्यो की भी ऐसी स्थिति है। पृथक से किसी वाक्य का केवल सदभ मान ही जान लेना असभव है क्योकि हम पहले से अपने रूप म सत्य क्या है इसका पता नही होता। हमारे सामने तो सत्य का सदभ करने वाला वाक्य ही होता है। इसी तरह हम केवल मात्र उसका भाव ही मालुम नही कर सकते, क्योकि हम उस सबध मे सत्य क्या है, इससे कुछ परिचित तो होते ही हैं।

भाव एव सदभ का यह अन्तर फ्रेगे के तकशास्त्र और उनकी युक्ति का मूलाधार है इसके अतिरिक्त उनके द्वारा किया गया धारणाओ एव वस्तुओ सबधी भेद है जिस पर फ्रेग के गणित पर विचार करते हुए हमने पहले ही काफी प्रकाश डाल दिया है, लेकिन इस सबध मे कुछ और भी कहा जाना आवश्यक है। जसा हमने पहले कहा है कि उनका यह वर्गीकरण परम्परागत तकशास्त्र के कर्ता और विधेय के भेद से काफी मेल खाता हुआ है। फ्रेग का कथन है कि धारणा विधेयात्मक होती है। दूसरी ओर किसी वस्तु का नाम व्यक्तिवाचक नाम, व्याकरण के विधेय के रूप म प्रयुक्त किया जाना असभव है।

इस मत मे काफी कठिनाइया है। और फ्रेगे द्वारा उन कठिनाइयो के सबध म किया गया विचार अनुवर्ती चर्चाओ को उभारने मे बडी मात्रा मे उत्तरदायी है।

कठिनाइया मूलत यो उपस्थित होती है कि हमारे द्वारा कहे गए किसी कथन का कर्ता बहुधा किसी धारणा की ओर इशारा करता हुआ लगता है और व्यक्तिवाची सज्ञाए व्याकरण की दृष्टि से विषय का काय करती हैं। इस प्रकार की सारी उक्तिया बड़ तरतीब स हमे भ्रम म डालती हैं।

मानलो कि हम यह कहते हैं कि भोर का तारा वीनस है।' तब निश्चय ही इससे यह लगता है कि यह भोर का तारा एक ग्रह है' कथन के समानान्तर है, जिसम ग्रह निश्चय ही विधेयात्मक है[1]। किन्तु केवल व्याकरणीय दृष्टि से अलग तार्किक विश्लेषण यह बताएगा कि पहले कथन का है' तादात्म्य व्यक्त करता है, यह विधेयीकरण वाला है' नही है। 'भोर का तारा वीनस है' को यदि ठीक से समझा जाए तो वह यह ध्वनित करता है कि भोर का तारा और वीनस नामक अभिव्यक्तिया' एक ही वस्तु का सदर्भ दे रही है। इस तरह ऐसा आभास होने पर भी वीनस का यहा विधेयात्मक ढग से प्रयोग नही किया गया है।

इसी प्रकार वे यह भी सुझाते हैं कि सभी स्तनधारी प्राणियों का रक्त लाल होता है इसम स्तनधारियो के विषय म विचार की दिशा म कोई सदर्भ प्रस्तुत नही होता क्योकि यह कथन केवल यह बतलाता है कि जो कोई भी स्तनधारी हैं वे सभी लाल रक्तीय प्राणी हैं' अर्थात् कुछ अनाम वस्तु 'स्तनधारी' और लाल रक्तीय' प्राणियो की श्रेणी म आती हैं। इस प्रकार इस वाक्य म स्तनधारी विधेयात्मक है किन्तु अपनी आभास क्षमता के बावजूद भी वह कर्ता नही हो सकता।

वास्तव म इससे एक अधिक गम्भीर कठिनाई उपस्थित हो जाती है कि धारणाओ सम्बन्धी कथन ऐसे भी होते हैं जिनम धारणाओ का वर्णन द्वितीय श्रेणी की धारणाओ के रूप म किया गया है। यह सब कहना तो बहुत अच्छा है कि 'सभी स्तनधारी लाल-रक्तीय हैं' स्तनधारियो के विचार को व्यक्त न करके उस विचार का विस्तार करता है–अर्थात् उन्हीं वस्तुओ का वर्णन करता है जो वास्तव मे स्तनधारी हैं। इस सम्बन्ध म इस सभावना को भी अदेखा नही किया जा सकता कि यहा विचार को लालरक्तीय नही माना गया है। लेकिन तब इस कथन का क्या होगा, गोल चौकोर का विचार शून्य है'? इस सम्बन्ध म यह तर्क करना असम्भव है कि हम वास्तव म किसी वस्तु के वर्ग के विषय म कुछ कह रहे हैं जिन्हे गोल चौकोर द्वारा प्रदर्शित किया गया है। क्योकि हमारी चर्चा का मूल बिन्दु यही है कि

---

[1] फ्रेगे कर्ता, कोपुला व विधेय म भेद करते हैं। वे मानते हैं कि भोर का तारा ग्रह है' म है विधेय है, पीयर्स ग्रह है को विधेय मानता है। वह कहता है, विधेय क्रियापद ही होता है, सज्ञा नही। फ्रेगे पीयर्स के अनुसार चलते तो अधिक सरल रहते।

हम इस प्रकार की वस्तु की समावना म भी विश्वास नही करत। इसके अतिरिक्त फ्रेग ने अपने गणित क सिद्धात म यह कहा है कि अ क धारणाओ को दिए जाते है, वस्तुओ को नही। उ होने यह सिद्ध करन का काफी प्रयास भी किया कि अ क फिर भी वस्तुए ही है, धारणाए नही। समस्या अब भी वतमान है कि इस कसे दिखाया जाय? विशेष कर उन कथनो म जिनम हम धारणाओ को अ क प्रदान करत हैं। हम धारणाओ को यह कह कर थोडी देर क लिए हटा भी सकते हैं कि व हमारे कथन के कर्ता है।

यहाँ आकर फ्रेगे को समझना अत्य त कठिन है। वह इस बात स इन्कार करत हुए प्रारम करते हैं कि हमारी इस अभि यक्ति म घोडा सबधी धारणा' स्वय ही किसी धारणा को नाम दना ही हुआ। उनके अनुसार ऐसे कथन मे कि 'घोडा सबधी धारणा एक सुपरिचित विचार है,' कर्ता किसी धारणा का नाम नही है कि तु किसी पदाथ का नाम है और यह पदाथ है धारणा रूप म घोडा इसकी सत्यता फ्रेगे के अनुसार इसलिए प्रकट होती है कि घोडा सम्ब धी धारणा के आगे सदव ही डेफिनेट आर्टिकल द (द हास) लगा हुआ रहता है जबकि मात्र धारणाओ का सदम ऐसे वाक्याश के जरिए हुआ करता है जिनमे अनिश्चित आर्टिक्ल ए' लगता है। हम सदव ही ए मैमल (एक स्तनधारी) ए ह्वेल (एक ह्वेल मछली) ए मैन (एक आदमी) कहते हैं। और किसी धारणा का सदम देने के लिए 'द इवनिंग स्टार' (साँझ का तारा) द कपिटल आव आस्ट्रेलिया (आस्ट्रेलिया की राजधानी) का प्रयोग हम विधेयात्मक रूप म करते हैं। इसी प्रकार द कन्सेप्ट होर्स' घोडा सबधी धारणा) किसी न किसी पदाथ का नाम होना चाहिए किसी धारणा का नही।

यह स्पष्टत ही इस विरोधाभासी (पराडाक्सिकल) परिणाम की ओर ल जाता है कि घोडे सम्ब धी धारणा कोई धारणा नही है', जबकि बर्लिन का शहर' वास्तव मे शहर तो है ही और विस्यूवियस का ज्वालामुखी एक ज्वालामुखी है। लेकिन, एक बार फिर फ्रेगे कहते हैं कि यह समानान्तर दृष्टा त वस्तुत सही नही है, क्योकि यह गलती उस समय प्रकट हो जाती है जब हम घोडे जस शब्दो को अधोरेखित या उद्धरणचिन्हित लिखकर उन्हे स्पष्टकर अपनी बात कह देत हैं। यह आवश्यकता हम बर्लिन क लिए शहर लिखते समय महसूस नही करते। किसी धारणा पर बात चीत प्रारम्भ करन का अथ है कि उसका किसी विधेय से प्रतिनिधित्व कराना है। यह उस समय पूण हो जाता है। जब हम द कन्सप्ट एक्स (क्ष)" जसी पदावली का प्रयोग करके उस *धारणा को भाषा म अभि यक्त करत हैं।*

क्ष की धारणा (द कन्सेप्ट एक्स) और क्ष म तार्किक भेद (जबकि क्ष एक धारणा का सदभ देता है इस तथ्य म प्रकट होता है कि व वाक्यो मे अलग अलग तरह स काय करते हैं। कोई ऐसा वाक्य जिसम क्ष का प्रयोग करने से वह साथक हो जाता है, और क्ष उस वाक्य मे उसके एक अङ्ग के रूप मे प्रयुक्त हुआ है तब क्ष

को क्ष की धारणा के एवज म प्रयुक्त करना बिल्कुल निरथक है। उदाहरण के लिए यह वाक्य लें 4 का कम से कम एक तो वगमूल ह।' अब यदि इसम 4 का वगमूल के स्थान पर 4 की वगमूल धारणा का प्रयोग करें तो इसस प्रकटने वाला वाक्य न तो सही है न गलत है, बल्कि निरथक ही है। फ्रेग के मत म हम यदि अति साधारण तौर से किसी व्यक्तिवाची सज्ञा का प्रयोग करें, किसी युक्ति को विधेयात्मक रूप स नाम दें—और वह भी इस तरह स कि वह धारणा के उपयुक्त ठहरे— तो भी उससे प्रकटाने वाला वाक्य निरथक ही होगा।

यह तथ्य हमस इसलिए छिपा रह सकता है कि हमारी अपूण भाषा म एक ही वाक्याश विभिन्न वस्तुओ के लिए कभी तो विधेय के और कभी धारणा के लिए प्रयुक्त हो सकता है। कोई व्यक्ति, जो समुचित ढग स सोचना चाहता हो और भारी दाशनिक भूलो स बचना चाहता हो तो उसे या तो उद्धरण चिन्हो का उपयोग करके या कोई एसा चिन्ह सतकता स प्रयुक्त करके यह स्पष्ट करना होगा कि वह धारणा के बारे म कह रहा है या धारणा बता रहा है। दूसरे शब्दो म वह धारणा को विधेयात्मक रूप म रख रहा है अथवा धारणा की चर्चा कर रहा है (किसी वस्तु स उसका प्रतिनिधित्व करके) तभी वह स्पष्ट अभिव्यक्ति कर सकेगा। फ्रेगे के द्वारा इस बात पर दिया गया बल वतमान दशन के प्रवतन के लिए किए गए उनके अवदान का सुन्दर उदाहरण है। कहाँ उद्धरण चिन्हो का प्रयोग हो, इस सम्बन्ध मे मतभेद माइण्ड म हुए वतमान सुवादो का प्रेरक रहा। फिर भी यह मानने मे कोई आपत्ति नही है कि बहुत कम आधुनिक दाशनिक बिना गलती किय उद्धरण चिन्हो का प्रयोग कर सकते[1] हैं।

फ्रेग के अनुयायी उनके द्वारा भाव एव सन्दभ म किए गए भेद स सतुष्ट न हो सके। विशेष कर उनके द्वारा वाक्यो म किए गए उपयोग से न उन्होने फ्रेगे का धारणा और वस्तु सम्बन्धी भेद ही उसी रूप मे स्वीकारा जसा फ्रेगे ने सुझाया। लेकिन फ्रेग ने फिर भी समस्या को उठाने का एक ऐसा ढाचा खड़ा कर दिया था जिसके सहारे दाशनिक समस्याओ पर विचार करना बाद के दाशनिको के लिए सुविधाजनक साबित हुआ और यह कहना कि भाषा के कारण ही हम भटक जाते हैं और इसीलिए दोषहीन भाषा का निर्माण करना चाहिए जिसम प्रयुक्त अभिव्यक्ति सीमित और निश्चित होगी फ्रेग अपने समय के सभी दशनिको से भिन्न बीसवीं शती में आने वाले वस्तुस्थितिवाद के पूववक्ता कहे जा सकते थे।

---

[1] उदाहरण के लिय दखें, पी० टी० गीच द्वारा लिखित आन नेम्स आव इम्प्रशन्स (माइण्ड 1950)

अध्याय 7

आकारी तर्कशास्त्र के कुछ समालोचक

इस शती के आरम्भिक कुछ वर्ष ऐसे रहे हैं जिनमें दर्शन के क्षेत्र में 'नवीन तर्कशास्त्र' के मुहावरे का निरन्तर बार बार प्रयोग हुआ है। बूले और डी मोरगन के ताजे उदाहरणों से कोई यह कल्पना कर सकता है कि यह सब उनके नवान्वेषणों का परिणाम ही था कि इसकी इतनी चर्चा हो रही थी। किन्तु यह गम्भीर रूप से दोषपूर्ण व्याख्या होगी। नव तार्किकों की दृष्टि में बूले और मोरगन ने केवल इस सुपरिचित भूल का निवारण किया था—कि तर्कशास्त्र अनुमानों के वैध आकारों का प्रदर्शन और वर्णन करता है। नवीन तर्कशास्त्र तो वास्तव में आकारी वैधता के विचार का ही खण्डन करता है—चाहे यह प्रहार प्रत्ययवादी रूप ले अथवा अर्थक्रियावादी। किन्तु वे सब अपने इस खण्डन के प्रश्न पर एकमत हैं। इस दृष्टि से कोई भी आकारी तर्कशास्त्र चाहे वह परम्परावादी हो अथवा गणितीय असह्य रूप से अमूर्त है और इस अमूर्तता के प्रतिबद्ध होने के कारण छोटी मोटी गलतियों का शिकार हमेशा रहा है। इसलिए कहा गया कि सच्चा तर्कशास्त्र वही है जो विचार-प्रक्रिया की दिशा में अपरिचित आकार का आवर्तन न कराकर, दार्शनिक हो अपनी प्रणाली एवं अपने आधार में आकारी न हो।

इस प्रकार के दार्शनिक तर्कशास्त्र का विचार मैन्सल की प्रालेगोमना लोजिका (1851)[1] में देखा जा सकता है। अपनी अन्य कृतियों में मैन्सल हैमिल्टन का पूर्ण अनुसरण करते हैं। बस यही आकार हैमिल्टन द्वारा सफेद के संबंध में लिखे गए नोट्स में दिए गए विचार और प्रक्रिया के वर्णन को अपनाता है। किन्तु वे लौटकर दार्शनिकों की ओर चले जाते हैं और वहाँ अपने प्रभाव-सूत्र काण्ट एवं कजिन से ग्रहण करते हैं।

---

[1] यह उल्लेखनीय बात है कि यह एक ऐसी रचना थी जिसे बूले बहुत पसन्द करते थे। हमने यह तो देखा ही है कि बूले किसी भी ऐसे तर्कशास्त्र से सन्तुष्ट नहीं थे जिसमें अन्तत विचार के नियमों का विवरण न हो अर्थात् जो केवल मात्र आकारी ही न हो। इसके विपरीत पीयर्स का मत था कि मैन्सल ने प्रोलेगोमेना टू लोजिक लिखकर तर्कशास्त्र को तह से छुआ है। इससे अधिक इसको हेय मानने का कोई कारण नहीं है।

प्रोलेगोमेना का लक्ष्य तर्कशास्त्र के क्षेत्र का निर्धारण करना था। एक ऐसे तर्कशास्त्र का, जो छलपूर्ण उपयोगितावाद के शाब्दिक ऐश्वर्य से न तो अभिभूत हो और न बिना लाभ के ही बंजर आकारवाद की भूमि में दफना दिए जाने को स्वीकार करता हो। इस मामले को यदि रूपक न दें, तो कहना होगा कि मैंसल मिल के विरुद्ध कह रहे हैं कि अनुभव-विज्ञान से संबंधित जांच पड़ताल के लिए काम में ली जाने वाली प्रणालियों का तर्कशास्त्र से कोई सरोकार नहीं है और न ही नव आकारवादियों के विरुद्ध यह कहना ही कोई अर्थ रखता है कि आकारी तर्कशास्त्र, अपने आप में क्षुद्र एवं खोखला है।

मैंसल कृत प्रोलेगोमेना अपना रूप, सम मान धारणा निर्णय एवं युक्ति आदि की प्रकृति पर विचार करते हुए ग्रहण करता है और तर्कशास्त्र मनोविज्ञान एवं ज्ञान-मीमांसा का मिला जुला रूप प्रस्तुत करता है। इन सबका वर्णन करने का उनका तरीका ब्रितानी परम्परा के अनुकूल ही है। लेकिन इस परम्परा का सुधार उन्होंने अपने महाद्वीपीय शक्ति के ज्ञान के सहारे किया है। वे इस क्षेत्र में ब्रेडले और बोसांके के पूर्ववर्ती के रूप में आते हैं और कहते हैं कि निर्णय, जो मात्र एक इन्द्रिय ज्ञान ही नहीं है विचार की इकाई भी है। धारणाओं के द्वारा किसी वस्तु को जानना और उस पर निर्णय लेना ही विचार है। दूसरे शब्दों में सोचने का अर्थ किसी वस्तु का कामचलाऊ ज्ञान प्राप्त करना ही नहीं है किन्तु यह निर्णय करना है कि, अमुक वस्तु किस धारणा के अन्तर्गत आती है।

यद्यपि मैंसल को 19 वीं शताब्दी के इंगलैण्ड में प्रत्ययवादी तर्कशास्त्र प्रवर्तित करने के आंदोलन का श्रेय मिलना चाहिए तो भी तथ्य यह है कि उनकी रचनाओं में विद्यमान, हेमिल्टन के प्रभाव के कारण ब्रेडले और बोसांके उनका सन्दर्भ देना भी पसन्द नहीं करते।[1] वे अपने प्रभाव-ग्रहण के लिए सीधे जर्मनी की ओर जाते हैं और वे केवल काण्ट एवं हीगल को ही नहीं, अपितु हर्बर्ट, लाज, सिगवर्ट एवं यूबरवेग[2] को भी पसन्द

---

[1] ग्रीन अपने निबंध आन फोरमल लोजीशियन्स में उन पर हेमिल्टनवादी होने का आरोप लगाते हैं।

[2] एफ. यूबरवेग (1862-66) द्वारा लिखी अपनी पुस्तक मैनुअल आव द हिस्ट्री आव फिलोसोफी के कारण पहले ही काफी ख्याति प्राप्त कर चुके थे किन्तु उनकी 1857 में लिखी पुस्तक सिस्टम ऑव लोजिक एण्ड हिस्ट्री ऑव लोजीकल डोक्ट्रिन्स जर्मनी और इंग्लैण्ड में बड़े पैमाने पर पढ़ाई जाने वाली पाठ्य पुस्तक के

करते हैं। वास्तव म बोसाक तो इ ग्लण्ड म जमन प्रभाव लाने मे इतन मौलिक नही थे जितने ब्रेडले[1] अपनी रूढिहीनता के कारण थे।

उनके अनुसार, तकशास्त्र का प्रारम निणय से होता है। क्योकि वे इस ब्रितानी रूढि से टूटकर उक्त बात कह रहे थे कि व स्तविक तकशास्त्र का प्रारम्भिक बिन्दु तो प्रत्यय है। उन्हे अपनी बात को द प्रिंसिपल्स आव लोजिक (1883) मे विस्तारपूवक चचा करनी पडी। यहा उन्होने यह भी बताया था कि किस प्रकार प्रत्यय और निणय एक दूसरे से सबधित हैं। निणय की परिभाषा वे एक ऐसी क्रिया स देते हैं जो सत्य क उस क्रिया से भिन्न एक भादश रूप का सदभ प्रस्तुत करती है।

इस तरह तकशास्त्र का आरम्भिक बिन्दु कोई ऐसा प्रत्यय न होकर जो मेरे मस्तिष्क मे उपजता हो– मानसिक धातु स निर्मित किन्तु कोई ऐसा प्रत्यय है जिसका कोई अथ निकलता हो और जो सत्य की ओर इशारा करता हो। इसी बिन्दु पर प्रस्तुत की गई उलझनें ही ब्रितानी तकशास्त्र की कमजोरी रही हैं। इसी आधार पर मनोविज्ञान एव तकशास्त्र का घोलमेल हो गया। ब्रेडले यह अनुभव करने लगे थे

रूप मे प्रसिद्ध रही। सी० सिगवर्ट कृत लोजिक (1873) जिसका 1895 मे बोसाके ने अनुवाद किया, अपेक्षाकृत अधिक महत्वपूर्ण कृति है। यहा तकशास्त्र की पुनरचना रीति विधान (मेथडोलाजी) क आधार पर की गई है। उसमे एक ऐसे प्रत्ययवादी विचार की स्थापना की है जिसके सहारे जाच पडताल समव हो सके। ऐसे दाशनिक तकशास्त्र के रूप म यह कृति एक ऐसे आकार की स्थापना करती है जिसे ब्रेडले और बोसाके अपनाते हैं और विस्तृत विवरण की सुविधा के लिए वे उनके कृतज्ञ हैं। लाज के विषय मे जो इनम सर्वाधिक प्रभावशाली था देखें आर० एडेम्सन लौजेज लोजिक (माइण्ड 1885) ए शाट हिस्ट्री आव लोजिक 1912 के रूप म पुन मुद्रित। लाज न 1843 म भी लोजिक नामक पुस्तक लिख दी थी किन्तु सिस्टम (1874) का पहला भाग तकशास्त्र क क्षेत्र म एक महत्वपूर्ण योगदान था।

[1] ब्रेडल क तत्वज्ञान और तकशास्त्र से उसके सबध पर द्रष्टव्य इसी पुस्तक का तृतीय अध्याय। आर० केग कृत द ग्रोथ आव एफ० एच० ब्रेडलेज लोजिक 1931 जी० एफ० स्टाउट मिस्टर ब्रेडलेज थ्योरी आव जजमण्ट (पी० एस० स्टडीज मे पुनमुद्रित। जी० राइले की भूमिका एव आर ए वोलहीम का निबध एफ० ए० ब्रेडले द रिवोलूशन इन फिलोसोफी (1956) नामक पुस्तक म। राइल ब्रेडले और फ्रेगे के बीच रहे साम्य को बडी स्पष्टता मे बताते हैं।

कि उनके द्वारा की गई निणय सबधी चर्चा उ्ह लाक परम्परा के काफी करीब ले आती है क्याकि उ होने प्रत्यय को अपने आप म पूण और स्वायत्त माना है किन्तु यहा भी तकशास्त्र से अलग हो जाने का अवसर नही है। उनका अधिक परिपक्व दृष्टिकोण जा उनकी पुस्तक ऐसेज आन ट्रूथ एण्ड रीएलिटी मे प्रकट हुआ है, यह है कि प्रत्यय कभी प्रवाहित नही होते तो भी वे अपने आपम कभी पूण नही हैं लकिन किसी न किसी तरह वे उस सत्य से सम्पृक्त से लगते हैं जिनके वे विशेषण हैं और निणय म मूल तत्व के रूप मे प्रकट हाते हुए भी लगते हैं। प्रत्यय बिना अथ क कोई अस्तित्व ही नही रखता, जिसकी कल्पना इस सबध म हम कर सकते हैं कम से कम वह एक एसा निणय है जिसम कोई प्रत्यय पहल म ही किसी न किसी सत्य स स दर्भित हाता है।

ब्रेडले तब इस परम्परागत दृष्टिकाण का खण्डन करते हैं कि निणय एक प्रत्यय विधेय) से दूसरे प्रत्यय (कर्ता) की ओर जान का नाम है। सवप्रथम तो किसी निणय म आइडियल कटॅट' (प्रत्ययित धातु) कवल एक ही है। यह वह एक ही धातु है जिसे सत्य पर विचार करते समय हम एक ही मानकर चलते हैं। परम्परागत दृष्टिकोण से जब हम यह कहते हैं कि भेडिया मेमने को खा गया' ता भेडिय और ममना इन दो प्रत्यया को हम वाक्याथ रूपी एक निणय म जोडत है। ब्रेडल पूछते हैं कि हम भेडिया प्रत्यय का अलग क्यो मानें ? एक कम्प्लक्स क्यो नही ? कवल एक प्रत्यक कही होता नही कम्प्लेक्स प्रत्यय' भी एक प्रत्यय ही है। कोई भी धातु जिम मन पूणत ग्रहण करता हो चाह वह कितनी ही विशाल या लघु हो, कितनी ही सरल या जटिल हा एक ही प्रत्यय है और इसके बहुत स सबध-सूचक उमी एक्य स जुडे रहते हैं।

इसक अतिरिक्त, कि प्रत्यक निणय दो प्रत्ययो को जोडता है कता और विधेय को) प्रस्तुत उदाहरण म प्रयुक्त नही हो सकता —

ब अ से नि सृत है अ और ब समान है एक साप है। तथा यहाँ कुछ नहीं है" इन सबम यह निणय लेना कि अमुक कर्ता है ब्यतर म खानी नहीं है। यह उदाहरण उनक अनुसार बहुत स्पष्ट तौर म यह बताता है कि निणय एक ही धातु से निर्मित है, किन्हीं जुडे हुए पदो अथवा प्रत्यया का आँकलन नही। सक्षेप म ब्रेडल उतने ही तीव्र आलोचक हैं जितने 'प्रतीकात्मक तकशास्त्री थ।

भेद यही है कि ब्रेडले का पुराने तकाकारो को रूप दन का कोई भी उद्देश्य नही है। जव न्स का समीकरण इसका उदाहरण है। ब्रेडल यह दर्शाना चाहते हैं कि यदि जवन्स क विश्लषण को गम्भीरता पूवक लें तो हम इस तकवाक्य की कि सभी नीग्रा मनुष्य हैं समीकृत व्याख्या करन को विवश हो जात हैं मानो यह इसस अधिक कुछ भी नही करता कि नीग्रो=मनुष्य नीग्रा मनुष्य। तब हम निणय क जरिए सार

सारतत्वो का एकमेक कर लते हैं और इसका एक खोखला ढाचा बना दत हैं–निणय छीजता जाता है इस तरह और तब धीरे धीरे वह गायब हो जाता है।

ब्रेडल यह मानते है कि परम्परागत और समीकृत दोनो ही प्रकार क निणय सबधी विश्लेपणा म सत्य का अ श मौजूद है। परम्परागत दृष्टि इस बात पर बल देती है कि प्रत्यक निणय अपने साथ एक विविधता लिए हुए है। लकिन ब्रेडल यह बताना चाहत हैं कि निणय की पहचान उसक पदो क पारस्परिक सबधो स नही होती यह तो इस तथ्य म निहित होती है कि निणय प्रत्ययात्मक धातु को सत्य की एक ही प्रणाली का रूप बता जाता है, चाहे इसम प्रयुक्त विधेय मार्गान्तरित हो। सब नीग्रो मनुष्य हैं इस बात स इस सत्य का आभास होता है कि मनुष्य नामक विधेय म नीग्रो एक इकाई ह। इस प्रकार का निणय प्रत्ययित धातु को सत्य की एक ही प्रणाली की ओर ल जाता है चाहे इसम प्रयुक्त विधेय मागा तरित हो। कोई अन्य प्रकार का निणय एकता म अनेकता का समन्वय नही कर सकता। इसस यह निष्कष निकला कि तकवाक्यो म आकारी भेद कृत्रिम है, अमहत्वपूण है। अन्तत तकवाक्य एक ही आकार के होते हैं वे सब सत्य का एक प्रत्ययात्मक विचार (Ideal Content) की ओर सकेत करते हैं।

इस दृष्टिकोण पर स्पष्ट ही एक आपत्ति है–जिस इण्ट्रोडक्शन टू फिलोसोफी (1813) म हबट ने पहले स ही बता दिया था। उनके अनुसार हमारे बहुत स निणय सत्या क बारे मे नही होते, किन्तु समावनाओ क बारे म होते है और कभी तो असमावनाओ क लिए भी। यह निणय लें कि चतुष्कोणीय वृत्त एक असमव स्थिति है। हबट के अनुसार स्पष्ट ही किसी वास्तविक चतुष्कोणीय वृत्त के लिए यह तकवाक्य सही नही है। ब्रेडले क मत से यह निणय गलत ढग स अभिव्यक्त किया गया है। हम तो उस क्रियात्मक सूत्र द्वारा दिग्भ्रमित किया जा रहा है और उसी म से हमे चुनन क लिए बहुत कुछ सौंप दिया गया है। उस वाक्याश का पुनगठन करके देखें तो हमे मालूम होगा कि वरिमा का स्वभाव ही वृत्त और चौकोर दोनो क समन्वय को स्वीकार नही करता–और इसलिए असत्य स्थितियो का सदभ ही चर्चा से गायब हो जाना चाहिए। तो भी हमन इस सबध म मौलिक रूप स किसी कथन की स्वीकृति के लिए बहुत कुछ कह दिया। फ्रेग की भाति ब्रेडले इस बात पर बल दते हैं कि वाक्य का व्याकरणसम्मत आकार बिल्कुल भ्रामक भी हो सकता है और उस तार्किक आकार के लिए निदशन मानने म खतरा ही है।

कुछ अन्य मत जिन्हे हबट प्रस्तुत करते है ब्रेडल की राय म अधिक गमीर हैं। ब्रेडल को किसी न किसी भाति हबट की युक्ति का खण्डन करना है–निणयो के सबध म कोई अपरिवतनशील धारणा बना लना यही जानकर कि वे सत्य का दिखावा तो प्रस्तुत कर ही रह है–एक भ्रम होगा। क्योकि निणय चाहे जो भी हो अपने स्वभाव के कारण प्राकल्पिक होता है।

ह्वट का कहना है कि प्रत्यय अपनी प्रकृति से सामान्य होते हैं और निर्णय करना इन प्रत्ययो को सबधित करना है। इसलिए दो सामान्य और समष्टिगत स्थितियो को मिला देना है। यह कहना कि सभी ह्वेल मछलियां स्तनधारी है–यह निर्णय लेना है कि प्रत्येक ह्वेल समुदाय स्तनधारी समुदायो मे से ही है। यह निर्णय ऐसा कोई सदर्भ प्रस्तुत नही करता जिससे हम कह कि हम विशिष्ट स्तनधारियो की बात कर रहे हैं अथवा विशिष्ट ह्वेल मछलियो की। जबकि तथ्य वास्तव मे विशिष्ट ही होते हैं।

इस तरह ह्वट यह निष्कर्ष लेते हैं कि निर्णय और सत्य के बीच एक खाई है। और निर्णय जो किसी वस्तु से सबधित सत्य को स्वीकारता है, इस बात की केवल एक प्राकल्पिक स्वीकृति हो सकता है कि यदि किसी वस्तु को ह्वेल समुदाय का माना गया है तो वह निश्चय ही स्तनधारी समुदाय की भी मानी जानी चाहिए। इसके विपरीत एक तथ्य है जो केवल प्राकल्पात्मक नही होता, दो विशिष्ट अस्तित्वमान वस्तुओ के बीच का वास्तविक सबध होता है।

ह्वट यह मानकर चलते है कि निर्णय प्रत्ययो को जोड देता है। यह मान भी लें तो ब्रैडले के अनुसार यह स्थिति अनुत्तरित ही रह जाएगी। निस्सदेह अनुभववादी उत्तर के लिए प्रयास करेंगे। उस समय वे यही कहेंगे मिल की भांति, कि एक समष्टिगत निर्णय सत्य के प्रति परोक्ष रूप से जुडा हुआ है। किसी एकात्मक निर्णय के लिए यह बात सही नही है, उदाहरण के लिए यदि मैं कहू, मुझे दात का दर्द हो रहा है तो यह विशिष्ट तथ्य का एक सीधा रिकार्ड है चाहे सब ह्वेल स्तनधारी है से यही सिद्ध होता है कि उसमे समष्टिगत सत्यो का ही सदर्भ है। ब्रैडले, सामान्य और विशिष्ट तर्कवाक्यो के इस भेद का खण्डन करते हैं। मैं' और 'दात का दर्द होना ही सामान्य प्रत्ययो का सदर्भ प्रस्तुत करते हैं। और इस एकात्मक निर्णय कि मुझे दात का दर्द हो रहा है का यही अर्थ है कि मुझ जैसे समझी जानेवाली सभी वस्तुओ को दात का दर्द होना चाहिए। यह सामान्यता हटाई भी नही जा सकती यदि 'मैं की एवज मे जोन्स जैसी व्यक्तिवाची सज्ञा का भी प्रयोग कर दिया जाए। वे मिल की इस धारणा का भी खण्डन करते हैं कि व्यक्तिवाची सज्ञाओ का कोई भी कोनोटेशन (आशय) नही होता। जोन्स को दात का दर्द है जैसे वाक्य मे जोन्स का कोई न कोई अर्थ होना ही चाहिए जो इस प्रस्तुत घटना के बाहर की ओर इगित करता हो। यदि हम लाज के इस निष्कर्ष को हटाना है कि ऐसे वाक्य केवल तादात्म्य ही प्रस्तुत करते हैं जैसे दात के दर्द मे पीडित जोन्स ही दात के दर्द से पीडित जोन्स है जोन्स किसी ऐसे निरन्तर गुणो से युक्त अवस्था का परिचायक है जिसे एक निश्चित अवधि तक ही पहचाना जा सकता है और ये निरन्तर स्थ गुण ही जोन्स को व्यक्त करते हैं। इसी प्रकार प्लेटो कृत सोफिस्ट का अनुसरण

करें तो ब्रेडले कहते हैं, कि 'यहाँ और अब' नामक शब्द निरर्थक हैं जब तक कि उनका सामान्य महत्व न हो।

इस प्रकार कोई समष्टिगत तर्कवाक्य, असत्य के दोष से युक्त है, तो एकात्मक तर्कवाक्य भी इसी दोष से युक्त होना चाहिए। इसके अतिरिक्त जैसा कि अनुभववादी मानते हैं ब्रेडले के मत में कभी भी किसी स्थिति का तथ्य रिकार्ड नहीं होता। उदाहरण के लिये हम कहें कि यहाँ भेड़िया है, तो यह निर्णय हम जो देख रहे हैं उसकी अपेक्षा एक दुर्बल अमूर्तीकरण (पूअर एब्स्ट्रक्शन) है। जब उस अवस्था का वर्णन करते हैं, जिसे हम देखते हैं कि एक भेड़िया है, बजाय इसके कि कोई दाँतों वाला जानवर है तो निश्चय ही हमने पूर्ण तत्व के एक अंश को सुविधा के लिए चुन लिया है। इसलिए इसी को पूर्ण सत्य मान लेना सत्य को झूठ करने के अतिरिक्त कुछ नहीं है। इन तर्कवाक्यों की सुरक्षा हम फिर भी यों कर सकते हैं यदि हम इन्हें एक परिस्थिति में अमुक अमुक अंग बताने वाला सामान्य संयोग मानें और तब उसे भेड़िये में जोड़ें। तब हम फिर अमूर्तीकरण नहीं कर रहे होंगे। हम भेड़िये को एक ठोस रूप में प्रस्तुत करते हैं जैसा हम उसे देखते हैं। हम तब हमारे निर्णयों की सचाई का बचाव नहीं कर सकते उस रूप में जिसमें अनुभववादी करना चाहते हैं और कहते हैं कि समष्टिगत निर्णय परोक्षित सत्य की सिद्धि करते हैं जबकि एकात्मक निर्णय, तथ्य को रिकार्ड करते हैं। यदि हर्बर्ट की आपत्तियों का जवाब दें तो अधिक प्रगतिशील कदम उठाने की आवश्यकता शेष रह जाती है। ब्रेडले कहते हैं कि हमारे निर्णयों की सचाई को कायम रखा जा सकता है यदि हम परम्परागत निर्णयों के सिद्धांत का दो तरह से खण्डन करें। एक इसका कि निर्णय प्रत्ययों को संयोजित करते हैं और इसका कि आपाततः दिखने वाला कर्ता ही उसका वास्तविक कर्ता होता है। यदि सब क्ष य हैं वास्तव में केवल क्ष के लिए ही कहा गया होता तो यह केवल इतना ही बताता है कि यदि कोई वस्तु क्ष है तो वह य भी है। और तब भी हर्बर्ट का पक्ष अनुत्तरित रह जाता है। लेकिन यदि इसमें यह कहा जा रहा है कि जो सत्य क्ष के लिए विधेयित है, वही य के लिए भी है-यदि उसका वास्तविक कर्ता अपने आप में एक ऐसा सत्य है, जिसे अधिक पूर्णता से प्रकट नहीं किया गया है लेकिन हमारे कथन का उद्देश्य यही है। तो हमारे निर्णय की अपरिवर्तनशील प्रकृति से हम बच जाएँगे।

ब्रेडले को अब भी एक बिल्कुल ही भिन्न क्षेत्र की आपत्ति का सामना करना था कि यद्यपि सब क्ष य है जैसे निर्णय प्राकल्पिक तौर पर क्ष का य पना ही सिद्ध करते हैं तो भी वे निश्चित शब्दों में यह अस्वीकार भी करते हैं कि क्ष य भिन्न हैं। इससे यह अर्थ भी निकल सकता है कि यह अपने आकार के कारण क्ष के संबंध में एक कथन के रूप में एक नियत और अपरिवर्तनीय अर्थ भी रख सकता है और हो

सकता है, उस अपन म निहित सत्य बताने की अपेक्षा न भी पडे। उदाहरणाथ वन न अपनी रचना सिम्बोलिक लोजिक म यह सुझाव दिया था कि उस स्थिति म जिसम इस तरह क तकवाक्य (समष्टिगत स्वीकारात्मक तकवाक्य) कुछ सिद्ध करत हैं, इस अवस्था का मात्र दशायित (कडीशनल) ही माना जाएगा—लकिन जहा वह कुछ अस्वीकार करता है, ता उसे परिपूण माना जायगा। ब्रेडल इसक विपरीत यह बतात हैं कि नकारात्मक निणय कभी भी परिपूण नही होते, क्योकि य सदव ही अनकही दशाओ पर आधारित रहत हैं। यह कहना कि क्ष य नही है, उनक अनुसार यह मानना है, कि क्ष म कोई ऐसी कमी है जिसके कारण वह 'य' न हो सका है यद्यपि हम यह मालुम अब भी नही है कि वह कौनसा अभाव है। इस तरह जब हम 'क्ष य नही है' कहत हैं तो हम यह जानत हैं कि हम क्या नकार रहे हैं—क्योकि इसके विपरीत यह स्थिति क्ष, य है एक निश्चित स्वीकार है। लकिन यहा भी स्पष्टत हम यह मालूम नही कि क्ष के स्वीकार के साथ उसके किन गुणा को स्वीकार कर रहे हैं। ब्रेडले क लिए स्वीकारात्मकता, प्राथमिक है और नकार उसका उलटा हुआ रूप। प्रत्ययवादी और बूलवादी तकशास्त्र म यह एक महत्वपूण भेद है।

ब्रेडले निणय से अनुमान की व्याख्या की ओर आत हैं। यहा एक बार फिर व परम्परागत तकशास्त्र के बडे आलोचक के रूप म प्रकट होते हैं। व अविवादास्पद 'अनुमानो' की एक सूची से प्रारम्भ करते हैं, और मानते हैं कि अनुमान सबधी सारे सिद्धातो को कम से कम इनका तो सहारा लना ही पडता है। इनम बहुत स तो सबधसूचक अनुमान है तथा कुछ अन्य प्रकार के अनुमान भी है जिन्ह परम्परागत तकशास्त्र ने उपक्षित कर दिया था। इन उदाहरणा क आधार पर इस शास्त्रीय सिद्धात को कि प्रत्येक अनुमान एक समष्टिगत प्रमय पर आधारित होता है, वे अन्धविश्वास मानकर त्याज्य घोषित कर देते हैं। एक पौराणिक तत्ववादी भूल से उत्पन्न हुए और दृष्टान्तो के अनुभवहीन चुनाव क कारण और तकशास्त्रियो की मूखतापूण रूढिवादिता से पोषित और नवोत्साही दाशनिको की अपरिपक्वता के कारण सुरक्षित महसूस करत हुए यह भ्रम अपेक्षा स अधिक समय तक टिका रह गया है। बस एक बार इस आवरण का भेद मालुम हो जाय, तो तकपदी की अन्य तकप्रणालियो के ऊपर रही वरिष्ठता अधिक टिक नही सकती। तकपदी अनुमान का एक प्रकार है—केवल एक प्रकार का अनुमान मात्र ही।

तब अनुमान क्या है? ब्रेडले क अनुसार इस का अस्तित्व सबधसूचको की खोज पर अवलम्बित है—यह बहुत स बिन्दुओ म स एक ऐसा बिन्दु था जिस पर ब्रेडले और जम्स एकमत थ।[1] हम अ से ब का सबध जोडत हैं और अ स स का

---

[1] पहले पहल जब ब्रेडल का ग्रन्थ द प्रिंसिपल्स ऑव लोजिक प्रकाशित हुआ तो जम्स ने उस ऐतिहासिक महत्व का माना और कहा कि यह एक ऐसा ग्रन्थ है

तब हम एक प्रत्यय समूह (आइडियल ग्रूप) बनाते हैं जो अ-ब स तीनों को किसी एक सिद्धांत में जोड़ता है। उदाहरण के लिए हम कहते हैं-अ ब-स तब हम अ-ब-स का एक पूणक बनाते हैं जो परिमाणात्मक तादात्म्य से निर्मित हुआ है। ऐसा करने से अ और स के संबंध का भी अनुमान हो जाता है। इस प्रक्रिया को निर्मित करने के कोई नियम नहीं हैं और न कोई ऐसे प्रतिमान ही हैं जिनकी अनुकृति की जा सके। अपने प्रमेयों में से मानव ही अपनी बुद्धि के अनुसार इस संगठन के सूत्रों को ढूंढता है। जांच की प्रक्रिया के लिए फिर भी पैनी दृष्टि की आवश्यकता तो है ही क्योंकि ऐसे कोई नियम नहीं हैं जिनसे पता चल सके कि अमुक बात देखी जाय और अमुक नहीं। अधिक से अधिक एक तर्कशास्त्र बहुत ही सामान्य दिखने वाले सिद्धांतों की ओर हमारा ध्यान खींच सकता है। उदाहरण के लिए इस तथ्य की ओर कि यदि अ ब से सामयिक सीमाओं के कारण संबंधित है और ब [illegible] से, तो अ और स के बीच भी यह सामयिक सीमा रहेगा ही। लेकिन यह बताने के लिए कि यह सीमा क्या है हम अपनी समन्वयकारिणी बुद्धि का उपयोग करना पड़ेगा।

अनुमान के 'प्रात्ययिक समन्वय' के रूप में यह प्रारंभिक विवरण जो अपने चारों ओर कम से कम दो पदों से बना एक अनुमान का केन्द्र संगठित करता चलता है, द प्रिंसिपल्स आव लोजिक नामक ग्रन्थ के दूसरे संस्करण में बड़ी पैनी दृष्टि से पुन: परीक्षित किया गया है। आरंभ में ब्रेडले ने इसी ग्रन्थ में लिखा है कि कुछ ऐसे अनुमान और भी शेष रह गए हैं जिनमें केन्द्रोन्मुखता नहीं होने से और न द्वारा के मिलाने वाली कड़ी न होने से इस ग्रन्थ में नहीं लिखा जा सका है। केवल तात्कालिक अनुमान ही इस ग्रन्थ का मूल उद्देश्य रहा है और इसी तरह जोड़ या बाकी के विचारों की व्याख्या भी। लेकिन यह विवादास्पद है कि इन्हें अनुमान माना जाए अथवा नहीं। इस तरह ब्रेडले के समक्ष फिर यह प्रश्न खड़ा हो जाता है कि आखिर क्या अनुमान किसी चीज में निहित है?

वे कहते हैं-अनुमान करना ही तर्क करना है। और हम तर्क उसी समय करते हैं जब हम यह देखते हैं कि सत्य वही होना चाहिए जिसे हमारे निर्णय सिद्ध करते हैं-बजाए इसके कि हम यह देखना चाहते हैं कि वस्तुओं की पद्धति किस तरह की है? तर्क करना, उनके अनुसार एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें दत्त सामग्री (डेटम) पर विचार क्रिया (एक दी हुई चीज पर वैचारिक प्रयोग) की जाती है। तर्क करने वाला इस प्रयोग क्रिया द्वारा एक परिणाम पर पहुँचता है और यह कह सकने की स्थिति में आ जाता है कि

जो समूची परम्परा की लीक का खण्डन करता है-द्रष्टव्य द प्रिंसिपल्स ऑव साइकोलोजी नामक उन्हीं के ग्रन्थ का अंतिम अध्याय।

जो उस दत्त सामग्री का परिणाम है। उदाहरण के लिए वह एक सत्य से शुरू कर सकता है जो 'अ का ब के दाहिनी ओर होना" और 'ब का स के दाहिनी ओर होना' के द्वैत संबंधों को बताता है। इस तर्काधार पर खड़े होकर वे एक समन्वय की ओर पहुँचते हैं–जिसे वे एक वैचारिक पूर्णक (आइडियल होल) की संज्ञा देते हैं। इसमें से संबंध तत्व के रूप में प्रकट हुए हैं और तब वह इस सम्पूर्ण प्रक्रिया में निहित सत्य को स–ब–अ के संबंध का नाम देते हैं। युक्ति करने का सारांश सत्य के विधेयों में निहित परस्पर व्यवस्थित संबंधों की खोज करना है, दो पदों को तीसरे पद से मिला देना तो कतई नहीं।

अनुमान को एक आदर्श परीक्षण बता कर वे इसमें यह बताना चाहते थे कि अनुमान पूर्णतः हमारे द्वारा ही निर्मित है। उन्होंने यह भी बताया कि हमारे निष्कर्ष हमारी किसी ऐसी क्रिया के परिणाम हैं, जिसे हमने जानबूझ कर प्रयुक्त की है। ब्रैडले के मत में हमने यहाँ पर आवश्यकता को अनदेखा छोड़ दिया है जो अनुमान के साथ भली प्रकार से जुड़ी है। इस आवश्यकता को औचित्य देने के लिए हमें यह बल देने की आवश्यकता पड़ती है कि ऐसे आदर्श परीक्षण में प्रस्तुत दत्त सामग्री (डेटम) को इस प्रकार छोड़ देना चाहिए कि उसके स्वतः विकास की गुंजाइश रह सके। अनुमान की ओर बढ़ने वाला प्रत्येक ऐसा कदम जिस पर खास तौर पर हमारा रंग हो और जो मात्र हमारी ही सुविधा की अभिव्यंजना करता हो, वह सब 'तर्क से विराग ही होगा, और इस तरह ब्रैडले को अनुमान की परिभाषा एक बार फिर से करनी पड़ी, विशेषतया अपने प्रथम टर्मिनल ऐसे नामक निबंध में। यहाँ उन्होंने उसे किसी वस्तुसंबंधी विचारविमर्श में प्रकटा अपने आप हुआ वैचारिक विकास' माना है। महत्वपूर्ण बात यह देखना है कि कोई वस्तु क्या सिद्ध करती है, स्वयं हम उसमें से अपनी तरफ से कुछ अनुमान लगाएँ यह नहीं चलेगा। ब्रैडले के अनुसार यह स्वविकसन कभी भी पूर्ण नहीं होता। यहीं आकर ब्रैडले का तर्कशास्त्र हमें 'नकारात्मक तत्वदर्शन' की ओर ले जाता है और दिखावट एवं सचाई के बीच उलझा देता है। कुछ सीमा तक हमें अनिवार्य रूप में अमूर्तीकरण और गलत अनुमान भी लगा लेना पड़ता है। किन्तु यह तत्ववादी सीमा, तर्कशास्त्री को प्रभावित नहीं करे यह वांछनीय है। एक विशिष्ट वैज्ञानिक की भाँति उसे अपनी विषय वस्तु का वह मूल्यांकन करवाने का अधिकार तो है ही, जितना उसका मूल्य है, बिना यह प्रश्न उठाए कि अंत में वह हमें कहाँ संतुष्ट करती है।

यह अत्यंत स्पष्ट हो गया है कि ब्रैडले का तर्कशास्त्र अन्य सभी प्रकार के परम्परागत आकारी, एवं गणितीय तर्कशास्त्रों से वास्तव में काफी भिन्न है। एक ऐसे तर्कशास्त्र की संभावना के विरुद्ध जिसमें सिद्धीकृत स्थितियाँ (इम्प्लीकेशंस) को सामान्य रूढ़ आकारों की तुष्टि करता हुआ माना गया हो। (प्रिंसिपल्स

नामक पुस्तक में प्रतिपादित ब्रेडले का तर्कशास्त्र निरंतर एक प्रतिवाद के रूप में माना जायगा। लेकिन इसके साथ ही मिल के मनोवैज्ञानिक तर्कशास्त्र का खण्डन भी कम कड़े शब्दों में नहीं किया गया है। ब्रेडले के मत में परम्परागत तर्कशास्त्र की कम से कम यह तो विशेषता थी ही कि उसमें समष्टियों की सत्यता को स्वीकृति प्रदान की गई है जिसके विपरीत मिल का यह सिद्धान्त कि तर्क केवल मात्र प्रत्ययों के सहचरण से आगे बढ़ता है उन्हें कम रुचा था। साहचर्यवाद अपनी उपयुक्तता के लिए जिन तथ्यों पर विश्वास करता है, उन्हें रेडिण्टीग्रेशन के नियम में समाहित किया जा सकता है। यह नाम उन्होंने हेमिल्टन से ग्रहण किया था जिसमें यह कहा गया था कि हमें ऐसी कोई भी उपलब्धि नहीं होती जिस पर ठोस निर्माण किया जा सके। उस नियम के संबंध में वे संक्षेप में लिखते हैं कि यह एक ऐसा नियम है जिसमें कोई तत्व दूसरे कुछ ऐसे तत्वों को जन्म देता है जिनका भली प्रकार अध्ययन किया गया है और जिसके साथ इसका मानसिक तादात्म्य रखा गया है।' इस तरह ब्रेडले के लिए साहचर्य केवल पुनःस्थापन में निहित है एक ऐसे मनस्तत्त्व के द्वारा जो एक वृहत प्रणाली का स्वयं एक भाग है। (टावर ब्रिज का चित्र देख कर हम लंदन का स्मरण होता है क्योंकि टावर ब्रिज लंदन का एक हिस्सा है)।

वे लिखते हैं मनस्तत्वों के बीच में साहचर्य की बात करना बकवास प्रस्तुत करना है। मन के ये विशेष तत्व पहले पहल तो कोई स्थैर्य लिए नहीं हैं–उनका होना क्षणभंगुर है–कोई ऐसा नारकीय स्थल भी नहीं है जहाँ उन्हें उस समय तक बुरी तरह कष्ट में रहना पड़े जब तक कि सहचरण उनकी नरकमुक्ति का संदेश लेकर न आ जाय। एक पावन आख्यान की ये हृदयस्पर्शी घटनाएं एक असामान्य मनोविज्ञान में चाहे विचारयोग्य मानी जाएं अथवा रूढ़िवादी तत्वदर्शन में अपना स्थान बना लें, किन्तु दर्शन को उनका पंजीकरण करके एक आह भर लेनी चाहिए तथा खेद के साथ उसे देखा अनदेखा कर देना चाहिए।'

मिल द्वारा प्रस्तुत प्रत्ययों के सहचरण के सिद्धान्त को एक बार त्याग दिया जाए तो उनके तर्कशास्त्र की सम्पूर्ण बुनावट छिन्न-विच्छिन्न हो जाएगी। ब्रेडले के मन में मिल को उनके द्वारा तर्कपदी प्रणाली में रहे दोषों का पता लगाने के लिए कुछ आदर मिलना ही चाहिए। लेकिन उनकी यह धारणा कि तर्कपदी का विकल्प विशेष अवस्थाओं में अनुमान की ओर माना ही है–बिल्कुल गलत थी। यह देखकर हम इस निष्कर्ष पर पहुंच सकते हैं कि अनुमान विशेष अवस्थाओं के आधार पर ही लगाया जाता है। मिल का कहना था कि यह जल गया और वह जल गया के आधार पर यह तर्क करना कि तीसरी वस्तु भी जल जाएगी स्पष्ट ही एकदोष पूर्ण धारणा खड़ी करनी है। किन्तु इसके बजाय यह कहने से, कि

'इससे मिलती जुलती यह वस्तु जल जाएगी," से कम से कम तादात्म्य का सिद्धान्त तो बनता है। इस तरह ब्रैडले मिल द्वारा छोड़ी गई समष्टियों के कारण उनके बारे में बड़ी आपत्ति करते हैं।

मिल की आगमनात्मक प्रणाली की आलोचना भी ब्रैडले द्वारा इतनी ही प्रबलता से की गई है। ये प्रणालियाँ, प्रारंभ में ही यह मानकर चलती हैं, कि हमारा अनुभव, मूलतः समष्टियों के पारस्परिक संबंधों पर अवलम्बित होता है। इनके संबंध में मिल द्वारा सोची गई यह धारणा कि वे विशुद्ध रूप से 'विशिष्ट' तथ्यों पर आधारित हैं बिलकुल ही भ्रामक है। मिल की तरह ही यह कहना कि हमारे सामने ऐसी परिस्थितियाँ आती हैं जो केवल एक ही परिस्थिति में भिन्न होती हैं, यह सिद्ध करता है कि इन स्थितियों की बहुत सी सामान्य धातुएँ हैं अर्थात् ये विशुद्ध रूप से विशिष्ट नहीं हैं। और तब ये तथाकथित प्रणालियाँ, उपयुक्त उस एक या अधिक परिस्थितियों को अपने सिद्धांत से बहिष्कृत कर देती हैं और उस कारण को भी अनुपयुक्त मान लेती हैं जिसके लिए खोज करते समय उसका पता हमें लगा है। तब हर समय हम समष्टियों के बारे में ही विचार कर रहे होते हैं और व्यष्टियों से कोई नियमन नहीं करते। इस तरह आगमनात्मक तर्कशास्त्र एक भ्रमजाल है। लाजे की समसामयिकता में ही ब्रैडले ने तर्कशास्त्र लिखा। उस समय तो वे अन्तरिम सत्य और विचार के बीच एक सीमारेखा खींचने के पक्ष में थे और इसको तत्वदर्शन की, और दूसरे को तर्कशास्त्र की विषय वस्तु मानते थे। इस प्रकार उनका तर्कशास्त्र विशेषतः उनके ग्रन्थ प्रिंसिपल्स का प्रथम अंक, उनके स्वयं के परमात्मवादी तत्वदर्शन के प्रभाव से काफी अंशों में मुक्त है। इस ग्रंथ ने ऐसे बहुत से दार्शनिकों का ध्यान भी आकर्षित किया है, जो उनके विशाल ग्रन्थ एपीयरेन्स एण्ड रीएलिटी से परेशान एवं उकता जाते थे। अपनी पुस्तक नॉलेज एण्ड रिएलिटी में बर्नार्ड बोसांके ने हीगलवादी परम्परा का खण्डन करते हुए ब्रैडले को विचार और सत्य का यह भेद कर देने पर काफी बुरा भला कहा है। प्रिंसिपल्स के दूसरे व बाद के संस्करणों में अपनी ही इस धारणा के प्रति कहीं कहीं पछतावा भी प्रकट होता है और वे अनेक बार इस संबंध में सही दृष्टि के लिए बोसांके के लॉजिक पढ़ने का सुझाव भी देते हैं। प्रत्ययवादी तर्कशास्त्र के लिए जो ब्रैडले की विचित्रताओं से मुक्त हो हमें बोसांके का अध्ययन करना ही चाहिए।

1888 में प्रकाशित उनकी पुस्तक लॉजिक का उपशीर्षक है द मोरफोलोजी ऑव नॉलेज। यहीं इसकी विषय वस्तु का संक्षिप्त परिचय मिल जाता है। तर्कशास्त्र, हीगल और लाजे की प्रणाली की ही भाँति एक प्रकार है जिसके जरिए वे अवस्थाएँ व्यक्त की जा सकती हैं जहाँ विचार अपने सरलतम रूप में (जैसे, यह लाल

है कठिनतम जटिल तकवाक्यो की ओर जाता है, और जिनसे सीधा समष्टि भाव व्यक्त होता है। वह समष्टि भाव, जो अपने भागो के साथ एक व्यवस्था स जुडा है।

यह बात उल्लखनीय है कि ब्रेडले के विपरीत बोसाके मिल का सदभ गौरव से देते हैं। यहा बोसाके क द्वारा सभी म अच्छाई दख लने की सामाय वृत्ति से कुछ अधिक महत्व की बात है विशेषकर उनक द्वारा खोजे गए सत्य और प्रशसा तो हैं ही)। ब्रेडल से विपरीत (क्योकि व सभी की बुराइया दखते थ और उनकी ऊपरी गलतिया निकाला करते थे) बोसाके की अपनी नापसदगी भी थी सिफ फक उनम इतना ही था कि वह ब्रेडल की भाति पनी होकर प्रस्तुत नही हुई थी और आकारी तकशास्त्र तो उनकी आलोचना का शिकार हुआ भी नही था। इस देश म तक पद्धति म सुधार स्टुअट मिल की रचनाओ से ही प्रारभ होता है ' यह बोसाके का सामान्य मत था। और मिल अपनी प्रतिभा के कारण ही अरस्तू–परम्परावादियो की विगतिमुखता स सदव ऊपर रह सके चाहे उनके दाशनिक चिंतन म कुछ खामिया अवश्य रह गई हो। मिल के पक्ष म जो बडी बात है वह यह कि तकशास्त्र उनके लिए सव प्रथम जाच पडताल का एक सिद्धात था। लकिन जहा मिल ने तकशास्त्र को सगति का तकशास्त्र कहा है वही आगमनात्मक तकशास्त्र को सत्य का तकशास्त्र भी कहा है। बोसाके के लिए तमाम तकशास्त्र सत्य की ही जाच पडताल करते है। चाहे सत्य तब फिर व्यवस्थित सगति की प्रगति म निहित हो गया हो अथवा समवायित' की। अरस्तू के विगतिमुख अनुयायियो को सगति के ऐसे छोटे बिल मे घुसने न दिया जाना चाहिए जहा जाकर वे बोसाके के क्रोध से छिप सकें।

बोसाके के तकशास्त्र को विस्तार से समझते जाना (1895 म उन्होने **इसेंशियल्स आव लोजिक** की सक्षिप्त टीका निकाली थी, जिसका बार बार मुद्रण भी हुआ) अधिक उपयोगी नही होगा। यह तो प्रत्ययवाद के परिचित तत्वदशन की एक तरह से पुन व्याख्या है और उसका काफी अश लाजे अथवा ब्रेडले के सिद्धातो की व्याख्या मात्र है। किन्तु अध आकारी तौर के कुछ दृष्टिकोण उसम ऐसे हैं जिनके कारण बोसाके एक प्रतिनिधि तकशास्त्री माना जाने लगा था।[1]

इस तरह बोसाके न, सशत कथनात्मक निणयो की सुनिश्चित स्थापना की ओर विशेष बल दिया और ' यदि तो ' के उस आकार का जिसे पीयस ने स्थापित किया और रसेल ने जिसे मूत रूप दिया था, विरोध किया। सशत कथनात्मक स्वीकृति

---

[1] द्रष्टव्य एल जे रसेल कृत द बेसिस ऑव बोसाकेज लोजिक (माइण्ड 1918 और उस पर बासाके का उत्तर (1919)

बोसांके के अनुसार तो अपने आप ही पदों में निहित विरोधाभास है और वैसा ही कथनात्मक अनुमान है। किसी निश्चित अर्थ से विलग इसकी समूची प्रक्रिया केवल अन्धविश्वास मात्र है। वह अपनी धारणा का उद्धरण इस उदाहरण से देते हैं 'यदि एक गधा प्लेटो है, तो वह एक महान दार्शनिक है' यह कोई कथन नहीं हो सकता, क्योंकि यह अपनी अन्तर्निहित एकता को हवा में उछाल कर बिखेर देता है। 'कोई गधा' प्लेटो हो सकता है यह सत्य तो पूर्णतः असंगत है और इसलिए कोई सत्य ही नहीं है। कोई भी वास्तविक प्राकल्प, एक ऐसी स्वीकारोक्ति होगी, जो सत्य की प्रणाली में वास्तविक एवं निश्चित रूप से सही बैठ सकेगी। "यदि हृदय रुक जाता है तो शरीर मृत्यु को प्राप्त होगा' यह इस कथन की आवयविक रचनाप्रणाली के मध्य रहे दो विशेषणों का संबंध व्यक्त करता है एक रुकता हुआ हृदय और मृत्यु को प्राप्त होता हुआ शरीर"। सशर्त कथनों के प्रति रहा बोसांके का दृष्टिकोण, उनके आकारी तर्कशास्त्र के विरोधी होने का प्रमाण है। कोई भी सच्चा दर्शन सिद्ध तर्कशास्त्र स्थायी तार्किक शर्तों से अपना संबंध रखेगा। लोत्ज़े से सहमति रखते हुए वे कहते हैं कि यह निर्णयों की सिद्धि करता है और इसके विभिन्न अंग एक प्रणाली से आवश्यक रूप से जुड़े होते हैं। आकारी तर्कशास्त्र, इसके विपरीत, पदों एवं तर्कवाक्यों का उपयोग करता है और वह भी इस रूप में मानो वे अपने आप में विशिष्ट तत्व हों जिनका कोई भी तर्कशास्त्री अपनी इच्छानुसार प्रयोग कर सकता है। इस प्रकार बोसांके, तर्कपदी की आलोचना इस आधार पर करते हैं कि यह प्रमेयों एवं निष्कर्षों को जोड़ देती है और प्रमुख (मेजर) मध्य (मिडिल) के एवं अल्प पदों (माइनर टर्म्स) का तो बिल्कुल बाहरी तौर से उपयोग करती है।

बोसांके के लिए प्रश्न यह नहीं है, कि किस प्रकार सुकरात मरणशीलता से जुड़ा है लेकिन एक विशेष प्रकार की कथनात्मकता से है, जैसे 'सुकरात की मानवी तरह की मरणशीलता' को भली भांति सत्य का रूप दिया जा सकता है। यह प्रश्न तर्कपदी जिसका बल विशेष की ओर होता है, द्वारा उठाया जाना अथवा तय किया जाना संभव नहीं है।

बोसांके तर्कशास्त्र में विशेष रूप से कुख्यात स्थिति, उनके द्वारा पारस्परिकता (रेसीप्रासिटी) पर दिया गया बल है।[1] यह उनके द्वारा सशर्त कथनों की व्याख्या किए जाते समय बहुत स्पष्ट रूप से प्रकट हुआ है। इस संबंध में निश्चित प्रकार का

---

[1] जर्मन तर्कशास्त्रियों के कुछ अप्रामाणिक समूहों में सशर्त कथनों की विलोमता यदि प फ है अन्य दूसरी असंगतियों की तरह ही बनाए रखी गई है लेकिन सभी अप्रामाणिक मतावलम्बी इसका खण्डन करते हैं और पीयर्स के अनुसार प्रामाणिक तर्कशास्त्र तो इस अवस्था का पूर्ण खण्डन करता है।

सशत कथन इस स्वीकारोक्ति म है कि यदि अ ब है तो अ स है। उनका कहना है कि कोई न कोई एसी प्रणाली है, जिसम अ ब स समान रूप से है, अर्थात् वह तीनो की समवायी स्थिति है और चू कि यह समवायिता व्यवस्थित है इसका यही अथ हुआ कि अ का स होना अ को आवश्यक रूप से ब भी बनाता है। यह निष्कप सीधे इस परम्परागत दृष्टिकोण पर प्रहार करता है कि सशत कथन उलट नही जा सकते। किन्तु ये, स्वभावत ही सत्य समवायिता क सिद्धात एव लौजे की इस धारणा स जुडे हैं, कि प्रत्येक तकवाक्य, एक तादात्म्य को व्यक्त करता है। बोसाके यह स्वीकारते हैं कि "यदि वह डूब गया है तो वह मर गया है प्रकटत कदाचित् उलटा और पारस्परिक भाव सिद्ध नही करे किन्तु वे इस रूप मे भी कहना नही चाहते कि यदि वह मर गया है तो मर गया है।" यद्यपि यहा यह बात उल्लेखनीय है कि व उक्त कथन के इस आशय के प्रति आस्थालु ये हो। उनका विचार है कि वे ऐस कथनो का वभिन्न्य उनके तादात्म्य को स्वीकार करके भी बनाए रख सकते हैं जिसका मतलब यह हुआ कि "यदि वह डूब गया है तो वह पानी म घुटकर मर जायगा।' कवल इसी प्रकार की सतक व्याख्याओ द्वारा ही हम तकशास्त्र की समवाय सबधी माग को औचित्य द सकते हैं। कोई भी तक पेश करना पारस्परिकता ही है क्योंकि ये उद्धरण या य तक जिनका सबध दनिक जीवन से है प्राय असम्बद्ध स्थितियो के बोझ से भारी रहते हैं अथवा सीमित समय म काय कारण भाव मे उलझ जात हैं। अपनी प्रकृति मे सशत कथन, बासाके के अनुसार भी विपययी (रिवर्सिबल) नही है।[1]

इस दृष्टिकोण का बोसाके ने पालन किया। उनका तक सबधी अ तिम ग्रन्थ **इम्प्लीकेशन्स एण्ड लीनियर इन्फरेंस** (1920) था। इसमे इ होने बताया है कि आगमन एव निगमन करने वाले दोनो तरह के तकशास्त्री एक ही तरह की भूल करते हैं। व दोनो समझते हैं कि अनुमान एक रेखीय (लीनियर) हैं। यह एक ऐसी अवस्था है जिसक जरिए एक प्रकार से दूसरे प्रकार के निष्कर्षों तक पहुँचा जा सकता है। जिन बातो मे व मतभेद रखते है उनसे अधिक महत्वपूण उनका एक ही प्रकार की यह भूल करना है। भली भाति समझे तो अनुमान तो निणय पर पहुचने की आवश्यकता महसूस करने मे ही विद्यमान होता है यह दखने मे कि या तो यह **अमुक अमुक** है अथवा कुछ भी नहीं है और ऐसा ज्ञान उसी समय सभव है जब हम यह पहचानें। बोसाके के लिए अनुमान का अथ किसी निणय की परिस्थितियो को देखना है। वह भी इस अथ म नही कि यह अथवा वह निणय इससे प्राप्त हुआ है। किन्तु अधिक सशक्त ढग स वे अपनी इस बात को कहना चाहते हैं कि अनुमान

---

[1] **सदभ काज एण्ड ग्राउण्ड (जे० पी० 1910)**

करने का ग्रथ इस सबध म विश्वस्त होना है कि यदि वह निणय सत्य नही है ता वह सम्पूण विचार प्रणाली जिसका वह ग्र ग है ग्रौर उसके साथ वह सत्य भी जिसकी ग्रोर सकत है, ध्वस्त हा जाएगा। ग्रनुमान के विपय म यह दृष्टिकोण रसल प्रभृति विचारकों की इस धारणा स, कि प्रत्यक प्रकार की जाच पडताल तक की विपय वस्तु है स सवथा भिन्न है। किसी निणय के बारे म माना हुग्रा कोई सत्य चाहे कितना ग्रनौपचारिक ही क्यो न हो एक तार्किक प्रक्रिया हो जाता है, एक एसी प्रणाली जो विचार की स्थापना करती है।

सभी प्रत्ययवादी इस बात पर सहमत नही हैं कि दशनसम्मत तकशास्त्र का निराकारी होना जरूरी है। इस विपय मे रोयस ब्रडल[1] एव बोसाक स ग्रपनी गणित सबधी रुचि के कारण बिल्कुल भिन्न थे। किन्तु इसका यह ग्रथ नही था कि वे प्रत्ययवादी नही थ। उनका तकशास्त्र, प्रत्ययवादी दशन एव एक गणितज्ञ के तक शास्त्र का समन्वित रूप माना जा सकता है। पीयस एव रसल, जो रोयस स काफी प्रभावित थ की रचनाग्रो म यह प्रभाव देखा जा सकता है।[2] ग्र ग्रेजी ग्रनुवाद 1915 एनसाइक्लोपेडिया ग्राव द फिलोसोफीकल साइ सेज मे लाजिक (तकशास्त्र) सबधी सक्षिप्त टिप्पणी म उन्होने 1905 म ग्रमरीकन मैथेमैटिकल सोसाइटी म द रिलेशन ग्राव द प्रिंसिपल्स ग्राव लोजिक टू द फाउण्डेशन ग्राव ज्योमेट्री क सबन्ध म विकसित की हुई ग्रपनी नयी धारणाग्रो का साराश दिया ह ग्रौर वहा व तकशास्त्र को क्रम का विज्ञान' मानते हैं। यह क्रम या तो ग्राकारी पदो क द्वारा वर्णित किया जा सकता हे ग्रथवा विचार की ग्रावश्यकता कहकर उसकी दाशनिक व्याख्या की जा सकती ह। इस पर पहले दृष्टिकोण से विचार करना पीयस ग्रौर रसेल की विचारधारा का ग्रनुसरण करना ह ग्रौर दूसरे ढग से विचार करना ब्रडल ग्रौर बोसाके को समझना है ग्रौर रोयस इस बात पर किसी की पर्वाह नही करते थ कि वे एक साथ दोनो का ग्रपनाते है। इस तरह रोयस सामान्यत एक प्रत्ययवादी ही है।

---

[1] द्रष्टव्य, रोयस के तकशास्त्र सबधी निबध (सम्पादक डी० एम० राबिन्सन 1951) सी० ग्राई० लेविस कृत सर्वे ग्राव सिम्बोलिक लोजिक

[2] वे ए० बी० केम्पे द्वारा लिखे गए निबध द थ्योरी ग्राव मैथेमेटिकल फाम (फिल ट्रास रोयल सोसाइटी 1886) स बहुत प्रभावित थे। ए० बी० केम्पे का ही एक ग्रन्य निबध ग्रान रिलेशन बिटवीन द लोजीकल थ्योरी ग्राव क्लासेज एण्ड द जोमेट्रिकल थ्योरी ग्राव पोइ टस (प्रोसीडिंग्स लदन, मैथेमटिक्ल सोसाइटी 1890)। उन्होने केम्पे के विपय म लिखा ह कि उनका दृष्टिकोण प्राय ग्रनदखा ही रह। केवल पीयस न उसका ध्यान से ग्रध्ययन किया है।

किन्तु युवक अमरीकी तकशास्त्रियो मे से गणितीय तकशास्त्र म रुचि रुगान वाली य प्रथम कडी भी थे।

इस दौरान कुछ ऐसे तकशास्त्री हुए जो इसमे स किसी भी पक्ष के नही थे। ये उपकरणवादी (इन्स्ट्रूमेण्टलिस्टस) थे। इग्लण्ड म अल्फ्रेड सिजविक द्वारा बडे ही अध्यवसायी रूप से तकशास्त्र का एक रुचिहीन दृष्टिकोण प्रस्तुत किया जा रहा था। उन्होंने इस भवध म बहुत सी किताबें लिखी जिनमे पहली **फलेसीज ए व्यू आव लोजिक फ्रॉम द प्रेक्टिकल साइड** (1883) थी।

सिजविक के लिए तक दोषयुक्त पदो के निवारण करने का विज्ञान है। तकशास्त्रियो का दोष कहा से शुरू होता है इस बात की खोज और जाच करना चाहिए और यह उनका ही एक ऐसा विषय है जिसकी क्षमा याचना सहित व अध्ययन किया जाना आवश्यक मानते है। सामान्य तार्किक नियम दोषो के निवारण करन के लिए पर्याप्त नही है क्योकि व ऐसे समय प्रस्तुत हो जाने वाली दुविधा की पर्वाह ही नही करते। उदाहरण के लिए सभी मॉडल सुगठित हैं यह एक माडल है इसलिए यह भी सुगठित है। इस तकपदी मे पहल और तीसरे वाक्य म माडल का क्या एक ही अथ है ? सामान्यतया तकशास्त्री यह मानकर चलते हैं कि उनके प्रारंभिक सूत्र या तो किसी प्रकार की दुविधा स रहित तक वाक्य हैं अथवा वसे ही निणय हैं, जबकि वास्तव म वे एस कथनो से प्रारभ करते है जिनकी व्याख्या करते ही दुविधा उत्पन्न हो जाती है अनिश्चितता और हिचक साफ झलकने लगती है।

किसी ऐसे कोई तकशास्त्र को जिसकी न्यूनतम भी उपयोगिता है किसी ऐसे तकशास्त्र का जो केवल खेल नही हो उसे तक वाक्यो मे रहे आकार की दृष्टि स बध सम्बन्ध देखने का प्रयास छोड देना चाहिए। इस तो उस विस्तृत कम से लग जाना चाहिए जिसक जरिए यह पता लग कि वास्तव म किसी एक मामले म लोग क्या कह रहे हैं या उनके विमश का बिन्दु क्या है।

सिजविक के विचार की दिशा एफ० एस० सी० शिलर द्वारा अपनायी और विकसित की गई। एक के बाद एक प्रकाशित पुस्तको की शृखला म और अपन बहुत से निबधो म तो वे आकारी तकशास्त्र का सहार करने पर तुल गए थ। और उन्होंने 1920 म **लोजिक फोर यूज** लिखकर 'स्वेच्छाचारी' विकल्प वोलटरिस्ट आल्टरनटिव) प्रस्तुत भी किया ह। प्रत्ययवादियो की भांति शिलर निणय से प्रारभ करते हैं लेकिन ड्यूई का अनुसरण करत हुए वे ब्रेडले को इस आधार पर नापसन्द करते हैं कि उन्होंने निणय को तकवाक्य जसे श्रेणी मे रखकर उसका मूल्य कम कर दिया ह। दूसरे शब्दो म उन्होंने निणय पर इस प्रकार अपन विचार व्यक्त

किए है, माना यह बिल्कुल निर्वैयक्तिक कोई चीज हो और उसकी सज्ञा का निर्णायक को प्राशाम्रो एव रुचियो से स्वतन्त्र माना ह । निणय" सदव ही निणय करना तो ह ही, यह एक व्यक्तिगत कम ह जो एक विशेष मशा से प्रस्तुत किया जाता है और यही मशा उसकी साथकता सिद्ध करती है । किसी निणय का साथकता जिस सदभ मे वह प्रयुक्त हुआ है, उतनी ही है क्योकि जो बात हम दर असल कहना चाहते हैं वह कभी भी शब्दो अथवा सकेतो द्वारा पूरी तरह से व्यक्त नही हो सकती । इस तरह यदि हम यह कहना हो कि एक वर्गाकार गोल है तो प्राकारी तकशास्त्री इसे अपने प्राप मे विरोधाभास कहकर इसका खण्डन करेंगे । निस्सदह यह उस वक्त विरोधाभास ही होगा जब हम इन शब्दो से एक ज्यामितिक प्राकृति खीचना चाहे-फिर भी जो बात रह जाती है वह यही है कि यदि हम किसी लदन की चौपड का वणन कर रह हैं, तो हम जो कुछ कहत हैं वह सही होगा । किन्तु दूसर सबधो म, हो सकता है यह एक मखौल हो जाय अथवा इस भाषा का कथन हो जाय कि किसी ने बुरी तरह स यह वग खीचा है । हम क्या कह रहे है उसके प्रति निश्चित धारणा बनाने क लिए एक तकशास्त्री को सदभ मालुम करना पडेगा तब प्राकारी नियम निरथक हो जाए ग ।

शिलर प्राग कहते है कि ऐसे कोई प्राकारी नियम नही है जो हम यह बता सकें कि अमुक निणय क्या सिद्ध करता है और क्या नही ? यदि एक तक शास्त्री के दनिक जीवन के वास्तविक अनुमानो का विश्लेपण करना पडे, उस मालूम होगा कि वधता और तार्किक सत्य के सारे सिद्धा त तब उस ताक मे रखने होग । यहाँ शिलर सिजविक स भी आगे चल जाते है । व वधता क साथ ही 'छेप कथनो' का भी खण्डन करते हैं । ठीक से समझें तो हम यह मालुम होगा कि शिलर और बोसाके दोनो के लिए एक सीमा तक, तकशास्त्र जाच पडताल का एक सिद्धान्त है और जाच पडताल स्वय अपने आप मे एक ठोस मानवी कृत्य ह । यह दृष्टि हम यह दखने मे मदद करेगी कि मनुष्य कस गलती करता ह ? और तब इस प्रकार के तकशास्त्र का काय उन विभिन्न प्रक्रियाम्रो का विश्लेपण करना होगा जो सत्य की खोज के लिए काम म लाए जाते हैं, इसस भी हमारी जाच पडताल सुरक्षित हो जायगी यह जरूरी नही । शिलर की मशा तकपदो को त्याग देने की कतई नही ह और वह भी पीछे लौट कर, कार्टेजियनवादियों के निर्विकल्प अ त साक्ष्य (डाइरेक्ट इ ट्यूशन) को स्वीकार करने या मिल के आगमनात्मक तकशास्त्र का लोहा मानकर । शिलर का कथन ह कि ऐसी आपत्तिया जि हे पहले से न देखा गया है ऐसी दशाएँ और अनात सभावनाम्रो के विरुद्ध कोई भी वनानिक प्रमाण और परीक्षण के दोरान की जा रही कसी भी सतकता हमारी रक्षा कर सकने म असमथ हो जाती ह । ऐस समय म जो काय हम कर सकते हैं वह यही है कि हम

ऐसी अवस्था का निर्माण करें जिनम हमार प्राकल्प के साथ समावनाओ का पलडा बहुत भारी हो।

तकशास्त्र को इस तरह जाच पडताल का एक सिद्धान्त मानना, पहले भी जान ड्यूई द्वारा एसेज इन एक्सपेरीमण्टल लौजिक (1916) म सुभाया जा चुका है और बाद म विस्तार से उस पर उन्होंने काय भी किया है। (लाजिक, द थ्योरी आव एनक्वायरी 1938) म ड्यूई ने यह बताने का प्रयास किया है कि आकारी भेद जांच पडताल के दौरान मे ही प्रकट होते जाते हैं और उनका जाच पडताल के दौरान म रहे उस तारतम्य के अतिरिक्त कोई अलग से महत्व भी नही होता। तार्किक सिद्धान्त उनकी दृष्टि से शाश्वत सत्य नहीं होते जिन्हें एक बार और अन्तिम बार निर्धारित कर दिया गया हो—और जिनके द्वारा सभी सभावित जाच पडतालो के लिए तत्काल उत्तर दिया जा सकता हो। इसके विपरीत, ये ऐसे सिद्धान्त हैं जिन्हें वैज्ञानिक जांच के दौरान या विशेषत उसके विकसित होते समय सफलता प्राप्त करने की क्रिया म सहायक देखा गया है और जब विज्ञान ही जाच-पडताल की नई विधियां विकसित कर रहा है, तब तकशास्त्र का भी सुधार किया जाना आवश्यक है।

ड्यूई का कथन है कि परम्परागत तकशास्त्र, प्लेटो की वैज्ञानिक विचार धारा के अनुरूप है जिसम सारतत्वो के बीच रहे सम्बन्धो की खोज की गई है। तकपदी जाच पडताल की उस प्रक्रिया का प्रतिनिधित्व करती है जिसम प्रणालियो के सामान्य लक्षण खोज निकाले गए हैं।

तकपदी जाच पडताल की उस प्रक्रिया का प्रतिनिधित्व करती है जिसम प्रजातियो को एक सामान्य अवस्था की ओर जाते हुए देखा जाता है। आधुनिक विज्ञान परिमाणो की ही चचा करता है सारतत्वो की नही और जिन सम्बन्धो की ओर वह सकेत करता है उसका विश्लेषण नही किया जा सकता है। ड्यूई हमेशा से उस आकारी स्वरूप पर विचार करते रहे हैं, जो प्रजाति निर्माण के वर्गीकरण के अनुकूल है। उनका मत है कि समसामयिक आकारी तकशास्त्र आंशिक रूप से उस ध्येय के प्रति अर्पित है जो परम्परागत तकशास्त्र म है। समसामयिक तकशास्त्र ने

---

1 ऊपर देखें अध्याय 5—एच० एस० थयर कृत द लजिक आव प्रेगमेटिज्म, एन एग्जामिनेशन आव जान ड्यूईज लौजिक (1952) एम० आर० लोहेन जान ड्यूई ए प्रिफेस टू लौजिक 1944 मे जान ड्यूई कृत लौजिक पर गोष्ठी के लिए देख द थ्योरी आन इन्क्वायरी (जे० पी० 1939), डी० ए० पिएट एव बर्ट्रेण्ड रसल द फिलासोफी आव जान ड्यूई (सम्पादित पी० ए० शिल्प 1939)

उनमें संबंधसूचकों तथा अनुमानों का कर्ता एवं विधेय बताने वाले तर्ककथनों एवं तर्कपक्षीय अनुमानों आदि सभी को विचारणीय माना है किन्तु ड्यूई के अनुसार इसने बात को अधिक स्पष्ट करने के बजाय उलझा दिया है, इसने नए आकार जोड़ दिये हैं, जबकि उसे पुराने आकारों का ही नवीनीकरण करना चाहिए था। आधुनिक तर्कशास्त्रियों ने जाँच पड़ताल का संदर्भ देकर तार्किक रूपाकारों का अमूर्तीकरण कर दिया है और उन्हें केवल मात्र आकारी कहा है जबकि ड्यूई के अनुसार, आवश्यकता इस बात की थी कि जाँच पड़ताल की एक नई तर्क प्रणाली विकसित की जाती जिसमें आकारी और भौतिक वाक्यों के बीच का भेद उसी प्रकार दूर हो जाता, जिस प्रकार यूनानी तर्कशास्त्र में हो गया है। अरस्तू का तर्कशास्त्र, यूनानी लोगों द्वारा धारण की गई ज्ञान-सम्बन्धी मान्यताओं का संतोषप्रद विश्लेषण है। नवीन तर्कशास्त्र को भी आधुनिक वैज्ञानिकों द्वारा की गई ज्ञान की व्याख्या का भी उतना ही संतोषप्रद विश्लेषण करना चाहिए।

ड्यूई द्वारा किये गए आकारी सम्बन्धों का विश्लेषण एवं उदाहरण द्वारा प्रस्तुत किया जा सकता है। परम्परागत विरोधमुखता उपविरोधमुखता एवं विरोधी भाव के सम्बन्धों को 'सभी क्ष' य हैं 'कोई क्ष य नहीं हैं' के माध्यम से उसी समय बताया जा सकता है जब हम अपनी जाँच पड़ताल में सीमा निर्धारित करें। अपने आप में ही 'विरोधमुखी तर्कवाक्य" दोष हैं, यह बात इस तथ्य में प्रकट हुई है कि दोनों विरोधमुखी कथन अवैध हो सकते हैं लेकिन फिर भी वे जाँच पड़ताल के उस क्षेत्र को माप लेने में हमारी सहायता करते हैं जिसमें हमारी समस्या का सम्भावित हल विद्यमान है। उस क्षेत्र में कहीं न कहीं जब 'क्ष' को निश्चित रूप से य माना गया है तो दूसरी ओर उसे कभी 'य' होने के लिए असमर्थ। बस उस क्षेत्र में से एक सम्भावित हल निकाल लेने की ही बात है और यही विरोधमुखता के संबंध में महत्वपूर्ण बिन्दु है। उप विरोधमुखी कथन कुछ क्ष य हैं और कुछ क्ष य नहीं हैं हल की ओर हमें आगे ले जाता है। ड्यूई के लिए उनका महत्व इसी में है कि वे एक निश्चित समस्या को मूर्त रूप तो देते ही हैं। समस्या यही है कि ऐसी कौनसी स्थिति है जिसके कारण सम्पूर्ण भेद प्रस्तुत हुआ है, भेद उन क्ष ओं के और उन 'क्ष ओं के बीच जो 'य' हैं और य नहीं हैं। यहाँ केवल आकारी तथ्य मात्र का प्रश्न नहीं है कि दोनों ही स्थितियाँ एक साथ दोषपूर्ण नहीं हो सकतीं किन्तु यह भौतिक तथ्य कि वे हमारे लिए एक समस्या निश्चित करते हैं और यही उप विरोधमुखता (सब कान्ट्रेरीटी) के सिद्धांत का तार्किक महत्व सिद्ध करता है।

ड्यूई के मत में महत्वपूर्ण और सूक्ष्म स्थिति तो विरोधी भाव के विश्लेषण में है। आकारी तर्कशास्त्र तो इस स्वीकारोक्ति से ही संतुष्ट है कि सभी क्ष य हैं और कुछ क्ष य नहीं हैं, दोनों एक दूसरे की काट करते हैं। किन्तु यहीं ठहर जाना

विरोधी भाव की प्रकृति को ही गलत समझ लेना होगा। वैज्ञानिक, मात्र विरोधी भाव प्रकट हो जाने भर से ही उसे मात्र आकारी सम्बन्धों का नाम देकर अपनी नाक भौं नहीं सिकोड़ने लगता। उसके लिए विरोधी भाव, जांच पड़ताल के लिए एक प्रेरणास्पद स्थिति है। एक ऐसे प्रकार का नव-सामान्यीकरण प्रस्तुत करना है जिसमें भौतिक सामान्यीकरण, कि सभी क्ष य हैं का इस ढंग से गढ़ लिया जाता है कि उसमें विरोधी भाव बताने वाले मामलों का भी वर्णन हो जाए जैसे यह क्ष य नहीं है जो ड्यूई के अनुसार सब क्ष य है का सच्चा विरोधी भाव है।

हीगल के तर्कशास्त्र एवं ड्यूई के उपकरणवादी तर्कशास्त्र के बीच की कड़ी बड़ी स्पष्ट है। और यदि हम और अधिक ध्यानपूर्वक आकारी तर्कशास्त्र की ड्यूई द्वारा की गई आलोचना को समझें तो हमें यह जानकर निरन्तर एक धक्का लगेगा, कि वे ब्रैडले एवं बोसांके जैसे उत्तरहीगलवादी तर्कशास्त्रियों से समता रखते हैं। उदाहरण के लिए वे कहते हैं कि एक वास्तविक समष्टि न्यायीनिर्णय को निश्चित रूप से आवश्यक जुड़ाव की ओर इंगित करना चाहिए एवं हमारे लिए इतना ही पर्याप्त होना चाहिए कि कोई सशर्त कथन संबंधी निर्णय उस समय तार्किक दृष्टि से संतोषप्रद' है यदि वे उलटे जा सकते हैं (रिवर्सिबल हैं)। और जांच पड़ताल के सम्पूर्ण सिद्धांत के उस दृष्टिकोण के विरुद्ध उनका स्वर है जो यह मानता है कि तर्कवाक्यों का किसी एक प्रणाली का अंग होने के अलावा अपना कोई स्थान है। उनके ग्रंथ लाजिक' में महत्वपूर्ण बात यह है कि स्थिर सत्य के विचार को व्यवस्थित जांच पड़ताल के विचार स्थानान्तरित कर देते हैं। अपने इस प्रयास में वे हीगल की 'आत्मा" (स्पिरिट) के प्रति ब्रैडले के परम (एब्सोल्यूट) से अधिक सहानुभूतिपूर्ण हैं। आकारी तर्कशास्त्र पर की गई उनकी आलोचना, उन लोगों को कुछ नवीन लगे जो तर्कशास्त्र को हीगल और उनके बाद विकसित हुई प्रत्ययवादी परम्परा के द्वारा देखना चाहते हैं। यहां महत्वपूर्ण बात जांच-पड़ताल का वही ठोस सिद्धांत है जिसने पांचवें अध्याय में हमारा ध्यान आकर्षित किया है।

जांच पड़ताल के सिद्धांत के द्वारा आकारी तर्कशास्त्र को खपा जाना ही लोजे से लेकर ड्यूई तक के विचार आंदोलन का मूल तत्व रहा है। निश्चय ही यह दृष्टि नई नहीं है। यह तो कोर्टेजियन की दृष्टि है और उसे लॉक द्वारा डेकार्टे से लिया गया था, लेकिन जब इसने 19 वीं० सदी का अनुभव किया तो उस समय आकारी तर्कशास्त्र की पुनः व्याख्या करना आवश्यक हो गया था। मूलभूत प्रश्न यही है कि तर्क का सम्बन्ध अनुभव से है अथवा सिद्धिकरण से? अनुमान करने की मानवीय क्रिया से है अथवा आकारी

सम्बन्धों के सिद्धिकरण से ? यदि हम कहें कि अनुभव ही इसका तथ्य है, तो हम यह निष्कर्ष निकालने के लिए बाध्य हो जाते हैं कि आकारी सम्बन्धों का अध्ययन, अपेक्षाकृत अधिक महत्वपूर्ण नहीं है। यदि हम इस सिद्धिकरण मानें तब जांच पड़ताल की प्रक्रिया के सम्बन्ध में उस मनस्तत्ववाद का खंडन हम करना पड़ेगा और अनुमान एवं सिद्धिकरण-सम्बन्धी यह विभेद, हमारे निर्णय के बीच जांच-पड़ताल किये जा रहे क्षेत्र के विशिष्ट भाग पर हमारा क्षणिक ध्यान खींचता है और तर्कवाक्य जिसे एक स्वतः पूर्ण इयत्ता माना गया है, एक ऐसी प्रणाली को बताता है जो किसी भी संदर्भ से मुक्त है। क्या वास्तव में तर्कवाक्य होते हैं और क्या कोई आकारी सिद्धिकरण होता है, ये ही विचार के मूल बिन्दु थे।

अध्याय 8

वस्तुपरकता की ओर

उन्नीसवीं शती की विचारधारा की प्रमुख वृत्ति यह निष्कर्ष लेने में रही, कि वस्तु तथा वस्तुसंबंधी तथ्य अपने अस्तित्व एवं प्रकृति के लिए किसी एक मन की क्रिया पर आश्रित हैं। मिल यह बताने निकले थे कि वे कैसे साहचर्य की यांत्रिक क्रिया से बनते हैं एवं संवेदनाओं द्वारा पोषित हो रहे हैं। ग्रीन का विचार था कि वे 'विचार' से निर्मित होती हैं। ब्रेडले के अनुसार वे सत्य की ससीम छायाएँ हैं। जेम्स का विचार था कि वस्तु एवं वस्तु संबंधी तथ्य मन द्वारा निर्मित उपकरण हैं, जिनमें अनुभव के साथ चलने की प्रभावशाली क्षमता है। सभी इस बात पर सहमत हैं कि यदि मन न होता तो तथ्य भी नहीं होते। मतभेद उनमें केवल इसी बात का था कि अनुभव पारमात्मिक हैं, संवेदना जन्य हैं अथवा चेतना का प्रवाह मात्र।

लेकिन हमने पहले ही इस संबंध में हुई विकलता के चिह्नों का पता लगा लिया है। मिल की अनंत संभावनाओं ने इस पर काफी प्रकाश डाल दिया था। जेम्स यहाँ पर जरा से विचलित हो गये थे। तथ्य हमारे द्वारा निर्मित होते हैं फिर भी वे हमारे कार्यों में बाधा डालते हैं। बोसांके के प्रत्ययवाद में प्रकृति काफी हद तक स्वतंत्र है। मैक के संघटनवाद में संवेदनाएँ तत्वों द्वारा रूपांतरित की गई हैं ताकि यह न सोचा जा सके कि तथ्य मन द्वारा निर्मित है। और एवेनेरियस ने हर्बर्ट द्वारा दिये गये सुझावों को विकसित करते हुए इण्ट्रोजेक्शन[1] के विश्लेषण से हलचल उत्पन्न कर दी थी। इसे एक प्रकार का मनोवैज्ञानिक तंत्र माना गया है जो हमें यह विश्वास करने को गलत दिशा में भटका देता है कि जो हम प्रत्यक्ष या सीधे तौर पर अनुभव करते हैं वह सदैव ही एक प्रतिमान (इमेज) है अथवा प्रतिनिधित्व है और कभी भी स्वतंत्र रूप से अस्तित्वमान पदार्थ नहीं है।

तो भी इनमें से कोई भी लेखक चाहे वे इस बिंदु के कितने ही समीप क्यों न आ जाएँ इसके लिए संगत रूप से तैयार थे कि तथ्य मन द्वारा केवल पहचाने जाते हैं उसके द्वारा निर्मित नहीं और यह न मान कर वे जीव विज्ञान मनोविज्ञान

---

[1] द्रष्टव्य जी० एफ० स्टाउट द्वारा बाल्डविन की डिक्शनरी आव फिलोसोफी एण्ड साइकोलोजी में अंतर्निवेश (इण्ट्रोजेक्शन) शीर्षक से लिखा गया निबंध।

एव नृतत्त्व विज्ञान (एन्थ्रोपोलोजी) जैसे सृजन विज्ञानों से भी दूसरी श्रेणी म रख दिए गए, क्योकि उन्नीसवी शती मे इनका जितना जोर था, इतना कभी नही था।

इन विज्ञानों का प्रादुर्भाव वास्तव म उन्नीसवी शती का सबसे महत्वपूर्ण संस्कृति के विकास का युग है। सृजन संबंधी जाच पडताल के प्रति नवोत्साह होने से प्रश्नों पर विचार करने का एक नया तरीका विकसित हुआ, और अन्तत हीगल का अनुकरण भी सिवाय उनके तत्वदर्शन को छोडकर।

ईश्वर के प्रति हमारी आस्था के सम्मुख खडे होकर या बाह्य जगत के प्रति हमारे विश्वास के आधार पर या फिर जीवन म कुछ गणितीय या तर्कीय सिद्धान्तो को स्वत सिद्ध मानकर दार्शनिक अपने आप से यह प्रश्न पूछने के अभ्यस्त हो गये थे 'क्या यह विश्वास सत्य है?' उत्तर-काण्टवादी अनीश्वरवाद ने अवश्य ही इस धारणा को हेय दृष्टि से देखा था कि यह एक सार्थक प्रश्न है जिसका सिद्धान्तत जवाब दिया जा सकता है चाहे व्यवहार मे वह कितनी ही बाधाए क्यो न प्रस्तुत करे। सृजनविज्ञानो इस प्रकार खडे किए गए शून्य की ओर झपट पडे और यह कहा गया, कि मुख्य प्रश्न तो ऐतिहासिक हैं–कि ऐसे विश्वास कहाँ से और कैसे जन्म लेते रहे हैं। यह पूछना कि वे सत्य हैं प्रतिक्रियावादी हैं तत्त्ववादी पृष्ठभूमि तयार करना है। किन्तु यह पूछना, कि वे कैसे उत्पन्न हुए इसके विपरीत एक समस्या को प्रस्तुत करना हुआ–एक अर्थनाव, हल करने योग्य समस्या–जिसे अनुभव के जरिए एव सृजनप्रणाली के आधार पर भी समझा जा सकता है।

दर्शन म भी यह बात काफी सामान्य रही थी। उदाहरण के लिए मिल ने एक मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त की रचना की, जिससे हम बाहरी जगत म विश्वास कर सकें। भौतिक पदार्थो म आस्था रख सकें। और हम प्राथमिक एव दूसरे प्रकार की गुणावस्थाओ का भेद कर सकें। और वह सब भी स्पष्टत बाहरी जगत के प्रति हमारी सामान्य भावना को हटाकर ही अथवा यह मानकर कि वस्तुओ को ये अमुक अमुक धातुए हैं। वे कहते हैं कि मैं यह विश्वास नही करता कि किसी भी वस्तु की वास्तविक बाह्यता को मन से अलग करके हम किसी भी प्रकार सिद्ध कर सकते हैं। इसी प्रकार स्पेंसर ने एक सुलझा हुआ सिद्धान्त विकसित किया था। वह सिद्धान्त विकासवाद पर आधारित था और इसम हमारे इस विश्वास की उत्पत्ति पर चर्चा की गई थी, कि कुछ गणितीय, एव तार्कीय कथन आवश्यक होते हैं। उनकी आवश्यकता उनके प्रकट होने के सदर्भ म ही देखी और समझी जा सकती है उनकी प्रकृति का विश्लेषण करने से नही।[1]

---

[1] द्रष्टव्य जे० कुक विलसन द्वारा लिखित ऑन द ईवोल्यूशनिस्ट थ्योरी ऑव एग्जियम्स, उद्घाटन भाषण 1889।

स्वाभाविक तौर पर अब तो सृजन-वैज्ञानिक भी प्रजननप्रणाली-संबंधी अपने दावों के प्रति काफी उत्साह प्रदर्शित करने लगे थे। दर्शन से अपना स्वतन्त्र स्थान कायम करने की चिंता में उन्होंने ऐसे सिद्धान्त की खोज की जो न केवल दर्शन से स्वतन्त्र था अपितु उससे वस्तुतः श्रेष्ठ था। कुछ अभी भी विवाद अवश्य था। कई बार तो न सुलझता हुआ लगने वाला। वह यह कि विज्ञानों की रानी की उपाधि से किसे विभूषित किया जाए? मनोविज्ञान को जीव-विज्ञान को अथवा नृतत्व-विज्ञान को? किन्तु इस समय कोई भी तत्त्वदर्शन जो इस पद की कामना करता था उसका मखौल पुराना इतराने वाला' कहकर उड़ाया जाता था।

तो भी अजीब तरह से एक नया आन्दोलन, इस बात पर अड़ा था कि प्रत्येक मामला वस्तुपरक है। और सदैव मूलभूत प्रश्न यही है कि 'क्या यह सत्य है अथवा असत्य'। इस प्रश्न ने एक मनोवैज्ञानिक की रचनाओं में अपना प्रभाव डालना प्रारंभ कर दिया था। ये एक ऐसे मनोवैज्ञानिक थे जो ब्रितानी दर्शन की मनोवैज्ञानिकीकरण की वृत्ति के प्रशंसक थे, खास तौर पर मिल के, और इस बात के प्रबल समर्थक थे कि मनोविज्ञान ही मूलभूत विज्ञान है। किन्तु फ्रेंज ब्रेण्टानो अरस्तूवादी भी थे एक शास्त्रीय पद्धति से प्रशिक्षित पादरी और साथ ही साथ ह्यूज के 'ट्रीटाइज' को आगे विकसित करने वाले। 1874 में लिखी उनकी कृति **साइकोलोजी फ्राम एन एम्पिरिकल स्टेण्डपोइण्ट**[1] में अरस्तू की वस्तुपरकता को पुनः स्थापित किया गया है और उनमें कुछ मध्यकालीन दार्शनिकों के महत्व को भी स्वीकारा गया है।

---

[1] देखें मरणोपरान्त संस्करण (सम्पादक ओ॰ क्राउस 1924–8), इसी के एम॰ डी॰ गन्डीलेक द्वारा 1944 में किये गये फ्रेंच अनुवाद में कुछ अतिरिक्त निबन्ध भी हैं—ओ॰ क्राउस की 1919 में जर्मनी भाषा में प्रकाशित **फ्रेन्ज ब्रेन्टानो**। ए केसिल कृत दी **फिलोसोफी फ्रेंज ब्रेन्टानोस** 1951। एच॰ ओ॰ ईटन कृत **दी आस्ट्रीयन फिलोसोफी आव वेल्यूज** (1930)। एल॰ गिल्सन कृत 1955 में प्रकाशित दो पुस्तकें **मेथोडे एट मेटाफिजीक सेलो फ्रेन्ज ब्रेन्टानो एवम् ला सायकोलोजी डिस्क्रिप्टिव सेलो फ्रेंस ब्रेण्टानो**। ब्रेंटानो की एक मात्र रचना जो 1902 में अंग्रेजी में अनुवादित हुई **दी ओरीजिन आव द नालेज राइट एण्ड रोंग** (1889) है। यद्यपि यह रचना मूलतः नैतिक है, फिर भी उसमे दिए गये विस्तृत नोट जो कि मूल पाठ्यक्रम के साथ जुड़े हैं ब्रेंटानों की व्यापक रुचियों और साइकोलोजी के बाद विकसित हुई विचारधारा की दिशा की ओर संकेत करते हैं। इसके परिशिष्ट में, ब्रेंटानो के निबन्ध 'आन सबजेक्टलेस प्रोपोजीशन्स' के साथ अनुवादक द्वारा उनकी जीवनी से संबंधित टिप्पणी भी है। जर्मन दर्शन पर ब्रेंटानो का प्रभाव बहुत व्यापक

आधुनिक पाठक को शायद ब्रेण्टानो की पुस्तक का शीर्षक भ्रम में डाल सकता है क्योंकि 19 वीं शती का मृजन विज्ञान एवं तत्त्ववादी दार्शनिकों के विरोध की वृत्ति, इन दोनों के सम्मिलित प्रयास के फलस्वरूप 'अनुभववादी' मनोविज्ञान का अर्थ मृजन मनोविज्ञान हो गया था, जिससे मानसिक अवस्थाओं के प्रादुर्भाव का पता लगता है और जो उन्हें शारीरिक प्रक्रिया मानकर ही इन सबकी चर्चा करता है। ब्रेण्टानो उस समय लिख रहे थे जिस समय जी० टी० फेचनर के एलीमेण्ट्स आव साइकोफिजिक्स (1860) ग्रन्थ के प्रकाशन ने भौतिक एवं मनोवैज्ञानिक मापों से संबंधित सनसनी उत्पन्न कर दी थी। ब्रेण्टानो ने भी इस कृति में अपनी रुचि प्रदर्शित की थी किन्तु वे यह मानने के लिए कतई तैयार नहीं थे कि यह मनोविज्ञान के क्षेत्र को भी आत्मसात कर लेता है। इस प्रकार वे वर्णनात्मक मनोविज्ञान को जो कि विशुद्ध रूप से अशारीरिक मनोविज्ञान है मृजन मनोविज्ञान से अपने शारीरिक तत्त्वों सहित अलग करके देखने की ओर प्रवृत्त हुए[1]। वह यह अनुभव करने लगे थे कि उन्होंने अपनी पुस्तक सायकोलोजी में यह भेद स्पष्टता से प्रकट नहीं किया था। कदाचित् यही कारण है कि उन्होंने अपनी इस पुस्तक को कभी पूरा नहीं किया और केवल उसे संशोधित और पुनः प्रकाशित करके ही सन्तोष कर लिया। 1911 में प्रकाशित इस पुस्तक का नाम

रहा। यदि कुछ थोड़े बहुत नाम ही गिनाये जायें तो उनके प्रभाव में मीनोंग, हुसर्ल, एहरेन-फेल्स स्टफ, मेसरिक आदि प्रसिद्ध हैं। यह बात उल्लेखनीय है कि फ्रायड ने भी तीन सालों तक उनके भाषणों को सुना है। किन्तु वे एक असम्पृक्त दार्शनिक थे और रोमन कैथोलिक अधिकारियों के साथ पोपों की दोषवृत्तियों पर हुई झड़पों के कारण दर्शन की ओर से उनका ध्यान हट गया था। उनके पत्र और हस्तलिखित कृतियाँ आज भी संकलित और प्रकाशित की जा रही हैं।

ब्रेण्टानो द्वारा की गई शास्त्रीय व्याख्या के लिए देखें ई० गिल्सन द्वारा लिखित "फ्रेंज ब्रेण्टानोस इण्टरप्रेटेशन ऑव मेडाइवल फिलोसाफी" (मेडाइवल स्टडीज 1939)। ब्रेण्टानो का अपने पूर्ववर्तियों के प्रति रहा दृष्टिकोण उनके 1892 में प्रकाशित डीवियर फेजन डर फिलोसोफी नामक रचना में देखा जा सकता है। उनकी दृष्टि में काण्ट और हीगल ने आधुनिक दर्शन में गतिरोध उत्पन्न किया है। ब्रिटानी दर्शन के प्रति उनकी रुचि जर्मन आत्मा के मरदकों द्वारा संदेह की दृष्टि से देखी गई।

[1] मदम ई० बी० टिचनर द्वारा लिखित 'ब्रेण्टानो एण्ड वुण्ड इम्पीरिकल एण्ड एक्सपेरिमेण्टल सायकोलोजी' (अमरीकन जरनल आव साइकोलोजी, 1922)।

उन्होंने ऑन द क्लासीफिकेशन ऑव साइकिकल फिनोमीना रखा। यह पुस्तक उनकी पहले वाली पुस्तक का एक अंश ही है क्योंकि इसमें उन्होंने बहुत गहराई से वर्णनात्मक मनोविज्ञान के अपने आदर्श को प्रस्तुत किया है। 1866 में लिखे अपने डाक्टरेट के शोधप्रबंध में उन्होंने मिल के इस कथन से सहमति प्रकट की है कि मनोविज्ञान की प्रणाली प्रकृति विज्ञान की ही प्रणाली है।" किन्तु एक ओर वे निरन्तर यह कहते रहे कि उनका मनोविज्ञान अनुभववादी है तो दूसरी ओर साधारण प्रकृति विज्ञान से भी वह कम से कम मेल खाता है।

ब्रेण्टानो का अनुभववादी मनोविज्ञान पर यह विवाद था कि वे मूलतः पर्यवेक्षण (आब्जरवेशन) को अपने अनुभववाद का आकार नहीं मानते। कोम्ते का अनुसरण करते हुए ब्रेण्टानो ने भी अन्तरीक्षण (इण्ट्रोस्पेक्शन) की सम्भावना का खण्डन किया है और उसे हमारी मानसिक प्रक्रियाओं को पर्यवेक्षण (आब्जरवेशन) माना है। हमारे द्वारा अपने क्रोध का ईक्षण अथवा उस पर हमारा ध्यान केन्द्रित करना तत्काल ही उस भाव को विनष्ट कर देता है। कोम्ते ने यह निष्कर्ष निकाला था कि मनोविज्ञान असम्भव है और उसे समाजशास्त्र द्वारा स्थानान्तरित कर दिया जाना चाहिए। ब्रेण्टानो इस निष्कर्ष को नहीं मानते। मनोवैज्ञानिक के पास पर्यवेक्षण की अनेक विधियाँ हैं। वह अपनी मानसिक प्रक्रियाओं का स्मरण कर सकता है, वह पागल लोगों का अध्ययन कर सकता है, जीवन के सरलतर प्रकारों को देख सकता है एवम् अन्य लोगों के व्यवहार का अध्ययन कर सकता है। किन्तु फिर भी, यह दृष्टि ही स्वतः एक मनोवैज्ञानिक को बहुत गहराई तक नहीं ले जायगी। उनकी कृति ऑन द क्लासिफिकेशन ऑव साइकिकल फिनोमेना में उपर्युक्त सभी तकनीकों को पृष्ठभूमि में धकेल दिया जाता है।

मनोविज्ञान का आधार यही है कि हम हमारी मानसिक क्रियाओं को देख सकते हैं, चाहे हम उनका पर्यवेक्षण न कर सकें। यह अन्तर समझने के लिए हमें इस कार्टेजियन धारणा से प्रारम्भ करना चाहिए जो ब्रेण्टानो के अनुसार इस विषय में निर्विवाद है कि किसी प्रतिनिधित्व के प्रति सचेत होने का मतलब है उसके साथ ही उस क्रिया के प्रति को जागरूक होना जो हमें उसके प्रति सजग बनाती है। उदाहरण के लिए हम उस समय तक कोई ध्वनि नहीं सुन सकते जब तक कि हम न केवल उस ध्वनि के प्रति सचेत हों अपितु सुनने की क्रिया से भी परिचित हों। ये दो विभिन्न प्रकार की सचेतन क्रियाएँ नहीं हैं केवल एक ही क्रिया के दो विषय हैं। ध्वनि (पहला विषय) और क्रिया (दूसरा जो इस तरह एक अप्रवर्तित विषय हो जाता है) यदि किसी तरह से दो विषय होते तो कार्टेजियन धारणा हमें अनन्त मानसिक क्रियाओं के गुणन की ओर ही प्रेरित करती। इसका

अर्थ यही है कि ध्वनि के प्रति सचेत होना उसकी चेतनता के प्रति भी सचेत होना होगा और उसी प्रकार ध्वनि की चेतना के प्रति सचेतन होना, उस सचेतनता के प्रति भी सचेत होना है। इस तरह यह क्रम अनन्त रूप से चलता रहेगा। इस अविश्वसनीय गुणन से बाहर निकलने का एक ही तरीका है और वह यह, कि हम इस बात का खण्डन करें कि इस ध्वनि की चेतना के प्रति सचेत होने की हमारी क्रिया ध्वनि के प्रति सचेत होने की क्रिया से भिन्न है। किसी मानसिक क्रिया का पर्यवेक्षण करने का प्रयत्न, दूसरी क्रिया का पहला विधेय बनाना है। जब हम पर्यवेक्षण की बात करते हैं, तो हम पर्यवेक्षक एवं पर्यवेक्षित दोनों के बीच में एक भेद करते हैं और ब्रेण्टानो, कोम्ते के साथ यह मानने में सहमत हैं, कि यह असम्भव है।

यहीं आकर मनोविज्ञान एवं अन्य अनुभववादी जाँच पड़तालों में एक महत्वपूर्ण भेद प्रकट हुआ है। ब्रेण्टानो शब्द को विशेष महत्व देते हुए कहते हैं कि मनोविज्ञान में हम दृष्टि रखते हैं जबकि अन्य विज्ञानों में हम पर्यवेक्षण करते हैं। इससे लगता है जैसे अन्य विज्ञान मनोविज्ञान की अपेक्षा अधिक सुविधाजनक स्थिति में हैं। किन्तु ब्रेण्टानो इस बात का जोरदार खण्डन करते हैं। लाक के साथ सहमति प्रकट करते हुए वे कहते हैं कि प्राकृतिक वैज्ञानिक की प्राकृतिक पदार्थों की ओर सीधी पहुँच नहीं है, जिन्हें वर्णन करने का वह प्रयास करता है। उनकी वास्तविक प्रकृति के विषय में वह जो कुछ भी कहता है, वह मात्र अनुमान है। यह अनुमान वस्तु के ऊपरी दिखावे पर प्राप्त उसके अनुभव पर आधारित रहता है, वह ध्वनि रंग और ऐसी ही अन्य वस्तुओं का पर्यवेक्षण कर सकता है किन्तु वह कभी भी भौतिक पदार्थ को नहीं देख सकता। वह कभी भी सीधे और तात्कालिक रूप से उसके प्रति सचेत नहीं हो सकता। इसके बिल्कुल विपरीत एक मनोवैज्ञानिक अपनी विषयवस्तु के साथ का तात्कालिक एवं सीधा अनुभव करता है। प्रत्येक मानसिक क्रिया सीधे तौर पर अपने होने को एक दूसरी अवस्था करके भी देखती है वह केवल रूप—दर्शन नहीं है और न ऐसी ही कुछ है जिसमें से मानसिक क्रिया के मूल स्वरूप का अनुमान लगाया जा सके किन्तु दरअसल मानसिक क्रिया जैसी है वह भी वैसा ही है। इसीलिए ब्रेण्टानो के लिए ह्यूम की ही तरह मनोविज्ञान का स्थान विज्ञानों में सर्वप्रथम है। दोनों इस कार्टेजियन सिद्धान्त को मानते हैं कि मानसिक तत्व का हमारा ज्ञान अन्य सब वस्तुओं की अपेक्षा विचित्र रूप से सीधा और निश्चित है।

लेकिन ब्रेण्टानो ने अपने को डेकार्ट लाक की परम्परा से अलग कर लिया, और वस्तुपरकता की ओर बढ़ने की दिशा में अपना प्रभाव डाला। यह कार्य उन्होंने मानसिक' तत्व को पुनः परिभाषित करके किया था। लॉज ने जिस मूलभूत मानसिक संघटन की बात सोची थी वह था प्रत्यय' और इस प्रकार के प्रत्ययों के

कारण हमारा अनुभव निश्चय ही सीमित हो जाता है। इस प्रकार यदि पक्के अनुभववादियो की तरह मानें कि अनुभव के बिना कोई भी ज्ञान सभव नही है उससे यह अर्थ निकलेगा कि जो कुछ हम जानते हैं उसका मानसिक होना आवश्यक है। मानसिक एव अमानसिक दोनो के बीच के भेद का विशेषतया उसकी आवश्यकता से जुडी हुई स्थिति का ब्रेण्टानो पूर्णत खण्डन करना चाहते थे। अनुभववादी दृष्टिकोण के किसी पक्के अनुयायी के विश्वास से कम से कम ऐसा तो लग ही सकता है।

ब्रेण्टानो ने इस प्रकार की अनुभववादी युक्ति का उच्छेदन करने का प्रयास किया मूलत यह बात अस्वीकार करके, कि मानसिक होने का अर्थ प्रत्यय मे बदल जाना है। मानस सघटन का मूलभूत रूप यही है कि वह किसी वस्तु की ओर सकेत करता है अथवा किसी विषय वस्तु की ओर सकेत करता है अथवा किसी विषय वस्तु का सदर्भ प्रकट करता है। इन दोनो वाक्याशो को वे पर्याय मानते हैं। मानसिक तत्व तब तक एक क्रिया है एव अमानसिक इसके विपरीत किसी वस्तु की ओर सकेत करने अथवा किसी विषय वस्तु के भाव को प्रकटाने मे असमर्थ होता है।

ब्रेण्टानो द्वारा क्रिया पर दिए गये बल के कारण भ्रम पैदा हो गया। उसी तरह उनके द्वारा क्रिया के उपकरणों की व्याख्या के कारण भी ऐसी ही गलतफहमी पैदा हुई और उस प्रयोजनात्मक अन्तस्तित्व (इन्टेन्शनल इनएग्जिस्टेन्स) की सज्ञा दी गई है। क्रिया एव प्रयोजनात्मक जैसे शब्दो की पसन्द के कारण ही उन्हे शोपेनहोवर के अनुयायियो मे एक अंशीय मनःवैज्ञानिक के रूप मे माना गया। इन लोगो के लिए पदार्थ उद्देश्य ध्येय एव क्रियाए, ऐसी सवेदनाए हैं जो हम निश्चित लक्ष्य की ओर प्रेरित करती है। इस प्रकार की गलत व्याख्याओ से बचने के लिए ब्रेण्टानो ने प्रयोजन से सम्बन्धित अपनी भाषा को त्याग दिया था। एक मानसिक क्रिया मात्र वह विधि है जिसके कारण हमारा मन किसी वस्तु से जुड जाता है और वस्तु वही है जिसे मन अपने समक्ष अपनी क्रिया के उपकरण के रूप मे देखता है।[1]

---

[1] 'ट्रीटीज" के परिशिष्ट मे जब ह्यूम यह कहते है कि विश्वास और गल्प मे उनके सोचे जा सकने के कारण ही अन्तर होता है तो वे जैसे ब्रेण्टानो के मानसिक क्रिया के सिद्धात का ही एक पूर्व कल्प दे रहे होते हैं। इसके विपरीत ह्यूम द्वारा विश्वास की यह व्याख्या कि वह एक 'विशद प्रत्यय है" ब्रेण्टानो को स्वीकार नहीं थी क्योंकि वे इसकी आलोचना करते हुए कहते हैं कि इसमे विश्वास की क्रिया का उसके उपकरण प्रत्यय के साथ घोलमेल कर दिया गया है।

ब्रेण्टानो के लिए सर्वसाधारण मानसिक क्रिया वह है जिसे वे प्रतिनिधिकरण का नाम देते हैं इसमें वस्तु केवल मन के समक्ष रहती है। प्रतिनिधिकरण के आधार पर ही सब मानसिक क्रियाएं टिकी हैं क्योंकि यह स्थिति ही शेष मानसिक क्रियाओं को वस्तु के विषय में कुछ समझने का अवसर प्रदान करती है जो बाद में जाकर उन्हीं का एक अंग बन जाती हैं। स्पष्टतः प्रतिनिधि करण की यह व्याख्या लाक की अनुभव की व्याख्या से काफी मेल खाती है लेकिन लाक के दर्शन में यद्यपि अनुभव हमारी निर्णयात्मिका बुद्धि को सरल प्रत्ययों के रूप में कच्चा माल प्रदान करता है, तो भी वहाँ हमारे निर्णय का वास्तविक उपकरण हमारे अनुभव के उपकरण से बिलकुल ही भिन्न है। वह प्रत्यय नहीं है बल्कि सम्मति और असहमति के संबंधों के कारण जुड़े, बहुत से प्रत्ययों का एक मिला जुला रूप है। इन सबसे ही अलग, ब्रेण्टानो, ह्यूम की भाँति इस बात का खण्डन करते हैं कि हमारे निर्णय के लिए प्रस्तुत कोई वस्तु प्रतिनिधीकरण की किसी वस्तु से कहीं भिन्न है।

वे ह्यूम का उदाहरण देते हैं—एक अस्तित्वमूलक निर्णय' जैसे कि, यह निर्णय कि वृक्ष अमुक अमुक रूप में अस्तित्वमान है" केवल एक ही प्रत्यय की ओर संकेत देता है। और वह एक प्रत्यय है "वृक्ष'। इसमें [illegible] और अस्तित्व किसी संबंध के कारण दो अलग अलग उपकरणों के रूप में नहीं जुड़े हैं। इसका यही अर्थ हुआ, कि कभी कभी किसी निर्णय में एक ही प्रत्यय हो सकता है, और उसमें निहित वस्तुओं की बहुलता निर्णय को परिभाषित करने का मूलाधार नहीं बन सकती। किन्तु ब्रेण्टानो ह्यूम से भी आगे चल जाते हैं। वे कहते हैं कि प्रत्येक सरल[1] निर्णय को अस्तित्ववादी रूप दिया जा सकता है। कुछ वृक्ष हरे हैं' यह कथन न तो इस बात का खण्डन करता है कि हरे वृक्ष होते हैं और न 'कोई वृक्ष हरा नहीं है' यही कथन हरे वृक्षों के न होने को सिद्ध करता है। इसी तरह सभी वृक्ष हरे हैं इस बात का खण्डन नहीं है। और न कुछ वृक्ष हरे नहीं हैं, यही

---

[1] सरल' और जटिल' निर्णयों के अंतर के लिए देखें द ओरीजिन आव द नोलेज आव राइट एण्ड रोंग के नोटस। ब्रेण्टानो का अस्तित्व-संबंधी सिद्धांत बेन द्वारा स्थापित प्रतीकात्मक तर्कशास्त्र के काफी अनुकूल था। देखें अध्याय 6 ब्रेण्टानो द्वारा तर्कशास्त्र संबंधी किए गए नवा वर्णनों का ब्योरा अंग्रेजी पाठक के लिए डी॰ पी॰ एन लण्ड के 1876 में माइंड में लिखे गए लेख में मिल सकता है। यह नोट बाद की तार्किक चर्चाओं को भी प्रभावहीन सिद्ध करने में काफी सहायक रहा है। इसमें ब्रेण्टानो के विरोध में लण्ड का कथन है कि यद्यपि समष्टि व्यापी तर्कवाक्य अपने कर्ता के अस्तित्व को सिद्ध नहीं करते, तो भी वे उसके अस्तित्व की कल्पना तो करते ही हैं।

इस बात का स्वीकरण है कि ऐसे पेड़ भी हैं जो हरे नहीं हैं। इन निर्णयों की विषय वस्तु वे ही हरे वृक्ष हैं जिन्हें हम अपने लिए एक प्रत्यय का प्रतिनिधित्व करता हुआ मान सकते हैं। इसी तरह निर्णय एवं प्रतिनिधिकरण में यही अंतर वस्तु में निहित नहीं है, किन्तु उस विधि में निहित है जिसके जरिए हम उसका विचार करते हैं। निर्णय करना एक वस्तु को स्वीकार या अस्वीकार करना है, उसका प्रतिनिधित्व केवल मात्र वस्तु का हमारे सामने होना है।

स्पष्टतः यह सिद्धांत, कुछ कठिनाइयां लिए है। उनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण यह है कि किस प्रकार वस्तुओं एवं मानसिक क्रियाओं से उनके संबंधों का कोई संतोषप्रद विवरण दिया जाय। वस्तु किसी न किसी तरह क्रिया की विषयवस्तु है। यह ऐसी स्थिति है, जो एक निर्णय की क्रिया को दूसरे निर्णय की क्रिया से अलग करती है। उदाहरणार्थ, हम इस बात का खण्डन करते हैं कि गोल वर्गाकार होते हैं। हमारे खण्डन की यह क्रिया सही है। किन्तु इससे उसकी विषय वस्तु के रूप में गोल वर्गाकारों का होना कैसे सिद्ध हुआ जब कि इस क्रिया का सम्पूर्ण उद्देश्य गोल वर्गाकारों का न होना ही सिद्ध करना है। संक्षेप में इसका अर्थ यही है, किस प्रकार एक वास्तविक क्रिया की विषय वस्तु अवास्तविक हो सकती है? परम्परागत सिद्धांत के अनुसार इसमें कोई मुश्किल नहीं है। उनके लिए गोल वर्गाकार के प्रत्यय की बात को स्वीकार कर लिया गया है, वह वास्तविक प्रत्ययात्मक प्रत्यय हैं चाहे यह अपने से भिन्न किसी वस्तु की ओर संकेत करने में अक्षम हो। डेकार्ट के मतानुसार इसमें वस्तु-परकता है चाहे उसमें आकारी सत्य नहीं हैं। किन्तु एक बार हम इस प्रत्यय को किसी ऐसी क्रिया की विषयवस्तु बना लें जो आकारी सत्य को व्यक्त करती है तो उसके साथ ही वे सारी समस्याएं तत्काल ही खड़ी हो जाती हैं जिनका उत्तर देने का प्रयास ब्रेंटानो के प्रशंसकों ने किया है।

विशेषतः मीनोंग का वस्तु सिद्धांत उनसे हुए इस अलगाव को व्यक्त करता है। मीनांग ने वीएना में ब्रेंटानो के संरक्षण में कार्य किया और इसीलिए उन्होंने अपने दार्शनिक जीवन का आरम्भ एक मनोवैज्ञानिक के रूप में किया। किन्तु यहां यह बात महत्वपूर्ण है कि उनकी पहली एवं प्रमुख रचना दो अंकों में ह्यूम स्टडीज (1877-82) नाम से प्रकाशित हुई जिसमें उन्होंने ह्यूम के प्रत्ययों के सिद्धांतों को समझने और उन्हीं के द्वारा किए गए संबंध सूचकों के विश्लेषण की ओर विशेष ध्यान दिया है। वे उसी रूप में मनोवैज्ञानिक थे जिस रूप में ह्यूम को एक मनोवैज्ञानिक कहा जा सकता है। उन्होंने ब्रितानी अनुभववादियों के इस मत को स्वीकार कर लिया था कि संबंध सूचक एवं समष्टि कथन मन की ही रचनाएं

है। इसस यह लगता है जस साथकता सवधा सत्यो एव निणयो के सिद्धात सभी का वास्तविक चेन मनोविनान हो[1] है।

मीनोग की प्रणाली भी ब्रेण्टानो सदृश ही थी। दशनसवधी विशप समस्याओ का उनके द्वारा किय' गया श्रमसाध्य विशनपण जा कालान्तर म बीसवी शती क ब्रितानी दशन का मूलभूत तत्व रहा और जो जमन प्रदश म चल रह परम्परागत दशन से आस्ट्रिया के दशन की अपेक्षा कही अधिक भिन्न था। ब्रेण्टानो एव उनके अनुयायियो के लिए दशन मात्र विनान क अतिरिक्त और कुछ नही था। उनम लग के समान यह धारणा बना लेन का धय नही था कि दशन एक प्रकार का काव्य है एक व्यापक तौर पर रची गयी काल्पनिक सृष्टि है। इनका विचार था कि दाशनिक को स्पष्ट रूप स परिभाषा की जान योग्य समस्या का चुनाव करना चाहिए और तब अपनी सम्पूण क्षमता स उसके सुलझान मे प्रवृत्त हो जाना चाहिए। दरअसल, अनेक प्रकार स तो उनकी धारणा परम्परागत दशनशास्त्रियो क विशद विश्लेषण या प्रवृत्ति का स्मरण दिलाने लगती है। जबकि डेकार्ट के समय स ही दाशनिक लोग दशन के शास्त्रीय भेदो का उन्मूलन करने म लग गय थे और उन्होने उन स्थलो मे रहे विवादो को एक बार उपभार कर दिया था, जिन्ह इन पूववर्ती दाशनिको ने समानरूप से अविवादास्पद मान लिया था।

---

[1] इसी क साथ मीनोग, दाशनिक मनोविज्ञान को समस्याओ पर विचार करने की ओर भी प्रवृत्त हो गए थे देखें, जे० एन० फिण्डले कृत 'इमोशनल प्रेजेण्टेशन' (ए जे पी 1935) एव रिकमेण्डेशन्स रिगार्डिग द लव्वज आव इण्ट्रोस्पेक्शन (पी० पी० आर० 1948)। इनम मीनोग क समक्ष प्रस्तुत हुई मनोवैज्ञानिक समस्याओ का ब्योरा दिया गया है। मीनोग के सबध म अधिकृत जानकारी फिण्डल कृत मीनोग्स थ्योरी आव आबजेक्टस (1935) म देखें। आर० जेवसन का रिव्यू भी देखें (माइण्ड 1934)। 1904 मे माइण्ड म ही प्रकाशित बर्ट्रेण्ड रसल का लेख 'मीनोग्स थ्योरी ऑव कोम्प्लक्सज एण्ड एजम्पशन्स (1904)। मीनाग की रचनाओ के रिव्यू (माइण्ड 1899 1905 1907) रसेल एव मीनोग दोना क दशन पर काफी प्रकाश डालते हैं। जी० डास हिक्स द फिलोसोफिकल रिसर्चेज आव मीनाग' (माइण्ड 1922 पुन मुद्रित 1938 क्रिटिकल रिएलिज्म)। ए० माइकनिस कृत द कन्सप्शन आव पासीबिलिटी इन मीनोग्स जीजेण्ड स्टेण्डस थ्योरी (पी० पी० आर० 1941)। जे० एन० फिण्डल का एलेक्सियस मीनोग गेडेकश्चिफ्ट म प्रकाशित 'द इम्पनूएस ऑव मीनाग इन ए ग्लोसक्सन् कण्ट्रीज' 1952 शीषक निबध। मीनाग की कोई भी रचना अग्रेजी म अनूदित नही हुई है।

1904 ई० तक जब उन्होंने इन्वेस्टीगेशन्स इन्ट थ्योरी ऑव ऑब्जेक्ट्स एण्ड साइकोलोजी नामक ग्रन्थ लिखा मीनोंग के समक्ष यह बात स्पष्ट हो गई थी कि वे जो रचना कर रहे थे, उसके लिए यद्यपि मनोविज्ञान साधक था तो भी वह रचना अपनी मूल प्रवृत्ति में मनोवैज्ञानिक नहीं थी यहां तक कि अपनी लचरतम व्याख्या में भी वे उसे ऐसा मानने के लिए तैयार नहीं थे। इसके विपरीत निष्कर्ष निकाल लेना जैसा कि ब्रेंटानो ने किया है, उनकी दृष्टि में विषय-वस्तु एवं वस्तु को और उलझाना होगा। विषय वस्तु एवं पदार्थ या वस्तु सम्बन्धी भेद का निर्धारण करने में मीनोंग ने पोलैण्ड के दार्शनिक के ट्वारडोव्स्की की सहायता ली। ट्वारडोव्स्की ने अपनी पुस्तक टूवार्ड्स ए थ्योरी ऑव द कण्टेण्ट एण्ड ऑब्जेक्ट ऑव प्रेजेण्टेशन्स (1894) में मानस-पचटन में तीन विभिन्न संयोजक तत्वों का भेद बताया है मानसिक क्रिया, उसकी विषयवस्तु एवं इन दोनों का आधार वस्तु। विषय वस्तु एवं पदार्थ का तादात्म्य करा देने का प्रभाव यह होता है कि उससे मन के समक्ष प्रस्तुत वस्तु का अस्तित्व भी ऐसा लगने लगता है मानो वह भी मन की समझने की प्रक्रिया का ही एक अंश है। किन्तु यह दृष्टिकोण सर्वथा असमीचीन है। क्योंकि जो वस्तु मन के सामने है वह बहुधा एक भौतिक पदार्थ भी होती है जो ठोस, और फैली हुई है। ऐसा पदार्थ किसी प्रकार मानसिक क्रिया द्वारा उत्पन्न किया जाना सम्भव नहीं है। इसके अतिरिक्त भी यदि हम किसी एक तरह से अनस्तित्वशील पदार्थ का भी विचार कर रहे हों, तो भी[1] विचार करने की मानसिक क्रिया तो अस्तित्व में रहती ही है। और जो भी उसकी विषयवस्तु का अंश होना है वह भी अस्तित्वमान होना चाहिए। इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि गोल वर्गाकार मानसिक क्रिया की विषय-वस्तु नहीं हो सकता यद्यपि स्पष्टतः वह मानसिक क्रिया में प्रकट हो सकता है। इसके साथ ही मीनोंग की यह भी धारणा थी कि उस क्रिया के दौरान ऐसा कुछ तो होना ही चाहिए जो इस तथ्य का आभास देता है कि वह बहुत से पदार्थों की अपेक्षा एक पदार्थ की ओर निर्देशित हो रही है। यही कुछ उस क्रिया की विषय वस्तु होती है। लॉक के प्रत्ययों की भांति यह विषयवस्तु पूरी अथवा अधूरी सी कोई तस्वीर नहीं है न यह किसी प्रकार की संवेदना ही है। क्योंकि ऐसी कोई भी तस्वीर अथवा संवेदना तब एक अन्य पदार्थ हो जाएगा।

---

[1] पदार्थ की परिभाषा— यह वह अवस्था है जिसकी ओर मानसिक क्रिया गतिमान होती है।' इस प्रकार किसी पदार्थ का वस्तु होना आवश्यक नहीं है। जलपरियां यूनीकार्न एवं दो का 'वर्गमूल' ये सभी पदार्थ हैं—क्योंकि हम इनके सम्बन्ध में विचार कर सकते हैं। मीनोंग के गेजेंस्टैण्ड का अनुवाद कई बार एक्यूजेटिव के रूप में प्रयुक्त हुआ है।

हम फिर स्पष्ट करना पड़ेगा कि मानसिक क्रिया, एक संवेदना, अथवा एक तस्वीर की ही ओर क्यों गतिशील है दूसरे पदार्थों की ओर क्यों नहीं ? विषयवस्तु की इससे अधिक स्पष्ट परिभाषा कदाचित् न हो सके कि वह मानसिक क्रिया की एक ऐसी विशेषावस्था है जो उस अमुक अमुक पदार्थ की ओर संकेत करने में सहायता देती है। मीनोंग का मत है कि ऐसी विषयवस्तु का पता लगा लेना टेढ़ी खीर है। लेकिन फिर भी बहुत प्रयास करने पर यह संभव हो सकता है। मुश्किल हमारे सामने उसी समय आती है, जब हमारा ध्यान मानसिक क्रिया की ओर न हो कर पदार्थ की ओर हो जाता है, और कुछ इसलिए भी कि हम सदैव ही ऐसे समय किसी विशिष्ट वस्तु की खोज में लग जाते हैं जैसे विषयवस्तु यह पहचाने बिना ही कि विषयवस्तु तो मानसिक क्रिया के दौरान प्रकटी एक विशेष अवस्था है।

मीनोंग के लिए इस धारणा का महत्व यही था कि इसने पूर्णतः नवीन दार्शनिक चिंतन की एक दिशा खोल दी थी। और यह दिशा थी पदार्थ सिद्धान्त' जिसे किसी भी प्रकृति विज्ञान के अन्दर समाहित नहीं किया जा सकता—तो भी वह किसी भी तरह से अनुभव शून्य और तत्त्ववादी नहीं है। इस नए दार्शनिक चिंतन को खोज निकालने का प्रयास जिनमें पदार्थ सिद्धान्त' संघटनवाद 'विश्लेषण' तार्किक भाषा शब्दार्थ विज्ञान (सिमैन्टिक्स) आदि हैं बीसवीं शती के दर्शन के मूलभूत अंग रहे हैं। इसका कारण ढूँढ लेना मुश्किल नहीं है। सामाजिक विज्ञानों के स्वतन्त्र रूप से विकसित हो जाने के फलस्वरूप अब दार्शनिक न तो मनोविज्ञान, और न राजनीति सिद्धान्त अथवा समाजशास्त्र पर ही अपना ध्यान केन्द्रित कर सकते थे और अपने निष्कर्षों को दार्शनिक कह कर विभूषित कर सकते थे। दूसरी ओर बहुत कम दार्शनिक, मैक्टैगर्ट के ज्वलंत अपवाद को छोड़कर यह स्वीकार करने को तैयार थे कि एक अनुभवेतर तत्वदर्शन की रचना करना ही उनका मुख्य कर्म था। अब तो लगने लगा था, कि दर्शन' का लोप होने वाला है। जैसा कि अधिकाधिक दार्शनिक यह विश्वास करने लगे थे कि सारा ज्ञान अनुभवजन्य है और तब क्या इससे यह अर्थ नहीं निकलता कि ज्ञान के सम्पूर्ण क्षेत्र का विभाजन विभिन्न प्रकार के प्रकृतिविज्ञानों को सौंपकर कर दिया जाना चाहिए ! इस तरह दार्शनिक प्रतिभाओं के संरक्षण की समस्या खड़ी हो गई और उनके लिए एक ऐसा क्षेत्र खोजा जाने लगा जो अनुभववादी हो ताकि तत्त्ववादियों के विरोधियों में भी अपना स्थान वे प्राप्त कर सकें और दूसरी ओर उनके उस चिंतनात्मक तकनीक की रक्षा हो सके जो दर्शन का मूल आधार रहा है और उन्हें प्रयोगशाला के तकनीक अपनाने की आवश्यकता न पड़े। पदार्थ सिद्धान्त इस नई माँग को संतुष्ट करने का प्रयास था। आखिरकार मनोविज्ञान की विवरणात्मक शाखा तो दर्शन शास्त्र नहीं था। इसकी खोज का अपना एक अलग क्षेत्र था–पदार्थ सिद्धान्त'।

मीनोग का कथन है कि कुछ पदाथ ही–केवल कुछ ही पदाथ–अस्तित्ववान हैं। उदाहरणाथ हरी पत्ती इस तरह अस्तित्वमान हैं। कुछ पदाथ अस्तित्व म न होते हुए भी सत्य है–उदाहरणाथ लाल और हरे का भेद ऐसा ही वास्तविक' भेद है किन्तु यह उस रूप म अस्तित्वशील नही है जिस रूप म एक लाल पुस्तक" एव 'लाल पत्ती का भेद अस्तित्व म है। कोई भी ऐस पदाथ जिनका अपने अस्तित्वो के कारण पारस्परिक सबध है और जो अधिक सूक्ष्म है वे अस्तित्ववन हैं, ऐसा कहना बहुत कठिन है और न ग्गे का अक ही अस्तित्व मे है यद्यपि वह सत्य ता है ही। इस तरह के वास्तविक पदाथ जो अस्तित्व की परिभाषा क अतगत नही लिए जा सकत कवल मात्र हैं (सबसिस्टिग) यहा कहा जाना चाहिए।

अस्तित्वशील एव भावशील (सबसिस्टेन्ट) के जरिए पदाथ के इस विभाजन मात्र स पदाथसबधी व्याख्या की समावनाए टूट नही जाती हैं क्योकि कुछ पदाथ उदाहरण क लिए गोल वर्गाकार, न तो अस्तित्वशील है और न भावशील। व होने के बाहर के क्षेत्र म हैं–[1] किन्तु व पदाथ तो हैं ही यह तो वास्तविक के पक्ष म हमारा पूर्वाग्रह है, जो हम गलत रूप से यह सोचने को प्रेरित करता है कि

---

[1] इन पदार्थों के स्तर का वणन करने का मीनोग का तरीका समय समय पर बदलता रहा। (बकौल फिडल की पूर्वोक्त कृति के) इस पर ब्रन्टानो की टिप्पणी के लिए द्रष्टव्य वानदर क्लासिफिकेशन के परिशिष्ट तथा द आब्जेक्टस आव थाटस" का मरणोपरान्त प्रकाशित पूरक लख। य दोनो साइकोलोजी के 1924–8 के सस्करण में सकलित हैं। ब्रेन्टानो क अनुसार हमार मस्तिष्क क सामन एसा कोई पदाथ नही रहता जिसमे अनस्तित्व का गुण हो। जब हम एक गोलाकार वग' के बारे म सोचते हैं तो कोई पदाथ हमारे चितन म नही आता, ऐसी स्थिति म केवल चितनशील मस्तिष्क ही वहा है पदाथ नही। इस प्रकार वे अपना यह पुराना दृष्टिकोण यो परिवर्तित करने को बाध्य हो जाते हैं जिसके अनुसार वे मानते थे कि चितन की क्रिया सदा किसी पदाथ क सम्बध को बताती है। यह परिवतन इसलिए जरूरी हुआ कि अन्यथा इसका अथ यह होता कि वहा कोई न कोई पदाथ अवश्य होना चाहिए। अब वे यह कहत हैं कि पदाथ का मस्तिष्क के साथ एक अधूरा सम्बन्ध होता है। इसस व यह बतलाना चाहत हैं कि कुछ मामलों म सिवाय मस्तिष्क के और कुछ मौजूद नही रहता। परन्तु ब्रेन्टानो क आलोचक कहते हैं कि उन्होन अधूरा सम्बन्ध इसलिए गढा है कि व दोनो विश्वो को इसम ले आयें, यह मान भी लें और न भी मानें कि मस्तिष्क और उसक पदार्थों म कोई भेद है। इसके द्वारा कार्टेजियन अन्तसिद्धात कि जिस पदाथ की स्वतन्त्र सत्ता है, और जो केवल मस्तिष्क म ही विद्यमान हैं, य दोनो अलग अलग हैं भी सिद्ध हो जाता है जिसे आधुनिक वस्तुनिष्ठावाद टालना चाहता है।

सभी पदार्थ उसी तरह वास्तविक होने चाहिए जिस तरह हरी पत्ती वास्तविक है। एक बार हम अपना यह पूर्वाग्रह दार्शनिक मन के अनुपयुक्त मानकर त्याग दें तो जाँच पड़ताल का एक विस्तृत क्षेत्र जिसमें पदार्थों के स्वरूप और उनकी विभिन्न वृत्तियों को जानने का मार्ग हमारे समक्ष चिरप्रतीक्षित भूमि की भाँति खुला हो जाएगा।

पदार्थों में व्याप्त भेदों में से एक भेद विशेष महत्व का है। यह भेद उन पदार्थों को व्यक्त करता है जो या तो वस्तुमूलक (आब्जेक्टिव) है या अवस्तुमूलक। सुविधा के लिए ऐसे पदार्थों को जिनका कोई आधार नहीं है, हम पदार्थ मात्र' की संज्ञा देते हैं। किन्तु एक पदार्थ मात्र जैसे एक सुनहरा पहाड़' अस्तित्वशील हो भी सकता है और नहीं भी किन्तु इसके संबंध में यह कहना निरी बकवास होगी कि आया वह स्थिति या एक तथ्य' है, अथवा नहीं। इसके विपरीत एक वस्तुमूलक पदार्थ जैसे 'सुनहरे पहाड़ों का अस्तित्व' का, अनुभूति के जरिए होना सिद्ध नहीं किया जा सकता, यद्यपि एक सूक्ष्म पदार्थ होने के कारण वह भावशील तो है ही। किन्तु तब भी वह या तो एक तथ्य है अथवा नहीं।

किसी 'वस्तु मूलक' की प्रकृति उस समय बड़ी सरलता से देखी जा सकती है जब हम उस पर किसी वाक्य के अर्थ के रूप में विचार करें न कि केवल उसके अभिधार्थ रूप में ही और न उस मानसिक क्रिया के रूप में जिसमें से वह प्रकटा है बल्कि यह देखकर भी कि वह क्या अर्थ व्यक्त करता है। यदि अब हम पूछें 'एक सुनहरा पहाड़ अस्तित्वशील नहीं है' यह वाक्य किस विषय के बारे में है? तो संभवतया इसका सबसे सुलभ उत्तर सुनहरा पर्वत' ही होगा और मीनोंग के मतानुसार, यह उत्तर समझ में आने योग्य तो है ही। और चूँकि यह बोधगम्य है, हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं, कि पदार्थ मात्र भी होते हैं। और वे यही हैं, जिन्हें वाक्यों अथवा शब्दों द्वारा मूर्त रूप मिल रहा है। लेकिन इस तरह यह तथ्य प्रकट नहीं होगा कि सुनहरा पहाड़' और सुनहरा पहाड़ अस्तित्वशील नहीं है,' में क्या अन्तर है? यह भेद मालूम करने के लिए हम यह मानने के लिए विवश होना पड़ेगा कि हमारा उपर्युक्त वाक्य सुनहरे पहाड़ों' के न होने के विषय में ही है, केवल उनके होने के विषय में ही नहीं है। और इस तरह हमें वस्तुमूलकों से पदार्थ मात्र का अन्तर करने के लिए विवश होना पड़ेगा।

यही बात दूसरे ढंग से भी कही जा सकती है—कि वस्तुमूलक हमारे निर्णय के उपकरण हैं, किन्तु बात पूर्णतः खरी (एक्यूरेट) नहीं है। क्योंकि हम बिना निर्णय के ही एक वस्तुमूलक के विषय में सोच सकते हैं। हम उसकी कल्पना कर सकते हैं। उसे अस्तित्वशील मानकर उस पर विचार कर सकते हैं—बिना उसे स्वीकृति या अस्वीकृति दिए। जबकि निर्णय करते समय ऐसा करना सम्भव नहीं।

मैं यह मान सकता [illegible] कि हिटलर अभी तक भी जीवित है। उसके जीवित होने के सम्बन्ध मे विचार कर सकता हू बिना यह स्वीकार, या अस्वीकार किये, कि वह वास्तव म जीवित है या नही। एक जीवित हिटलर के अस्तित्व का वस्तुमूलक उसी प्रकार होगा, जैसा उस समय होता जब मैं हिटलर के जीवित होने के बारे म कोई निर्णय देता। किन्तु यहा मानसिक क्रिया केवल इस बात को मान लेने से प्रारम्भ हुई है। यह कोई निर्णय' नही है। एक मान्यता (दे १९०२ म प्रकाशित निबंध ऑन सपोजल्स) निर्णय और बोधगम्यता के बीच की स्थिति है। एक प्रतिनिधिकरण की भाति यह न तो कुछ स्वीकार करता है और न कुछ अस्वीकार और निर्णय की तरह यह एक वस्तुमूलक की ओर गतिशील है।

वस्तुमूलक को इस प्रकार वर्णित करके हम बहुत तरह के प्रश्न पूछ सकते है। मीनोंग की दृष्टि मे मूल प्रश्न यह है कि यह तथ्य है अथवा नही। हम सबसे ऊपर जिस बात का ज्ञान हासिल करना चाहते है, वह यही है कि क्या यह एक तथ्य है कि हिटलर जीवित है ? किन्तु इसके अतिरिक्त हम इसके साथ ही यह भी तो पूछ सकते हैं कि यह अवस्था आवश्यक सम्भाव्य या सभव भी है अथवा नही? ये ही वस्तुमूलक के अग है, उस मानसिक क्रिया के नही—जो उस सम्बन्ध म लागू हुई है। यह कहना कि जीवित हिटलर का अस्तित्व एक सभावना है उस वस्तुमूलक के ही किसी अग की ओर सकेत करता है। उदाहरण के लिए इसका केवल यही अर्थ नही है कि हम उसके मर जाने' के प्रति सदेह है। वस्तुमूलक भी या तो सत्य अथवा दोषपूर्ण होते है।

सत्य मीनोंग की दृष्टि मे तथ्यात्मकता से दूसरे दर्जे पर है। सत्य म दो तरह के सदम होते है—पहला वस्तु मूलक की तथ्यात्मकता का दूसरा उसमे यह तथ्य है, कि किसी न किसी ने प्रस्तुत वस्तु मूलक के तथ्यात्मक होने को प्रमाणीकृत कर दिया है। एक वस्तुमूलक या तो तथ्यात्मक अथवा अतथ्यात्मक होता है और जब तक उसे वैसा सिद्ध नही कर दिया जाए तब तक उसका सत्य होना भी सिद्ध नही होता। यह एक तथ्य भी हो सकता है और नही भी कि हिटलर जीवित है। और इसका उस प्रश्न से कोई सरोकार नही, कि किसी ने हिटलर के जीवित होने को सिद्ध किया है या नही। किन्तु यह कहना कि उसका जीवित होना सत्य है यह सिद्ध करेगा कि किसी न किसी ने अवश्य ही हिटलर को जीवित देखा है क्योंकि सत्य उतने ही समय तक रहेगा जिस समय तक मानव जाति जीवित रहेगी जबकि तथ्य इस प्रकार मानवजाति के आधार के मुह जोही नही है। ऐसी बहुत सी बातें जिन्हे दार्शनिकों ने शाश्वत सत्य मानकर कही हैं वे सब तथ्यो के विषय मे कही हुई बातें ही है।

तब हम किस प्रकार एक वस्तु मूलक की तथ्यात्मकता की पहचान करेंगे ? मीनोंग का उत्तर है कि हमारे कुछ निर्णय एक विचित्र प्रकार के होते हैं और ये

गवाह अथवा साक्षी" प्रस्तुत करते हैं। ये निर्णय उन वस्तु मूलकों की ओर निर्देशित कर दिए जाते हैं, जो तथ्यात्मक होते हैं। गवाह निर्णय का मूलभूत अंग है। देकार्ट के विशदता एवं एकपरकता (डिस्टिंक्टनेस) के सिद्धान्त से वे काफी मेल खाते हैं। मीनोंग यह नहीं कहना चाहते कि वस्तु-मूलक उसी समय तथ्यात्मक होते हैं, जब सामान्यतया उनके गवाह हमारे पास हों। ऐसे गवाह, किन्हीं अन्य तथ्यों की ओर इंगित करेंगे और फिर यह प्रश्न बना रहेगा कि हमने यह कैसे जाना कि वे तथ्य हैं। यह बाधा उस समय हटाई जा सकेगी, जब हमारे कुछ निर्णय अपने आप ही साक्षी भी प्रस्तुत करें।

मीनोंग के दृष्टिकोण के विषय में, इस संबंध में तो काफी कहा जा चुका है कि किस प्रकार उनकी विचारधारा ने ब्रितानी दार्शनिकों का ध्यान आकर्षित किया चाहे यहाँ उनकी सूक्ष्मता एवं अन्तरंग दृष्टि के प्रति हम न्याय न कर सके हों। पहले स्थान पर उनके द्वारा तथ्यों, वस्तुओं, अंशों, समष्टियों, संबंधसूचकों, भाव भेदों आदि की वस्तु मूलकता बड़े ही अच्छे ढंग से मीनोंग द्वारा चर्चित हुई है। इनमें किसी को भी मन का अंग नहीं माना गया है, जो इनका विचार करता है और उन्हें स्वीकृति देता है। लेकिन दूसरे स्थान पर तो यह वस्तुपरकता बड़ी कीमत देकर कायम रखी गई है। ऐसा लगता है यह ब्रह्माण्ड विभिन्न निर्मायिका शक्तियों द्वारा बना है और उनमें विचित्रतम धातुएँ हैं। उदाहरण के लिए यह इस तथ्य को अपने में समाहित करता है, कि 'सुनहरे पहाड़" सुनहरे होते हैं। और इसके साथ ही यह तथ्य कि वे अनस्तित्वशील हैं उसी तथ्य के समान कि मनुष्य मरणशील हैं। इसके कुछ मूलभूत तो अस्तित्वशील है किन्तु वे बिना अस्तित्व के ही सत्य हैं और कुछ अन्य ऐसे हैं जो न अस्तित्वशील ही हैं और न सत्य ही। दार्शनिक लोग यह पूछते हैं कि क्या यह संभव था कि आत्मपरकता को इन विचित्र और अविश्वसनीय परिणामों पर पहुँचने के पूर्व ही खण्डित किया जा सके ?

जिसे हम निर्णय का सामान्य सिद्धान्त कह सकते हैं उसके अन्तर्गत कुछ ऐसे निर्णय आते हैं, जिन्हें वैयक्तिक मन के इतिहास की घटना समझी जाती है। ऐसे शब्द भी हैं जिनसे अभिव्यक्ति मिलती है और ऐसा एक संसार भी है जिसमें निर्णय या तो विचार उत्पन्न करते हैं या बाधा डालते हैं अथवा उन्हें एक साथ बाँध देते हैं। इसी अन्तिम बिन्दु पर प्रमुख विवाद खड़ा हुआ है किन्तु यह एक वस्तु मूलक मानसिक क्रिया ही है। न शब्दों का सम्मिलित रूप है और [illegible] आवश्यक रूप से एक तथ्य ही है। यदि एक ही उदाहरण लें जेम्स ने जिसके विरोध में तत्काल आवाज उठाई थी निश्चय ही सत्य किसी तीसरे जगत में निवास नहीं करता जो वास्तविकता, कथनों और विश्वासों से अलग कहीं हो।' (उन्होंने अपने एक साथी को लिखे पत्र में यह व्यक्त किया था) मैं चाहता हूँ कि तुम इस प्रकार की मान्यता (सपोजल) के भद्दे नारों को भूल जाओ जिन्हें तुम्हारे ऊपर मूक

मीनाग ने तथा उसके अ ग्रेजी अनुयायियो न डान रखा है। मीनाग क अग्रेजी अनुयायी इस प्रकार कहग कि कम से कम मीनोग ने ना महत्वपूरण और अवहलना-प्राप्त तथ्यो को प्रबल रूप म स्थापित किया है। हमारा विश्वाम काई मानसिक घटना नही है और चू कि यह सही अथवा गलत होसकता है यह एक सत्य नही है। लेकिन इसके साथ ही जेम्म द्वारा प्रस्तुत तीसरे जगत के विचार से वे भी बतरतीब ढग से नाराज हुए थे।

एडमण्ड हुसल[1] के सघटनवाद म भी ब्रे ण्टानो का प्रभाव देखा जा सकता है। किन्त इस सबध म कि उन पर वह प्रभाव किस तरह का रहा है आज भी लागो म परस्पर मतभेद है। अपने विद्यार्थी जीवन के दौरान जब व मसारिक और ब्रे ण्टानो क सरक्षण म काय कर रह थे उस समय भी उनका आवासस्थान जमनी था, आस्ट्रिया नही। और हम दखेग कि धीरे धीर व जमन प्रत्ययवादी परम्परा की ओर किस प्रकार लौटने लगे थे। उन पर आरम मे कुछ दिनो तक ब्रिटानी अनुभववाद का महत्वपूरण प्रभाव रहा था। हुसल की आरभिक रचनाओ म ब्रे ण्टानो का वह प्रभाव काफी स्पष्ट है।

मीनोग की ही भाति हुसल भी ब्रे ण्टाना द्वारा की गई मनोविनान की इस मोहयुक्त व्याख्या से असहमत थ कि वह सर्वोच्च विनान है। १८६१ मे प्रकाशित उनकी पहला महत्वपूरण कृति फिलोसोफी आव अरिथमेटिक मे उन्होने गणित के सूत्रो का मनोवैज्ञानिक सिद्धान्ता के जरिए उपयोग किए जा सकन की सभावना बताई है और उन्होने उनका सबध, तकशास्त्र मे तो समुचित ढग से जोड ही दिया है। लकिन उन्होन यह प्रोजक्ट शीघ्र ही त्याग दिया। 1900-1901 म प्रकाशित

---

[1] एम० फारबर कृत द फाउण्डेशन्स आव फिनोमेनोलोजी एडमण्ड हुसल एण्ड द क्वेस्ट फोर ए रिगरस फिलोसोफी (1943) एव 1940 मे सकलित फिलोसोफीकल ऐसेज इन मेमोरी आव एडमण्ड हुसल आर०आई०पी० का हुसल विशेषाक (1939) और उसम प्रस्तुत पुस्तक सूची जरनल आव फिलोसोफी मे प्रकाशित निबध (1939), नाआर्के द्वारा प्रस्तुत आइडोन का माइण्ड म प्रकाशित रिव्यू (1914), जी० रा ल एच० होजज एच० एकटन द्वारा पी० ए० एस० एस 1932 म प्रकाशित फिनोमेनोलोजी, डब्लू आर डी गिबसन कृत द प्रोबलेम आव रीयल एण्ड आइडियल इन फिनोमेनोलोजी आव हुसल मा ण्ड 1915) जे० मक स्टीवर्ट कृत हुसलस फिनोमेनालोजी ए० जे० पी० 1933-4, ए० चण्डलर कृत प्रोफसर हुसलस प्रोग्राम आव फिलोसोफीकल रिफोम (पी० आर० 1917), सी वी सलमन कृत द स्टार्टिग पोइण्ट आव हुसल्स फिलोसोफी (पी० ए० एस० 1929), पी० पी० आर० म 940 म प्रकाशित निबध ई० पी० वल्स कृत द फिलोसोफी आफ एडमण्ड हुसल (1939), एट्यूडस फिलोसोफीक्स नामक पत्रिका का हुसल विशेषाक (1954 ।

उनकी कृति लोजीकल इन्वेस्टीगेशन्स के प्रथम भाग में विद्यमान प्रोलेगोमेना टू प्योर लोजिक विशेष रूप से मनस्तत्त्ववाद के विरोध में एक सुनियोजित कृति है। उनकी इस कृति में तार्किक और गणित संबंधी निष्कर्षों को मनोवैज्ञानिक प्रमेयों पर खड़ा किया गया है।[1]

अब विशेषतः मिल को इस विघटन के लिए जिम्मेदार ठहराया जाता है। यह सब उनके द्वारा तर्कशास्त्र के लिए अपनायी गई मनोवैज्ञानिक दृष्टि ही थी, जिस पर हुसल अब प्रहार करते हैं—[2] अपनी पुस्तक सर विलियम हेमिल्टन्स फिलोसोफी

---

[1] जहा तक गणित का ताल्लुक है, इस प्रतिक्रिया में त्साइतश्रिफ्ट फ्यूर फिलोसाफी उन्द फिलोक्रिटिक (1894) में निकले फ्रेग के समीक्षण का भी हाथ था। फाबर ने माना है कि हुसल ने अपने आपको मनस्तत्त्ववाद से मुक्त करने में विलियम जेम्स से भी सहायता प्राप्त की। शायद जेम्स द्वारा द प्रिंसिपल्स ऑव साइकोलोजी में लिखे गए अध्याय 'नेससरी ट्रूथ्स' की ओर संकेत है, जिसमें मिल और स्पेन्सर के विपरीत जेम्स मानते हैं कि 'तर्कशास्त्र और गणित की मुख्य विषय-वस्तु है हमारे विचार के विषयों के बीच आदर्श एवम् आन्तरिक सम्बन्ध।' हुसल ने अक्सर मनस्तत्त्ववाद की नटॉप कृत आलोचना का हवाला भी दिया है, जो नेटॉप के द ऑब्जेक्टिव एण्ड सब्जेक्टिव फाउण्डेशन्स ऑव नॉलेज शीर्षक लेख में (फिलोसोफीश मोनातशेफ्ट 1887 में प्रकाशित) मिलती है। नेटॉप और हुसल में समानता के लिए द्रष्टव्य, फाबर की उपयुक्त कृति।

[2] जर्मनी में मनस्तत्त्ववाद के स्थापन का श्रेय जे. एफ. फ्राइज को दिया जाता है जिन्होंने न्यू क्रिटीक डर वर्नुफ्ट (1807) जैसी कृतियों में नवकान्तवाद की एक नई किस्म को जन्म दिया। इनमें 'क्रिटिक' पद्धति अनुभववादी मनोविज्ञान की ही प्रणाली मानी जाती है। यह प्रणाली इसकी जाँच करती है कि कौन से कथन आवश्यक हैं। (इस आवश्यकता का औचित्य सिद्ध करने की जरूरत नहीं है, ऐसा फ्राइज मानते हैं।) लियानार्ड नेल्सन के नेतृत्व में नव फ्राइजियन दल ने इस शताब्दी के प्रारम्भ में फ्राइज का पुनरुत्थान किया। (नेल्सन की कृतियों के आंशिक अंग्रेजी अनुवाद सोक्रेटिक मेथड एण्ड क्रिटिकल फिलोसोफी 1909 नाम से छपे हैं।) नेल्सन ने अपने ग्रन्थ ऑन द सो काल्ड प्राब्लेम ऑव नोलेज में मनस्तत्त्ववाद पर हुसल के आक्रमण का जवाब दिया। उनका तर्क है कि मनस्तत्त्ववाद के कथनों से हम आवश्यक कथनों को नहीं छाँट सकते किन्तु मनस्तत्त्ववादी जाँच द्वारा उन्हें जाँच अवश्य सकते हैं क्योंकि उनमें से बहुत से संज्ञान (काग्नीशन) के रूप में छिपे रहते हैं। मनस्तत्त्ववाद के विरुद्ध हुसल के तर्कों से ब्रेन्टानो भी सन्तुष्ट नहीं थे। उन्होंने कहा है— ज्योंही कोई दार्शनिक यह नाम सुनता है वह राम राम जपने लगता है गोया यह बात कोई भूत-बाधा हो। यदि मनस्तत्त्ववाद का अर्थ 'व्यक्तिनिष्ठावाद' (सब्जेक्टिविज्म) है तो इस भूतबाधा मानने को ब्रेन्टानो तैयार हैं, किन्तु वे मानते हैं कि ज्ञान एक निर्णय है और निर्णय मस्तिष्क के क्षेत्र की चीज है।' (मनस्तत्त्ववाद पर उनका निबन्ध उनकी कृति साइकोलोजी, 1911, के ग्यारहवें परिशिष्ट में देखें।

मे मिल न तकशास्त्र क विषय मे यह लिखा है कि जहा तक तकशास्त्र का एक विज्ञान होने का प्रश्न है निश्चय ही उसक लिए उसे सद्धान्तिक आधार, मनोविनान म उधार लेन होंगे। हुसल इस बात पर आपत्ति करते हैं कि मनोवनानिक नियम आगमनात्मक सामा यीकरण से अधिक कुछ नही है। यही बात काट ने क्रिटीक आव प्योर रीजन म पहले से ही अपने समय के मन –तकवाद की आलोचना करत समय लिख दी थी और इसी कारण, आगामी अनुभवो से सुधार लिए जाने का सभावना लिए रहते हैं जबकि तार्किक और गणित सबधी सिद्धान्त आवश्यक' हैं। उनका सत्य' होना आवश्यक है, और इसी कारण उ हे आगमन द्वारा प्राप्त प्रमेयो पर आधारित नही माना जा सकता। हुसल का नियसिवाद और उसके द्वारा तक शास्त्र के नियमो तथा गणित के मूलभूत सिद्धान्तो की सुरक्षा क उत्तरदायित्व न उ हे एक विशुद्ध तकशास्त्र की रचना करन की ओर प्रेरित किया, जो एक मात्र अनुभव सिद्ध अवस्था एव मनोवज्ञानिक प्रमेयो से मुक्त था और इस तरह दोषयुक्त होन के सभी खतरो मे सुरक्षित था।

इस तरह की योजना इससे पूव प्रतीकवादी तकशास्त्रियों द्वारा प्रस्तुत की जा चुकी है। अपनी शिक्षा से हुसल एक गणित–शास्त्री थे और सभवत ऐसी आशा भी की जा सकती थी कि व उनस सहयोग करेंगे किन्तु वास्तव मे व नवीन तकशास्त्र क बडे आलोचक थे–और वह भी उस तकशास्त्र के जो आदर की रचनाओ म प्रदर्शित हुआ है। इस प्रकार का तकशास्त्र ऐसी धारणाओं स काम चला लता है, जि हे कभी भी परीक्षित नही किया गया है। काण्ट क मतानुसार तो इस प्रकार का दृष्टिकोण कोई स तोषप्रद आलोचना ही प्रस्तुत करने मे अनुपयुक्त है। यह अपनी ही काय प्रणाली के आधारभूत तत्वो की जाच भी नही करता। अधिक से अधिक यह हमे एक विशिष्ट मागदशक उपलब्ध करवा सकता है–जो हम एक विशिष्ट प्रकार की समस्या क विशिष्ट प्रकार के समाधान द सके। कि तु विशुद्ध तकशास्त्र को इससे भी आगे जाना आवश्यक है। यह तो प्रत्येक समा य आगमन को तथा प्रत्येक प्रकार की तार्किक युक्तियो को अपने मे समेट लेन वाला एक सिद्धान्त होना चाहिए। इस तरह यदि हुसल मिल के मनोविनान म ही तकशास्त्र का आधार खोजने की बात का विरोध करते हैं तो वह यह निष्कष लने क लिए कतई तैयार नही है कि तकशास्त्र एक स्वय पर्याप्त प्रणाली है जिसकी आधार भूमि उसकी आन्तरिम सगति ही है।

लौत्जे द्वारा प्रतिपादित तकशास्त्र का सिद्धा त उनकी विचारधारा एव रुचि के अनुकूल था। लोज का विचार था कि तकशास्त्र, विचार सम्ब धी एक आदश प्रस्तुत करता है और इस आदश मे प्रत्यक प्रकार की जाच पडताल किसी न किसी रूप मे लागू हो सकती है। इसी प्रकार हुसल विशुद्ध तकशास्त्र की परिभाषा आदश सिद्धान्तो की एक ऐसी वनानिक प्रणाली कहकर देते हैं जो विशुद्ध रूप

में उन मौलिक धारणाओं पर आधारित है, जो प्रत्येक *विज्ञान का अंग बन गई हैं।* ये ही वे धारणाएँ हैं जिनके कारण ही सामान्य रूप से आज विज्ञान को विज्ञान मानने की सुविधा हो सकी है। ये प्रत्येक प्रकार के तर्क में निहित हैं। इस तरह तर्कशास्त्र का न तो आगणन से ही उस प्रकार का तादात्म्य है जिस प्रकार प्रतीकवादी तर्कशास्त्र का है और न अनुभववादी विज्ञान की उस विवरणात्मक विधि से ही उसका कोई संबंध है, जिस से *आगमनात्मक तर्कशास्त्रियों का संबंध* रहा है।

प्रतीकवादी एवं आगमनात्मक तर्कशास्त्र का मूल्य अपने ही क्षेत्र में हो सकता है और उसी प्रकार विचार की प्रक्रिया में मनोवैज्ञानिक अध्ययन का भी महत्व हो सकता है लेकिन वे मुख्यतः तर्कशास्त्र के क्षेत्र से नहीं आते क्योंकि हुसल के अनुसार उनमें अपेक्षित निश्चयावस्था एवं सामान्यीकरण की स्थितियों का अभाव है।

एक विशुद्ध तर्कशास्त्र, संघटनात्मक विधि के उपयोग की मांग करता है। कई बार तो हुसल ने संघटनवाद को, विवरणात्मक मनःविज्ञान की संज्ञा दी है और उनका यह प्रयास कि वे इनके उपयुक्त कोई पद ढूंढ निकालेंगे हुसल और ब्रेण्टानो के बीच एक ऐतिहासिक कड़ी जोड़ने का काम करता है। लेकिन फिर भी उन दोनों में *एक बहुत बड़ा अंतर है। अपने एवं ब्रेण्टानो के बीच के अंतर को वे एक* विवरणात्मक मनोविज्ञान का भेद मानते हैं। ब्रेण्टानो के लिए विवरणात्मक मनोविज्ञान, केवल आनुभविक जांच पड़ताल है। इसके विपरीत, हुसल का संघटनवाद न तो प्रकृतिविज्ञान का आधार ही ग्रहण करता है और न वह यह विधि ही अपनाता है, क्योंकि उनके अनुसार न तो इस प्रकार की विधि से और न वैज्ञानिक दृष्टि से ही, विशुद्ध तर्कशास्त्र तक पहुंचना संभव है। क्योंकि ये अनुभव तथ्यों के अतिरिक्त किसी स्वतंत्र सिद्धान्त की संभावना को व्यक्त नहीं करते।

निश्चय ही इस प्रकार के विशुद्ध एवं अनुभव-निरपेक्ष (नान इम्पीरीकल) तर्कशास्त्र की संभावना अपने आप में ही चुनौती का विषय है। इस सिद्धान्त का खण्डन, उन ऐतिहासिकता में विश्वास करने वाले महानुभावों द्वारा हो चुका था जिनका कहना था कि कोई सत्य एक विशिष्ट कालावधि में मनुष्य द्वारा विश्वास के लिए स्वीकृत अवस्था के अतिरिक्त और कोई स्थिति है ही नहीं और हुसल द्वारा लिखित प्रोलेगोमेना टू लोजिक में इसीलिए ऐतिहासिकता अथवा सांस्कृतिक तारतम्य (कल्चरल रिलेटिविज्म) है। थियेटटस में प्लेटो की भांति हुसल यह कहते हैं कि इन तारताम्यवादियों के खण्डन का तरीका ही कुछ ऐसा है जिसमें पहले से ही अंतिम सत्यों के स्वीकार करने की ध्वनि आती है। यदि उनके ही सिद्धान्त को सामने रखा

जाए तो इन तारतम्यवादियों को इसे अन्तिम सत्य मानना ही पड़ेगा।[1]

इसके दूसरी ओर, अनुभववादी भी विशुद्ध तर्कशास्त्र के विचार का खण्डन करते हैं और उनको दिया गया हुसर्ल का उत्तर हमें उनके सिद्धान्त के मूल में ले जाता है। परम्परागत अनुभववाद की दृष्टि से हम सीधे रूप में केवल विशिष्ट अस्तित्वों से ही परिचित हो पाते हैं। इसलिए कोई भी सामान्य सिद्धान्त उन्हीं अनुभवों के आधार पर निर्मित होना चाहिए यदि उसे किसी भी भाँति अनुभव द्वारा दिए गए तथ्यों से कोई संबंध रखना है। एक अनुभव निरपेक्ष सिद्धान्त इस तरह केवल वैचारिक बुनावट के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकता। हुसर्ल केवल मात्र इस मान्यता का खण्डन करते हुए कहते हैं कि हम सीधे रूप से केवल विशिष्ट अस्तित्वों से ही परिचित हो पाते हैं। १९१३ में प्रकाशित अपनी पुस्तक आइडियाज फोर अ प्योर फिनोमेनोलोजी एण्ड फिनोमेनोलोजीकल फिलोसोफी में उन्होंने अपने दृष्टिकोण का साराश बताते हुए कहा है कि सत्य तो यह है कि प्रत्येक आदमी प्रत्ययों अथवा सारतत्वों (एसेंसेज) को देखने लग जाता है और निरंतर उन्हें देखता रहता है। ये प्रत्यय या सारतत्व उस समय भी उसके साथ लगे रहते हैं जब वह विचार कर रहा होता है और इस तरह ये लोग बिना सोचे समझे इन्हीं के आधार पर निर्णयों पर पहुँच जाते हैं। किन्तु सैद्धान्तिक दृष्टि से लोग ऐसी व्यवस्था से बचने की ही कोशिश करते हैं।

वे अपनी इस बात को ह्यूम की पुस्तक ट्रीटीज का उदाहरण देकर प्रस्तुत करते हैं। जब ह्यूम मानसिक क्रियाओं का श्रेणीकरण कर रहे होते हैं और उसके अन्तर्गत प्रत्यक्षीकरण, स्मरण करने एवं कल्पना करने की क्रियाओं की चर्चा करते हैं तो उस समय वे प्राकृतिक पदार्थों की अस्तित्वशील एवं अनस्तित्वशील अवस्था का सन्दर्भ ही नहीं देते केवल उसे उदाहरण के रूप में ही प्रस्तुत कर देते हैं। प्रत्यक्षीकरण क्रिया का विवरण वे प्रभाव ग्रहण करने जैसे पर्यायों से देते हैं 'भौतिक पदार्थों के अमुक अमुक गुणों का अनुभव" यह विवरण नहीं देना चाहते। इस तरह ह्यूम इस बात का संकेत दे देते हैं कि प्रत्येक प्रकृतिविज्ञान के निष्कर्षों से बचकर भी किस प्रकार सिद्धान्त बनाया जा सकता है। वे केवल देखने की क्रिया की

---

[1] सन्दर्भ जॉन वाइल्ड कृत निबन्ध हुसर्ल्स क्रिटीक आव साइकोलाजिज्म इट्स हिस्टोरिक रूट्स एण्ड कण्टेम्पोरेरी रेलेवेन्स (फिलोसोफीकल ऐसेज इन मेमोरी आव एडमण्ड हुसर्ल सम्पादक एम फोयर)। हुसर्ल के इन तर्कों का, जो सूक्ष्म एवं गहन हैं विस्तृत अध्ययन करने के लिए भी वह पुस्तक देखें। इसी से उनकी तुलना प्लेटो से की गई है। वाइल्ड समसामयिक अमरीकी यथार्थवादी विचारधारा के एक समुदाय के नेता हैं जो सारतत्वों एवं समष्टियों की व्याख्या में हुसर्ल का अनुसरण करते हैं। द्रष्टव्य द रिटर्न टू रीजन (1953–सम्पादक–वाइल्ड)

मूल प्रकृति अथवा उसके सारतत्वों (एसेंसेज) की ओर ही हमारा ध्यान खींच पाने में सफल होते हैं। इस सम्बन्ध में कोई भी परीक्षण और न कोई भौतिक दृष्टि ही उनकी इस विधि से कोई संगति रखती है जिसके जरिए संभवतः इसे सिद्ध अथवा खण्डित किया जा सके। ह्यूम इसका कदाचित यह जवाब दें कि वे एक भौतिक विज्ञानशास्त्री नहीं होकर मनोवैज्ञानिक हैं। लेकिन हुसर्ल का कथन है कि यदि हम उनके द्वारा अपनायी गई विधि पर गौर करें, तो हम पाएंगे कि वे किसी भी अनुभववादी मनोवैज्ञानिक की ही भांति न तो केस हिस्ट्री की ही जांच करते हैं और न तुलनात्मक पर्यवेक्षणों का संदर्भ ही प्रस्तुत करते हैं, न ह्यूम अन्तर्दर्शन (इन्ट्रोस्पेक्शन) में ही कभी उस तरह निरत होते हैं, जैसे एक अनुभववादी मनोवैज्ञानिक हुआ करता है। क्योंकि जब ह्यूम अपने ही मन की जांच करते हैं तो वे किसी साक्षी की खोज नहीं करते जिससे अनुभवजन्य सामान्यीकरण की जांच की जा सके और न यह उनका उद्देश्य ही है कि वह मानसिक क्रिया का एक विशिष्ट नमूना प्रस्तुत करें। उनका उद्देश्य तो प्रत्यक्षीकरण की क्रिया के सारतत्व का यथावत् ग्रहण करना है, न इससे कुछ ज्यादा, न कम। हुसर्ल यह भी स्वीकार करते हैं कि यह करने के लिए ह्यूम को कुछ विशिष्ट प्रत्यक्षीकरण की क्रियाओं पर विचार करना पड़ा था, किन्तु उस क्रिया से संबंधित विशिष्टता का कोई मेल उनकी चेतना से नहीं था। उनका ध्यान तो मूलतः उस क्रिया के दौरान प्रदर्शित हो जाने वाले सारतत्व में ही लगा रहा।[1]

इस पर भी यदि ह्यूम की इस तत्व संबंधी धारणा को सही मान लिया जाय कि हमारे सारे अनुभव विशिष्ट अवस्थाओं को लेकर ही होते हैं जैसे कि उन्होंने अपने ग्रंथ ट्रीटीज में स्थापित भी की है तो भी हुसर्ल के अनुसार उनकी प्रणाली दुर्बोध ही रहेगी। ह्यूम अपनी ही मान्यताओं के कारण इतने दृष्टिकोणहीन हो गए हैं कि वे जो कुछ करने जा रहे हैं, उसके फल को देख नहीं पाते। वे इस भ्रम के शिकार हो जाते हैं, कि वे एक अनुभववादी मनोवैज्ञानिक हैं, जबकि वास्तव में वे विशुद्ध रूप से मन के संघटनात्मक विश्लेषण में ही निरत रहते हैं और विभिन्न मानसिक क्रियाओं के सारतत्वों का सीधा अन्तःसाक्ष्य करते होते हैं। इसी तरह स्वयं ओढ़ी हुई दृष्टिहीनता ही दार्शनिकों को यह ज्ञान करने से वंचित रख देती है, कि जितनी बार भी वे अंकों का परीक्षण करते हैं, वे उन्हें सामान्य धारणाएं मानकर चलते हैं अनुभव से जानकर सामान्यीकृत करने की बात स्वीकार करके

---

[1] तुलना के लिए देखें, जी राईल द्वारा प्रस्तुत अपनी रचनाओं का विवरण, द कंसेप्ट आव माइण्ड (1949)। इसे धारणाओं की तार्किक भूमि निर्धारित करने का श्रेय दिया गया है। देखें, जी बर्जर द्वारा लिखित हुसर्ल एण्ड ह्यूम (आर० आई० पी० 1939) एवं सी० वी० सेलमन कृत द सेन्ट्रल प्रोब्लेम आव डेविड ह्यूम्स फिलोसोफी (1929)

नहीं और इसके अतिरिक्त भी दैनन्दिन जीवन का यह सामान्य अनुभव था, कि ये वस्तु लाल है—इस तरह की सामान्य गुणात्मकता के प्रति अन्त साक्ष्य का भाव रखता है जो उसका सारतत्व' होती है। प्रत्येक उल्लेखनीय दर्शन को तत्ववादी मान्यताओं से अपने को अलग कर लेना चाहिए। उसे तो सामने प्रस्तुत हुई स्थिति की ही जाँच पड़ताल करनी चाहिए और किसी भी भाँति सीधे रूप से प्राप्त हो सकने वाले सारतत्व संबंधी अनुभवों से उन तत्ववादी कल्पना में पड़कर मार्गान्तरित नहीं होना चाहिए। 'संघटनवादी" होने की यही पहली शर्त है कि उपयुक्त सतर्कता बरती जाए।[1]

हसर्ल की कृति लोजीकल इन्वेस्टीगेशन्स की रचना इस तरह पूर्व धारणाओं से रहित पूर्व वैज्ञानिक एवं संघटनवादी दृष्टि से हल निकाल लेने का प्रयास है। और चूँकि उपर्युक्त कृति, विशुद्ध रूप से तार्किक है इसलिए उसका प्रकृति विज्ञानों से पूर्व होना तथा उनका अनुसरण न करना जरूरी हो जाता है। ब्रेण्टानो के सिद्धान्त की भाँति उनकी ये जाँच पड़ताल भी काफी जटिल है और सूक्ष्म भी, विशदीकरण से भरपूर है। अपनी दार्शनिक शैली, विषय चुनने की क्रिया एवं सिद्धान्त-प्रकटन की क्षमता के कारण उन्होंने बीसवीं शताब्दी में प्रकाशने वाली ब्रितानी विचारधारा का जैसे एक प्रारूप दे दिया था। इसलिए उनकी विचारधारा के मूल बिन्दुओं का सार प्रस्तुत करना असम्भव है।

हसर्ल की रुचियों एवं उनके दृष्टिकोण को समझने के लिए हमें प्रारम्भ से उनकी इन रचनाओं का अध्ययन करना होगा। एक्सपेरिएन्स एण्ड मीनिंग यूनिवर्सल्स एण्ड एब्स्ट्रैक्शन, द अनालिसिस आव होल एण्ड पार्ट, द आइडिया आव ए प्योर ग्रामर[2] एवं एक्सपीरिएन्स एण्ड कण्टेण्ट आदि।

हमेशा की भाँति उनका मूल उद्देश्य यह प्रकट करना था कि अनुभववाद असमीचीन है। वे कथन के दो रूपों का इस प्रकार विभाजन करते हैं—किसी व्यक्ति विशेष के जीवन घटना से संबंधित कथन तथा वह आशय जो कोई व्यक्ति किसी कथन के माध्यम से व्यक्त करना चाहता है, इस पर भी यह संभावना तो रहती ही है कि दो व्यक्ति एक ही आशय का कथन व्यक्त करें—उस समय उनमें फर्क केवल शब्दों पर दिए गए बल उच्चारण की उसकी विधि और आवाज के भारीपन

---

[1] सर्वप्रथम उनका प्रकाशन 1901 में हुआ था। लेकिन हसर्ल ने आंशिक रूप से 1913 में उसे दुबारा लिखा था, ताकि उनकी बाद की विचारधारा से भी वे मेल खा सकें। इस पुस्तक के पश्चात् उनकी धारणाओं में और भी विकास होता रहा है।

[2] इस बात का विटिंगस्टीन पर शायद कुछ प्रभाव पड़ा हो कम से कम तार्किक व्याकरण का विचार तो इसमें प्रचलित ही था।

आदि से सबधित हो सकता है। यहा आकर हुसल पूछते हैं कि क्या अनुभववादी इस बात का स्पष्टीकरण दे सकते हैं कि किस प्रकार दो कथन अपने आशय म एक ही भाव प्रस्तुत कर सकते हैं? अपने सामान्य नामकरण के सिद्धात पर कदाचित् अनुभववादी को यह कहना पडे कि आशयो का तादात्म्य कदाचित् इसके कारण प्रस्तुत हुआ है कि दोनो कथन कुछ अशो मे एक जसे ही हैं, लकिन हुसल आपत्ति प्रस्तुत करते हुए कहते है कि यदि हम समानताए ढूढने लगें तो इन प्रस्तुत कथनो म केवल स्वराघातो म ही समानता मिलगी और यह समानता दो कथनो के बीच रही विशेष घटना क कारण ही सभव है। हम किसी भी प्रकार तार्किक रूप से एक सूत्र क बाद दूसरे सूत्र के जरिए कभी भी इन दो कथनों की तुलना स प्राप्त समान आशयो तक पहुच पाने म असमथ हो जाएगे। बस केवल उनके कहे जाने की समानता के अतिरिक्त हम और क्या पाएगे?

हुसल का कहना है कि किसी कथन का अथ समझने के लिए सीधी अत दृष्टि होनी चाहिए और इससे यही अथ निकलता है कि अथ अथवा आशय' एक ऐसी अवस्था है, जिसके विषय मे विशेष अनुभवो से उत्पन्न ज्ञान को ही मूल आधार मानने वाले अनुभववादी कोई स्पष्टीकरण नही दे सकते। तो भी विज्ञान के लिए सार्थकता का होना आवश्यक है। इसलिए एक महत्वपूर्ण बिन्दु पर आकर अनुभववाद रुक जाता है। (यह एक निष्कष था जिसके विरुद्ध बहुत से हुसल क अनुयायी भी विवाद करते रहे थे। "तार्किक वस्तुस्थितिवादी" विचारकों ने तो इस प्रकार के निष्कष के विरोध का बीडा उठा लिया था और उसका उत्तर उन्होंने अनुभववादी आशय के सिद्धात का विकास करके दिया।)

आशय' के अपने विश्लेषण स हुसल यह निष्कष निकालते हैं, जिसे वे बाद तक कायम रखना चाहते रहे कि तक अतदृष्टि पर आधारित है मनस्तत्ववादियों की तरह अनुभवजन्य सामान्यीकरण पर नहीं। क्योकि तक का सबध कथनो के आशय स अधिक है। केवल मात्र व्यक्तिगत रूप स कह दिये गये निरथक कथनों म नही। दूसरे शब्दो म बोल्जानो[1] के अनुसार यह तककथनो (प्रोपोजीशन्स) का

---

[1] बी० बोलजानो एक पादरी थे और प्रेग म धमदशन के व्याख्याता थे। 1819 म उन्हें राजनीतिक कारणो स वहा स पदच्युत कर दिया गया किन्तु इनका सबसे महत्त्वपूण काय तकशास्त्र एव गणित दशन पर हुआ है। इग्लण्ड में वे अपनी कृति द पराडोक्सेज आव इनफिनिट (1851 म मरणोपरान्त प्रकाशित) के कारण काफी विख्यात रहे। रसेल न भी कई बार द प्रिंसिपल्स आव मैथेमेटिक्स म इसका सन्दभ प्रस्तुत किया है। किन्तु 1837 म प्रकाशित उनकी कृति विसेन्स चेफ्टसलेहर म तकशास्त्र सम्बन्धी उनका योगदान महत्त्वपूण है, और हुसल ने भी इसी कारण उन्हें सवश्रेष्ठ तकशास्त्रियों म स एक माना है। इस पुस्तक म बोलजानो ने, हुसल की ही भांति विशुद्ध तकशास्त्र की स्थापना करने का प्रयास किया है

सिद्धान्त है और उन विभिन्न कथनो एव निणयो को परस्पर जोड देता है, जिन्हे हम 'समानार्थक' मानते हैं। हम इस समय हुसल से पूछ सकते है कि यह 'तक, कथन' (प्रोपोजीशन) कहा विद्यमान है ? उनका उत्तर है कि यह प्रश्न निरथक है उसी प्रकार, जिस प्रकार कोई पूछे कि 'लालिमा' कहा है ? तक-कथन और समष्टिया कोई भावतत्व नही हैं जो वस्तुओ की भाति यहा वहा विद्यमान रहे। वे तो भावतत्वो के सगुम्फन मात्र है और सारतत्वो का सगृहीत रूप हैं। वे तो लाल वस्तुओ की ललाई है, और कथनो मे से तककथन है। इस विषय के तथ्य यही हैं कि हमे इनका सीधा अनुभव होता है। एक ऐसा अनुभव जो शेष अनुभवो की अपेक्षा एक विचित्र रूप से स्वत प्रमाण है।[1] इस प्रकार के सारतत्वो से सम्बन्धित अन्त साक्ष्य के समय हम एक ऐसे निश्चय पर पहुच जाते हैं, जिसे प्राप्त करना अपने दोषपूर्ण सामान्यीकरणो द्वारा किसी भी अनुभववादी के लिए सम्भव नही है। इस

और उसे मनोवैज्ञानिक पूर्वाग्रहो से भी मुक्त माना है। तकशास्त्र उनके अनुसार तककथनो का सिद्धान्त है और तककथन की परिभाषा ऐसे कथन से की गई है जो यह बताए कि अमुक वस्तु है या नही चाहे वह सत्य हो अथवा असत्य और इसी रूप मे किसी विचार अथवा मस्तिष्क मे प्रविष्ट हो जाए।

इस प्रकार एक तककथन न तो शब्दो का समूह है और न एक विचार ही। और तकशास्त्र तो बिल्कुल ही उस परम्परागत परिभाषा से निकल चुका था जिसने उसे विचारो का विज्ञान कहा है। तककथन इस तरह सामान्य कथनो से स्वतन्त्र है लेकिन फिर भी वे कथनो के आशय को व्यक्त करते हैं। मीनोग के वस्तुमूलको (आब्जेक्टिव्स) से उनका नजदीक का साम्य दिखता है। पेराडोक्सेज आव द इनफिनिट के अंग्रेजी अनुवाद की ऐतिहासिक भूमिका दशन योग्य है। (1950) पी० आर० 1944 मे प्रकाशित एच० आर० स्मार्ट कृत बोल्जानो ज लोजिक द्रष्टव्य है। वाई बारहिलल कृत बोल्जानो ज प्रोपोजीशनल लोजिक आक० फर० मथेमेटीकल लोजिक 1952) एव बोल्जानो ज डफीनीशन आव एनालिटिकल प्रोपोजीशन्स (मैथेडोस 1950)। हुसल और बोल्जानो के लिए देखें कारबर की उपयुक्त कृति एव एच० फेल्स कृत बोल्जानो एण्ड हुसल (फलोस जेहर बुच डेर गोरेशजसेल स्चेफ 1926)

[1] विशिष्ट टिप्पणियो एव ग्रन्थियो के लिए देखें स्पीगेलबग कृत फिनोमेनोलोजी आव डाइरेक्ट ऐवीडेन्स (पी० पी० आर० 1941) तुलनीय, मीनोग द्वारा प्रस्तुत ऐवीडेन्स (साक्ष्य) एव ब्रेन्टानो द्वारा प्रस्तुत प्रत्यक्षीकरण (परसेप्शन) के सिद्धान्त। प्लेटो एव कार्टेजियन परम्परा मे चर्चित हुए अस्तित्व एव सारतत्वो मे हुए अन्तर की बात भी उल्लेखनीय है। अभी हाल ही मे लोजे ने अपनी कृति लाजिक मे तात्कालिक निश्चिति के विचार को जिसे चाहे अन्त साक्ष्य कहे अथवा और कुछ अस्तित्व मे अवश्य ही है।

तरह विशुद्ध तर्कशास्त्र की आवश्यकता को हम महसूस कर सकते हैं, जिसका काम जाँच पड़ताल के लिए आवश्यक आधारभूत सारतत्वों की परिपूर्ण जानकारी प्रस्तुत करना है।

उनके द्वारा लिखित लोजिकल इन्वेस्टीगेशन्स एवं विशेषकर प्रोलेगोमेना टू लोजिक ने ही बहुत से एंग्लो सेक्सन दार्शनिकों के लिए हुसर्ल का सही प्रतिनिधित्व किया है। अपेक्षाकृत बहुत कम विज्ञानी दार्शनिक आगे आने वाले अन्धकार युक्त मार्ग में हुसर्ल का अनुसरण करने को तैयार थे, यद्यपि जर्मनी संयुक्त राज्य अमरीका एवं दक्षिणी अमरीका में उनकी विचारधारा का काफी प्रभाव पड़ा था।

इसके बावजूद भी हुसर्ल का विचार था, कि लोजीकल इन्वेस्टीगेशन्स में प्रस्तुत विचारधारा अपने आप में अस्थायी थी। जब सर्वप्रथम इसका प्रकाशन हुआ था, तो नवकाण्टवादी विचारक नेटॉप ने उस पर यह टिप्पणी की थी (काण्ट स्टडीयन 1901) कि हुसर्ल ने साधारण जगत की स्थिति को बिल्कुल अन्धकार में रख दिया है और सारतत्वों से उसका क्या संबंध था यह भी स्पष्ट नहीं किया है। और यदि वह उनका स्पष्टीकरण करेंगे तो निश्चय ही उन्हें काण्ट-सदृश तत्वदर्शन अपनाना पड़ेगा। हुसर्ल इस टिप्पणी से सहमत थे किन्तु तत्वदर्शन की एवज में वे पारवर्ती संघटनवाद (ट्रान्सेन्डेन्टल फिनामेनोलाजी) और एक ऐसे समष्टि दर्शन को अपनाना चाहते हैं जो सभी विज्ञानों को अपनी विधि में सुधार करने के लिए मसाला तैयार करके दे सकें। यह बात उन्होंने एन्साइक्लोपेडिया ब्रिटानिका (चौदहवां संस्करण, 1929) में लिखे संघटनवाद पर अपने निबन्ध में व्यक्त की है।

हुसर्ल की रुचि के प्रतिकूल लोजिकल इन्वेस्टीगेशन्स की आवश्यकता से अधिक अनुभववादी रचना हो गई थी। वे अभी भी एक विशुद्ध दर्शन की स्थापना के संबंध में संतुष्ट नहीं हो पाए थे। अब तक अपने द्वारा अपनायी गयी ह्यूमवादी प्रणाली के आगे जाना अब परमावश्यक हो गया था। यद्यपि उन्होंने पहले ही ह्यूम के इस सिद्धान्त को त्याग दिया था, कि यूनिवर्सल अथवा सारतत्व, अनुभवों से प्राप्त सामान्यीकरण ही हैं। उनका दर्शन फिर भी अनुभववादी ही था, क्योंकि वे अनुभव को उसके यथावत् रूप में स्वीकृति देना चाहते थे और उसी के आधार पर उन अनुभवों में निहित तार्किक आकार की खोज करते थे। उनकी इच्छा यही थी कि वे, अपने द्वारा अपनायी गई प्रणाली का औचित्य यह दिखाकर प्रस्तुत करें कि वस्तुओं को उसी रूप से स्वीकार करना, जैसी वे हमारी चेतना में प्रस्तुत होती हैं, उन्हें अपने वास्तविक रूप में देखना ही है।

जर्मनी प्रत्ययवादी परम्परा में वे एक परमात्मा की खोज करना चाहते थे, जो सभी आलोचना से परे हो और जिस पर हमारा सम्पूर्ण ज्ञान आधारित रह सके।

इसके लिए उन्होंने देकार्त की विचारधारा से सहायता प्राप्त करनी चाही और विशेष रूप से कोर्टेजियन 'सन्देह की प्रणाली' को स्वीकृति दी।[1] मेडीटेशन्स में देकार्त ने बाह्य जगत की उन सभी अवस्थाओं पर सन्देह व्यक्त किया है, जिन पर सन्देह किया जा सकता है और अन्त में वे एक ऐसे सन्देहहीन स्थल पर पहुँचना चाहते थे, जो सन्देहातीत हो। 1913 में आइडियाज़ में प्रवर्तित की गयी हुसर्ल की 'कोष्ठ विधि' (मेथड ऑव ब्रैकेटिंग में) इसी पैटर्न का अनुसरण किया है। वे इस वास्तविक जगत को कोष्ठक में डालकर विचार प्रारम्भ करते हैं। वे वास्तव में उस पर सन्देह नहीं करते, केवल कार्टेजियन तरीके से अपने निर्णय का स्थगन कर देते हैं। यह कदम उठाकर वे प्राकृतिक पदार्थों का अध्ययन प्रस्तुत करने वाले प्रत्येक विज्ञानको, भौतिकी एवं रसायनशास्त्र को तो स्वतः ही स्थगित कर देते हैं। साथ ही साथ वे मनोविज्ञान एवं समाजशास्त्र को भी इसलिए स्थगित कर देते हैं क्योंकि वे मनुष्य को एक प्राकृतिक पदार्थ ही मानते हैं।

इतने व्यापक रूप से कोष्ठकीकरण करना, जिससे कोई वस्तु मुक्त न रहे आपत्ति का कारण बन सकता है। यदि ऐसा ही होता, तो प्रकृति विज्ञान ही अन्तिम होते। इनके मिथ्यात्व पर विचार करना ही असम्भव होता और इसीलिए इनके सिद्धान्तों को किसी अधिक निश्चयात्मक आधार या सहायता की अपेक्षा नहीं होती। किन्तु वास्तव में हुसर्ल का मत यह है कि चेतना का अपना एक स्वत्व (बीग) होता है जो अपनी परम विचित्रता के कारण संघटनवादी संबंधों में असम्पृक्त है। देकार्त की भाँति वे यह विचार लेते हैं कि चेतना नाम की कोई वस्तु जब अन्य कुछ न रहे तो भी अस्तित्वमान हो सकती है और जो प्राकृतिक पदार्थों की श्रेणी में नहीं आती। क्योंकि किसी अनुभववादी विज्ञान की विषयवस्तु वह हो नहीं सकती। बहुत से समसामयिक ब्रितानी दार्शनिक इस प्रकार के दृष्टिकोण को अपनाने के लिए तैयार नहीं थे और उनकी दृष्टि में तो पारवर्ती संघटनवाद को त्याग देने का यही पर्याप्त कारण भी हो सकता है।

हुसर्ल आगे कहते हैं कि चेतना का अस्तित्व उस समय भी असम्पृक्त रहता है जब हम तर्कविज्ञानों एवं गणित तथा आगमनात्मक भौतिकविज्ञानों से संबंधित अपने निष्कर्षों का स्थगन ही क्यों न कर दें। यदि गणित और तर्कशास्त्र न भी रहें, तो भी चेतना तो रहेगी ही। अब हमने चेतना के प्रत्येक पारवर्ती क्रिया-संबंधी हमारे निर्णयों का स्थगन कर दिया है। अर्थात् एक ऐसी क्रिया का जिसका अपने से परे कोई और भाव हो तो भी इसके बावजूद, हमारे सामने उन अन्तर्जात क्रियाओं (इम्मेनेन्ट एक्ट) की चर्चा करना शेष रह ही जाता है जो अपने विधेय को अपने

---

[1] द्रष्टव्य जे० एफ० पुल्टन द्वारा लिखित द कार्टेजियनिज्म ऑव फिनोमनोलोजी (पी० आर० 1940

मे ही समाहित किए है। ऐसा मान लेना भी कार्टेजियन पद्धति का स्मरण कराना है कि चेतना की कुछ ऐसी क्रियाए हैं, जो अपने विधेय के रूप मे ऐसी वस्तुओ का स्मरण कराती हैं जो चेतना की ही किसी दूसरी अवस्था को उजागर करती हैं। इसलिए ऐसी क्रियाओ का अनुमान लगाना तर्कसगत है जो सभी पदार्थों के अस्तित्व पोछ दिए जाने पर भी उस समय तक विद्यमान रहती हैं, जब तक स्वय चेतना विलीन न हो जाय।

और ऐसी क्रियाओ का अस्तित्व ही हमारा प्राथमिक निश्चय-भाव है। बिना विरोधाभास के हम अपनी ही चेतना को नकार नही सकते, जब कि किसी अन्य पदार्थ को जो विचार क्रिया का अग नही, विचार द्वारा नकार सकते हैं। हुसर्ल की भाषा मे हम गणित सबधी सत्य के निर्णय का स्थगन कर सकते हैं, लेकिन हम अपने निर्णय का स्थगन नही कर सकते यह जानकर भी, कि हम उस निर्णय के योग्य हैं अथवा नही।

कोष्ठकीकरण की प्रक्रिया हमे चेतना के अस्तित्व की ओर ही अभिमुख करती है और हम यह आभास देती है कि यही "परमात्म" भाव है, एक ऐसी वस्तु का भाव, जिसका अस्तित्व अनिवार्य है, उस विचार द्वारा नकारना सभव नही है। उस परमात्म से हम पुन नये सिरे से भौतिक जगत के पदार्थों की ओर लौटकर आ सकते हैं। अब हम उन पर पारवर्ती सघटनवाद के माध्यम से विचार करते हैं और उन्हे वही दर्जा देते हैं जैसे वे हमारी चेतना-क्रम मे आकर घटित होते हैं। हम इस तरह प्रकृति विज्ञान के निष्कर्षों को मान्यता देने की आवश्यकता भी महसूस नही करते जिनके समक्ष पदार्थ पूर्णत चेतना से भिन्न हैं। इस तरह हम अपनी उपयुक्त बात मानकर अर्थात् पदार्थों को चेतना पर आश्रित मानकर, अपनी जाच पड़ताल की निश्चिति एव शुद्धता की रक्षा कर सकते हैं। हम तब बिना पूर्वाग्रहो के आगे बढ़ते है और उसी पर विचार करते हैं जिसके विषय मे न सोचना सम्भव नही।

इस तरह उदाहरण के लिए समय सबधी सघटनवाद समय के उस रूप से ही सम्बद्ध है जिस रूप मे वह हमारी चेतना मे प्रवाहित दिखाई देता है। यह वाद अपने आपको जो कुछ प्रदत्त है उसी की व्याख्या में सीमित कर लेता है, और ये प्रदत्त स्थितियां नकारी न जा सकने वाले तथ्य होती हैं जैसे स्वरावली चेतना मे एक स्वर के बाद दूसरे स्वर के रूप मे उभरती हैं और किसी भी रूप में वह अपने लिए किसी भी अस्थायी रहने वाले वैज्ञानिक निर्णय की मुह जोही नहीं रहती। इस प्रकार सघटनवाद, समय के ढाचे का वर्णन करता है, जो वास्तव मे चेतना में वैसा ही प्रकटता है। इससे यह भी पता लगता है कि समय किन उपकरणों से बना है और कौन सी अवस्थाएं, समय को बताने वाली कही जाती

चाहिए । विधि के नियमो की भाति यह इस सत्य का उद्घाटन करता है कि सामयिक सबध अनियोजित हैं, प्रत्येक समय सबधी अनुभव को वणन करने वाली उसकी सामान्य अवस्था का विस्तृत विवेचन करता है। सक्षेप म समाज का सघटनवाद किसी भी सामाजिक अनुभव के सभावित ढाचे का विश्लेषण करने का प्रयास होगा । काण्ट द्वारा प्रस्तुत अनुभव की अवस्थाओ एव पारवर्ती सघटनवाद के बीच उल्लेखनीय साम्य दिखाई देता है । हसल फिर भी काण्ट की भाति केवल प्रकृति विज्ञान के आकार से ही सबद्ध नही हैं, किन्तु वे किसी भी प्रकार चेतना म प्रस्तुत स्थिति का विश्लेषण करने से अवश्य ही सम्बद्ध थे ।

आइडियाज के अतिम अशो म तथा अपनी बाद की रचनाओ म पारवर्ती सघटनवाद की प्रवृत्ति के विषय म वे अधिक विस्तार स व्याख्या प्रस्तुत करते हैं । वे उस पर हुई आलोचनाओ का भी उत्तर देते है और धीरे धीरे सघटनाओ के विश्लेषण की प्रणाली निर्माण करने की दिशा मे प्रवृत्त दिखाई देते हैं । उनके चरण चिन्हो पर बहुत से शिष्य चले । सवप्रथम यह दौर जमनी म चला और एनुअल **ओनीकल आव फिलोसोफी एण्ड फिनोमेनोलोजीकल रिसच** (फ्रेबुर्क) तथा अमरीकन दर्शन पर उनका प्रभाव **फिलोसोफी एण्ड फिनोमेनोलोजीकल रिसच** (1940)[1] म देखा जा सकता है । जहा तक किसी विषय की शरीररचना का प्रश्न है, वहा तक तो उसके विश्लेषण म इन लोगो ने हसल का अनुसरण किया जसे मन के मूलभूत ढाचे के विषय म समाज के विषय म, धम एव प्रकृति के विषय मे । लेकिन बहुत से आलोचको से जो उनकी आरभिक कृतियो के प्रशसक भी थे यह शिकायत की है, कि अपनी बाद की रचनाओ म हसर्ल प्रत्ययवाद की ओर मुड गए है और उन्होने पूर्णत वस्तुपरकता पर बल देना भी छोड दिया है जिसे उन्होने प्रबल रूप से **लोजीकल इन्वस्टीगेशन्स** म प्रस्तुत किया था ।

मेडीटेशन्स कोर्टेसिएनिस (1952) म हसर्ल ने अपने विरोध म लगाए गए एकात्मवाद (सोलीपसिज्म) के अभियोग से अपना बचाव किया है । उनका प्रारभिक बिन्दु सामान्य चेतना है किसी विशेष व्यक्ति की चेतना नही । लेकिन वे जमन वस्तु-

---

[1] हसल के प्रभाव म लिखे गए बहुत से ग्रथो म है एम शेलर कृत **डर फोर्मेलिस्मस इन डेर एथिक** (1913–16) एव एफ काफमैन की **द मैथेडोलोजी आव द सोशल साइन्सेज** (1936) । अग्रेजी अनुवाद (1944) । फ्रास मे सघटनवाद के प्रभाव के लिए जे० हेरिंग द्वारा लिखित निबध **फ्रेंच फिलोसोफीकल थोट इन फ्रास एण्ड यूनाइटेड स्टेटस** म 1950 सपादक एम फारबर । अमरीका म हुए प्रभाव के लिए फारबर द्वारा उसी अक म लिखा हुआ निबध **डिस्क्रिप्टिव फिलोसाफी एण्ड ह्यूमन एक्जिस्टेन्स** ।

परक प्रत्ययवाद की परम्परा से साम्य रखने की बात को स्वीकारते हैं और प्रत्ययवाद को सर्वप्रथम वैज्ञानिक आधार दे सकने में सफल हुए हैं।

ब्रेण्टानो द्वारा पदार्थ' पर दिए गए बल ने, जर्मनी में दो विभिन्न प्रकार की विचार रेखाओं का विकास किया। मीनोंग ने वस्तुपरकता का दामन पकड़ लिया और एक वस्तुपरक ब्रह्माण्ड की रचना से अपने दर्शन का समापन भी किया चाहे उनका यह जगत् अपने आपमें कितना ही विचित्र क्यों न हो। जबकि हुसर्ल इस प्रयास में, कि एक वास्तविक पूर्वाग्रह मुक्त वस्तुपरक तर्कशास्त्र की स्थापना की जाय, अपनी दिशा पुनः प्रत्ययवाद की ओर मोड़ देते हैं।

इसी बीच में ब्रेण्टानो के प्रभाव को इंग्लण्ड में सर्वप्रथम प्रकटानेवालों में जी० एफ० स्टाउट का नाम लिया जा सकता है[1] स्टाउट केम्ब्रिज के व्यक्ति थे और हेनरी सिगविक के तथा जेम्स वार्ड के शिष्य थे। सिगविक,[2] जो एक प्रभावशाली शिक्षक थे, पर नीति एवं राजनीति दर्शन पर लिखी गई अपनी पुस्तकों के कारण बहुत विख्यात हुए। विशुद्ध रूप से दर्शन पर उन्होंने बहुत कम लिखा था।

फिलोसोफी पर लिखा गया उनकी रचनाओं का जो भाग उनके मरणोपरान्त प्रकाशित हुआ, वह था फिलोसोफी इट्स स्कोप एण्ड रिलेशन्स (1902) एवं लेक्चर्स आन द फिलोसोफी आव काण्ट एण्ड अदर फिलोसोफीकल लेक्चर्स एण्ड ऐसेज (1905)। ये दोनों ही ग्रन्थ प्रथम कोटि के नहीं हैं फिर भी इनमें से कुछ बातें अच्छी हैं। 'इतिहासवाद' पर प्रस्तुत उनकी जीवन्त समालोचना और सामान्य बुद्धि का उनके द्वारा किया गया बचाव, इन दो के कारण ही उन्नीसवीं शती के प्रत्ययवाद के विरुद्ध मजबूती से खड़े रहने में वे सफल रहे थे। स्टाउट, जिनकी चर्चा हम बाद में करेंगे, प्रत्ययवाद की ओर अधिक प्रवृत्त थे। इनका प्रत्ययवाद, सामान्य बुद्धि के आधार पर खड़ा था। केम्ब्रिज परम्परा में सामान्य बुद्धि के प्रति वह अपील,

---

[1] देखें सी ए मेस के स्मरणांश (पी बी, ए 1945) सी डी ब्राड (माइण्ड 1945), आर० नाइट (ब्रि० जर्नल० एड० साइकोलोजी 1946), जे० पासमूर (स्टाउट्स गोड एण्ड नेचर 1952)।

[2] देखें ए० एस० एवं ई० एम० एस० के स्मरणांश (1906) जे० ब्राइस हेनरी सिगविक, स्टडीज इन कण्टेम्पोरेरी बायोग्राफी में (1903) एल० स्टीफेन कृत हेनरी सिगविक माइंड 1901) और डी० एन० बी० में भी, सिगविक पर उनका लेख है। सी० डी० ब्रोड कृत एथिक्स एण्ड द हिस्ट्री आव फिलोसोफी (1952) में हेनरी सिगविक पर लिखा लेख।

उस विचारधारा का उसी तरह एक उल्लेखनीय अग बन गई थी, जिस तरह वह स्काटलण्ड के दाशनिको मे प्रचलित है । ब्रेण्टानो के दशन का यही अ श था जिसने स्टाउट को प्रभावित किया था ।

ब्रेण्टानो के साथ रहे अपने सबधो की चर्चा वे अपनी पुस्तक एनालिटीकल साइकोलोजी (1896 मे करते है । वहा वे ब्रेण्टानो द्वारा चेतना के दृष्टिकोण की परिभाषा को स्वीकार भी करते हैं । मानसिक क्रिया' नामक मुहावरे पर स्टाउट का विश्वास नही था और उ होने इस बात को स्वीकारने से साफ इ कार कर दिया, कि स्पष्टत 'जानने की कोई विशिष्ट क्रिया होती है' और वह चेतना द्वारा प्रदत्त पदाथ के सदभ से कही भि न होती है । किन्तु फिर भी वे यह भेद स्वीकारने मे नही हिचके ।

ट्वार्डोस्की द्वारा बाद मे किए गए विषयवस्तु एव पदाथ के भेद का अस इ ह पूर्वाभास हो गया था ।[1] चेतना वृत्ति के विचार सदभ जो उनके अनुसार वयक्तिक चेतना का कोई वतमान रूप नही हैं, और चेतना के अभिवर्धित रूप जिसे वे प्रतिनिधिकरण कहते हैं के बीच के भेद को उ होने पहले से ही विचार लिया था और यह भी कहा था कि ये ही अवस्थाए एक पदाथ की ओर अग्रसर हो जाने वाले विचार की दिशा एव परिभाषा बनाते है ।

विचार के पदाथ एव चेतना द्वारा सदर्भित स्थिति के बीच रहा भेद और जिस प्रतिनिधिकरण के जरिए, चेतना इसका सदभ देती है स्टाउट की रुचि का उनके दशन मे आजीवन स्रोत बने रहे । फिर भी उनमे बहुत से परिवतन भी आए थे । इनमे से कुछ परिवतन तो पदो का बदल देने के सम्बन्ध मे थे । चेतना मे तात्कालिक रूप से विद्यमान प्रभाव के लिए न तो विषय वस्तु न प्रत्यय और न प्रतिनिधिकरण ही उन्हे सही पर्याय योग्य लगे । इसके अतिरिक्त हुए परिवतनो का महत्वपूर्ण परिणाम निकला । न केवल नाम अपितु प्रतिनिधिकरण के भाव ने ही उ हे परेशान कर दिया था ।

---

[1] द्रष्टव्य सम फ डामेटल पाइ टस इन दि थियरी आव नालेज (1911) यही ग्र थ स्टडीज इन फिलासफी एण्ड साइकालोजी (1930) नाम से पुनमु द्रित हुआ है और इसी मे उ होंने अपने दृष्टिकोण को व्यक्त किया है । यद्यपि 1894 मे ट्वार्डोवस्की के निब ध के प्रकाशन से पूव उ होने इसे प्रकाशित नही करवाया था । मीनोंग्स थ्योरी आव आबजेक्टस लिखकर फिण्डले ने मीनोग और स्टाउट के बीच रहे महत्वपूर्ण मतभेदो और खासकर विषय-वस्तु की प्रकृति की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया है ।

सबसे पहले तो स्टाउट का 'प्रतिनिधिकरण,' लाक के 'प्रत्यय' से मेल खाता था जबकि मीनोंग की 'विषय वस्तु' उससे बिल्कुल नहीं मिलती थी। स्पष्टतः इसका यही अर्थ था, कि स्टाउट प्रतिनिधिकरण से संबद्ध सिद्धांत के दौरान प्रस्तुत हो जाने वाली शास्त्रीय कठिनाइयों का हल निकाल लेना चाहते थे। उन्हें यह दिखाने की आवश्यकता रही कि जो कुछ भी तात्कालिक रूप से हमारी चेतना के समक्ष प्रस्तुत होता है क्या वह सदैव ही प्रतिनिधिकरण है? हम कभी प्रतिनिधिकरण के सिद्धान्त में ही उनके आगे जा सकते हैं यह मानकर कि जिस वस्तु का प्रतिनिधित्व हो रहा है, वह निश्चय ही उससे भिन्न है। यही भेद स्टाउट करना चाहते थे। यद्यपि उन्होंने प्रतिनिधिकरण के अस्तित्व को स्वीकार कर लिया था तो भी उन्होंने यह कभी नहीं कहा था कि वे प्रत्यक्षीकरण का एक प्रतिनिधिकरण का सिद्धांत कायम करना चाहते हैं। क्योंकि विचार के दौरान ही हम स्वतः ही वस्तु की पकड़ करते चले जाते हैं चाहे यह पकड़ बाद में प्रतिनिधिकरण द्वारा ही समझाई जा सके। 1905 में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'थिंग्स एण्ड सेन्सेशन्स' में उन्होंने लिखा कि प्रारम्भ से ही हमारे तात्कालिक अनुभव में कुछ ऐसे तत्व प्रकटने लग जाते हैं जो अपनी वास्तविक सत्ता के लिए अपनी प्रस्तुत स्थिति से इतर का निरंतर संकेत देते रहते हैं। यह संकेत हमारे किसी भी प्रकार के तात्कालिक अनुभव से अथवा हमारे द्वारा प्राप्त अनुभव से भिन्न होता है। इस संबंध में प्रस्तुत यह तथ्य अविवादास्पद ही है। स्मृति ऐसा ही एक प्रसंग है, जिसका इस संदर्भ में वे उल्लेख करना चाहते थे। जब हम किसी वस्तु का स्मरण करते हैं तो हमारा वह स्मरण, किसी बीती हुई वस्तु के विषय में ही होता है, किन्तु फिर भी हमारा स्मरण वर्तमान में चलता है और वर्तमान प्रतिनिधिकरण की ही मांग करता है। यह प्रतिनिधिकरण इस तरह वह नहीं होता जो हम याद करते हैं क्योंकि यह वर्तमान है। इसी तरह विगत वैसा नहीं हो सकता, जो अभी हमारे सम्मुख है। इसलिए स्मरण का कोई भी विवरण देने के लिए हम प्रतिनिधिकरण एवं पदार्थ दोनों का संदर्भ देना होगा।

इसी तरह इन्द्रिय प्रत्ययीकरण में प्रस्तुत छोटी चांदी की तस्तरी का मन में प्रस्तुत हुआ तात्कालिक अनुभव उसे किसी भी भांति चन्द्रमा नहीं बना देता। वह न छोटा है न चान्दी का है और न ही एक तस्तरी है। लेकिन फिर भी ऐसे प्रतिनिधिकरण के कारण चन्द्रमा ही एक वस्तु के रूप में प्रस्तुत होता है। कठिनाई इस बात में नहीं है कि हम प्रतिनिधिकरण एवं पदार्थों में भेद नहीं कर सकते, किन्तु यह प्रतिनिधिकरण के क्षेत्र का वर्णन करने में है। उनका संसार में क्या स्थान है यह बताने की कठिनाई और ठीक ढंग से यह बताने की भी कठिनाई, कि वे किस रूप में पदार्थों की ओर इंगित करते हैं।

मूलत स्टाउट ने परम्परावादी उत्तर कार्टेजियन दृष्टिकोण को स्वीकार किया है जिसके अनुसार प्रतिनिधिकरण चेतना का सशोधित रूप है। हम यदि इसकी शिथिल परिभाषा दें तो, इसे मन का ही एक अ श कहेंगे। स्पष्टत यहा पर अनेको भारी कठिनाइया है। बकले ने इसी की ओर इशारा करते हुए कहा था, कि इस प्रकार की चेतना का सशोधित रूप किसी ऐसे अस्तित्व की ओर सकेत कर सकता है जो स्वय चेतना सशोधित रूप नही है। अर्थात् जो अपनी प्रकृति मे चेतना से बिल्कुल भिन्न है और वह है एक भौतिक पदार्थ। स्टाउट का अनुमान था, कि यह कठिनाई लेबनीय और लोपा जसे लखको की विचारधाराओ के माध्यम से पार कर लेंगे। उनके शिक्षक वाड ने यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया था, कि मन और पदाथ मे कोई बड़ा भेद नही है, क्योकि जिन्हे हम भौतिक पदाथ कहते हैं, वे छद्म वेश मे मन की अवस्थायें ही है। इस प्रकार प्रकृति की विविधता, जो प्रतिनिधिकरण एव पदार्थ की व्याख्या के समय प्रस्तुत होती है, शनै शनै विलीन हो जाती है। किन्तु स्टाउट लबनीय के इस तत्ववाद का खण्डन करते हैं और तब प्रतिनिधिकरण के विवरण को चेतना का सशोधन मात्र भी नही मानते। उनका कहना है कि प्रतिनिधिकरण जो हमारी इन्द्रियानुभूति का परिष्कार है पार्थिव है, चाहे भौतिक न हो। इससे उनका यह आशय था कि यद्यपि ये मानसिक तो नही है तो भी ये भौतिक शास्त्र की विषय वस्तु की भाति पदाथ के रूप म व्यक्त किये भौतिक पदार्थों की तरह नही है। इसी दृष्टिकोण के आधार पर हम इन्द्रियो द्वारा ग्रहण किए गये भौतिक पदार्थों के अस्तित्व की व्याख्या कर सकते हैं और उसम हम स्वय भौतिक पदाथ होने की आवश्यकता नही पडती। इन्द्रियानुभूति और भौतिक पदाथ दोनो एक ही अवयव के अश हैं और इस रूप म वे दोनो ही भौतिक है। हमे अब यह सोचने की अधिक आवश्यकता नही कि मानसिक रूप से हुए परिष्कार अपने स्वभाव के कारण बिल्कुल अलग रूप म अपना स्थान रख सकते हैं।

अब प्रश्न यह शष रहता है कि यदि हमारी इन्द्रिया स्वभाव म भिन्न नही है तो वह किस प्रकार एक ऐसी वस्तु का सकेत दे सकती हैं जो उनसे परे हो? स्टाउट द्वारा दिया गया इसका उत्तर उन्हे विभिन्न प्रकार से एक प्रत्ययवादी तत्व दशन निर्माण करने की ओर प्रेरित करता है जिसे हम बाद के अध्यायो मे चर्चित करेंगे। यहा एक सुझाव किसी न किसी रूप म वे देते ही हैं कि हमारा इन्द्रिय बोध अपने स्वभाव मे ही आशिक एव अपूर्ण है। इसलिए इसे एक व्यापक सत्ता का अ श मानने के लिए हम विवश हैं, यदि हम इसे पूरी तरह समझना चाहे तो हमारा इन्द्रिय बोध ही हमारे सम्मुख कुछ ऐसे प्रश्न खडे करता है जो इसका उत्तर प्रस्तुत नही कर सकता है। इसका उत्तर देने के लिए हम इसके विषय म भौतिक पदार्थों मे रहे इसके सम्बन्धो के जरिये विचार करना पडेगा। इस स्थिति

को उन्होंने अपनी कृति गॉड एण्ड नेचर (मरणोपरान्त 1952 मे प्रकाशित) मे भली-भाँति लिखा है। और 1947 मे ए० जी० पी० नामक पत्रिका मे इसी बात को उन्होंने अपने एक लेख डिस्ट्रीब्यूटिव यूनिटी एज ए केटेगरी मे व्यक्त किया है। अन्य स्थलो मे जैसे उदाहरण के लिए माइण्ड एण्ड मैटर मे उनका झुकाव अर्थ-क्रियावाद की ओर हो गया है। उनके अनुसार हम केवल इन्द्रिय बोध के द्वारा ही अपनी जिन्दगियो का सचालन नही कर सकते, हमारे अनुभवो की व्यावहारिक ढलन (प्रेक्टिकल एडजस्टमेंट) के लिए हमे इन्द्रिय बोध को वस्तुओ की ओर उन्मुख होता हुआ देखना पड़ेगा। किन्तु ये तो विस्तार की बातें हैं। मूलत उनका बल इस बात पर था कि इन्द्रिया जिन वस्तुओ की ओर सकेत करती हैं, वे इन्द्रियो से ही पूर्णत भिन्न न होकर उनके साथ ही निरन्तर होने का भाव प्रस्तुत करती हैं।

इन्द्रिय एव पदार्थ का सम्बन्ध बताने के लिए वे एक 'जटिल' एव 'विभक्त' एकता का सिद्धान्त प्रवर्तित करते हैं। धारणा उनके तत्व दर्शन के निर्माण मे महत्वपूर्ण स्थान रखती है। उदाहरण के लिए, एक पीले पदार्थ के प्रत्यक्षीकरण को ही लें। एव फण्डामेंटल प्वाइन्टस इन द थियरी ऑव नॉलेज नामक निबन्ध मे स्टाउट ने कहा है कि यह मानना बिल्कुल निरर्थक है, कि प्रस्तुत स्थिति मे दो पीली स्थितिया हैं। एक वह, जो वस्तु को पीले रूप मे प्रस्तुत कर रही है और एक वह जो वस्तु का पीलापन है। किन्तु यह प्रस्तु पीलापन, वस्तु के पीलेपन के साथ तादात्म्य नही रख सकता, क्योंकि विभिन्न प्रकार की पीली वस्तुओ के विभिन्न समयो मे विभिन्न व्यक्तियो द्वारा किये गये अनुभव किसी भी भाति पदार्थ के पीलेपन तक ही सीमित नहा हैं। स्टाउट के अनुसार, सम्भावना यही है, कि इन बहुमुखी प्रस्तुतीकरणो के भिन्न भिन्न पीलपन मिलकर एक भाव प्रस्तुत करते हैं जिसके शेष सब अग कहे जा सकते हैं जैसे अमुक अमुक अवस्थाओ मे निहित यह पीलापन, इस तरह इन विभिन्न प्रस्तुतीकरणो की जटिल एकता ही पदार्थ का पीलापन है। इस प्रकार, स्टाउट प्रतिनिधिकरण और पदार्थों अथवा इन्द्रियो के भेद को बनाए रखते हैं और प्रत्यक्षीकरण के प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त सम्बन्धी कठिनाई मे पड़ने से बच जाते हैं। प्रस्तुतीकरणो के सम्बन्ध मे उनके दृष्टिकोणो मे जिस तरह बाद मे विकास हुआ उसी प्रकार प्रस्तुतीकरण सबधी वस्तुपरकता के उनके दृष्टिकोण मे भी विकास देखा जा सकता है और इसके साथ ही सामान्यत मन मे पदार्थों की वस्तुपरकता की बात भी विकसित होती है। सर्वप्रथम वे यह मानने के लिए बिल्कुल तैयार थे, कि विचार के लिए किसी वस्तु के अस्तित्व का होना आवश्यक है। एरर शीर्षक मे व्यक्तिगत प्रत्ययवाद पर पढ़ा गया उनका एक निबन्ध उनकी प्रारम्भिक स्थिति का मौलिक परिचायक है। वहा वे यह घोषणा करते हैं, कि दोष सदैव ही किसी वस्तु के विषय मे होता है और इसीलिए वह किसी न किसी सत्य का सदर्भ ही प्रस्तुत करता है। लेकिन

सकता है। किन्तु यदि कोई सम्भव स्थिति, वास्तविक स्थिति पर आश्रित रहती है, तो वास्तविक भी किसी सम्भव स्थिति पर आश्रित रह सकता है। वास्तविक होने का अथ सभी प्रकार से सम्भव होना है। अर्थात् वास्तविक एक मूर्तिमान सम्भावना है। इसी दृष्टिकोण का विस्तृत विवेचन स्टाउट द्वारा प्रस्तुत समष्टियो के सिद्धान्त से जुड़ा है जिसे हम बाद के अध्यायो मे बतलायगे। अभी तो जो महत्त्वपूण बात है, वह यह, कि प्रारम्भ से ही स्टाउट की रचना, ब्रेन्टानो एव मीनोग द्वारा उन दाशनिक प्रश्नो का जवाब देने मे लग गई थी, जो उन्होने दाशनिको के समक्ष प्रस्तुत किये थे। उन्ही की भाति वे भी वस्तुपरकता के विचार का परीक्षण, और बचाव करने म लगे थे। हमे स्मरण रखना चाहिए कि जिस समय वे एनेलिटिक साइकोलोजी लिख रहे थे, मूर और रसेल दोनो को उन्होने पढाया था। कई अर्थों मे तो इन दोनो का दशन स्टाउट के दशन को आगे बढाता है।

अध्याय ६

मूर एव रसेल

'मूर एव रसेल" नाम का यह सयोजक, अपरिहाय है। यह मात्र एक इतिहासज्ञ के द्वारा बताई जाने वाली एक रूपता के कारण ही नही है। उस समय रसेल अपने स्नातकत्व पाठ्यक्रम समाप्त करके चुके ही थे और इसक साथ ही उन्होन अपने युवा विचारक साथी मूर का ध्यान साहित्य की ओर स हटा कर दशन की ओर खीचना प्रारम कर दिया। मूर अपने इस नवप्रभाव का प्रत्ययवाद के विरोध मे ग्रहण करने के लिए तयार हो गए, विशेषकर ब्रेडल क प्रत्ययवाद के विरोध म, जिसके कारण ही दाशनिको के रूप म मूर और रसल की सवप्रथम ख्याति फली थी। रसेल के विषय म मूर न लिखा है 'मुझे ऐसा ध्यान भी नही आता कि रसल ने मुझसे सिवाय गलतियो के अतिरिक्त कुछ ग्रहण किया हो, जबकि मैंने उससे बहुत कुछ ऐसा ग्रहण किया था जिस गलती नही कहा जा सकता, और जो मरी दष्टि म काफी महत्वपूण था।' रसेल अपने पारस्परिक सबधो का अधिक उपयुक्त और भिन्न रूप प्रस्तुत करते हैं। विद्रोहात्मकता मे उसने मुझसे बाजी मारली और मैं उसका अनुसरण एक गोरव भाव से करता रहा।[1]

तो भी य दोना व्यक्ति काफी भिन्न प्रकृति के थ। अपना ओटोबायोग्राफी मे मूर एक ऐसी स्वीकारोक्ति करते हैं, जो उनकी शिक्षा सबधी धारणाओ एव उन पर हुए प्रभावो का बहुत स्पष्ट ब्योरा देती है।" मैं नही सोचता, कि इस ससार द्वारा या विज्ञान द्वारा कभी भी मुझ दाशनिक समस्याओ पर विचार करने का सुझाव मिल सकता था। मरे सामन जो समस्याए आई हैं, वे मूलत दाशनिको द्वारा समय-समय पर वस्तु-जगत् एव प्रकृति विज्ञान पर सुझाई गई समस्याए हैं।" विभिन्न प्रकार से लाक बकल एव ह्यूम भी, अपने दशन का समारम्भ न्यूटन की विचारधारा का मदम देकर करते हैं। ग्रीन ब्रेडले बोसाके एव स्पेन्सर जसे दाशनिको की पृष्ठभूमि म डार्विन था। मूर का दशन अपने समय के महत्वपूण दाशनिक सुवादो से काफी दूर था। न तो फ्रायड, न मार्क्स और

---

[1] देखें रसेल की आत्म कथा जो द फिलोसोफी आव बर्टेण्ड रसेल मे प्रकाशित हुई है। मूर की आत्म कथा उस रूप म द फिलोसोफी आव जी० ई० मर नामक ग्रन्थ म प्रकाशित हुई है। वे दोनो ग्रन्थ पी० ए० शिल्प द्वारा सम्पादित किए गए हैं। इसी सबध म देखें ए० आर० व्हाइट कृत जी० ई० मूर 1958 और फिलोसोफी नामक पत्रिका का 1958 का मूर विशेषांक।

न आइन्स्टीन ने कभी उनकी विचारधारा पर प्रभाव डाला। यदि कभी कोई इस स्थिति की कल्पना कर सके तो वह तो दार्शनिकों के दार्शनिक थे।[1]

इसके दूसरी ओर रसेल की विचारधारा विज्ञान के घने प्रभाव में प्रवाहित रहती है। 1896 में उन्होंने अपनी पहली पुस्तक जर्मन सोशल डेमोक्रेसी लिखी थी। दूसरी पुस्तक का शीर्षक था एन ऐसे आन द फाउण्डेशन आव ज्योमेट्री (1897)। मनोवैज्ञानिक, सामाजिक भौतिक एवं गणितीय जांच पड़ताल के साथ ही साथ दर्शन स्वतः विकसित होता रहता है। जब वे तकनीकी हो जाते हैं, जैसा कि उन्हें द प्रिंसिपिया मैथेमेटिका (1903) में देखा जा सकता है तब उनका गणित के प्रतीकों का मुक्त प्रयोग साधारण पाठक के मन में यही भाव उत्पन्न करता है, कि यदि वहां वे कुछ अबूझ हैं, तो वह भी किसी आसानी से समझ में आने वाले कारणों के लिए ही हैं। मूर तो इस रूप में लगभग कहीं भी तकनीकी नहीं हैं। कदाचित् किसी भी अल्प लेखक ने इतनी अधिक विशदता एवं सरलता के लिए कभी प्रयास नहीं किया होगा। हां ऐसी ही विशदता एवं स्पष्टता के लिए विटगेन्स्टीन का नाम तो फिर भी लिया जा सकता है। तो भी मूर के सामान्य बुद्धि के समर्थक होने पर भी उनका दर्शन एवं मान्यताएं सामान्य पढ़े लिखे पाठकों के लिए सुबोध नहीं हैं। डब्लू० बी० यीट्स ने टी० एस० मूर को लिखा[2] मुझे आपके भाई में काफी दुरूहता मिलती है। यह तो एक साहित्यिक व्यक्ति की मूर के संबंध में प्रतिक्रिया है जो एक दार्शनिक से व्यापक पैमाने पर

---

[1] प्रिंसिपिया ऐथिका में लिखे गये द आइडियल पर एक अध्याय ने हमारी शती के सांस्कृतिक जीवन पर गहरा प्रभाव डाला है और ब्लूमबरी स्कूल पर उनका प्रभाव बहुत स्पष्ट है जिसके कारण ही इस प्रभाव का विस्तार हो सका। इस स्कूल में रोजर फ्राई जे० एम० कीन्स वर्जीनिया वुल्फ ई० एम० फोर्स्टर आदि प्रमुख हैं। द्रष्टव्य जे० एम० कीन्स कृत टू मेमोइर्स (1949)। आर० एफ० हैरड कृत द लाइफ आव जे० एम० कीन्स (1951) जे० के० जोन्सटन कृत द ब्लूम्सबरी (1954), ई० एम० फास्टर द्वारा लिखित द लोंगेस्ट जर्नी (1907) का पहला अध्याय, इस शती के आरम्भ से केम्ब्रिज में रहे ज्ञान मीमांसा संबंधी सुवादों का अच्छा ब्यौरा प्रस्तुत करता है।

[2] यह कवि मूर के भाई थे। देखें, डब्लू बी यीट्स एण्ड टी० एस० मूर देयर कोरेसपोन्डेन्स (सम्पादक वी० ब्रिज 1953) इसमें यीट्स द्वारा मूर की विचारधारा को समझने का प्रयास दिखाई देता है और टी० एस० मूर द्वारा यीट्स की बहुत सी बातों को स्पष्ट किया गया है। साथ ही जी० ई० मूर के प्रशंसा भरे शब्द भी हैं।

महत्तर प्रश्नों की चर्चा की अपेक्षा रखता है। जान विजडम ने भी कहा है–वैज्ञानिक भी इस सम्बन्ध में अब मुक्त नहीं माना जाएगा। मूर तो तर्कशास्त्र का एक खण्ड बनाकर प्रस्तुत करते हैं और वह इतना विचित्र कि उसमें सामान्यबुद्धि तक के समझने वाले एवं गणितज्ञों के लिए भी वह पर्याप्त संतोष का विषय नहीं माना जा सकता। इनकी प्रणाली में प्रमाण संबंधी कोई ठोस प्रयास किया हुआ ढूंढ लेना भी संभव नहीं है, और उसके साथ ऐसी एक तर्कशृंखला का समापन क्यू ई डी) भी नहीं है जिसमें निजी खोज पर विजय प्राप्त कर ली गई हो।[1] लेकिन इसके बावजूद भी, मूर के पास उन लोगों के लिए बहुत कुछ था, जिन्होंने उनकी ईमानदारी से अपने कार्य में लगे रहने की अपेक्षा की थी और उन्होंने अपने दर्शन में यह ईमानदारी उन लोगों के संतोष के लिए कहाँ तक निभाई यह बात बताना जरा मुश्किल है।

जब उन्होंने दर्शन में अपने योगदानों को 1922 में फिलोसोफीकल स्टडीज नामक ग्रन्थ के रूप में प्रकाशित किया तो उन्होंने माइण्ड में प्रकाशित अपने प्रारम्भिक निबन्धों को उसमें शामिल नहीं किया था और न ही प्रोसीडिंग्स आफ द एरिस्टोटेलियन सोसाइटी के निबन्धों को ही और न बाल्डविन की डिक्शनरी आफ फिलोसोफी में लिखे अपने संक्षिप्त निबन्ध को ही उन्होंने इस पुस्तक में ले लेने का प्रयास किया। डिक्शनरी के इस निबन्ध को उन्होंने अपनी आत्मकथा में असाधारण रूप से दुरूह भी कहा है। लेकिन इसके साथ ही वे यह सूचना देते हैं कि इन प्रारम्भिक निबन्धों को लिखने में उन्हें बहुत मेहनत करनी पड़ी थी और जिस सिद्धान्त का प्रतिपादन इनमें किया गया है यदि बाद में उन्हें किन्हीं कारणों से परिवर्तित करना पड़ा हो तो भी अंग्रेजी दर्शन में उसका प्रभाव तो पड़ा ही है विशेषकर, रसेल द्वारा उन्हें अब भी स्वीकार किए जाने से। बहुत से महत्वपूर्ण मामलों में तो इन रचनाओं की यही सार्थकता है कि इनके कारण उन दार्शनिक मसलों से सम्बन्धित वे समस्याएं तथा प्रश्न स्पष्ट रूप से उभर कर सामने आ सके, जिनकी खोज बहुत से दार्शनिक काफी समय से करते रहे थे।

माइण्ड (1899) में प्रकाशित द नेचर आफ जजमेण्ट उनके प्रारम्भिक निबन्धों में से है। इस लेख के लिए जाने का कारण ब्रेडले कृत प्रिंसिपल्स आफ लाजिक है। मूर का विचार था कि ब्रेडले लाक के प्रत्ययों, के सिद्धान्त के विषय में अनावश्यक रूप से कठोर हो गए थे। यद्यपि स्वयं उन्होंने कई बार निर्णयों के विषयों में यही मत दिया है कि वे प्राय उन उन प्रत्ययों से निकले अर्थ के विषय में ही होते हैं। दूसरे अवसर पर उनके लेखन से ऐसा ध्वनित होता है मानो एक मानसिक

---

[1] मूर की शैली के लिए देखें द फिलोसोफी आफ जी० ई० मूर।

घटना के रूप म प्रत्यय भी हमारे निणयो का अ श होकर प्रकटते हो हैं। अपनी पहली धारणा के विषय म मूर का उत्तर यह है कि यह एक समीचीन दृष्टिकोण है। निणय 'प्रत्यय' के बारे मे ही होते हैं लेकिन ये प्रत्यय किन अवस्थाओ की ओर सकेत करते हैं यह तय नही है। ब्रेडले का कथन है कि वे समाष्टिव्यापी अथ प्रकटात हैं, और मूर का कहना है वे केवल एक धारणा व्यक्त करते हैं।

मूर का कहना है कि धारणा न तो मानसिक तथ्य का कोई अ श है। फिर भी असदिग्ध रूप से हमारे विचार के दौरान उभरने वाला कोई विधेय है ही। कि तु यदि इसे हमारी विचारधारा से अलग नही माने तो हमारे लिए सोचने का कोई उपकरण शेष नहो रह जाता एक प्लेटो जसे तक आकार की तरह जिसस इनकी प्रणाली का काफी साम्य भी है। धारणा शाश्वत है, और स्थिर है। यही कारण है कि विभिन्न प्रकार के निणयो के समय यह एक जैसे तत्व के रूप मे प्रकटती है, और इ हे तक की शृ खला से जोड देती है।

मीनाग और ब्रेण्टानो की भाति ही यह निबध लिखकर मूर का उद्देश्य भी वस्तु परकता एव विचार की विषय वस्तु से उसे स्वतन रखने का था। इस बात पर ध्यान केन्द्रित करना, यहा आवश्यक है कि फिर उनकी विचार धारा की शुरूआत ब्रेडले क ग्र थ प्रिंसिपल्स आव लोजिक स होती है। यह एक अमनोवज्ञानिक प्रवृत्ति थी जिसे उत्तराधिकारी के रूप में मूर ने ग्रहण किया था। ब्रितानी अनुभववाद से जुडाव के चिह्न मूर के आरम्भिक दशन में स्पष्ट रूप स नही मिलते। अनुभववादी परम्परा में धारणा को ऐसा अमूर्तीकरण माना गया है जिसे मन प्रत्यक्षीकरण के कच्चे माल द्वारा तयार करता है। मूर का इसके विपरीत यह कहना था कि धारणा को मूलत वस्तुओ का या प्रत्ययो का अमूर्तीकरण मानना उचित नही है। क्याकि दोनो ही का निर्माण यदि किसी वास्तविक आधार पर हुआ है तो वह आधार धारणा ही है। इस दृष्टिकोण से एक वस्तु धारणाओ का मेल है। उदाहरण के लिए कागज सफेदी चिकनाई एव अ य धारणाओ का मेल ही है।

तो भी धारणो के बीच का सम्ब ध बताने वाला तक वाक्य ही हो सकता है। वे इस अपरिहाय निष्कय का मानने के लिए तयार हैं कि एक वस्तु एक जटिल रचना' एव 'एक तकवाक्य' एक ही इयत्ता के विभिन्न नाम हैं। इस आधार पर ही वे अपने सत्य के सिद्धान्त की स्थापना करत हैं। परम्परागत दष्टि से तकवाक्य उसी समय सही है जब वह किसी सत्य को उजागर करता है या सत्य से उसकी प्रत्यभिमुखता है। यहा एक सत्य तकवाक्य मे और उसके द्वारा सचाई व्यक्त की गई अवस्था म अन्तर आ जाता है क्योकि दोनो ही समानरूप स प्रत्ययो' अथवा

शब्दो के समूह तो माने ही जा सकते हैं। इसलिए मूर सत्य एव सही तर्क-वाक्य का तादात्म्य स्वीकार कर लेते हैं। एक बार यह बात निश्चित रूप से जान ली जाय, कि तर्कवाक्य किसी विश्वास की ओर सकेत नही करता है (मनोवैज्ञानिक अर्थ में) और न शब्दो के आकार को व्यक्त करता है-केवल विश्वास के उपकरण का आभास देता है, तो यह स्पष्ट हो जाता है, कि उस सत्य से किसी भी अर्थ में भिन्न नही है जिससे वह तादात्म्य रख रहा है। यह सत्य कि 'मैं अस्तित्वशील हू' इसके साथ तादात्म्य रखने वाले तथ्य, 'मेरा अस्तित्व' से किसी भी तरह भिन्न नही है।

इस प्रकार यदि एक गलत एव सही तर्क वाक्य के अन्तर को बताने वाला मूल भूत आधार, वह 'सत्य के अनुसार चलने वाला' भाव न हो तो फिर किस अन्य तरीके से यह भेद प्रकट होगा? मूर का उत्तर है कि सत्य एक सरल अविश्लेष्य एव अन्त साक्ष्यी अवस्था है और कुछ तर्क वाक्यो में तो यह प्रकट हो जाती है, कुछ में नहीं। यह एक ऐसी धारणा थी जिसकी रसेल ने मीनोंग (माइण्ड 1904) पर लिखे अपने निबध में वकालत की थी। उन्होंने लिखा था, कुछ तर्क वाक्य सही और कुछ गलत होते हैं, ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार कुछ गुलाब लाल और कुछ सफेद होते हैं।'

इसके अतिरिक्त कोई दृष्टिकोण यही सकेत दे सकता है कि किसी तरह हम धारणाओ मे निहित सत्यो के पारस्परिक सबधो से ऊपर उठ सकते हैं, किन्तु सैद्धान्तिक रूप से यह बात मानना असभव है। 'जानना' किसी तर्कवाक्य के प्रति सचेत होने का ही दूसरा नाम है। अर्थात् इसके जरिए धारणाओ के विभिन्न उपकरणो का सबध हम जोड लेते हैं। इस तरह सभवत हम ऐसी किसी वस्तु को नही जानते, जो धारणाओ से परे हो। यह बात प्रत्यक्षीकरण के समय ज्ञान के लिए भी सत्य है। प्रत्यक्षीकरण केवल मात्र अस्तित्वशील तर्क वाक्यो से पहचान होने का नाम है। उदाहरण के लिए जब हम कहते हैं कि यह कागज अस्तित्वशील है, मूर के अनुसार यह तर्कवाक्य भी धारणो के सबधो को व्यक्त करता है। इससे यही अर्थ निकलता है, कि जो धारणाए इस कागज की निर्णायक रही हैं वे उसके अस्तित्व से भी सबधित हैं जबकि ब्रेण्टानो का इस सबध में यह मत था, कि सभी तर्कवाक्य अपने आकार में अस्तित्ववादी होते हैं। मूर इन्हे धारणाओ के पारस्परिक सबधो के जरिए स्वीकार करते हैं।

इस तरह सत्य एव यथार्थ के सिद्धान्त की व्याख्या को स्वीकार करके मूर एव रसेल दर्शन के क्षेत्र में प्रविष्ट हुए। किन्तु बाद मे इसी धारणा के प्रति कुछ अंशो में प्रबल रूप से अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करने वालों में भी ये ही लोग थे। यह

संसार शाश्वत एवं अपरिवर्तनशील धारणाओं से बना है। तर्कवाक्य इन धारणाओं को एक दूसरे से मिलाने का कार्य करते हैं। एक सही तर्कवाक्य इस प्रकार की विभिन्न धारणाओं में से एक को इसका विधेय बना देता है और इस तरह वह या तो 'तथ्य' है या 'यथार्थ'। हमारे निर्णय की प्रकृति के विषय में एक और महत्वपूर्ण बात यह है, कि मूर सदैव ही 'तर्क' पर बल देते रहे हैं और उसे ही स्वीकृति प्रदान करते रहे हैं जो इस तर्क प्रणाली द्वारा ही उन्हें किसी दिशा की ओर ले जा सके। अपने अस्तित्ववादी सिद्धान्त के विषय में उन्होंने लिखा—"मैं पूरी तरह से इस मामले में सचेत हूँ कि किस प्रकार मैं अपने सिद्धान्त को विरोधास्पद (परेडोक्सिकल) बना रहा हूँ, लेकिन मुझे यही लगता है कि इस ओर पूर्व स्वीकृत प्रमेयों पर ही मैं आगे बढ़ रहा हूँ और इसका प्रतिकार मैं केवल किसी तार्किक असंगति के कारण ही कर सकूँगा। मैंने यथासम्भव तर्क के नियमों को बरकरार रखने का प्रयास किया है यदि कोई इन्हें खण्डित करता है तो मुझे उसके तर्कों से डरने की कोई चिन्ता नहीं है। तथ्यों पर अपील प्रस्तुत करना निरर्थक है।" इस पराग्राफ में व्यक्त किए गए भावनात्मक स्थल को मूर बहुत आगे तक खींच ले गए हैं।

अपनी आत्मकथा (ऑटोबायोग्राफी) में रसेल ने इसका स्पष्टीकरण किया है कि मूर के प्रारम्भिक सिद्धान्त उनके और मूर के लिए किस महत्व के थे। सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह थी कि उनके जरिए ब्रेडले के परमतत्व और उनके द्वारा की गई प्रत्ययवाद की वकालत से मुक्ति की साँस लेने का अवसर आता है। परमतत्व के जगत से निकल कर हम इन प्रारम्भिक सिद्धान्तों के जरिये प्रतिदिन के रूप जगत में आकर रहने लग जाते हैं। ऐसा लगता है कि हम एक जेल से निकलकर भाग आए हों। रसेल ने लिखा कि हमने अपने आपको यह स्वीकार करने दिया कि घास हरी है, कि सूर्य और तारे उसी तरह विद्यमान रहेंगे यदि उनके प्रति कोई सचेत न भी रहा तो भी। और यह भी मानकर हम चलें कि प्लेटो द्वारा सुझाए गए प्रत्ययों की समयातीत बहुलता से बना यह जगत है। इस तरह पहले जो जगत क्षीण एवं तार्किक था अचानक सम्पन्न विविधता से युक्त एवं ठोस हो गया।

रसेल का स्वयं का जगत शनैः शनैः सूक्ष्म और तर्क मूलक होता जाता है। लेकिन मूर ने अपने इस रहस्य एवं मुक्ति के भाव को भी नहीं छोड़ा और हमेशा ही दैनिक जीवन के 'सत्यों' से अपने को जोड़े रखा। वे मुश्किल से प्राप्त इस स्वर्ग से बाहर आने के लिए कृत संकल्प थे।

उनके सिद्धान्तों के युवक आलोचकों की भाँति जिन्होंने कभी भी प्रत्ययवाद के प्रति आकर्षण प्राप्त नहीं किया है या उन लोगों के जिनके, निकट यह सब एक जीवन्त विकल्प नहीं है, वे सब मूर के दर्शन को समझने में कठिनाई अनुभव

करेंगे ही। वे उसे एक वकील (डिफेन्डर) मानने लग जाते हैं। अपने ही ढग से तथा विटगिं सटीन के शब्दो का सहारा लेकर उन पर साधारण मान्यताओ (ऑर्डिनरी यूसेज) के वकील होने का आरोप लगाते हैं। लेकिन यह तो साधारण विश्वास है, रोजमरा के प्रयोग नही, जिनका बचाव मूर करना चाहते हैं। अपनी आलोचना के बावजूद भी उनका विचार है कि उन्ह अपने बचाव की आवश्यकता है। उन्होने मेक्टेगट को यह कहते हुए सुना है, कि समय असत्य है और पदार्थों की गलत वही स्थिति है जो दस्या एव काल्पनिक जीवो की है। उन्हें इस बात पर कभी विश्वास नही हो पाया कि मेक्टेगट हमारी सामान्य भाषा सबधी आदता म परिवतन की कामना कर रहे थे[1]।

इसके साथ ही इनके इस स्वग म कुछ शतानी सप भी थे और जल्दी ही उन्हे उनकी उपस्थिति का भान होने लगा। 1910-11 के बीच दिए गए भाषणो की एक शृ खला म—यद्यपि ये भाषण 1953[2] तक प्रकाशित न हो पाए थे कि क्यों सभी सुविधाए होने के बावजूद उन्होने तथ्या के सही तक कथना से रह तादात्म्य के सिद्धान्त को उन्होंने त्याग दिया था। उदाहरणाथ जब हम यह कहते हैं, कि शेर वास्तव म होते हैं,' हम प्रस्तुत स्थिति से, जिस पर हम विश्वास करत हैं कुछ अधिक ही कह जाते हैं और हमारे इस कथन म कुछ अविश्लेष्य सत्य भी शेष रह जाते हैं। एक तथ्य का मूल (सन्ट म) यदि उसकी शिथिल व्याख्या करे तो किसी तक वाक्य म निहित सत्य मात्र म ही निहित नही है। इसके अलावा इस सम्बध मे जो दूसरी महत्वपूण आपत्ति है वह यह है कि ऐसा कोई भी तकवाक्य नही होता जो मन म विकसित हुए सिद्धान्त के बिल्कुल अनुकूल पडे।[3]

---

[1] दख रिप्लाई टू माई क्रिटिक्स—द फिलासोफी आव जी ई मूर नामक ग्रन्थ म।

[2] जान विजडम द्वारा उत्तेजित किये जान पर जो चर्चाए हुई उन्हे सम मेन-प्रोबलम्स आव फिलोसोफी म देखें।

[3] यह वतमान दशन का सुवादास्पद विन्दु रहा है। द्रष्टव्य एच० जोकिम कृत द नेचर आव ट्रूथ (1906), जी० ई० मूर कृत मिस्टर जोकिम्स नेचर आव ट्रूथ एव जोकिम का उत्तर (माइण्ड 1907), बी० रसेल आन प्रोपोजीसन्स व्हाट दे आर एण्ड दे मीन (पी ए एस 1919), एफ पी रेम्से तथा जी ई मूर फक्टस एण्ड प्रोपोजीशन्स (पी ए एस एम 1927) जी राइल आर देयर प्रोपोजीशन्स ? (पी ए एस 1929)। इस पर बाद मे आर रोबिन्स के साथ विमश हुआ (माइण्ड 1931), एम श्लिक फक्टस एण्ड प्रोपोजीशन्स तथा सी जी हैम्पल सम रिमाक्स आन फक्टस एण्ड प्रोपोजीशन्स (ऐनालीसिस 1935), सी बलिस फक्टस प्रोपोजीशन्स, एक्जम्प्लीफिकेशन एण्ड ट्रूथ (माइण्ड 1948), ए

दोपपूरण विश्वासो के मामले ने मूर का इस निष्कप पर पहुचा दिया था। तकवाक्यीय सिद्धान्त के अनुसार हमारे लिए गलत ढग से विश्वास करने के लिए भी एक तकवाक्य तो होना ही चाहिए। चाहे यह तकवाक्य दोपपूरणता का तत्व अपने मे समाहित किए हुए ही क्यो न हो। दरअसल, मूर यह कहना चाहते हैं कि दोपपूरण विश्वास का सार ही यही है कि हम उस चीज मे विश्वास करते हैं 'जो नही है।' 1912 मे प्रोब्लेम आव फिलोसोफी म रसेल ने इसी वात की चचा छेडी है। जब ओथेलो गलती स यह विश्वास करता है कि डस्डीमोना केसियो से प्रेम करती है तो उसका विश्वास दोपपूरण है। क्योकि वास्तव म ऐसी काई स्थिति नही है कि डस्डीमोना केसियो से प्रेम करती है। यदि एसी स्थिति होती जसा कि तकवाक्य सिद्धान्त मे होना जरूरी है, तो ओथलो का विश्वास सही होता, गलत नही। एक बार यदि हम यह जानलें कि एक दोपपूरण विश्वास तक वाक्य म प्रकट विश्वास नहीं होता, तो स्वभावत इस वात का खण्डन किया जा सकता है (इसे रसेल एव० मूर दोनो ने माना था) कि एक साथ विश्वास का आधार तक वाक्य ही हो सकता है। मूर सक्षेप मे कहते हैं 'कि विश्वास किसी तकवाक्य एव हममे रहे सबधो को व्यक्त नही करता क्योकि तक वाक्य मूलत अस्तित्व म नही होते।'

मूर यह मानते हैं कि व इस बारे म तो बिल्कुल आश्वस्त हो गए हैं कि मैं प में विश्वास करता हू' विश्वास की किसी क्रिया एव तक वाक्य के बीच किसी प्रकार के सबधो की सूचना नहा देता। किन्तु वे कोई ऐसा वकल्पिक विश्लपरण नही खोज पाए हैं, जिसकी कडी आलोचना की जानी सभव न हो। तो भी वे इस बात को तो जानते हैं कि, सभावनाओ के किस स्थल पर किसी समस्या का हल खोज निकाललेना सभव है। यह तो निर्विवाद है कि प की सचाई उसकी तथ्य से प्रत्यभिमुखता म ही निहित है। और इस तरह प मे विश्वास करना यह विश्वास करना है कि प अमुक अमुक तरह से प्रत्यभिमुख हुआ है। दार्शनिक समस्या इस प्रत्यभिमुखता की सीधी व सरल व्याख्या करन म ही है। हम किसी भी दार्शनिक विवाद के जरिए अपने आपको यह स्वीकार लेने की स्थिति म नहीं खीच लेना है कि प्रत्यभिमुखता जसी चीज दरअसल है ही नही। हम जानते है कि वह तो है हा, यद्यपि हमारे लिये यह समस्या रह जाती है, कि किस प्रकार उसकी प्रकृति का वरणन करें। इस प्रकार मूर की विचारधारा का सामान्य प्रवाह उत्तर देने के बजाय समस्याए खडी करने की ओर है। मैज ने उनका वरणन एक अच्छे प्रश्नकर्ता एव एक बुरे उत्तरदाता के रूप म किया है। और

कप्लन तथा आई कपिलोविश मस्ट देयर बी प्रोपोजीशन्स ? (माइण्ड 1939), ए चच आन कानप्स एनेलिसिस आफ स्टेटमेन्टस आफ एसशन एण्ड बिलीफ (एनेलिसिस 1950)।

मूर स्वय इस ग्रभियाग के दोपी ग्रपन ग्रापका मानत हैं। किन्तु कम से कम उन्ह इस बात का सतोष है कि मूल समस्या क्या है इसका पता उन्ह हो जाता है। ग्रौर यह बात कम महत्व की नहीं है। 1901 म प्रिंसिपिया एथिका म उन्होन लिखा— "नीतिशास्त्र म ग्रन्य दर्शनविपयक ग्रध्ययनो की भाति कठिनाइया एव ग्रसहमतियो भी भरमार है ग्रौर इन सब कठिनाइयो का एक बहुत ही सरल कारण यह है, इसम भी बिना यह जाने कि कौन सा ऐसा प्रश्न है जिसका हम उत्तर दे रहे हैं बहुधा उन प्रश्नो का जवाब द दिया जाता है।" यदि मूर एक प्रश्नकर्ता रहे तो व इस बात के लिए कृतसकल्प रहे कि उन्हें एक ग्रच्छा प्रश्नकर्ता हाना है ग्रौर यह काम सरल काय नही है।

बाह्य जगत् सम्बन्धी शास्त्रीय समस्या के प्रति रहे मूर के दृष्टिकोण म उनके सत्य-सबधी सिद्धान्त की भाति समय समय पर परिवतन होत रहे हैं। इस सबध म भी उन्होंन तक दृष्टि से ही शुरुग्रात की है। रिलेटिव एण्ड एब्सोल्यूट (बाल्डविन डिक्शनरी) नामक निबध म उन्होने लिखा है कि यह कहना कि एक वस्तु सापेक्ष है ग्रपने ग्रापका विरोध ही करना होगा। इसस ब्रेडले की भाति वे यह नही कहना चाहते, कि सम्बन्धों का होना ग्रपन ग्राप म ही स्वविरोधी है। इसके विपरीत मूर तो सापेक्षिक ग्रस्तित्व' सम्बन्धी ब्रेडले की विचारधारा का खडन कर रह हैं। यह कहना कि कोई वस्तु बिना सबधों क निरथक हो जाती है या फिर वह नही रहेगी, यदि उसम से सबध सूचको को निकाल दिया जायगा। मूर के ग्रनुसार य बातें सम्बन्धो स वस्तु को ग्रलग करने क लिए ही हैं। ग्रमुक ग्रमुक भेद ग्रमुक वस्तु म सभव है, इस बात म इकार किसी न किसी रूप म उसे स्वीकारने जसा ही है। मूर यहा पर ब्रितानी प्रत्ययवादियो द्वारा स्थापित सबधों क सिद्धान्त के विरुद्ध बाह्य सबधा के सिद्धान्त का पक्ष ग्रहण करते हैं।[1]

---

[1] इसी समस्या पर बाद म हुई चर्चाग्रो क लिए देखें पी० ए० एस० 1919 म प्रकाशित तथा स्टडीज म पुनर्मुद्रित मूर का निबध एक्स्टरनल एण्ड इण्टरनल रिलेशन्स फिलोसोफी ग्राव जी० ई० मूर नामक ग्रथ म एक ग्रश म स्टेबिंग न लिखा है मूर न बाद म ग्रपन ग्रापको इस बात के ग्रयोग्य स्वीकार किया है कि ग्रारम्भ म ग्रर्जित ग्रपनी विचारधारा को सभवत उसी शक्ति के साथ साथ वे ग्राग भी खीच सकते ग्रौर इसलिए व इस बात पर ग्राश्वस्त हो गए थ कि व धारणाए गलत थी। देखें ब्रेडले एव जेम्स पर लिख गए ग्रध्याय इनम इसी प्रकार का ग्रतर व्यक्त किया गया है। द्रष्टव्य ए० सी० एविंग्स कृत ग्राइडियलिज्म (1634) जो सम्पूर्ण सुवादो के दौरान प्रकटी बहुत सी दुविधाग्रो का उल्लेख करता है। देखें रसल द्वारा फिलोसोफीकल एसेज 1910 म लिखित निबध द मोनिस्टिक थ्योरी ग्राव ट्रुथ।

मूर का विश्वास है, हीगल से प्रभावित लेखकों की यह धारणा है कि कोई भी संबंध विशुद्ध रूप से 'बाह्य' नहीं है। सार रूप मे इन सम्बंधित वस्तुओं को जोड सकने मे ये लोग असफल रहे हैं। यह संबंध जितना–जितना बाह्य है, उतना उतना ही वस्तुओं मे निहित सत्य विलीन होता जाता है। इसके विपरीत मूर का कथन है कि सार रूप में एक वस्तु सदा ही अपने संबंधों से भिन्न होती है। इसलिए कोई भी वस्तु अपने मे निहित प्रणाली की प्रकृति से निर्मित नही होती। ब्रेडले के एकेश्वरवाद के विरुद्ध उठाया गया, मूर और रसेल द्वारा प्रस्तुत यह प्रमुख स्वर था। होने का मतलब ही स्वतंत्र होना है। प्रिंसिपिया एथिका के प्रारंभिक पृष्ठ पर बटलर की यह उक्ति मूर ने उद्धृत की है," एक वस्तु जो है वही है और अन्य कुछ भी नही"–यह ऐसा उद्धरण है जो एकेश्वरवाद के प्रति उनकी असहमति को प्रकट करता है।

यह मूर के द्वारा प्रत्ययवाद के खण्डन की शास्त्रीय पृष्ठभूमि है। (माइण्ड 1903 स्टडीज मे पुन मुद्रित)।[1] यथार्थवादी आन्दोलन के लिए रहे इस निबन्ध के महत्व को नजर दाज नही किया जा सकता है। मूर जैसे तीव्र आलोचक ने भी 1922 मे लिखा कि अब यह स्पष्ट दिखाई देता है कि यह विचार काफी उलझा हुआ है–और इसमे बहुत सी भीषण गलतियां भी है। यह बात अब दूसरी दृष्टि से ऐतिहासिक महत्व की हो गई है। सूक्ष्मतम दार्शनिक प्रणाली का यह प्रथम उदाहरण है। इसमे बहुत ही सतर्कतापूर्वक विभिन्न पहलुओं का अन्तर किया गया है। इसके द्वारा सुझाई गई यह बात कि इस प्रश्न की अपेक्षा वह प्रश्न अधिक सार्थक है– यह' और वह नामक शब्द अन्य विचार प्रणालियों मे एक ही समस्या के वैकल्पिक रूपों मे ही अब तक प्रस्तुत किए जाते रहे थे। मूर की इस विशिष्ट दार्शनिक शैली का उल्लेखनीय प्रभाव उनके कम्ब्रिज के अनुयायियों मे काफी रहा।

इस प्रकार वे इस बात को स्पष्ट करते हुए अपनी विचारधारा का समारम्भ करते हैं कि वे रिफ्यूटेशन आव आइडियलिज्म के जरिए क्या उपलब्ध करने की आशा करते हैं? वे प्रत्ययवादी इस मूल धारणा का कि सत्य आध्यात्मिक है विरोध नही करते। उनका उद्देश्य तो अपेक्षाकृत सीमित है। उनका विचार है कि तर्कवाक्य ऐसा कुछ अवश्य है जो सभी प्रकार की प्रत्ययवादी युक्तियों को मूलत अभिव्यक्त कर सकता है। फिर भी इस कारण प्रत्ययवादी निष्कर्षों की स्थापना कर

---

[1] द्रष्टव्य सी० ए० स्ट्रोंग कृत हैज मिस्टर मूर रिफ्यूटेड आइडियलिज्म? (माइण्ड 1905), ए० के रोजर्स द्वारा लिखित मिस्टर मूर्ज रेफ्यूटेशन आव आइडियलिज्म (द फिलोसोफी आव जी० ई० मूर) बी० बोसांके कृत द मीटिंग आफ एक्स्ट्रीम्स इन कन्टेम्पोरेरी फिलोसोफी (1921)

देना पर्याप्त नहीं होगा। प्रत्ययवादी निष्कर्ष का संकेत देने वाले तर्क वाक्यों की आलोचना करना ही उनका प्राथमिक उद्देश्य था यदि वे यह प्रदर्शित कर सके, कि निष्कर्ष गलत है, तो चाहे प्रत्ययवादी विचारधारा कितनी ही सही क्यों न हो, उसका सही सिद्ध होना असंभव हो जायगा।

'होने का अर्थ प्रत्यक्ष में होना है" इस प्रत्ययवादी धारणा को दोषपूर्ण बताने के लिए रिफ्यूटेशन आव आइडियलिज्म लिखा गया है। लेकिन इस सम्बन्ध में और अधिक अन्तर स्पष्ट किए जाने आवश्यक हैं। प्रत्ययवादी प्रणाली मूर की दृष्टि में अत्यन्त दुविधाजनक है। मूर प्रत्ययवाद के उन स्थलों पर अपना ध्यान केन्द्रित करते हैं जिन्हें दार्शनिक दृष्टि से महत्वपूर्ण माना गया है। इस व्याख्या के अनुसार इस प्रणाली में यह कहा गया है कि यदि अ नामक किसी वस्तु के अस्तित्व में होने का ज्ञान हमें हो गया है तो इससे यही तात्कालिक निष्कर्ष निकलता है कि उसका प्रत्यक्षीकरण भी कर लिया गया है। इस तरह जाने जाने का पर्याय ही प्रत्यक्षीकृत होना सिद्ध होता है, तो इन दोनों में तादात्म्य नहीं हो सकता। प्रत्ययवादियों ने प्रस्तुत अवस्था पर इस ढंग से विचार नहीं किया है। यद्यपि जब वे यह कहते हैं, कि होने का अर्थ ही प्रत्यक्षीकृत होना है, तो उसका अर्थ यही हुआ कि होना और प्रत्यक्षीकृत होना दोनों में तादात्म्य है। इस तरह आधारभूत प्रत्ययवादी धारणा के लिए प्रमाणों की आवश्यकता नहीं रह जाती और इसका यह अर्थ हुआ कि वे पीला होने एवं पीला होने से सम्बन्धित संवेदनाओं के बीच का भेद देख नहीं पाए हैं।

मूर यह मानने को तैयार हैं कि कुछ प्रत्ययवादियों ने स्पष्टतः यह कहा भी है कि उपर्युक्त भेद विद्यमान है लेकिन इसके साथ ही साथ उनका मत है कि अमुक भेद वास्तविक नहीं है। पीला और पीला होने से संबंधित अनुभव को आवयविक एकता के कारण एक सूत्र में बंधा हुआ मान लेना 'एक तर्कसंगत अमूर्तीकरण' नहीं कहा जा सकता और अपनी भिन्न भिन्न संघटनात्मक प्रकटावस्था के होते हुए भी ऐसा मान लेना तो मूर के अनुसार सत्य से आंख मूंद लेना होगा। मूर इस प्रकार की सुविधात्मक स्थिति को कभी स्वीकार नहीं करना चाहते। आवयविक एकता के सिद्धान्त का यही उपयोग रहा है कि दो विरोधास्पद तर्कवाक्यों को सुविधानुसार कायम किए रहने का अवसर इसमें मिल जाता है। ऐसे मामलों में तथा कुछ और भी अन्य अवसरों पर हीगल के दर्शन का प्रमुख योग दान यही था। जो बात दार्शनिकों एवं विचारकों को दोषपूर्ण दिखाई देती थी, उसके विषय में भी उन्होंने एक सिद्धान्त निर्माण कर दिया। आश्चर्य नहीं है कि उनके काफी प्रशंसक एवं अनुयायी हैं। केम्ब्रिज क्षेत्र में मूर के नेतृत्व में हीगल और हीगल से उपजी विसंगतियों के विरुद्ध घृणा उत्पन्न करने के लिए आन्दोलन हुआ। इस

आदोलन की सभावना को बल भी इसलिए मिला कि उस वक्त वह विश्वविद्यालय मक्टेगट के प्रभाव में था। मूर यह प्रश्न करते हैं कि हीगलवादी प्रणाली के विरुद्ध क्या प्रस्तुत स्थिति है अथवा नही ?

मूर यह मानते हैं कि पीले का पीले की सवदनाओ के साथ मिला दन के भी कुछ कारण हो सकते है। जब हम अपनी अधिक ज्ञान की क्रियाओ का परीक्षण करते हैं, और यह देखते हैं कि अमुक अमुक सवेदनाओ के कारण नीले रग से सम्बधित मानसिक क्रिया हमारे अनुभवो से फिसल रही है तो हम एक पारदर्शी मुहावरे' का प्रयोग करत हुए यही कहते है कि कोशिश करन पर नीले क अतिरिक्त कुछ भी देख नही पाते। इस प्रकार की पारदर्शिता के कारण मूर को यह विश्वास हो गया है कि क्रिया एवम् पदाथ के बीच का भेद निश्चय ही कही विद्यमान है। नीले की सवेदनाए लाल की सवेन्नाओ के साथ अवश्य ही कुछ साम्य रखती हैं। इन दोनो अवस्थाओ के बीच चेतना की समानता है किन्तु इससे यह गलत धारणा नही बना लेनी चाहिए कि नीला और लाल चेतना के उपकरण है।

सही विश्लेपण से यह बात प्रकट होगी कि एक सवेदना अथवा प्रत्यय का मतलब किसी वस्तु को जानने, उसके प्रति सचेत होने अथवा उसका अनुभव करन से है। यह कहना कि हम लाल रग की सवेदना हो रही है हमारी चेतना को लाल कह देना नही है। और न ही इससे किसी विशिष्ट मानसिक प्रतिरूप का सकेत मिलता है। लाल रग की सवेदना होन का अथ यही है कि हम किसी लाल वस्तु के प्रति सचेत हो रहे हैं।

परम्परागत ज्ञानमीमासा के लिए सदव ही यह समस्या रही, कि हम किस प्रकार हमारे प्रत्ययो अथवा सवेदनाओ की परिधि के बाहर निकल सकते हैं। मूर की दृष्टि मे यह कोई समस्या ही नही है। एक सवदना प्राप्त करन का मतलब ही यह है कि आप पहल से ही उस वृत्त से बाहर आगए हैं। किसी ऐसी वस्तु का ज्ञान प्राप्त करना जो मेरे अनुभव का अश कभी नही रही—निश्चय ही किसी वस्तु को जानना ही हुआ। हम कभी भी इस सबध मे हमारी सचेतना क प्रति ही सचेत नही होते हैं। इस तथ्य से अपरिचित रहन क कारण केवल यहा एक विशिष्ट प्रकार की सचेतना ही रहेगी।

प्रश्न अब भी रहता है कि यह 'कुछ' क्या है जिसके प्रति मैं सचेत हुआ हू ? रिफ्यूटेशन आव आइडियलिज्म नामक ग्रथ के अनुसार यह एक भौतिक पदाथ हो

जब हम यह कहते हैं कि हम 'शैल्फ' पर दो किताबें देख रहे हैं तो मूर के अनुसार जो कुछ हम वास्तव में देखते हैं वह तो एक साथ रखे हुए बहुत से रंगों के कई धब्बे मात्र हैं। ये ही वे अनुभव हैं जिन्हें बाद में उन्होंने ऐंद्रिय उपकरण (सेंस डाटा) कहा है। सम प्रोबलेम्स आव नोलेज में वे इस बात का स्पष्टीकरण देते हैं कि क्योंकि संवेदनाएं कहने के बजाय वे ऐसे अनुभवों को ऐंद्रिय उपकरण कहना अधिक पसन्द करते हैं। संवेदनाएं कहना इसलिए भी भ्रामक लगता है, कि इससे मेरे द्वारा किए गए किसी अनुभव का अर्थ भी निकल जाता है। उदाहरण के लिए रंग के धब्बे अथवा स्वयं रंग के टुकड़े के रूप में भी इसे प्रयुक्त किया जा सकता है। मूर अनुभोक्ता को अनुभूत से बिल्कुल अलग कर देना चाहते हैं क्योंकि उन्होंने अब भी रिफ्यूटेशन आव आइडियलिज्म नामक प्रमुख सिद्धान्त को छोड़ा नहीं था। यह देखे जा सकने के लिए यह ऐंद्रियोपकरण आधार नहीं है। क्योंकि कम से कम यह तो विश्वास किया ही जा सकता है कि मेरे न देखने के बावजूद भी रंग का धब्बा या कोई पदार्थ अस्तित्व में तो हो ही सकता है। मेरा अब उस रंग के धब्बे को देखना इस बात की पहचान है कि रंग के धब्बे संबंधी मेरा अनुभव भी समाप्त हो गया है।'

इस अर्थ में मूर का ऐंद्रियोपकरण लोक के प्रत्यय से काफी भिन्न[1] है। यह हमारे मन में विद्यमान नहीं है। मूर को अभी भी उन आपत्तियों का उत्तर देना था जो बर्कले ने लोक के विरुद्ध उठाई थी। यदि जो कुछ हम देखते हैं, वह तमाम एक रंगीन धब्बा है तो इस बात को हमारे पास क्या प्रमाण है कि तीन आयामों की वस्तुएं भी इस दुनिया में विद्यमान हैं।

मूर का उत्तर है कि यह बताने के लिए कि भौतिक पदार्थ है हम किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। क्योंकि यह कुछ ऐसा है, जिसे हम पहले से ही जानते हैं। द नेचर एण्ड रीएलिटी आव द आबजेक्ट आव परसेप्शन में उन्होंने पहले से ही टामस रीड की प्रशंसा में कुछ लिखा है। अपने बाद के निबंधों में तो उन्होंने

---

[1] मूर तथा स्टाउट (जो मूर के अध्यापक भी रहे थे) में परस्पर समानताएं तथा विभेद उल्लेखनीय हैं। द्रष्टव्य द स्टेटस आव सेंस डेटा' (पी ए एस 1913) पर स्टाउट और मूर में हुआ विचारमन्थन। साथ ही इन पर लिखे विभिन्न निबंध, द फिलोसोफी आव जी ई मूर में जे बी प्रैट का निबन्ध मिस्टर मूर्स रिएलिज्म (जे पी 1923), एम सी स्वाबी मि जी ई मूर्स डिस्कशन आव सेंस डेटा' (मोनिस्ट 1924), ए ई मर्फी टू वर्शंस आव क्रिटिकल फिलोसोफी' (पी ए एस 1936), टी पी नन का सेंस डेटा एण्ड फिजिकल आब्जेक्ट्स' (पी ए एस 1915)

स्पष्टतः रीड का बाना ही पहन लिया है। यह बात विशेष रूप से कण्टेम्पोरेरी ब्रिटिश फिलोसोफी में लिखे निबंध ए डिफेंस ऑव कामनसेंस तथा ब्रिटिश अकेडेमी भाषण माला में द प्रूफ ऑव एक्स्टरनल वर्ल्ड पर दिए गए उनके भाषण (पी० बी० ए० 1939) से परिलक्षित होता है।

वे इस बात को निश्चयपूर्वक जानते हैं कि सामान्य बुद्धि से प्राप्त जगत् के प्रति हमारा दृष्टिकोण, जिसको उन्होंने विश्वास से वर्णन किया है, ही सही है। उदाहरणार्थ वे यह जानते हैं कि ऐसे जीवित प्राणी इस संसार में हैं जिन से वे बातचीत कर सकते हैं। जो दार्शनिक इस बात से इन्कार करता है, कि उसके अलावा और कोई है ही नहीं, उसके द्वारा उक्त व्यक्ति के न होने से संबंधित चर्चा का उठाया जाना उस व्यक्ति के बारे में ही संकेत देना होगा। वास्तव में यदि थोड़ा हिचकपूर्वक भी स्वीकार करें तो सामान्य बुद्धि के दृष्टिकोण से इसके सत्य की ही सिद्धि की गई है। 'सामान्य बुद्धि के दृष्टिकोण' नामक मुहावरे का कोई अर्थ नहीं होगा यदि ऐसे व्यक्ति दुनियाँ में न हों जिनके विचार मिलते हों अर्थात् जब तक कि 'सामान्य बुद्धि दृष्टिकोण' सही न हो तब तक ऐसा संभव भी नहीं है।

प्रूफ ऑव एन एक्सटरनल वर्ल्ड में मूर का दृष्टिकोण बहुत साफ है। इतना साफ कि वह एक चर्चा का विषय बन गया। वह तथ्यों को उजागर करता है। ऐसे तथ्यों को जिन्हें उन्होंने अपनी प्रारम्भिक रचनाओं में दर्शन के लिए अनुपयुक्त कहकर त्याज्य माना था। किन्तु उनकी तर्क प्रणाली पर शीघ्र ही लगभग 1910-11 के अपने ही भाषणों के दौरान किसी का साया पड़ना प्रारंभ हो गया था। उस समय ह्यूम की आलोचना करते हुए उन्होंने यह लिखा था– यदि ह्यूम के सिद्धान्त सही हैं तो मैं यह कभी नहीं जान पाऊँगा कि कैसे एक पेंसिल भी अस्तित्ववान हो सकती है। लेकिन उसके ज्ञान के विषय में मुझे कोई संदेह नहीं रहता।' ऐसी स्थिति में ह्यूम की विचारधारा को सही माना नहीं जा सकता। यह सब तो मात्र एक टालना है और जानबूझ कर एक शंका प्रस्तुत करता है। किन्तु जहाँ तक ह्यूम की तर्कशक्ति का प्रश्न है वह पूर्णतः अच्छी एवं सीधे निष्कर्ष की ओर ले जाने वाली है। बजाय यह प्रश्न हल करने के कि ह्यूम के सिद्धान्त सही हैं अथवा गलत हम इसी बात का विश्वास है कि जो वस्तु हमारे सम्मुख है वह तो है ही। और इस प्रकार सम्मुख प्रस्तुत हुई वस्तुओं को तथ्य के रूप में देखकर हम उसे ह्यूम की विचारधारा का खण्डन करने के उपयोग में ला सकते हैं। इसी भाँति प्रूफ ऑव एन एक्स्टरनल वर्ल्ड में मूर यह कहते हैं कि बाह्य जगत् की वस्तुओं के होने को मैं भी सिद्ध कर सकता हूँ। उदाहरण के लिए मैं यह सिद्ध कर सकता हूँ कि मनुष्य के दो हाथ होते हैं। कोई पूछे कैसे ? तो मैं अपने एक हाथ में दूसरा पकड़ कर कहूँगा–यह एक हाथ रहा। फिर अपने हाव भाव को बदल कर दूसरे का पहले हाथ से पकड़कर कहूँगा, यह रहा दूसरा हाथ।

यदि इसी भाति भौतिक वस्तुओ का प्रदशन किया जाना समव हो तो यह प्रश्न रह ही जाता है कि जिन स्थितियो के जरिए हम उन्हे देखते हैं, उनसे इन वस्तुओ का क्या सबध है ? हम उन्ह अनुभव करते हैं सू घते हैं या चखते हैं ? दो बातें उन्ह स्टाउट की भाति स्पष्ट रूप से समझ म आ गई थी । हमारे प्रत्यक्षीकरण की तात्कालिक वस्तुए तो हमारे ऐन्द्रिय उपकरण ही होती हैं । और हम इससे केवल मात्र यह जानते हैं कि भौतिक पदाथ हैं । उनकी समस्या यही पता लगाना थी, कि जो हम प्रत्यक्ष देखते हैं वह उससे किस भाति सबधित है जिसके जरिए हम उसके विषय म एक दम जान लेते हैं । उदाहरणाथ, यह वाक्य ले — इसका प्रत्यक्ष अनुभव मैं कर रहा हू—यह मेरे हाथ की सतह का एक हिस्सा है । मूर को यह विश्वास है, कि इस वाक्य मे कुछ तो ऐसा है ही जिसम प्रत्यक्षीकरण हम तत्काल ही करते हैं । उन्ह विश्वास है, कि हाथ तो है ही और यह भी कि हाथ की सतह भी है । लेकिन वे यह कहने म कठिनाई अनुभव करते हैं, कि जिसका प्रत्यक्षीकरण हमने तात्कालिक रूप से किया है वह हाथ की सतह ही है—अथवा वह उस हिस्से का आभासमात्र है । मिल की भाषा म कहे तो वह सतह हम वास्तविक, एव समावित ऐन्द्रिय चेतना की नाम रूप ग्रहण करती हुई अवस्था के अतिरिक्त और कुछ नही । विभिन्न प्रकार के लोग उसी सतह के विषय म एक ही समय मे ऐसी ऐन्द्रियानुभूति प्राप्त करते हैं, जो पूणत हाथ की सतह हो ही नही सकती । कुछ लोग तो वहा चिकना अश देखते हैं, कुछ खुरदरा, लेकिन सतह चिकनी और खुरदरी एक साथ नही हो सकती । ऐन्द्रिय उपकरणा म से किसी एक उपकरण का ही सतत मान लेने का कोई कारण नही है । तो भी ऐन्द्रियोपकरण को आभास मान लेना प्रतिनिधि प्रत्यक्षीकरण की उन्ही परिचित समस्याओ को दुबारा उठाना ही हुआ । मिल का हल भी अधिक अच्छा नही है । उसने उसे असभव रूप स जटिल एव विस्तृत कर दिया है । इसके अतिरिक्त इस हल की खामी यह है कि वह हमारी इस प्रबल आस्था पर सदेह करता है कि हमारे हाथ बिना प्रत्यक्षीकरण के भी विद्यमान रह सकते हैं । सत्य तो यह है कि इस विषय मे सही उत्तर क्या है, इस सबध 'मैं भी परेशान हू ।' [सम जजमेण्ट्स आव परसेप्शन (पी० ए० एस० 1918, पुनमु द्रित स्टडीज म)]

तो भी सत्य और विश्वास के मसले की तरह दाशनिको के भ्रम का कारण जितना कुछ वे जानते हैं उसके विषय म, नही बनते—ऐन्द्रिय उपकरण हैं, और भौतिक पदाथ भी, एक बार फिर वे अपने अनिश्चय का यह कहकर दुहराते हैं यद्यपि वे यह बात भली भाति जानते हैं 'यह हाथ की सतह है' एक सत्य कथन है किन्तु वे यह नही जानते कि इसके सत्य का सही विश्लेषण किन तत्वो द्वारा होना चाहिए । मूर के अनुयायियो का विचार था कि सही तकवाक्यो एव उनके विश्लेषण के इस भेद

को प्रकट करने के प्रयास म ही वे दशन की प्रकृति से सबधित एक सिद्धात का खोज निकाल सकते हैं। इस प्रकार जोन विजडम ने मूर क विषय म यह लिखा, जिस पर मर का आक्रोश भी हुआ था कि मर के लिए दशन विश्लपण मात्र ह **और** यह दखना कठिन नही है कि विजडम इस निष्कष पर क्यो पहुच।

मूर न कवल निरतर एक विश्लेपणात्मक प्रणाली अपनात हैं और न केवल व यह सुझाव देते हैं कि बहुत से वचारिक ममलो म तो, मूल समस्या केवल यह है कि विश्लपण की एक प्रणाली किस प्रकार निकाली जाय बल्कि अपने लेख द नेचर एण्ड द रीएलिटी आव द आबजक्टस आव परसेप्शन' म व यह स्पष्ट प्रतिपादित करना चाहते है कि विश्लेपण प्रणाली के वयक्तिक अन्तर ही वस्तुत वे मौलिक अतर हैं जो एक दाशनिक को दूसरे दाशनिक से भिन्न करते हैं। सारे दाशनिक इस बात पर सहमत ह कि मुर्गिया अडे देती हैं। फिर भी कुछ लोग इस बात पर सहमत होंगे और कुछ असहमत कि ऐसे तकवाक्यो का विश्लेपण परस्पर कुछ विशेप प्रकार का सबध बताने वाने कथनो क जरिए भी हो सकता है।' तो भी मूर प्रबल रूप से इस बात का खण्डन करते ह कि उ होने दशन एव विश्लेपण का तादात्म्य कर दिया ह। स्पष्टत सामाय बुद्धि का अतर उदाहरणाथ अपने आप म विश्लेपण नही हैं। सचाई यह है मूर द्वारा किए गए विश्लेपणात्मक प्रणाली के प्रयोग से केम्ब्रिज दाशनिक शतो के निर्धारण म दाशनिको की पीढी को काफी सहायता मिली है। मूर का विश्नेपण से क्या अभिप्राय है इसका उत्तर सरलता स नही दिया जा सकता। कदाचित् इसकी सबस अच्छा व्याख्या सी० एच० लगफोड द्वारा प्रस्तुत उनकी आलोचना पर दिए गए मूर क जवाब मे मिल सकती है। फिलोसोफी आव जी० ई० मूर नामक ग्रथ म उ होन यह निबध मूस नोशन आव एनालिसिस' शीपक से लिखा था।

इसी धारणा का विश्लपण करन के लिए मूर यह सुझाव दते हैं यह आवश्यक है कि एक ऐसी दूसरी धारणा खोज निकाली जाए जो विश्लेष्या धारणा के समान तो हो ही किन्तु जिसे उन धारणाओ का सदभ देते हुए दूसरे ढग म प्रस्तुत किया जा सकता हो जिन्ह मौलिक धारणा म प्रयुक्त अभिव्यक्तियों म व्यक्त न किया गया हो।[1] उदाहरण क लिए यह बात स्पष्ट हो सकती है कि परिवार

---

[1] 1934 के एनालिसिस म द जस्टीफिकेशन आव अनालिसिस नामक लख दखें। इस पत्रिका की स्थापना विश्लेपण प्रणाली पर आधारित सक्षिप्त लखो के प्रकाशन के लिए हुई थी। और विश्नेपण पर सामग्री एव निबध प्राप्त करने के लिए इस पत्रिका को देखा जाना चाहिए। विश्लेपण के लिए सामायत इसी पुस्तक का प द्रहवा अध्याय देखें। जे० ओ० अम्सम कृत फिलोसोफीकल एनालिसिस (1956)

के सदस्य नामक मुहावरे से 'भाई' का सही विश्लेपण हो सकता है। ये दोनो धारणाए मेल खाती हुई हैं। तो भी परिवार के नर सदस्य नामक अभिव्यक्ति म जो धारणाए व्यक्त की गई है वे 'भाई' मे व्यक्त नही हुई हैं। मूर अपने उन अनुयायियो से सहमत नही हैं, जिनके लिए विश्लेपण प्रस्तुत करने का मतलब एक विशेष अभिव्यक्ति को प्रयुक्त करना ही है। मूर का विचार है कि जिनका विश्लेपण किया जाता है वे धारणाए ही हैं, अभिव्यक्ति नही हैं। और धारणाओ से ही विश्लेपण किया जा सकता है। यदि शाब्दिक अभिव्यक्तियो का विभिन्न अवस्थाए बताने के लिए प्रयोग न किया गया होता तो विश्लेपण किया जाना कदाचित् असम्भव होता। मूर यह स्वीकार करते हैं कि दो धारणाओ के तादात्म्य का सकेत देकर हम एक के सबध म किस प्रकार कोई सूचना दे सकते हैं। इसका स्पष्ट उत्तर उनके पास नही है। न वे जो कुछ खण्डित कर रहे है उसका अ तर ही बता सकते है। उदाहरण के लिए, किसी वस्तु का बारह कोणीय होना इस बात का सकेत नही है कि वह एक घन (क्यूब) है। इन मसलो पर मूर की अनिश्चितता स उत्प न असतोष के फलस्वरूप उनके अनुयायियो को सतक भाषायी विश्लेपण की ओर ही प्रवृत्त होना पड़ा।

थोडे से भिन्न स्रोतो से उपजा रसल[1] के प्रति उनका असतोष भी कुछ-कुछ

भी देखें। पी० ए० एस० एस० 1934 म प्रकाशित यह निबध इज एनालिसिस ए यूजफुल मेथड इन फिलोसोफी ? जिसे एम० ब्लक, जान विजडम, तथा एम० कोलफोथ ने लिखा है, देखें। द्रष्टव्य ए० ई० डन्कन जो स एव ए० जे० एयर कृत, इज फिलोसोफी एनालाइज कामनसे स ? (पी ए एस एस 1937), एल०एस० स्टेबिंग कृत दी मेथड आव एनालिसिस इन मेटाफिजिक्स (पी० ए० एस० 1932) एव सम पजल्स अबाउट एनालिसिस (पी० ए० एस० 1938), एम० ब्लक कृत फिलोसोफीकल एनालिसिस (1932 पी० ए० एस०), दी पेराडोक्स आव एनालिसिस (माइण्ड 1944,1945), हाउ केन एनालिसिस बी इनफारमेटिव ? (पी पी आर 1945), एव 1950 में फिलोसाफीकल एनालिसिसस नामक ग्र थ मे उनके द्वारा लिखित भूमिका, ए० सी० एविंग द्वारा लिखित टू काइण्डस आव एनालिसिस (एनालिसिस 1935 एव 1948 म फिलोसोफी स्टेडीज) एसज इन मेमोरी आव एल० सूसान, स्टेबिंग म फिलोसोफीकल एनालिसिस नामक अध्याय, सी० लवी कृत सम रिमाकस आन एनालिसिस (एनालिसिस 1937), एम० मेकडोनाल्ड द्वारा फिलोसोफी एण्ड एनालिसिस 1954 नामक ग्र थ की भूमिका।

[1] विशेषत द्रष्टव्य दि फिलोसोफी आव बर्टेण्ड रसेल (सम्पादक शिल्प 1944) इसी ग्रथ में एनालिसिस एण्ड दी यूनिटी आव रसल्स फिलोसोफी। रसेल के दशन के सामा य स्वभाव को बताने के लिए एम० वज कृत निब ध द्रष्टव्य हैं। सी० ए०

वसा हो था । रसल और मूर जसे दाशनिक रूप म आगे बढे, वसे वसे वे अलग होत गए। रसेल कत हिस्ट्री आव वेस्टन फिलोसोफी अथवा ह्यूमन नोलेज इटस स्कोप एण्ड लिमिटस (1948) के वहद् वणावत्त मूर की सतक सक्षिप्त रचनाओ से बहुत भिन्न हैं। इस मामले म बहुत मे युवक विचारको की सहानुभूति मूर के साथ रहती है। अपनी अधिक मुखर आलोचना[1] सहित रसल दशन की उस परम्परा के अग रहे हैं जो उस विज्ञानो का विज्ञान मानते हैं। अपने समय के युवक चितको की अकलुषित विचार धारा के अनुसार इस प्रकार मुखर होकर अपनी अनुमानात्मक महत्त्वाकाक्षा को प्रकटाना अशिष्ट ही है। वे रसेल के प्रारम्भिक स्वरूप के महत्व को स्वीकार करते है किन्तु उनकी बाद की रचनाओ को वे अनदेखा ही रख देते हैं।

लेकिन तो भी रसेल के दाशनिक दृष्टिकोण म कोई महत्त्वपूण परिवतन लक्षित नही होता। 1600 मे लिखी ए क्रिटिकल एक्सपोजीशन आव द फिलोसोफी आव लेबनीज नामक अपनी प्रारभिक रचनाओ मे ही उन्होन वे चिह्न प्रकटाने प्रारम्भ कर दिए जो इस समय लोगो के लिए विषाद और चिंता का कारण बन रहे थ। उदाहरणाथ वे लेबनीज की भौतिकी म ऐसा कुछ पाते हैं जो दशन से कटा हुआ न होकर उसस तारतम्य रखता है। यह बहुत स्पष्ट है कि रसेल ऊपरी तौर से भिन्न दिखने वाली घटनाओ को एक सामान्य सिद्धान्त म पिरो लेना चाहते

फिश बर्टेंडर सेल्स कान्स्ट्रक्शन आव दी एक्स्टनल वल्ड (1953) इसम उपयुक्त शीषक से अधिक जटिलता स विषय वर्णित किया गया है। जी० सन्टयाना कत विन्ड्स आव डाक्ट्रीन (1193) म फिलोसोफी आव बर्टेण्ड रसेल नामक अध्याय देखें। हिस्टी आव वेस्टन फिलोसोफी 1945 मे द फिलोसोफी आव लोजिकल एनालिसिस वाला अध्याय देखे। पी० ई० जोर्डायन कत फिलोसोफी आव बर्ट्रेण्ड रसेल 1918) रिविस्ताक्रितिकारी दी स्तोरिया डेला फिलोसोफिया नामक पत्रिका का रसेल विशेषाक 1953, ए० डोवड कत बर्ट्रेण्ड रसेल (1950) एव रसेल द्वारा लिखित माई फिलोसोफीकल डवलपमेंट (1958)।

[1] अवर नोलेज आॅव द एक्स्टरनल वल्ड एज ए फील्ड फोर साइण्टिफिक मेथड इन फिलोसोफी (1914) म इसे उल्लेखनीय ढग स प्रस्तुत किया गया है। दशन की नयी आत्मा विशाल अपरीक्षित सामान्य स्थितियो के स्थान पर छोटी छोटी विस्तृत एव परीक्षण योग्य स्थितियो को रख देने म हैं जो हमारी कल्पना म किसी सामान्य प्रभाव से प्रस्तुत हो जाती हैं। यह उनके समसामयिक लोगो के दृष्टिकोण को समेटता हुआ एक प्रशसायोग्य कथन है। किन्तु स्वय रसेल का दशन छोटी छोटी स्थितियो के परिणाम से निःसृत नहीं है। हो सकता है यह विशाल अपरीक्षित सामान्य स्थितियो से ही निर्मित हो।

हैं। ऐसा करते समय उन्हें सदैव ही यूरोप में 17वीं शती से हो रही विकसित वैज्ञानिक परम्परा का ध्यान रहता ही है और जो उनके अनुसार शास्त्रीयकरण को अलग अलग करके देखने की वृत्ति में काफी विपरीत है। उन्होंने इसी वृत्ति के विरोध में प्रबल प्रतिक्रिया व्यक्त की है और यहां आकर कम से कम दर्शन के क्षेत्र में एक मोड़ आता हुआ लगता ही है। रसेल को आधुनिक डेकार्ट कह देना अत्युक्ति नहीं होगी जबकि मूर के लिए इस प्रकार का विशेषण लगाना अच्छे अथवा बुरे किसी भी अर्थ में उपयुक्त नहीं है।

रसेल कृत लेबनीज की एक दूसरी विशेषता है महाद्वीपीय शास्त्रीय पद्धति एवं अनुमान की उसके द्वारा की गई असाधारण प्रशंसा। रसेल में कहीं भी संकुचित विचारों अथवा हठधर्मिता के चिह्न नहीं मिलते। वे सदैव ही यह स्वीकार करने को तैयार हैं, जो कई बार अत्युक्ति सी हो लगती है कि उन पर सभी पूर्ववर्तियों का काफी प्रभाव है। उनकी रचनाओं में अपने सहयोगियों से कुछ भी ग्रहण करने की अद्वितीय क्षमता विद्यमान है। कई बार तो वे विदेशी प्रभाव भी ग्रहण कर लेते हैं। यह एक ऐसी क्षमता है, जो उनकी मस्तिष्कीय शक्ति को लांछित करने वाली जैसी लगती रही और इतिहासकार के लिए एक जटिल कार्य छोड़ गयी।

तीसरे, रसेल प्रारम्भ से ही दर्शन के लिए एक विशिष्ट दृष्टिकोण रखते थे जो उन्हें तर्कशास्त्र और गणित से नजदीक में जोड़ देता है। उनका कहना है कि सभी गंभीर दर्शन तर्कवाक्यों के विश्लेषण से प्रारम्भ होने चाहिए—क्योंकि यह एक सत्य है जिसके स्वीकार करने के लिए किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार जहां उनके पहले के टिप्पणीकारों की दृष्टि में लेबनीज एक ऐसे विश्वव्यापी दृष्टिकोण का निर्माण करना चाहते थे जो विज्ञान और धर्म का समन्वय कर दें, वहां रसेल की दृष्टि में लेबनीज के दर्शन का मूलभूत बिन्दु अपने उच्चवर्गीय पत्रलेखकों को झूठे संतोष के लिए उन्होंने जो काल्पनिक जगत् निर्मित किया था, उससे परे—उनकी इस आस्था में निहित है कि सभी तर्कवाक्यों का उद्देश्य विधेय आकार में बदला जा सकता है, अर्थात् उनकी दृष्टि में उन तर्कवाक्यों में निहित संबंधों के पद निर्णायक कुछ ऐसे अंशों में विभक्त किया जा सकता है जिनके परस्पर संबंध हों। एक बार यह कदम हम उठा लें तो लेबनीज का तत्ववादी निष्कर्ष हमें मानना पड़ता है, या फिर परमात्मिक प्रत्ययवाद ही एक मात्र विकल्प रह जाता है। यदि किसी तर्कवाक्य में क्ष य से सम्बन्धित है, तो क्ष का य से संबंध, किसी गुण को व्यक्त करता है। रसेल इसे क्ष का विधेय (प्रेडीकेट) मानते हैं। इससे तत्काल यह निष्कर्ष निकलता है कि क्ष और य वास्तव में भिन्न नहीं हैं। दूसरे शब्दों में क्ष की विभिन्न स्थितियां क्ष के ही अंश हैं। यही बात लेबनीज ने सिद्ध की है। परम प्रत्ययवादियों ने इसी सिद्धान्त को यह सिद्ध करने के लिए भी प्रयुक्त किया

है कि [illegible] भी एक गुणवाची स्थिति है और एक व्यापक सत्ता का अ श है। रसल की दष्टि मे लबनीज की महत्ता एक तत्त्ववाक्य के तात्विक विश्लेषण के दौरान तत्ववादी अवस्थाओ पर विस्तार से चर्चा करने म निहित है।

'साइण्टिफिक मेथड इन फिलोसोफी'–(1914) नामक अपनी कृति जो **मिस्टीसिज्म एण्ड लाजिक** नाम स 1917 म पुन मुद्रित हुई म उ होने यह कहा है कि दाशनिक को नतिक रूप से तटस्थ तथा वैज्ञानिक रूप से निष्पक्ष होना चाहिए। इसके अलावा सभी दशनो को वे पूव-कार्पनिक दशन की सज्ञा देते हुए कहते हैं कि वे सब यह मानकर चलते हैं कि मनुष्य ही अपने विशेष नतिक दायित्वो सहित समष्टि को समझने का एक मात्र सूत्र रह गया है। इस तरह रसेल 'तथ्यो का समक्ष समपण' किए जाने का समथन करते हैं। क्लिफोर्ड द्वारा सिद्धान्त का खण्डन तथा जेम्स द्वारा उसका यह कह कर खण्डन किया जा चुका था कि एसा न तो सभव है न वाछनीय।

यद्यपि **द फिलोसोफी आव लेबनीज** म भी सतक पाठक का ध्यान खीच लेने के लिए काफी सामग्री है, तो भी 1903 मे प्रकाशित **द प्रिंसिपल्स आॅव मैथेमेटिक्स** से ही यह बात स्पष्ट हुई, कि ब्रितानी दशन मे एक नई धारा का प्रवतन हुआ है। दाशनिक प्रत्ययो का तार्किक गणितीय परीक्षण किया जाना दशन के क्षेत्र मे एक नई मौलिक आधारभूमि की स्थापना करना था। और चू कि इस पुस्तक म सबन बौद्धिक वातावरण विद्यमान था इसलिए प्रथम श्रेणी की उपलब्धि के रूप म इसकी छाप सभी पर पडी।

एक बार फिर रसेल महाद्वीपीय विचारधारा से मूलत अपना प्रभाव ग्रहण करते हैं। उनका कहना है कि ज्यामिति की भूमिका लिखते समय उ ह इस बात स परशानी हुई कि यूक्लिड न स्वय सिद्धो स ही प्रारभ किया। और इन स्वयसिद्धो को बिना प्रमाण के मानना पडता है। इसलिए प्रारभ से ही एक ऐसे गणित के विचार ने जिसम कोई कमी न हो और पूणत निश्चित हो रसेल की विचारधारा को आकर्षित करना शुरू कर दिया था। वीयरस्ट्रेस जसे गणितज्ञो ने उ ह इस बात का सकेत दे दिया था कि गणित की क्या गरिमा थी। पीयनो न उ ह एक गणित की निगमनात्मक प्रणाली ईजाद करने के प्रति जागरूक कर दिया था–और यह सभावना प्रकटा दी थी कि किस प्रकार न्यूनतम परिभाषाओ और आदि तत्त्ववाक्यो पर सारा ढाचा खडा किया जा सकता है। लेकिन फ्रेग के उदाहरण से रसेल उपयुक्त लोगो की धारणा स ही सतुष्ट नही हुए क्योकि जब तक कोई निष्कष पूणत तार्किक पदो द्वारा प्रस्थापित न हो तब तक उसे मानना फ्रेगे से उ होने सीखा था।

प्रिंसिपल्स आॅव मैथेमेटिक्स *मे यह बताया गया है कि यह सब कसे हो सकता* है। रसेल वहा यही बताने का प्रयत्न कर रहे हैं कि यह–किस प्रकार ऐसे तार्किक

सिद्धान्तो का निर्माण हो जो किसी गणित सबधी रचना म भी लागू हो सके। भरस्तू क समय स ही सामान्य रूप से विश्वविद्यालयो मे पढाए जाने वाले तर्क-शास्त्र पर गणित का इतना प्रभाव कभी नही रहा। अपने गणित क अध्यापक ए० एन० व्हाइटहेड के सहयोग से तब रसेल तर्कशास्त्र से गणित के सिद्धान्तो के निर्माण म लग जाते हैं, जिसके फलस्वरूप प्रिंसिपिया मैथेमेटिका नामक ग्रथ 1910–13[1] मे लिखा जा सका है। यह प्रतीकात्मक तर्कशास्त्र के लिए एक शास्त्रीय योगदान है जिसकी जटिलता के कारण बहुत से दार्शनिको ने तो यह धारणा बना ली थी कि उस ग्रथ मे प्रस्तुत तर्कशास्त्र उनके लिए नही है।[2]

हुसल की ही भाति रसल तर्कशास्त्र और मनोविज्ञान मे काफी अन्तर मानते हैं। यह तो स्पष्ट ही है कि जब हम एक तर्कवाक्य से दूसरे तर्कवाक्य का अनुमान लगाते हैं तो हम यह इसलिए कर पाते हैं कि उनम प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप स कोई न कोई सबध रहता है। यह सबध, जो

---

2 रसेल पर फ्रासीसी तार्किक गणितज्ञ एल० काउतुरेत का भी प्रभाव रहा था। प्रिंसिपिया मैथमेटिका मे कौन सा अश रसेल का है और कौनसा व्हाइटहैड का, यह भेद करना कठिन है। सिवाय उसकी भूमिका एव उसके द्वितीय सस्करण (1925) के परिशिष्टो के, जिनके विषय म व्हाइटहेड ने अपने को बिल्कुल उत्तरदायी नही माना है। माइण्ड 1948 म प्रकाशित रसेल का निबध व्हाइटहेड एण्ड प्रिंसिपिया मैथेमेटिका देखें। डब्लू वी० ओ० क्वाइन व्हाइटहेड एण्ड राइज ऑव मोडन लोजिक (फिलोसोफी ऑव ए० एन व्हाइटहेड सम्पादक शिल्प 1944) एच० राइकनबक बर्टेण्ड रसेल्स लोजिक (फिलोसोफी ऑव बर्टेण्ड रसेल), एस वाटर नो सम फिलोसोफीकल इम्प्लीकेशन्स ऑव मिस्टर बर्टेण्ड रसेल्स लोजीकल थ्योरी ऑव मैथेमटिक्स, (पी० ए० एस 1909) पी० ई० बी० जोरडेन मिस्टर बर्टेन्ड रसल्स फस्ट वक ऑन द प्रिंसिपल्स ऑव मैथेमेटिक्स (मोनिस्ट 1912) एफ० पी रेमस द फाउण्डेशन्स ऑव मैथेमेटिक्स एण्ड अदर लोजीकल एसेज (1931) एफ० वसमैन इण्ट्रोडक्शन टू मैथेमेटिकल थिंकिग (1936), ज जोरजेन्सन ए ट्राटीज ऑव फोरमल लौजिक (1931) ई० ज० नेल्सन व्हाइटहैड एण्ड रसेल्स थ्योरी ऑव डिडक्शन (बुलेटिन अमेरिकन मेथेमेटिक सोसाइटी 1934)

2 रसल उनके साथ सहमत हैं। व ह्यूमन नोलेज (1948) के आमुख म कहते हैं कि तर्कशास्त्र दशन का अग नही है। इसका यह अथ नही कि वे अपने इस कथन का खण्डन करते है कि तर्कशास्त्र दशन का निचोड है। ह्यूमन नोलेज म तर्कशास्त्र का अथ एक निगमनात्मक प्रणाली की रचना करने से ही है। तर्कशास्त्र जो दशन का निचोड है, यह बताने का प्रयास है कि दुनिया म कितने प्रकार के तथ्य

स्वयं एक अभिप्रेत अर्थ व्यक्त करता है और जिसे मानवी अनुमान की आवश्यकता नहीं है–ही तर्कशास्त्र का मूल विषय है। रसेल के तर्कशास्त्र एवं प्रत्ययवादी ज्ञान रचना के सिद्धान्त में यहां से एक मौलिक अन्तर प्रारम्भ हो जाता है। ड्यूई की तर्कशास्त्रीय जांच पद्धति से भी रसेल अलग धरातल पर खड़े दिखाई देते हैं। वे तो मात्र इस तथ्य को पंजीकृत' करते हैं कि अभिप्रेत विद्यमान होता है। इसके विपरीत ब्रेडले और ड्यूई के लिए अनुमान एक ऐसी रचना है जो जांच-पड़ताल करने के दौरान प्रस्तुत विषय संदर्भ से प्रस्तुत हो जाने वाली एक अवस्था है। किंतु ब्रेडले के दर्शन का विकास भी अनुमान की वस्तुपरकता पर निरंतर ध्यान रखने के कारण हुआ था–और रसेल तो उसी वस्तुपरकता का गहरा आभास करा रहे थे।

द प्रिंसिपल्स ऑव मैथमेटिक्स नामक पुस्तक असाधारण रूप से स्पष्ट इस वाक्य से प्रारम्भ होती है। शुद्ध गणित तर्कवाक्यों की एक ऐसी श्रेणी निर्धारित करता है जिनका रूप प फ को व्यक्त करता है' जैसे वाक्यों से बना है और यहां प और फ ऐसे तर्कवाक्य हैं जिनमें एक या एक से ज्यादा चर (वेरियबल्स) विद्यमान हैं और इन दोनों ही तर्कवाक्यों में सभी चर समान हैं और न तो प और न ही फ तार्किक स्थिरांक के अतिरिक्त किसी अन्य प्रकार के स्थिरांक अपने में समाहित किए हुए हैं। एक स्थिरांक की परिभाषा एक ऐसी पूर्णतः निश्चित वस्तु से की गई है जिसके विषय में कोई दुविधा शेष न रह गई हो। इस तरह 'सुकरात एक मनुष्य है' में सुकरात एक स्थिरांक है, ठीक उस स्थिति के विपरीत जहां यदि अ मनुष्य है तो स मरणशील है' जैसे शर्तकथन में अ की अनिश्चित स्थिति है। अ यहां इसलिए अस्थिर है क्योंकि यह किसी विशिष्ट व्यक्ति की ओर संकेत नहीं करता है। रसेल यह स्वीकारते हैं कि चर का यथावत् वर्णन कर सकना बहुत मुश्किल है। यही बात तार्किक स्थिरांक के लिए भी सही है क्योंकि यह एक विशेष प्रकार का स्थिरांक होता है जो केवल विशुद्ध गणित संबंधी कथनों में ही मिलता है।[1] उनकी दृष्टि को सामान्यतः ऐसे प्रस्तुत कर सकते हैं कि जिस वस्तु का एक सामान्य आकार है उसके अलावा उसका कुछ अन्य आकार भी होना चाहिए। वे इस' अथवा उस' विशिष्ट तत्व का संदर्भ प्रस्तुत नहीं करते। बाद में वे कहते हैं–विशिष्ट नामों का गणित में कोई महत्त्व नहीं है। यह उस प्लेटो–कार्टेजियन सिद्धांत का रसेलीय संस्करण है जिसमें गणित को सारतत्त्व व्यक्त करने वाला विज्ञान कहा है–अस्तित्व मूलक नहीं।

यदि तार्किक स्थिरांक इतने मौलिक हैं कि इन्हें परिभाषित भी नहीं किया जा सके तो कम से कम उनकी गणना तो हो ही सकती है।

---

[1] द्रष्टव्य जे० ए० चेडविक लॉजीकल कॉन्स्टेंटस (माइण्ड 1927)

एक विशेष तकनीकी अर्थ भी
ग का होगा । इस तरह रसेल
परिभाषा गोल मोल है , क्योंकि
स वग के अ य सदस्यो का एक
की या एक ही अ क वाले वग
ो अ का से व्यक्त नही की जाएगी
जाय तो उनका अ क भी एक ही
रने के लिए ही 1 की सख्या की
र अ से ऐस सबध के कारण जुडा
तथा य 1 समान हुगे । उदाहरण
तियो एव यथ पत्नियो के बीच
रलव हुआ कि यदि क्ष य का वैध
एक ही हैं । इसी तरह यदि क्ष, य
हागे । रसल इस तरह यह सिद्ध
नी परिभाषा देने के कारण उनका

ी दाशनिक प्रणाली का केन्द्रबिन्दु
कहते हैं । और इसे कम भ्रामक
सिद्धा त कहे तो बहतर होगा ।
जरिए प्राप्त की जाती है और यह
ााय अ कीय अवस्थाए विद्यमान
करते हैं कि हमारे द्वारा चुनी गई
म बताने का कोई तरीका उपलब्ध
याग कुछ विशेष आकारा को पूण
मच जाता है । यह ऐसे वग का
भी वर्गों का प्रतिनिधित्व करता
है (उदाहरण के लिए 1 1 का
को रद्द नही करती कि इन वर्गों
किन इसके लिए यह आवश्यक
गयम यह स्थिति प्रकटती है, जो
बनी । वस्तु की अवग ओ एव

इण्टरनल रिलेश स मे मूर ने रसेल द्वारा मौतिक रूप से अभिप्रेत है का 'अमुक अवस्था स निगमित है' स तादात्म्य स्वीकार किये जाने को एक दोषपूर्ण बकवास की भी सज्ञा दी है। प एव फ मे निहित सबध का सदभ देने के लिए उन्होने 'लपेट (एन्टेल्स) नामक शब्द का प्रवतन किया जिसे आजकल के सभी दाशनिक सामान्य रूप काम म लेते हैं। यह सबध अब हमे फ के विषय म सही कहने का अधिकार देता है कि यदि प सही है तो फ भी सही है।

भौनाग पर निबध लिखते समय स्वय रसेल म बेचनी के चिह्न प्रकट होते है। विशेषतया उस निष्कष पर कि किन्ही दो सही तकवाक्यो मे परस्पर सिद्धसाधक भाव है। उनका कथन है कि यह बात मानी जानी चाहिए कि एक पक्षीय अनुमान तो व्यावहारिक तौर पर भी बहुत स मामलो म लगाया जा सकता है और इस तरह अतत प्रतीकात्मक तकशास्त्र द्वारा सुझाये गये विचारो स भिन्न हमारे अनुमान म हमारे अनजान ही विद्यमान रहना चाहिए। लेकिन उनका विचार है, अभिप्रेतो पर हुई चर्चाओ स निकले गलत निष्कर्षों का ज्ञानमीमासा की देहरी पर ही छोड दिया जाना चाहिए ताकि प्रतीकात्मक तकशास्त्र को निर्बाध एव मुक्त रूप स जीने का अवसर मिल सके।

सबध सूचको के विषय मे रसल पीयस से अधिक कुछ न कह सके सिवाय बात को अधिक स्पष्ट शब्दों म कह देने के।[1] किन्तु निश्चय ही यह रसेल द्वारा इन पर दिए गए बल के कारण ही है कि आज दाशनिको म इसका प्रचलन हो गया है। वग एव वग सदस्यता विषयक उनका सिद्धान्त आरम्भ मे तो अपने तत्कालीन पूव वर्तियो के पदचिन्हो का अनुसरण करता हुआ दिखाई देता है। प्राकृतिक अको का वे वगविभाजन की दृष्टि से ही वणन करना चाहते हैं और इस परिभाषा के जरिए गणित के मौलिक सूत्रो का भी। पीयानो जसे गणितज्ञो ने यह पहले ही बता दिया था कि गणित के अतिरिक्त सारे अक भी गणित के अको की तरह परिभाषित किए जा सकते हैं। यदि रसल प्राकृतिक अको को वग के विचार से परिभाषित कर सकते हैं तो गणित को अको की आवश्यकता ही नहीं रह जाएगी। और उसे तार्किक स्थिराको स भिन्न देखने की आवश्यकता भी नहीं होगी। गण सख्या की परिभाषा, रसेल यह कहकर देते हैं कि वह सन्व ही एक वग का अक ' । जसे कि सभी वर्गों का एक वग किसी प्रस्तुत वग के समान ही होगा। एक वग के छह सदस्य हैं। यदि यह एक ऐसे सामान्य वग का ही एक उपवग है जो

---

[1] आवर नालेज आफ एक्स्टनल वल्ड (1914) म दिये गए दूसरे भाषण का साराश देखें।

समान रूप से उस वर्ग के सदस्य हैं। यहां इसका एक विशेष तकनीकी अर्थ भी है, कि उसका भी वही अंक है जो अमुक अमुक वर्ग का होगा। इस तरह रसेल को इस आपत्ति का सामना करना पड़ा कि उनकी परिभाषा गोल माल है, क्योंकि वे एक वर्ग के अंक की परिभाषा समान रूप से उस वर्ग के अन्य सदस्यों को एक मानकर दे रहे हैं। उनका उत्तर है कि हम समानता की या एक ही अंक वाले वर्ग होने की परिभाषा दे सकते हैं—और वह परिभाषा भी अंकों से व्यक्त नहीं की जाएगी जैसे जब दो वर्गों का 1 1 के अनुपात से जोड़ा जाय, तो उनका अंक भी एक ही होगा। न ही हम 1 1 के अनुपात को व्यक्त करने के लिए ही 1 की संख्या की आवश्यकता पड़ेगी। एक संबंध 1 1 है, यदि क्ष य म ऐसे संबंध के कारण जुड़ा है और यदि वह उसी भांति य 1 से जुड़ा है तो य तथा य 1 समान होंगे। उदाहरण के लिए यह कहना कि क्रिश्चियन समाज में वैध पतियों एवं वैध पत्नियों के बीच 1 1 का आनुपातिक संबंध है तो उसका यही मतलब हुआ कि यदि क्ष य का वैध पति और क्ष1 य का वैध पति है तो क्ष तथा क्ष1 एक ही हैं। इसी तरह यदि क्ष, य और य1 का वैध पति है तो य तथा य1 एक ही होंगे। रसेल इस तरह यह सिद्ध करने का प्रयास करते हैं कि एक वर्गीय अंकों की परिभाषा देने के कारण उनका सिद्धान्त गोल मोल नहीं है।

अंक संबंधी इस परिभाषा में ही रसेल की दार्शनिक प्रणाली का केन्द्रबिन्दु निहित है जिसे वे अमूर्तीकरण का सिद्धान्त भी कहते हैं। और इसे कम भ्रामक रूप से अमूर्तीकरणों से किनारा कर जाने वाला सिद्धान्त कहें तो बेहतर होगा। सामान्य दृष्टिकोण से एक संख्या अमूर्तीकरण के जरिए प्राप्त की जाती है और वह भी उन समूहों की इकाइयों के जरिए, जिनमें सामान्य अंकीय अवस्थाएं विद्यमान हों। किन्तु रसेल इस बात पर स्वयं ही आपत्ति करते हैं कि हमारे द्वारा चुनी गई एक अवस्था कैसे विद्यमान होती है इसके विषय में बताने का कोई तरीका उपलब्ध नहीं है।[1] 'अमूर्तीकरण का सिद्धान्त' जिसका उपयोग कुछ विशेष आकारों को पूर्ण करके ही किया जा सकता है—इन कठिनाइयों से बच जाता है। यह उस वर्ग का सदस्य देकर अपनी परिभाषा आरंभ करता है जो सभी वर्गों का प्रतिनिधित्व करता है—और परस्पर के एक अद्वितीय संबंध को प्रकटाता है (उदाहरण के लिए 1 1 का प्रत्युत्तर)। इस प्रकार की परिभाषा इस संभावना को रद्द नहीं करती कि इन वर्गों के सभी सदस्यों में एक सामान्य अवस्था भी है। लेकिन इसके लिए यह आवश्यक नहीं है कि ऐसा मानकर ही चलें। यहीं पर सर्वप्रथम यह स्थिति प्रकटती है, जो बाद में जाकर रसेल के दर्शन का मुख्य प्रेरक स्रोत बनी। वस्तु की अवस्थाओं एवं

---

[1] द्रष्टव्य अध्याय 26 (प्रिंसिपिया मैथेमेटिका)।

द्यसाओं की संख्या का अमूर्तीकरण करने के लिए उन्हें अपने को न्यूनतम करके देखना—ताकि थोड़े से थोड़े प्रतीकों द्वारा संसार का पूरा चित्रण किया जा सके।

यदि वर्गों के पदों के रूप में अंकों की परिभाषा अपने आप में विरोधास्पद न भी हो तो भी इससे विरोधास्पद स्थितियों के जन्म ले लेने का खतरा तो है ही। मुख्यतः यह कठिनाई वर्गों के वर्ग बनाते समय सम्मुख आती ही है। यह तो स्पष्ट ही है कि ऐसा करके भी एक वर्ग ही बनेगा इसलिए यह भी सिद्ध हुआ कि यह भी वर्गों के वर्ग का ही एक सदस्य होगा। अर्थात् यह भी अपने आपको सदस्य के रूप में उस सामान्य वर्ग से जोड़ देता है और यह बात अपने आप में अद्वितीय नहीं है। वस्तुओं का ऐसा वर्ग जो मनुष्य नहीं है वह अपने आप में कोई अमानवी अवस्था तो है ही। इसके दूसरी ओर कुछ ऐसे वर्ग भी हैं, जो अपनी जाति को सम्मिलित नहीं करते। वस्तुओं का वह वर्ग जो मनुष्यों से बना है अपने आप में एक आदमी नहीं है। इससे लगता है कि वर्ग दो प्रकार के होते हैं वे जो अपने वर्ग के सदस्य हैं और वे जो अपने वर्ग के सदस्य नहीं हैं। अब उदाहरण के लिए हम यह मानें कि एक ऐसा वर्ग भी है जिसमें वैसे सारे वर्ग निहित हैं जो अपने ही वर्ग के सदस्य नहीं हैं, तो क्या यह वर्ग अपने वर्ग का सदस्य नहीं है? फिर भी अपने वर्ग का सदस्य होने के लिए उसे उक्त वर्गों में से एक वर्ग तो होना ही चाहिए। इस तरह यहाँ स्पष्टतः एक विरोधाभास प्रकट हो जाता है। लेकिन फिर भी यदि वह अपने सामान्य वर्ग का सदस्य नहीं है तो वह उन वर्गों में से एक नहीं है जो अपने वर्ग के सदस्य नहीं हैं। इस तरह फिर एक विरोधाभास प्रकट हुआ। इस प्रकार हम स्वतः ही एक विपरीतावस्था की ओर चले जाते हैं। दोनों प्रकार के विकल्प ही विरोधाभास प्रकट करते हैं।

अधिक दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति एक वैज्ञानिक लेखक के सम्मुख कभी आई हो कि उसके द्वारा निर्मित एक विशाल इमारत की नींव को इस प्रकार हिलता हुआ कोई देखता है। यह बात उन्होंने फण्डामेण्टल्स आव लाज आव अरिथमेटिक के परिशिष्ट में लिखी है। रसेल द्वारा सुझाए विरोधाभास निश्चय ही उनकी नींव को हिलाने वाले थे। मुश्किल यही है कि यदि गणित की तार्किक रचना को बनाए रखना है तो हमें पहले से समुचित रूप से निर्मित एक धारणा से प्रारंभ करके ही आगे बढ़ना चाहिए ताकि वर्तमान स्थिति तक आते आते हम बिना विरोधाभास के इस प्रकार सुनिर्मित वर्गों के वर्ग के सदस्यों के विषय में जो अपने सामान्य वर्ग के सदस्य नहीं हैं अपने मंतव्य को व्यक्त कर सकें। किन्तु यही तो वह स्थिति है जिसे रसेल द्वारा सुझाए गए विरोधाभास के जरिए हटाने का प्रयास किया गया है। फ्रेगे ने इस कठिनाई के हल के लिए प्रयत्न किया—और उन्होंने समानधर्मी विस्तरण (इक्वल एक्सटेंशन्स) के संबंध में अपनी पहले की धारणा में संशोधन भी कर लिया और उसमें उस धारणा को भी सम्मिलित कर लिया जो वर्गों को व्यक्त करने वाले पदार्थों को व्यक्त करती थी। इस तरह अब यह बात स्वीकृति नहीं पा सकी कि वस्तुओं का वह वर्ग जो मनुष्य नहीं है 'मनुष्य नहीं' के विचार का विस्तार या फिर वर्गों का वह वर्ग जो अपने सामान्य वर्ग का सदस्य नहीं है अपने वर्ग का सदस्य है, इनके विषय में अब विचार करना आवश्यक नहीं था। सामान्यतः वे यह विश्वास करते थे कि यदि वे सीमित दशाओं के प्रमाण प्रस्तुत कर देंगे तो रसेल द्वारा सुझाए गए विरोधाभासों को वे हटा सकेंगे।

रसेल द्वारा दिया गया हल इस संबंध में अधिक अच्छा है। यह है प्रकारों के एक 'सिद्धान्त' का[1] प्रस्तुतीकरण। इससे यह नहीं जानना चाहिए कि वे कभी भी इससे पूर्ण संतुष्ट हुए हैं। वे स्वयं ही इसे ऊहापोहमय एवं अपूर्ण मानते हैं, किन्तु फिर भी समसामयिक दर्शन के विकास में इसका काफी महत्वपूर्ण प्रभाव रहा।

---

[1] यह बात पहले प्रिंसिपल्स आव मैथेमेटिक्स के परिशिष्ट 'ब' में तथा बाद में मैथेमेटिकल लाजिक बेस्ड आन द थ्योरी आव टाइप्स (अमेरिकन जर्नल आव मैथेमेटिक्स 1908) नामक निबंध में लिखी। आर०एम०एम० 1910 में ला थ्योरी देस टाइप्स लोजीक्स में भी इस संबंध में सामग्री है। लेकिन प्रिंसिपिया मैथेमेटिका में पूर्ण रूप से इसकी चर्चा की गई है। द फिलोसोफी आव लोजिकल एटोमिज्म टू जुलाई 1919 (मोनिस्ट 1918–19) नामक निबंध में रसेल की अपेक्षाकृत लोकप्रिय शैली में यह वृत्तान्त मिल सकता है। 1919 में प्रकाशित इण्ट्रोडक्शन टू मैथेमेटिकल फिलोसोफी नामक ग्रन्थ में उनकी हिचक स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। जब से प्रकारों के सिद्धान्त का रसेल ने स्वतन्त्र रूप से प्रतिपादन किया है, इसको सभी स्थानों में रसेल की मौलिक आविष्कृति स्वीकार किया जाना चाहिए चाहे इसके निर्माण में व्हाइटहेड का प्रभाव उन पर रहा हो।

इयत्ताओ की सख्या का अमूर्तीकरण करन के लिए उन्हे अपन को न्यूनतम करके देखना–ताकि थोडे स थोडे प्रतीको द्वारा ससार का पूरा चित्रण किया जा सके।

यदि वर्गों के पदो क रूप म अको की परिभाषा अपने आप म विरोधास्पद न भी हो तो भी इससे विरोधास्पद स्थितियो के जन्म ले लेने का खतरा तो है ही। मुख्यत यह कठिनाई वर्गों के वग बनाते समय सम्मुख आती ही है। यह तो स्पष्ट *ही है कि ऐसा करके भी एक वग ही बनेगा इसलिए यह भी सिद्ध हुआ कि यह भी* वर्गों के वग का ही एक सदस्य होगा। अर्थात् यह भी अपन आपको सदस्य के रूप म उस सामान्य वग से जोड देता है और यह बात अपने आप म अद्वितीय नही है। वस्तुओ का ऐसा वग जो मनुष्य नही है वह अपने आप म कोई अमानवी अवस्था तो है ही। इसके दूसरी ओर कुछ ऐसे वग भी हैं, जो अपनी जाति को सम्मिलित नही करते। वस्तुओ का वह वग जो मनुष्यो से बना ह अपने आप म एक आदमी नही है। इससे लगता ह कि वग दो प्रकार के होते हैं व जो अपने वग के सदस्य हैं और वे जो अपने वग के सदस्य नही हैं। अब उदाहरण के लिए हम यह मान कि एक ऐसा वग भी है जिसमें वसे सारे वग निहित हैं जो अपने ही वग के सदस्य नही हैं, तो क्या यह वग अपने वग का सदस्य नही है ? फिर भी अपने वग का सदस्य होने के लिए उसे उक्त वर्गों म से एक वग तो होना ही चाहिए। इस तरह यहा स्पष्टत एक विरोधाभास प्रकट हो जाता है। लकिन फिर भी यदि वह अपने सामान्य वग का सदस्य नही है तो वह उन वर्गों मे स एक नही है जो अपने वग के सदस्य नही हैं। इस तरह फिर एक विरोधाभास प्रकट हुआ। इस प्रकार हम स्वत ही एक विपरीतावस्था की ओर चले जात हैं। दोनो प्रकार के विकल्प ही विरोधाभास प्रकट करते हैं।

विरोधास्पद स्थितिया कोई नई खोज हो ऐसी बात नही। झूठ बोलन वाल की विरोधास्पद स्थिति, दशन की ही जितनी पुरानी है। रसल उसे इस प्रकार पुन प्रेषित करते हैं —

उदाहरण क लिए यह मान लें कि एक आदमी यह कहता है कि वह झूठ बोल रहा है। *अब उस यदि सत्य मान लें तो वह झूठ बोल रहा है अर्थात् वह जो* कुछ कह रहा है वह सत्य नहीं है और यदि वह जो कुछ कह रहा है वह सही नही है, तो भी वह झूठ बोल रहा है। अर्थात् वह जो कुछ कह रहा है वह सही है। इस तरह के परिचित विरोधाभासो को प्राय हम चतुराई से अनदेखा कर जाते हैं किन्तु सभी वर्गों क एक वग वाले विरोधाभास को इतनी आसानी से अनदेखा नही किया जा सकता। और गणित तथा तकशास्त्र के विश्लेषण के दौरान उठ खडे हुए ऐसे ही बहुत से विरोधाभासो के लिए भी यही बात सत्य है।

फ्रेगे की रचनाओ मे निहित विरोधाभासो से परिचित होकर रसेल ने उनको दो कुछ उदाहरण उन्हे भेजे। फ्रेगे इससे बडे विचलित हो गए। कदाचित् ही इसस

अधिक दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति एक वैज्ञानिक लेखक के सम्मुख कभी आई हो कि उसके द्वारा निर्मित एक विशाल इमारत की नींव को इस प्रकार हिलता हुआ कोई बता दे। यह बात उन्होंने फण्डामेण्टल्स आव लाज आव अरिथमेटिक के परिशिष्ट में लिखी है। रसेल द्वारा सुझाए विरोधाभास निश्चय ही उनकी नींव को हिलाने वाले थे। मुश्किल यही है कि यदि गणित की तार्किक रचना को बनाए रखना है तो हमें पहले से समुचित रूप से निर्मित एक धारणा से प्रारंभ करके ही आगे बढ़ना चाहिए ताकि वर्तमान स्थिति तक आते आते हम बिना विरोधाभास के इस प्रकार सुनिर्मित वर्गों के वर्ग के सदस्यों के विषय में जो प्रश्न सामान्य वर्ग के सदस्य नहीं हैं अपने मंतव्य को व्यक्त कर सकें। किन्तु यही तो वह स्थिति है जिसे रसेल द्वारा सुझाए गए विरोधाभास के जरिए हटाने का प्रयास किया गया है। फ्रेगे ने इस कठिनाई के हल के लिए प्रयत्न किया—और उन्होंने समानधर्मी विस्तरण (इक्वल एक्सटेंशन्स) के संबंध में अपनी पहले की धारणा में संशोधन भी कर लिया और उसमें उस धारणा को भी सम्मिलित कर लिया जो वर्गों को व्यक्त करने वाले पदार्थों को व्यक्त करती थी। इस तरह अब यह बात स्वीकृति नहीं पा सकी कि वस्तुओं का वह वर्ग जो मनुष्य नहीं है 'मनुष्य नहीं' के विचार का विस्तार या फिर वर्गों का वह वर्ग जो अपने सामान्य वर्ग का सदस्य नहीं है अपने वर्ग का सदस्य है इनके विषय में अब विचार करना आवश्यक नहीं था। सामान्यतः वे यह विश्वास करते थे कि यदि वे सीमित दशाओं के प्रमाण प्रस्तुत कर देंगे तो रसेल द्वारा सुझाए गए विरोधाभासों को वे हटा सकेंगे।

रसेल द्वारा दिया गया हल इस संबंध में अधिक अच्छा है। यह है प्रकारों के एक सिद्धान्त का[1] प्रस्तुतीकरण। इससे यह नहीं जानना चाहिए कि वे कभी भी इससे पूर्ण संतुष्ट हुए हैं। वे स्वयं ही इसे ऊहापोहमय एवं अपूर्ण मानते हैं, किन्तु फिर भी समसामयिक दर्शन के विकास में इसका काफी महत्वपूर्ण प्रभाव रहा।

---

[1] यह बात पहले प्रिंसिपल्स आव मैथेमेटिक्स के परिशिष्ट ब में तथा बाद में मैथेमेटिकल लॉजिक बेस्ड आन द थ्योरी आव टाइप्स (अमेरिकन जर्नल आव मैथेमेटिक्स 1908) नामक निबंध में लिखी। आर०एम०एम० 1910 में ला थ्योरी देस टाइप्स लोजीकल में भी इस संबंध में सामग्री है। लेकिन प्रिंसिपिया मैथेमेटिका में पूर्ण रूप से इसकी चर्चा की गई है। द फिलोसोफी आव लोजिकल एटोमिज्म टू जुलाई 1919 (मोनिस्ट 1918–19) नामक निबंध में रसेल की अपेक्षाकृत लोकप्रिय शैली में यह वृत्तान्त मिल सकता है। 1919 में प्रकाशित इण्ट्रोडक्शन टू मैथेमेटिकल फिलोसोफी नामक ग्रन्थ में उनकी हिमक स्पष्ट रूप में देखी जा सकती है। जब से प्रकारों के सिद्धान्त का रसेल ने स्वतन्त्र रूप से प्रतिपादन किया है, इसको सभी स्थानों में रसेल की मौलिक आविष्कृति स्वीकार किया जाना चाहिए, चाहे इसके निर्माण में व्हाइटहैड का प्रभाव उन पर रहा हो।

सारे विरोधाभास खास प्रकार के छलवृत्तो (वीशस सर्किल्स) के कारण प्रकटते हैं[1] जब कभी भी यह मान लिया जाता है कि पदार्थों का सग्रह करते ही सदस्यता का गुण उसम निहित हो जाता है। और तब इस सग्रह को इन सदस्यो के पूणक के रूप म परिभाषित भी किया जा सकता है। उदाहरण के लिए मानलो हम कहते हैं कि सभी तक-कथनों म क्ष नाम की एक अवस्था विद्यमान है। यदि देखें तो यह वाक्य भी अपने आप म एक तकवयन है। इसलिए तकवाक्यो का एक वग अपने सदस्यो के रूप म यदि इन तकवाक्यो को रखता है, तो ऐसा लगता है कि यह वग पूण हो गया है। क्योंकि यह सभी तकवाक्यो की बिना सदभ दिए ही चर्चा करता है। यह विरोधाभास कि वग एक साथ ही पूरा होना चाहिए और अपूण भी रहना चाहिए इस तथ्य को ही उजागर करता है कि ऐसा कोई वग है ही नही।' इस प्रकार हम कहना पडेगा, कि सभी तकवाक्यो से सबधित कथन निरथक है। तब हम तकवाक्यो के सिद्धान्त का विकास कसे करेंगे? सभी तक वाक्यो की भ्रामक पूणता के भाव को खण्डित करके रसल के सुझाव के अनुसार उन्हें विभिन्न तकवाक्यो को ऐसी इकाइयो म विभाजित कर देना चाहिए जो अपने आप म विशुद्ध पूणता का भाव समाहित करने योग्य हो जाए और बाद मे भी इस प्रत्यक इकाई का अलग से वणन न किया जा सके। यह तोड देने का भाव ही प्रकारो के सिद्धान्त का उद्देश्य है-इसे तकवाक्यो के लिए प्रयुक्त करने के बजाय तकवाक्यीय काय के साथ प्रयुक्त किया जाता है। गणित के लिए इसका रसेल की दृष्टि मे बहुत महत्व है।

प्रकारो के सिद्धान्त दो तरह के हैं—एक सरल तथा दूसरा शाखा-प्रशाखाओं वाला। सरल सिद्धान्त म साथकता की शृखला होती है। रसल के अनुसार तक वाक्यीय कायमूलक म क्ष मरण शील है म से क्ष के स्थान पर एक स्थिराक रख देने से वह सही तकवाक्य हो जाता है। कुछ अन्य तरह के अक रख देने से वाक्य ही दोषपूण हो सकता है। किन्तु कुछ मामलों म तो इस तरह से प्राप्त किया हुआ तक वाक्य न तो सही होता है और न केवल अथहीन हो जाता ह।[2] क्ष के स्थान पर

---

[1] रसेल के छलवत्तो (वीशस सर्किल्स) के सिद्धात पर प्रस्तुत की गई बाद की आलोचनाओं के लिए देखें गोडेल द्वारा फिलोसोफी आफ बर्ट्रेण्ड रसेल नामक ग्रन्थ मे लिखित अध्याय रसेल्स मैथेमेटिकल लोजिक।

[2] यहा यह बात ध्यान देने योग्य ह कि सत्य झूठ एव अथहीन तर्कवाक्यो की त्रिमर्गी मे कोई नवीनता नही थी। रसेल ने स्वय कहा है कि पौराणिक तकशास्त्र मे भी इसका विचार विद्यमान ह। मिल की पुस्तक सिस्टम ऑव लोजिक म तो बहुत ही विशद रूप से इसकी चर्चा ह और फ्रेगे के सबध मे उपयुक्त चर्चा में भी इसी के सम्बन्ध में काफी कहा जा चुका ह।

रखे गए स्थिरांक एक सार्थक तर्कवाक्य की रचना कर देते हैं। इन्हें ही सार्थकता की 'शृंखला' निर्माण करने वाला तत्व माना गया है या कभी कभी इसे फलन का प्रकार भी कहा जाता है। मैं मरणशील हूँ नामक कथन में सार्थकता की शृंखला, एक विशिष्ट इयत्ता में सीमित हो गई है। यह हमेशा उचित रहता है चाहे गलत भी हो, कि हम कहें कि यह विशेष वस्तु मरणशील है। किंतु रसेल के लिए मनुष्यों के वर्ग को या मानवता को मरणशील मान लेना निरर्थक ही है। सामान्य सिद्धान्त यही है कि एक कार्यफलन' हमेशा ही अपने लिए प्रस्तुत तर्क से ऊँचा होना चाहिए। यही कारण है, मरणशील फलन सुकरात जैसे शब्द के लिए उचित ही तर्क लगता है। किन्तु यदि उसे मनुष्यों के वर्ग के लिए प्रयुक्त किया जाय तो निरर्थक हो जाएगा। और इसी तरह कोई वस्तु एक वर्ग की सदस्य तो हो सकती है किन्तु एक वर्ग का, कम से कम एक वर्गों के वर्ग का यदि उसे सार्थक होना है तो, सदस्य हुए बिना काम नहीं चल सकता। उसी तरह जैसे एक व्यक्ति किसी क्लब का सदस्य हो सकता है किंतु एक क्लब किसी समुदाय या बड़े वर्ग का ही सदस्य हो सकता है। वर्ग के विरोधाभास में जिसे अपनी ही सदस्यता प्राप्त हो, इस नियम को अनदेखा रखा गया है। यह मान लिया गया कि सभी वर्ग एक ही प्रकार के हैं—और कोई भी वर्ग दूसरे वर्ग का सदस्य हो सकता है किन्तु यही मानना एक छलवृत्त को प्रकटाने जैसा ही है। सभी 'वर्गों का वर्ग' तब सभी वर्गों' से भिन्न एक ऐसा वर्ग होगा जो उन वर्गों का होते हुआ उनसे अतिरिक्त हो। किन्तु एक बार इन प्रकारों का भेद दृढ़ रूप में स्वीकार लिया जाए तो यह कहना निरर्थक होगा, कोई वर्ग अपने वर्ग का ही सदस्य है अथवा नहीं। इस तरह यह भीषण विपरीतता विलीन हो जाएगी।

रसेल का मत है कि हम अचेतन रूप में भी प्रकारों के भेद का ख्याल अपनी दैनिक बातचीत में रख ही लेते हैं। अचेतन रूप से इसलिये कि उदाहरण के लिए, यह कोई कहना नहीं चाहेगा कि मानवता मनुष्य नहीं है। किंतु मानवता और एक मानव में जहाँ स्पष्ट अंतर है, वहाँ तक वे मूलभूत विषय जैसे सत्य झूठ, कार्य-फलन अवस्था, वर्ग आदि का कोई निश्चित प्रकार नहीं है। हम केवल सत्यों के विषय में बातचीत करने के अभ्यासी हो गए हैं। इस समय चाहे हम पहले दर्जे के सत्यों का विचार कर रहे हों (जैसे क्ष–य है) अथवा दूसरे दर्जे के (क्ष य है यह सत्य है)। तब विरोधाभास प्रकट होना अनिवार्य है। हमें यह सोचने के लिए विवश होना पड़ता है कि सत्यों से संबंधित तर्कवाक्य उन्हीं की सिद्धि के लिए हैं। जबकि वास्तव में पहले दर्जे के सत्यों के लिए प्रयुक्त दूसरे दर्जे के सत्य मात्र होते हैं। और तब हम शीघ्र ही निरर्थकता के समुद्र में हाथ पैर मारने लग जाते हैं। इससे बाहर आने का एक मात्र तरीका पहले से साफ साफ बता देना है, कि कौन से दर्जे के सत्य

का वर्गों का या कार्यफलन आदि के विषय में हम चर्चा करने जा रहे हैं।[1]

विरोधास्पद स्थितियों के सभी खतरों का निवारण करने के लिए प्रकारों का सरलीकृत सिद्धान्त पर्याप्त नहीं है। प्रकारों के बीच भेद करना अभी और आवश्यक है। इन दो तर्कवाक्यीय कार्यफलनों की तुलना करो–क्ष एक जनरल है एवं क्ष में महान जनरल होने के सभी गुण हैं। दोनों की सार्थकता की शृंखला तो एक जैसी है। नेपोलियन को अच्छी तरह से दोनों अवस्थाओं में क्ष के स्थान पर रखा जा सकता है। किन्तु 'महान् जनरल के सभी गुण' नामक विधेय अपने आप में एक अनुपयुक्त समग्रता है क्योंकि यह अपने आप ही एक ऐसा गुण रखता है। यह समग्रता उसी समय हटाई जा सकती है, जब प्रत्येक प्रकार के निहित क्रम के भेद को प्रकट किया जाय। तब महान् जनरल के सभी गुण हैं एक ऊँचे क्रम की स्थिति होगी और अपने आप में एक गुण नहीं। इस प्रकार का सिद्धान्त इस संदर्भ में आवश्यक है यदि हम प्रत्येक प्रकार की तार्किक असंगति को दूर करना है।

बहुशाखी सिद्धान्त के प्रवर्तन में आ जाने से मौलिक रूप से अवर्पित प्रकारों का सिद्धान्त और भी जटिल हो गया लेकिन इससे भी बड़ी गलती यह थी कि बहुशाखी सिद्धान्त गणितीय विश्लेषण की कुछ विशिष्टताओं को मिटा देता था क्योंकि इस सिद्धान्त के अनुसार गणितीय विश्लेषण में अवांछित समग्रताओं का प्रयोग होता था।[2] रसेल की धारणा थी कि वे इस कठिनाई का हल यूनीकरण

---

[1] रसेल ने प्रकारों के विषय में भी बाद में कुछ असंतोष प्रकट किया था। क्या यह भी विभिन्न प्रकारों के लिए है? किन्तु यह कहना कैसे संभव है कि सुकरात और मनुष्यता अलग-अलग प्रकार हैं। जब तक कि प्रकारों के निर्धारण का कोई एक सामान्य आधार न हो? क्या हम प्रकारों के सिद्धान्त के विरुद्ध पाप नहीं कर रहे होते हैं जब विभिन्न प्रकार के तर्कों के लिए यह भी कहते हैं कि वे विभिन्न प्रकार के हैं? तो क्या हम एक अलग कार्यफलन इससे नहीं निकाल रहे हैं? इसी कारण से रसेल ने प्रकारों के सिद्धान्त के लिए भाषाई व्याख्या का स्वागत किया था जिसे आर कारनप जैसे विचारकों ने प्रवर्तित किया। यह कहना कि कोई इयत्ता इस या उस प्रकार की है एक भूल होगी। प्रकारों की भिन्नता अभिव्यक्ति से आती है। और यह बात बिना विरोधाभास के कही जा सकती है एक दूसरे दर्जे की भाषा में एक 'सुकरात' और 'मनुष्यता' नामक शब्द भिन्न अर्थ प्रकटाने वाले हैं। इस संबंध में रसेल द्वारा अपने आलोचकों का उत्तर द फिलोसोफी आव बर्टेण्ड रसेल नामक पुस्तक में देखें। द्रष्टव्य जे० जे० स्मार्ट हाइटहेड एण्ड रसेल्स थ्योरी आव टाइप्स (एनालिसिस 1950) पी० वेस द थ्योरी आव टाइप्स माईण्ड 1928)

[2] विशेषत: डेडेकाइण्ड कट का संदर्भ–द्रष्टव्य गोडेल की बड़ी कृति एवं जी० एच० हार्डी कृत ए कोर्स आव प्योर मैथेमेटिक्स (1908)

के स्वयसिद्ध' (एक्जियम ग्राव रिड्यूसिबिलिटी) की सहायता से कर सकते थ। इससे यही सिद्ध होता है कि [illegible] म य के सभी गुण विद्यमान हैं' वाले प्रकार के कथनों म एक ऐसा समाकारी कथन विद्यमान होता ही है जो सभी गुणों' के सदभ को अपने म समाहित किए है। किन्तु उसके समाकारी होने की वजह स वह मूल कथन को केवल गणितीय तक के रूप म उसके स्थान पर प्रयोग कर सकता है। किन्तु इस स्वयसिद्ध का प्रिंसिपिया मैथेमटिका की निगमनात्मक प्रणाली म दुरुपयोग ही हुआ है और इसम उस स्वत सिद्धि का अभाव भी था, जिसकी माग करने के गणितज्ञ अभ्यस्त हो जाते हैं।

आश्चय की बात नही है कि अन्य तकशास्त्रियो ने इन विरोधास्पद स्थितियो के निवारण का प्रयास बिना बहुशास्त्री प्रकारो के सिद्धान्त के विषय म चिन्ता किए किया है।

इन प्रयासो म सवश्रेष्ठ एफ० पी० रेमस कृत द फाउण्डेशन ग्राव मैथेमटिक्स नामक लेख कहा जा सकता है।[1] और प्रिंसिपल्स ग्राव मैथेमेटिक्स के दूसरे सस्करण म रसेल, रेमसे के हल को स्वीकार लेते हैं। रेमस के अनुसार रसेल ने कुछ ऐसी विरोधास्पद स्थितियो को एक साथ मिला दिया है, जिनकी प्रवृत्ति भी भिन्न भिन्न है। उदाहरण के लिए, एक तो व स्थितिया जो वर्गों स सबधित विरोधाभासो से उपजती हैं, वह भी उस समय जब उनसे एक तार्किक प्रणाली रची जाने का प्रयास किया जाता है। दूसरी वे जो भूठे (लायर) की विरोधास्पद स्थिति के कारण अपने मूल म आपाई तथा उसके प्रयोग स सम्बन्धित हो जाती है। अर्थात् वे उसी समय प्रकटती हैं जब हम प्रणाली के विषय का विश्लेपण करते हैं। पीआनो का अनुकरण करते हुए रेमस कहते हैं कि प्रकारो का सरलीकृत सिद्धान्त पहले प्रकार के विरोधाभासो का हल प्रस्तुत करने के लिए पर्याप्त है और अपने इसी रूप म इसका एक तकशास्त्री स सबध भी होता है। दूसरे प्रकार की विरोधास्पद स्थितियो का निवारण दुविधाओं को हटाकर किया जा सकता है। व दनिक व्यवहार के शब्दो स

---

1 देखें प्रोसीडिंग्स ग्राव लन्दन मैथेमेटिकल सोसाइटी जिसका पुनमुद्रण उनके मरणोपरान्त द फाउण्डेशन्स ग्राव मैथेमेटिक्स एण्ड अदर लोजिकल ऐसेज नाम स हुआ। इसका सम्पादन आर० बी० ब्रैथवेट ने सन् 1931 म किया। द्रष्टव्य आर कारनप द्वारा प्रस्तुत द लोजीकल सिन्टेक्स ग्राव लैंग्वेज म विपरीतताओं पर चर्चा। (1934–अंग्रेजी सस्करण 1937)। द डिक्शनरी ग्राव फिलोसोफी म ए० चर्च द्वारा लिखित लोजिकल पराडोक्सेज नामक निबंध उसी म जोरजेनसन का इसी सबध मे विस्तृत विवरण देखें। माइण्ड 1936 मे प्रकाशित डब्लू० वी० मा० क्वाइन कृत निबंध ग्रान [illegible] एग्जियम ग्राव रिड्युसिबिलिटी।

उत्पन्न हुई दुविधाओ के कारण उत्पन्न हो जाती हैं, जसे-'मतलब है' (मीन्स) नाम है' (नेम्स) परिभाषित करता है' (डिफाइन्स)। इस तरह प्रकारो का बहुशास्त्री सिद्धान्त किसी भी अवस्था म अनिवाय नही है और बदनाम 'न्यूनीकरण के स्वय सिद्ध' को अस्वीकृत किया जा सकता है।[1]

तब रसल के प्रकारो के सिद्धान्त का प्रभाव यह है कि मूर की विश्लेषण की व्याख्या की भाँति यह इस बात को बढ़ावा देता है कि मापाई जाच पड़ताल चाहे वह किसी भी तरह की हो एक दार्शनिक के लिए विशेष महत्व की होती है। रसल के सकेत सिद्धान्त से ही ऐसा एक और प्रभाव प्रकटा। अब तार्किक स्थिराक' पर हुई चर्चा हम सीधे उनके दशन के केन्द्र की ओर ल जायगी।

हम पहले ही देख चुके हैं कि रसेल का प्रारम्भिक तत्वदशन मूर से लिया गया है। उन्होने द प्रिंसिपल्स आव मथेमेटिक्स म लिखा है कि दशन के मूल प्रश्नो पर अपनी प्रमुख अवस्थाओ म भी मेरी स्थिति जी० ई० मूर से प्रभावित रही है। मैने उनसे तकवाक्यो की अनस्तित्वशील प्रकृति के विषय मे जाना (सिवाय उन वाक्यो के जो स्वत अस्तित्व को सिद्ध कर दते थे) और यह भी जाना कि व किसी के जान बिना भी विद्यमान रह सकते हैं। उनसे मैंने बहुलतावाद का सिद्धान्त

---

[1] विरोधाभासो पर विचार करने के लिए अन्य प्रस्ताव भी थे। एल जे ब्रूवर एव एच० वी० वील जसे प्रख्यात अन्त साक्ष्यवादियो ने गणितीय विश्लेषण के उन अपरिपक्व सिद्धान्तो को छोड देने की राय दी थी जिनक कारण न सुझाये जा सकने वाले विरोधाभास प्रकटते हो। ई० जमलो न इन्वेस्टीगेशन्स इण्टू द फाउण्डेशन आव द थ्योरी आव सेटस (मैथेमेटिक एनालेन 1908) नामक कृति म इस समस्या पर इन विधेयो के कारण हुए अन्तर की दृष्टि से विचार किया है-जिनका विस्तार किया जाना अथवा न किया जाना सम्भव नही है। डब्लू क्वाइन ने अमेरिकन मथेमेटिकल मन्थली 1937 म तथा बाद मे मैथेमेटिकल लॉजिकल 1945 मे न्यू फाउण्डेशन्स आव मैथेमेटिकल लोजिक लिखकर रसेल के प्रकारो के सिद्धान्त तथा जर्मेलो की इकाइयो की व्याख्या को मिला देने का प्रयास किया है। सक्षिप्त वृत्तान्त के लिए 1950 मे प्रकाशित क्वाइन का मेथड्स आव लोजिक तथा मथेमेटिकल लोजिक देखें (1940। इनम जमलो की रचनाओ म हुए विकास का सदम है। द्रष्टव्य के० ग्रलिंग कृत द लोजीकल पराडोक्सेज (माइण्ड 1936) ए० फ्राइनकेल एव वाई० बार हिलेल कृत ले प्रोब्लेमे डस एन्तीनोमीज एत सेस देवलेपमेन्तस रीसेन्तस (आर० एम० एस० 1939), क्वाइन के एव फ्रेगे के द्वारा प्रस्तुत किए गए हलो क परस्पर सबधो क लिए देखें—डब्लू० वी० ओ० क्वाइन कृत आर फ्रेगेज वे आउट (माइण्ड 1955)।

वग (२) 'मरणशीलो का वग । किन्तु वास्तव म ता 'क्ष मरणशील है' को सकेत लिपिक सरचना है, क्योकि क्ष मरणशील है। यह तो क्ष मनुष्य है का कायफलन मात्र है। रसेल के मनुसार कोई ऐसी इयत्ता नही है, जिसे एक वग के रूप म जाना जा सके।

इसी प्रकार एक मोर जहा मपने मारभिक निबधो म स एक निबध इज पोजीशन इन टाइम मॉर स्पेस एब्सोल्यूट मॉर रिलेटिव ? (माइण्ड 1901) मे रसेल ने दिकीय बिन्दुमो एव समयघटको (टम्पारल इन्स्टन्टस) के साथ स्वतन्त्र रूप से खिलवाड किया है मोर इन्हें दिक तथा समय की मन्तरिम इकाई माता है। व्हाइट हैड ने उन्हे इस बात के लिए उकसाया कि व वाक्य जो स्पष्टत इन इयत्तामा का सकेत देते है, बिना किसी निरथकता के ऐसे वाक्यो मे बदले जा सकते हैं, जिनस बिन्दुमो, घटनामो, परमाणुमो म को की नियति, वर्गों, वेवरले का लेखक तथा वतमान फ्रास का राजा मादि का सदम प्रस्तुत कर सके।

मभी तक तो दनिक जीवन के उपकरणो को, जैसे मज कुर्सी, हमारे तथा तथा दूसरों के मनस मादि के विषय मे कुछ भी नही कहा गया है किन्तु जिस प्रक्रिया के जरिए हमारी इन्द्रिय चेतना से इनका सबध बनाया गया है वही प्रोब्लेम्स माव फिलोसोफी (1912) नामक ग्रथ की भूमिका तयार करने के लिए पर्याप्त है। है। इस पुस्तक के मामुख मे रसेल, मूर के प्रति उनके उन भाषणो क लिए कृतनता ज्ञापन करते हैं। जो 1953 म सम मेन प्रोब्लेम्स माव फिलोसोफी नाम से प्रकाशित हो चुके थे। मूर के साथ वे इस मामले मे सहमत हो जाते है कि जिस वस्तु स हमारा तात्कालिक ससग होता है व ऐन्द्रिय उपकरण ही है, भौतिक पदाथ नही।

किन्तु फिर भी रसेल एव मूर की ज्ञानमीमासा म उल्लेखनीय मन्तर है। रसल के लिए भौतिक पदार्थों का मस्तित्व एक वज्ञानिक प्राकल्प है-भौतिकी के प्राकल्प का ही समानान्तर। इन्हे हम सत्य मानते हैं क्योकि मन्य किसी प्राकल्प की मपेक्षा ये हम हमारे ऐन्द्रिय उपकरणो के व्यवहार की सरलतम व्याख्या करने की सुविधा प्रदान करते है। य मूर के पदार्थों की भाति ऐसे पदाथ नहीं है जिन्हें हम तत्काल जान लेते हैं। रसेन का यह कहना, कि हम भौतिक पदार्थों का सीधा प्रत्यक्षीकरण नही करते, विज्ञान की उस धारणा से मेल खाता है जिसम हमारे प्रत्यक्षीकरण की व्याख्या की गई है। मूर की सामान्यबुद्धि की व्याख्या से रसेल की यह स्थिति सवथा भिन्न है। इसके मतिरिक्त भी व प्रोब्लेम्स माव फिलोसोफी का पूरा वातावरण तक गणितीय है तथा कार्टेजियन शली की याद दिलाता है। रसेल मविवादास्पद स्थिति की खोज मे थ। कम स कम ऐसी स्थिति के, जिसके विषय म सदेह किया जाना मसभव हो जाए मोर उसी माधार पर हमारी दनिक

आस्थाओं की वे आलोचना भी करते हैं—जिन्हें हम संस्कारों के कारण विश्वास-योग्य मानते हैं। ऐसी सामान्य बुद्धि को वे जरूर कुछ रियायत तो देते हैं किन्तु वे मूर के सामान्य बोध के बचाव से पूर्णतः कभी भी संतुष्ट नहीं हो सके। वे जिसका बचाव करना चाहते हैं, वह सामान्यबोधी दृष्टिकोण न होकर वैज्ञानिक दृष्टिकोण ही है—और उस समय बचाव का औचित्य देने के लिए भी विज्ञान का ही सहारा लेना होगा, ऐसी रसेल की मान्यता रही है।

अविवादास्पद की खोज के प्रयास में उन्होंने **द प्रोब्लेम आव फिलोसोफी** नामक ग्रन्थ की रचना की और ऐसे पदार्थों की सबसे पहले व्याख्या की जिनसे हम तत्काल 'परिचित' होते हैं। रसेल, परिचय द्वारा ज्ञान तथा विवरण द्वारा ज्ञान *प्राप्त करने की अलग अलग व्याख्या करते हैं। इस व्याख्या में वे जेम्स से प्रभाव* ग्रहण करते हैं। जेम्स ने यह प्रभाव ग्रोटे से ग्रहण किया था। इस तरह यह सिद्धान्त एक केम्ब्रिज के विद्वान् से बहुत से विद्वानों के समूह में प्रवर्तित हुआ है। यही वह स्थल है जहां रसेल द्वारा किया गया संकेतन का विश्लेषण उनके दर्शन की विवेचना का महत्वपूर्ण आधार बन जाता है।[1]

यदि हम प्रत्यक्षतः किसी वस्तु का बोध प्राप्त करते हैं तो हमारा ज्ञान परिचय द्वारा प्राप्त ज्ञान की श्रेणी का होगा। इसका सबसे स्पष्ट उदाहरण है हमारी ऐन्द्रिय चेतना—मैं प्रत्यक्षतः यह जान सकता हूं कि मुझे ऐन्द्रिय उपकरणों का अनुभव हो रहा है। और इससे यह निष्कर्ष निकला कि (वे यह बात जरा हिचकते हुए

---

[1] यद्यपि रसेल जेम्स के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं तो भी अन्तर करने की उनकी प्रणाली जेम्स से सर्वथा भिन्न है। **नोलेज बाई एक्वेन्टेन्स एण्ड नोलेज बाई डिस्क्रिप्शन** नामक रसेल का निबंध सर्वप्रथम पी० ए० एस० 1910 में प्रकाशित हुआ। कोई से संशोधन के साथ **प्रोब्लेम्स आव फिलोसोफी** में उसका पुनः मुद्रण हुआ। **मिस्टिसिज्म एण्ड लोजिक** में भी उसे शामिल किया गया है। द्रष्टव्य जी० डी० हिक्स जी० ई० मूर तथा अन्य लेखकों द्वारा लिखित **इज देयर नोलेज बाई एक्वेंटेन्स** (पी० ए० एस० 1949)। द्रष्टव्य रसेल का निबंध **आन द नेचर आव एक्वेंटेन्स** (मोनिस्ट 1914)। **सम मेन प्रोब्लेम्स आव फिलोसोफी** नामक ग्रन्थ में मूर ने प्रत्यक्ष तथा परोक्ष बोध की चर्चा की है। 'परिचय द्वारा ज्ञान' तथा 'विवरण द्वारा ज्ञान' इसी का जरा नव्य रूपान्तर है। किन्तु मूर ने एक नोट में परिचय द्वारा ज्ञान के संबंध में लिखा है कि वह न तो ज्ञान ही है और न परिचय ही। जानने के विषय में ऐसा कोई सामान्य बोध नहीं है जिससे केवल मात्र इस तथ्य से कि मैं एक व्यक्ति को देख रहा हूं *यह अन्दाजा लगाया सके कि उसी क्षण मैं उसे जान* भी रहा हूं।

करता है) मैं प्रत्यक्षतः इस म का बोध प्राप्त कर रहा हूँ जो अनुभव प्राप्त कर रहा है और इन मानसिक अवस्थाओं से गुजर रहा है।

मानसिक अवस्थाएँ हमारा आत्म तथा ऐन्द्रिय उपकरण ही ऐसी वस्तुएं हैं जिसके जरिए हम प्रत्यक्ष परिचय प्राप्त हो सकता है। लेकिन, इसके साथ ही हम समष्टियों से भी परिचित रहते हैं, जैसे सफेदी, आग की स्थिति तथा विविधता आदि। जब हम एक इन्द्रिय उपकरण के जरिए एक स्थिति के दूसरी से पहले होने का अनुभव प्राप्त करते हैं तब हम एक समष्टि से परिचित होते हैं जो प्राग्भाव की संबंधसूचक होती है।

हम भौतिक पदार्थों से परिचित नहीं हैं। हम किसी पदार्थ को मेज के रूप में वैसा ही जानते हैं जैसा कि एक विशेष वर्णन के जरिए उसके विषय में कहा गया है। उदाहरण के लिए' पदार्थ एक ऐसी वस्तु मानी जाती है जो इन्द्रिय उपकरणों को सचेष्ट करती है। और प्रत्यक्ष अनुभव के जरिए न जानकर केवल अनुमान से हम यह जानते हैं कि अमुक पदार्थ विद्यमान है। न हम दूसरे मनुष्यों से ही परिचित हो पाते हैं। उनसे भी नहीं, जिनके साथ हम अपने व्यक्तिगत परिचय का दावा करते हैं। ये मनुष्य भी उसी स्थिति में हैं जैसे भौतिक पदार्थ होते हैं। इन्द्रिय उपकरणों की चेष्टा से उत्पन्न ये अनुमान मात्र हैं—और उन लोगों से जिनसे सामान्यतया हम प्रत्यक्ष परिचय प्राप्त नहीं कर सकते जैसे जूलियस सीजर तो हम स्पष्टतः उन्हें विवरण के जरिए ही जान पाते हैं। उदाहरण के सीजर को जानने का हमारा एक दृष्टान्त यह है कि वह आदमी है जिसने रूबीकन नदी पार की थी।

ऊपरी तौर पर यह अजीब सिद्धान्त नजर आता है। साधारणतः जूलियस सीजर किसी ऐसी वस्तु का नाम नहीं है, जो विवरण योग्य हो और जूलियस सीजर ने रूबीकन नदी पार की थी, जैसे कथनों में जूलियस सीजर किसी 'विवरण' की ओर संकेत नहीं देकर, इस बात को प्रकट करता है कि हमारे विवरण की दिशा क्या है। किन्तु रसेल यह आपत्ति करते हैं कि संभवतया हम किसी ऐसी वस्तु के विषय में चर्चा नहीं कर सकते, जो हमारे परिचय क्षेत्र में नहीं आती। यह तर्कवाक्य इस तरह जूलियस सीजर के विषय में नहीं हो सकता चाहे व्याकरण की दृष्टि से, ठीक इसके विपरीत बात ही क्यों न प्रकट होती हो। रसेल के अनुसार प्रत्येक समझ में आने योग्य तर्ककथन पूर्णतः उन तत्त्वों से बना होना चाहिए जिनसे हम परिचित रहते हैं। कोई तर्ककथन जो जूलियस सीजर के विषय में हो वास्तव में किन्हीं इन्द्रिय उपकरणों (चाहे हमने उनके विषय में सुना हो या पढ़ा हो) से संबद्ध होना चाहिए एवं कुछ समष्टि भावों को भी उसे उजागर करना चाहिए। जिस प्रकार

वेवरले का लेखक 'वेवरले का लेखक स्कोट है' नामक तर्कवाक्य का सही कर्ता नहीं है, उसी तरह रसल के कथनानुसार जूलियस सीजर ने रूबीकन नदी पार की—नामक तर्कवाक्य में जूलियस सीजर सही कर्त्ता नहीं हो सकता। यद्यपि इस संबंध में विस्तृत वर्णन से और भी जटिलता आएगी तो भी ऐसे तर्ककथनों की विवरण के सिद्धान्त के जरिए व्याख्या की जा सकती है। इस सिद्धान्त के आधार पर ऐसे तर्ककथनों में जूलियस सीजर को उपयुक्त संदर्भ में न दिए जाने पर भी उसके मूलभाव में कोई अन्तर नहीं आता।

अब समस्या यही शेष रहती है कि सामान्य सिद्धान्तों के ज्ञान की व्याख्या कैसे की जाए ? क्या किसी सामान्य सिद्धान्त को वस्तुसंबंधी ऐसे कथनों में बदला जा सकता है, जिनसे हम परिचित हैं ? रसेल की दृष्टि में गणितीय तर्कवाक्यों के विषय में ऐसी कोई कठिनाई नहीं है। वे समष्टियों को व्यक्त करते हैं और हम समष्टियों से परिचित होते ही हैं। किन्तु आगमनात्मक सिद्धान्त उनकी दृष्टि में अधिक जटिल होते हैं। ह्यूम की भांति ही वे सोचते हैं यदि इस सिद्धान्त का कोई ठोस आधार नहीं है, तो हमारे लिए यह अपेक्षा करने का कोई कारण नहीं है कि कल सूर्योदय होगा, या यही मानना कि रोटी पत्थर की अपेक्षा अधिक पौष्टिक होती है। वे यह भी समझ नहीं पाते, कि आगमनात्मक सिद्धान्त किस भांति या तो समष्टियों के बीच विद्यमान किन्हीं संबंधों के सूचक हैं या अनुभवजन्य अनुमान हैं। इस तरह वे इस निष्कर्ष पर पहुंचने को बाध्य हो जाते हैं कि (चाहे ऐसा मानना कितना ही ऊहापोही क्यों न हो) हमारा सम्पूर्ण ज्ञान हमारे द्वारा प्राप्त अनुभव पर आश्रित है। यह मानना हमारे इस विश्वास पर आधारित है, कि अनुभव न तो किसी को सिद्ध ही कर सकता है न उसका खण्डन ही। तो भी अनुभवजन्य तथ्यों के ही भांति उपर्युक्त विश्वास की जड़ गहरी है। उनके दर्शन के शिथिल स्थलों में से यह भी एक स्थल था।

इसकी क्षतिपूर्ति करने के उनके प्रयास में—प्रोब्लेम्स ऑव फिलोसोफी से दूर जाकर ह्यूमन नोलेज इट्स स्कोप एण्ड लिमिट्स नामक ग्रंथ की रचना हो सकी।

उनके दर्शन का अन्य शिथिल स्थल, भौतिक पदार्थों की व्याख्या थी। भौतिकी को एक अनुभववादी विज्ञान माना जाता है। तो भी 1914 में साइंटिया नामक पुस्तक जिसका 1917 में मिस्टिसिज्म एण्ड लॉजिक नाम से पुनः मुद्रण हुआ, के एक निबंध द रिलेशन ऑव सेन्स डेटा टू फिजिक्स में उन्होंने बताया है कि स्वयं भौतिकी हमें यह बताती है, कि जिस किसी वस्तु का प्रत्यक्षीकरण हम करते हैं वह भौतिकी की विषयवस्तु से सर्वथा अलग अनुभव है। परमाणुओं का

भी जाना जिसके अनुसार ससार को जो स्वतन्त्र इयत्ताओं के अनन्त अवो स बना है और इन सबम ऐसे सबध हैं जिन्ह उनके पदो के कारण कोई विशेषण नही दिया जा सकता और न ही उस पूण की व्याख्या ही की जा सकती है जो इनस बना है। य इयत्ताए तकवाक्यों मे पदो के रूप म रहती हैं।

इस आन्टोलाजी से भाषा का सिद्धान्त सबद्ध है। उन्होने लिखा कि यह आवश्यक है कि एक वाक्य म लिखा प्रत्येक शब्द साथक होना चाहिए ताकि हमार तकवाक्यो का दाशनिक विश्लेषण सतकता से किया जा सक और इसम प्रयुक्त प्रत्येक शब्द क महत्व की सिद्धि की जा सके। प्रत्येक शब्द 'अथ' है, प्रत्येक अथ एक इयत्ता य ही वे सिद्धान्त हैं जिन पर रसेल न अपनी आरम्भिक रचनाए की थी।

फ्रेगे की भाति वे भी पहल से ही अपने सकेतन' के विश्लेषण के दौरान यह मानते हैं कि तकवाक्य का व्याकरणीय आकार भ्रामक भी हो सकता है। एक तकवाक्य मे कोई धारणा ऐसे भी प्रयुक्त की जा सकती है जो धारणा के विषय मे कुछ न कहकर धारणा से सबद्ध किसी पद के विषय म कुछ कहती हो। इस प्रकार, मैं एक आदमी से मिला' का अथ यही नही है कि मैं मनुष्य सबधी धारणा' स मिला। यहा आदमी यही इगित करता है कि वह कोई विशिष्ट मानव है। इसी प्रकार 'मनुष्य मरणशील है भी किसी धारणा को व्यक्त नही करता। टाइम्स म रसल ने लिखा कि यह बात जानकर हमे आश्चय होगा कि केमलोट मे अपने निवास स्थान पर ग्लेडस्टन रोड के ऊपरी कमरे में 18 जून 19 का एक आदमी जो मृत्यु और पाप का सबसे बडा लडका था मर गया। यह घोषणा हमार लिए आश्चयजनक नही यदि मनुष्य मरणशील है।

प्रिंसिपल्स आव मथेमटिक्स मे यह तकवाक्य कि इगलण्ड का राजा गजा है, किसी प्रकार के मौलिक परिवतनों की अपेक्षा नही रखता। इस तकवाक्य का रसेल के अनुसार यह अथ है कि इग्लण्ड के राजा के नाम से जिस आदमी की ओर सकेत किया गया है वह गजा है। उनकी इसी व्याख्या का ही परिणाम था कि जिसस सकेतन का नया सिद्धात प्रवत्त हुआ (रसेल कृत आन डिनोटिंग, माइण्ड 1905)।[1]

---

[1] एल एस० स्टेबिंग कृत ए मोडन इट्रोडक्शन टू लोजिक द्वितीय सस्करण (1933) में द्रष्टव्य अध्याय दूसरा तथा नवम, जे० डब्लू० रीज्ज द ओरीजिन एण्ड कौसीक्वेंसेज आव द थ्योरी आव डिस्क्रिप्शन्स (पी० ए० एस० 1933) आर० जे० बटलर कृत स्केफोल्डिंग आव रसल्स थ्योरी आव डिस्क्रिप्शन्स (पी०आर० 1954), जी० ई० मूर कृत रसेल्स थ्योरी आव डेस्क्रिप्शन्स, द फिलोसोफी आव बट्रेण्ड रसेल

द प्रिसिपल्स आव मैथेमटिक्स एव आन डिनोटिंग इन दो कृतियो की रचना के बीच रहे समय का उपयोग रसेल ने मीनोंग का अध्ययन करन म बिताया। सबसे पहल व मूर के प्रति अपने दाशनिक ज्ञान क लिए वसन थे–लेकिन शीघ्र ही सदेह उभरन लगे। मीनोंग के लिए यह बात अच्छी थी कि वास्तविकता के पक्ष म की गई चचा क प्रति घृणा का भाव उन्होने दर्शाया। इसी पूर्वाग्रह' ने वास्तविकता के प्रति एक नए स्वस्थ भाव को जन्म दिया और रसल की दृष्टि म प्रत्येक वज्ञानिक दशन के लिए यही से प्रारभ होना आवश्यक था। 'यथाथ का भाव तकशास्त्र क लिए तत्व की वस्तु है और जो कोई भी इस पर यह कहकर विवाद करता है कि हैमलेट का यथाथ एक दूसरे प्रकार का यथाथ है वह विचार जगत् के लिए हानि का काम कर रहा है।' यह बात उन्होने इन्ट्रोडक्शन टू मैथेमेटिकल लौजिक 1910 म लिखी। तो भी यथाथ के नाम पर इस प्रकार के कथनो पर क्या कहा जाय कि प्रजातान्त्रिक युग मे फ्रास का राजा गजा है? इसमे यह अथ नही निकलता कि फ्रास का राजा का सकेत दने वाला जो मनुष्य' है वह 'गजा है। क्योकि इस मुहावरे म सकेत देने के लिए अब कोई ऐसी स्थिति है ही नहीं। मीनोंग ने कहा था कि यह एक ऐसे पदाथ की ओर सकेत करता है जो सत्ता के बाहर' विद्यमान है। यह एक ऐसा पदाथ है जिसके लिए विरोधाभास का सिद्धान्त लागू नही होता। क्योकि पूरे विश्वास के साथ कोई भी कह सकता है कि इसमे ऐसा उल्लेखनीय गुण है भी और नही भी है। फ्रास के राजा के अनस्तित्व के विषय म अब हम अपनी कल्पना के अनुसार यह कहने के अधिकारी हैं कि वह गजा नही है। यही वह बिन्दु है, जिसके विरुद्ध रसेल द्वारा नव्य स्थापित यथाथ के भाव ने विद्रोह किया। उनका विचार था कि इससे निकलने का कोई अन्य तरीका होना चाहिए और यह एक ऐसा तरीका होना चाहिए जिसके अनुसार फ्रास के राजा का कोई इयत्ता' मानना नही पडे। अपने द्वारा प्रस्तुत सकेतन के नए सिद्धान्त म उन्होने इसी बात की खोज की थी जिसे बाद म उन्होने वर्णन के सिद्धान्त' की सज्ञा दी थी।

सकेतित मुहावरे' का अथ उनके लिए निम्नाकित है। (यहा यह बात उल्लेखनीय है कि धारणाओ के स्थान पर मुहावरो का प्रयोग प्रारम्भ हो गया है।। 'एक आदमी कुछ आदमी,' 'कोई आदमी,' प्रत्येक आदमी 'सभी आदमी' फ्रास का

नामक पुस्तक म रसेल द्वारा किए गए नवान्वेषण की ई० ई० सी० जो स जस तक शास्त्री द्वारा आलोचना की गई है। देखें माइण्ड 1910 11 के बहुत से निबध। रसेल ने मिस्टीसिज्म एण्ड लोजिक मे उनका जवाब भी दिया है। नई आलोचना के लिए देखें। पी० टी० गीच कत रसेल्स थ्योरी आव डिस्क्रिप्शन्स (एनालिसिस 1950) एम० लेजरोविच कत नोलज बाइ डिस्क्रिप्शन (पी० आर० 1937), पी० एफ० स्ट्राउसन कत आन रेफरिंग माइण्ड 1950)।

वर्तमान राजा' 'इंग्लैण्ड का वर्तमान राजा', 'वर्तमान शती के प्रथम चरण में,' 'सौर मण्डल के आकर्षण का बिन्दु' 'पृथ्वी का सूर्य के चारों ओर घूमना' वे इन मुहावरों की सामान्य प्रवृत्ति के विषय में कुछ नहीं कहते। किन्तु यह स्पष्ट है कि इनमें से एक भी विशिष्ट नाम नहीं है तो भी वे किसी भी वाक्य में व्याकरण की दृष्टि से कर्त्ता होने योग्य तो हैं ही।

रसेल के संकेतन के सिद्धान्त का मूलभूत भाव वास्तव में यही है कि मिल के खिलाफ ये संकेत देने वाले मुहावरे किन्हीं इयत्ताओं के नाम नहीं हैं, चाहे वाक्यों में कर्त्ता के रूप में इनका प्रयोग कई बार भ्रम उत्पन्न कर देता हो। उन्होंने अपनी बात को सिद्ध करने के लिए ऐसे वाक्यों की रचना की, जिनमें संकेत देने वाले मुहावरे थे। उन्होंने मूल वाक्य में निहित अर्थ को किसी प्रकार संकेत देने वाले मुहावरे के माध्यम से व्यक्त करने का प्रयास नहीं किया है। यदि ऐसा संभव हो जाय, जैसा कि मान्यता है तो फिर यह आवश्यक नहीं रहेगा कि हम यह मानें कि एक संकेतक मुहावरा सदैव ही किसी विशिष्ट स्थिति का नामांकन करता है। तब मीनोंग के अयथार्थ पदार्थों को भी त्यागा जा सकता है। 'ओकम के उस्तरे की धार' पर चढ़ाकर यही निष्कर्ष निकलता है कि इन इयत्ताओं की जब तक आवश्यकता न हो जाय, गुणन नहीं किया जाना चाहिए।

भाषा के प्रारंभिक रूप से हम रसेल के सामान्य प्रक्रिया का उद्धरण दे सकते हैं—सब कुछ (एव्री थिंग) कुछ नहीं (नथिंग) कुछ (सम थिंग)। 'सब कुछ स है' जैसे सब तर्कवाक्य इस बात की सिद्धि नहीं करते कि 'सब कुछ' जैसी 'रहस्यमयी इयत्ता' का अस्तित्व है और वास्तव में उसकी ही तुलना स से की जा रही है। इस प्रकार की इयत्ता के होने की कल्पना करने की आवश्यकता ही नहीं है। इस बात को इस तथ्य से प्रकट किया जा सकता है कि 'सब कुछ स है' का विश्लेषण इस तरह किया जा सकता है कि क्ष के सभी मूल्यों के लिए क्ष, स है। यहां 'सब कुछ' का उद्धरण आवश्यक नहीं है। लेकिन फिर भी पूर्णतः मूल बात को कहने में यह व्याख्या समर्थ है।

इससे भी अधिक जटिल एवं महत्वपूर्ण बात रसेल द्वारा प्रस्तुत निश्चित विवरण का सिद्धान्त है। ये ऐसे मुहावरे होते हैं जिनमें 'दी' का प्रयोग होता है।[1] अमुक नाम का मुहावरा निश्चय ही किसी इयत्ता की ओर इंगित करता है। उदाहरणार्थ, फ्रेगे ने विचार किया था कि 'दी' किसी प्रस्तुत पदार्थ को होने की

---

[1] अनिश्चित विवरणों से अलग, जिनमें 'ए' नामक आर्टीकल लगा है। द्रष्टव्य रसेल कृत इंट्रोडक्शन टू मैथेमेटिकल फिलोसोफी।

श्रेष्ठतम अवस्था का सकेत है किन्तु इस तकवाक्य कि वेवरले का लेखक (आथर) स्कोच है।' यहा प्राय हम विधेय को कर्त्ता का गुण मान लेते हैं म वेवरले का लेखक' नामक मुहावरा वेवरले के लेखक के विषय मे कोई विवरण प्रस्तुत नही करता। इस तकवाक्य का रसल के अनुसार यही अथ है कि वह तीन तकवाक्यो का सयोजक है (अ) 'कम से कम एक व्यक्ति ने वेवरले लिखी' (ब) अधिक से अधिक एक व्यक्ति ने वेवरले लिखी (स) 'जिस किसी ने वेवरल लिखी वह स्कोच था।' या अधिक सद्धान्तिक ढग से रखें तो कहगे, एक ऐसा पद स है जिसके अनुसार(1)क्ष ने वेवरल लिखा' समानाथक है। क्ष के सभी मूल्यो के लिए क्ष स हैं। एव (२) 'स स्कोच है।'

यह पुन –रचना वेवरले के लेखक की चर्चा ही नही करती। इससे यही अथ निकला, कि हम कहने को तो कह सकते हैं कि 'वेवरले का लेखक स्कोच है' जबकि दरअसल वेवरले का कोई लेखक नही है। इस तरह हमारा कथन गलत हो जाएगा क्योंकि तकवाक्य (अ) कम से कम एक व्यक्ति वेवरले का लेखक है' तकवाक्य ही गलत है, लेकिन तो भी यह निरथक नही हो सकता। अब हम यह समझ सकते हैं कि फ्रांस का राजा गजा है,' जसा कथन किस प्रकार अपना अथ प्रकटा सकता है—जबकि हम यह जानते हैं कि 'फ्रास के राजा' जसी कोई सत्ता अस्तित्व मे नहीं है। इस तरह मीनोग द्वारा आवश्यक माने गए पदाथ की ही यहा आवश्यकता महसूस नही होती।

रसेल के लिए अब अपनी दाशनिक साधना का माग खुल गया था। ओकम की माति तर्कों के पने प्रयोग ने तलवार का काम किया था और तक तथा दशन से अनावश्यक एव अवाछित तत्वो को काटकर अलग कर दिया था। अ को को जो अब वर्गों के वग की श्रेणी म नही आते थे, सवप्रथम पलायन करना पडा किन्तु मीनोग के पदार्थों' के विचार पर विजय प्राप्त करना महत्वपूण कम था–और तब शीघ्र ही उन्हे सामान्य पराजितो की माति नरक (हेदस) मे जाना पडा। अर्थात् घृणा का पात्र बनना पडा।

रसेल के कथनानुसार, निश्चित विवरण हमशा अपूण प्रतीक होते हैं। इस फ्रेग न कायफलन मे प्रकट होने वाले 'नाम' कहा है और 'पूण प्रतीको से भिन्न माना है। किसी तक म प्रकट हुए नाम, विशिष्ट नाम ही पूण प्रतीक होते हैं। वाक्यो म उनका उपयोग तो है लेकिन वे किसी इयत्ता का प्रतिनिधित्व नही करते। यही बात वर्गों के लिए भी सही है। वग भी भाषा परम्परा के प्रतीकात्मक चिह्न हैं, इनका तकवाक्यीय कायफलनो के काय फलन बतान के लिए उपयोग होता है। 'मनुष्य' वग सबधी कथन मरण शील वग मे समाहित हो जाता है–और ऐसा लगता है जसे यहा पर इयत्ताओ का परस्पर सबध बताया जा रहा है। (१) मनुष्य

कोई रग नही होता अणु कोई ध्वनि नही करते, विद्युदणुओ का कोई स्वाद नही होता जीवाणुओ की कोई गध नही होती, तो भी जिसे हम प्रत्यक्ष देखते हैं वह रगमय है ध्वनियुक्त है, गध और स्वाद से सना है। तब किस प्रकार भौतिक पदार्थो का ऐन्द्रिय ससर्ग से सही ज्ञान किया जा सकता है। किन्तु वे बकले के साथ सहमत होते हुए कहते हैं कि ऐसा अनुमान करना और वह भी विशेषकर उन तत्वो के लिए जो हमारे अनुभव से अपनी प्रकृति मे ही भिन्न हो सैद्धान्तिक रूप से असभव है। जब तक कि किसी भाति भौतिक पदार्थो को ऐन्द्रिय उपकरणो के रूप मे बदला नही जा सकता तब तक भौतिकी उनकी दृष्टि मे केवल एक कल्पना मात्र ही है।

इस प्रकार सार रूप मे किसी को प्राप्त करने मे जो कठिनाई है—उससे मुक्ति पाना सभव नही है। ऐन्द्रिय उपकरणो की जो सामान्य परिभाषा की गई है उसके अनुसार ऐन्द्रिय उपकरण (सेन्स डेटा) आत्मपरक हैं तथा विभक्त हैं। भौतिक पदार्थ वस्तु परक हैं तथा निरन्तर हैं। भिन्न-भिन्न व्यक्ति भिन्न भिन्न, एक से न दिखाई देने वाले, ऐन्द्रिय उपकरणो के ससर्ग से आते हैं। एक पेनी (सिक्का) किस प्रकार आपके लिए गोलाई का ऐन्द्रिय बोध देती है और मेरे लिए चपटे होने का। रसेल का विचार था कि इग्लण्ड के नव यथार्थवादी टी० पी० नन एव एस० एलक्जण्डर तथा अमरीका[1] के ई० बी० होल्ट के द्वारा दिए गए निर्देशो की सहायता से कदाचित् हम इन आपत्तियो पर विजय प्राप्त कर ले।

इनकी प्रमुख धारणाए[2] ये हैं कि ऐन्द्रिय उपकरण आत्मपरक नही है।

---

1 देखें एस० एलक्जेण्डर कृत द बेसिस आव रीएलिज्म (पी० बी० ए० 1914), टी० पी० नन कृत आर सेकेण्डरी क्वालिटीज इण्डिपेण्डेण्ट आव परसेप्शन? (पी०ए०एस० 1909), द न्यू रियलिज्म (सम्पादक मारविन 1912) मे ई० बी० होल्ट कृत द प्लेस आव इल्यूजरी एक्स्पीरिएन्स इन ए रीएलिस्टिक वर्ल्ड। अगला ११ वा अध्याय भी देखें।

2 रसेल के उपकरणो के सिद्धान्त के लिए द्रष्टव्य जी० डी० हिक्स कृत द नेचर आव सेन्स डेटा माइण्ड 1912, एव रसेल द्वारा उसका उत्तर (माइण्ड 1913), जे० ई० टरनर कृत मिस्टर रसेल्स आव सेन्स डेटा एण्ड नोलेज (माइण्ड 1914), एच० ए० प्रिचार्ड कृत मिस्टर बर्टेण्ड रसेल आन द नोलेज आव द एक्सटरनल वर्ल्ड (माइण्ड 1913) एव मिस्टर बर्ट्रेण्ड रसेल्स आउटलाइन आव फिलोसोफी (माइण्ड 1928), सी०ए० स्ट्राग कृत रसेल्स थ्योरी आव एक्सटरनल वर्ल्ड, माइण्ड (1922), जे० एच० वूडगर कृत मिस्टर रसेल्स थ्योरी आव एक्सटरनल वर्ल्ड, माइण्ड 1922), जे० एच० वूडगर कृत मिस्टर रसेल्स थ्योरी आव परसेप्शन (मोनिस्ट 1930) एव सी० ए० फिज कृत पूर्वोक्त एव बहुत से अन्य निबध जिन्हे पी० ए० शिल्प द्वारा द फिलोसोफी आव बर्ट्रेण्ड रसेल मे सम्पादित किया गया है।

यह न तो मानसिक अवस्था ही है और न ऐसी किसी अवस्था का अश। दूसरी बात यह कि, एक बार यह ज्ञान हो जाए तो सद्धातिक रूप से यह मान लेने मे कोई कठिनाई नही होगी कि इंद्रिया है। ऐसे पदार्थो के रूप मे, जो भी उसी प्रकार के भौतिक अथवा तात्विक विश्लेषण किए जाने की क्षमता रखते हैं जिस प्रकार इंद्रिय उपकरण, किन्तु वास्तव मे किसी के द्वारा उनका प्रत्यक्षीकरण नही हो रहा। तीसरे, ऐंद्रिय उपकरणो की मान ली गई असगति काल और दिक की सामान्य धारणा पर आश्रित लगती है। चूकि ऐंद्रिय उपकरण वस्तुपरक है भौतिक पदार्थो की परिभाषा भी तब ऐंद्रिय उपकरणो की शृखला मात्र मानकर देनी होगी और ऐंद्रिय ससग से इनका परस्पर जुड़ाव माना जायगा। और तब ये तथाकथित असगत ऐंद्रिय उपकरण भिन्न एव निजी दिक मे अलग अलग तरह के सदस्य माने जाएगे। इस तरह रसेल के अनुसार एक पनी (सिक्का) चपट ऐंद्रिय उपकरणो से युक्त है जो आपके निजी दिक मे वसी घटित हो गयी है, किन्तु इसके साथ ही साथ अन्यो के निजी दिको मे विभिन्न प्रकार के ऐंद्रिय उपकरणो को घटित करती है–और मेरे लिए गोलाई का भाव लिए हुए ऐंद्रिय उपकरणों को जन्म देती है। ये भिन्न भिन्न रूप एक वस्तु की रचना करते हैं क्योंकि ये सभी भौतिकी के नियमो के अनुरूप व्यवहार उस घटित होने की शृखला, किसी एक वस्तु का आभास नही देती हो तो सामान्यत उसका व्यवहार उस घटना से सबद्ध ही नही है। कम से कम भौतिकी के लिए वस्तु सबधी सत्य तो यही है। सामान्य बुद्धि की वस्तुओ पर इतनी कम सतकता से विचार किया जाता है कि उनकी रचना का कम सतोषजनक विवरण दिया जाना असभव है।

रसल का निष्कष है कि भौतिकी को ऐसी भौतिक वस्तुओं की आवश्यकता नही है–जो ऐंद्रिय उपकरणो से सवथा भिन्न प्रकृति की हो और यही सभी प्रकार के वैज्ञानिक दाशनिकीकरण की सवश्रेष्ठ आधार भूमि है कि जहा कही भी सभव हो, तार्किक रचनाए अनुमानित इयत्ताओ के बदले मे रखी जानी चाहिए।[1]

---

[1] तुलना के लिए देखें चोन लेयड कृत व र्लाऑव पारसीमोनी (मोनिस्ट 1919), जोन विजडम कृत लोजीकल कान्स्ट्रक्शन (माइंड 1931–3) एल एस स्टेबिंग कृत कोन्स्ट्रक्शन्स (पी० ए० एस० 1933) रसेल का विचार था कि गलत होने के खतरे से हम निश्चय ही उस समय बच जाएगे जब बिना स्वीकार किए हम आगे बढ़ते जाए और न हम स्पष्टत इसका खण्डन ही करें कि एक इयत्ता अस्तित्व मान होती है। उन्होने (मोनिस्ट 1919 मे) लिखा कि प्रत्येक इयत्ता एव प्रमेय के घटा देने के साथ ही आप गलत होने की सभावना को भी घटा सकते हैं। यह एक गणितज्ञ तकशास्त्र की वाणी है। वे तक एव तत्वदशन दोनो मे ही एक ऐसी

इस तरह यदि भौतिक पदार्थों का ऐन्द्रिय उपकरणों द्वारा रचित मान लिया जाय, तो एक वैज्ञानिक दार्शनिक को इस सिद्धान्त का ही परित्याग कर देना चाहिए। रसेल ने 'द प्रोब्लेम्स ऑव फिलोसोफी' में यही प्रतिपादित किया है कि इनके अस्तित्व का अनुमान ऐन्द्रिय उपकरणों के अनुभव से हमारे द्वारा प्राप्त अनुमान की अपेक्षा अधिक सरल ढंग से किया जाना चाहिए।

रसेल के दर्शन में यहाँ आकर एक वैज्ञानिक दार्शनिक के लिए भी यह प्रत्यक्ष जगत् ऐन्द्रिय उपकरणों, समष्टियों एवं मानसिक तथ्यों से ही निर्मित मान लिया गया है। रसेल ने अब इस दृष्टिकोण का परित्याग कर दिया है कि मानसिक तथ्यों से परे हम आत्मा का सीधा साक्षात्कार कर सकते हैं। तो भी वे यह मानते हैं, कि मानसिक तथ्य ऐन्द्रिय उपकरणों से बिल्कुल भिन्न होते हैं। जो कुछ भी अनुभव किया गया है, जिस किसी की भी इच्छा या चाहना की गई है, वह इसके विपरीत ऐन्द्रिय उपकरणों की ही शृंखला है।

विश्वास की व्याख्या रसेल को उलझन में डालती रही थी। यह बात विशेषतः उस समय प्रकट हुई जब विट्जनस्टीन के प्रभाव में आकर उन्होंने तर्कसम्मत अनुवाद के दर्शन की रचना करने का प्रयास किया था।[1] तर्कसम्मत अनुवाद का दर्शन भिन्न भिन्न प्रकारों के तथ्यों का विश्लेषण करने का प्रयास है—उसी प्रकार जिस प्रकार पशुविज्ञान विभिन्न प्रकार के पशुओं की व्याख्या प्रस्तुत करता है। वे अभी भी मूर के इस दृष्टिकोण को स्वीकार करते हैं कि दर्शन का काम

न्यूनतम कामचलाऊ स्थिति की खोज करता है, जिससे एक प्रणाली कायम की जा सके। कम से कम शब्द के जरिए ही एक आदर्श भाषा का निर्माण होगा। यही बात उन्होंने प्रिंसिपिया मैथेमेटिका की शब्दावली द्वारा व्यक्त की है।

[1] इस शीर्षक के निबंध द मोनिस्ट 1918 एवं लोजीकल एटोमिज्म (सी० पी० बी० आई०) में देखें। देखें जे० ओ० अर्मसन कृत फिलोसोफीकल एनालिसिस डी० एफ० पीयर्स कृत लोजीकल एटामिज्म (रिवोल्यूशन इन फिलोसोफी 1956)। रसेल 1912 में कैम्ब्रिज में विटगिस्टीन से मिले थे। द मोनिस्ट में लिखे अपने निबंधों के आमुख में इस आशय का मंतव्य प्रकट करते हैं कि उन्होंने उन्हें प्रकाशित करने का निश्चय इस बात से अनभिज्ञ रहकर ही किया था कि विटगिस्टीन जीवित है या नहीं। किन्तु फिर भी किसी को उन पर हुए विटगिस्टीन के प्रभाव को बढ़ा चढ़ा कर नहीं रखना चाहिए। इन निबंधों के दस स्थलों पर वे मूर एवं जेम्स से सीखे हुए बहुलतावाद का ही पुनः स्थापन करते हुए नजर आते हैं। इन्हें रसेल ने एकेश्वरवाद के प्रमुख आलोचक होने की संज्ञा दी थी। इसी पुस्तक के छठे अध्याय में डब्लू० ई० जानसन पर लिखी गई टिप्पणी भी पढ़ें।

ममस्त ब्रह्माण्ड का एक सामा य विवरण प्रस्तुत करना है। रसेल सवप्रथम तथ्यो क मूल अश तकसम्मत अणुमो से अपनी यारया प्रारम करते है। रसेन के अनुमार ये दो प्रकार के ह। ऐद्रिय उपकरण एव समष्टिया। एक आणविक तथ्य मे अश क रूप मे ये आधारभूत तत्व है। उदाहरणाथ जहा अ' तथा ब' दोनो ऐंद्रिय उपकरण ह वहा 'अ' 'ब मे पहल होगा अथात उसका पूववर्ती होगा।

तथ्य विशिष्ट हो सकत है जसे यह सफेद है अयवा ममष्टिगत जस सब मनुष्य मरणशील हैं सार ससार को विशिष्ट सत्यो से निर्मित माना जाना असमव है। रसेल का कथन है कि उपयु त दृष्टिकोण उस समय तथ्य को समाहित कर लेना कि आणविक तथ्य ही व तथ्य हैं जो विद्यमान है। और एक बार यह सामान्य तथ्य स्वीकृत हो गया–तो अयो को स्वीकार नही करने का कोई ठोस कारण नही दिखाई देता। एक तथ्य स्वीकारात्मक अथवा नकारात्मक हो सकता है। कुछ तथ्य तो सवथा सामान्य होते है व विशिष्ट इयत्ताओ का सदभ नही देते केवल कथन सबधी सामान्य आकारो के विषय म ही कुछ कहते हैं। ये उनके विचार म तक के तथ्य है। और तब तथ्यो के विषय मे तथ्य हैं आदि आदि।

फिर भी झूठे या सच्चे तथ्य कही नही होते। केवल एक तककथन ही सही अथवा गलत हो सकता है और रसेल क अनुसार, तककथन तथ्य न होकर एक प्रतीक है। उन्होने लिखा है यदि आप ससार के अन्वेषण म लगे हैं तो तक कथन प्रकट नही होग। उस समय, तथ्य विश्वास इच्छाए एषणाए सब प्रकट हो सकते हैं किन्तु तककथन प्रस्तुत नही होगे। यह तो कवल तककथनो के वर्गीकरण की ही बात हैं कि रसेल के लिए कठिनाई उत्पन्न हो जाती है।

रसेल के अनुसार तककथन के दो वग होत हैं आणविक तथा पारमाणविक सब परमाणविक तककथनो को आणविक तककथना क सत्यफलन क रूप मे व्यक्त किया जा सकता है अथात् इनकी स यता एव झुठाई आणविक तककथनो की सचाई एव झुठाई पर ही पूणत आश्रित हैं—और इन्ही मे इनकी रचना होती है। एक आणविक तककथन की सचाई उस तककथन म निहित तथ्य से बाहर झाक कर देखने स उपलब्ध हो सकेगी। इस तरह यदि सरलतम उदाहरण लें तो तो कहेंग कि परमाणविक तककथन प एव फ सत्य हैं। यदि आणविक तक कथन प फ दोनो सही हैं और यदि इनम मे प्रत्यक असत्य है तो व भी असत्य हैं। किन्तु प की अपनी सचाई प स इतर किसी अन्य अवस्था म ही निहित है।

रसल के सम्मुख अब समस्या यही है कि उन्ह इसी वर्गीकरण म मानसिक तथ्यो म सम्बन्धित तककथना को रूपायित करना है। मैं विश्वास करता हू कि

सत्य है, क्या यह कथन आणविक है अथवा परमाणविक? यह लगता तो आणविक कथन ही है, जिसमें दो अवयव हैं। 'मैं विश्वास करता हूं' तथा 'क्ष य है'। किन्तु इस दृष्टिकोण को स्वीकारते ही जो कठिनाई प्रस्तुत होती है वह यही कि 'क्ष य है' कि सत्यता एवं झूठेपन से 'मैं विश्वास करता हूं कि क्ष य है' की सचाई अथवा झूठेपन का कोई ताल्लुक ही नहीं है। इसलिए 'क्ष य है' 'मैं विश्वास करता हूं कि क्ष य है' का किसी भी भांति तथ्यांश नहीं हो सकता। कम से कम इस रूप में तो नहीं जिस रूप में 'प' 'प तथा फ' का एक भाग है। इस चिड़िया-घर में विश्वास नामक चीज एक नई प्रजाति' के आने जैसा है। तो इस निष्कर्ष में कुछ अंश असंतोषजनक तो हैं ही, मानसिक तथ्य तार्किक विचित्रताओं के कारण अनेक तथ्यों से छिटककर किसी भी भांति अलग नहीं किए जा सकते।

यदि दूसरी ओर 'मैं विश्वास करता हूं कि क्ष य है' की पुनः रचना व्यवहार-वादियों की भांति की जाय, जैसे जब जब भी मुझे क्ष से पाला पड़ता है—तो मैं अमुक अमुक तरह से प्रतिक्रिया व्यक्त करता हूं। 'उदाहरण के लिए यदि मैं कहूं कि मेरा विचार है कि सांप खतरनाक होते हैं तो इसका यही अर्थ होगा कि जब कभी भी मैं सांप को देखता हूं मैं एक छड़ी उठा लेता हूं। ऐसी अवस्था में विश्वासों को तथा अन्य मानसिक तथ्यों को अलग तार्किक प्रजाति मानने की आवश्यकता ही नहीं रह जायगी इस तरह यह कोई आश्चर्यजनक बात नहीं है। रसल इसी दिशा में अपने ग्रंथ द एनालिसिस आव माइण्ड में आगे बढ़े हैं और इस तरह जे० बी० वाटसन एवं टी० पी० नन जैसे व्यवहारवादियों से इस ग्रंथ का प्रूफ पढ़वाना इस दृष्टि से सार्थक ही था।[1]

रसल अब अपने तथा मूर के द्वारा प्रस्थापित सिद्धान्तों में व्यक्त प्रत्ययों के सम्पूर्ण रूपाकारों की प्रतिक्रिया में खड़े हो जाते हैं। विशेषतः ब्रेण्टानो की मन मघटन की परिभाषा का एकदम खण्डन कर देते हैं। वे अब यह नहीं मानते कि इन घटनाओं का सारांश इसी में निहित है कि वे किसी पदार्थ की ओर इंगित करते हैं। वास्तव में इस धारणा को बनाए रखने में वे कोई अर्थ नहीं देखते कि दुनिया में या तो क्रियाएं हैं या पदार्थ। यह कहने के बजाए कि 'मैं सोचता हूं' वे मच के शब्दों में कहना चाहते हैं कि इसे यों लिखना बेहतर है कि 'मुझमें ऐसा सोचा जाता है।' इससे भी अच्छे ढंग से कहें तो 'मुझ में एक विचार प्रकट है' आदि आदि। इस तरह 'मैं क्ष के विषय में सोचता हूं' का आकार तत्काल ही इस बात का संकेत देता है कि विचारने की एक क्रिया है और उस क्रिया का कर्म भी है। किन्तु वास्तव

---

[1] द्रष्टव्य अध्याय 11 यहां पर रसेल पर हाल्ट एवं परी का प्रभाव लक्षित होता है।

इंगित करता था जिनसे हम एकदम परिचित हो जाते थे तथा जिन्हें समष्टियों के जरिए वर्णित भी किया जा सकता था, किन्तु जैसे ही उनका संकेतन का सिद्धान्त विकसित हुआ वे सब विशिष्ट नाम होने से वंचित हो गए। इनमें से प्रत्येक अब छद्मवेश में एक विवरण योग्य मुहावरा हो गया केवल मात्र 'यह' इस कठिन परीक्षण में खरा उतर सका।

तर्क सम्मत आणविकता पर लिखे अपने निबंध में रसेल ने संकेत दिया कि यह का उनके दर्शन में वही स्थान है जो परम्परागत दर्शन में तत्व का है। इससे उन इयत्ताओं अर्थात् तर्कसम्मत व्यष्टियों का पता लगता है जो पूर्णत अकेला हैं एवं स्वयं पूर्ण हैं। किन्तु यह बात उन्हें धीरे धीरे समझ में आई कि यदि यह सत्य है तो तत्व के सम्बन्ध में की गई परम्परागत आपत्तियां इन तर्क सम्मत व्यष्टियों पर भी लागू हो सकती हैं। एक बार इस तथ्य से उनका साक्षात्कार हो गया फिर तो व्यष्टि और समष्टि के उनके सारे सिद्धान्त में आमूलचूल परिवर्तन आ गए।

उनका सामान्य दृष्टिकोण सदैव यही रहा है—और उसे उन्होंने आन द रिलेशन्स आव यूनिवर्सल्स एण्ड पर्टीकुलर्स (1912) नामक निबंध में भली भांति वर्णित भी किया है कि तर्क सम्मत व्यष्टियों एवं समष्टियों में तीव्र अन्तर किया जा सकता है। वे अनेक बार इस धारणा के प्रति आकृष्ट हुए थे कि समष्टिगत विशेषताओं को उसी प्रकार की दूसरी व्यष्टिगत इकाइयों में बदला जा सकता है। लेकिन फिर भी उन्होंने सदैव इसी बात पर ध्यान केंद्रित रखा है कि इस अवस्था में भी कम से कम एक समष्टिभाव विद्यमान होता है और वह है दोनों का साम्य। इस तरह दूसरी अवस्थाओं के विषय में भी क्यों न विचार किया जाय?

किन्तु मीनिंग एण्ड ट्रुथ में वे निम्नांकित विचार व्यक्त करते हैं। मैं यह सुझाना चाहता हूं कि यह लाल है उद्देश्य कर्ता विधेयात्मक' तर्कवाक्य नहीं है किन्तु उसका आकार इस प्रकार का है लाली यहां है। लाल विधेय न होकर एक नाम है, जिसे हम सामान्यतया वस्तु की संज्ञा देते हैं। वह समवायी गुणों से उत्पन्न अवस्था जैसे लाली' कठोरता' आदि के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है। किसी भी दूसरे दृष्टिकोण के जरिए विश्लेषण करने पर यह नामक शब्द एक ऐसी अज्ञेय अवस्था बन जाता है, जिसमें विधेय समाहित हो किन्तु फिर भी वह अपने सभी विधेयात्मक गुणों के सम्मिलित रूप में कुछ और भी है।

यहां यह बात समझनी चाहिए कि रसेल प्रत्ययवादियों की भांति वस्तु की परिभाषा समष्टियों की मिलन बिन्दु कह कर नहीं देते। इसके विपरीत वे तो यह मानते हैं कि वस्तु के गुण अपने आप में व्यष्टियां होते हैं। एक लाल वस्तु

किसी स्थान म घटित हुई ऐसी अवस्था है जो अपने मे एक विशेष प्रकार के रग को समाहित किए है। निश्चय ही इसका विशेष नाम तो होना ही चाहिए। गुण इस प्रकार व्यष्टिया हो जात हैं और वस्तुए इन व्यष्टियों के आकलन मात्र हैं जो समय काल एव दिक् की विशिष्ट अवस्थाओ से घटित होती है। 'लाली यहा है' मे यहा' ऐसे गुणो की इकाई का सदम प्रस्तुत करती है जिनके द्वारा रग का प्रभाव हमारे चाक्षुष क्षेत्र मे रख दिया जाता है और वहा उसका स्थान चिर-स्थायी हो जाता है।[1] किन्तु यह दृष्टिकोण केवल कामचलाऊ ही है।

इसके आगे का प्रश्न, जिस उन्होने ह्यूमन नोलेज मे उठाया है विशेष महत्व का है कि विज्ञान के सामा य तकवाक्यो का औचित्य कस दिया जा सकता है?[2]

इसी के साथ एक दूसरी समस्या जुडी है, अनुभववाद से किस किस बिन्दु पर आकर अलग हो जिसे दाशनिक भी स्वीकार कर सकें? रसेल कभी ठोस रूप म अनुभववादी नही थ, यहा तक कि अपने ग्र थ द प्रोब्लेम्स आव फिलोसोफी मे भी रसेल ने इस दृष्टिकोण का खण्डन किया है कि सभी प्रकार का ज्ञान अनुभव से प्राप्य है। गणितीय तकवाक्य इस प्रकार अनुभव स प्राप्त नही किए जा सकते और न आगमनात्मक सिद्धा त ही अनुभवज य होते हैं। तो भी इसके साथ ही रसल की चेतना समाकुल रहती है। लगता है जसे उनक धमपिता मिल, अपने आध्यात्मिक अधिकारो का उन पर उपयोग कर रहे हो, विशेषकर उस समय जब वे अनुभव से बाहर झाकने का प्रयास कर रहे हो। यदि अनुभववाद की सीमाए हैं, तो य सीमाए जरा सकोच के साथ पार की जानी चाहिए।

द एनालिसिस आव मैटर मे उनकी विचारधारा का निष्कष यही रहा—कि ठोस अनुभववाद क्षण का एकात्मकवाद ही रह जायगा। रसेल कभी भी यह शका नही उठाते कि ऐन्द्रिय सवेदन का ही हम अनुभव होता है। रसेल क लिए अब समस्या ऐसे उपकरणो (पोस्टयूलटस) के निर्धारण मात्र की रह जाती है ताकि यदि अनुभववाद को एक सतोषजनक दशन विज्ञान की मना देनी है, तो अनुभववाद म इन उपकरणो का जोडना होगा। आगमनात्मक सिद्धान्त ऐसा एक उपकरण है। किन्तु रसल का विचार है कि इसके

---

[1] द्रष्टव्य द फिलोसोफी आव बर्ट्रेण्ड रसेल म एम० वेज द्वारा दिए गए योग-दान पर उनकी टिप्पणी।

[2] इन्नू हे कृत बर्टेण्ड रसेल ऑन द जस्टिफिकेशन आव इ डक्शन (पी० एम० सी० 1950), एच० मैलकाम कत रसल्स ह्यूमन नालेज (पी० आर० 1950), एच० राइकेनबक कृत ए कन्वसेशन बिटवीन बर्ट्रे ड रसेल एण्ड डविड ह्यूम (जे० पी० 1946),

इंगित करता था जिनसे हम एकदम परिचित हो जाते थे तथा जिन्हें समष्टियों के जरिए वर्णित भी किया जा सकता था, किन्तु ज्यों ही उनका संवेदन का सिद्धान्त विकसित हुआ वे सब विशिष्ट नाम होने से वंचित हो गए। इनमें से प्रत्येक अब छद्मवेश में एक विवरण योग्य मुहावरा हो गया केवल मात्र 'यह' इस कठिन परीक्षण में खरा उतर सका।

तर्कसम्मत आणविकी पर लिखे अपने निबंध में रसेल ने संकेत दिया कि यह का उनके दर्शन में वही स्थान है जो परम्परागत दर्शन में तत्व का है। इससे उन इयत्ताओं अर्थात् तर्कसम्मत व्यष्टियों का पता लगता है जो पूर्णत: अकेली हैं एवं स्वयं पूर्ण हैं। किन्तु यह बात उन्हें धीरे धीरे समझ में आई कि यदि यह सत्य है तो तत्व के सम्बन्ध में की गई परम्परागत आपत्तियाँ इन तर्कसम्मत व्यष्टियों पर भी लागू हो सकती हैं। एक बार इस तथ्य से उनका साक्षात्कार हो गया फिर तो व्यष्टि और समष्टि के उनके सारे सिद्धान्त में आमूलचूल परिवर्तन आ गए।

उनका सामान्य दृष्टिकोण सदैव यही रहा है—और उसे उन्होंने आन द रिलेशन्स आव यूनिवर्सल्स एण्ड पर्टीकुलर्स (1912) नामक निबन्ध में भली भाँति वर्णित भी किया है कि तर्कसम्मत व्यष्टियों एवं समष्टियों में तीव्र अन्तर किया जा सकता है। वे अनेक बार इस धारणा के प्रति आकृष्ट हुए थे कि समष्टिगत विशेषताओं को उसी प्रकार की दूसरी व्यष्टिगत इकाइयों में बदला जा सकता है। लेकिन फिर भी उन्होंने सदैव इसी बात पर ध्यान केन्द्रित रखा है कि इस अवस्था में भी कम से कम एक समष्टिभाव विद्यमान होता है और वह है दोनों का साम्य। इस तरह दूसरी अवस्थाओं के विषय में भी क्यों न विचार किया जाय?

किन्तु मीनिंग एण्ड ट्रूथ में वे निम्नांकित विचार व्यक्त करते हैं। मैं यह सुझाना चाहता हूँ कि यह लाल है उद्देश्य कर्ता विधेयात्मक' तर्कवाक्य नहीं है किन्तु उसका आकार इस प्रकार का है लाली यहाँ है। लाल विषय न होकर एक नाम है, जिसे हम सामान्यतया वस्तु की संज्ञा देते हैं। वह समवायी गुणों से उत्पन्न अवस्था जैसे लाली' कठोरता' आदि के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है। किसी भी दूसरे दृष्टिकोण के जरिए विश्लेषण करने पर यह नामक शब्द एक ऐसी अज्ञेय अवस्था बन जाता है जिसमें विधेय समाहित हो किन्तु फिर भी वह अपने सभी विधेयात्मक गुणों के सम्मिलित रूप में कुछ और भी है।

यहाँ यह बात समझनी चाहिए कि रसेल प्रत्ययवादियों की भाँति वस्तु की परिभाषा समष्टियों की मिलन बिन्दु कह कर नहीं देते। इसके विपरीत वे तो यह मानते हैं कि वस्तु के गुण अपने आप में व्यष्टियाँ होते हैं। 'एक लाल वस्तु

किसी स्थान म घटित हुई एसी अवस्था है जो अपने मे एक विशेप प्रकार के रग को समाहित किए है। निश्चय ही इसका विशेष नाम तो होना ही चाहिए। गुण इस प्रकार व्याप्टिया हो जाते हैं और वस्तुए, इन व्याप्टियों के आकलन मात्र हैं जो समय काल एव दिक की विशिष्ट अवस्थाओ से घटित हाती है। लाली यहा है' म 'यहा' ऐसे गुणो की इकाई का सदभ प्रस्तुत करती है जिनके द्वारा रग का प्रभाव हमारे चाक्षुप क्षेत्र मे रख दिया जाता है और वहा उसका स्थान चिरस्थायी हो जाता है।[1] किन्तु यह दृष्टिकोण केवल कामचलाऊ ही है।

इसके आगे का प्रश्न, जिस उ होने ह्यू मन नोलेज म उठाया है विशेप महत्व का है कि विनान के सामा य तकवाक्या का औचित्य कसे दिया जा सकता है ?[2]

इसी क साथ एक दूसरी समस्या जुडी है, अनुभववाद से किस किस बिन्दु पर आकर अलग हा जिसे दाशनिक भी स्वीकार कर सकें ? रसेल कभी ठोस रूप मे अनुभववादी नही थ, यहा तक कि अपने ग्र थ द प्रोब्लेम आव फिलोसोफी मे भी रसेल ने इस दृष्टिकोण का खण्डन किया है कि सभी प्रकार का नान अनुभव से प्राप्य है। गणितीय तकवाक्य इस प्रकार अनुभव से प्राप्त नही किए जा सकते और न आगमनात्मक सिद्धा त ही अनुभवज य होते हैं। तो भी इसके साथ ही रसेल की चेतना समाकुल रहती है। लगता है जसे उनके धमपिता मिल, अपने आध्यात्मिक अधिकारो का उन पर उपयोग कर रहे हो विशेपकर उस समय जब वे अनुभव स बाहर झाकन का प्रयास कर रहे हो। यदि अनुभववाद की सीमाए हैं तो ये सीमाए जरा सकोच के साथ पार की जानी चाहिए।

द एनालिसिस आव मैटर म उनकी विचारधारा का निष्कप यही रहा–कि ठोस अनुभववाद, क्षण का एकात्मकवाद ही रह जायगा। रसेल कभी भी यह शका नही उठाते कि ऐद्रिय सवेदन का ही हम अनुभव होता है। रसेल के लिए अब समस्या ऐसे उपकरणो (पोस्टयूलेटस) के निर्धारण मात्र की रह जाती है ताकि यदि अनुभववाद को एक सतापजनक दशन विनान की सना देनी है, तो अनुभववाद म इन उपकरणो का जोडना होगा। आगमनात्मक सिद्धान्त ऐसा एक उपकरण है। किन्तु रसल का विचार है कि इसके

---

[1] द्रष्टव्य द फिलोसोफी आव बर्टेण्ड रसेल म एम० वेज द्वारा दिए गए योगदान पर उनकी टिप्पणी।

[2] डब्लू ह कृत बर्टेण्ड रसेल आन द जस्टिफिकेशन आव इ डक्शन (पी० एम० सी० 1950), एच० मैलकाम कत रसल्स ह्यू मन नालेज (पी० आर० 1950), एच० राइकेनबक कृत ए कन्वर्सेशन बिटवीन बर्ट्रेंड रसेल एण्ड डविड ह्यू म (जे० पी० 1946),

महत्व को बढ़ा चढ़ा कर प्रस्तुत किया गया है। यह तो केवल एक उपकरण है और वह भी इसका मूलभूत उपकरण नहीं। रसेल यहां आकर अपने द्वारा संकलित सामग्री की पिटारे खोल देते हैं—वे कहते हैं कि इनकी सामान्य प्रकृति का उद्धरण उनके न्यून स्थायी—भाव वाले उपकरणों में मिल सकता है जिसका आशय यह है कि यदि कहीं एक घटना भी प्रस्तुत हो जाए तो बहुधा यह भी घटित होता है कि उस घटना के घटित होने के साथ साथ ही उस स्थान के समीप भी उससे साम्य रखने वाली कोई अन्य घटना भी घट जाए।

इस संसार में घटनाएं निरंतर होती हैं—इस बात को कहने का उपयुक्त तरीका भी है। इसमें तत्ववादी विचारधारा का सहारा नहीं लिया गया है। रसेल का मत है कि वस्तुओं के बिना भौतिकी की रचना नहीं हो सकती। उनके द्वारा निर्धारित सामान्य नियम यही है कि यदि हमें किन्हीं सिद्धान्तों की रचना करनी है तो हमें वैज्ञानिक अनुमान का सहारा लेना होगा—रसेल के प्रतिपाद्य ह्यूम दर्शन में सामान्य नियमों से काफी मेल खाते हैं।

रसेल के अनुसार इन नियमों का अनुभव के जरिए अनुमान नहीं लगाया जा सकता—तो भी इनकी नींव अनुभव पर टिकी है। आदिम अनुमान (एनीमल इन्फरेन्स) के जरिए भी इस पर विचार करें तो हमें इससे किसी वस्तु के संबंध में की जाने वाली अपेक्षा के लिए रहे हमारे अभ्यास का पता चलता है जो मानवीय शरीर धारण करने के कारण प्रकट होना आवश्यक सा होता है। ये अनुमान स्वतः ही इन अभ्यासों में निहित सिद्धान्तों का पता कर लेते हैं। और यदि इनका अस्तित्व मात्र ही इस बात को असमीचीन ठहराता है कि अनुभववाद ही एक ज्ञान का परिपूर्ण सिद्धान्त है तो इनके संबंध में हमारी खोज तो निश्चय ही अनुभववादी आत्मा से निःसृत मानी जानी चाहिए जिसके जरिये हमने यह पता लगाया है कि सम्पूर्ण मानवी ज्ञान अनिश्चित है अपूर्ण है तथा एकांगी है। द प्रोब्लेम्स आव फिलोसोफी में प्रदर्शित आशावाद से काफी दूर हटकर यह बात रसेल द्वारा कही गई है। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं है रसेल का दार्शनिक विकास डेकार्ट से ह्यूम तक हुए विकास के मार्ग का एक सार संक्षेप है।

अध्याय १०

कुक विलसन एव आक्सफोड दर्शन

आक्सफोड मे प्रत्ययवाद की विभिन्न अवसरो पर हुई विजय के बावजूद भी यथार्थवाद के पक्ष मे आवाज बुलन्द करने का एक प्रतिवादी आन्दोलन भी जारी था। टोमस केस एक सशक्त अरस्तुवादी थे। वे 1899 मे 1910 तक तो आक्सफोड मे तत्वदर्शन एव आचारशास्त्र (मोरल्स) के प्राध्यापक रहे 1924 मे फिजीकल रीएलिज्म कालेज के अध्यक्ष रहे तथा उन्होंने 1888 से फिजीकल रीएलिज्म नामक ग्रन्थ प्रत्ययवादी युग की सफलता की चरमावस्था क दौरान प्रकाशित किया। तो भी नयी विचारधारा के प्रवर्तक केस न होकर उनके समसामयिक युवा दार्शनिक जॉन कुक विल्सन[1] थे जो 1899 से 1915 तक आक्सफोड मे तर्कशास्त्र के प्राध्यापक थे तथा इन्होंने ही प्रत्ययवाद क विरुद्ध आक्सफोड मत मे परिवर्तन लाना प्रारम्भ किया था। दर्शन का इतिहास लिखने वालों के लिए कुक विल्सन महत्वपूर्ण दार्शनिक सिद्ध हो जाने के कारण अन्य ही दिवास्वप्न का कारण बने रहे। उनक शिष्य उनक विषय मे एक महान गुरु का सा ममत्व एव आदर भाव रखते थ। लेकिन भाषण हस्तलेखो आदि म से जो कुछ भी महत्व का था वह उनके शिष्यों क ही अनुसार 1926 म प्रकाशित उनके ग्रन्थ स्टेटमेंट एण्ड इनफरेन्स मे सकलित हो गया किन्तु वह भी जुडा तुडा एव निष्कपहीन है। तो भी इस पुस्तक क आधार पर ही उन पर इतिहासनों को अपना निर्णय दना ही चाहिए।

स्टेटमेण्ट एण्ड इनफरेन्स नामक पुस्तक म आन्तरिक सगति का न्यून अपेक्षित गुण भी नही है। उनके शिष्यो का कथन है, कि मरने के समय तक भी अपने को खोजने' वाले कुक विल्सन की प्रस्तुत अनिर्णीत स्थिति उचित ही थी। उनके द्वारा महत्वपूर्ण रूढिविरोधी बचाए उनके अन्तिम दिनो म प्रस्तुत हुई था-और उन्हे भी स्वभावत वे बाद म सगत रूप म कायम न रख सक। वे

---

[1] द्रष्टव्य स्टेटमेन्ट एण्ड इन्फरेन्स मे ए एस एल फारक्युहसन द्वारा लिखित स्मरणांश, एच० ए० प्रिकाड एव एच० डब्लू० बी० जासेफ द्वारा क्रमश (माइण्ड 1919) एव (पी० बी० ए० 1915) म लिखे स्मृतिलेख। आर० रोबिन्सन कृत द प्रोविन्स आन लोजिक एन इण्टरप्रिटेशन आव सरटेन पार्टस आव कुक विलसन्स स्टेटमेण्ट एण्ड इन्फरेन्स (1931), सी० आर० मोरिस कृत आइडियलिस्टिक लोजिक (1935) म कुक विल्सन पर लिखा गया लेख, जोन [illegible]डरसन कृत द साइन्स आव लोजिक (ए० जे० पी० 1933)।

सुविधानुसार अरस्तुवादी, नवकाण्टवादी अथवा लोजवादी तकप्रणाली को मात्र अभ्यास के लिए अपनी चर्चाओ मे प्रकटाते रहते हैं।

कुक विलसन का मुख्य कथ्य तकशास्त्र है। किन्तु उनका यह तक आक्सफोड प्रणाली का ही प्रतिनिधित्व करता है। अर्थात् वह कलन की रचना करन के स्थान पर विचारो की दिशा मे दाशनिक दृष्टि स जाच करन की बात पर अधिक बल देगा। बूल–शाडर के तकशास्त्र को साधारण' तकशास्त्र सज्ञा देकर विलसन ने उनका खण्डन किया था और कहा था तकशास्त्र जो विचार प्रक्रिया के आकार खोजने' की क्रिया है अपेक्षाकृत गभीर कम है। अपनी साधारण सीमाओ मे भी बूले का तकशास्त्र दोष युक्त है।

अपनी उपयुक्त बात की सिद्धि के लिए कुक ने उक्त पुस्तक के बहुत से उदाहरण देकर यह सिद्ध किया है तकशास्त्र और कलन को वहा एक माने जाने के कारण तकसिद्धात के रूप मे उनकी स्थापनाए जटिल व उलझी हुई हैं। वह भ्रामक गणितीय रूपको का एक उपकरण बन गई हैं यदि किन्ही विशेष मामलो म इनकी स्थापनाएं सही उतरती हैं तो वह इसलिए हैं कि उनम अच्छे तकशास्त्र के कुछ अवशेष रह ही गय हैं। जसा इसके समथक सोचते हैं यह न तो पूणत गणितीय ही है और न परम्परा विरोधी।

रसेल के तकशास्त्र पर बूले शोडर की भाति कुक विलसन को बहुत कुछ नही कहना था और जो कुछ भी इस विषय मे उन्होने कहा है वह घृणा भाव स ही कहा है। इस तरह 'वर्गों के विरोधाभासो पर उन्होने बोसाके को लिखा, 'मैं यह जानकर कृतज्ञ हू कि ऐसी बेहुदी और भ्रमपूण बातो को प्रकाशित करवा कर कोई आदमी किस प्रकार मृगछल मे रह सकता है। मेरे लिए तो यह सोचना ही दुविधा जनक है कि उन्ह कसे एक प्रकाशक मिल गया (प्रकाशक के अन्दर का पाठक उस वक्त कहा लुप्त हो गया था?) और मुश्किल तो यह है कि ऐसा घृणित कम भी आज परीक्षण का विषय बन गया है।"

इसके बावजूद भी वे प्रत्ययवादी तकशास्त्र से असतुष्ट थे। हा, इसके प्रति उनके असतोष की मात्रा कम थी। प्रत्ययवादी तकशास्त्र निणय' से प्रारम होता है। कुक विलसन के मतानुसार प्रत्ययवादियो की भाषा का सहारा लें तो वास्तव म निणय' नाम की कोई स्थिति हम उपलब्ध नही होगी। प्रत्ययवादी विचारधारा मे गलती इस प्रकार प्रारम्भ होती है–परम्परागतया तकशास्त्र कथन को अपनी आरम्भिक चर्चा की इकाई मानता है जबकि प्रत्यवादी यह जानकर कि तकशास्त्र का शाब्दिक अभिव्यक्ति स इतना सबध नही है जितना विचार से है–कथन की एवज म निणय' को रख देते हैं और उसकी परिभाषा ऐसी मानसिक क्रिया के रूप मे

करते है जिनकी अभिव्यक्ति कथनों के जरिए होती है। किन्तु यह मानना एक भीषण गलती है कि एक ऐसी मानसिक क्रिया भी है जो प्रत्येक कथन में प्रकट होती है। कुछ कथन, ज्ञान को व्यक्त करते हैं, कुछ रायें कुछ मान्यताएं और कुछ अनुमान। और ये कुक विल्सन के मत में 'निर्णय' के विभिन्न प्रकार नहीं हैं। ये विचार की अलग अलग क्रियाएं हैं। प्रत्ययवादी निर्णय के सिद्धान्त की प्रमुख कमजोरी यही है कि वह इन विचारों की क्रियाओं को एक साथ या एक क्रम में नियमाण रखता है, जबकि इन्हें हर हालत में अलग अलग मानकर चलना चाहिए। ज्ञान को तथा ज्ञान के उपकरणों को, जिनमें मत विश्वास तथा मान्यताएं भी शामिल हैं किसी भांति एक दूसरे में उलझाना नहीं चाहिए, चाहे ये उपकरण अन्तत ज्ञान पर ही आश्रित क्यों न हों और इनकी व्याख्या ज्ञान के उपकरण के रूप में ही क्यों न की जाती हो।

ज्ञान क्या है? कुक विल्सन के मत में यदि कोई इस प्रश्न के जरिए ज्ञान की परिभाषा की मांग करे तो यह प्रश्न उत्तरहीन है। ज्ञान सरल है, अनन्त है अपरिभाष्य है। इसकी परिभाषा देने का या इसका औचित्य देने का कोई भी प्रयास अथवा इसके सिद्धीकरण को सम्भव मानने की बात अपरिहार्य रूप से गोल-मोल होगी। अधिक से अधिक एक दार्शनिक इसे उद्धरण से सिद्ध कर सकेगा और कुक विल्सन की दृष्टि में इसका सर्वश्रेष्ठ उद्धरण गणित में मिल सकता है। गणित एक वस्तुपरक ज्ञान है। यह एक सरल तथ्य है—इसके लिए न तो प्रदर्शन और बचाव की आवश्यकता ही है। ये ज्यामितिकार विशेषत कुक विल्सन के गुस्से के प्रमुख शिकार रहे हैं जिन्होंने यह सुझाव देने का दुस्साहस किया कि एक से अधिक ज्यामिति की सम्भावना हो सकती है। अथवा यह कि अभी गणितीय प्रणाली की निश्चितता सम्भवत इस तथ्य में निहित है कि अभी तक इसमें कोई विरोधाभास खोजा नहीं जा सका है।[1]

इस प्रकार ज्ञान की प्रकृति के विषय में सीधे अन्त ज्ञान से ववचित होने के बाद कुक विल्सन अब दूसरी स्थापना का स्पष्टीकरण करते हैं। सभी प्रकार के विचार में ज्ञान की आवश्यकता रहती है—जबकि ज्ञान को इनकी आवश्यकता नहीं होती। ज्ञान केवल मात्र विचार के विभिन्न उपकरणों को जोड़ देने का नाम नहीं है, यह तो विचार का मूलभूत आकार है—और इस पर ही किसी भी स्तर की विचार

---

[1] द्रष्टव्य ई जे फरलोंग कृत कुक विल्सन एण्ड द नॉन-यूक्लिडियन्स (माइण्ड 1941) ज्ञान के संबंध में उनके द्वारा बाद में किए गए उद्धरण के लिए जिस पर कुक विल्सन का प्रभाव है, देखें आर० आई० आरान कृत द नेचर आव नोइंग (1930)

शृंखला अवलम्बित रहती है ।[1] उदाहरणार्थ हम अपनी एक राय रख सकते हैं किन्तु यह तभी होगा जब हम यह जानें कि हमारे दृष्टिकोण के पक्ष मे जो प्रमाण है वो उस के अन्य विकल्पो से अधिक शक्तिशाली हैं । हमे 'आश्चय तभी होगा जब हम जानें कि हमारे आश्चय का आधार क्या है ? कुक विल्सन के विचार म, तकशास्त्र विस्तार से इस बात का सकेत देने क लिए है कि ज्ञान स अलग किस प्रकार मत-निर्धारण, विश्वास सचयन एव आश्चय-प्रकाशन सभव है । ऐस तकशास्त्र की रचना स्वय उन्होंने कभी नही की किन्तु विचारो के विविध प्रकारा के विश्लेषण सबधी उनकी रुचि को उनके शिष्यो ने ग्रहण कर लिया था । और तब उन शिष्यो के शिष्यो द्वारा जिसे स्वय विल्सन ने तकशास्त्र की सज्ञा दी थी, उसे ज्ञानमीमास या फिर दार्शनिक मनोविज्ञान क रूप म स्थापित किया गया ।

कुक विल्सन की रुचि का एक और पक्ष-व्याकरणीय एव तर्कीय विश्लेषणों के अन्तर को तथा उनके पारस्परिक सबध को प्रकटाना था । बोल-चाल क भाषा सबधी प्रयोगो क प्रति उनकी बडी आस्था थी । यह स्थिति यथार्थवादी ही कही जाएगी । भाषा म प्रचलित भेदो को सरलता से उपेक्षित नही किया जा सकता । उन्होंने बासाके को अपने एक दूसरे पत्र मे लिखा है कि तकशास्त्र के विद्यार्थी का यह कर्त्तव्य है, कि वह भाषा के एक मुहावरे के सामान्य प्रयोग या फिर भाषा के ढाच म उसकी अभिव्यक्ति सबधी स्थिति का निर्धारण करे । सभी बातें इसी पर आधारित हैं ।

और कुक विल्सन न जिस बात की शिक्षा दी उसे वे अभ्यास म भी लाए । स्टेटमन्ट एण्ड इनफरेन्स तर्क-भाषाई विश्लेषण स भरपूर है । इस प्रकार प्रत्ययवादी निर्णय के सिद्धान्त पर आंशिक रूप स की गई आलोचना के दौरान वे यह तक देते हैं कि यदि हम उस वाक्य पर विचार करें जिसम कोई निर्णय हो तो हमे तत्काल ही मालूम होगा कि निर्णय एक प्रकार का अनुमान है । प्रत्ययवादियो की धारणा की भांति यह एक सरल स्वीकारोक्ति नही है । यह निर्णय करना कि कौन दौड़ जीत जायगा उपलब्ध प्रमाणों के जरिए यह अनुमान करना है कि कौन

---

[1] यह कदाचित् कुक विल्सन के उपदेशो मे से सर्वाधिक प्रभावशाली है । द्रष्टव्य जी० एफ० स्टाउट कृत इमीजिएसी, मीडिएसी एण्ड कोहरेन्स (माइण्ड 1908 एव स्टडीज) जी० राइल कृत आर देयर प्रोपोजीशन्स ? (पी० ए० एस० (1929) डब्लू० नीले कृत प्रोबेबिलिटी एण्ड इण्डक्शन (1949), आलोचना के लिए दख डी० आर० कजिन कृत सम डाउटस अबाउट नोलेज (पी० ए० एस० 1935) एव लेयर्ड कृत नौलेज, बिलीफ एण्ड ओपीनियन (1930) ।

विजेता होगा। इस तरह अपने निर्णय को प्रयुक्त करना हमारे निष्कर्ष निकालने की मानसिक क्षमता को उपयोग में लाना है। निर्णय' नामक शब्द का यहां सर्वसाधारण प्रयोग है। और स्पष्टतः न तो ज्ञान ही और न हमारी मान्यताएं ही निर्णय के किसी ऐसे प्रकार को व्यक्त करती हैं। इस तरह भाषा के प्रयोग (यूसेज) प्रत्ययवादी सिद्धान्त के विरोध में खड़े हैं तथा उनमें हमें आस्था रखनी चाहिए।

प्रत्ययवादी तर्कशास्त्रियों ने जहां आकर रोजमर्रा की भाषा की मांगों को अस्वीकार किया है कुक विल्सन की दृष्टि में वह है उनके द्वारा समष्टियों को आकल्पात्मक आकार में बदलना। एक प्रत्ययवादी के अनुसार सब क्ष य हैं इस बात से अधिक कुछ व्यक्त नहीं करता कि यदि कोई भी वस्तु क्ष है तो वह य भी है। विल्सन इस विश्लेषण पर इस आधार पर आपत्ति प्रस्तुत करते हैं कि यदि तो' के आकार वाले कथन किसी शर्त कथन के सम्पूर्ण अर्थ को व्यक्त नहीं कर सकते। प्रश्न भाषा का है वैसे इसका उत्तर किसी विशिष्ट भाषा के सामान्य प्रचलन के अनुसार क्ष य, हैं उसी समय कहाजायगा जब हम यह विश्वास करें कि वास्तव में क्ष नामकी कुछ वस्तुएं हैं। यदि' 'तो आकार वाला कथन अपने साथ इस प्रकार की कोई स्वीकारोक्ति लेकर नहीं चलता। निश्चय ही यदि 'तो का मुहावरात्मक प्रयोग भी होता है जहां वह शर्तमय हो जाता है और सब क्ष य है का मुहावरात्मक प्रयोग जिसमें से अस्तित्व संबंधी स्वीकारोक्ति विलुप्त है इस शर्त के विषय में प्रकाश डालता है। किन्तु तब भी सर्व-सामान्य भाषा संबंधी प्रयोग ही इसका मान-बिन्दु होगा। कुक विल्सन का स्वयं का मत है कि सभी सच्चे तर्क कथन, शर्त कथन ही होते हैं। आकल्पिक कथन, केवल समस्या को सामने रखते हैं कोई स्वीकारोक्ति नहीं करते। उदाहरणार्थ यह आकल्प कि यदि यह द्रव' तेजाब है तो लिटमस को लाल कर देगा इस बात की सिद्धि करता है कि इस समस्या का हल कि यह द्रव तेजाब है या नहीं, इस बात में निहित है कि यह लिटमस को लाल कर सकता है अथवा नहीं। एक आकल्प निश्चय ही सत्य कथनों पर आश्रित होता है। यहां सत्य कथन यह है कि सब प्रकार के तेजाब लिटमस को लाल कर देते हैं, किन्तु यह अपने आप में एक कथन नहीं होता। यदि ऐसा होता तो यह निश्चय ही शर्तात्मक होता। कुक विल्सन का यह सिद्धान्त निश्चय ही आकर्षक है किन्तु इससे भी ज्यादा ऐतिहासिक महत्व की बात है उनके द्वारा सामान्य प्रचलन की भाषा के प्रयोग के प्रति समादृत दृष्टिकोण रखा जाना।

यदि कुक विल्सन दार्शनिकों से यह मांग करते हैं कि उन्हें व्याकरण पर गंभीरता से विचार करना चाहिए तो वह इस बात पर भी जोर देते हैं कि व्याकरणीय एवं तर्कीय कथनों में स्पष्ट अन्तर भी किया जाना चाहिए। मिल के संकेतन एवं ध्वनि या अर्थछाया (कोनोटेशन) सिद्धान्त को व्याकरणीय विश्लेषण का एक अंश

मानकर कुक विल्सन परित्यक्त कर दत है। नामो एव सज्ञाओं के प्रयोग पर ही जहा विचार हुआ है, उस तकशास्त्र सबधी योगदान कसे कहा जा सकता है ? इन उलझनो का उदय इस बात को न जान पाने के कारण होता है कि तकशास्त्र, विचारो के आकर का सिद्धा त है। परम्परागत तकशास्त्री जान बूझकर अपने विषय का प्रवतन, शब्द रचना अथवा क्रिया पदो की रचना पर करते है और इस तरह उनके लिए व्याकरण और तकशास्त्र सबधी उलझनें बनी की बनी रह जाती हैं। घोषित रूप म प्रत्ययवादी निणय से आरम करते है। कि तु चू कि निणय कही नही है उ ह विवश होकर या तो भाषा सबधी कुछ सूत्र रखने पडत हैं अथवा फिर तक से परे तत्व दशन म प्रविष्ट होना पडता है। ऐसा करते समय उन्हे इस बात की सुधि भी नही रहती कि वे क्या कर रहे हैं। इसलिए कुक के मतानुसार व्याकरण तकशास्त्र एव तत्व दशन आदि इन सभी को अलग अलग समझकर ही तार्किक मतवादो का स्पष्टीकरण हो सकता है, चाहे, तक सम्बन्धी मामलो पर प्रकाश डालने के लिए व्याकरणीय अथवा तात्विक दृष्टि का सहारा लेना असमीचीन नही हो।

यहा एक बात विशेष उल्लेखनीय है, और वह है कुक विल्सन द्वारा प्रस्तुत कर्ता विधेय तक' प्रणाली की आलोचना। सबसे पहले वे तार्किक कर्ता एव व्याकरणीय कर्ता के बीच म अन्तर करते हैं जिन्हे थोडे हेरफेर के बाद परम्परागत तकशास्त्री एक ही मानते आए थे। उदाहरण के लिए यह वाक्य ले, कांच लचीला है। सामान्य विश्लेषण पर यही प्रकट होगा कि काच यहा कर्ता है और लचीला विधेय। कि तु वास्तव मे मामला इतना आसानी स तय होने वाला नही दिखता। यह कथन कौनसे प्रश्न का उत्तर दे रहा है सब कुछ इसी बात पर निभर करता है। मानलो पूछा गया हो कि लचीलपन का उदाहरण क्या है ? इसके उत्तर म यहा पर प्रस्तुत लचीलापन तक का विषय हो जाएगा और काच लचीला है, हमारे उस विश्वास को व्यक्त करेगा कि उस लचीलपन के विधेय के रूप मे जो काच मे उद्धृत किया गया है प्रस्तुत कथन को उपयोग मे लिया जा सकता है। यदि इसके अलावा यह प्रश्न होता कि काच इस्पात से किस तरह भिन्न है ? तो निश्चय ही काच लचीला है' में काच व्याकरणीय तथा तर्कीय कर्ता दोनो ही होता। सामान्य बोलचाल म हम कई तरह के प्रयोग काम मे लाते हैं जिनमे स्वराघात सबसे स्पष्ट है। उससे वास्तविक तर्कीय कर्ता का बोध भी हो जाता है। हम ऐसे भी कह सकते हैं काच लचीला है और ऐसे भी कि काच लचीला है। किन्तु सदर्भ और स्वराघात की बात परम्परागत तकशास्त्रियो द्वारा अनदेखी कर दी गई है। इस तरह यह बेहूदी धारणा प्रकट हुई है कि मुख्य क्रिया सबधी किसी कथन म मुख्य क्रिया से सबद्ध नामवाची सज्ञा तार्किक कर्ता का सकेत देने को विवश है।

मामलों को और अधिक उलझाने के लिए यह व्याकरण संबंधी विश्लेषण तात्त्विक ढंग से चर्चित हो गया है—और इसका उपयोग उन वस्तुओं पर भी होने लगा है जिनका उस कथन में संदर्भ प्रस्तुत है। तार्किक कर्त्ता एवं तार्किक विधेय का भेद भी तर्कशास्त्र के अन्य भेदों की ही भांति किया जाएगा और उसे हमारी विचारशक्ति तक ही सीमित रखा जायगा। उनके विश्लेषणानुसार तार्किक कर्त्ता एक वैसी ही वस्तु है जैसी हम उस कथन में निहित विधेय द्वारा कर्त्ता के विषय में कुछ कहे जाने से पूर्व अपनी तरफ से कोई धारणा बना लेते हैं। तार्किक विधेय' प्रदत्त कथन में एक ऐसी सत्ता है जो वस्तु से सम्बद्ध है किन्तु इसके विषय में हम पहले से कार्य पदार्थ विषयक धारणा नहीं बनाते। इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि कर्त्ता एवं विधेय में रहा भेद हमारे ज्ञान के विकास के क्रम के अनुपात में विद्यमान होता है, किसी दिए हुए समय में हम जो जानते हैं उसी के अनुसार घटित होता हुआ।

प्रत्ययवादी ढंग से यह चर्चा करना कि एक वस्तु अपनी ही प्रकृति में अपना विधेय भी हो सकती है, तत्त्वदर्शन एवं तर्कशास्त्र दोनों में बनाए जाने वाले भेदों को भूलकर मामले को और अधिक उलझा देना है। कुछ ऐसे तत्त्व भी होते हैं जो हमारे विचार-क्रम से बिल्कुल स्वतन्त्र हैं किन्तु फिर भी कोई भी वस्तु तात्त्विक दृष्टि से भी अपनी प्रकृति में न तो अपनी कर्त्ता ही होती है और न अपना विधेय और न ही विधेयीकरण का संबंध हमारे द्वारा विचारों के क्रम को जोड़ने के के अतिरिक्त कहीं विद्यमान ही रहता है।[1] एक ओर कर्त्ता विधेय तथा दूसरी ओर एक तत्त्व, गुणों के बीच विद्यमान भ्रम और भी बुरी अवस्था को पहुंच जाता है, जब तर्कीय एवं व्याकरणीय विधेयों को चुपचाप एक ही मान लिया जाता है। दरअसल दार्शनिकों ने—और यह विल्सन का उनके विरुद्ध प्रमुख अभियोग है, कि तीन प्रकारों से एक कथन को व्यक्त किया जा सकता है,—उसे गोलमाल कर दिया है। इनमें पहला विचार के आकार को व्यक्त करता है— यह तर्कशास्त्रियों से संबद्ध है, दूसरा—क्रियात्मक या शाब्दिक ढांचे को व्यक्त करता है (इसका संबंध वैयाकरणों से है) तथा इस भूत जगत् के विषय में कुछ कहने वाले कथन, इनका संबंध तत्त्ववादियों से है।)। विधेयीकरण का सामान्य सिद्धान्त इस प्रकार की घपलेबाजी से निःसृत अवैध आविष्करण ही है।

स्पष्टतः कुक विल्सन द्वारा प्रस्तुत विचारों के आकार' एवं वस्तुओं के संबंधों के बीच किया गया भेद ही इस बात का आभास देता है कि उन्होंने प्रत्यय

---

[1] द्रष्टव्य पी० ए० एस० 1936 में प्रकाशित इज़ एग्ज़िस्टेन्स ए प्रेडीकेट ? नामक विषय पर डब्लू नील एवं जी ई मूर के बीच हुई चर्चा, यह चर्चा मूर और कुक विल्सन के समर्थकों द्वारा गुणों पर रहे मतभेद को व्यक्त करती है।

वादी सिद्धान्त का खण्डन किया है। यह बात कि सबधसूचक' एव वस्तुए' दोनो ही विचार के आकार के अलावा और कुछ नही ग्रीन ने विशद रूप म कही है। यहा तक कि अतिवादी प्रत्ययवादी दष्टिकोण से भी देखें तो कुक विल्सन के मतानुसार यह पता लगेगा कि किसी पदाथ का उसके बोध से हमेशा ही भेद करना आवश्यक रहेगा। अपनी नान मीमासा म उन्होने यह भेद अधिक तीव्रता से यक्त किया है। उनकी रचनाओ की दिशा यथाथवाद की ओर ही है।

उनके अनुसार नान रचना करने का एक प्रकार नही है यह बात तो ग्रीन ने बताने की कोशिश की है। उन्होने उसे प्रारम्भिक मानताओ का एक बृहद बौद्धिक पूरक (होल) माना है, किन्तु किसी वस्तु का निर्माण करना एक वस्तु है किन्तु यह जानना कि हमने क्या निर्मित किया है सवथा भिन्न वस्तु है। नान की मूल प्रकृति से भी यह पता चलता है कि जो कुछ हम जानते हैं वह जाने जाने के के लिए प्रस्तुत तो होना ही चाहिए और वह हमारे नान से युक्त होना चाहिए। यह प्रश्न कि यह हमारे मस्तिष्क के सम्मुख कसे आया उसके बाद का प्रश्न है। मुख्य बात तो यह है कि इसका मस्तिष्क के सामने आना एक वस्तु है उसका जाना जाना दूसरी वस्तु। जहा तक चचा का विषय है सभावना तो यही रहती है कि जो कुछ हम जान पाते है वह सदव ही हमारे मन का सशोधित रूप ही है यद्यपि वह नान की क्रिया का सशोधन नही हो सकता, किन्तु कुक विल्सन का कहना है कि यदि हम इस दष्टिकोण क ऐतिहासिक पक्ष पर गौर करे कि हम मानसिक अवस्थाओ के अलावा कुछ नही जानत हमे एकदम आभास होता है कि यह सब उस प्रयास का प्रतिफल है जिसके जरिए हम यह जानना चाहते हैं कि नान किस प्रकार सभव है।' नान की सभावना के लिए यह आवश्यक है कि जो कुछ हम चाहते है वह हमारे मस्तिष्क मे होना चाहिए।

एक बार यदि हम यह मानलें सद्धान्तिक रूप म कि नान किस प्रकार सभव है इसे सिद्ध करने का कोई तरीका नही है, क्योकि ऐसे प्रत्येक प्रमाण के लिए यह मानना आवश्यक हो जायगा कि कुछ ऐसी वस्तुए हैं जिन्हे हम पहले स जानते हैं। और तब यह चर्चा भी खत्म हो जायगी और निश्चय यह मानना तो किसी भी हालत म उचित नही है कि हमारा नान मानसिक अवस्थाओ तक ही सीमित है।

कुक विल्सन अपने यथाथवादी निष्कष पर धीरे धीरे एव सदेही होकर पहुँचे थे। यथाथवाद म कम से कम बोध की क्रिया एव बोध की वस्तु के बीच भेद की बात स्वीकृत है। उन्हे डर था कि बोध की क्रिया नकारात्मकता मे विलीन हो जायगी यदि वस्तु के रूप म इसका कोई आधार नही रखा गया। सबधसूचकों का गहन विश्लेषण करने से उनकी सदेहवादी धारणा को सहलाव मिलता है।

उनका कथन है कि किसी दुर्योगी अवस्था पर विचार करें–तो यह तो स्पष्ट ही है कि जब तक परस्पर टकराने वाले दो पदार्थ नही होंगे, तब तक यह दुर्योग सभव नही है। तथ्य यह है कि दुर्योगी पदार्थों का इस दुर्योग से अलग भी विद्यमान रहना आवश्यक है यदि कभी उनका दुर्योग होना है तो। इसी प्रकार उनके विचार मे बोध सभव नही है जब तक बोध की क्रिया मे बोध की वस्तु की अलग सत्ता न हो।

इस प्रकार तर्क देकर कुक विलसन ब्रेडले के इस मत का खण्डन करने को विवश हो जाते है, कि सबध सूचक परस्पर विरोधाभासी हैं। ब्रेडले की द्वन्द्वात्मक प्रणाली का महत्व अयथार्थ प्रश्न पूछने मे ही है। ये ऐसे प्रश्न हैं जो विचारक मन द्वारा कभी नही उठाए जा सके। खास तौर पर इनका यह प्रश्न था कि एक सबध सूचक का अपने पदो से क्या सबध है एस प्रश्न का उत्तर मागना है जिसका कोई उत्तर सम्भव ही नही है। कुक विलसन उसे समानता के सबध के जरिए समझाते हैं। मानलो अ और ब समान है। तब हमारा यह पूछना कि किस प्रकार एक सबध सूचक द्वारा अ समानता से सबधित है। इसका उत्तर यही है कि समानता ही एक एसा सबध हैं जिसके जरिए अ ब से सम्बन्धित है और यदि और ठीक ढग से कहें तो यह कहेगे कि अ या अ की ब से समानता का सम्बन्ध यही है कि यह अ का ब के समान सिद्ध करता है।

हम इससे अधिक और कुछ नही कर सकते सिवाय मूल सबधो की पुनरावृत्ति करने के। अ और ब के सम्बन्ध मे अन्य एसा कोई सम्बन्ध है ही नही जो हमारे लिए अनत वही बात प्रकट करने का कोई जटिल भाव प्रस्तुत करे। ब्रेडले के विचार मे एसा है और वह केवल इसलिए है कि वे निरन्तर निरर्थक प्रश्न पूछने के पीछे पडे हुए थे।

कुक विलसन अपने तर्क की सामान्य धारणाओ को प्राइमरी एण्ड सेकेण्डरी क्वालिटीज (जिसे उन्होने पी० ए० एस० 1913 मे प्रकाशित हुए जी० एफ स्टाउट के निबध की प्रतिक्रिया पर लिखा था) मे प्रत्यक्षीकरण की समस्या पर एक लम्बा पत्र लिखा है। ज्ञानमीमासको ने गलती से यह मान लिया है कि चू कि सहज रूप से हम किसी वस्तु के दिखाई देने की बात कर सकते हैं तो निश्चय ही दिखाई देने वाली भी एक अवस्था होनी ही चाहिए जो केवल आत्मपरक' ही है। और यही वह है जिसे हम वास्तव मे देखते हैं। जबकि तथ्य यह है कोई दिखावा एक पदार्थ के दिखाई देने से भिन्न कुछ नही है। वे तब यह निष्कर्ष निकालते हैं कि पदार्थ की प्रकृति हमारे समक्ष प्रस्तुत हो जाती है न कि हमारी चेतना द्वारा प्रस्तुत उसके किसी रूप को हम समझ पाते हैं।

'पदाथ की यह व्याख्या उन्ह लॉक के समीप ले आती है (और वेस के करीब भी) किसी अन्य प्रकार को मात्र यथाथवादी धारणा के करीब नही। मूलत उनके इस सामीप्य को सतही गुणो की व्याख्या म तो स्पष्ट ही दखा जा सकता है। उष्णता को एक खास सतही गुण मानकर वह तक करते है कि ऊष्णता का अनुभव करते समय हम साधारणत हमारी ही सवदनाओ के अतिरिक्त अ य किसी अवस्था क प्रति सचेत नही होते। जब तक कि हम उस पदाथ का स्पश न करलें जिस हम उष्ण मान रहे हैं, तब ही हम उसके विस्तार का भी प्रत्यक्षीकरण होता है तब यह अनुमान लगाते हैं, प्रत्यक्ष नही देखते कि किसी पदाथ म उष्णता उत्पन्न करने की क्षमता उसका सतही गुण है।

प्राथमिक गुण उनकी दृष्टि म दूसरी श्रेणी के हैं। बेडल के दृष्टिसिद्धान्त ने कुछ ऐसा आभास दे दिया था कि इस सदभ म भी हम जिस अवस्था के विषय म सचेत हो रहे हैं मूलत जब एक उसके विशेष रूप स देखन की बात करते हैं या एक खास साइज दखते हैं, वह भी किसी न किसी प्रकार की स्पर्शीय या मासल सवेदना ही है जिसके आधार पर हम यह अनुमान लगाते हैं कि किसी भौतिक पदाथ म दिकीय गुण भी मौजूद है। कुक विल्सन इस अनुमान को सद्धा तिक रूप से असम्भव कहकर ठुकरा देते हैं। और वह भी उस आधार पर कि जिसे केस न पहल ही निवदित कर दिया है कि फल हुए भौतिक पदार्थों का अस्तित्व न फली हुई सवेदनाओ द्वारा कभी भी अनुमानित नही किया जा सकता।[1] तब हमे यह मानना चाहिए कि दिकीय गुणो का हमारे द्वारा किए गए प्रत्यक्षीकरण से जो चाह रग, स्वाद, गर्मी की सवेदनाओ म न प्रकटता हो हम सीधे भपदाथ की प्रकृति का ज्ञान प्राप्त करते हैं। इस सीमा तक कुक विल्सन को उनका यथाथवाद खीच ले गया किन्तु उनके अनुयायियो ने उसे उस सीमा तक नही कायम रखा।

उनमे स जो कुक विल्सन के बहुत समीप रहे—कम से कम अपनी प्रारम्भिक रचनाओ मे—एच० ए० प्रिचाड एव एच० डब्लू० बी० जोसेफ प्रमुख थे।

---

[1] बकले के दष्टि सिद्धा त की आलोचना 1842 म प्रकाशित एस बले की कृति ए रिव्यू आव बकलेज थ्योरी आव विज़न मे की गई। टी० के० एबट ने भी साइट एण्ड टच (1864) नामक पुस्तक मे उनकी आलोचना की है। फिर भी किसी प्रकार उनकी क्षमता पर आच नही आ सकी और मनोवज्ञानिको मे तो बकले का दष्टिकोण ही मा य दष्टिकोण रहा। बले एव एबोट द्वारा बकले की आलोचना का एक सक्षिप्त विवरण 1953 मे बी० जे० पी० एस० मे प्रकाशित जे० ओ० विजडम के रिव्यू म मिलता है।

प्रिचाड[1] जो ग्रोक्सफोड म नीति दशन के व्याख्याता थ, एक प्रवल मुवादी थे, जिन्होने ग्रपन सिद्धान्तो की स्थापना ग्रालोचना निबध लिख लिख कर ही की। उनका केवल एक ही ग्र थ प्रकाशित हुग्रा। वह भी नान मीमासा के सम्बद्ध था। इसका नाम काण्टस थ्योरी ग्राव नोलेज (1909) है। उनक निबधो का एक सकलन उनक मरणोपरान्त नोलेज एण्ड परसेप्शन (1950) नाम से प्रकाशित हुग्रा था। काण्टस थ्योरी ग्राव नोलेज ही एक ऐसा ग्रन्थ था जिसके जरिए कुक विलसन का दशन ग्रावसफोड क बाहर पाठको तक पहुच पाया। खास तौर पर नान एव यथाथ पर उसका एक ग्रध्याय कुक विल्सन द्वारा प्रत्ययवाद को[2] की गई प्राणवान ग्रालोचना का उदाहरण है। प्रिचाड का कहना है कि नान की मूलभूत प्रकृति म ही निर्विवाद रूप स यह दिखाई देता है कि जाना हुग्रा यथाथ उस यथाथ के नान से मुक्त ग्रवस्था से भी ग्रस्तित्वशील है। यह विचार करना ही ग्रसभव है कि कोई यथाथ ग्रपनी स्थिति के लिए हमारे उसके विषय मे किए जान वाले नान पर ग्राश्रित है। चाहे यह एक पत्थर हो ग्रथवा दात का दद। इसके पूव कि वह नान के सम्बन्धों म ग्राकर उलझ जाए उसके लिए किसी पदाथ का होना तो परमावश्यक है तब भी यह हो सकता है कि ग्रपने ग्रस्तित्व बोध क लिए वह हम पर ग्राश्रित रहे-हो सकता है कि उसकी रचना ऐसे तत्वो स बनी हो जो मन के विलीन होने के साथ ही विलान भी हो जाए किन्तु उसका ग्रस्तित्व हमारे उसके सम्ब ध म किए नान पर ग्राधारित नही हो सकता।

तव प्रत्ययवाद की मात्र एक सभावना यदि कोई है तो वह है ग्रात्मपरक प्रत्ययवाद। यह कहना सभव है कि वस्तुत हम हमारी मानसिक ग्रवस्थाग्रो के ग्रलावा कुछ नही जानते, किन्तु वस्तुपरक प्रत्ययवादियो की भाति यह सुझाव देना समझ म नही ग्राता कि जो कुछ हम जानते हैं वह मस्तिष्क के ग्रस्तित्व पर ग्राश्रित नही है। किन्तु उसका ग्रस्तित्व ही मस्तिष्क द्वारा जाने जा सकने के कारण ही है। वे यहा कुक विल्सन की इस बात को मानते हैं कि ग्रात्मपरक प्रत्ययवाद भी उस समय ध्वस्त हो जाता है जब एक बार यह स्पष्ट हो जाय कि हम नान का ग्रौचित्य' देना है। तब यह विशेष जाच पड़ताल का

---

[1] द्रष्टव्य ई० एफ० करिट कृत प्रोफेसर एच ए प्रिचाड पसनल रिकलेकशन्स माइण्ड (1848), पी० बी० ए० (1947) म एच० एच० प्राइस का स्मारक नोट भी देखे।

[2] प्राय यह कहा जाता है कि प्रिचाड यहा कुक विल्सन से भी ग्रागे निकल गए थे। निश्चय ही प्रिचाड के किसी प्रकाशन म इसका सकेत नही है। प्रिचाड द्वारा डेकाट पर नोलेज एण्ड परसेप्शन म की गई चर्चा भी देखने योग्य है-इस चर्चा म ही कुक विल्सन की नान मीसासा व्यक्त हुई है।

विषय हो जायगा कि अमुक अमुक प्रकार के प्रत्यक्षीकरणों में से कौनसा प्रत्यक्षीकरण अपने अस्तित्व के लिए हमारे मन पर आश्रित है। इस प्रकार की जाँच पड़ताल प्रिचार्ड के मतानुसार हमें कुक विल्सन के इस निष्कर्ष को मानने को बाध्य कर देती है कि जहाँ स्वाद, रंग आदि प्रकार की संवेदनाएँ मन पर आधारित हैं, वहाँ दिक्कीय गुण उससे स्वतन्त्र हैं। इसी समस्या पर प्रिचार्ड के बाद के निष्कर्ष उन्हें भिन्न एवं कम परिचित धरातल पर ले आए। एक बार फिर उनकी दृष्टि शास्त्रीय हो गई है। नॉलेज एण्ड परसेप्शन में, जो निबंध संकलित हुए हैं प्रमुखतः रसल के ऐन्द्रिय उपकरणों के सिद्धान्त की आलोचना करने के लिए ही लिखे गए हैं या फिर उनमें परम्परागत अनुभववादी ज्ञान मीमांसा का खंडन किया गया। किन्तु प्रत्यक्षीकरण (परसेप्शन) पर पढ़े गए निबंध में जिसका कहीं प्रकाशन भी नहीं हुआ उन्होंने अपने ठोस निष्कर्ष भी दिए हैं। वे दो बातों पर अधिक बल देना चाहते हैं, पहला यही कि प्रत्यक्षीकरण ज्ञान नहीं है—और दूसरा देखने अनुभव करने एवं स्पर्श करने की विशेष अवस्थाओं में जिन्हें हम सामान्यतः प्रत्यक्षीकरण की संज्ञा देते हैं। हमारे द्वारा एक वस्तु को गलत रूप से किसी देखी या अनुभव की गई वस्तु मान लेना है। पहले आधार पर प्रिचार्ड, कुक के के प्रभाव से अलग हो रहे हैं क्योंकि कुक विल्सन ने संकोच से ही क्यों नहीं पर कहा अवश्य था कि चाहे प्रत्यक्षीकरण की सभी विविधताएँ ज्ञान न हों किन्तु कुछ प्रत्यक्षीकरण तो ज्ञान की श्रेणी में लिये ही जा सकते हैं। और इसी बात पर प्रिचार्ड का उनसे दूसरा मतभेद होता है और वे इस बात का खण्डन करते हैं कि हम सीधे तौर पर भौतिक पदार्थों को देख सकते हैं। इन्द्रियों के द्वारा प्रस्तुत भ्रम का अस्तित्व मात्र ही यह बात दर्शाने के लिए पर्याप्त है कि प्रत्यक्षीकरण कभी एकदम प्राप्त नहीं होता।

तब हम तात्कालिक रूप में किसे देखते हैं? इसके रूढ़िवादी उत्तर को ही अनेक रूपों में व्यक्त किया गया है—जिसके अनुसार हम दर्शनीय रूप ही देखते हैं। किन्तु प्रिचार्ड आपत्ति करते हुए कहते हैं कि रूप या प्रत्यय) हमेशा ही किसी पदार्थ के धर्म हैं इस तरह इस शब्दावली का प्रयोग अनिवार्य रूप से नहीं प्रकट करता है कि हम किसी भाँति उस पदार्थ को देखते हैं—जिसका रूप हमारे सामने प्रकट हो रहा है। जो इस बात को स्वीकारते हैं जैसे जी० एफ० स्टाउट वे प्रिचार्ड की दृष्टि में प्रकट रूप में अपराधी हैं। वे यह स्वीकारने और नकारने की अवस्थाओं के बीच आगे पीछे फिसलते रहते हैं कि हम भौतिक पदार्थों को सीधे रूप में देखते हैं। और तब रूप की दुविधा का सहारा लेते हैं। इसके अतिरिक्त जो कुछ हम देखते हैं उसे रूपाभास मात्र कहना किसी प्रकार वस्तु की प्रकृति के विषय में कुछ कहना नहीं हुआ। रूपाभास' का स्तर निश्चय ही भ्रामक है। प्रिचार्ड की अपनी राय यही है कि रूपाभास के झगड़े में न पड़कर हम दरअसल

फैले हुए एवं उनके साथ ही साथ विशेष रूप में उनसे जुड़े विभिन्न प्रकार के रंगों को देखते हैं।

तब हम स्वभावतः यही पूछते हैं यदि हम रंगमय फैलाव के अतिरिक्त और कुछ नहीं देखते तो यह कैसे संभव है कि हम उन्हें भौतिक पदार्थ जान लेते हैं? प्रिचार्ड इसका जवाब दो तरह से देते हैं। पहला तो यही कि यद्यपि हम केवल रंगमय फैलाव ही देखते हैं—हम उन्हें जानते नहीं हैं। ऐन्द्रिय उपकरणों के सिद्धान्त के हिसाब से किसी से किसी वस्तु का सीधा 'प्रत्यक्षीकरण करना' हमारे द्वारा देखी गई उस वस्तु की प्रकृति जान लेना ही है। इन्द्रियों के संपर्क में आए पदार्थ का तात्कालिक बोध ही दरअसल सम्पूर्ण ज्ञान की पहली सीढ़ी है। प्रिचार्ड इस बात का खण्डन करते हैं।

सामान्य रूप से जिसे हम तत्काल देखते हैं, उसके विषय में किसी तरह का ज्ञान नहीं होता। और तब चूंकि हम उन फैले रंगों को भी नहीं जानते जिन्हें वस्तुओं के बजाय हम देखते हैं, उस संबंध में यह निर्णय लेने अनुमान लगाने का तो प्रश्न ही नहीं रहता कि ये वस्तुएं स्थान में हैं या किसी कारण से घटित हुए हैं या ये अमुक अमुक संघटन को व्यक्त करती हुई सत्ता हैं। इस प्रकार का निर्णय केवल ज्ञान पर आधारित होगा और तब नए ज्ञान की संभावना ही नहीं होगी और तब ज्ञान नहीं होगा।

प्रिचार्ड का दृष्टिकोण इस तरह कुछ विरोधाभासी लगता है। वे हमें बताते हैं कि हम वास्तव में केवल रंगमय फैलाव देखते हैं। इसमें संदेह चाहे न हो कि हम सामान्य रूप से विश्वास कर लेते हैं कि जो कुछ हम देखते हैं वे भौतिक पदार्थ ही हैं। हम यह प्रश्न अपने आप से पूछते हैं कि यह विश्वास उस समय तक कैसे उपज सकता है जब तक कि हम यह निर्णय नहीं कर लें कि ये रंगमय फैलाव भौतिक पदार्थ ही हैं? इसी विरोधाभासी स्थिति को हटाने के लिए प्रिचार्ड एक अन्तर को प्रकटाते हैं। इसे कुक विल्सन ने भी स्टेटमेण्ट एण्ड इनफरेन्स में सुझाया था। यह अन्तर इन दो अवस्थाओं का है—ऐसा है यह निर्णय लेना तथा यह आभासित होना कि ऐसा है। मानलो कि हम एक अजनबी को गली में देखते हैं और उसका स्वागत एक परिचित की तरह करते हैं तब कुक विल्सन के अनुसार हम यह निर्णय नहीं ले रहे हैं कि अजनबी एक परिचित व्यक्ति है। ऐसा कहने का अर्थ यही होगा कि हमने उसके परिचित होने का पूरा प्रमाण प्राप्त करने पर ही उसका स्वागत किया है। जबकि वास्तव में ऐसा हुआ नहीं है। इसके विपरीत हुआ यह है कि हमने एक व्यक्ति को देखा और बिना किसी विचार के उसको अपना मित्र मान लिया या कम से कम इस प्रभाव में रहे कि वह हमारा मित्र था। हमने इसके मित्र होने का निर्णय नहीं लिया हमने इस घटना में उसे गलती से मित्र मान लिया था।

प्रिचाड का कथन है कि भौतिक पदार्थों के हमारे सभी प्रत्यक्षीकरणो म इसी प्रकार की घटना घटती है। हम दरअसल एक रगमय फलाव देखते हैं (या स्पर्शानुभूति प्राप्त करते हैं) किन्तु हम उस ही गलती से भौतिक पदाथ मान लेते हैं। केवल बाद के विश्लेषण से ही हम इस बात का ज्ञान होता है कि हम दरअसल क्या देख रहे थे। प्रतिदिन के प्रत्यक्षीकरण के अविवेकी स्तर पर हम प्राय भौतिक वस्तुओ को देखने के प्रभाव मे ही रहते हैं।

कुछ इसी प्रकार के प्रत्यक्षीकरण के सिद्धान्त को स्वीकार करके ही हम उन परम्परागत सुवादो का खात्मा करन की स्थिति म होंगे जो उस समय तक अपरिहार्य रहगे जब तक हम यह मानते रहगे कि इन्द्रिय चेतना से जिसका तत्काल प्रत्यक्षीकरण हम करते हैं उस हम जान लेते हैं। क्योंकि जिसकी इन्द्रियानुभूति हम करें उसे यदि जान लें तो हम जिमकी अनुभूति कर रहे हैं वह निश्चय ही उस क्रिया से भिन्न होना चाहिए जो किसी वस्तु को जान रही है। प्रिचाड, कुक विल्सन के मत का ही समथन करते है। यह धारणा ज्ञानमीमासको को सीधे यथाथवाद की ओर ले जाती है किन्तु मीमासकों को शीघ्र ही वापस लौटना पडता है, जब उनका सामना 'भ्रम और दोष' के कठोर सत्यों से होना प्रारम्भ हो जाता है। बिना खरोच प्राप्त किए अब उनका बचाव भी नही होता क्योंकि तब वे अपने ही हाथो मे विचित्र सत्ताओ को देखते हैं। प्रत्यय या इन्द्रिय उपकरण इनम से किसी म भी वे तत्व नही है–जिसे ज्ञेय पदाथ म हम ढूढना चाहते हैं। तो भी यदि यह सत्य है तो उसका ज्ञान करना आवश्यक हो जाता है। ज्ञान मीमासको की तरह यह मानना कि हम उसी का ज्ञान होता है जिसका प्रत्यक्षीकरण हम होता है–उचित नही है। प्रिचाड की दृष्टि मे इसके लिए एक ही रास्ता है सदा सवदा के लिए हम परम्परावादियो की ज्ञान मीमासा म प्रयुक्त यथाथवाद एव प्रतिनिधिवाद क बीच खडे ढकुल (सी साज) की जटिलता को ही अमान्य कर दें। दोनो विकल्पीकरण मे अन्तर्निहित इस कल्पना का परित्याग हम करना होगा कि तात्कालिक प्रत्यक्षी ज्ञान का एक प्रकार है।

प्रिचाड की ज्ञान मीमासा से जुडा हुआ है अनुभववादी मनोविज्ञान पर किया गया उनका प्रहार जिससे उनका मतलब है खास तौर पर स्टाउट एव वाड जसे मनोववैज्ञानिको पर पिछली अद्ध शताब्दी के ओक्सफोड न अपने तई यह गौरव अर्जित किया था कि वह प्रगतिशील मनोविज्ञान की घोर विरोधी रहा। बहुधा प्रत्ययवादियो की प्रशसा या बुराई इसीलिए की गई है कि व ओक्सफोड क्षेत्र म मनोविज्ञान की रचनाओ के प्रति जो भी विरोध पहले रहा मूल रूप से उसके कारण रहे किन्तु वास्तव मे ब्रडले, जसा हम देख चुके हैं, सक्रिय

रूप मे जहा मनोवैज्ञानिको की रचनाओ के प्रति उदार थे व उस प्रकार की जाच पडताल के प्रति भी सहानुभूति रखते थे। हो सकता है कि दार्शनिक विवादो को मनोविज्ञान के तरीके से सुलझाने की ओर उनकी प्रवृत्ति कम रही हो। यह सब प्रिचाड और जोसफ के ही कारण था कि यहा पर ज्ञान की प्राथमिकता का मनोविज्ञान के विरुद्ध मोर्चा खडा हो सका।

अनुभववादी मनोविज्ञान विचार की उस अवस्था पर ज्ञान की रचना करता है जो ज्ञान से अधिक प्राथमिक और प्राग्भावी है।[1] यह एक ऐसा धरातल था जिस पर खडे होने के कारण किसी भी कुक विल्सनवादी के पैर काप सकते थे। प्रिचाड के अनुसार अधिक से अधिक मनोविज्ञान ऊटपटाग ढग मे जोडी गई जाच पडतालो का एक घोल मेल है। यह मुख्यत विज्ञान नही है। (कभी कभी राइल ने अपनी पुस्तक द कान्सेप्ट आव माइण्ड मे इसी प्रकार का मन्तव्य प्रकट किया है)।

प्रिचाड के प्रहारो का समर्थन एच० डब्लू० बी० जोसफ[2] ने अपने निबन्ध द साइकोलोजीकल एक्सप्लेनेशन आव दि डेवलपमेन्ट आव दि परसेप्शन आव एक्सटरनल आबजेक्टस (माइण्ड 1910-11) मे स्टाउट की व्याख्या इस तरह करते हैं, मानो वे मिल के अनुयायी हो, मानो वह कह रहे हो कि भौतिक पदार्थ के अस्तित्व के सम्बन्ध मे हमारा विश्वास सवेदना से उत्पन्न हुई एव मनोवैज्ञानिक द्वारा वर्णन की जा सकने वाली प्रक्रिया से ही जन्म लेता है। यह एक ऐसी व्याख्या है जिसका विरोध स्टाउट माइण्ड 1911 मे रिप्लाई टू मिस्टर जोसेफ नामक निबध लिखकर करते हैं।

अपनी बहुत सी चर्चाओ मे जोसफ प्रिचाड द्वारा कान्ट्स थ्योरी आव नोलेज मे सुझाए गए मार्ग पर ही चलते रहते हैं, तो भी यथार्थवादी तथ्यो को जैसा वहा रक्खा गया है, उस रूप मे उन्हे स्वीकारने मे वे कठिनाई महसूस करते हैं। वे लिखते हैं कि मैं इस दृष्टिकोण पर तो सदेह करूगा ही कि मूल रूप से जिसका बोध कर रहे हैं वह 'मन मे' है या 'मानसिक' है। मैं बहुत सी ऐसी कठिनाइयो को उसमे स्पष्ट देखता हूँ जिसका अभी मैं कोई हल नही दे सकता, विशेषत मैं इस मान्यता पर खुश नही हूँ कि दिक चेतना से पूर्णत स्वतन्त्र है। मुझे यह पता नही कि ठोसपन का मेरे लिए क्या अर्थ है, न उसका जो दिक को भरता है न किसी 'वस्तु के विस्तार

---

[1] द्रष्टव्य विशेषत उनका निबन्ध ए क्रिटिसिज्म आव द साइकोलोजिस्टस ट्रीटमेन्ट आव नोलेज एव स्टाउट का उत्तर मिस्टर प्रिचाडस क्रिटिसिज्म आव साइकोलोजी। दोनो ही निबध माइण्ड-1907 मे प्रकाशित हुए। द्रष्टव्य नोलेज एण्ड परसेप्शन मे प्रिचाड द्वारा वार्ड पर किया गया प्रहार।

[2] द्रष्टव्य एच० ए० प्रिचाड द्वारा लिखित मृत्युलेख-माइण्ड 1944

से ही मुझे कुछ समझ मे आता है। कुक विल्सन की दष्टि म तो कवल ठोस पदाथ ही चेतना से भिन्न है। कितु जोसेफ का इस महत्वपूण बिदु पर उनके प्रति सदह उन्हे धीरे धीरे कुछ ऐसी अवस्था की आर लौटा लाया जिसे प्रत्ययवादी कहा जा सकता था। यह बात उनके ए कम्पेरीजन काण्टस आइडियलिज्म विद दट आव बकले नामक निबध के निष्कष म भली भाति देखी जा सकती है।[1]

कुक विल्सन का यथाथवाद सदव ही काम चलाऊ एव हिचक–पूण रहा। नव यथाथवाद क उत्कष न परम्परावादी प्रत्ययवाद की अपेक्षा अपन अधिक क्रातिकारी दष्टिकोण के कारण कमजोर व्यक्तियो को पुराने विचार की ओर लौटने को विवश कर दिया अथवा फिर केम्ब्रिज की प्रगतिवादी बाहो मे उसे आश्रय दे दिया।

जोसेफ का तकशास्त्र भी प्रत्ययवादी एव कुक विल्सन की विचारधारा के बीच एक समझौता सा ही था। प्रतीकात्मक तकशास्त्र के प्रति विल्सन द्वारा दिखाए गए आक्रोश का जोसेफ भी समथन करते थे और ए डिफेंस आव फ्री थिंकिंग इन लोजिस्टिक्स (माइण्ड 1939–34) नाम से लिखी निबध माला म उन्होने रसेल एव उनके अनुयायियो पर सूसान स्टेबिग के सतक बचाव को तोडकर भी उन पर प्रहार किया है। उनक प्रहार की प्रणाली ठीक उसी प्रकार की है जसा बूल पर प्रहार करते समय कुक विल्सन की रही है। व्हाट डज मिस्टर डब्लू० ई० जोनसन मीन बाइ ए प्रोपोजीशन? (माइण्ड 1927) नामक निबध माला मे जोसफ द्वारा की गई जोनसन की आलोचना अपनी अय अवस्थाओ से भी ऊपर आकारी तकशास्त्री की कटु आलोचना है। जोसेफ का कथन है कि साध्यीकरण (इम्प्लीकेशन) के बजाय अनुमान ही तकशास्त्र का आरम्भिक बिदु माना जाना चाहिए। आकारी तकशास्त्रियो और उनके आलोचको क बीच मतभेद का यही मूलभूत बिदु है।

उनकी सब प्रसिद्ध रचना एन इण्ट्रोडक्शन टू लोजिक (1906) परम्परागत तकशास्त्रीय पद्धति से रहित एक नव अरस्तुवादी तकशास्त्र की स्थापना करने का प्रयास है। जिस सीमा तक इसमे अरस्तु के[2] पुन सस्थापन का प्रयास किया गया

---

[1] पी० बी० ए० 1929 वाला निबध 1935 म एनसिएण्ट एण्ड मोडन फिलोसोफी के नाम से प्रकाशित हुआ। द्रष्टव्य आन आकुपायिंग स्पेस (माइण्ड 1919)।

[2] अरस्तुवादी शृखला के शास्त्रीय पक्ष के सुदरतम फूल वेस एव विल्सन द्वारा 1909–31 के दौर अरस्तु की रचनाओ क आक्सफोड अनुवादो द्वारा उगाए गए हैं। डब्लू डी० रोस के उल्लखनीय अनुवादो द्वारा भी ऐसा हुआ है। शास्त्रीय पक्ष पर किए योगदान के अतिरिक्त रोस मुख्यत नीतिशास्त्र मे रुचि रखते थे। व प्रिचाड तथा जोसेफ

है उसमें कुक के स्वयं के अरस्तुवादी प्रभाव की झलक मिलती है, इसके साथ ही साथ बहुत विस्तृत व्याख्या करने वाले कुक विल्सन के भाषणों का भी उन पर प्रभाव रहा है। किन्तु इसके बाद इस पुस्तक के दूसरे संस्करण में ही यह बात स्पष्ट हो जाती है। जोसेफ ने कुक विल्सन के विवेचनाशील तर्कशास्त्र की प्रवृत्ति को पूर्णत: बूझा नहीं था। इस तरह इन्ट्रोडक्शन टू लॉजिक मुख्यत: अरस्तुवादी करके ही पढ़ा जायगा, कुक विल्सनवादी मानकर नहीं।

प्रिचार्ड द्वारा प्राप्त कुक विल्सन का प्रभाव जोसेफ एवं अन्य आक्सफोर्ड के शिष्यों में अभी भी जीवन्त था। हम इसका उल्लेख आगे वाले अध्यायों में करेंगे। फिर भी आक्सफोर्ड के ऐसे बहुपरिचित ज्ञान मीमांसकों में से एच एच प्राइस ने जो कि 1935 से आक्सफोर्ड में तर्कशास्त्र के प्राध्यापक रहे अपनी पुस्तक परसेप्शन (1932)[2] में सभी बिखरे सूत्रों का सम्पादन कर दिया। यहां उन पर भी कुक विल्सन का प्रभाव साफ है। प्राइस कुक विल्सन द्वारा किए गए ज्ञान एवं विश्वास के भेद को स्वीकारते हैं। उनके द्वारा सुझाई गई प्रभाव में होने की धारणा का अविकल उपयोग भी करते हैं। प्रभाव या निर्भरता की यह मात्रा भी प्रिचार्ड को प्रभावहीन नहीं कर सकी। पी० ए० एस० एस० 1938 में तथा नोलेज एण्ड परसेप्शन में द सेन्स डेटम फलेसी पर, लिखकर उन्होंने प्राइस पर रसेल का अनुयायी होने का आरोप लगाया है। और अपनी इस धारणा में वे पूर्णत: सही भी हैं।[3] क्योंकि प्राइस रसेल से इस महत्वपूर्ण स्थल पर सहमति दर्शाते हैं कि संवेदना भी एक प्रकार का ज्ञान ही है—और हम तत्काल एक ऐन्द्रिय संवेदना का ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं।

इस प्रकार आक्सफोर्ड के नीति सिद्धान्त की रचना करने वाले प्रमुख विचारकों में थे। अरस्तुवादी वातावरण के लिए एज एण्ड यूथ (1953) रूप से प्रकाशित ई० बेकर की आत्मकथा देखें।

[1] इस विषय पर प्राइस के मन्तव्य के लिए देखें उनकी पुस्तक सम कंसीडरेशंस अबाउट बिलीफ (पी० ए० एस० 1934)।

[2] इस पुस्तक के विस्तृत विवरण के लिए ए० आर० एम० मर द्वारा प्रस्तुत रिव्यू देखें (माइण्ड 1933)।

[3] प्राइस ने तो यहां तक किया कि उन्होंने अपना 1 वर्ष कैम्ब्रिज में अध्ययन हेतु लगा दिया और वे वहां शोध विद्यार्थी रहे। यहां यह उल्लेखनीय है कि यद्यपि प्राइस हुसल का संदर्भ नहीं देते हैं तो भी वे चेतना के वर्णन में हुसल के संघटनवाद से प्रभावित दिखते हैं। प्रारम्भ चेतना में प्रदत्त सभी संवेदनों का भौतिकी या शरीर विज्ञान संबंधी विचारधाराओं का सहारा लिए बिना व्याख्यायित करने में प्रयत्नशील दिखते हैं।

परसेप्शन का वृहदांश विवेचनात्मक है प्राइस विस्तार तथा तर्क सहित इस बात का खण्डन करने का कारण देते हैं कि हमारा ध्यान आकर्षित करने वाले बहुत से प्रत्यक्षीकरण के सिद्धान्तों पर सावधानी से विचार किया जाना अभी शेष है। किन्तु वे ऐन्द्रिय संवेदना की धारणा को ध्वस्त होने से बचा लेते हैं और उसके साथ ही इस दृष्टिकोण को भी कि ज्ञान मीमांसा का मूल विचार बिन्दु यह स्पष्ट करता है कि किस प्रकार ऐन्द्रिय संवेदन भौतिक पदार्थ का भाग हो जाता है। यदि उसे हमारे दैनिक जीवन के अनुभवों में अर्थवान होना है तो उसकी यही व्याख्या होनी चाहिए। रसेल के प्रत्यक्षीकरण के आकस्मिक सिद्धान्त को वे असमीचीन मानकर परित्याग कर देते हैं। कोई आकस्मिक अनुमान हमें उस समय तक ऐन्द्रिय संवेदन के माध्यम से भौतिक पदार्थों से सम्पृक्त नहीं कर सकता जब तक कि हमारे पास पहले से ही इस बात के प्रमाण न हों कि ऐसी वस्तुएं विद्यमान हैं। इस तरह इस मामले की जवीय या ऐतिहासिक व्याख्या करने से प्राइस के मत में यह बहुत साफ हो जाता है कि हम आकस्मिक तर्क के द्वारा भौतिक जगत् के अस्तित्व में आस्थाशील नहीं हो सकते। जब तक कि ऐन्द्रिय संवेदन का सीधा सम्बन्ध भौतिक पदार्थों से न हो तब तक इस बात का कोई आधार नहीं है कि किस प्रकार वे आसपास बिखरे संसार के हमारे ज्ञान में वृद्धि कर सकते हैं।

एक ऐन्द्रिय संवेदन, जब तक कि वह बहुत अधिक तीव्र या मनश्छल (हैल्यूसिनेशन) न हो तब तक एक सामान्य संवेदन 'परिवार' का ही सदस्य है। इस परिवार के मुखिया के रूप में हम जहां तक चक्षुइन्द्रियों का प्रश्न है, वहां तक ठोस उपकरण को रख सकते हैं। साधारण बोलचाल या समझ की भाषा का उपयोग करें तो हम एक वस्तु पर बहुत से दृष्टिकोणों से विचार करते हैं। तब हम ऐसे ऐन्द्रिय संवेदन का भी अनुभव करेंगे जो आकार एवं साइज में काफी भिन्नता लिए हुए होगी। ये ऐन्द्रिय उपकरण यदि हम इनको एक ही घनत्व में से छिटक कर अलग होने वाली भिन्न भिन्न अवस्थाओं के रूप में देखें तो भी एक संगत में बैठना इनके लिए असम्भव नहीं है। यही घनत्व तब ठोस प्रतिमान हो जाता है। और इसकी शक्ल हमारे ऐन्द्रिय संवेदन में प्रकटी विशिष्ट शक्ल हो जाती है। इस तरह सामान्यतः किसी वस्तु के वास्तविक घनत्व को ही हम उसका ठोस प्रतिमान कह सकते हैं। इन्द्रिय संवेदन का परिवार प्राइस की परिभाषा के अनुसार एक ठोस प्रतिमानों से निर्मित है जो अपने बहुत सी अन्य संवेदनाओं द्वारा पदार्थ संबंधी ज्ञान को स्पष्ट करता है।

यहां संवेदनाओं की शृंखला का संदर्भ उल्लेखनीय है। रसेल ने वस्तु की परिभाषा भी ऐन्द्रिय संवेदना के ऐसे संचित वर्ग से की है। प्राइस की आपत्ति है कि ऐन्द्रिय संवेदन तो एक में भी हो सकते हैं जैसे कि नीलम का नीलापन एक पक्ष के है। और यही नीलापन यदि एक पीले या सफेद प्रकाश में देखा जाय तो और भी नीलेपन से मेल खा सकता है चाहे यह नीलापन इस वक्त दो भिन्न वस्तुओं में व्याप्त

भिन्न हो सकता है और इस समय भी वह केवल उसी एक ही वस्तु का अंशी होता है। इस तरह कोई ऐन्द्रिय संवेदन जिससे एक परिवार बनता है, गुणात्मक एवं ज्यामितिक रूप में निरंतर रहना चाहिए। अर्थात् परिवार के उन भिन्न भिन्न ऐन्द्रिय संवेदन का परस्पर प्रभाव होना चाहिए तथा वे एक दूसरे से संयुक्त होने चाहिए। निश्चय ही एक व्यक्ति द्वारा देखी जाने पर इस परिवार में भी खाँच रह जाती है। इस विषय की चर्चा विस्तार में वह अपनी पुस्तक ह्यूम्स थ्योरी आव एक्स्टरनल वर्ल्ड (1940) में करते हैं। इसका यही मतलब हुआ कि यह परिवार किसी एक व्यक्ति के वास्तविक अनुभव के साथ मेल नहीं खाता—यह तब भी उन अन्य प्राप्य ऐन्द्रिय संवेदनों की संभावना रख सकता है जिन्हें दूसरी मन स्थिति में संभवत वही व्यक्ति प्राप्त करता। और चूंकि ये प्राप्य ऐन्द्रिय संवेदन किसी अन्य के द्वारा प्राप्त किये जा सकते हैं, इस तरह यह परिवार वस्तुपरक है सब सामान्य तथा निरन्तर भी है। प्राइस के ऐन्द्रिय संवेदनों के परिवार एवं मिल की संवेदनाओं की अनन्त संभावनाओं की एकरूपता से यह बात और भी साफ हो जायगी। प्राइस इस प्रकार से विचार किये जाने का समर्थन करते हैं किन्तु वे मिल की आलोचना इस आधार पर करते हैं कि वे उनकी भांति परिवार जैसी कोई ठोस धारणा बनाने में असफल रहे थे। वे ऐन्द्रिय संवेदन की प्रकृति की एक संतोषप्रद व्याख्या नहीं कर पाए।

इसके अतिरिक्त मिल संघटनवादी थे। उन्होंने भौतिक वस्तु का तादात्म्य ऐन्द्रिय संवेदन की अनन्त संभावना से कर दिया था। प्राइस इस प्रकार के तादात्म्य का निवारण करना चाहते थे। एक असंघटनावादी सिद्धान्त की खोज में वे ऐन्द्रिय संवेदन के परिवार एवं भौतिक पदार्थ में अन्तर की बात से अपनी व्याख्या प्रारम्भ करते हैं। उनके अनुसार एक भौतिक पदार्थ का सर्वाधिक स्पष्ट रूप है इसमें निहित अवरोध की क्षमता। एक क्षेत्र उस समय भौतिक रूप से आभरित होता है या फिर किसी भौतिक पदार्थ द्वारा पूरित होता है जब ऐन्द्रिय संवेदन के परिवार जो उस क्षेत्र में प्रविष्ट होते हैं, उनका किसी न किसी रूप में संशोधन हो जाता है। उदाहरण के लिए या तो वे छितर जाते हैं या बिखर जाते हैं। इसी से जुड़ा भौतिक पदार्थ का एक और रूप होता है। वे आकस्मिक रूप से क्रियमाण रहते हैं। प्राइस भौतिक पदार्थ की व्याख्या में केवल इतना कहकर संतुष्ट नहीं हो जाते कि वे ऐन्द्रिय संवेदनों के ऐसे परिवार हैं जो किसी क्षेत्र के बाह्यान्तर में विद्यमान है और अब जो उस पदार्थ द्वारा पूरित कर लिया गया है। क्योंकि उनका कथन है कि भौतिक परिवार की तरह यह परिवार किसी विशिष्ट इयत्ता के रूप में विद्यमान नहीं होता। यह तो उस तथ्य की परिणति होती है कि परिवार ऐन्द्रिय संवेदनों से युक्त होता है जो वास्तविक तो नहीं है फिर भी प्राप्य है। बात को दूसरे ढंग से कहें तो एक एक परिवार एक रचना है मूलत उस रूप में जिस रूप में भौतिक पदार्थ एक रचना नहीं है।

उदाहरणार्थ मानलें, आग स मैं लाल कोयला उठाकर देखता हू । प्राइस की दृष्टि म इस समय उस कोयले का केवल सामने वाला रूप[1] ही मेरे सामने है । ऐन्द्रिय सवेदना के अन्य सभी सुरक्षित सयोगो म केवल यही एक ऐन्द्रिय सवेदन इस क्षण वास्तव मे सक्रिय है । इसके अलावा कोयले के आकस्मिक गुण भी अन्य सभी अवस्थाओ म दिख ही रहे है । मक्खन का एक टुकडा यहा पिघलाया जा रहा है कागज का टुकडा वहा तह किया जा रहा है और एक अन्य स्थान पर कोई रूमाल सुखाया जा रहा है, किन्तु प्रत्यक्षदर्शी की भौहे सभी अवस्थाओ म ताप महसूस करती ही हैं । इसी तरह कोयला वातावरण के वेग से भेद जान स पूव एक प्रकार का अवरोध सभी दिशाओ म कायम करता है, केवल मात्र उसी भाग मे नहीं जहा ऐन्द्रिय सवेदन का सयोग प्रकटा है । य तथा ऐसे ही अन्य विचार यह बताते हैं कि ऐन्द्रिय सवेदन परिवार तथा चेत्र पूरक पदाथ मे कोई क्रमवार सबध नही है । इस तरह यह परिवार भौतिक पदाथ भी नही है । तो भी प्राइस यह स्वीकारते हैं कि भौतिक पदाथ के विषय मे हम सिवाय इसके कुछ नही कह सकते कि इसम कुछ क्षमताए होती है । वे नवकान्तवादी अनीश्वरवाद सिद्धान्त की पुन स्थापना करते हुए कहते हैं कि भौतिक पदाथ के अन्तरङ्ग गुण, हमार लिए न केवल अज्ञेय हैं किन्तु हमार लिए उनका अपरिचित रहना अपरिहाय है । यद्यपि भौतिक पदाथ एव ऐन्द्रिय सवदन परिवार म कोई तादात्म्य नही है, और ऐन्द्रिय सवदन अपने अस्तित्व के लिए एक भौतिक पदाथ पर अवलम्बित है तो भी तथ्य यही है कि भौतिक पदार्थों की व्याख्या या परिभाषा यह बताकर ही दी जा सकती है कि वे कौन से ऐन्द्रिय सवेदन परिवार मे आते हैं ।

हमार दनिक जीवन म भी जब हम वस्तुओ क विषय म कुछ कहते हैं तो हमारा अथ न केवल ऐन्द्रिय सवदन परिवार से होता है और न अकेली भौतिक वस्तु से ही, हमारा आशय इन दोनो का एक साथ सदभ देना है । हम ऐन्द्रिय सवेदनो के परिवार के साथ भौतिक पदाथ की बात करत हैं । यही कुल मिलाकर भौतिक वस्तु को हमारे सामन प्रस्तुत करता है । लोक का प्रतिनिधिवाद भौतिक वस्तु एव

---

[1] प्राइस इस बात का खण्डन करते हैं कि सभी ऐन्द्रिय सवेदन दो आयाम के है । उनकी दृष्टि मे ऐन्द्रिय सवेदन घनत्वशील भी हो सकते हैं । वे यह जानकर चकित हैं कि ऐन्द्रिय सवेदन के सिद्धान्तो की आलोचना केवल इस आधार पर की गई है कि उनके लिए पदार्थों का तात्कालिक प्रत्यक्षीकरण द्वययामी है । सभी लोगो के सम्मुख स्पष्टत प्रकट हो जाने वाले सघटनात्मक तथ्यो को वे कसे इन्कार कर सकते हैं । किन्तु यह तथ्य कि चाक्षुष सवदन सामान्यत धब्बो के रूप म वर्णित किये गये हैं । और उससे ऐसा मालुम होता है कि ऐन्द्रिय सवेदना के आलोचको की बात सदा ही गलत नही हो सकती ।

भौतिक पदार्थ के बीच उलझन पैदा करता है। सघटनवाद भौतिक वस्तु एव ऐन्द्रिय सवेदन परिवार के बीच का भेद नही करता तो भी इन दोनो म से सघटनवाद की ओर उनका झुकाव अधिक है। भौतिक पदार्थ एक छायाभासी सत्ता है, किन्तु उनका विचार था कि इन दोनो मे से एक के चुनाव की मजबूरी से व बच गए है। तो भी प्रत्यक्ष इस बात से आश्वस्त नही हो सका कि व अपनी स्थापनाओ मे सफल रहे हैं परसेप्शन चाहे सघटनवादियो क लिए प्रेरक ग्रथ क्यो न रहा हो।

1953 म[1] प्राइस की वाद की रचनाओ को *थिंकिंग एण्ड एक्सपीरिएन्स* नामक ग्रन्थ म सकलित किया गया है। यह पुस्तक प्रत्यक्षीकरण की समस्याओ से परे हटकर विचार करने की क्रिया पर ध्यान केन्द्रित करती है। आंशिक रूप म तो यह विचारो के सबध म स्थापित *उन सिद्धान्तो की आलोचना ही है, जो वस्तुस्थितिवाद* के प्रभाव मे आकर यह स्वीकारते हैं कि विचार करने की परिभाषा प्रतीको के प्रयोग करने की प्रणाली के रूप मे की जा सकती है। प्राइस यह बताने का भी प्रयास करते हैं *कि विचार के कुछ ऐसे प्रकार भी हैं जिनम प्रतीको के प्रयोग की आवश्यकता नही* होती विशेषकर ऐसे समय जब हम काले बादलो को देखते हैं और विचार करते हैं कि वर्षा होगी[2] और यह भी कि विचार मे जिन प्रतीको का प्रयोग होता है उन्हे *भी वह पार कर जाता है। क्योकि हमारी विचारधारा का एक अश ही शब्दो म* उस प्रतीक को अभिव्यक्त कर पाता है जिसका रूप हमारे मन मे बना है। जब हम कुत्ते क विषय मे सोचते हैं तो उसका बना एक विशेष रूप कुत्तो के विषय म हमारी सारी विचारधारा को अपने म नही समेटता। यदि हम एक भबरे कुत्ते के विषय म सोचते हैं इसका यह अर्थ नही कि उस समय केवल भबरे कुत्ते ही हमारी विचारधारा को आक्रान्त किए हुए हैं। तो भी इसके साथ ही प्राइस यह नही चाहते कि उन्हे विवश होकर विचारधारा की परम्परागत धारणा स्वीकारनी पड जाए।

---

[1] द्रष्टव्य सी डब्ल्यू के मण्डल द्वारा प्रस्तुत सवाद (पी क्यू 1954)।

[2] स्पष्टत इस बात पर तो विवाद हो ही सकता है कि इस तरह की प्रक्रियाए दूसरे जानवरो म वसी तरह मिलती हैं अथवा नही जसी मनुष्यों म मिलती हैं और क्या वे वास्तव मे विचार प्रक्रिया के ही रूप हैं या नहीं। प्राइस यह बताने का प्रयास करते हैं कि वे ऐसी ही हैं। वे कहते हैं कि उनम भी एक तकभान होता है, जसे यदि तो' का एव, या का। उदाहरण के लिए अप्रतीकात्मक स्तर पर भी कोई अथ तो कहीं न नही रहता ही है। इस बात पर प्रस्तुत उनके विचारो ने उनके रिव्यू करने वालों क कान खटखटाए हैं, किन्तु फिर भी यह कुक विल्सन की परम्परा म ही है कि तकशास्त्र को विचारो के आकार का सिद्धान्त माना गया है।

इस धारणा के अनुसार क्रिया इस बात मे निहित है कि उसके जरिए हम एक विशेष वर्ग के पदार्थो का बोध होता है, जिन्हे सदर्भानुसार समष्टियों, धारणाओं या अमूर्त विचारो की संज्ञा दी जाती रही है। वे यह बताने का प्रयास करते हैं कि हम धारणाओ का प्रयोग कर सकते हैं। हम इस बात मे सहमत हैं कि विचारणा को सही रूप मे बोध माना गया है चाहे इन धारणाओ का कोई स्पष्ट रूप हमारे सम्मुख हो या नही। उनका विचार सिद्धान्त धारणाओ के सक्रिय होने का विवरण मात्र है। परसेप्शन मे उनकी दृष्टि मूलत सघटनवादी रही है—जिसे प्राइस सघटनात्मक सत्य मानते हैं। बार बार सोचने की प्रक्रिया मे वे उसी पर बल देते है, जबकि सामान्य तौर पर आग्मावी सिद्धान्तो के फेर मे इनकी आवश्यकता का भी बलिदान कर दिया गया है। फिर भी प्राइस की रचनाए परम्परासम्मत ही लगती हैं, क्योकि उनके द्वारा प्रस्तुत नए भेद कुक विलसन द्वारा रचित स्टेटमेण्ट एण्ड इनफरेन्स मे पहले ही आ गए हैं। कुक विल्सन के तर्कशास्त्र के अनुयायी चाहे न्यून रहे हों किन्तु आक्सफोर्ड मे विकसित हुए सिद्धान्तों मे उनकी आत्मा का प्रभाव निरन्तर गतिमान ही है।

अध्याय ११

नव–यथार्थवादी विचारक

वतमान शती के प्रारंभिक वर्षों मे यह सोचना भी सभव नही लगता था कि यथार्थवाद के प्रभाव को बौद्धिक रूप स कम किया जा सकेगा। यह वास्तव म एक बेहूदा पूर्वाग्रह था। ब्रेण्टानो एव मीनाग न यह सकेत दिया था कि जिसे हमारा मस्तिष्क जानता है वह उस मानसिक क्रिया स भिन्न है जिसक जरिए उस जाना जाता है। मच और उनक बाद जम्स ने तो यदि इन्ह आत्मपरकवाद की ओर यथार्थवादी भावभूमि पर अग्रसरित हुए मानलें, कम स कम इस बात से इन्कार किया था कि तात्कालिक रूप से जिसका प्रत्यक्षीकरण हम करते हैं वह भी एक मानसिक अवस्था ही है। और तब रसल द्वारा समर्थित मूर ने उन सभी स्थापनाओं का खण्डन किया था जिन्ह ब्रेडल जसे प्रत्ययवादियो ने तथा मिल जसे मघटनवादियो ने अखण्डनीय कहकर स्थापित किया था। उन्होने कहा था कि प्रत्यक्ष पदार्थों की सत्ता इस तथ्य म निहित है कि व देख जा सकते हैं। जब यथार्थवाद उन बिखरी हुई प्रवत्तियो को एक रूप दन मे लग गया जिन्हे समयान्तर मे मीनाग मैच एव जम्स द्वारा आविष्कृत किया गया था तब प्रत्ययवाद क विरुद्ध सघर्ष करने मे नव यथार्थवादियों ने मूर एव रसेल का दामन पकडा था।

इगलण्ड मे नव यथार्थवाद को एक मौलिक सिद्धान्त का रूप दने वालो म टी० पी० नन[1] का नाम लिया जा सकता है। शिक्षा शास्त्री क रूप म विख्यात इन महाशय ने दर्शन पर बहुत कम लिखा–किन्तु वह थोडा ही अपने सीमित आयामो को तोडकर विचार के इतिहास मे व्यापक प्रभाव डालने वाला रहा है। विशेषत आर सकण्डरी क्वालिटीज इण्डिपेण्डेण्ट आव परसेप्शन ?[2] नाम से सयोजित गोष्ठी

---

1 यथार्थवाद पर सामान्य तोर पर देखें आर० आई० पी० (1938), आर० बी० परी, प्रेजेण्ट फिलोसोफीकल टेण्डेन्सीज (1912) आर० पी० क्रेमर ला थ्योरी दे ला कोनाइसां चज ल निओ रीअलिस्टि एग्लियाइ (1928), एव ला निओ रिअलिज्मे अमेरिकाइने (1920), आर० डब्लू० सलस करेण्ट रीअलिज्म इन ग्रेट ब्रिटेन एण्ड यूनाइटेड स्टेटस (मानिस्ट 1927, ए० के० रोजस इंग्लिश एण्ड अमेरिकन फिलोसोफी सि स 1800 (1922), एल बोमन क्रिटिसिज्म एण्ड कान्स्ट्रक्शन इन द फिलोसोफी आव द अमेरिकन निओरीअलिज्म (1955)

2 पी० ए० एस० 1909, शिलर ने उनके साथ गोष्ठी म भाग लिया था। द्रष्टव्य नन की पुस्तक द एम्स एण्ड एचीवमेण्ट्स आव साइण्टिफिक मेथड (1907)

इस धारणा के अनुसार क्रिया इस बात मे निहित है कि उसके जरिए हमे एक विशेष वर्ग के पदार्थो का बोध होता है, जिन्हे सदर्भानुसार समष्टियो धारणाओं या अमूर्त विचारो की सज्ञा दी जाती रही है। वे यह बताने का प्रयास करते हैं कि हम धारणाओ का प्रयोग कर सकते हैं। हम इस बात मे सहमत हैं कि विचारणा को सही रूप मे बोध माना गया है चाहे इन धारणाओ का कोई स्पष्ट रूप हमारे सम्मुख हो या नही। उनका विचार सिद्धान्त धारणाओ के सक्रिय होने का विवरण मात्र है। परसेप्शन में उनकी दृष्टि मूलत सघटनवादी रही है—जिसे प्राइस सघटनात्मक सत्य मानते हैं। बार बार सोचने की प्रक्रिया मे वे उसी पर बल देते है जबकि सामान्य तौर पर प्राग्भावी सिद्धान्तो के फेर मे इनकी आवश्यकता का भी बलिदान कर दिया गया है। फिर भी प्राइस की रचनाए परम्परासम्मत ही लगती हैं, क्योकि उनके द्वारा प्रस्तुत नए भेद कुक विल्सन द्वारा रचित स्टेटमेण्ट एण्ड इनफरेन्स मे पहले ही आ गए हैं। कुक विल्सन के तर्कशास्त्र के अनुयायी चाहे न्यून रहे हो किन्तु आक्सफोर्ड मे विकसित हुए सिद्धान्तो मे उनकी आत्मा का प्रभाव निरन्तर गतिमान ही है।

अध्याय ११

नव-यथार्थवादी विचारक

वर्तमान शती के प्रारंभिक वर्षों में यह सोचना भी सम्भव नहीं लगता था कि यथार्थवाद के प्रभाव को बौद्धिक रूप में कम किया जा सकेगा। यह वास्तव में एक बेहूदा पूर्वाग्रह था। ब्रेन्टानो एवं मीनोंग ने यह संकेत दिया था कि जिसे हमारा मस्तिष्क जानता है वह उस मानसिक क्रिया से भिन्न है जिसके जरिए उसे जाना जाता है। मच और उनके बाद जेम्स ने तो यदि इन्हें आत्मपरकवाद की ओर यथार्थवादी भावभूमि पर अग्रसरित हुए मानलें कम से कम इस बात से इन्कार किया था कि तात्कालिक रूप से जिसका प्रत्यक्षीकरण हम करते हैं वह भी एक मानसिक अवस्था ही है। और तब रसेल द्वारा समर्थित मूर ने उन सभी स्थापनाओं का खण्डन किया था जिन्हें बर्कले जैसे प्रत्ययवादियों ने तथा मिल जैसे अघटनवादियों ने अखण्डनीय कहकर स्थापित किया था। उन्होंने कहा था कि प्रत्यक्ष पदार्थों की सत्ता इस तथ्य में निहित है कि वे देखे जा सकते हैं। अब यथार्थवाद उन बिखरी हुई प्रवृत्तियों को एक रूप देने में लग गया जिन्हें समयान्तर में मीनांग मैच एवं जेम्स द्वारा आविष्कृत किया गया था तब प्रत्ययवाद के विरुद्ध संघर्ष करने में नव यथार्थवादियों ने मूर एवं रसेल का दामन पकड़ा था।

इंग्लैण्ड में नव यथार्थवाद को एक मौलिक सिद्धान्त का रूप देने वालों में टी० पी० नन[1] का नाम लिया जा सकता है। शिक्षा शास्त्री के रूप में विख्यात इन महाशय ने दर्शन पर बहुत कम लिखा–किन्तु वह थोड़ा ही अपने सीमित आयामों को तोड़कर विचार के इतिहास में व्यापक प्रभाव डालने वाला रहा है। विशेषतः आर सेकेण्डरी क्वालिटीज इण्डिपेण्डेण्ट आव परसेप्शन ?[2] नाम से आयोजित गोष्ठी

---

[1] यथार्थवाद पर सामान्य तौर पर देखें आर० आई० पी० (1938), आर० बी० पैरी प्रेजेण्ट फिलोसोफीकल टेण्डेंसीज (1912), आर० पी० फेमर ला थ्योरी दे ला कोनाइसा चज ल निओ रीअलिस्टि ए ग्लियाइ (1928), एवं ला निओ रियलिज्मे अमेरिकाइने (1920), आर० डब्लू० सेलर्स करेण्ट रीयलिज्म इन ग्रेट ब्रिटेन एण्ड यूनाइटेड स्टेटस (मानिस्ट 1927, ए० के० रोजर्स इंग्लिश एण्ड अमेरिकन फिलासाफी सिंस 1800 (1922), एल० बोमन क्रिटिसिज्म एण्ड कान्स्ट्रक्शन इन द फिलोसोफी आव द अमेरिकन निओरीयलिज्म (1955)

[2] पी० ए० एस० 1909, मिलर ने उनके साथ गोष्ठी में भाग लिया था। द्रष्टव्य नन की पुस्तक द एम्स एण्ड एचीवमेण्ट्स आव साइंटिफिक [illegible]

मे उनका योगदान इग्लैण्ड मे काफी समय तक चर्चा का विषय रहा और बर्ट्रेण्ड रसल की चचल चेतना को भी इसने प्रभावित किया। उसके पश्चात् अमरीका मे उसका प्रभाव स्वीकार किया गया। अपने निबध मे नन ने दो स्थापनाए की थी (१) कि प्राथमिक एव सतही दोनो प्रकार के गुण वस्तु मे मौजूद होते हैं चाहे उन्हे देखा जाय या नही तथा (२) गुण देखे जाने के साथ ही अस्तित्व मे आते है।

उनकी विचारधारा का अधिकाश शास्त्रीय है स्टाउट के प्रारम्भिक निबधो[1] को उन्होने अपना प्रमुख लक्ष्य बनाया। स्टाउट का विचार था कि वे यह मानकर प्रारम्भ कर सकते हैं कि हमारे अनुभव मे कम से कम कुछ तो ऐसे तत्व है ही जिनका अस्तित्व केवल हमारे द्वारा देखे जाने पर ही है। जैसे कि दर्द। किन्तु नन की इस सबध मे यह आपत्ति है कि ठीक भौतिक पदार्थ की ही भाति दर्द भी हमारे सम्मुख कठिनाइया प्रस्तुत कर देता है। हमारे बोध के मार्ग मे रोडे अटका देता है और सक्षेप मे वह भी ऐसी वस्तु है जिससे हमारा पाला पडता है। इसलिए दर्द भी मन से परे की कोई वस्तु है, जिससे मेरा मन बहुत प्रकार से जुड सकता है। यह स्वीकारने से मना करना कि जो कुछ भी हम अनुभव करते हैं वह अपने होने के लिए इस तथ्य पर आश्रित है कि उसका अनुभव किया जाए और यही नव यथार्थवादियो का मूलभूत आधार था।

स्टाउट ने यह भी बताया था कि पदार्थ के माध्यमिक गुण केवल अनुभव के उपकरण के रूप मे ही प्रस्तुत होते हैं। यदि हम काँच के एक प्याले को विविध प्रकार की रोशनी मे देखें और इस बात को तूल न दें कि कही प्याला तो बदल नही दिया गया, इसी प्रकार यदि बहुत से देखने वाले एक साथ पानी से भरे एक प्याले मे हाथ डालें तो उष्णता के विभिन्न अशमानो की बात करेगे जबकि दरअसल ऐसी कोई घटना नही घटी है कि पानी के तापक्रम मे बदल आ जाए। ये तथ्य यह जाहिर करते हैं कि माध्यमिक अवस्थाए केवल ऐन्द्रिय सवेदन के धरातल पर प्रकट होती हैं और हमारे प्रत्यक्षीकरण का उपकरण बन जाती हैं। ये भौतिक पदार्थों की वास्तविक दशाए नही हैं।

नन का इस सबध मे दिया गया उत्तर असमन्वयवादी है। ऐन्द्रिय सवेदन एव वास्तविक दशाओ मे भेद करना इनके अनुसार समीचीन नही है। काच के एक प्याले पर विभिन्न रोशनियो मे चढे विभिन्न रगसाय भी प्याले की वास्तविक

दशाएं ही हैं। और पानी की विविध प्रकार से अनुभव की गई उष्णता भी पानी की वास्तविक दशाएं हैं। सामान्य मनुष्य और एक वैज्ञानिक दोनों किसी वस्तु के विषय में एक ताप तथा एक रंग की धारणा रखते हैं, क्योंकि अन्यथा वस्तु की जटिलता उन्हें पराजित कर देगी। नन की दृष्टि में तथ्य तो यही है कि एक वस्तु में एक तरह की उष्णता नहीं होती है और उसकी ये उष्णताएं एक सीमित दिक में ही विद्यमान नहीं हैं किन्तु विभिन्न स्थानों में भी ये वस्तु के चारों ओर विद्यमान रहती हैं। एक वस्तु एक इंच की दूरी पर जाकर अधिक गर्म हो सकती है और एक फुट की दूरी पर जाकर भी नहीं हो सकती और किसी ठण्डे हाथ को किसी गर्म हाथ की अपेक्षा यही वस्तु अधिक गर्म लग सकती है। इसी तरह एक रोशनी में दूसरी की अपेक्षा कोई वस्तु अधिक या कम पीली नजर आ सकती है। इसके विपरीत कुछ भी सोचना सामान्य जीवन में समझी गई वस्तु सम्बन्धी धारणा एवं अनुभव से समझी गई वस्तु के बीच एक उलझन पैदा करना है।

नन के प्रत्यक्षावरण के सिद्धान्त’ में तब भौतिक पदार्थों का सामान्य बोध एकदम परिवर्तित हो जाता है। अपने यथार्थवाद के लिए उसे यही मूल्य चुकाना पड़ा। एक वस्तु अब प्रकट रूपों का आकलन है चाहे प्रत्येक रूप उस मन से स्वतन्त्र ही क्यों न हो जिसके समक्ष वे प्रकट हुए हैं।

नन का यथार्थवाद इस स्थल पर आकर बहुत कुछ मच के संघटनवाद से मिल जाता है यही बात अमरीकी नव यथार्थवाद के विषय में कही जा सकती है।

स्काटलैण्ड का सामान्य बुद्धि दर्शन जिसके विषय में हम पहले ही विचार कर चुके हैं उन्नीसवीं शती के अधिकांश भाग तक अमरीकी विश्वविद्यालयों पर छाया रहा। और उसका प्रभाव न तो जेम्स के अर्थक्रियावाद से ही कम हुआ और न रायस के प्रत्ययवाद से। सर्वाधिक उल्लेखनीय व्यक्ति पीयर्स को भी टोमस रीड की सूक्ष्म और सन्तुलित बुद्धि की प्रशंसा करनी पड़ी थी। उनकी सामान्य बुद्धि की विवेचना[1] रीड के मत के प्रसारण में काफी सहायक रही। इसके बाद जब पीयर्स

---

[1] पीयर्स की दृष्टि में सामान्य बोध ही हमारा प्रारम्भिक बिन्दु होना चाहिए यहां तक तो पीयर्स और मूर दोनों सहमत हैं। किन्तु विशेष सामान्य बोध का सिद्धान्त पीयर्स के अनुसार गलत भी तो हो सकता है यद्यपि यह सत्य है कि अपने व्यापक रूप में सामान्य बुद्धि की बात ठुकराई तो जा ही नहीं सकती। देखें आर० एम० चिशोम द्वारा लिखित द फालिबिलिज्म एण्ड बिलीफ शीर्षक में स्टडीज इन फिलोसोफी आफ सी० एस० पीयर्स (सम्पादक पी० पी० वीनर एवं एफ० एच० यंग 1952) में लिखा निबंध। जे० बुचलर चार्ल्स पीयर्सेस एम्पीरिसिज्म (1939), डब्ल्यू० बी० गली कृत पीयर्स एण्ड प्रेग्मेटिज्म (1952)

न रीड की आलोचना की तो वह यथाथवादी दृष्टिकोण स ही । उ होन बताया कि रैड ने प्रत्यक्षीकरण क प्रतिनिधित्व सब धी कार्टेजियन सिद्धा त स स्वय को मुक्त नही किया है । 1896 म पीयस ने लिखा कि वस्तुए अपन आप म क्या हैं इनका सीधा अनुभव हम हाता है । इमसे अधिक गलत और क्या हो सकता है कि हम केवल हमारे विचारो का ही अनुभव करते हैं । निस्स देह यह सब झूठो का सर्वोच्च बुज है ।

द वल्ड एण्ड द इण्डीविजुअल (1900) म रोयस ने अमेरीका की यथाथवाद के प्रति बढती हुई रुचि का प्रबल विरोध किया था । यथाथवाद को वहा स्वत त्रता के प्रहरी के रूप म परिमापित किया जाने लगा था और इस परिभाषा स रोयस को चिढ थी । *तथ्य का जगत् उनकी दृष्टि म हमारे भौतिक जगत् सबधी* ज्ञान से भिन्न है । इस ससार स यदि हमारा मस्तिष्क विलीन भी हो जाए तो भी उस जगत् मे आगे किए जाने वाले भौतिक वस्तुओ सबधी तथ्यात्मक अनुभवो म कोई अन्तर नही आएगा । इसके प्रतिवाद मे रोयस द्वारा दिए गए लम्बे तक, जो ठोस एव चातुयपूण हैं, यह दिखाने के लिए हैं कि यदि स्वत त्रता ही अन्तिम स्थिति है मात्र एक दिखावा नही तो ज्ञान के सम्ब ध सहित सारे अ य सबध सद्धा तिक रूप से असमव हैं । ज्ञान की, पदार्थों की, स्वायत्तता को कायम रखने मे ही यथाथवाद का अ त हो जाता है–और रोयस के अनुरूप ऐसे ज्ञान की मौलिक सभावना ही नष्ट हो जाती है ।

रोयस के प्रहार ने अपने पहल के अनुयायियो म से दो को एकदम इसका उत्तर दने के लिए प्रेरित कर दिया । इसम एक थे आर० बी० परी तथा दूसरे डब्लू० पी० मो टेग्यू ।[1] सापेक्षता एव स्वायत्तता पूणत समधारिणी हैं, दानो यह बात तो मान गए ।

यह बताना सरल नही है कि वस्तुत स्वायत्तता कहा है ? इसी बात को लकर इ गलण्ड म शिलर न नन की आलोचना की थी । इस स्वत त्रता या स्वायत्तता की सतोपजनक व्याख्या करनी ही नव यथाथवादियो के सम्मुख प्रस्तुत हुई दो प्रमुख समस्याओ म से एक थी । दूसरी समस्या बिना यथाथवाद को त्यागे यह

---

[1] प्रोफेसर रोयसेज रेफ्यूटेशन आव रीयलिज्म म माटेग्यू पर एव परी पर लिखा गया निबध (पी० आर० 1902 एव मोनिस्ट 1902 क्रमश) तुलना के लिए देखें जेम्स द्वारा दूषित बुद्धिवाद पर किया गया प्रहार देखे माण्टेग्यू कृत स्टोरी आव अमेरिकन रीएलिज्म फिलोसोफी 1937 पुन मु द्रित ट्वेण्टीयथ से चुरी फिलोसोफी सम्पादक डी० डी० रू स 1943 जे० पी० 1954 म क्रमश देखें परी डब्लू० पी० मोण्टेग्य एण्ड द न्यू रियलिस्टस ।

स्पष्ट करना था कि यथाथ का भ्रम स किस तरह भिन्न किया जाए। अब तो वह चट्टान जिस पर बहुत स व्यक्तियो न आशा न्वित होकर यथाथवाद को गोद दिया था अब हिलने लगी है।

अमरीका की दाशनिक पत्रिकाए इस शताब्दी की पहली दशाब्दी म ऐस बहुत से प्रयासो स भरी हुई हैं जिनसे एक ऐस यथाथवाद का खाका तयार किया जाय तो इन समस्याओ का सतोष–प्रद हल निकल सके। किन्तु नव यथाथवाद उस समय तक परिपक्व नही हुआ जब तक 1912 म द यू रियलिज्म नाम स एक सहयोगी ग्रथ प्रकाशित नही हुआ था। इसक सहयोगी लखका म ई० बी० होल्ट डब्लू० टी० मारविन, डब्लू० पी० मोण्टग्यू, आर० बी० परी डब्लू० बी० पिटकिन एव ई० जी० स्पाउलिङग थ।

एसेज इन फिलोसोफीकल रियलिज्म म नव यथाथवाद को प्रत्ययवाद का यथाथवादी समान धर्मी माना गया है। बहुत स दाशनिक जो प्रत्यक बात पर तो एक मत नही थ–कि दशन की ओर प्रवृत्त होने की अब उनकी दिशा कम स कम एक हो गयी है और इसके जरिए व अपन विभिन्न उद्देश्यो की पूर्ति कर सकत हैं। यह एक घोषणा पत्र[1] सा ही है जिसका एक लम्बा आमुख लिखा गया है, जिसका समापन सक्षिप्त नीति चर्चाओ की शृखला स होता है। दशन जगत् अब इस सबध म अज्ञानी होने का बहाना नही कर सकता कि यथाथवाद की एक नई एव क्रातिकारी आत्मा अभी भी काफी दूर थी।

तो भी बहुत स मामला म नव यथार्थवाद का योगदान केवल कथनी क चमत्कार के अतिरिक्त और कुछ नही था। यह बात रिफ्यूटेशन आफ आइडियलिज्म नाम से मूर द्वारा लिखित पुस्तक म देखी जा सकती है। और प्रत्ययवादी सिद्धान्त क विरुद्ध विश्लेपण की वैधता की वकालत करता जिसम यह कहा गया था कि सत्य ही पूर्ण है नव यथार्थवाद एक माध्यम क रूप म अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है, जिसके जरिए अमरिका म रसल ने दशन का प्रभाव एक दम कम हो गया। तो भी हम अग्रेजी दशन पर हुए नव यथार्थवाद के प्रभाव को अति वादी करके नही देखना चाहिए। रसल ने भी अपनी विचारधारा क बहुत से मूलभूत सिद्धान्तों को विलियम जेम्स से ग्रहण किया था जिन उन्होंने एकेश्वरवाद क सभी आलोचकों म सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना था।

---

[1] दशन म साहित्य म तथा राजनीति मे यह घोषणा पत्रो का युग था। द न्यू रियलिज्म एव इमेजिस्ट ए पोलोजी म समानता क बहुत से बिन्दु हैं। जी० राइल कृत आन टेकिंग साइडस (फिलोसोफी), इस विषय म मतान्तर के लिए देख।

न्यू रियलिज्म की इस महत्वपूर्ण स्थापना को कि संबंध बाहरी हैं जेम्स ने पहले ही बता दिया था। मार्विन ने इसी सिद्धान्त को अद्वितीय क्षमता से संचित किया था। इस तर्क वाक्य में कि पद अ ब से र नामक संबंध के कारण जुड़ा है अ र किसी भी अंश में ब का निर्णायक तत्व नहीं हो जाता। और न र ब अ के ही निर्णायक और न र ही अ या ब का निर्माता है। इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि ज्ञान चूंकि एक संबंध है ज्ञान ज्ञाता के संबंध के कारण प्रकट नहीं हुआ है और न ज्ञाता ही ज्ञान के संबंध के कारण है।

यहां तक तो नव यथार्थवादी भी सहमत थे—तो भी उनकी सहमति उपर्युक्त प्रकार के ज्ञाता एवं ज्ञान की व्याख्या के लिए वैसी की वैसी नहीं थी। जब रसल द्वारा नव यथार्थवाद का पक्ष लिया गया तो उनका संकेत वहां असम्पृक्त एकेश्वरवाद की भावभूमि पैरी एवं होल्ट ने मैच, जेम्स और नन के प्रभाव में आकर तैयार की थी।[1] किन्तु मोण्टेग्यू जैसे अन्य नव यथार्थवादी इस असम्पृक्त एकेश्वरवाद के प्रबल आलोचक थे।

जेम्स के प्रगतिशील अनुभववाद की अति प्रगतिशील आत्मा को होल्ट पैरी द्वारा प्रस्तुत यथार्थवादी प्रकार में थोड़ा अल्प कर दिया गया है। जेम्स ने इस का खण्डन किया था कि चेतना नाम की कोई सत्ता अस्तित्व में है। चेतना के आग्रही केवल एक प्रतिध्वनि के भक्त हैं और क्षण क्षण में विलीन होती हुई आत्मा की सत्ता की धूमिल अफवाह को दर्शन की हवा पर आरूढ़ करना चाहते हैं। दरअसल केवल अनुभव ही अस्तित्व में हैं 'जानना' विभिन्न प्रकार के अनुभवों में पारस्परिक संयोग से ही प्रकटता है। एफ० जे० ई० वुडब्रिज[2] ने ही इस पर यह आपत्ति की

---

[1] जेम्स की विचारधारा की ओर सर्वाधिक प्रवृत्तिशील एवं विद्वत्तापूर्ण टिप्पणी करने वालों में पैरी का नाम सबसे पहले आता है। उन्होंने मैच द्वारा लिखे गए ग्रंथ एनालिसिस आव सेन्सेशन्स (1914) को वर्तमान यथार्थवाद का एक शास्त्रीय ग्रंथ माना था। द्रष्टव्य होल्ट कृत द कान्सेप्ट आव कोन्शसनेस (1914) एवं पैरी कृत प्रेजेण्ट फिलोसोफीकल टेंडेन्सीज।

[2] वुडब्रिज को नववादी दल में सम्मिलित होने का निमन्त्रण मिलने के बावजूद भी उन्होंने उसे अस्वीकृत कर दिया। उन्होंने उनके निबंध द कान्सेप्ट आव कोन्शसनेस (जे० पी० 1905) में जेम्सोत्तर यथार्थवाद की झलक देखी थी जो उनसे मेल खाती थी। द्रष्टव्य उनके द्वारा कान्टेम्पोरेरी अमेरिकन फिलोसोफीज (अंक २) में प्रस्तुत अपने कन्फेशन्स। उनका प्रभाव मुख्यतः उनके शिष्यों में मिलता है तथा यदाकदा लिखे उनके निबंधों में भी। उनकी प्रमुख रचना द रीएलिज्म आव माइण्ड (1921) है। उनके दर्शन का संक्षिप्त विवरण प्राप्त करने के लिए देखें एच० टी० कोस्टेलो कृत द नेचरलिज्म आफ फ्रेडरिक वुडब्रिज (नेचुरलिज्म एण्ड द ह्यूमन स्पिरिट सम्पादक वाई० ए० क्रिकोरियन 1944)।

थी। अनुभव की परिभाषा केवल यह कहकर दी जा सकती है कि यह वह अवस्था है जिसके विषय में एक चेतनाशील प्राणी सचेत होता है। चेतना की चर्चा करना ही उसके पहले से होने को प्रमाणित करता है। परी एवं होल्ट ने वुडब्रिज के विवेचन में कोई दम देखा और उन्होंने अनुभव को चेतना में कोई स्पष्ट या अस्पष्ट संबंध बनाये बिना परिभाषित किया।

इस उद्देश्य के लिए उन्होंने जेम्स के दर्शन की बहुमुखी क्षमता का आश्रय दूसरी तरह से लिया। जेम्स ने इस बात पर आग्रह व्यक्त किया था और यह उनकी विचारधारा की प्राथमिक स्थापना भी थी, जिसे उन्होंने सर्वप्रथम अपने निबंध स्पेंसर्स डेफीनीशन आफ माइण्ड (1878) में प्रवर्तित करते हुए कहा था कि मनुष्य एक जीव है—जिसे अपने आप को वातावरण में बनाए रखना पड़ता है जो उसके होने के कभी तो अनुकूल रहता है और कभी प्रतिकूल। परी ने जेम्स से मानवी शरीर रचना का यह विचार ग्रहण किया तथा उसे दृष्टिसिद्धान्त के रूप में संगठित किया, जिसे बगसा ने भी अपनी कृति मैटर एण्ड मैमोरी में व्यवहृत किया था। बगसा का 'कथन था,' एक मस्तिष्क का मूल विषय उस वातावरण के एक भाग से निर्मित होता है जिसकी ओर क्षण क्षण में उसका ध्यान चला जाता है। परी के निष्कर्षानुसार किसी जीव द्वारा दिये गये प्रवृत्तिसूचक रेस्पांस का नाम ही मन है। 'एक मेज' के प्रति हमारी चेतना, उदाहरण के लिए, इस तथ्य पर निर्भर करती है कि हमारा नाड़ी संस्थान मेज की ओर प्रवृत्त हो गया है। किसी भी सत्ता के होने का भाव यहाँ चेतना द्वारा व्यक्त नहीं होता मानसिक क्रिया का कोई प्रकार भी नहीं।

इस प्रकार व्यक्ति चेतना के निजी तत्व एवं विज्ञान के सामान्य जगत् का भेद होल्ट-परी के मतानुसार निरर्थक है। जेम्स ने तो अपने निबंध हाउ टू माइण्ड्स केन नो वन थिंग (जे० पी० 1905) में यह सुझाया था, कोई अनुभव मेरा उसी समय होगा जब उसका मेरा होने का अनुभव किया जाए और तुम्हारा उस समय होगा जब उसे वैसा अनुभव किया जाए। इस तरह इसी एक अनुभव के लिए मेरा और तुम्हारा होने में कोई दिक्कत नहीं है। इस बिंदु को आधार मानकर परी अतिरिक्त विशेषता के भ्रम का खण्डन करते हैं। जिसके अनुसार एक वस्तु जो तुम्हारे मन में है मेरे मन में नहीं हो सकती। यदि यह तथ्य नहीं होता कि मन के तत्वों का परस्पर टकराव होता है तो किसी प्रकार का मानवी व्यवहार संभव नहीं होता। तो भी निसंदेह परी यह स्वीकार करते हैं कि अन्य लोगों के लिए यह मालूम करना कि मैं क्या सोच रहा हूँ जरा मुश्किल अवश्य होता है। यही कारण है कि ऐसा सुझाव दिया जाना आसान है कि मेरे मन में भाव मेरे अपने हैं किन्तु यह मुश्किल ऐसी नहीं है कि असंभव लगे। यहाँ तक कि सबसे मुश्किल अवस्था में जहाँ केवल

मैं कुछ स्मरण कर रहा हूं एक स्वतंत्र द्रष्टा यह अन्दाजा लगा सकता है कि मेरे मन में कौनसा भाव है ? 'मेरे द्वारा लंदन का स्मरण किया जाना ऐसे तत्वों का बना है जिसे मेरी केन्द्रीय चेतना प्रक्रिया, मेरे सेरब्रम के अन्दर निरन्तर हो रहा संशोधन तथा मेरी मौलिक समझ जो व्यावहारिक और संवेदना के स्तर पर लंदन से जुडी है और तब इन सबका मिला जुला रूप लंदन बन गया है कम से कम सैद्धान्तिक रूप से सब सामान्य के लिए मेरे चेहरे में उभरने वाली इन विभिन्न अवस्थाओं का ज्ञान प्राप्त किया जाना संभव है ।

यहां आकर असंपृक्त एकेश्वरवाद की मूलभूत स्थापनाओं का स्पष्टीकरण किया जाना आवश्यक है । यहां चेतना का त्याग कर दिया गया है और उसी तरह सजगता के कम एवं ऐंद्रिय संवेदन का भी । कम से कम अब वे वह अर्थ नहीं रखते जो मूर के द्वारा प्रचलित किया गया था । वस्तुपरक तथ्यों के अतिरिक्त कुछ भी अस्तित्व में नहीं है । जानना ऐसे तत्वों का पारस्परिक संबंध है । यह संबंध इसलिए विचित्र भी है क्योंकि इनमें से कम से कम प्रस्तुत दो संबंधित मदों में से एक तो अवयवी प्रक्रिया को व्यक्त करता हुआ होना चाहिए ।

शीघ्र ही हमारे होठों पर एक सामान्य आपत्ति आ खडी होती है । तब गलती और मनश्छल का क्या होगा ? गुलाबी चूहे तथा मुडी हुई छडियां क्या वस्तुपरक तत्व हैं ? होल्ट इस निष्कर्ष के प्रकट हो जाने के प्रति पूर्णतः सचेत हैं । प्रत्येक तत्व होने की सर्वव्यापी समष्टि में उपजीवी के रूप में रहता है । किन्तु कुछ तत्व तब हमारी दृष्टि में ही सत्य तथा कुछ असत्य हो जाते हैं । होल्ट का इस संबंध में यही उत्तर है कि किसी अनुभव के दौरान सत्य का कैसा भी क्षीण स्वरूप अथवा प्रबल स्वरूप क्यों न प्रकटा हो, मुझको इसकी चर्चा में रुचि नहीं है ।

यह उत्तर बहुत स्वाभाविक है क्योंकि होल्ट की दृष्टि में सत्य असत्य का भेद माध्यमिक परम्परा के कारण ही है । हम जुडे हुए प्रत्यक्षीकरणों से एक प्रणाली का निर्माण कर लेते हैं जिसे ह्यूम की दृष्टि में तो उसे सत्य कहकर गौरव प्रदान करना हुआ, किन्तु होल्ट के अनुसार यदि ऐसी प्रणाली में कहीं सत्य का स्थान है तो उसे स्वीकार करने, तथा यदि वह असत्य है तो उसे असत्य कहकर बहिष्कृत करने में कोई उज्र नहीं होना चाहिए । रसेल ने इसी बिन्दु को बडे नटखटपन से प्रस्तुत किया है । उनके अनुसार कुछ प्रत्यक्षीकरण हमारे समक्ष किसी वस्तु की 'अधिकृत कथा' ही हमारे समक्ष रखते हैं और उसके स्थायी एवं गरिमामय व्यवहार की झांकी प्रस्तुत करते हैं । किन्तु कुछ प्रत्यक्षीकरण बहुत बिगडे दिल होते हैं असामान्य होते हैं और उस समय तक महज विस्मरणीय होते हैं जब तक कि कोई ज्ञान मीमांसक उनके लिए दलाल होने का दावा नहीं कर देता । होल्ट के अनुसार

एक दार्शनिक के पास अपना विवेकशील मस्तिष्क इन छुटपुट बातों में लगाने के लिए समय नहीं है।

मामले पर सामान्य चर्चा करें तो हमें लगेगा कि एक पेड़ के उन वास्तविक तत्त्वों में जो उसके अंश हैं तथा उनमें जो हमारी दृष्टि से उसमें देखे गए हैं और जो असत्य हैं तथा आत्मपरक हैं दरअसल कोई अन्तर तो है ही। किन्तु होल्ट, नन का अनुकरण करते हुए कहते हैं कि पेड़ से संबंधित असंख्य ज्यामितिक आकारों को जिनमें से किसी एक के प्रति भी हमारा नाड़ी संस्थान संवेदित हो सकता है, का पेड़ का एक तत्त्वांश कहे जाने का पूर्ण अधिकार है—चाहे व्यावहारिक दृष्टि से हम किसी आकार को ही वस्तु का सही स्वरूप क्यों न मान लें। वस्तु प्रभाव पेड़ से संबंधित सही अवस्थाएं ही हैं। और पेड़ में तथा इन संबंधित अवस्थाओं में भेद किए जाने का कोई निश्चित मानदण्ड है भी नहीं। नन की दृष्टि में तब होल्ट पेरी द्वारा किया गया इस सामान्य बोध सिद्धान्त का बचाव कि प्रत्यक्षीकरण के पदार्थ द्रष्टा से भिन्न होते हैं हमारी वस्तु की स्वभाव संबंधी धारणा को ही व्यक्त करता है।

अमरीकी नव यथार्थवाद की इसी आधार पर कटु आलोचना हुई। पेरी एवं होल्ट के द्वारा प्रस्तुत ज्ञान मीमांसा पर पहले से ही कुछ शंकाएं की जाने लगी थीं। इस तरह नव यथार्थवादियों का सर्व प्रथम बना दल बिखर गया। होल्ट एक सम्माननीय मनोवैज्ञानिक हो गए पेरी एक नीति शास्त्री, पिटकिन ने अपनी प्रसिद्धि इस बात पर पाई कि उन्होंने लोगों को 40 साल की अवस्था प्राप्त करने पर भी खुशहाल हो जाने का मार्ग बता दिया था। माण्टेग्यू ने दर्शन चिंतन करना जारी रखा किन्तु उनकी प्रणाली निश्चित ही नव यथार्थवादी नहीं थी। न मारविन और न स्पाल्डिंग ने ही दर्शन के क्षेत्र में कोई महत्वपूर्ण योग दिया।[1] तो भी

---

[1] माण्टेग्यू ने यथार्थवाद, आत्मपरकतावाद एवं विवेचनात्मक यथार्थवाद के समन्वय का प्रयास किया था। यह उस अमरीकी वृत्ति का ही परिचायक है जिसके अनुसार विभिन्न वादों को समन्वित करके देखने का भाव प्रकट होता है। कन्टेम्पोरेरी अमेरीकन फिलोसोफी का अध्ययन करने से पता लगता है कि वहां भी समस्यामूलक यथार्थवाद, व्यक्तिपरक यथार्थवाद, अनुभववादी आदर्शवाद, अस्थायी यथार्थवाद जैसे शीर्षकों की बहुतायत मिलेगी। मूलतः एक अमरीकी दार्शनिक अपने को एक ब्रितानी दार्शनिक से, जो स्वयं को वादों के झमेले से दूर रखना चाहते हैं वादों के सहारे ही नये वाद की प्रतिष्ठा करने में सुरक्षित महसूस करते हैं। समाज शास्त्रियों को इस में अन्तर शायद विचार का कोई आधार मिल जाए। मोण्टेग्यू की ज्ञानमीमांसा का सारांश द वेज ऑव नोइंग (1925 नामक ग्रन्थ में दिया गया है। इस पुस्तक के अन्त

का वार्तालाप, जिसमे इम आदोलन का अपना विशिष्ट प्रभाव ता रहा ही जसा कि पेरी रीअलिज्म इन रेट्रोस्पक्ट (सी०ए०पी०,2) मे यह सुभात है कि कार्टेजियनवाद के विरद्ध सघप करने के लिए यह एक महत्वपूण दल तयार हो गया था। नव यथाथवाद ने द्वद्ववाद पर भी इसलिए प्रहार किया था कि उस एक अनुभववादी सिद्धान्त के निर्माण म सहायता मिलती थी। पारमात्मिक प्रत्ययवाद के द्वारा प्रस्तुत कोई स्पष्टीकरण अब अधिक प्रभावशाली नही लगता था। नव यथाथवादी विचारधारा के प्रवत्तन के माग म चाहे जितनी बाधाए रही हो, किन्तु कोर्टिजियन वाद तथा परमात्मवाद के विरुद्ध प्रस्तुत उनके प्रहारो म इसस कोई कमी नही आई। बहुत कम दाशनिक ही शायद आज यथाथवाद की सत्ता का हटाने के पक्ष म होगे।

व इमेर्जेन्सपेशन आव फिलोसोफी आफ एपिस्टेमोलोजी नामक ग्रथ रचकर मारविन ने नवयथाथ को सद्धान्तिक रूप देने म योग दिया था। यह एक अजीब ध्वनि प्रस्तुत करने वाला शीपक है। क्योकि यथाथवाद सामान्यत एक ज्ञानमीमासा तो था ही। किन्तु मारविन की दृष्टि म यथाथवाद की ज्ञान मीमासा इसलिए महत्वपूण है कि यह दाशनिक को तत्वदशन पर ही विचार करने की छूट देता है और तत्वदशन का वतमान समय तक उपलब्ध अनुभवा के सामान्यीकरण की प्रक्रिया कहकर स्वीकारता है। डकाट के समय से जिस तरह दाशनिक यह मानते रहे थे कि यदि हमारे सम्पूण ज्ञान हमारे मस्तिष्क द्वारा प्राप्त अनुभवो के ज्ञान के सकलन पर ही आधारित हैं तो यह निष्कप निकालना आसान है कि मानवी मन सबधी कोई जाच पडताल सत्य सम्बधी किसी जाच पडताल से पहल की जानी आवश्यक है। और तत्व दशन के लिए एसी गोल मोल दृष्टि के निर्धारण म ही तत्वदशन सबधी मूल चर्चा बहक गई है। अनुभववाद म प्रस्तुत ज्ञान म मासा आवश्यक है। इस तरह मारविन की दृष्टि मे तत्ववादी ज्ञानमीमासा के चगुल से मुक्त हा जाते हैं।

ब्रितानी दाशनिक सेमुअल एलक्जेण्डर पर यह दायित्व रखा गया कि वे यथाथवादी तत्वदशन की रूपरेखा तयार करें। 1920 म उनकी पुस्तक स्पस टाइम

एक नव यथाथवादी विवेचनाशील यथाथवादी तथा एक प्रत्ययवादी न भाग लिया था-और जहा एक सच्चे यक्ति हाइलोनस की तरह मोण्टग्यू उनके पारस्परिक विवाद का समन्वय करने को उपस्थित थे वतमान शती क ज्ञान मीमासा सबधी मुवादो पर प्रस्तुत हुई मूलभूत मानबिन्दुओ की चर्चा के लिए उपयोगी था। चाहे इनके दौरान हाइलोनस की दृष्टि सदव ही गहरी और सूक्ष्म रही हो। स्पाडिल्ग के लिए दखे द न्यू रशनजिज्म (1918) एव मारविन क लिए देखें ए फस्ट बुक इन मैटाफिजिक्स (1912)।

एण्ड डीटी प्रकाशित हुई। यह प्रकाशन एक ऐसी दशाब्दी के प्रारभ मे हुआ था जिसम एक साथ बहुत स तत्वदशनो की स्थापना हुई थी। 1921 म मक्टेगट की पुस्तक द नचर आव एग्जिस्टेंस का प्रकाशन और व्हाइटहैड की प्रोसेस एण्ड रीयलिटी नामक पुस्तक 1929 मे। अपने मूल म द नेचर आव एग्जिस्टेंस को नव हीगलवादी आन्दोलन की एक कडी के रूप म रखा जा सकता है। जबकि प्रोसेस एण्ड रीयलिटी की भाति स्पेस टाइम एण्ड डीटी की पृष्ठभूमि म नव यथार्थवाद का स्तर था। यद्यपि यह पुस्तक ब्रेडले एव बोसाके के प्रभाव स किसी भी भाति अछूती नही रही थी। इसके अतिरिक्त भी द स्पेस टाइम एण्ड डीटी तथा द नेचर आव एग्जिस्टेन्स म एक मौलिक अन्तर है। मैक्टेगट एक ठोस निगमनात्मक तत्वदशन की रचना म सलग्न है जबकि एलक्जेण्डर उस जगत् का जिसमे हम रहते हैं, घूमते हैं और विचार करते हैं सीधासादा वर्णन प्रस्तुत करने म व्यस्त लगते हैं। उनके एक्सप्लेनेशन्स (माइण्ड 1921) नामक निबंध मे वे इस दूरी तक भी यह स्वीकारने को तयार है कि उन्ह वाद विवाद करना नापसन्द है। उनकी यह घोषणा एक दाशनिक के लिए विचित्र सी लगती है। दशन विवरण स आगे बढ़ता है। तक का उपयोग वहा पर तथ्य के रूप को देखने के लिए होता है। उसी प्रकार जैसे एक जीवशास्त्री सूक्ष्मदशक यत्र का प्रयोग करता है। अपने एक आरम्भिक निबंध सेन्सेशन्स एण्ड इमेजेज (पी० ए० एस० 1910) मे हुसलके साथ उनका सबंध बहुत साफ उभर आता है। उनकी प्रणाली यही है कि वे दार्शनिक पूर्वाग्रहो का निवारण करते चलते हैं और किसी प्रस्तुत अनुभव म वास्तव मे क्या वर्तमान है यही बताने का प्रयास करते हैं। द नेचर आव एग्जिस्टेन्स जो वाद विवादो स भरपूर है वह इस प्रस्तुति से जितनी दूर है उतनी कोई अन्य नही हो सकती।

एलेक्जण्डर की प्रणाली पठन एव चर्चा की दृष्टि से उनकी पुस्तक द स्पेस टाइम एण्ड डीटी को एक कठिन ग्रन्थ बना देती है। बहुत से मामलो म तो वह एक दार्शनिक रचना की अपेक्षा साहित्यिक ग्रथ ही अधिक लगता है। वे एक दाशनिक से ही तक की एक निरन्तर शृखला बनाए रखने की अपेक्षा करते है जो विद्वत्ता स रची हुई होनी चाहिए। किन्तु एलक्जेण्डर ? वे न तो हमे उकसाते हैं न हमारे साथ तक ही करते हैं। वे हमसे केवल हमारे तथाकथित सूफीवाद का जामा उतार फेंकने का आग्रह जरूर करते हैं और तब इस ससार को एक अबोध दृष्टि से देखने का आग्रह भी करते हैं। इसके बावजूद भी वे जो ससार हमारे सामने रखते हैं वह अत्यन्त जटिल, सोफियाना है। बहुत स दाशनिक तो उनकी बात मानने म भी इन्कार कर देते हैं। स्पेस टाइम एण्ड डीटी के प्रकाशन के वक्त इसका जितना हल्ला हुआ था वह शनै शनै उसकी उपेक्षा म बदलता गया। तो भी कुछ ऐसे लोग भी हैं जो इसके पक्के प्रशसक हैं। कुछ तो यह भी मानते हैं कि यह वर्तमान शती की सर्वाधिक महत्वपूर्ण रचनाओ मे से है।

जब *अलक्जण्डर* 1877[1] *म आस्ट्रेलिया स आक्सफाड आए तो* मवप्रथम उनका सम्पक विख्यात प्रत्ययवादियो से हुआ जसे, ग्र न नटलशिप एव ए सी ब्रेडल। ये सब एलक्जेण्डर क समय बलियल म प्रशिक्षक थे ग्रौर इनकी विचारधाराग्रो स प्रभावित हो जाना स्वाभाविक था। जहा कही भा उन्हान प्रत्ययवादिया स अपना सबध तोडा है प्रत्ययवादी वहा हो हमेशा आदर के साथ इनकी चर्चा करत रहे हैं। यह आदर

---

[1] इस आन्दोलन से बाहर आ जाने वाल एक उल्लखनीय दल म स शामद *गिलबट मरे तथा ग्रेफटन इलिएट स्मिथ* मुख्य हैं। एलक्जेण्डर का विश्वास है कि उनका तत्वदशन अपनो आत्मा म प्रजातान्त्रिक है। यह कहना निरथक नही होगा कि उनके आस्ट्रेलिया के मूल प्रभाव ही उन्हें तत्वदशन म परमात्मवाद के प्रति विरोध खडा करन म सहायक रहे। यह सही है कि एलेक्जेण्डर की रचनाए आस्ट्रेलिया की दाशनिक विचारधारा के विकास म सहायक रही। जिस विचार-प्रणाली का मूल स्रोत सिडनी विश्वविद्यालय के विचारक जान एण्डरसन रहे थे, वही एलक्जेण्डर के तक क प्रकृतिवादी तथा तथा यथाथवादी स्वरूप का निर्माण *करने म काफी सहायक भी रहे। जो लोग एण्डरसन की रचनाग्रो के निकटतम सम्पक* मे आए है, उनके अनुयायियो ग्रौर शिष्यो के अतिरिक्त वे यथाथवादी दशन के सर्वश्रेष्ठ प्रस्तुतीकरण का इसे एक उदाहरण मानते हैं। ज्ञान मीमासा तथा तत्वदशन सबधी उनके ठोस निबध बहुत कम गहन चिंतन से युक्त हैं (उनकी पुस्तक सूची देखें) ग्रौर वे प्राय *आस्ट्रेलियन जनल* ग्राव फिलोसोफी मे प्रकाशित होते रह हैं। द्रष्टव्य जो राइल कृत (ए जो पी म) लोजिक एण्ड प्रोफेसर एण्डरसन (1950) एव जे एल मैकी का इस सम्बन्ध म दिया गया जवाब (1951) ऐ० जे० पी० मे *तथा पासमोर लिखे गए निबध ग्रौर रिव्यू आदि म मैकी पारट्रिज, रोज वाकर, बेकर* पोमटन मेकिन्टोश आमस्ट्रोग, एव पासमूर सदश लेखको ने एलक्जेण्डर के न केवल दशन किन्तु राजनीति, सौन्दयशास्त्र एव कानून पर रह प्रभाव को व्यक्त किया है। एलक्जेण्टर के लिए देखें पी० डिवक्स कृत ले सिस्टेमे द एलेक्जेण्डर (1929), *जे० मेकार्थी कृत द नेचुरलिज्म ग्राव समुग्रल एलेक्जेण्डर (1948)।* मृत्यु आलेख देखें जे० लयड कृत (पी० बी० ए० 1938), जे० ए० मूरहेड के निबंध (फिलोसोफी 1939) जी० एफ० स्टाउट (माइण्ड 1940) ए० बोयस गिबसन (ए० जो० पी० 1938) *द फिलोसोफी ग्राव एलेक्जेण्डर शोषक स निसंगय स्टाउट क निबध* माईण्ड (1940) एच० बी० लाडनान कृत द एम्पिरिसिज्म ग्राव डा० एलेक्जेण्डर (ए०जे०पी० 1931) एव एमरनेस ग्राव सेल्फ (मोनिस्ट 1936), एलक्जण्डर कृत फिलोफिकल एण्ड लिटरेरी पीसेज का जान लयड द्वारा लिखित आमुख (1939) ए० पी० स्टियरनोट कृत गोड एण्ड स्पेस टाईम इन दि फिलोसोफी ग्राव एलेक्जेण्डर (1954)।

उन्होंने अन्य नव यथार्थवादियों के लिए कदाचित् कभी नहीं दिखाया था। यह औदार्य फिर भी कैम्ब्रिज की छींटाकशी वृत्ति से मुक्त नहीं था। जहां पर अपने छींटा लगे स्थलों को भूलकर मेक्टेगट ने यह शिकायत की थी कि स्पेस टाइम एण्ड डीटी के प्रत्येक अध्याय में हमें एक ऐसा दृष्टिकोण मिलता है, जिसे प्रोफेसर अलेक्जेण्डर को छोड़ कर कोई अन्य दार्शनिक स्वीकार नहीं करता केवल टाइम जैसी पुस्तक के प्रबल विरोधी से यह अपेक्षा करना कि वे उसके रचयिता की प्रशंसा करेंगे अमानवीय अपेक्षा ही कही जाएगी।

इसके अलावा भी एलेक्जेण्डर पर कुछ दूसरे प्रकार के प्रभाव चालू थे। नए जीव विज्ञान एवं प्रयोगात्मक मनोविज्ञान ने उनका ध्यान आकृष्ट किया था। मनोविज्ञान की सुरक्षा में स्टाउट एवं एलेक्जेण्डर दोनों ने ऑक्सफोर्ड के आलोचकों के विरुद्ध अपना संघर्ष जारी रखा था। एलेक्जेण्डर के मित्र यह निर्णय नहीं ले पा रहे थे कि उनके द्वारा किए जा रहे मनोवैज्ञानिक प्रयोगों से उन्हें खुश होना चाहिए या सचेत। यह केवल एक युवा मन का उत्साह नहीं था। स्पेस, टाइम एण्ड डीटी जितनी अनुभववादी जांच पड़ताल में खरी नहीं उतरती उतनी प्रयोगशील मनोवैज्ञानिकों के लिए उचित है। इसी प्रकार एलेक्जेण्डर की प्रारम्भिक रचना मोरल, आर्डर एण्ड प्रोग्रेस (1889) जो लेस्ली स्टीवन की परम्परा की ही एक रचना है एवं जिस पर जीवशास्त्र के सिद्धान्तों का प्रभाव है, उनकी दर्शनेतर रुचियों की ओर संकेत देती है। जीव विज्ञान के सिद्धान्तों के प्रभाव का इस पुस्तक की रचना में महत्वपूर्ण भाग रहा है।

तो भी एलेक्जेण्डर अपने आपको एक ज्ञान मीमांसक के रूप में विख्यात करना चाहते थे। और उन्होंने द बेसिस ऑव रीयलिज्म (पी० बी० ए० 1914) नामक एक दीर्घ निबंधमाला प्रकाशित करवा कर अपने ज्ञान मीमांसक होने का प्रयास किया था। इस निबंध को लिखने की तात्कालिक प्रेरणा उन्हें बोसांके के निबंध द डिस्टिंक्शन बिटवीन माइण्ड एण्ड इट्स ऑब्जेक्ट्स (1913) से मिली। इस पुस्तक में बोसांके ने यथार्थ का, प्रत्ययवाद के एक ऐसे सहयोगी के रूप में स्वागत किया है जिसे प्रत्यक्षीकरण के प्रतिनिधित्व सिद्धान्त के विरुद्ध संघर्ष करना था। जिसे सामान्यतः पर्याय के कठोर सिद्धान्त' के रूप में जाना जाता है लेकिन यथार्थवाद पर भी उनका अन्तिम उद्घोष विरोधी भाव लिए हुए था। 'इसने यह कहकर गम्भीर पाप किया था कि मन विशेष सत्ताओं के जगत् में एक विशेष सत्ता ही है।' बोसांके ने लिखा था कि मुझे मेरी चेतना की तुलना एक वस्तु से न करके एक वातावरण से करनी चाहिए। इसकी प्रकृति में हर वस्तु को अपने में शामिल करना ही है। और पदार्थों की प्रवृत्ति उससे जुड़ना ही है। मैं कभी यह नहीं कहता कि मेरा मन यहां है और पेड़ वहां है।

इसके ठीक विपरीत एलेक्जेण्डर चेतना को किन्हीं अवयवो, आकारो स उपजा हुआ तत्व मानते है। उनके समक्ष जो पेड है वह मेरी चेतना म होने जसा कदापि नही है हा, वह मेरी चेतना क समक्ष अवश्य है, इस रूप मे कि पड जसा एक पदाथ किसी सचत प्राणी के सम्मुख है इतना मैं देख सकता हू। एलेक्जेण्डर पर मूर द्वारा की गई प्रत्ययवाद की आलोचना का स्थायी प्रभाव रहा था। यद्यपि व असम्पृक्त एकेश्वरवादियो द्वारा मानसिक क्रिया के अवयवी प्रत्युत्तर म बदल दिए जाने की बात पर आकृष्ट थे तो वे 'क्रिया पदाथ विश्लेषण' को पूणत त्याग दने क लिए अपने को सतुष्ट नही कर सके। एलेक्जेण्डर को जो बात मूर की अपेक्षा परी एव होल्ट के अधिक नजदीक ले आती है वह यह है कि व मन के प्रत्यक कम को चित्कम (कॉनिशन) पदाथ का रेस्पास मानते हैं। यह पहचान की क्रिया नही होकर ऐसा चित्कम है जिसके जरिए पदाथ का ज्ञान प्राप्त किया है।[1] मानसिक क्रिया का मूलाधार किसी पदाथ की निर्जीव प्रतिलिपि कर दना मात्र नही है यह तो उन मनोवज्ञानिक अवस्थाओ पर आश्रित है जो अपने आप म एक मन प्रक्रिया प्रस्तुत करती हैं गहन एव दिशोन्मुख।

यदि यही वास्तविक स्थिति है। और ज्ञान किसी वस्तु एव मानसिक क्रिया की उपस्थिति के प्रयास के अलावा कुछ नही तो फिर बोसाके के दृष्टिकोण का हमारे लिए क्या अथ रह जाता है? एलेक्जेंडर की दृष्टि मे बोसाके के लिए जो उलझन थी वह यही कि एक वस्तु का विचार करत समय अनिवाय रूप स हम उस क्रिया पर भी विचार कर रह है जो उसे जान रही है। इससे यह निष्कष निकलता है कि क्ष नामके एक पदाथ को दखते समय क्ष मेरा दृष्टिमान न रहकर क्ष की चेतना वह दृष्टिमान हो जाती है जिसमे क्ष किसी न किसी तरह मूलाधार क रूप मे उपस्थित हो जाता है। और चूकि सीधे रूप म क्ष मरी चेतना मे है ही नही तो चेतना की परिभाषा एक एसे वातावरण के रूप मे देनी होगी जिसम वस्तुए उपस्थित रहती हैं।

एलेक्जेंडर इस बात पर कृतसकल्प हैं कि व वयक्तिक मस्तिष्को एव उनक समक्ष पदार्थों के भेद को कायम रखें। वे प्रत्ययवादियो क आधार को यह कहकर

---

[1] द्रष्टव्य उनकी कृति फाउण्डेशन्स एण्ड स्केच प्लान आव ए कोनेशनल साइकोलोजी (ब्रि० जरनल आव साइको० (1911)। एलेक्जेण्डर का विचार था कि व चित्कर्मी मनोविज्ञान स्टाउट स सीखे हैं किन्तु स्टाउट का मत उनसे उलटा था–देख ए क्रिटिसिज्म आव एलेक्जेण्डर्स थ्योरी आव माइण्ड एण्ड नालेज (ए जे पी 1944) एव प्रोफेसर एलेक्जेण्डर्स थ्योरी आव सेन्स परसेप्शन (माइण्ड 1922) शीषक स लिखे उनके निबध।

अस्वीकृत कर देते हैं कि हम कभी मानसिक क्रिया पर चिंतन नही करते । क्रियाओ पर चिंतन नही हो सकता, सिर्फ उन्हे भोगा जाता है 'जिया' जाता है । इस तरह एक पदार्थ के प्रति हमारी चेतना हमारे लिए ही चिंतन का आधार नही बन सकती । जिस पर हम विचार करते हैं वह केवल एक पदार्थ है, चाहे इसके साथ ही साथ हम उस क्रिया को भी भोगते हो जो यह विचार कर रही है ।[1] मानसिक क्रिया और उसके पदार्थ एकदम अलग अलग हैं । पदार्थों को भोगा नही जा सकता और न मानसिक क्रियाओ पर ही विचार हो सकता है । केवल एक देवता की दृष्टि मे ही, जो मनुष्यो *से बड़ी मानसिक सत्ता वाले व्यक्ति माने जाते हैं, हमारी सचेत क्रियाए पदार्थ का* रूप ग्रहण कर सकती हैं । तब वह देवता हमारी सचेत क्रिया पर इस दृष्टि से विचार कर सके कि मानो वे जिस पदार्थ से उत्पन्न है उनके साथ ही पदार्थ होकर उपस्थित भी हैं । किन्तु हम देवता नही हैं हमारे लिए मानसिक क्रिया केवल भोग्य रूप ही है एक ए जायमेंट ही है ।

एक पदार्थ को जानना उसके लिए मानसिक क्रिया का वर्तमान रहना ही है । हमारे सामने एक बहुपरिचित प्रश्न उभरता है, यदि मन के समक्ष प्रस्तुत हुए पदार्थ उसी के साथ विद्यमान होते हैं तो जैसे हैं उसी के रूप से उन्हे ग्रहण करने मे मन असफल क्यो हो जाता है ? नन का अनुसरण करते हुए एलेक्जेण्डर इस प्रश्न का यह उत्तर देते हैं कि सबसे पहले तो हम वैकल्पिक बोध एवं दोष को एक नही मानना है । हमारा मन उसी अवस्था के प्रति सचेत होता है जो उसके लिए उत्तेजना का कारण बनती है । इसके लिए सम्पूर्ण पदार्थ के प्रति उसका बोध *होना आवश्यक भी नही सम्पूर्ण पदार्थ मे से चुनी हुई वह स्थिति ही मन के साथ* वर्तमान है जो प्रस्तुत उत्तेजना का कारण रही हैं । इस तरह यह अपूर्णता अपने आप मे दोष नही है । यदि दो आदमी एक मेज को देखते हैं, एक उसकी चपटी सतह को तथा दूसरा उसके चौकोर सिरे को देखता है, तो दोनो मे से कोई भी गलती पर नहीं है जब तक कि वह यह गलती से विश्वास न करले कि उसने जो कुछ देखा है वह सम्पूर्ण मेज के लिए सही है । रोयस ने भी यही बात उठाते हुए कहा है कि किसी पदार्थ के केवल मात्र हमारी चेतना के समक्ष प्रकट हो जाना कोई दोष नही हो सकता । यदि हम एक सुदूर पहाड़ी को देखते हैं तो हमारे मन के समक्ष एक नीलापन प्रस्तुत होता है । यहा तक तो सब ठीक है । अब हम गलती उसी समय करते हैं जब हम यह नीलापन पहाड़ी का अपना

---

[1] द्रष्टव्य जान एण्डरसन कृत द नोन–एग्जिस्टेंस आव कान्शसनेस (ए जे पी 1929), सी० जे० ड्यूकास कृत इन्ट्रोस्पेक्शन, मेण्टल एक्टस एण्ड सन्सा (माइण्ड 1936) ।

मान लें। तब ऐलेक्जेण्डर के मतानुसार हम दो अलग प्रकारो के अनुभवो को एक दूसरे स उलझा रहे हैं। हम यह कल्पना कर रहे हैं कि एक पदाथ काल दिक के एक सीमित क्षेत्र मे स्थित हैं जबकि दरअसल वह उससे परे है। गलती इस बात में नही होती कि कोई अनहोनी बात हमारे समक्ष प्रस्तुत हो गई है बल्कि हमारे द्वारा सही पदार्थ को गलत स्थान पर रख देने से ही यह गलती होती है।

यही विश्लेषण सैद्धातिक रूप से अधिक जटिल अवस्थाओ के लिए भी प्रयुक्त हो सकता है। मान लो हम गलती से कागज की लाल पृष्ठभूमि म एक भूरे धब्बे को हरा कह देते हैं। इस वक्त इस कागज के आसपास भी कही हरा रग नही है, पहाडी के पास नीला रग दिखता था उस रूप म भी नही। किन्तु एलेक्जेण्डर का कथन है कि यहा महत्वपूण बात यही है कि हरा कही न कही तो विद्यमान है ही। और वह वहा एक ऐसे विस्तार म फला है जसा हम उसे एक कागज पर फला हुआ देखते हैं। देखा गया पदाथ तथा उसके साथ अन्य पदार्थों का मेल दोनो ही इस जगत म विद्यमान हैं। हम गलती उसी समय करते हैं जब हम उन्हे गलत स्थान या गलत समय म विद्यमान मानकर चलते हैं। हम कभी भी कोई सवधानवीन पदाथ रच नही सकते। एलेक्जेण्डर के यथाथवाद के आधार के रूप म उनका यह जो दोष सिद्धान्त है वही स्पेस टाइम एण्ड डीटी नामक ग्रथ मे विस्तार से वणित किया गया है। यहा उसको पूणत समझाया जाना सभव नही है इसलिए सक्षेप मे बता दिया गया है।

'बेसिस आव रीअलिज्म' म एलेक्जेण्डर ने लिखा कि यथाथवाद की प्रकृति वस्तु को पौराणिक ध्वसावशेषो से बाहर ले आना है। ससीम पदार्थों से मनुष्य एव मन दोनो को अपने सही क्रम मे स्थित करना ही यथाथवाद का उद्देश्य है। एक ओर यथाथवाद भौतिक वस्तुओ को मन के द्वारा उन पर चढा दिए रग स मुक्त करता है तो दूसरी ओर उन्हे मन की भाति अपने अस्तित्व का मौलिक रूप भी दिलवाता है। इस तरह यथाथवाद स्वाभाविक है। इसके अनुसार अन्य ससीम पदार्थों की भाति मनुष्य भी एक ससीम सत्ता है। वह अन्य ससीम पदार्थों का मालिक एव नियन्ता नही है। उनके इस प्रकार के प्रकृतिवाद का खण्डन इस आधार पर हुआ कि यह मन को अनादृत करके उसकी सम्पन्नता का अपहरण करना ही हुआ। स्पेस टाइम एण्ड डीटी म बिना अनादृत किए मन को अपने सही दर्जे म रखना ही अलेक्जेण्डर का उद्देश्य था। इस प्रयोजन के लिए उनके लिए एक उपयोगी सिद्धान्त भी उन्हे मिल गया और यह सिद्धान्त था—विकासोद्भव का सिद्धान्त (थ्योरी आव इमर्जेण्ट इवाल्यूशन)। उद्भव की धारणा कम से कम 1875 म जी० एच० ल्यूविस द्वारा लिखी पुस्तक प्रोब्लेम्स आव लाइफ एण्ड माइण्ड तक म देखा जा सकता है किन्तु इस एक विकास सिद्धान्त के रूप मे नए ढग

म प्रस्तुत करने का श्रेय एक दार्शनिक जीवशास्त्री सी० लोइड मोरगन[1] को है। लोइड मोरगन ने यन्त्रवाद एव शक्तिवाद के बीच का मध्यम मार्ग अपनाया है। यन्त्रवादी यह दिखाने म व्यस्त थे कि शरीर भौतिक रासायनिक ढाचो के अतिरिक्त और कुछ नहीं है और प्राकृतिक चुनाव के दौरान उन्हें अपनी यह वर्तमान शक्ल ग्रहण की है। शक्तिवादी के लिए इसके विपरीत शरीर में एक मौलिक शक्ति होती है और वास्तव म यही वह माध्यम होता है जिसके जरिए जीवन पूर्णता–प्राप्ति की ओर उन्मुख होता है।[2] लोइड मोरगन शक्ति सिद्धान्त को जीवशास्त्री सिद्धान्त मानने के लिए तैयार नहीं हुए। बर्गसा की काव्यात्मक प्रतिभा के प्रति पूरे आदर भाव के साथ (क्योंकि उनकी दृष्टि म बर्गसा का जीवन सिद्धान्त विज्ञानसम्मत होने की अपेक्षा काव्यात्मक अधिक था,) उन्होंने अपने ग्रन्थ इन्सटिक्ट एण्ड ऐक्स्पीरिएन्स म लिखा, डार्विन के महान् एव वास्तविक विज्ञान सम्मत सामान्यीकरणो पर प्रस्तुत उनकी आलोचना यही दिखाने म सफल हो पाई है कि उद्भव सबधी तत्व दर्शन पर तथा वैज्ञानिक व्याख्याओ म कितनी मात्रा म विचारो का आदान प्रदान एव परस्पर गुम्फन हुआ है। इन दोनो का विवाद हमारी रायो को अधा कर सकता

---

[1] उदाहरण के लिए यह बात उनकी कृति इन्सटिक्ट एण्ड एक्सपीरिएन्स (1912) में मिलती है। यद्यपि एलक्जेंडर एव मोरगन बहुत से मामलो म सहमत थे फिर भी मोरगन एक यथार्थवादी नहीं थे। उनकी दार्शनिक स्थिति के लिए द्रष्टव्य ग फिलोसोफी आव इवोल्यूशन (सी० बी० पी० 1)। उनके दार्शनिक विचारो को गिफोर्ड भाषणमाला के सग्रहीत ग्रन्थ एमरजेण्ट इवोल्यूशन (1923) म अधिक विस्तार से देखा जा सकता है एव लाइफ माइण्ड एण्ड स्पिरिट (1926) म भी देखें उनके विचार।

[2] इस प्रकार के सिद्धान्त का प्रवर्तन जिसका मूल अरस्तू म है–लाइफ एण्ड हेबिट (1877) नामक ग्रन्थ के रचयिता उपन्यासकार तथा जनवादी विचारक सैमुअल बटलर म देखा जा सकता है। यह ग्रन्थ उस समय रचा गया था जब डार्विनवाद एक नयी परम्परा बन रही थी। अपने विशेष उद्देश्यो की पूर्ति के लिए बैक टू मेथ्यूसिले ला (1921) तथा मैन एण्ड सुपरमैन (1903) नामक कृतिया म बर्नार्ड शा द्वारा इसके सिद्धान्तो की विवेचना की गई। शक्तिवाद की सर्वसिद्ध रचना बर्गसा कृत ग्रन्थ क्रीएटिव इवोल्यूशन (1907) है। इसम जीवनी शक्ति का एलान वाइटल के रूप म प्रस्तुत किया गया है। इसी विचारधारा की एक दूसरी कड़ी है दार्शनिक जीवशास्त्री हेन्स ड्राइश कृत साइन्स एण्ड फिलोसोफी आव ओरगनिज्म (1908) इसम उन्होंने एन्टेलेकीज का सिद्धान्त प्रवर्तित किया है। राजनीतिक विचारक जे० सी० स्मट्स कृत होलिज्म एण्ड इवोल्यूशन नामक ग्रन्थ भी देखें (1936)।

है तथा जीव शास्त्र के विकास का मार्ग अवरुद्ध कर सकता है। शक्ति उनके मतानुसार एक वैज्ञानिक प्राक्कल्प नहीं है, यह एक तत्वदर्शन है। यह विकास के स्रोत का सिद्धान्त है। इसमें विकास प्रक्रिया का विवरण नहीं है। इससे भिन्न विकासोद्भव के सिद्धान्त में विकास के दौरान हुई घटनाओं पर प्रक्रियाओं का वास्तविक विवरण है। यह विवरण ऐसी यान्त्रिकता का भी समाहार करता चलता है जिसके अनुसार यह माना गया है कि जीवन्त प्रक्रियाएं केवल मात्र भौतिक रासायनिक प्रक्रियाएं हैं। एक सच्चे विकास में जो दैनिक रूप से घटित होने वाले कार्यों से भिन्न है मोरगन के अनुसार उसके प्रमेयों में कुछ न होकर बहुत कुछ उसके निष्कर्षों में विद्यमान रहता है। दूसरे शब्दों में परिणत प्रक्रिया कभी भी उन अवस्थाओं से अलग नहीं होती जिससे उसका विकास हुआ है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि व्यापारक्रियाएँ (जैसे चेतना) भौतिक-रासायनिक प्रक्रियाओं से विकसित हो सकती हैं और यह आवश्यक नहीं कि उन्हें प्रक्रिया में वापस बदला जा सके।

विकासोद्भव का यह सिद्धान्त ऐलेक्जेण्डर के ग्रन्थ स्पेस टाइम एण्ड डीटी का ढांचा तैयार करने का कारण रहा। यह अद्भुत ही है कि एक जीवशास्त्री द्वारा जीव विज्ञान संबंधी आविष्कृत किया गया एक सिद्धान्त तत्वदर्शन के रूप में काम में आए। तत्वदर्शन को बहुधा अति वैज्ञानिक जांच पड़ताल के रूप में देखा गया है जिसमें यदि विज्ञान पर उसकी श्रेष्ठता नहीं रही हो तो कम से कम वहां उसकी सीमा से तो बाहर जाना ही पड़ता है। किन्तु एलेक्जेण्डर के लिए तत्वदर्शन स्वयं एक विज्ञान है और भौतिकी से उसका इतना ही अन्तर है कि उसमें अधिक बोधगम्यता है। यद्यपि प्रकृति विज्ञान से इसकी प्रणाली में भेद है तो भी इसके निष्कर्षों का वैज्ञानिक निष्कर्षों से मेल खाना आवश्यक है। और वैज्ञानिक अन्वेषणों से इसमें काफी सहायता मिल सकती है। इसकी विषय वस्तु भी बहुत से विज्ञान क्षेत्रों में प्रयुक्त दिक्, काल एवं वस्तु अवस्थाएं ही हैं। दिक् एवं काल सर्वप्रथम आते हैं। यह कहना कोई बड़ी बात नहीं है कि दर्शन की सभी मूलभूत समस्याएं अपने हल के लिए समय एवं दिक् की समस्याओं के हल पर ही आश्रित हैं और मूलतः इस बात में निहित हैं कि ये दोनों परस्पर किस भांति जुड़े हैं। दार्शनिकों ने अधिकांश समय को अधिक महत्व नहीं दिया है। वर्तमान दार्शनिकों में यह बात ब्रेडले एवं मेक्टेगर्ट में विशेष रूप से देखी जा सकती है और अधिकांश मात्रा में रसल के लिए भी यह बात सही है। रसल ने लिखा है कि इस बात में कुछ तथ्य तो है कि समय सत्य की एक महत्वपूर्ण व कृत्रिम अवस्था तो है ही। वर्तमान के समान ही भूत एवं भविष्य को भी सत्य मानना चाहिए और समय के चंगुल से मुक्त होना दार्शनिक विचार के लिए आवश्यक ही है। कोई भी दार्शनिक जो दर्शन को तर्क से देखता है इस प्रकार की बात कहे तो आश्चर्य नहीं। यह तो स्पष्ट है कि अभिप्रेत (इम्प्लीकेशन) केवल सामयिक संबंध मात्र नहीं है और सत्य जिसका तर्कशास्त्र अध्ययन करता

है, शाश्वत है। इसके विपरीत यह बात देखी जा सकती है कि एलेक्जेण्डर के लिए सत्य सापेक्ष है। सत्य भिन्न भिन्न है और रूढ होते होते असत्य भी हो जाते है। सत्य होने का अर्थ है सामाजिक मन द्वारा स्वीकृति प्राप्त करना और वह मन जिस बात को स्वीकारता है वह समय समय पर बदलता जाता है।[1] और जहा अनुमान का प्रश्न है जिसे प्रत्ययवादियो की भाति वे तर्कशास्त्र का विषय मानते है उनके अनुसार वह स्पष्ट ही इस धारणा को गलत सिद्ध करना है कि सत्य केवल यथार्थ ही नही है किन्तु मन के साथ उसका एकीकरण भी है। क्योकि अनुमान से ही वाक्यो की एक प्रणाली मे बदला जा सकता है और प्रणाली और सगति अपने आपमे सत्य का अग नही है केवल मन के साथ अपने सबधों के कारण ही उनका स्थान स्वीकार किया जा सकता है। इस तरह अब न तो सत्य ही और न तार्किक सबध सूचक ही शाश्वत है। एलेक्जेंडर अब पूर्ण मनोयोग से समय पर गभीरता पूर्वक विचार कर रहे हैं।

बर्गसाँ ने उनसे पूर्व समय का पुन स्थापन करने का विचार किया था। किन्तु एलेक्जेण्डर की दृष्टि मे बर्गसाँ ने समय के काल को केवल उजागर किया था और वह दिक की कीमत पर। और अपनी इस प्रक्रिया ने काल के विचार को पूर्णत रहस्यमय बनाकर छोड दिया था। इस सदर्भ मे बर्गसाँ एव एलेक्जेण्डर का पारस्परिक विरोध पूर्ण हो गया। बर्गसाँ का दर्शन समय को दिकीय सीमाओं मे बाधने के विरुद्ध एक प्रबल आवाज थी जबकि एलेक्जेण्डर का कहना है कि उसकी व्याख्या केवल उसी प्रकार से हो सकती है यद्यपि बर्गसाँ की तरह वे यह तो स्वीकारते हैं कि दिक की धारणा भी कालगत सीमाओ के जरिए होनी चाहिए। वास्तव मे न तो काल और न दिक् ही अपने आप समझे जा सकने योग्य हैं। प्रत्येक का बोध दूसरे के सदर्भ से ही हो सकता है और इस तरह उस विचार को काल दिक, विचार का ही एक अङ्ग मानना चाहिए।[2]

---

[1] इस बिन्दु पर एलेक्जेण्डर, ड्यूई एव मार्क्स की विचारधारा के बहुत नजदीक है और काफी दूर जाकर वे हीगल के समान भी लगते हैं। द्रष्टव्य पी० एच० पट्रिज कृत द सोशल थ्योरी आव ट्रुथ (ए० जे० पी० 1939)।

[2] इससे मिलते जुलते ही एक सिद्धान्त की रचना मे मिंकावस्की तथा आइंस्टीन जैसे भौतिक शास्त्री लगे थे। किन्तु एलेक्जेण्डर का काल दिक सम्बन्धी सिद्धान्त उनके स्वतन्त्र तत्ववादी विवेचन का परिणाम था। वे भौतिक शास्त्र का अवलम्बन प्राप्त करके प्रसन्न थे किन्तु उन्होने कभी भी भौतिक सिद्धान्तो का उपयोग नही किया। और न वे सब भौतिकी के नियमो को पूर्णत स्वीकार ही करते थे। एलेक्जेण्डर मे ही हम एक साथ काल दिक् सम्बन्धी दो धारणाओ को विकसित होते देख

एलेक्जेण्डर इस बात को आवश्यक नही मानते कि वे यह बताए कि कैसे काल और दिक अपने आप मे बोधगम्य नही हैं। उनके सबध मे दिए जाने वाले नकारात्मक तर्कों मे वे ब्रेडले एव मेक्टेगट का अनुसरण करने को तैयार थे। विशुद्ध काल को एक साथ विद्यमान एव अनुवर्ती रहना होता है। किन्तु इस तरह उन्होने उपयुक्त लोगो की भांति समय को असत्य नही माना।

हमारे अनुभव मे हम इसका साक्षात्कार करते है। और एलेक्जेण्डर का कथन है, जैसा हम उसे वहा पाते हैं वैसा ही उसका वर्णन हमे करना चाहिए। उस अनुभव मे कभी विशुद्ध समय विद्यमान नही होता। हमारा अनुभव काल दिकीय होता है। हमारे ठोस अनुभव मे हम जिस क्रम को देखते हैं वह एक स्थान को निरन्तर घेरता हुआ क्रम है। जिस दिक् को हम विचार का आधार मानते हैं, वह कोई अलग सत्ता नही है किन्तु अलग अलग अवसरों पर विभिन्न प्रकार से पूरित हो जाती है। एक बार हम इन तथ्यो को जानलें काल दिक के इन विरोधाभासो से परिचित हो लें तो ये अपना आतंक हम पर अधिक लाद नही सकेंगे।

काल एव दिक सबधी आम दृष्टिकोण से वे दो जुड़वा सदूकें हैं जिनमे वस्तुए विचरण करती हैं। सदूक सिद्धान्त' की प्रतिक्रिया मे दार्शनिको ने काल का तादात्म्य सामयिक क्रम से किया है और दिक का दिकीय सहअस्तित्व से। किन्तु काल-दिक का सापेक्ष सिद्धान्त एलेक्जेण्डर की दृष्टि मे इस तथ्य की अवहेलना करता है कि इन सबधो मे प्रयुक्त मन अपने आप मे काल-दिकीय है और इस तरह एक अनन्त गोलमाल प्रस्तुत हो जाता है क्योकि इस तरह काल दिकीय सबधो को आगे की इकाई मे प्रकट नही किया जा सकता। इसके अतिरिक्त एक आपत्ति और है जो उन्हे तत्त्वदर्शन के बहुत करीब ले आती है वह यह कि अन्य पदावस्थाओ की भांति सबध सूचको का बोध भी उसी समय होता है जब उनकी व्याख्या काल-दिकीय आधार पर की जाए। काल-दिक के सबध मे सबधसूचक का प्रयोग करना आवलम्बन के सही क्रम को उलट देना ही होगा।

एलेक्जेडर काल दिक सबधी एक तीसरा ही दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं। उनके अनुसार यही वह अभिधान (स्टफ) है, जिसमे से वस्तुएँ प्रकटती हैं (चूंकि

सकते हैं–एक सापेक्षिक तथा दूसरी उससे भिन्न। विशेषकर इस सम्बन्ध मे देखें ए० ई० मर्फी कृत एलेक्जेण्डर्स मेटाफिजिक्स आव स्पेस-टाइम (मोनिस्ट 1927)। स्पेस टाइम एण्ड डीटी पर लिखे गए सी० डी० ब्राड के निबन्ध (माइण्ड 1921) उसके साथ एलेक्जेण्डर का उत्तर सम एक्सप्लेनेशन्स नामक निबन्ध मे देखें। जी० डाउस हिक्स को (हिबर्ट जर्नल 1921), आर० पी० हाल्डेन को (नेचर 1920) एव डी० एमेट का टाइम इज द माईण्ड आव स्पेस (फिलोसोफी 1950) मे देखें।

पदाथ काल दिक के अनुक्रम म है इसलिए यहाँ अभिधान का पिकविकी सदम ही स्मरण म आता है) यह सरलता स समझ म आने वाला सिद्धान्त नही है और न एलक्जेंडर द्वारा प्रस्तुत स्पष्टीकरण एव व्याख्याए उनक पाठका की कठिनाइयो का हल प्रस्तुत कर पाए हैं। कदाचित वे जो कुछ कहना चाहते हैं उसे दूसरे ढग से अधिक स्पष्ट किया जा सकता है काल दिक का विशुद्ध गति (प्योर मोशन) स तादात्म्य है। यह कहना कि काल दिक एक ऐस अभिधान हैं जिनसे वस्तुए प्रकटती हैं यह मानना होगा कि वस्तु गतियो का जटिल रूप है। गति उन बिन्दुओ का पूरक है जो अनुक्रम से वतमान रहती हैं और घटनाओ के क्रम के द्वारा बिन्दुओ का पुराव हो वह अवस्था है जिसे वास्तव मे एलेक्जेंडर महोदय काल दिक् मानते हैं। व अन्तरिम अभिधान को काल दिक कहने की अपेक्षा प्रसन्नतापूवक गनि कहना पसन्द करगे। हमारे लिए फिर भी काल दिक की धारणा से स्वतत्र एक एमे विचार को स्वीकार करना जरा कठिन ही क्यो न हो कि गति एक सवव्यापी सत्ता है। एलेक्जेण्डर का तत्व दशन कई अर्थों म हेरेक्लाइटस स मेल खाता हुआ है। यह समष्टि पूणत ऐतिहासिक है और गति का एक जीवन्त दृश्य है।[1] उनके लिए काल–दिकीय ब्रह्माण्ड अपनो प्रकृति से ही विकासशील ब्रह्माण्ड है। यही यह बिन्दु हैं जो एलेक्जेण्डर के काल दिक का सिद्धान्त–केन्द्र है। और यही पर विकासोद्भव के सिद्धान्त से उसका मेल बठता है।

स्पेस टाइम एण्ड डोटी क जिस अश पर स्वय एलेक्जेंण्डर को गव हैं वह है आव द केटेगरीज शीषक से लिखी गई बुक ''II जसा कि हमने देखा है, वे पदावस्थाओ को वस्तुओ का उलटा रूप मानते हैं। यह विपयय व्याख्या की अपेक्षा रखता है। यह इस तथ्य से प्रकटता है कि पदावस्थाए वे अवस्थाए हैं और मूल अभिधान के वे नियामक तत्व हैं, जो काल दिक का निर्माण करते हैं। वे प्रत्येक वस्तु म हैं क्योंकि काल दिक से ही प्रत्येक वस्तु निर्मित होती है।

हम उनकी प्रणाली का दो अवस्थाओ के सदभ से उद्घृत कर सकते हैं। इन अवस्थाओ ने पहले ही हमारा ध्यान अन्य सदर्भों के दौरान खीचा है, समष्टिभाव एव सम्बन्ध सूचक। उनका कहना है कि कही न तो कोई समष्टि है और न व्यष्टि। प्रत्येक वस्तु एक व्यक्ति (इण्डिविजुअल) है, अर्थात् वह समष्टि भी है और व्यष्टि भी। यह उन मामलो मे व्यष्टि है जिनमे वह दूसरी वस्तुओ से जो अपनी रचना म

---

[1] विशेषत द्रष्टव्य, एलेक्जेण्डर का निबध हिस्टोरिसिटी आव थिंग्स (फिलोसोफी एण्ड हिस्ट्री म–सम्पादक क्लिबेंस्की एव एच० जे० पटन 1936)। यह कई दृष्टियों से एलेक्जेण्डर के तत्वदशन का उपयोगी विवरण है और स्पेस टाइम एण्ड डीटी की सी जटिलताओं से यह मुक्त है।

एलेक्जेण्डर इस बात को आवश्यक नही मानते कि वे यह बताए कि कैसे काल और दिक अपने आप मे बोधगम्य नही हैं। उनके सबध मे दिए जाने वाले नकारात्मक तर्कों मे वे ब्रेडले एव मक्टेगट का अनुसरण करने को तयार थे। विशुद्ध काल को एक साथ विद्यमान एव अनुवर्ती रहना होता है। किन्तु इस तरह उन्होने उपयुक्त लोगो की भाति समय को असत्य नही माना।

हमारे अनुभव मे हम इसका साक्षात्कार करते है। और एलेक्जेण्डर का कथन है, जैसा हम उसे वहा पाते हैं वैसा ही उसका वर्णन हमे करना चाहिए। उस अनुभव मे कभी विशुद्ध समय विद्यमान नही होता। हमारा अनुभव काल दिकीय होता है। हमारे ठोस अनुभव मे हम जिस क्रम को देखते हैं वह एक स्थान को निरन्तर घेरता हुआ क्रम है। जिस दिक् को हम विचार का आधार मानते हैं, वह कोई अलग सत्ता नही है, किन्तु अलग अलग अवसरों पर विभिन्न प्रकार से पूरित हो जाती है। एक बार हम इन तथ्यो को जानलें काल दिक के इन विरोधाभासो से परिचित हो लें तो ये अपना आतक हम पर अधिक लाद नही सकेंगे।

काल एव दिक सबधी आम दृष्टिकोण से, वे दो जुडवा सदूकें हैं जिनमे वस्तुए विचरण करती हैं। 'सदूक सिद्धान्त' की प्रतिक्रिया मे दार्शनिको ने काल का तादात्म्य सामयिक क्रम से किया है और दिक का दिकीय सहअस्तित्व से। किन्तु काल–दिक का सापेक्ष सिद्धान्त एलेक्जेण्डर की दृष्टि मे इस तथ्य की अवहेलना करता है कि इन सबधो मे प्रयुक्त मन अपने आप मे काल–दिकीय है और इस तरह एक अनन्त गोलमाल प्रस्तुत हो जाता है क्योकि इस तरह काल-दिकीय सबधो को आगे की इकाई मे प्रकट नही किया जा सकता। इसके अतिरिक्त एक आपत्ति और है जो उन्हे तत्त्वदर्शन के बहुत करीब ले आती है वह यह कि अन्य पदावस्थाओ की भाति सबध सूचको का बोध भी उसी समय होता है जब उनकी व्याख्या काल–दिकीय आधार पर की जाए। काल–दिक के सबध मे सबधसूचक का प्रयोग करना आवलम्बन के सही क्रम को उलट देना ही होगा।

एलेक्जेडर काल दिक सबधी एक तीसरा ही दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं। उनके अनुसार यही वह अभिधान (स्टफ) है, जिसमे से वस्तुए प्रकटती हैं (चूकि

सकते हैं–एक सापेक्षिक तथा दूसरी उससे भिन्न। विशेषकर इस सम्बन्ध मे देखें ए० ई० मर्फी कृत एलेक्जेण्डर्स मेटाफिजिक्स आव स्पेस–टाइम (मोनिस्ट 1927)। स्पेस टाइम एण्ड डीटी पर लिखे गए सी० डी० ब्राड के निबन्ध (माइण्ड 1921) उसके

पदाथ काल दिक के अनुक्रम म है इसलिए यहाँ अभिधान का पिकविकी सदभ ही स्मरण म आता है) यह सरलता से समझ म आने वाला सिद्धान्त नही है और न एलक्जेंडर द्वारा प्रस्तुत स्पष्टीकरण एव व्याख्याए उनक पाठका को कठिनाइयो का हल प्रस्तुत कर पाए हैं। कदाचित वे जो कुछ कहना चाहते हैं उसे दूसरे ढग से अधिक स्पष्ट किया जा सकता है काल दिक का विशुद्ध गति (प्योर मोशन) से तादात्म्य है। यह कहना कि काल दिक एक ऐसे अभिधान हैं जिनसे वस्तुए प्रकटती हैं यह मानना होगा कि वस्तु गतियो का जटिल रूप है। गति उन बिन्दुओ का पूरक है जो अनुक्रम से वतमान रहती हैं और घटनाओ के क्रम के द्वारा बिन्दुओ का पुराव ही वह अवस्था है, जिसे वास्तव म एलेक्जेंडर महोदय काल दिक् मानते हैं। व अन्तरिम अभिधान को काल दिक कहने की अपेक्षा प्रसन्नतापूवक गति कहना पसन्द करेंगे। हमारे लिए फिर भी काल दिक की धारणा से स्वतत्र एक ऐसे विचार को स्वीकार करना जरा कठिन ही क्यो न हो कि गति एक सवव्यापी सत्ता है। एलेक्जेंण्डर का तत्व दशन कई अर्थों म हेरेक्लाइटस स मेल खाता हुआ है। यह समष्टि पूणत ऐतिहासिक है और गति का एक जीवन्त दृश्य है।[1] उनके लिए काल–दिकीय ब्रह्माण्ड अपनी प्रकृति से ही विकासशील ब्रह्माण्ड है। यही वह बिन्दु हैं जो एलेक्जेण्डर के काल दिक का सिद्धान्त–केन्द्र है। और यही पर विकासोद्भव के सिद्धान्त से उसका मेल बठता है।

स्पेस टाइम एण्ड डीटी क जिस अंश पर स्वय एलेक्जेंण्डर को गव हैं वह है आव द कैटेगरीज शीषक से लिखी गई बुक ''II जसा कि हमने देखा है, वे पदावस्थाओ को वस्तुओ का उलटा रूप मानते हैं। यह विपयय व्याख्या की अपेक्षा रखता है। यह इस तथ्य से प्रकटता है कि पदावस्थाए वे अवस्थाए हैं और मूल अभिधान के वे नियामक तत्व हैं जो काल दिक का निर्माण करते हैं। वे प्रत्यक वस्तु म हैं क्योंकि काल दिक से ही प्रत्येक वस्तु निर्मित होती है।

हम उनकी प्रणाली को दो अवस्थाओ के सदभ स उद्धृत कर सकते हैं। इन अवस्थाओ ने पहले ही हमारा ध्यान अन्य सदर्भों के दौरान खीचा है, समष्टिभाव एव सम्बन्ध सूचक। उनका कहना है कि कही न तो कोई समष्टि है और न व्यष्टि। प्रत्येक वस्तु एक व्यक्ति (इण्डिविजुअल) है, अर्थात् वह समष्टि भी है और व्यष्टि भी। यह उन मामलो म व्यष्टि है जिनम वह दूसरी वस्तुओ से जो अपनी रचना म

---

[1] विशेषत द्रष्टव्य, एलेक्जेण्टर का निबध हिस्टोरिसिटी आव थिंग्स (फिलोसोफी एण्ड हिस्ट्री म–सम्पादक क्लिबान्स्की एव एच० जे० पटन 1936)। यह कई दृष्टियों से एलेक्जेण्डर के तत्वदशन का उपयोगी विवरण है और स्पेस टाइम एण्ड डीटी की सी जटिलताओ से यह मुक्त है।

एलेक्जेण्डर इस बात को आवश्यक नही मानते कि वे यह बताए कि क्स काल और दिक अपने आप मे बोधगम्य नही हैं। उनके सबध म दिए जान वाले नकारात्मक तर्कों मे वे ब्रेडले एव मेकटेगट का अनुसरण करने को तयार थ। विशुद्ध काल को एक साथ विद्यमान एव अनुवर्ती रहना होता है। किन्तु इस तरह उन्होने उपयु क्त लोगो की भाति समय को असत्य नही माना।

हमारे अनुभव मे हम इसका साक्षात्कार करते हे। और एलेक्जेण्डर का कथन हैं, जैसा हम उसे वहा पाते हैं वसा ही उसका वणन हम करना चाहिए। उस अनुभव मे कभी विशुद्ध समय विद्यमान नही होता। हमारा अनुभव काल दिकीय होता है। हमारे ठोस अनुभव म हम जिस क्रम को देखते हैं वह एक स्थान को निरन्तर घेरता हुआ क्रम है। जिस दिक् को हम विचार का आधार मानते हैं, वह कोई अलग सत्ता नही है किन्तु अलग अलग अवसरो पर विभिन्न प्रकार से पूरित हो जाती है। एक बार हम इन तथ्यो को जानलें काल दिक के इन विरोधाभासो स परिचित हो लें तो ये अपना आतक हम पर अधिक लाद नही सकेंगें।

काल एव दिक सबधी आम दृष्टिकोण से, वे दो जुडवा सदूकें हैं जिनम वस्तुए विचरण करती हैं। सदूक सिद्धान्त' की प्रतिक्रिया म दाशनिको ने काल का तादात्म्य सामयिक क्रम से किया है और दिक का दिकीय सहअस्तित्व स। किन्तु काल–दिक का सापेक्ष सिद्धा त एलेक्जेण्डर की दृष्टि मे इस तथ्य की अवहेलना करता ह कि इन सबधो मे प्रयुक्त मन अपने आप म काल–दिकीय ह और इस तरह एक अनन्त गोलमाल प्रस्तुत हो जाता है क्योकि इस तरह काल दिकीय सबधो को आगे की इकाई मे प्रकट नही किया जा सकता। इसके अतिरिक्त एक आपत्ति और ह जो उन्ह तत्वदशन के बहुत करीब ले आती ह वह यह कि अ य पदावस्थाओ की भाति सबध सूचको का बोध भी उसी समय होता ह जब उनकी व्याख्या काल–दिकीय आधार पर की जाए। काल–दिक के सबध मे सबधसूचक का प्रयोग करना आवलम्बन के सही क्रम को उलट देना ही होगा।

एलेक्जेडर काल दिक सबधी एक तीसरा ही दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं। उनके अनुसार यही वह अभिधान (स्टफ़) है, जिसम से वस्तुएं प्रकटती हैं (चू कि

सकते हैं–एक सापेक्षिक तथा दूसरी उससे भिन्न। विशेषकर इस सम्बन्ध म देखें ए० ई० मर्फी कृत एलेक्जेण्डस मेटाफिजिक्स आव स्पेस–टाइम (मोनिस्ट 1927)। स्पेस टाइम एण्ड डीटी पर लिखे गए सी० डी० ब्रॉड क निबन्ध (माइण्ड 1921) उसके साथ एलेक्जेण्डर का उत्तर सम एक्स्प्लेनेशन्स नामक निबन्ध मे देखें। जी० डाउस हिक्स को (हिबट जनल 1921), आर० पी० हाल्डेन को (नेचर 1920) एव डी० एमेट को टाइम इज द माईण्ड आव स्पेस (फिलोसोफी 1950) मे देखें।

पदार्थ काल दिक के अनुक्रम में हैं इसलिए यहाँ अभिधान का पिकविकी संदर्भ ही स्मरण में आता है) यह सरलता से समझ में आने वाला सिद्धान्त नहीं है और न एलक्जेंडर द्वारा प्रस्तुत स्पष्टीकरण एवं व्याख्याएं उनके पाठकों की कठिनाइयों का हल प्रस्तुत कर पाए हैं। कदाचित वे जो कुछ कहना चाहते हैं उसे दूसरे ढंग से अधिक स्पष्ट किया जा सकता है काल दिक का विशुद्ध गति (प्योर मोशन) से तादात्म्य है। यह कहना कि काल दिक् एक ऐसे अभिधान हैं जिनसे वस्तुएं प्रकटती हैं यह मानना होगा कि वस्तु गतियों का जटिल रूप है। गति उन बिन्दुओं का पूरक है जो अनुक्रम से वर्तमान रहती हैं और घटनाओं के क्रम के द्वारा बिन्दुओं का पुराव ही वह अवस्था है जिसे वास्तव में एलेक्जेंडर महोदय काल दिक मानते हैं। वे अन्तरिम अभिधान को काल दिक कहने की अपेक्षा प्रसन्नतापूर्वक गति कहना पसन्द करेंगे। हमारे लिए फिर भी काल दिक् की धारणा से स्वतन्त्र एक ऐसे विचार को स्वीकार करना जरा कठिन ही क्यों न हो कि गति एक सर्वव्यापी सत्ता है। एलेक्जेंडर का तत्व दर्शन कई अर्थों में हरेक्लाइटस से मेल खाता हुआ है। यह समष्टि पूर्णतः ऐतिहासिक है और गति का एक जीवन्त दृश्य है।[1] उनके लिए काल-दिकीय ब्रह्माण्ड अपनी प्रकृति से ही विकासशील ब्रह्माण्ड है। यही वह बिन्दु हैं जो एलेक्जेण्डर के काल दिक का सिद्धान्त-केन्द्र है। और यही पर विकासोद्भव के सिद्धान्त से उसका मेल बैठता है।

स्पेस टाइम एण्ड डीटी के जिस अंश पर स्वयं एलेक्जेंण्डर को गर्व हैं वह है आव द केटेगरीज शीर्षक से लिखी गई बुक 'II। जैसा कि हमने देखा है, वे पदावस्थाओं को वस्तुओं का उलटा रूप मानते हैं। यह विपर्यय व्याख्या की अपेक्षा रखता है। यह इस तथ्य से प्रकटता है कि पदावस्थाएं वे अवस्थाएं हैं और मूल अभिधान के वे *नियामक तत्व हैं जो काल दिक का निर्माण करते हैं।* वे प्रत्येक वस्तु में हैं क्योंकि काल दिक से ही प्रत्येक वस्तु निर्मित होती है।

हम उनकी प्रणाली को दो अवस्थाओं के संदर्भ से उद्घृत कर सकते हैं। इन अवस्थाओं ने पहले ही हमारा ध्यान अन्य संदर्भों के दौरान खींचा है, समष्टिभाव एवं सम्बन्ध सूचक। उनका कहना है कि कहीं न तो कोई समष्टि है और न व्यष्टि। प्रत्येक वस्तु एक व्यक्ति (इंडिविजुअल) है अर्थात् वह समष्टि भी है और व्यष्टि भी। यह उन मामलों में व्यष्टि है जिनमें वह दूसरी वस्तुओं से जो अपनी रचना में

---

[1] विशेषतः द्रष्टव्य एलेक्जेण्डर का निबंध *हिस्टोरिसिटी आव थिंग्स* (फिलोसोफी एण्ड हिस्ट्री में-सम्पादक क्लिबेंस्की एवं एच० जे० पटन 1936)। यह कई दृष्टियों से एलेक्जेण्डर के तत्वदर्शन का उपयोगी विवरण है और स्पेस टाइम एण्ड डीटी की सी जटिलताओं से यह मुक्त है।

सामान्य रूप मे आकर स्थिति हो जाती है, भिन्न हैं। इसका समष्टिभाव इस बात मे निहित है कि रचना की वैसी ही योजना की पुनरावृत्ति अन्यत्र हुई है। चाहे इस पुनरावृत्ति मे उन्हे ससीम पदार्थों का सयोग रहा हो, जैसे एक काच का गोला जमीन मे लुढ़कते वक्त अपना वही आकार कायम रखता है या वह भिन्न ससीम पदार्थों के सयोग से हुई हो जैसे कि एक थैले मे रखे काच के गोले एक ही प्रकार का आकार रखते हैं। पुनरावृत्ति की यह सम्भावना काल दिक की एकरूपता के विद्यमान होने से ही प्रकटती है जो एक वस्तु की अपनी रचना का वही योजना-क्रम कायम रखते हुए अपना स्थान बदलने मे सहायता करती है। इस सदर्भ मे समष्टि भाव का प्रसग उठाने का सीधा सादा अर्थ काल दिकीय एकरूपता की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करना हुआ। इसके अतिरिक्त ऐसी योजना घटना क्रम के सामान्य व्यवहार के कारण ही प्रकटती है। अलेक्जेंडर के अनुसार समष्टिभाव प्लेटो के आकार की भाति अपरिवर्तनशील अक्षर एव अनन्त नही है, किन्तु गति मे प्रकट रूपाकार (पटर्न) हैं, समय सधर्मी हैं।

उसी प्रकार सम्बन्धसूचक भी अपने आप मे मूलत काल-दिकीय हैं। एलेक्जेण्डर सम्बन्ध सूचक की परिभाषा ऐसी सम्पूर्ण स्थिति मे करते हैं जिनमे उसके विभिन्न पद उस सम्बन्ध सूचक के कारण प्रकट हो सकते हैं। इस प्रकार एक मातृक सबध ऐसी क्रियाओ की इकाई है जो मा और बच्चे के परस्पर सबध को व्यक्त करती है। वह मा और बच्चे के बीच सयोग उत्पन्न करता है। या दोनो के बीच किसी प्रकार के व्यवहार के विद्यमान रहने का सकेत देता है। इस प्रकार एक सबध सूचक एक ठोस पूरक है, पदो के मध्य रही अस्पष्ट शृखला नही। एलेक्जेण्डर की दृष्टि मे वे पदो से बहुत अधिक महत्वपूर्ण है। लडाई के वक्त मे यद्यपि हम जानते हैं कि ऐसे सघर्ष मे मनुष्य जूझते हैं हम लडाई की घटना को ही स्पष्ट रूप से देख पाते हैं और एक व्यक्ति की गणना नही करते। किन्तु ये तो विस्तृत चर्चा के मामले हैं। एलेक्जेण्डर की दृष्टि मे महत्वपूर्ण बिन्दु तो यह है कि एक सबध-सूचक काल-दिकीय तत्वो के बीच रहा एक काल-दिकीय आदान प्रदान ही हैं। इस आदान प्रदान की कोई सार्थकता अथवा कोई दिशा तो होनी ही है। इसी बात को दूसरी तरह से कहे तो कहना होगा कि गति की प्रणाली के बीच गुजरते हुई गतियो को सम्बन्ध सूचक कहा जा सकता है। इसी बात को इसी ढग से प्रस्तुत करें तो कहेगे कि गति प्रणाली के बीच गुजरती हुई गतियो का ही सबध सूचक कहा जा सकता है।[1]

---

[1] एलेक्जेण्डर के सबधों के सिद्धान्त की बुनावट के बहुत से धागे है जिन्हें इस प्रकार के सक्षिप्त विवरण मे देखा नही जा सकता। इससे अधिक सतोषप्रद विवरण के लिये देखे, मर्फी द्वारा मोनिस्ट मे लिखे गये निबध।

केटेगरीज से एलेक्जेण्डर, 'द आर्डर एण्ड प्रोब्लम्स आफ एम्पिरिकल एग्जिस्टेंसेस" शीर्षक वाले बुक III वाले भाग में आते हैं—जिसे उनके बहुत से आलोचक स्पेस, टाइम एण्ड डीटी का सबसे अधिक उपयोगी अंश मानते हैं। अभी तक तो यही कहा गया है कि एक वस्तु के अनुभवजन्य गुण उसकी अन्तर्निहित गति के साथ जुड़े हैं। किन्तु सह सम्बन्ध की धारणा असाध्य रूप से भ्रामक है। समस्या इसमें अधिक सही रूप देने की है। इसका सूत्र हम मन और शरीर के पारस्परिक सम्बन्ध से प्राप्त कर सकते हैं।

यह एक अप्रत्याशित सुझाव है। बहुत से दार्शनिकों से तो मन या शरीर' के सम्बन्ध में समस्या को अधिक उलझते हुए ही पाया है। एलेक्जेण्डर उनसे सहमत नहीं है। पर्यवेक्षण एवं चिन्तन इस बात को बहुत स्पष्ट बना देते हैं कि कुछ ऐसी प्रक्रियाएं जो विशिष्टतः चैतन्य हैं वे भी उन्हीं स्थानों और उसी समयावधि में घटित होती हैं जो जीवित शरीर की जटिलतम क्रियाओं के प्रकटीकरण के दौरान उन स्थानों एवं समयावधि में घटती हैं। तब मन शरीर का सह सम्बन्ध इस बात पर निहित है, जो प्रक्रियाएं हमें अपने अन्तर्जगत् में घटित होती हुई मालूम पड़ती हैं, ठीक वैसी ही प्रक्रियाएं नाड़ी-संस्थान के बहिर्जगत् में घटित होती हुई देखी जा सकती हैं।

एक खास प्रकार की शारीरिक प्रक्रियाएं इस तरह एलेक्जेण्डर की दृष्टि में चैतन्य प्रक्रियाएं हैं। विकासक्रम की शब्दावलि में चेतना की परिभाषा यह कह कर दी जाती है कि वह जीवन्त प्रक्रियाओं के विकास की एक विशिष्ट बिन्दु पर प्रकट हुई प्रक्रिया है। भौतिक विज्ञान का कोई भी ज्ञान हमें वास्तविक अनुभव के प्रकट होने से पूर्व यह बताने में सफल नहीं होगा कि किस प्रकार की प्रक्रिया का प्रादुर्भाव हो रहा है। यद्यपि प्रादुर्भाव के बाद भौतिक प्रक्रिया में प्रकटी चैतन्य प्रक्रिया की मात्रा का निर्धारण हम निश्चय ही कर सकते हैं। भौतिक प्रक्रियाओं में प्रकटने वाली चेतना को विकास क्रम में एक निर्वचनीय गुण वाली नई अवस्था का नाम दिया जा सकता है।

गुणावस्था के इस सूत्र पर विचार करते हुए ही एलेक्जेण्डर 'उद्भव' के सामान्य रूप का वर्णन करते हैं। जब कालदिक् या गति जटिलता के खास [illegible] शमान को प्राप्त हो जाते हैं तो गुणों का प्रादुर्भाव होता है। सर्व प्रथम तथाकथित प्राथमिक गुण प्रकटते हैं—जैसे कद शक्ल अंग ये सब पदावस्थाओं के अनुभवजन्य रूप हैं। तब माध्यमिक गुण जैसे रंग और ये प्राथमिक गुण से उसी प्रकार सम्पृक्त होने हैं जैसे मन, शरीर से। तब जीवन्त प्रक्रिया का प्रादुर्भाव होता है। तब मन और दैवी चेतना। ऐसे प्रत्येक मामले में स्वाभाविक उदारता के साथ हम यह स्वीकारना चाहिये

कि नई गुणावस्थाये प्रादुर्भूत होती हैं । इस तथय का कोई स्पष्टीकरण नही है । बस यह तो एक तथय है ।[1] क्रम का निर्धारण और एक के बाद अवस्थाओ का प्रकन करना प्रकृति विज्ञान की समस्या है । एक तत्ववादी को तो अस्तित्व के स्तर को उजागर करके सतोष प्राप्त कर लेना चाहिये—और हमे उन स्तरो के बीच विद्यमान सबध को भी समझना चाहिये ।

अब हम सक्षेप म एलक्जण्डर क ससीम अस्तित्व के सिद्धा त पर विचार कर सकते हैं । सवप्रथम तो प्रत्यक ससीम अस्तित्व अ य ससीम अस्तित्वों के साथ कालदिक म विद्यमान रहता है । एक ससीम अस्तित्व ठोस तत्व है अर्थात् कालदिक की एक सोमा घेरता हुआ घनत्व है । यही गलतियो का दृश्य है जिसम से प्रत्यक गति का एक इतिहास होता है । वे समय मे समय के जरिए प्रकटती हैं और समय म ही विलीन हो जाती हैं । वस्तु की तीन विशेष अवस्थाए होती हैं—उसका काल दिकीय भाव वह प्रक्रिया जिसमे वह घटित होती है—तथा उसका रचना विधान या आकार ग्रहण करना । हमारी दृष्टि मे पहला अवस्था वस्तु के स्थान, तिथि, अवधि एव उसके विस्तार को बताने वाली है । दूसरी अवस्था उसके ऐन्द्रिय जगत मे प्रत्यक्ष हो जाने वाले गुणा उजागर करती है । तीसरी अवस्था उसके स्वभाव पर प्रकाश डालती है और उस ही हम अपने विचार की वस्तु मानते हैं ।

एलेक्जेण्डर की ज्ञानमीमासा इस प्रकार के तत्वदशन मे अपना आश्रय ढूढ लेती है । सभी अन्य ससीम सत्ताओ की बहुलाय त मे वह विद्यमान है । विद्यमानता एक साथ सभी गुणो के रहने का सकेत नही देती । ऐसी बहुत सी घटनाए, जहा मन विद्यमान रहता है या एलेक्जेंण्डर की ही शब्दावलि म वे घटनाए जो मन क दृष्टिकोण का निर्माण करती हैं बहुत समय पहले ही घटित हो चुकी । दूर क तारो मे घटित होने वाली घटनाओ को हमारे मन द्वारा किया जान वाला प्रत्यक्षीकरण इसी का ज्वलत उदाहरण है । यह बात मन क लिए विचित्र नही है । प्रत्येक वस्तु उन्ही घटनाओ की प्रतिक्रिया है जो पहले गुजर चुकी है । हम किसी भी बिन्दु को किसी भी वस्तु के पहन के दृष्टिकोण स भिन्न होने वाला बिन्दु भा कह सकत हैं । इसमे वे सारी घटनाए समाहित होती हैं जो विभिन्न स्थानो समया तथा तिथियो मे घटित हुई है और जिनसे वस्तु का आज्ञान प्रदान रहा है । काल दिक वास्तव म ऐसे ही दृष्टिकोण से बना है एक साथ विद्यमान रहने वाल आरपार होने वाले तत्वाशा[2] के कारण नही ।

---

[1] द्रष्टव्य एलक्जेण्डर कृत नेचुरल पाइटी (हिब्बट जनल 1922 पुन मुद्रित फिलोसोफीकल एण्ड लिटरेरी पीसेज 1939 मे ।

[2] इस दृष्टिकोण के प्रस्तुतीकरण के लिए विशेष तौर पर दखें सम एक्स्प्लेनेशन्स एव आलोचना के लिए देख ब्रोड एव मर्फी द्वारा लिखित निबध (उसी मे) । यदि

अब दैवी भाव (डीटी) किस प्रकार इस दर्शन से जुड़ता है ? इसी प्रश्न का उत्तर एलेक्जेण्डर स्पेस टाइम एण्ड डीटी की बुक IV में देने का प्रयास करते हैं। विकास क्रम में दैवी भाव एक आगे की अवस्था है। मन से इसका वही संबंध है जो मन का जीवन प्रक्रियाओं के साथ है। या फिर जीवन्त प्रक्रियाओं का भूत रासायनिक प्रक्रियाओं के साथ। हमारे लिए उसकी प्रकृति का निर्धारण कर देना असम्भव है। उदाहरण के लिए दैवी भाव को मन कहना यह कहने के बराबर होगा-जीवन्त प्रक्रियाएं भूत रासायनिक प्रक्रियाओं से भिन्न नहीं हैं। दैवी भाव निश्चय ही मन से युक्त है हां किन्तु उसके विशिष्ट गुण इसी तथ्य पर अवलम्बित नहीं है।

एलेक्जेण्डर की दृष्टि में तब ईश्वर वास्तविक होने के बजाय प्रत्ययभावी है। वह भी सृष्टि का भाग है पूर्ण रूप से सर्जित नहीं। यदि हम एक वास्तविक ईश्वर की मांग करेंगे तो वह केवल एक दैवीभाव की धुरी पर टिका यह अनन्त जगत् ही है। तब क्या नहीं काल दिक को ही जो अनन्त एवं सृजनशील है ईश्वर मान लें ? इसे न मानने का एक प्रत्यक्ष कारण तो यह है कि कोई भी व्यक्ति काल-दिक के लिए पूजा भावी नहीं हो सकता। किन्तु यह काम तो तत्ववादी दार्शनिक का है कि वह ऐसी सत्ता के प्रति ऐसा भाव उजागर करे। वे इस अमूर्त संभावना को भी स्वीकार करते हैं कि तत्ववाद दार्शनिक को इस दिशा में भी ले जा सकता है कि ऐसी कोई सत्ता विद्यमान नहीं है किन्तु उनका अपना तत्वदर्शन तो उन्हें दैवी भाव की ओर ले जा रहा है, उसके विपरीत नहीं। और क्या यही इस बात के पक्ष का उदाहरण नहीं है ? क्योंकि ऐसा प्रत्येक दर्शन जो मानवी अनुभव के किसी भी स्थल को नगण्य मानकर छोड़ दे, उसके प्रति गंभीर रूप से शंकालु होना स्वाभाविक है। हमें सदैव ही यह मानना चाहिए कि प्रत्येक युक्ति के अनुरूप ही एक ऐसा पदार्थ भी है जो उसकी तृप्ति कर सकता है और धार्मिक भाव उनकी दृष्टि में एक ऐसी युक्ति है जिसकी तृप्ति दैवी भाव से कम गुणों वाली किसी भी सत्ता से नहीं हो सकती। किन्तु एलेक्जेण्डर भी यह दैवी भाव धर्म के सर्वमान्य ईश्वर से इस अर्थ में भिन्न है, कि वह विकास की अन्तिम कड़ी नहीं है, किन्तु इससे उसके दैवीभाव के प्रति किसी प्रकार का हीन भाव उन्हें नहीं होता।

हम किसी घन के टुकड़े-टुकड़े कर दें तो स्वतः ये टुकड़े जुड़कर फिर घन नहीं हो सकते। इसके विपरीत यदि हम एक घन के चारों ओर घूम और उस पर दृष्टि डालें तो हमारी दृष्टि घुलीमिली होगी। पहली दृष्टि दूसरी के द्वारा पूर्णता प्राप्त करने की अकुलाहट व्यक्त करेगी। इसी प्रकार काल-दिकीय कोई दृष्टि काल दिक् पूरे भाव को प्रकट करने की मांग करेगी। जबकि एक ही घटना के उपकरण यह काम नहीं करेंगे।

1 द्रष्टव्य डब्लू० एच० उकुहर्ट का मृत्युलेख (पी० बी० ए० 1946)।

इसके अतिरिक्त भी बहुत स दाशनिक अपने आपको यथाथवादी कहलवाय जाने को उद्यत थे। उन पर एलेक्जेण्डर के दशन का प्रभाव था हा किन्तु व ज्ञानमीमासा स उनके तत्वदशन की ओर कभी आकृष्ट नही हुए। ए स्टडी इन रीयलिज्म (1920) नामक रचना म जोन लेयड न 'धरती के यथाथ' पर ही बल दिया। उन्हे यह स्मरण था कि उनकी जन्म भूमि रीड की जन्म भूमि के नजदीक थी जिसम तत्ववादी के बजाय विवेचन एव विश्लेषण पर बल दिया गया था। व एलक्जेण्डर के प्रशसक थे और मानते थे कि एलेक्जेण्डर की रचनाओ ने उनके प्रभाव को ढक लिया है। किन्तु उनके दशन का वातावरण मूर के समय केम्ब्रिज मे रहे वातावरण की याद दिलाता है जहा वे एक विद्यार्थी रह थे। वे सरलता से एलेक्जेण्डर के अमूर्तीकरण की तरफ नही खिचते। गिफड भाषण माला म पढे गए अपने निबन्ध थीइज्म एण्ड कोस्मालोजी (1940) तथा माइण्ड एण्ड डीटी (1941) मे किसी निश्चित निष्कष के रूप म बहुत कम प्रकट हुआ है। एस पारवर्ती धम-दशन की बजाए जिसका बृहद्रूप प्रसिद्ध है एक ऐस दशन मे विश्वास जमना स्वाभाविक ही है जो स्वविकसमान है।

एक अन्य स्कोटलण्डीय विद्वान प्रोफेसर एन० कम्पस्मिथ जो डेकार्ट ह्यूम एव कान्ट पर लिखी शास्त्रीय टिप्पणियो के लिए प्रसिद्ध हैं, एलक्जण्डर के अधिक निकट हैं। उन्होने इसी बात को लेकर अपने आपको प्रत्ययवादी मान लिया है। उनकी कृति प्रोलेगोमेना टू एन आइडियलिस्ट थ्योरी आव नोलेज (1924) यथाथवादी आधार-भूमि पर प्रत्ययवादी ज्ञान दशन निर्मित करने का प्रयास है।[1] उनका कथन है कि प्रत्ययवाद मे और आत्मपरकतावाद मे कोई आवश्यक सबध नही है। तात्विक दृष्टि से आत्मपरकतावाद तटस्थ है और बकले क लिए यह जितना उपयोगी रहा उससे कम मैच के लिए नही रहा। एक प्रत्ययवादी यथाथवादी भी हो सकता है। केम्पस्मिथ के अनुसार उसे यह नही दिखाना पडता कि यथाथ 'मनस' चेतना से भिन्न है वह तो आध्यात्मिक मूल्यो [illegible] करत [illegible] य आध्यात्मिक मूल्य वास्तव म ब्रह्माण्डीय स्तर प [illegible] हैं। [illegible] की विचारधारा का

केम्प स्मिथ एलेक्जेण्डर द्वारा की गई आत्मपरकतावाद की आलोचना तथा उनके स्वाभाविक प्रक्रिया सिद्धान्त को अपने म समाहित करने की क्षमता रखत थे। किन्तु वे एलेक्जेण्डर के साथ साथ कहीं नही चलते। मूलत वे उनके द्वारा माध्यमिक गुणो की स्वतन्त्रता की बात को कभी नहीं मानते हैं वे यह मानते हैं कि इन्द्रियाघात मन म विद्यमान नही होते। वे यह भी मानते हैं। कि व अपने आधार के लिए किसी अवयवी पर आश्रित हैं। उनकी दृष्टि म य जव प्रक्रियाए हैं–और एक शरीर को एस ऐसे वातावरण म बने रहन की क्षमता देती हैं जो जटिल है तथा जिसे सही तौर पर जान पाना दुष्कर है। उदाहरणाय जब हम पानी को देखते हैं, तो हम एक स्थिर एव निरन्तर प्रवाह का प्रत्यक्षीकरण करते हैं। परमाणुओं की उछल कूद हम वहा नही देखते और हम यदि इस प्रकार भ्रमित नहीं होते तो यह सम्पूर्ण नजारा हमारे मन को ही चकाचौंध म डाल दे। हम इसीलिए छले जाते हैं क्योंकि प्रकृति को हमारी रुचियो की चिन्ता है।

एक अन्य दार्शनिक, जिन्होने यथार्थवाद के नवीन रूप मे कुछ सचाई देखी, सी० ई० एम० जोड थे। वे यथार्थवाद को लेकर द रेफ्यूटेशन आव आइडियलिज्म मे लकर द अनालिसिस आव मैटर लिखने के समय तक चले। किन्तु नव यथार्थवाद उनकी व्यापक सहानुभूतियों के क्षेत्र के लिए बहुत सकुचित था। आस्था के एक अणु अश म रसल बर्गसाँ एव प्लेटो ने पदार्थ जीवन एव मूल्यो की दृष्टि स क्रमश अपना स्थान बनाया था।[1] इसका परिणाम यह हुआ कि लोकप्रिय दर्शन का झमेला तो प्रस्तुत हो गया किन्तु उसका दार्शनिक महत्व बहुत कम सिद्ध हुआ। फिर भी तथ्य यह है कि जोड, जो एक शान्त शास्त्रीय प्रवक्ता थे निबधकार थे एव प्राध्यापक थ ने व्यापक अर्थ मे ब्रितानी जनता म दर्शन का प्रतिनिधित्व किया। यह ब्रितानी जनता अथवा दर्शन के विषय मे क्या सिद्ध करता है, मुझे इस बात से कोई सरोकार नही।

---

[1] द्रष्टव्य ए रीएलिस्ट फिलोसोफी आव लाइफ (सी० बी० पी० II म) उसके विस्तृत विवेचन के लिए देखें मैटर लाइफ एण्ड वल्यू (1929)।

अध्याय १२

विवचनात्मक यथाथवाद एव अमरीकी प्राकृतवाद

यदि सिद्ध नियमो को दाशनिक उपलब्धियो के साथ भी लागू कर दिया जाता–तो विवेचनात्मक यथाथवादियो द्वारा छोट छोट कानूनी उपद्रव खडे कर दिए होते । एक यथाथवादी होना और उसके साथ ही साथ आदिम धारणाओ स मुक्त होना यही एक लक्ष्य था जिसने अनेक प्रकार के विचारको का ध्यान अपनी ओर खीचा–अन्य मामलो मे चाहे उनके उद्देश्य कितने ही भिन्न क्यों न रहे हों ।

ब्रितानी[1] विवचनात्मक यथाथवाद उन्नीसवी शती के उत्तराद्ध म स्कोटलण्ड में प्रादुर्भूत हुआ । वहा भी अमरीका की तरह रीड की सामान्य बुद्धि सबधी धारणा को पूणत नए तत्वदशनो की उत्साही लहर द्वारा बहाया नही जा सका था । हम उसके अश यदाकदा उभरते हुए नजर आ ही जाते हैं, खासकर विचारो का द्वद्व प्रस्तुत कराने वाले स्कोटीय दाशनिक एस० एस० लौरी[2] म देखे जा सकते हैं । इन्होने अपने प्रत्ययवाद के लिए यह मानना स्वीकार कर लिया था कि मैं दूरी पर विद्यमान एक ऐसे पदाथ के प्रति सचेत हो सकता हूँ जो विस्तीण है, स्थानीय सत्तावान, रुपवान है रगमय है, तथा कुछ भार वाला है । ऐसे ही एक दूसरे स्कोट एन्ड्रूसेथ (प्रिगल पैटीसन) थ । उनके विषय म हम पहले विचार प्रस्तुत कर चुके हैं ।[3] इन्होने प्रकृति को मनुष्य से स्वतत्र बताने मे कोई कसर नही उठा रखी थी, यद्यपि काण्ट के दीघ शिष्यत्व मे रहने

---

1 जमनी म विवेचनात्मक यथाथवाद का ही एक रूप 1887 मे ही ए० रील द्वारा प्रस्तुत कर दिया गया था । जे० बी० प्रेट की पुस्तक पसनल रीएलिज्म (1937) म लिखित ऐतिहासिक टिप्पणी देखें । एव उबरवेग कत डी रिअलिस्टि से रिचतग के चौथे अङ्क को देखें । इस पुस्तक क 259 पृष्ठ मे दी गयी पुस्तको पर टिप्पणी देखें ।

2 उनकी कति सिन्थेटिका (1906) तत्वदशन मे प्रत्ययवादी तथा ज्ञानमीमासा मे *यथाथवादी होने का अच्छा व्यक्तिगत प्रयास है । द्रष्टव्य जे० बी०* बली कत प्रोफेसर लौरीज नचरल आइडियलिज्म (माइण्ड 1908) एव लौरी के फ्रासीसी शिष्य जी० रेमकल कत ला फिलोसोफी डो० एस० एस० (1909),

3 द्रष्टव्य अध्याय चौथा प्रिंगल पटीसन कत बलफोर लेक्चस आन रीअलिज्म जो फिलोसोफिकल रिव्यू (1892 4) मे प्रकाशित हुए कि तु जो 1933 तक पुस्तकाकार रूप म प्रकाशित न हुए । माइण्ड 1934 म सलग्न स्मरणाथ तथा जोन लयड का निबध देखें ।

के कारण पूणत स्कोट परम्परा के प्रकत यथाथवाद की ओर लौट जाना उनके लिए असमव हो गया है । यहा यह तथ्य उल्लेखनीय है कि वे काण्टवादी रहते हुए भी यथाथवादी होने की आशा करते थ । उन्होने अपने आपको एक विवेचनात्मक यथाथवादी कहा भी है ।

सब प्रकार क आदिम यथाथवाद क विरुद्ध वे यह लिखत हैं कि चत य सत्ता वस्तुओ मे निहित प्रवत्ति के अनुसार अपन स परे नही जा सकती । जिसे हम सीधे रूप म जानते हैं उसका भाव हमारे मन म होना ही चाहिए चाहे इस के कारण हमे हमसे स्वतत्र एक जगत की सत्ता को मानना ही क्यो न पड जाए ।

उन पर स्वाभाविक रूप स अमरीकन विवेचनात्मक यथाथवादियो की भाति लाक के सिद्धात की पुन स्थापना करने का अभियोग लगाया जिसे सभी जगह प्रतिनिधि प्रत्यक्षीकरण का सिद्धान्त कहकर अनादत किया गया था । सेथ का उतर है कि लौक ने एक भीषण भूल की । उन्होंने यह सोच लिया कि ज्ञान केवल प्रत्ययो का ही होता है जबकि दरअसल ज्ञान प्रत्ययो के जरिए होता है । यद्यपि हम सीधे रूप म प्रत्ययो का बोध होता है ये वो नही है जिन्हे हम जानते हैं । यहा आकर सेथ स्टाउट के साथ हो जाते हैं जिनकी प्रारम्भिक रचनाओ का निर्भीक होकर वे सदभ भी देते हैं ।

सेथ की प्रमुख आलोचना का लक्ष्य सघटनवाद रहा । यदि अनुभव को वस्तु-सदभ मे न देखा गया तो वह अस्थायी अवस्थाओ का असम्बधी क्रम मात्र रह जायगा । यदि मिल के सघटनवाद को पढते समय हम यह दिखाते हैं कि हम उन्हे समझ रहे हैं तो इसका कारण यही है कि हम स्वत ही सवेदना की स्थायी सभावनाओ के स्थान पर वस्तु को रखकर चलते हैं । सामान्य रूप स इन दोनो मे कुछ मिलता जुलता अश भी है । प्रत्ययवाद एव सघटनवाद हमारे समक्ष यथार्थवादी धारणाओ से चुपचाप कुछ उदधृत करके यहा बाह्य वस्तु–जगत् को स्थानापन्न करके प्रस्तुत कर सकते हैं । कही न कही यथार्थवादी हुए बिना कोई भी एक सगत दशन का निर्माण नही कर सकता, सेथ की दृष्टि म यथार्थवाद के पक्ष मे यह प्रमुख तक है ।

एक अन्य स्कोटवासी रावट एडेमसन की रचनाओ म उत्तर–काण्टवादी प्रवृत्ति का एक दूसरा रूप मिलता है । एडेमसन जो विद्वान् के रूप म विख्यात थ, ने कभी भी अपने सिद्धान्त को गोलमोल करके प्रस्तुत करने का प्रयास नही किया । डब्लू आर सोरले द्वारा द डेवलपमेण्ट आव मोडन फिलोसोफी (1903)[1]

---

[1] देखें सोरले कत परिचयात्मक स्मरणाथ एच० जोंस के एडेमसन पर लिख निबध (माइण्ड 1902), जी० डाउस हिक्स माइण्ड (1904), डी० ए० रीज (पी० क्यू० 1952) सेथ की भाति एडेमसन भी लोज के प्रभाव म आगए थे । लोज

मे एडेमसन के निबधो एव भाषणो का एक श्रमसाध्य सकलन है। इसम प्रस्तुत विचारधारा का नवका टवादी विचारधारा से मेल बठता है।

एडेमसन क कथनानुसार अनुभव, स्पष्टत मन या उसके पदाथ की सत्ता क बीच कही भी स्थापित नही हो सकता जो आ तरिक एव बाह्य दो भिन्न अवस्थाओ को प्रकटाते हैं। इसक साथ ही साथ अनुभव इस भेद स मिश्र भी नही हो सकता। यह तथ्य कि हमारे कुछ प्रत्यक्षीकरण दिकीय हैं इस अभिमान का सूत्र दते हैं कि कही इनसे स्वत त्र जगत भी है। यह एडेमसन द्वारा का ट की इस विचारधारा की कि दिक हमारी बाह्यानुभूति का आकार है पुन व्याख्या है। हम शन शनै यह जान लेते हैं कि हमारा अनुभव द्विपक्षीय है। ससीम सत्ता की जिन्दगी का एक क्षण भी ऐसा अश अपने म समाहित किए हा सकता है जो उस सत्ता की जि दगी का एक भाग न हो–और चू कि बाह्य और आन्तरिक दिक का भेद हमारे प्रत्यक्षीकरण पर आश्रित है, हम न तो यह कहना चाहिए कि हमारा ज्ञान आ तरिक के विषय म है (आत्मपरक वादियो की भाति) और न हम यही कहना चाहिए कि जो कुछ हम जानते हैं वह हम आ तरिकता मे स्वत त्र है (जसा कि आदिम यथार्थवादी मानते हैं)।

इस प्रकार एडेमसन द्वारा प्रस्तुत विवेचनात्मक यथाथवाद आदिम यथार्थवाद एव आत्मपरकतावाद के बीच समन्वय है। यथार्थवादियों के साथ एडेमसन इस बात का खण्डन करते हैं कि अनुभव मन की आश्रित अवस्थाओं के ज्ञान का ही नाम है। आत्मपरकवादियो के साथ व इसका खण्डन करते है कि वह मानसेतर अवस्थाओ के ज्ञान का नाम है। उनकी दृष्टि मे तथ्य यही है कि जो कुछ अनुभव किया गया है वह मन क साथ किसी प्रकार के सबध होने के कारण अनुभव नही किया गया है। क्याकि अनुभव मनोज्ञान एव वस्तु–ज्ञान दोनों से पहल की स्थिति है।

ब्रितानी विवेचनात्मक यथार्थवादियो म सबसे प्रवीण एव सूक्ष्मदर्शी मानचेस्टर मे एडेमसन के ही शिष्य जी० डाउस हिक्स[1] थे। एडेमसन से अलग उ ह न

के इस कथन से यथा थवाद का आदश लेकर की गई जाच स ही प्रत्ययवाद का उपलब्धियो की पुष्टि का जा सकेगी यह बात एडेमसन की दाशनिक जाचो का ध्येय हो सकती है। सयुक्त राज्य म जी० एस० फुलटन ए सिस्टम आव मेटाफिजिक्स (1904) नामक रचना को विचारो क इसी आदोलन की एक कडी माना जा सकता है।

[1] द्रष्टव्य डब्लू० जी० डोबरा रचित स्मारक सूचना (पी० बी० ए० 1941)

केवल प्रत्ययवाद के विरुद्ध अपनी स्थिति की रक्षा करनी पडी थी, अपितु अधिक महत्वपूर्ण ढग से मूर एव रसेल के इन्द्रिय सवेदन सिद्धान्त एव नन तथा एलक्जेण्डर के यथार्थ के विरुद्ध भी खडा होना पडा। शास्त्रीयता के प्रति लगाव होने से वे अपने दर्शन म निरन्तर विकास नही प्रस्तुत कर सके। उनका सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रकाशन क्रिटिकल रीयलिज्म (1938) है जो भाषणों एव निबधो का सग्रह है।

उन्होने मीनोंग को बडी सतर्कता से पढा था और मूल तत्वो को वे गुणो का समूह मानते हैं और इसी तरह वे प्रत्यक्षीकरण का अपना सिद्धान्त निर्मित करते हैं। प्रत्यक्षीकरण का सतोषप्रद विश्लेषण एक नही तीन मूलतत्वो से ही किया जा सकता है। पदार्थ का मूल तत्व वह मूल तत्व है, जिसका तत्काल बोध हम होता है और प्रत्यक्षीकृत क्रिया का मूलतत्व अब पदार्थ व प्रत्यक्षीकृत क्रिया दोनो जहा अपने मूल *तत्वों की विशेषताओं के कारण भिन्न इयत्ताए हैं वहा तात्कालिक बोध इस प्रकार* की किसी तीसरी इयत्ता की अपेक्षा नही रखता जैसे कि एन्द्रिय सवेदन। मूर द्वारा दिए गए चाक्षुष प्रत्यक्षीकरण के विवरण से सर्वप्रथम सचेतता की एक मात्र क्रिया ही विद्यमान रहती है। तब कुछ गुणो से युक्त एक धब्बा (पैच) उभरता है और तब कही जाकर कोई पदार्थ, जिससे किसी न किसी तरह वह धब्बा सबधित होता है। डाउस हिक्स के अनुसार न तो कोई धब्बा है—न कोई रूप और न ऐसी कोई इयत्ता ही है—सिवाय सचेतता एव पदार्थ के। इन दोनो म से एक से हमारे बोध म प्रकट पदार्थ सबधित होना ही चाहिए।[1] कोई यह आपत्ति कर सकता है कि पहले दृश्यमान रूप तो होना चाहिए क्योंकि वस्तुओ के लिए यह कहना निरर्थक नही है कि वे विभिन्न मनुष्यो के लिए भिन्न भिन्न रूप म प्रस्तुत होती हैं। डाउस हिक्स इसका उत्तर देते हुए कहते हैं कि एसे वाक्यो म एक दृश्यमान रूप किसी इयत्ता का नाम नही होता। यह कहना कि वस्तुए विभिन्न रूप म प्रस्तुत होती हैं—इस बात को कहने का गलत तरीका है कि वे भिन्न भिन्न आदमियो को भिन्न भिन्न रूपो मे दिखाई देती। है इस प्रकार के भेद होना कोई आश्चर्य का विषय नही है।

एडमसन के साथ सहमत होते हुए डाउस हिक्स कहते है कि प्रत्यक्षीकरण विलगीकरण (डिसक्रिमिनेशन) की क्रिया है। हमारे वातावरण की सारी जटिल स्थितियो म से कुछेक का चुनाव है। उसी वातावरण म रखे जाने पर भी अलग

---

[1] देखें आर द मेटीरियल्स आव द सेन्स अफक्शन्स आव द माइण्ड ? (पी० ए० एस० 1916) पर डाउस हिक्स ए० मूर के विचार। उनके अनुमान की क्रिया के सिद्धान्त के लिए देखें 1920 म पी० ए० एस० द्वारा प्रस्तुत विचार—विमर्श जिनमे लेयर्ड मूर, ब्रोड एव डाउस हिक्स आदि ने भाग लिया।

अलग द्रष्टा गुणो की विभिन्न इकाइयो को चुन लेंगे—डाउस हिक्स की दृष्टि म यही बात दोष का भी कारण बनती है। पेड की टहनी पर पत्तियो के बीच बठ कर गात हुए पक्षी के काले पखो का पता लगाना किसी द्रष्टा क लिए मुश्किल हो सकता है और वह गाते हुए पक्षी को हरे रग का मान सकता है। एक दूसरे दशक की आखें पत्तियो पर पड रही सूय की किरणो के पीलेपन से चका चौंध हो सकती हैं और वह पक्षी का रग नीला मान सकता है। यदि ऐसे मामलो म कोई विवाद उठता है तो उस निपटाने के निश्चित तरीके हैं—ऐसे तरीके जो हमे वसी ही निश्चतता प्रदान करते हैं जो अनुभववादी जाच पडताल के पश्चात् हमे प्राप्त होती। इस तरह आदिम यथार्थवादियो की भाति न तो यह मानने का कोई आधार है कि एक प्रत्यक्षीकरण अन्य सभी प्रत्यक्षीकरणो की ही भाति मूल्यवान हैं और न मूर और रसेल की भाति यह मान लेना कि जिसे द्रष्टा देखता है वह एक विचित्र प्रकार की इयत्ता है जिसे दृश्यमान रूप या ऐंद्रिय सवेदना कहा जा सकता है। ये दोनो ही पक्षी के वास्तविक गुणों की द्योतक नही हैं।

ऐंद्रिय सवेदन क लिए भौतिकी मे प्रस्तुत कोई भी प्रमाण ऊपर दिखाए गए दोष स अधिक विश्वासयोग्य नही। यह तो सामान्य धारणा है कि किसी वस्तु का रग भौतिकी के अनुसार परमाणुओ के कम्पन के अतिरिक्त और कुछ नही तो भी जो रग हम देखते हैं वह केवल कम्पन नही हो सकता। इससे यही निष्कर्ष निकला कि जो कुछ हम देखते हैं वह निश्चय ही ऐंद्रियाघात होना चाहिए किसी भौतिक पदार्थ का गुण मात्र नही। हिक्स के मतानुसार भौतिकी यह बताने मे अभी तक असमर्थ है कि परमाणुओ का कम्पन या तो किसी वस्तु के रग का भौतिक समानधर्मी है—अथवा उसका कारण है। एक चमकीला पदार्थ (चादी) लाल रोशनी स जगमग हो सकता है और ऐसे परमाणुओ का भी बना हो सकता है, जो एक सेकिण्ड में चार करोड की गति से प्रवहमान होते है। इससे यह तो तय हो गया कि भौतिक पदार्थ जिन गुणो को धारण करते हैं उन सबको हम नही देख सकते और इसी कारण यह मान लेना कहा तक सगत है कि शेष के गुण किसी अन्य इयत्ता के अग हैं और उस ऐंद्रिय सवेदन कह सकते हैं।

इस प्रकार डाउस इस निष्कर्ष पर पहुचते हैं कि इस बात पर विश्वास करने का कोई ठोस कारण नही है कि जिसे तात्कालिक रूप मे हम देखते हैं वह ऐंद्रिय सवेदन हैं। इसके विपरीत ऐंद्रिय सवेदन के सैद्धान्तिक लोग अपनी इयत्ताओ के आवास का एक निश्चित स्थान निर्धारित नही कर सकते। एक गरीब द्वारा किए गए सबधो की भाति वे कभी मानवी शरीर और कभी भौतिक पदार्थ क बीच म प्रमाण करते रहते हैं और दोनो ही उनसे घृणा करते हैं। तो भी उन्हीं की उदारता पर आश्रित रहने के अतिरिक्त उनके पास कोई चारा नही। यदि पूछा जाय कि

किस प्रकार ऐन्द्रिय सवदन किसी कम्पनशील परमाणुभो का प्रकट रूप हो सकता है, ऐन्द्रिय सवदन क सद्धातिक यह कहने लग जाते हैं—उनको दृष्टि उस छोटे से प्रश्न म न होकर कही अन्य लगी है। यदि हम यह मानलें कि अमुक अमुक रग दखते समय कम्पनशील परमाणु हमारी चक्षुएन्द्रियो को अपनी ओर आकर्षित करके उत्तेजित करते हैं तो बिना किसी वैज्ञानिक प्रमाण के हम मुश्किलो को पार कर सकते हैं।

डाउस हिक्स द्वारा प्रस्तुत विवेचनात्मक यथार्थवाद तव पदार्थ एव गुणो क भेद की व्याख्या पर आधारित है। गुण वही है जिसका तात्कालिक बोध हमे हो, पदार्थ वही है जो हमे उपयुक्त बोध प्राप्त करने की ओर प्रेरित करता है। इस तरह गुण न तो अस्तित्वशील और न अनुजीवी सत्ता ही है, जबकि पदार्थ और बोध मयी क्रियाए सत्तावान हैं। बहुत से अमरीकी नवयथार्थवादियो ने अपनी धारणाओ को इस अन्तर पर आश्रित रखा। कुछ अन्यो की धारणा थी कि बोध के समय तत्काल जो पदार्थसमक्ष आता है वह अपनी मौलिकता के कारण स्वयमेव एक सत्ता है।

ऐसेज इन क्रिटिकल रीअलिजम ए कोओपरेटिव स्टडी आव द प्रोब्लेम्स आव नॉलिज नामक ग्रथ मे जिसम डी० ड्रेक ए० ओ० लवजोय, जे० बी० प्रेट ए० के० रोजर्स जी० सण्टयाना आर० डब्लू० सेलर्स तथा सी० ए० स्ट्रोग जसे सहयोगी हैं उसम व्याख्यायित विवेचनात्मक यथार्थवाद अपने व्यापक रूप मे नवयथार्थवाद के प्रतिरोध मे उठाई गई एक आवाज है। किसी प्रकार के आदिम यथार्थवाद के विरोध म सभी विवचनात्मक यथार्थवादी इस बात पर सहमत हैं कि प्रत्यक्षीकरण के तीन मूलभूत तत्व है प्रत्यक्षीकरण की क्रिया, प्रस्तुत अवस्था और दृश्यमान पदार्थ।

होल्ट एव परी की यह मान्यता थी कि जिनका तात्कालिक बोध हम होता है वह वस्तु क जटिल रूप हैं। उसके जटिलतम रूप एव वस्तु का तब वे तादात्म्य कर दत हैं। विशेष रूप स उस समय व वस्तु को उसके विभिन्न प्रकट गुणो का आकलित रूप मानते हैं। वस्तु और उसक जटिलतम रूपो क इस तादात्म्य को विवचनात्मक यथार्थवादी अस्वीकार कर दत हैं। क्योकि इससे वस्तु सबधी उस सामान्य प्रत्यक्षीकरण की धारणा का खण्डन हो जाता है जिसके अनुसार उसका रूप एव स्थान एक ही माना गया है। प्रतिदिन के उपयोग की वस्तुओ को स प्रकार नवयथार्थवाद स खण्डित होने स बचाने के लिए वस्तुओ एव उनक जटिल रूपो के तादात्म्य के विचार का परित्याग करना होगा क्योकि यह जटिल रूप वस्तु की उपस्थिति का बोध देन वाले दिग्दर्शन के अलावा और कुछ नही हो सकता।

स्पष्ट ही तब विवेचनात्मक यथार्थवादियो को बर्कले की इस सुपरिचित आपत्ति का सामना करना पडेगा जिसे तात्कालिक रूप से हम देखते हैं। यदि वह सवव ही उसका जटिल रूप है, तो यह जानना तो और भी मुश्किल है कि अमुक स्थिति उस जटिल रूप से भिन्न कोई अन्य वस्तु है। विवेचनात्मक यथार्थवादी इसका उत्तर देते हुए कहते हैं कि बर्कले का तर्क यह मानता है और इसी बात पर लॉक भी भटक गए थे कि विशिष्ट इयत्ता के रूप में हम सर्वप्रथम जटिल रूप को देखते हैं और तब हम अपने आपसे ही जानने की कोशिश करते हैं कि वह हम वस्तु ज्ञान की किस दिशा की ओर ले जाता है। वास्तव में इस प्रकार की प्रत्येक जटिलता बिना भौतिक वस्तुओं के विशिष्ट सदर्भ के प्रारम्भ से ही बिखरी रहती है।

बात को यहा तक तो सारे विवेचनात्मक यथार्थवादी भी स्वीकारने को तैयार थे, किन्तु वस्तु के जटिल रूप की प्रकृति की व्याख्या में सब एक मत नहीं थे। सन्टयाना एव उनके अनुयायी स्ट्रॉग, ड्रेक एव रोजर्स इस जटिल रूप को समष्टियो की आकलित इकाई या सारतत्वो का एकीकरण मानते हैं, जिसे इस प्रकार आकलित होते हुए एक विशिष्ट वस्तु में देखा जा सकता है। किन्तु ये स्वत न तो अस्तित्वशील हैं और न अनुजीवी। यह पूछना कि यह जटिल रूप कहा स्थित है? उसकी प्रकृति को ही गलत समझ लेना है। रूढ़िवादी विचारकों के लिए स्थिति इसके विपरीत है। उनके लिए विश्लेषण जो कि तात्कालिक बोध नही है एक विशिष्ट मानसिक अवस्था के तत्व के रूप मे इस जटिल रूप वाली स्थिति को प्रकटाता है। इसलिए इस प्रश्न का कि इसकी स्थिति कहा हैं स्पष्ट उत्तर यही है मन मे'।

इस बिन्दु के साथ एक अन्य बिन्दु भी अपरिहार्य रूप से जुडा था वह था उस तरीके की खोज करना जिससे वस्तु का जटिल रूप अपने से इतर किसी अन्य स्थिति की ओर इंगित करता था। उदाहरणार्थ, सेलर्स इसके समर्थन के लिए वाड स्टाउट एव गेस्टाल्ट मनोवैज्ञानिको का सदर्भ प्रस्तुत करते हैं और वे एडेमसन का सदर्भ भी दे देते तो आश्चर्य नही था। एक स्वतत्र एव बाह्य वस्तु की धारणा प्रारभ से ही हमारे प्रत्यक्षीकरण में प्रस्तुत बाध्यता के धूमिल सदर्भ के कारण विकसित होती है। विकास की इस प्रक्रिया को जब मनोविज्ञान विस्तार में चर्चित कर सकता है। सन्टयाना इसके विरुद्ध मनोविज्ञानवादी नही थे। हम मनोवैज्ञानिको की भाति अनुभव नही करते, जानवरो की भाति अन्त प्रेरणा से यह अनुभव करते हैं–वस्तुए हमारी सत्ता से स्वतत्र होकर विद्यमान हैं और हमारे द्वारा अनुभव किए गए अपने जटिल रूप की कुछ अवस्थाओ को वे उजागर करती हैं। हमारी यह अन्तर्जात अनुभूति उचित नही है, किन्तु यह इतनी प्रबल है कि इसके औचित्य की आवश्यकता भी नही है।

विवेचनात्मक यथार्थवादियों के दो पक्षों का अन्तर काफी था और बहुत स्पष्ट था और एक समूह के रूप में खड़े हो जाने का इनका इतिहास काफी लम्बा था। इसके साथ ही साथ विवेचनात्मक यथार्थवाद का प्रमुख प्रयत्न नवयथार्थवादी धारणाओं को उनके उसी रूप में स्वीकारना जिसमें वे प्रत्ययवाद का खण्डन करते हैं इस बात में निहित था कि इस समुदाय के दोनों वर्गों के सदस्यों द्वारा बहुत सी रचनाओं का प्रकाशन किया गया।

इस प्रकार लवजॉय, जो द ग्रेट चेन ऑव बीइंग (1936) लिखकर कल्पनात्मक विद्वत्ता की अद्वितीय क्षमता के धनी सिद्ध हुए, ने रिवोल्ट अगेन्स्ट ड्यूएलिज्म (1930) की रचना की जो विवेचनात्मक यथार्थवादी आन्दोलन की सबसे प्रभावशाली एवं ठोस रचना थी। अपनी विद्वत्ता का उपयोग प्रस्तुत विरोधास्पद मामला में करके लवजॉय नवयथार्थवादियों पर सहज द्वन्द्वात्मक विधि का उपयोग करके वे नगण्य व्यक्तियों की बातों को बढ़ा चढ़ाकर कहकर अपना रास्ता प्रशस्त कर लेने का अभियोग लगाते हैं। इसके साथ ही वे श्लिष्टात्मक ढंग से लॉक एवं प्रत्यक्षीकरण के प्रतिनिधिकरण के सिद्धान्त का पक्ष भी ले लेते हैं। वे यह बात विस्तार में वर्णित करने का प्रयास करते हैं कि आधुनिक अप्रतिनिधिकरणवादी जिनमें केम्प स्मिथ, व्हाइटहैड एवं रसल भी शामिल हैं यह पता लगाने के अयोग्य रहे हैं कि उन प्रच्छन्न विचारों डिसमाज) से कैसे बाहर आएँ जो मूलतः सभी विचारशील मनुष्यों को प्रत्यक्षीकरण की प्रतिनिधि सिद्धान्त के किसी न किसी रूप को स्वीकार करते आए हैं। प्रतिदिन घटित होने वाली घटनाएँ भ्रम स्मृतियाँ, अपेक्षाओं आदि का भी नवयथार्थवादियों के समर्थ विचारकों द्वारा कोई सन्तोषप्रद विवरण प्रस्तुत नहीं किया जा सका। ये विचारक शरीर विज्ञान एवं भौतिकी के प्रमाणों का उपयोग करने में भी असफल रहे, जिनमें कहा गया है कि वस्तुएँ मूलतः वैसी नहीं हैं, जैसा हम उन्हें देखते हैं। सामान्य बोध के विचार के रक्षक होने का मुखौटा ओढ़कर नवयथार्थवादियों ने दैनिक व्यवहार में आने वाली वस्तु के उस रूप को ही नष्ट कर दिया है जिस पर सृष्टि सम्बन्धी सामान्य बुद्धि धारणा टिकी है। इस धारणा के स्थान पर उन्होंने एक असंगत गुणों की अविश्वसनीय अवस्था का प्रचलन कर दिया है, केवल विवेचनात्मक यथार्थवादी एक चिन्तनशील मनुष्य के विश्वासों की सुरक्षा कर सकते हैं। लवजॉय इस यथार्थवाद का क्या स्वरूप होगा इसकी चर्चा से इतने सम्बद्ध नहीं हैं जितने उन दार्शनिकों पर प्रहार करने में लगे हैं जिनका यथार्थवाद किसी विवेच्य दृष्टि से असम्पृक्त रहा हो।

अन्य विवेचनात्मक यथार्थवादियों में स्ट्रोंग[1] ये इनकी लिखी अनेक पुस्तकों

---

[1] द्रष्टव्य द फिलोसोफी ऑव जो सण्टयाना में सैंटयाना द्वारा स्ट्रोंग पर लिखा निबंध (स० शिल्प 1940) डब्लू० पी० मॉटग्यू मिस्टर सी० ए० स्ट्रोंग्स ग्रोड फार स्केपटिक्स (जे० पी० 1939)

की शृंखला की प्रथम कड़ी 1903 में 'व्हाई द माइण्ड हैज ए बाडी' नाम से प्रकाशित हुई और अपनी विस्तृत विवेचन में शनैः शनैः परिवर्तन एवं परिवर्द्धित होते हुए वे 'ए क्रीड फार स्केप्टिक्स (1936) नामक पुस्तक की रचना करते हैं और इसके एक व्यापक मनोयतिवाद की स्थापना के लिए प्रयत्नशील लगते हैं। इस यतिवाद का विवेचनात्मक यथार्थवाद केवल एक तत्वांश ही है। अधिकांश समय तक अपेक्षित रहने के बाद भी स्ट्रोंग ड्रेक में परिवर्तन लाने में काफी सफल रहे जिनकी पुस्तक द माइण्ड एण्ड इट्स प्लेस इन नेचर (1925) उनकी दार्शनिक मान्यताओं का बहुत विशद चित्रण करती है।

स्ट्रोंग एवं ड्रेक नवयथार्थवादियों से इस बात में सहमत हैं कि एक ऐसा अभिधान अवश्य है जिसमें से सभी वस्तुएं निर्मित होती हैं चाहे यह अभिधान तत्वों से निर्मित हो या नहीं। वे अभिधान एवं ढांचे में एक स्पष्ट अन्तर मानते हैं, भौतिक विज्ञान वस्तुओं के क्रम या ढांचे की व्याख्या करते हैं और जिसका तात्कालिक बोध हमें होता है संभवतः उसका अधिकाधिक अनुमान इतना ही लगाया जा सकता है केवल एक स्थान पर हमें अभिधान एवं ढांचे का भेद मालूम होता है वह है हमारे द्वारा अपने मन का ही पर्यवेक्षण। वस्तुएं जिस रूप में अनुभव करती हैं इसका थोड़ा अंदाज इस बात से हमें हो सकता है यह कोई मनोवैज्ञानिक ज्ञान नहीं है मनोवैज्ञानिक तो ढांचे की ओर देखता है मस्तिष्क एवं नाड़ी संस्थान का विश्लेषण करता है। इसके अतिरिक्त ऐसे अन्य किसी अभिधान का ज्ञान हमें नहीं होता जिनसे भौतिक वस्तुओं का निर्माण हुआ हो इसलिए यह मानना युक्ति संगत है कि यही वह अभिधान है जिससे भौतिक वस्तुएं बनती हैं। स्ट्रोंग एवं ड्रेक यह बनाने का प्रयास करते हैं कि इसके अतिरिक्त अन्य किसी भी दृष्टिकोण से हम मन एवं वस्तुओं के पारस्परिक सम्बन्ध का संतोषप्रद जवाब नहीं दे सकते और न प्रकृति में मन का स्थान ही निर्धारित कर सकते हैं।

स्ट्रोंग एवं ड्रेक दोनों अपने आपको प्रकृतवादी या भौतिकवादी कहलाने में सुख का अनुभव करते थे, मूलतः इसलिए कि वे यह नहीं मानते थे कि मन प्राकृतिक क्रम से छिटककर अलग हुई कोई स्थिति है। मनोवैज्ञानिक की भांति यदि इसका अध्ययन करेंगे तो मन अवयव की सचेत प्रतिक्रिया मात्र है। अन्तर्ज्ञान से देखें तो प्राकृतिक पदार्थों के साथ इसका अभिधान सिद्ध होता है। दोनों ही अवस्थाओं में यह कोई माध्यमिकी स्थिति नहीं है, प्राकृतिक जगत में मन कोई अति प्राकृति केन्द्र नहीं है।

आर० डब्लू० सेलर्स[1] के द्वारा एक अन्य प्रकार के प्राकृत विवेचनात्मक

---

[1] द्रष्टव्य सेलर्स के विषय के जानने के लिए जे० एल० ब्लाउकृत मैन एण्ड मूवमेन्ट्स इन अमेरिकन फिलोसोफी (1952) सेलर्स द्वारा रचित ए स्टेटमेण्ट आव क्रिटिकल रीयलिज्म (आर० पी० आई० 1938, सेलर्स की रचनाओं पर पी० पी० आर० में हुई चर्चाएं (1954) एवं (1955 में) उनके उत्तर।

यथार्थवाद (नेचुरलिस्टिक क्रिटिकल रिएलिज्म) की पुष्टि की गई। इसका प्रवर्तन उन्होंने बहुत से निबन्धों एवं पुस्तकों के जरिए किया जिनमें सबसे अधिक उल्लेखनीय ए फिलोसोफी ऑव फिजिकल रीअलिज्म (1932) है। भौतिक यथार्थवाद में उनका तात्पर्य है कि प्रत्येक वस्तु काल एवं दिक में ही विद्यमान है और या तो वह स्वयं एक भौतिक प्रणाली है या किसी भौतिक प्रणाली से अपनी सत्ता में जुड़ी है। इस प्रकार उन्होंने मन के छनछाया' के सिद्धान्त को स्वीकार किया। उनके अनुसार मन अवयव का परिवर्तन नहीं कर सकता क्योंकि वह मस्तिष्कीय अवस्थाओं के कारण से ही विद्यमान है। इसी कारण किसी भी प्रकार का निपट यथार्थवाद असमीचीन है। भौतिक पदार्थ से सम्बन्ध स्थापित करने के लिए मन अवयव से बाहर नहीं निकल सकता। यही सेलर्स के विवेचनात्मक यथार्थवाद एवं प्राकृतवाद को जोड़ने वाला बिन्दु है।

प्राकृतवाद के प्रारम्भिक भेद टूट गए क्योंकि उनमें स्तर की धारणा का निर्वाह नहीं हो सका। अलेक्जेण्डर की भाँति सेलर्स भी विकासोद्भव के सिद्धान्त की पुष्टि करते हैं किन्तु उनमें उनमें एक बात भिन्न है वह यह कि जो कुछ विकसित हो रहा है वह कालात्मिक नहीं है किन्तु अमुक अमुक प्रकार की हो कोई भौतिक प्रणाली है। इस प्रकार हमें यह नहीं मानना चाहिए कि मन एवं मूल्यों को किसी और अवस्था में भी बदला जा सकता है। सब वस्तुएं प्राकृतिक हैं इस सिद्धान्त को इस सिद्धान्त से भिन्न रखना चाहिए कि प्रकृति एक है जिसका रूप सभी वस्तुओं में प्रकटता है। सेलर्स न तो डीवी के प्रति और न हैकेल के प्राकृतवाद के प्रति ही अधिक सहानुभूत हैं। उनकी दृष्टि में डीवी ने 'अनुभव' के केवल मानवी रूप से शुरूआत करके गलती की जबकि वास्तव में कोई भी संगत प्राकृवाद भूतवादी होना चाहिए अर्थात् भौतिक पदार्थ ही उसका प्रारम्भिक बिन्दु होना चाहिए।

सभी नहीं तो बहुत से विवेचनात्मक यथार्थवादी तो अपने पातिवाद (ऑनटोलॉजी) में प्राकृतवादी थे। इनमें सर्वविदित हैं सण्टयाना जिनका विवेचनात्मक यथार्थवाद, प्राकृतवाद के प्रामुख्य को लेकर हुआ। संयुक्त राज्य अमरीका के बौद्धिक जीवन में सण्टयाना अत्यन्त महत्व के दार्शनिक सिद्ध हुए हैं। इंगलैण्ड में इनका प्रभाव बहुत कम रहा। यद्यपि बर्ट्रेण्ड रसल जैसे विचारकों की प्रशंसा उन्हें प्राप्त हुई और साहित्यिक जगत में भी उनका नाम चला तो भी उनके दार्शनिक होने के सम्बन्ध में ब्रिटेन में कोई विवाद नहीं[1] है।

---

[1] इस तरह रसल ही एक ऐसे ब्रिटिश विचारक हैं जिन्होंने द फिलासोफी ऑव जार्ज सण्टयाना (सं० पी० ए० शिल्प 1940) वाले ग्रन्थ में योगदान दिया है। ग्रेट ब्रिटेन में सण्टयाना की ख्याति केवल ग्रेट पोएट्स अथवा जेम्स फ्राम सण्टयाना के कारण ही हुई। इनमें प्रस्तुत शक्तियों के कारण ही ये पुस्तकें अपना स्थान प्राप

यदि दशन को केवल विश्लेषण या दनिक धारणाओं का स्पष्टीकरण मानलें तो सण्टयाना को कभी कभी दाशनिक की सज्ञा दी जा सकती है। उनका स्थान शोपनहावर की भाति है जिनके वे काफी ऋणी है या फिर उन्हें मूर या मक्टेगट के साथ जोडने के बजाय नीत्शे के साथ जोडा जा सकता है। उनकी रचनाएं विशाल हैं व महाकथाकार विचारक है और वे जितने अपने एफरकस) के लिए विख्यात हैं उतने दाशनिक प्रयत्न के लिए नहीं। उनकी शक्ति पाठकों को एकदम चौंका देने मे निहित है और यह चकाचौंध किस बिन्दु पर आएगी यह पाठकों की मन शक्ति पर निभर करता है। यह तथ्य स्पष्ट ही एक इतिहासकार के लिए समस्या खडी कर देता है। यह समस्या उस समय और भी प्रबल हो जाती है (जसी कि इस पुस्तक में हमारे लिए हो गई है) जब नीति शास्त्र एवं सौन्दय शास्त्र की चर्चा मे वे मुह फेर लेते हैं। प्लेटो के द्वालापों की भांति सण्टयाना की विचारधारा मे यह पता लगा लेना मुश्किल है कि नीति शास्त्र कहा समाप्त होता है और तत्व दशन कहा प्रारम्भ होता है। उनकी रुचि के विषय तो मानवी मन एव मानवी सस्कृति है उनका तत्व दशन जसे ही केन्द्रीय बिन्दु से च्युत हो जाता है वैसे ही वह दुरूह होता जाता है। यह बात अब आश्चयजनक नहीं है कि उन्होंने 1935 मे व्यापक रूप में पढा गया एक उपन्यास भी लिखा जिसका नाम द लास्ट प्यूरीटन था।

यहा की गई टिप्पणी सण्टयाना की सर्वाधिक प्रभावशाली रचना तथा निरन्तर शृंखला में लिखी गई पुस्तकों पर लागू होती है (द लाइफ आव रीजन 1905-6) इसमे सण्टयाना का तत्वदशन क्रियाशील मस्तिष्क ठोस अध्ययन किए जाने से कुछ ही अधिक वचारिक सामथ्य को लेकर मुखरित हुआ है। लाइफ आव रीजन के लिए जो महत्वपूण बात है वह यह कि उन्होंने दशन के आकारभूत तत्वों का गभीरता पूवक विवेचन किया है क्योंकि सण्टयाना के लिए मनुष्य विवेकशील प्राणी के अतिरिक्त और कुछ नहीं। इस ससार को बौद्धिक जीवन प्रदान करना

बना सकी। एक सिडनिक अखबार ने एक बार सण्टयाना को पूर्वी क्षेत्र का सन्त कहा था। द्रष्टव्य जो० डब्लू० हाउगेट जोड सण्टयाना 1938 जे० पी० 1954) को सण्टयाना विशेषाक नेचुरलिज्म एण्ड एग्नोस्टि सिज्म आव सण्टयाना 1933 म लिखे गए सण्टयाना पर कुछ और निबन्ध रसी के 1928 एस० पो० लेम्प्रेज द्वारा लिखा सेण्टयाना दन एण्ड नाऊ 1928 वाला लेख भी शामिल है जे० एच० रडेल द लेटेण्ट आइडियलिज्म आव ए मैटीरियलिस्ट 1931 एम० आर० कोहेन को रिव्यू केम्ब्रिज हिस्ट्री आव अमेरिकन लिटरेचर (अद्ध। 1917-21। डी० एल० मरे ए मोडन मेटीरियलिस्ट (पी० ए० एस० 1911) सण्टयाना कृत आत्म कथात्मक ग्रन्थ परसन्स एण्ड प्लेसेज (1944-9) आनन्द एव उपयोग के लिए पठनीय है।

मनुष्य का सबस बडा योगदान है–यह विवेकशील जीवन एक अतिप्राकृतिक व्यक्ति द्वारा नही किया जाकर जानवरो जसे शरीर स युक्त मनुष्य द्वारा किया जारहा है। इस प्रकार सण्टयाना ने सयुक्त राज्य अमरीका के दार्शनिको के समक्ष एक ऐसी परिस्थिति म भी एक तीसरा विकल्प रखा जिसमे वरए गोयस के नीतिवाद एव हैकेल[1] के न्यून भौतिकवाद के बीच करना पडता था। आंशिक रूप से यह स्वीकार लिया जाना चाहिए कि सण्टयाना इसीलिए प्रभावशाली रहे क्योंकि उन्ह गलत रूप मे समझ गया।

बहुत से पाठको क समक्ष तो उन्होन इस बात को अपन भाव स स्वीकार भी किया कि प्राकृतवाद एव मानववाद का अथ न्यनीयता नही है वहा मनुष्य क अधिकारो की माग है अथक्रियावाद एव अन्तर्राष्ट्रीय समाजवाद एव ब्रह्माण्डीय सस्कृति जैस विचारो की भी सिद्धि सभव है।[2] जब सण्टयाना ने इस बात का खण्डन किया कि प्रत्यक मानवी सस्थान के लिए प्रकृति का आधार होना आवश्यक है तो उनके विषय में यह माना गया कि वे मानवी सस्थानो को भविष्य भावनाओ पर आधारित स्थितियो के अतिरिक्त और कुछ नहीं मानते जबकि वास्तव म परम्परा क महत्व क प्रति उनका भाव ऐसा था वे चाहे नए रूप मे ही क्यो न हो पर अपने को वैधानिक मानने को भी तयार थे। उनका विचार था कि मनुष्य का आदर कोई इसलिए नही करता कि उसन कुछ स्थायी एव महत्वपूर्ण आविष्कार किए हैं जसे कि उसक वतमान सामाजिक सस्थान। वे तो वास्तव म एक रूढिवादी थ जबकि उनकी रचनाओ का प्रभाव क्रातिकारी था।

लाइफ आव रीजन एव तत्पश्चात् लिखे बहुत से निबधो म सण्टयाना न अपन तत्वदर्शन का विस्तृत विवचन किया है ताकि वह विवेचनात्मक यथार्थवादियो के लिए प्रेरणा का स्रोत बन सके। किन्तु उसे 1923 तक जब तक उन्होंने स्केप्टिसिज्म एण्ड एनीमल फेथ नही लिख लिया कोई निश्चित रूप न मिल सका। यह 1927–40 तक लिखे तथा द रीत्म्स आव बीग नाम से चार खण्डो म सकलित हुए ग्रथ के आमुख के रूप म प्रस्तुत हुआ है। वे अद्वितीय महत्व क हैं। द रील्म्स आव एसन्स एव रील्म आव मैटर जसे ग्रथो को लिखकर कोई भी दार्शनिक विषय वस्तु क अनुकूल ठोस लिख देन की आशा कर सकता है तो भी वे यह ठोसता प्राप्त नहीं कर पाए–सण्टयाना स्वय कहते हैं कि रीत्म आव मटर एण्ड रील्म आव

---

[1] द्रष्टव्य एच० एल० कलेन अमेरिका एण्ड द लाइफ आव रीजन (जे० पी० 1921)।

[2] द्रष्टव्य उनक दशन का साराश द फिलोसोफी आव जोज सण्टयाना मे एपोलोजिया प्रो मेण्टे सुआ नामक विशेष रूप स उल्लेखनीय परिशिष्ट लख म प्राप्य है।

एसन्स दोनों में ही मैंने कुछ मूलभूत बातें ही कही है। और ये मूलभूत बातें भी वास्तव में धूमिल है।

स्केप्टिसिज्म एण्ड ऐनीमल फेथ में जो उनकी बाद की रचनाओं में सबसे अधिक पढ़ी गयी, हुसल एवं रसेल को प्रतिमान मानकर वे तत्वदर्शन पर डेकार्ट की मेडीटेशन्स में प्रयुक्त प्रणाली का उपयोग करते हैं। निश्चित ज्ञान अन्तत: किस बात का रह जाता है यह जानने के लिए वे सभी वस्तुओं पर सन्देह की दृष्टि रखते हैं किन्तु जहां डेकार्ट का विचार था कि वे इस तरह एक निश्चित अस्तित्व मान अवस्था में सोचने वाले के रूप में तो विद्यमान हूं ही, की उपलब्धि कर लेते हैं। सण्टयाना रसल एवं हुसल की भांति सन्देह प्रणाली का कड़ा उपयोग हमारे समक्ष केवल प्रस्तुत एवं सारतत्वों' को ही छोड़ देता है अस्तित्वमानों को कोई वस्तु अस्तित्व में है अर्थात उसका भूत है भविष्य है और वह अन्य वस्तुओं के साथ बाहरी संबंधों से भी जुड़ी है यह बात सदैव ही सन्देहास्पद रहेगी। जिस बात पर सन्देह नहीं किया जा सकता वह यही है कि हम एक विशिष्ट सारतत्व का बोध कर रहे हैं।

यह बात प्लेटो का स्मरण दिलाती है। किन्तु सण्टयाना का विचार था कि प्लेटो सारतत्वों की ओर नैतिक रूप से अग्रसर हुए हैं और जो कुछ निम्न एवं अशुभ था उसे त्यागते हुए ही उन्होंने यह सब किया है। इसके विपरीत सण्टयाना के लिए प्रत्येक संभव विधेय एक सारतत्व है। सारतत्वों के क्षेत्र से कुछ भी छूट नहीं सकता एक पापी का साधु के समान ही अधिकार है। काल्पनिक एवं वैज्ञानिक दोनों का भी विवेकशील प्राणी किसी भी तरह से सारतत्वों का उपयोग संकेतों के रूप से करता है। अपने चारों ओर फैले जगत को प्रतिबिंबित करके देखता है। प्रतिबिम्ब व सिद्धान्त के विषय में सण्टयाना ने पीयर्स से सीखा था। पीयर्स ने सण्टयाना को बताया था कि सारतत्व किस प्रकार अस्तित्व के बिना उनके चित्र रूप हुए विदेशक हो सकते हैं उनकी क्षीण प्रतिलिपियां हुए बिना वे विद्यमान हो सकते हैं।

यदि हम सण्टयाना से पूछें कि किस प्रकार हम सार तत्वों से अस्तित्व की ओर जा सकते हैं—धातु तत्वों के बोध से किस भांति इस विश्वास की ओर बढ़ सकते हैं कि ऐसे अस्तित्व हैं जो इन सारतत्वों में विद्यमान होते हैं। उनका उत्तर यह है कि हमारा यह विश्वास उस समय जमता है जब हम वस्तुओं के साथ पशु चेतना स्तर पर व्यवहार करने लगते हैं हम खाते हैं पीते हैं घायल होते हैं और चकित भी हो जाते हैं दूसरे शब्दों में घटनाएं हमारे साथ घटती हैं। और इस प्रकार हम पदार्थ गति एवं परिवर्तन के क्षेत्रों के सूत्र पकड़ने की क्रिया के शिकार हो जाते हैं।

सण्टयाना बिल्कुल यह मानने को तैयार हैं कि हम उस तरह कभी भी पदार्थ के सही क्षेत्र के निर्धारण की दिशा में नहीं पहुंच सकते जिस तरह सारतत्वों के संबंध

मे विचार करके पहुच सकते हैं।[1] उनकी दृष्टि म तत्व यही है कि हम वस्तुओ का ज्ञान होता है हम किसी वस्तु का उसी समय जानते हैं जब हम उसका कोई विवरण दे सकें जो उसके 'उपयुक्त' हो। अर्थात् इस विवरण से कोई ऐसा जरिया न निकल आए जिससे हम पाशविक स्तर पर उसके साथ निर्वाह कर सकने योग्य हो जाए। ये विवरण जो एक वैज्ञानिक सिद्धान्त का रूप ही हो सकते हैं सण्टयाना की दृष्टि मे कभी भी भौतिक पदार्थों की नकल प्रस्तुत नही कर सकते। विचार सृजनशील हैं कार्यात्मक हैं, दर्पण म प्रस्तुत हुए बिम्ब जस नही हैं। विवरण जो प्राणी मात्र के लिए सकेत के सूचक होते हैं उन खतरो क विरुद्ध चेतावनी होते हैं जो उसके समक्ष प्रस्तुत होने वाली हैं किसी भी रूप म 'सही नही हैं। उन्हे वैज्ञानिक धरातल पर स्थापित हुई अवस्थाओ के रूप म स्वीकार कर लेना युक्ति युक्त हो सकता है किन्तु अपनी वाणी मे ऐसा कहते हुए व्यग्य के स्वर तो होगे ही।

विवेकशील मानव सण्टयाना के वर्णन के अनुसार अपने चारो ओर के जगत् को भय से सही एव ठण्डे रूप मे ही देख पाते हैं। अपने जगत् को समझने की विधि उसे मूलत विशाल मानवी सस्थानो मे उसी के द्वारा लिए गये मार्ग से मिलती है—विवेक से परे सण्टयाना के अनुसार आत्मिक जीवन प्रारम्भ होता है। इस बिन्दु पर उनके बहुत से प्रशसक उनसे सम्बन्ध विच्छेद कर गये। प्राकृतवाद का मसीहा अपने अनुबन्ध से टूट गया है। इसलिए वे उनके द्वारा निर्देशित होन क विरुद्ध हो गए। *सण्टयाना ने फिर भी इस बात का खण्डन किया है कि आत्मा के अभिज्ञान से किसी* भी प्रकार उनकी विचार धारा की दिशा अ-प्राकृतिकवादी हो जाती है। प्राकृतवाद तो एक ऐसा दृष्टिकोण है जो यह स्वीकारता है कि क्रिया केवल भौतिक वस्तु का ही गुण है और आत्मा उनकी दृष्टि म कोई शक्ति नही है। मनस (साइके) हमारे दनिक ससर्ग मे आने वाला हमारा आत्म जिसका वर्णन मनोविज्ञान मे मिलता है वह निस्सदेह क्रिया कर सकता है और इसीलिए वह आत्म तो भौतिक है आध्यात्मिक नही। आध्यात्मिक जीवन क्रियामाण जीवन नही है, यहा आकर सण्टयाना वास्तव म शापेनहोवर की इस विचारधारा की ओर लौटते है कि जितनी जितनी आत्मा अपने को इच्छा से दबाव से मुक्त करती है उतनी उतनी ही वह अपनी मूल शक्तियो की पहचान कर सकती है।

अर्थक्रियावाद के द्वारा दिए गए कर्म एव ऊर्जा पर बल के विरुद्ध कोई प्रतिक्रिया इसस अधिक आगे नही जा सकती थी[2]

---

[1] देखें हर्बट स्पेन्सर भाषण माला म दिए गए उनके भाषण विशेषकर द अल्टीमेट (1923)।

[2] तुलना के लिए देखें जेम्स द्वारा सण्टयाना के दर्शन का रद्दी स्थितियों को पूर्णता की ओर ल जाने का प्रयास कहा जाना।

अमरीका क प्राकृतवादी दार्शनिको क उ नायको की शृ खला की एक दूसरी कडी जो सण्टयाना स अपनी रुचियो एव प्रवृत्तियो म सण्टयाना स काफी भिन्न है और अधिक सभावना वाल विचार कहे व मारिस कोहन है[1]। जो उनके बहुत से निष्कर्षों का फिर भी आदर करत हैं। सण्टयाना की ही भाति व ऐसे प्राकृतवाद की खोज मे थ जिससे एक व्यवस्थित यतिवाद का निर्माण हो सके, कम स कम जान डीवी के प्राकृतवाद से तो भिन्न हो ही, तो भी सामाजिक सस्थान जिनम मनुष्य *अपनी विभिन्न जिदगिया बिताता है, सण्टयाना की ही भाति उनकी रुचि क केद्र रहे*[2]।

कोहेन के दार्शनिक विचारो ने कभी भी एक सम्पूर्ण एव अतिम दशन का रूप नही लिया। उनकी सवविदित पुस्तक रीजन एण्ड नेचर (1931) की रचना भी पत्र पत्रिकाओ म प्रकाशित निब धो के सकलन से तयार हुई है। उसी प्रकार की वृत्ति जिसम गलतिया रह जान का काफी खतरा है व प्रिफस टू लौजिक (1944) म अख्तियार करत हैं। रीजन एण्ड नेचर का उपशीषक है एन एसे आन द मीनिंग आव साइण्टिफिक मेथड *यह उनक तत्वदशन सम्बन्धी प्रविधि का एक प्रशसनीय* सारांश है। व वनानिक प्रणाली से प्रारम्भ करते हैं, जो प्राय सभी विवेकशील मनुष्यो की जाच का उपकरण रही है और तब पूछत हैं कि इस प्रणाली के दौरान उपलब्ध सफलताए ससार की सामान्य प्रकति के बारे मे कुछ बतान म कितनी खरी सिद्ध हुई है। सबसे पहले उन्हे उस प्रणाली का ही वणन करना है। तत्काल ही वे प्रहार करते हैं यह विचार सदव ही उनके लिए शून्य का सा ही रहा है। विज्ञान मूलत आगमन है। अथात् विशिष्ट मामलो स सामान्य निष्कर्षों का अनुमान लगाना। *ज्ञान की प्रगति धूमिल स स्पष्ट की ओर होनी चाहिए न कि व्यष्टि स समष्टि की* ओर। टहनिया देखने से पूर्व हम वृक्ष ही देखत हैं, अथात् हम यह जान लेते है कि कुछ न कुछ ऐसा है जिसम सामान्य एव अस्पष्ट वृक्ष होन की तो धातु है ही, चाहे हम इसका कोई भी पूर्ण सकेत न हो कि वह पेड किस प्रकार का है या किस जाति का है।

---

1 द्रष्टव्य फ्रीडम एण्ड रीजन स्टडीज इन फिलोसोफी एण्ड जूइश कल्चर इन मेमोरी आव मौरिस रैफेल कोहन *सम्पादक एस० डब्लू० बरन, ई० नेगल के० एस०* पिन्सक 1951 मरणोपरान्त प्रकाशित कोहेन की आत्मकथा ए ड्रीमस जर्नी 1949 एच० टी० कोस्टेलो कत लोजिक एण्ड रीअलिटी (जे० पी० 1946)

2 डीवी द्वारा नीतिवाद के अधीनस्थ तात्विकी को रख देने के सम्बन्ध म उनके विचार के लिए देखें सम डिफीकल्टीज इन डीवीज एन्थ्रोपोसेण्ट्रिक नेचुरलिज्म (पी० आर० 1940), उनका सामाजिक रुचि खास तौर पर उनके विधि दशन मे देखी जा सकती है। देखें ला एण्ड सोशल आडर (1933)

व्यष्टियो का सतक अन्तर कोहेन के अनुसार केवल वज्ञानिक जाच पडताल की ही उपज है। उससे अलग होने का बिन्दु नही। इसी प्रकार इस बात की धूमिल पहचान कि किसी एक प्रकार की वस्तु एव दूसर प्रकार की वस्तु मे कोई सामान्य सम्बध हैं ही वनानिक नियमो के निर्धारण की भूमिका है। वनानिक नियम, इस तरह के वर्णन के अनुसार अनुभवो की इकाइयो क सक्षिप्तीकरण नही है जैसा कि कई बार मिल ने मान लिया था।

अनुभव कदाचित् धारणाओ को एक दूसरे स जोडत है। धारणाए जो वनानिक उद्देश्य पूर्ति के लिए अधिक सिद्ध एव उपयोगी होती हैं, बजाए उनके जिनसे अनुभव का प्रारंभिक साबका पडता है।

विनान सम्बधी ऐसा सिद्धान्त अपने लिए प्लटो की लपटनी वाली विचार धारा की याद दिलाता है। और चू कि प्राकृतवाद एव प्लेटोवाद दोनो ही विमुखी धाराए है इसलिए यह बात हम आश्चय म डाल सकती है। किन्तु प्लेटो म दिखाई देने वाला साम्य कृत्रिम है। कोहेन प्लटो के इस मूलभूत सिद्धान्तो का परित्याग कर देते हैं कि सवेदना एव विचार मे कोई तीव्र भेद है। प्लटो एव अनुभववादी दोनो ने ही कुछ ऐसी बुरी गलतिया की हैं। उन्होने अनुभव को निष्क्रिय मानकर सवेदनो को अगीकार करते हुए माना है और विचार से उसको अलग किया है, जो उनकी दृष्टि म समष्टियो को सक्रिय रूप मे एक दूसरे को जोडती है।

व्यष्टि एव समष्टि का निष्क्रिय एव सक्रिय तथा अनुभव एव विचार का यह द्व[illegible] कोहेन अपनी विचार धारा से मिटा देना चाहते हैं। उनका कहना है कि अनुभव म हम ऐसी वस्तुओ क ससग म आते हैं जो अपने बहुत से व्यवहारो एव रूपो को प्रकट करती हैं और जो दूसरी वस्तुओ म भी भिन्न तरीके से रूपान्तरित हो सकती हैं। एक बार यह जान लिया जाए तो इस जगत् का समष्टियो या सारतत्वो तथा अस्तित्वो के रूप मे विभाजन करना अपनी सारी अथवत्ता खो देगा।

तो भी एक मुश्किल उन्हे इस मामले मे चुप कर देती है। स्पष्ट ही भौतिकी का सबध इयत्ताओ से है। उदाहरण के लिए, एक पूर्ण ठोस अवयव को कोई भी अनुभव न तो हमारे समक्ष रख ही सका है न रख सकेगा। क्या यह तथ्य इस बात का सकेत हमे नही देता कि विनान अपनी विषय वस्तु के रूप म अ-प्राकृतिक इयत्ताओ क जगत् का कल्प ही सामने रखता है। यद्यपि किसी भी प्रकार स हम पूर्णत एक ठोस वस्तु का अनुभव नही कर सकते तो भी हमारे लिए यह तो सम्भव है ही कि हम ठोस रूप म हमार अनुभव म आने वाली वस्तु का क्रम निर्धारण तो कर ही सकते हैं। काल्पनिक वैनानिक नियम केवल सम्बधो का रूपान्तरो का, एक क्रम स दूसरे क्रम म जाने का ही वर्णन कर सकते हैं। इस सम्बध म प्रस्तुत एक आदर्श

स्थिति की अधिक से अधिक इस क्रम मे निहित वस्तु की सामान्य प्रकृति का संकेत दे सकती है।

कोहेन सूक्ष्म से सूक्ष्मतम नियमों पर भी इसी प्रकार के विश्लेषण प्रणाली का उपयोग करते हैं। तर्क एवं विशुद्ध गणित के सिद्धान्तो को वे रसेल का अनुसरण करते हुए एकीकरण कर देते हैं। तर्क के नियम रूपान्तरों एवं कार्यविधियो के ऐसे नियम हैं जिनके जरिए समस्त सम्भव यथार्थ चाहे वे भौतिक हो, मनोजगत् के हो तटस्थ हो या कोई उनका जटिल रूप हो सभी को एक साथ मिलाया जा सकता है। इस प्रकार तर्कशास्त्र भी प्राकृतवादी सिद्धान्त के ढांचे में आ सकता है जो हमें उन शर्तों की सूचना देता है जिससे पदार्थ एक साथ रखे जा सकते हैं या अलग से किए जा सकते हैं।

कोहेन का प्राकृतवाद जीवशास्त्रीय न होकर तर्कशास्त्रीय है। उनके अनुसार प्राकृतवादी होना हमारी विवशता है। यदि हम गम्भीरता पूर्वक वैज्ञानिक विधि के अर्थ को समझें, तो वैज्ञानिक भौतिकवाद जो इस सिद्धान्त को मानता है कि प्रत्येक प्राकृतिक घटना भौतिक दशाओं पर अवलम्बित है वह केवल अनुभवो से प्राप्त कोई छिछला सामान्यीकरण नही है किन्तु यह एक व्यवस्थित जगत् की आवश्यकता से उपजा है जो एक ऊहापोह युक्त कोई कल्पना सृष्टि नहीं है। प्राकृतवाद वस्तुओं के पारस्परिक सम्बन्धो पर बल देता है। यही वह बात थी जो कोहेन के आकर्षण का बिन्दु बनी और यही कारण है कि वे ऐसे अनुभव के अणु संवेदन सिद्धान्त से अलग करने में दृढ़ संकल्प रहे जो प्रायः इस की सहवर्ती धारा रही है। कोहेन का प्रकृतवाद, केयर्ड बोसांके तथा रोयस के वस्तुपरक प्रत्ययवाद के अधिक निकट का सिद्ध होता है बजाय लाक या ह्यूम के।

जैसा कि हमने पहले देखा है कोहेन बहुत से परम्परागत द्वन्द्वो का परित्याग कर देते हैं, उदाहरणार्थ विचार एवं अनुभव के बीच के द्वन्द्व को। यह परित्याग धुरीयता के सिद्धान्त[1] के रूप में परिपक्व हो गया। एक वस्तु कभी व्यवहार का एक रूप ही प्रस्तुत नही करती इसमें बहुत सी विपरीत स्थितियां भी कार्य करती रहती हैं। यह क्रिया करती है, पीड़ित होती है, एवं क्षरित हो जाती है, वह आदर्श होते हुए भी वास्तविक है यह गति मे रहकर भी अगति में है। तो भी कोहेन द्वारा निर्मित धुरीयता का सिद्धान्त उचित नहीं है उनके हाथों मे पड़कर यह अपने विवेचन में जितना रीति वैधानिक सिद्धान्त है उतना ही तत्ववादी भी। यह उनके विवेचनशील मस्तिष्क के काफी अनुरूप पड़ता है। इसके कारण वे अनुभववाद एवं बुद्धिवाद

---

[1] द्रष्टव्य डी० जे० ग्रोस्टीन कृत द प्रिंसिपल आव पोलेरिटी इन कोहेन्स फिलोसोफी फ्रीडम एण्ड रीजन)।

पर समान रूप म प्रहार करते हैं। जहा कहीं भी उ ह एक सिद्धान्त के स्वीकारने म काई खतरा होता है तो व दूसरे पर प्रहार करते हैं। दूसरे को स्वीकारने म खतरा लगता है तो पहले की कटु आलोचना करते हैं। वो भी कोहेन द्वारा सुझाई धुरीयता दशन के परम्परागत दरों स हम बाहर निकाल जाने म सफल होती है। यह अभी तक बनी दार्शनिक भवनों पर एक प्लग की भांति बाधा और वरदान की तरह रहा।

बहुत स तरीकों स तब आधुनिक अमरीकी दशन को प्राकृतवादी कहा जा सकता है। वह सहयोगी ग्र थ नेचुरलिज्म एण्ड द ह्यूमन स्पिरिट (स० वाई० क्रिकोरियन 1944) जो डीवी के एक निबध स प्रारम्भ होता है कोहेन को समर्पित किया गया था एव उसमे स्पष्टवाना का सदभ भी मुक्त रूप से है। अमरीकी दार्शनिकों की विविध रुचियों एव उनकी उल्लेखनीय योग्यताओं का सुदर परिचय देता है। इसके कुछ सहयोगी जसे एस० पी० लम्प्रेक्त एण्ड एच० डब्लू० श्नीडर सवप्रसिद्ध विद्वान हैं। अ य जसे एम० हुक केवल सामाजिक दशन म रुचिशील हैं। ए० ईडल उसी मे प्राकृतवादी नीतिशास्त्र का बचाव करते हैं। ई० वीवास प्राकृतवादी सौन्दय शास्त्र का कौनसा तत्व दमन उ ह एक साथ एकत्र कर देता है यह कहना आसान नही है।

यही एक बिन्दु है जिसे डब्लू० आर० डेनीस[1] ने अपने निबध द कटेगोरी आव नेचुरलिज्म मे लिखा है। उनके अनुसार प्राकृतवाद के साधारण रूप से यह बताने का प्रयत्न किया है कि मूलतत्व (सब्सट स) केवल एक है चाहे वह पदाथ हो या काल्पनिक, या मनस तत्व जिनसे प्रत्येक वस्तु बनी है। समसामयिक प्राकृतवाद पदावस्थाओ का सिद्धान्त है तत्वों का नहीं। यह अपने अपने पदार्थों के वर्णन करने का काम भौतिक शास्त्री, जीवशास्त्री नीतिवादी सौंदयशास्त्री जसे लोगो पर छोड देता है। क्योंकि यही लोग इन विशिष्ट अभियानों से सबद्ध हैं। प्राकृतवाद का प्रमुख सिद्धान्त डेवीज क अनुसार यही है कि एक वैज्ञानिक प्रकार के अलावा ज्ञान का और कोई प्रकार है ही नहीं। इसकी प्रणाली विश्लेषणात्मक है। यह परीक्षण एव व्याख्या करती है कोहेन की तरह वैज्ञानिक जाच पडताल की मूलाधारी पदावस्थाओं की। अवस्थाज्ञान ही इसका प्रमुख उद्देश्य है या इस विभ्रम का कोई उपचार ढूढना है कि ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों के बीच अपाटनीय खाइया हैं। यदि कभी इस विभ्रम की शक्ति का क्षय हो जायगा तो दशन को बिना विवाद

---

[1] केलीफोर्निया विश्वविद्यालय के दशन ग्र थो के प्रकाशन म दिए गए अपने योगदान से तथा दशन विभाग मे प्रकाशित उनके निबधो मे एक ग्र थ के कारण व काफी प्रसिद्ध होगए, इससे प्रत्येक अक मे एक अलग रूप मे चचनीय विषय है।

के ज्ञान के क्षेत्र से हट कर जाना होगा और विज्ञान को जगत् की व्याख्या का भार सौंप देना होगा।

जिन व्यक्तियों के प्राकृतवाद ने यह रूप ले लिया है, अर्नेस्ट नगल उनमें श्रेष्ठ हैं। डेवीज की भांति उनका चरित माध्यम पुस्तकें न लिखकर निबंध[1] लिखना रहा। कम से कम ऐसे दार्शनिकों से जो विश्लेषणात्मक एवं विवेचनात्मक होना चाहता है यही अपेक्षा की जानी चाहिए। उनके प्रमुख उद्देश्यों में से एक तर्कशास्त्र की प्रकृति का ऐसा निरूपण करना है, जिससे प्राकृतवादी भी संतुष्ट हो जाए। तर्कशास्त्र पर्यवेक्षण एवं परीक्षण का कोई सर्वसाधारण वैज्ञानिक तरीका काम में नहीं लेता और इसीलिए यह इस दृष्टिकोण के तईं एक कठिनाई प्रस्तुत कर देता है। *यही एक तरीका है जिससे ज्ञान की उपलब्धि की जा सकती है।*[2]

नगल ने कोहेन को एक बहुपठित ग्रंथ की रचना करने में सहयोग दिया था, यह है **एन इण्ट्रोडक्शन टू लॉजिक एण्ड साइण्टीफिक मेथड** (1934)। किन्तु वे कोहेन के इस सिद्धान्त से संतुष्ट नहीं हैं कि तर्कशास्त्र का काम अनुभव के उपकरणों का कोई सामान्य सम्बन्ध खोजना या उनके स्वरूप को निर्धारण करना ही है। तर्कशास्त्र के विषय में ऐसी दृष्टि तर्कशास्त्र के ही एक मूलभूत सिद्धान्त की अवहेलना कर जाती है और वह है असंगति का सिद्धान्त। केवल कथन न कि वस्तुएं असंगत हो सकते हैं। इसी प्रकार कथन को ही तर्कशास्त्र के रूपान्तरिक करके देखा जा सकता है। तर्कशास्त्र उन दशाओं से कतई संबंधित नहीं है जिनसे एक वस्तु दूसरी वस्तु में रूपान्तरित हो जाती है। नगल तो मिल के तर्कशास्त्रीय नियमों के प्राकृतवादी बचाव किए जाने के भी पक्ष में नहीं थे। नगल के अनुसार तर्कशास्त्रीय सिद्धान्त निश्चय ही स्थापित वैज्ञानिक सामान्यीकरण से अधिक शक्तिवान है। क्योंकि तर्कशास्त्र की मदद से ही कि प्रबल एवं क्षीण रूप में स्थापित सामान्यीकरण का भेद किया जा सकना संभव है। तो भी दूसरी ओर मिल की असफल धारणाओं से यह निष्कर्ष निकालने को तैयार नहीं कि तर्कशास्त्र प्राकृतवादी तत्व दर्शन के सीमा संदर्भ से बाहर का विषय है। तथाकथित विचारों के नियमों से ही उनके अनुसार यथोचितता (प्रेसिशन) के आदर्शों की स्थापना हुई है। उन्हें स्वीकार

---

[1] *सोवरेन रीज़न (1954)* में एवं *लॉजिक विदआउट मेटाफिजिक्स (1956)* नगल ने अपने दार्शनिक निबंधों का एक साथ संकलन कर दिया है।

[2] द्रष्टव्य **टुवर्ड्स ए नेचुरलिस्टिक कन्सेप्शन ऑव लॉजिक** (**अमेरिकन फिलोसोफी टुडे एण्ड टुमारो**, सम्पादक एम कैलन एवं एस हुक (1935) तथा **नेचुरलिज्म एण्ड ह्यूमन स्पिरिट** में **लॉजिक विदआउट आण्टोलोजी**।

करने से तर्कशास्त्री यही मानता है कि सम्प्रेषण एवं पड़ताल उसी समय प्रभविष्णु हो सकते हैं जब कोई उक्त मान्यता के अनुरूप कार्य करे। यह एक ऐसा दावा है जिसे प्राकृतवादी ढंग से परीक्षित किया जा सकता है। खास तौर पर काम में व्यस्त परीक्षक के वास्तविक व्यवहार का अध्ययन करके। इसी प्रकार विभिन्न तर्कशास्त्रियों द्वारा निर्मित बहुत सी तर्क प्रणालियाँ नगल की दृष्टि में अनुमान संबंधी अभ्यास के वैकल्पिक प्रस्ताव मात्र हैं न कि किसी एक विषयवस्तु का वैकल्पिक निरूपण, जैसे कि अभिप्रेत का संबंध है। ऐसे किसी तर्कशास्त्र का औचित्य देना उन व्यवहृत अनुमानों का प्रदर्शन करना है, जिन्हें वह यह कहकर प्रस्तावित करता है कि वे अमुक अमुक प्रकार की वैज्ञानिक खोजबीन में उपयोगी हैं। अब यह बात स्पष्ट हो जायगी कि नगल का प्राकृतवादी तर्कशास्त्र कोहेन की अपेक्षा डीवी के अधिक समीप आ जाता है। यद्यपि कोहेन की भाँति वे जीवशास्त्रीय उन सन्दर्भों को जिन्हें डीवी ने प्रस्तुत किया है तर्कशास्त्र के लिए अनुपयुक्त कहकर अपनी असहमति प्रकट करते हैं। अब यह स्पष्ट दिखता है कि पुरानी अर्गलाएँ तोड़ी जा रही हैं। कोहेन एक प्राकृतवादी थे जो हीगल के प्रशंसक थे। नगल एक गणितज्ञ एवं आकारी तर्कशास्त्री जिनकी सहानुभूति तर्क की अर्थक्रियावादी व्याख्या किए जाने की ओर थी। इस प्रकार प्रतिवादी धारणाओं के मिलने का एक और ज्वलंत उदाहरण सी॰ आई॰ लविस के दर्शन में देखा जा सकता है। वे न तो प्राकृतवादी हैं और न विवेचनात्मक यथार्थवादी ही। कभी कभी तो उन्हें प्रत्ययवादी भी कहा जाता है। तो भी उनका सन्दर्भ देने के लिए यह अवसर चुन लेना असमीचीन नहीं है।

लविस ने रायस के संरक्षण में अध्ययन किया था जिन्होंने प्रतीकात्मक तर्कशास्त्र की ओर उनका ध्यान आकर्षित किया था। भौतिक अभिप्रेतों के विरोधाभासों से असंबद्ध रहने के कारण उन्होंने ठोस अभिप्रेतों के तर्कशास्त्र की रचना की जिनसे ये विरोधाभासपूर्ण स्थितियाँ विलीन हो गईं।[1] लविस प्रणाली में ये उसी समय

---

[1] देखें सर्वे ऑव सिम्बोलिक लॉजिक (1918) तथा साथ ही में सी॰ आई॰ लविस एवं सी॰ एच॰ लैंगफोर्ड कृत सिम्बोलिक लॉजिक के परिशिष्ट में किए गए परिवर्तन एवं संशोधन भी देखें। उनकी प्रणाली के अपने अलग विरोधाभास हैं और ये हैं ठोस अभिप्रेतों के विरोधाभास। क्योंकि यदि यह तार्किक रूप से असम्भव है कि फ असत्य हो तो तार्किक रूप से प के लिए सत्य होना एवं फ के लिए असत्य होना असम्भव है। अर्थात् वे तर्कवाक्य ही असत्य होंगे जो आवश्यक रूप से सत्य हैं। किन्तु ये विरोधाभास लविस की दृष्टि में हमारे तार्किक अन्तर्ज्ञान के लिए कोई संघर्ष प्रस्तुत नहीं करते। द्रष्टव्य डब्ल्यू॰ नीले कृत ट्रुथ्स ऑव लॉजिक (पी॰ ए॰ एस॰ 1945)।

फ है यदि एक मात्र रूप म प का सत्य होना तार्किक दृष्टि से असमव हो जाय। तार्किक असमावना का यह विचार, जो दोनो सत्य नही है वाले विचार से अलग है, को ही उनके तकशास्त्र का मौलिक भेद माना गया है। तो भी लेविस यह तो स्वीकारते हैं कि यद्यपि वे इस आधार पर एक कलन का निर्माण कर सकते हैं तो भी उनकी प्रणाली विशुद्ध आकारी दृष्टि से मौतिक अभिप्रत के सिद्धान्त स किसी रूप म श्रेष्ठ नही हैं। या फिर ऐसे बहुत से वकल्पिक तकशास्त्रो का झुण्ड प्रस्तुत हो जाता है जिन पर किसी ने काय नही किया है। इनम स कोई भी प्रणाली किसी विरोधाभास को लिए हुए नहीं हैं और इसीलिए दोनो ही प्रणालिया उस एक मात्र कठिन परीक्षणो मे सफल होती है जिन्हे कोई तकशास्त्री अख्तियार करता है। तब किस प्रकार एक कलन एव दूसर के बीच म से कोई विकल्प चुन लेना समव है। तकशास्त्र स्वत किसी निष्कप का निर्माण कर सकता इस लिए तकशास्त्री का तक से पर ज्ञान मीमासा के क्षेत्र म आना पड़ता है।

इस अवस्था म तकशास्त्र क आकारी रूप को त्याग बिना डोवी का औचित्य दिया जा सकता है। कलन की रचना मे आकारी दृष्टिकोण के अतिरिक्त अन्य कोई बात उपयुक्त नहीं लगती। प्रणालियो के बीच म से किया गया कोई चुनाव अथ क्रियावादी आधार पर तो होना ही चाहिए। इसी प्रकार के विचारो से माइण्ड एण्ड द वल्ड ऑडर (1929)[1] की रचना समव हो सकी है। यहा लेविस सवेदन क प्रस्तुतीकरण जो कि मात्र प्रदत्त हैं एव प्राग्मावी पदावस्थाओ क सिद्धान्त जिनके जरिए इनमे प्रस्तुतीकरणो की व्याख्या एव निणय होते हैं के बीच क भेद को विशेषतया ऐसे सिद्धान्तो पर बल देकर जिनसे सत्य एव असत्य का अन्तर स्पष्ट होता है, प्रकटाया है। अनुभव अपने ही विषय पर दिए जाने वाले निणय क पद पर आसीन नही हो सकता, केवल मन ही अपनी कसौटी पर काम करता हुआ अनुभव सबधी निणय ल सकता है। उसी तरह जिस तरह वह तार्किक प्रणालियो क बीच मे स एक का चुनाव कर सकता है। लेविस क अनुसार दशन का काम मन द्वारा उपयोग मे लाई गयी पदावस्थाओ का निर्माण करना है। यह काय निश्चय ही विवरणात्मक न होकर विवचनात्मक होगा कम स कम उस क्षण म जहा विचारो म प्रस्तुत अस्पष्टताओ के निवारण की बात लागू होती है और तत्पश्चात् ही उनक असगतियों को कम कर देना होता है जो इन पदावस्थाओ क साधारण प्रयोग क समय भी उपस्थित हो जाती हैं।

---

[1] द्रष्टव्य पी० हिवानम कृत ले प्रग्मेटिज्म कॉन्सेप्चुअल, डो सी० आई० लेविस (आर० एम० एम० 1934), जे० बी० प्रट कृत लॉजीकल पाजीटिविज्म एण्ड प्रोफसर लेविस (जे० पी० 1934)।

उनकी दृष्टि में पदावस्थाओं की एक भी ऐसी इकाई नहीं है जो अनुभव पर समष्टि रूप से लागू हो सके। उदाहरणार्थ एक स्वप्न, मनोवैज्ञानिक के लिए सत्य है जबकि शरीर वैज्ञानिक के लिए असत्य। प्रत्येक वैज्ञानिक उन पदावस्थाओं का प्रयोग करता है जो उसकी क्रियाओं के लिए अपने जाँच पड़ताल के क्षेत्र में सर्वाधिक उपयुक्त हो। मामले को इस प्रकार रख देने से लेविस का यह मन्तव्य नहीं कि वैज्ञानिक जानबूझकर संसार के सामने पदावस्थाओं को प्रस्तुत करता है। मन के सामने प्रदत्त स्थिति एवं मन द्वारा उस संबंध में दिए गए योगदान के बीच का भेद इस संसार में हमें खोजना पड़ेगा यह स्वतः प्रस्तुत नहीं है। ग्रीन के साथ सहमत होते हुए वे कहते हैं कि जिस जगत की अनुभूति हम करते हैं वह एक ऐसा जगत् है जिसमें मन पहले से ही क्रियाशील है। अगर ऐसा नहीं होता तो वह पूर्णतः अनिर्वचनीय नहीं होता। किसी ऐसी वस्तु का ही नामकरण हो सकता है जिसका कोई रूपाकार हो या जिसमें कोई क्रम हो। इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि हम किसी वस्तु के विषय में यह कभी नहीं कह सकते कि वह प्रस्तुत है। जानने का अर्थ ही पदावस्थाओं में ले आना है। रसल द्वारा प्रस्तुत जानकारी द्वारा बाह्य ज्ञान का विचार अर्द्धांतक रूप से असम्भव है। तो भी कोई ऐसी वस्तु है जो प्रस्तुत है जिसे विचार की कोई क्रिया बदल नहीं सकती। कोई भी दार्शनिक कभी इस बात में सफल नहीं हुआ कि वह बिना प्रस्तुत' के काम चला सके चाहे उसका कार्य किसी भी प्रकार का क्यों न हो। इस सीमा तक तो विवेचनात्मक यथार्थवादी सही थे वे सारतत्वों के महत्व को स्वीकार करते समय भी सही थे। किन्तु उन्होंने प्रस्तुत को जो कि अवचनीय संवेदनशील तत्व है एवं उन अवस्थाओं में जिनके जरिए उनका पद निर्धारण होता है, दोनों को एक जैसा ही सारतत्व मानकर भ्रम उत्पन्न कर दिया है। यदि वे यह देख पाते कि केवल पदावस्थाओं के कारण ही जो उनके सिद्धान्त की दिग्दर्शिका है उनके सिद्धान्त में अपने सिद्धान्त में तारतम्य बैठ सकता था।

उनके समक्ष खड़ी हुई समस्या यहाँ भी प्रस्तुत हो जाती है। हमारे पास यह जानने का क्या मानदण्ड है कि अनुभव पदावस्थाओं के प्रकार के अनुकूल है? एक दृष्टि से लेविस के मत में इस प्रश्न का उत्तर उस समय सम्भव नहीं है जब कोई यह पूछे कि हम किस प्रकार यह जान सकते हैं कि हम जो कुछ अनुभव कर रहे हैं वह हम उसे जैसा मान बैठे हैं उससे बिल्कुल भिन्न है ही नहीं। क्योंकि हम इसे तो उस समय जान सकते हैं जब हम अनुभव को कुछ और ही मानलें किन्तु इस नई मान्यता के लिए भी ठीक वैसे ही प्रश्न खड़े हो जाएंगे। किन्तु दूसरी दृष्टि से इस प्रश्न का जवाब यह कहकर दिया जा सकता है कि अनुभव एक ऐसी वस्तु तो होनी ही चाहिए जो हमारे द्वारा निर्धारित पदावस्थाओं को स्वीकृति देती चलती है। क्योंकि

ये सिद्धान्त ही ऐसी वस्तुए हैं जो सत्यासत्य का भेद कर सकती हैं। पदावस्थित सिद्धान्त लेविस के अनुसार हमारे द्वारा अनुभव की व्याख्या किए जाने का वर्णन करता है। इसलिए जो होने वाला है वह किसी भी रूप मे इन सिद्धान्तो का उन्मूलन नही कर सकता। यदि हमारी रुचि, हमारी व्याख्या प्रणाली आदि मे परिवर्द्धन हो जाए तो वे भी परिवर्तित हो सकते हैं, किन्तु इनका कभी खण्डन नही हो सकता।

इस प्रकार अनुभव किसी प्राग्भावी सत्य के खण्डन की दिशा मे कुछ नही कर सकता क्यो कि ये सत्य केवल विश्लेषण करने एव पदावस्थाओ को सयोजित करने के अतिरिक्त और कुछ नही करते। उनकी आलोचना की जा सकती है और इनमे सशोधन हो सकता है। किन्तु यह उसी आधार पर होगा कि इनमे कही विरोधाभास प्रस्तुत हो गया है। इस प्रकार लेविस प्राग्भावी सत्यो का बचाव कर पाने की आशा करते हैं और अर्थक्रियावाद की निर्मूलन वृत्ति से तर्क की रक्षा कर सकते हैं। किन्तु जस ही पदावस्थाओ को अनुभव पर लागू करने का प्रश्न उपस्थित होता है तो आकारी विचार कायम नही रहते और अर्थक्रियावादी परीक्षण पुन उभर कर सामने आ जाते हैं।

एन ऐनालिसिस आव नौलेज एण्ड वेल्यूएशन (1946)[1] मे लेविस अर्थक्रियावाद की सही प्रकृति जाच करते हैं। जॉन डीवी की रचनाओ मे भी अनुभववादी तर्कवाक्य एव मूल्यो को एक दूसरे से सबद्ध माना गया है। लेविस यह बताने का प्रयास करते हैं कि नीति शास्त्र ज्ञान मीमासा का एव अर्थ सिद्धान्त का गुम्बज है। इसके साथ ही व इस अर्थक्रियावादी ढाचे मे प्राग्भावी सिद्धान्त की स्थापना भी कर देना चाहते हैं जिससे यह सिद्ध होता है कि कुछ ऐसे तथ्य भी हैं जिस आवश्यक सत्यो की सज्ञा दी जा सकती है। अर्थक्रियावाद एव आकारी विचारो के इस सयोग मे ही लेविस की विचारधारा का अद्भुत रूप देखा जा सकता है।

---

[1] द्रष्टव्य सी० जी० हेम्पेल का रिव्यू (जे० एस० एल० 1947)।

अध्याय १३

हठीले तत्त्ववादी

पिछले कुछ अध्यायों मे प्रत्ययवाद पर बहुत कम कहा गया है य प्रत्ययवादी यथायवादी आलोचना की एक के बाद दूसरी लहर के झोको से पूणत समाप्त नहीं हो पाए। बोसोके ने यथायवाद से सघष किया तथा गलत प्रत्ययवादी विभ्रमो के विरुद्ध भी (द मीटिंग आव एक्स्ट्रीम्स इन कण्टेम्पोरेरी फिलोसोफी, 1921)। मूरहैड, होनले एव अन्य बहुत से विचारकों ने तो उन्नीसवीं शती की चौथी दशाब्दी तक प्रत्ययवादी परम्परा को जीवित रखा। इन विवेचनात्मक वर्षों में प्रत्ययवाद ने भी नए रूपो का स्वाद चखा।

कुछ युवा प्रत्ययवादियो मे क्रिस्तानी धमवेत्ता भी थे जो ब्रेडल के परमात्मवाद एव व्यक्तित्वमूलक प्रत्ययवाद के बीच का कोई मध्यमाग खोज लेने मे ही अपनी सुरक्षा महसूस करते थे। इस तरह उदाहरण के लिए गाड एण्ड पसनलिटी (1919) मे सी० सी० वैब ने ब्रेडले के विरुद्ध यह स्थापना की कि परमात्म केवल एक व्यक्ति होना चाहिए एव एक ससीम। ईश्वर के प्रवक्ताओं के विरुद्ध उन्होन यह कहा कि परम पुरुष अनन्त एव सवव्यापी होना चाहिए। उन्होंने मनुष्यो को ईश्वर के[1] साथ साक्षात्कार कर सकने योग्य बताकर बोसाक को गहरा धक्का लगाया किन्तु उनका क्रिस्तानी आदशवाद अधिक सवेदनशील पाठकों के लिए ही सुकर था।

दूसरे प्रत्ययवादी तकशास्त्र के ही प्रमुख विचारों को कायम रखा तथा उन विकसित भी किया। उनमे स उल्लेखनीय हैं एच० एच० जोकिम जिनकी द नेचर आव ट्रूथ (1906) का सदभ हम पहले ही दे चुके हैं।[2] ऑक्सफोड म तकशास्त्र के प्राध्यापक क रूप म उन्होंने विद्यार्थियो की समूची पीढ़ी पर अपनी विवेचनात्मक क्षमता का प्रभाव डाला फिर भी कोई महत्व का ग्रन्थ उन्होंने प्रकाशित भी नही करवाया

---

[1] द्रष्टव्य बर्नार्ड बोसाक एण्ड हिज फ्रेण्ड्स (सपा० ज० एच० म्योरहैड)। वब उनकी विचारधारा का साराश आउट साइन्स आव फिलोसोफी आव रिलीजन (सी० बी० पी० II) नामक ग्रन्थ मे देते हैं।

[2] देखें इस पुस्तक का अध्याय 5 तथा आर० एफ० ए० होनले एव बी रसल द्वारा द नेचर आव ट्रूथ की आलोचना (माइण्ड 1906) जी० ई० मूर (माइण्ड 1907) जी० डाउस हिक्स (हिबट जनल 1907) एल० ए० रीड कृत कोरेस्पोण्डेन्स एण्ड कोहरेन्स (पी० आर० 1922)।

ये सिद्धान्त ही ऐसी वस्तुए है जो सत्यासत्य का भेद कर सकती हैं। पदावस्थित सिद्धान्त लेविस के अनुसार हमारे द्वारा अनुभव की व्याख्या किए जाने का वणन करता है। इसलिए जो होने वाला है वह किसी भी रूप मे इन सिद्धान्तो का उन्मूलन नही कर सकता। यदि हमारी रूचि, हमारी व्याख्या प्रणाली आदि मे परिवतन हो जाए तो वे भी परिवर्तित हो सकते हैं किन्तु इनका कभी खण्डन नही हो सकता।

इस प्रकार अनुभव किसी प्राग्भावी सत्य के खण्डन की दिशा मे कुछ नही कर सकता क्यो कि ये सत्य केवल विश्लेषण करने एव पदावस्थाओ को सयोजित करने के अतिरिक्त और कुछ नही करते। उनकी आलोचना की जा सकती है और इनमे सशोधन हो सकता है। किन्तु यह उसी आधार पर होगा कि इनमे कहीं विरोधाभास प्रस्तुत हो गया है। इस प्रकार लेविस प्राग्भावी सत्यो का बचाव कर पाने की आशा करते हैं और अथक्रियावाद की निमूलन शक्ति से तक की रक्षा कर सकते हैं। किन्तु जसे ही पदावस्थाओ को अनुभव पर लागू करने का प्रश्न उपस्थित होता है तो आकारी विचार कायम नही रहते और अथक्रियावादी परीक्षण पुन उभर कर सामने आ जाते हैं।

एन ऐनालिसिस आव नौलेज एण्ड वेल्यूएशन (1946)[1] मे लेविस अथक्रियावाद की सही प्रकृति जाच करते हैं। जॉन डीवी की रचनाओ मे भी अनुभववादी तकवाक्य एव मूल्यो को एक दूसरे से सबद्ध माना गया है। लेविस यह बताने का प्रयास करते हैं कि नीति शास्त्र ज्ञान मीमासा का एव अथ सिद्धान्त का गुम्बज है। इसके साथ ही वे इस अथक्रियावादी ढाचे म प्राग्भावी सिद्धान्त की स्थापना भी कर देना चाहते हैं जिससे यह सिद्ध होता है कि कुछ ऐसे तथ्य भी हैं जिसे आवश्यक सत्यो की सज्ञा दी जा सकती है। अथक्रियावाद एव आकारी विचारो के इस सयोग म ही लेविस की विचारधारा का अद्भुत रूप देखा जा सकता हैं।

---

[1] द्रष्टव्य सी० जी० हेम्पेल का रिव्यू (जे० एस० एस० 1947)।

अध्याय १३

हठीले तत्त्ववादी

पिछले कुछ अध्यायो मे प्रत्ययवाद पर बहुत कम कहा गया है, य प्रत्ययवादी यथार्थवादी आलोचना की एक के बाद दूसरी लहर के झोंकों से पूर्णत समाप्त नही हो पाए। बोसोके ने यथार्थवाद से सघर्ष किया तथा गलत प्रत्ययवादी विश्वासो के विरुद्ध भी (द मीटिंग आव एक्स्ट्रीम्स इन कण्टेम्पोरेरी फिलोसोफी, 1921)। मुरहैड, होनले एव अन्य बहुत से विचारको ने तो उन्नीसवी शती की चौथी दशाब्दी तक प्रत्ययवादी परम्परा को जीवित रखा। इन विवेचनात्मक वर्षों में प्रत्ययवाद ने भी नए रूपो का स्वाद चखा।

कुछ युवा प्रत्ययवादियों मे क्रिस्तानी धर्मवेत्ता भी थे जो ब्रेडले के परमात्मवाद एव व्यक्तित्वमूलक प्रत्ययवाद के बीच का कोई मध्यमार्ग खोज लेने म ही अपनी सुरक्षा महसूस करते थे। इस तरह उदाहरण के लिए गाड एण्ड पर्सनलिटी (1919) मे सी॰ सी॰ वैब ने ब्रेडल के विरुद्ध यह स्थापना की कि परमात्म केवल एक व्यक्ति होना चाहिए एव एक ससीम। ईश्वर के प्रवक्ताओं के विरुद्ध उन्होने यह कहा कि परम पुरुष अनन्त एव सर्वव्यापी होना चाहिए। उन्होने मनुष्यो को ईश्वर के[1] साथ साक्षात्कार कर सकने योग्य बताकर बोसाके को गहरा धक्का लगाया किन्तु उनका क्रिस्तानी आदर्शवाद अधिक सवेदनशील पाठको के लिए ही सुकर था।

दूसरे प्रत्ययवादी तर्कशास्त्र के ही प्रमुख विचारों को कायम रखा तथा उन विकसित भी किया। उनमे स उल्लखनीय हैं एच॰ एच॰ जोकिम जिनकी द नेचर आव ट्रुथ (1906) का सदर्भ हम पहले ही दे चुके हैं।[2] आक्सफोर्ड म तर्कशास्त्र के प्राध्यापक के रूप म उन्होने विद्यार्थियों की समूची पीढी पर अपनी विवेचनात्मक क्षमता का प्रभाव डाला फिर भी कोई महत्व का ग्रन्थ उन्होने प्रकाशित भी नही करवाया

---

[1] द्रष्टव्य बर्नार्ड बोसाके एण्ड हिज फ्रेण्ड्स (सपा॰ ज॰ एच॰ म्योरहैड)। वब उनकी विचारधारा का साराश आउट लाइन्स आव फिलोसोफी आव रिलीजन (सी॰ वी॰ पी॰ II) नामक ग्रन्थ म देते हैं।

[2] देखें इस पुस्तक का अध्याय 5 तथा आर॰ एफ॰ ए॰ होनले एव बी रसल द्वारा द नेचर आव ट्रुथ की आलोचना (माइण्ड 1906) जी॰ ई॰ मूर (माइण्ड 1907) जी॰ डाउस हिक्स (हिब्ट जर्नल 1907) एल॰ ए॰ रीड कृत कोरेस्पोण्डन्स एण्ड कोहरेन्स (पी॰ आर॰ 1922)।

इसके बावजूद भी उन्होंने स्पिनोजा कृत टेक्टेटस डी इण्टलेक्टस एमेण्डेशनें (मरणोपरान्त प्रकाशित 1940) नामक ग्रथ पर टिप्पणी प्रकाशित करवाने की योजना बनायी थी। उनके कुछ भाषणो का सम्पादन एल० जे० बक द्वारा लोजिकल स्टडीज (1948) नामक ग्रन्थ मे किया गया।

लोजिकल स्टडीज सच्चे प्रत्ययवादी अर्थों म तकशास्त्र का ग्रथ ह केवल आकारी या सतही अर्थों मे नही। इसका अधिकाश प्रस्तुत की धारणा के समालोचन मे लगा है जो उस समय विवाद का प्रचलित विषय एव शली थी।

यह समालोचना जितनी डिकार्टे के विरुद्ध है उतनी ही रसल व रसेल और डिकार्टे दोनो अपने विभिन्न तरीको से एस सत्यो की खोज म निकल थ जो तत्काल ही स्वय सिद्ध हो। जोकिम की यह धारणा ह कि कोई भी तकवाक्य पूणत सत्य नही हो सकता। उनकी यह धारणा उपरोक्त विचारधारा के बिल्कुल विपरीत ह। जिस प्रणाली को कोई सत्य व्यक्त करता ह उसके क्षेत्र म जितनी दूर तक ज्ञान हम ले जाय उनकी ही सच्चाई उसमें होगी। यह उस सीमा पर आकर गलत हो जायगा जब कोई प्रणाली अपूण रूप से उसे व्यक्त करती हो।

जोकिम की मान्यता ह कि सत्य या ज्ञान का उनके द्वारा किया गया विश्लेषण बनाये रख सकना सरल नही ह। दोष अपर्याप्त ज्ञान स निश्चय ही भिन्न ह। उदाहरण के लिए एक ज्यामितिक दोष निश्चय ही केवल किसी ज्यामितिक प्रणाली के अपर्याप्त ज्ञान स उपजी हुई स्थिति नही ह तो भी कोई प्रत्ययवादी यह नही मान सकता कि दोष एव अपर्याप्त ज्ञान म तत्व भिन्न ह। दूसर स्वय प्रत्ययवादी सिद्धान्त के सत्य या ज्ञान के विश्लेषण म भी कुछ अन्तर विरोध है। जो कि इस बात पर जोर दत हैं कि यह विचार के द्वारा अपनी सभावनाओ की शन शन पहिचान के साथ ही विकसित होन वाली कोई अवस्था है फिर भी इसके साथ साथ यह एक एसा प्रत्यय है जो सभी विकास और परिवतन स परे है। यदि वे पदाथ की प्रथम अवस्था पर बल देते है तो प्रत्ययवादी यह स्वीकारने से लगते हैं कि विकास केवल एक भूल स दूसरी भूल की ओर जाने का नाम है, यदि दूसरी बात स्वीकारत है तो वे सभी मानवी महत्वाकाक्षाओ स पर किसी सत्य को उजागर करते हैं—यह माग ब्रेडले के परमात्य की ओर ले जाता है अर्थात् विचार के ऐस प्रत्यय की ओर जो रहस्मय है तथा अगम्य है। किन्तु जोकिम का विश्वास है कि वाद विवाद द्वारा सत्य की शन शन विकसित होने वाली समयातीत अवस्थाओ का समन्वय किया जा सकता है क्योकि द्वन्द्वात्मकता के लिए विकास किसी आधार म निष्कष की ओर जाने का एक तार्किक माग है। यह पूर्ववर्ती स अनुवर्ती समयान्तर मे जाने का माग नही है। यह कहना कि विचारो के इतिहास म एक अवस्था दूसरी

से विकसित हुई है यह मानने से अधिक कुछ नही है कि यह भी अवस्था तार्किक रूप से दूसरी अवस्था पर आश्रित है और इस आधाराधेय का यह सम्बन्ध समयातीत है । जोकिम का प्रत्ययवाद तब एक के बाद दूसरे विचार सूत्रो द्वारा हीगल की द्वन्द्वात्मक प्रणाली स जुड जाता ह ।

यदि आक्सफोर्ड म जोकिम ने हीगल की पताका फहराय रक्खी तो उसक साथी ज॰ ए॰ स्मिथ न जो कि 1910 स लेकर 1935 तक नीतिशास्त्र ए । तत्ववादी दशन के प्राध्यापक थ इस प्रत्ययवाद के बिल्कुल विरोध म खड होकर बी॰ क्रोचे एवं जी॰ जण्टाइल की रचनाओ की ओर प्रवृत्त हुए ।[1] उन्होंन स्वय बहुत कम लिखा और वो एक अरस्तूवादी विद्वान के रूप म विख्यात थ तथा प्राय एक अध्यापक के रूप म स्नेह से याद किय जाते थ । इन्होंने अपने दशन का सामान्य लगाव क्रोच जन्टाइल के आत्मा क दशन' के प्रति प्रकट किया था ।

इटली का प्रत्ययवाद, ब्रितानी प्रत्ययवाद के समान ही उन्नीसवी शती के प्राकृतवाद क विरुद्ध एक प्रतिक्रिया थी । इटली म इसका प्रतिनिधित्व बहुत सी रचनाओ क लखक तथा भारी वस्तु स्थिति वादी आर॰ आर्दिगो द्वारा किया गया । और जसा कि बी॰ स्पेवेन्टा की रचनाओ म हुआ है हीगल को फिर इसके प्रवतक क रूप म स्वीकार किया[2] गया । परन्तु इटली के हीगलवादियो न यह भी किसी न किसी भांति स्पष्ट कर दिया कि व शिष्यत्व का यह जामा एक दूसरे तरीके स ही पहनेगें । इटली मे हीगलवाद की इस रूप म ठोस व्याख्या हुई कि वह एक तक शास्त्र होने की बजाय इतिहास दशन अधिक है । दूसरे जमन विद्वानो की भांति हीगल का भी मध्यरेखीय क्षेत्रो की ओर भांत भांत मानवीकरण कर दिया गया ।[3]

इस तरह मानवीकृत हीगलवादी स ही क्रोचे एव जेन्टाइल का प्रत्ययवाद विकसित हुआ । यहा यह बात महत्व की है कि क्रोचे[4] की प्राथमिक रुचि साहित्य

---

1 द्रष्टव्य उनक द्वारा लिखित निबन्ध फिलोसोफी एज द डवलपमेण्ट आव द नोशन एण्ड रीअलिटी आव सल्फ-कान्शसनेस (सी॰ बी॰ पी॰ 11)

2 देख जो मार्केसिनी कृत ला विटा एत इल पेन्सीअरो डी॰ आर आर्डिगो (1907) स्पेवेन्टा की बहुत सी रचनाए 1901 म उनके मरणोपरान्त जेन्टाइल द्वारा प्रकाशित करवाई गई ।

3 देखें जी डी रूगीरो कृत मोडन फिलोसोफी (1912) इसका अनुवाद ए एच हैल एवं आर॰ जी॰ कालिंगवुड द्वारा 1912 म किया गया ।

4 एच॰ विल्डन कार कन द फिलोसोफी आव बनेडटो क्रोचे एन इन्ट्रोडक्शन टू हिज फिलोसोफी (1922) सी॰ स्प्रिग कृत बेनेडेटो क्रोचे (1952) आर॰ आई॰

की ग्रोर थी तथा वे वाद-विवाद स ग्रलग थे। धीरे धीरे ही व दर्शन की ग्रोर प्रवत्त हुए। उन्होने साहित्यिक एव ऐतहासिक जिज्ञासाग्रो क प्रति ग्रपना लगाव नही छोडा। वास्तव मे इगलेण्ड मे तो उन्हे एक सौन्दयशास्त्री एक समालोचक एक इतिहासवेत्ता तथा इटली की ग्राजादी के प्रवक्ता के रूप म ही एक तत्ववादी होने ग्रपेक्षा ज्यादा प्रसिद्धि मिली। उनकी रचनाग्रो को वहा प्रचलित करने का कष्टसाध्य काय उनके गहरे प्रशसक ज० ए० स्मिथ तथा एच० विल्डनकार ने किया।[1]

क्रोचे न ग्रनुसार ग्रात्मा ही वास्तविकता है सत्य है। सत्य होना किसी न किसी मस्तिष्क की बहुविधक्रियाग्रो म से कोई एक होना है। क्रोचे किसी भी प्रकार के पारवर्तित्व (ट्रासडेंस) का विरोध करते हैं। ऐसा कोई भी सुभाव कि कही एक ऐसी सत्ता है जो मानवी ग्रात्मा से पूणत ग्रलग है चाहे वह वस्तु की ग्रपनी स्थिति ही (कान्ट) क्यो न हो या फिर कष्टानो 'ईश्वर' ग्रथवा प्राकृतवादियो की 'प्रकृति' का माश ही क्यों न हो। मन जिसे ग्रन्दर खोज नही सकता क्रोचे उसे मनगढन्त कहकर त्याग देते हैं। खोजना क्रोचे के ग्रनुसार एक सरल ग्रन्त दशन की क्रिया नही है यह तो क्रिया के ग्रन्दर ग्रौर बाहर दोनो ही ग्रवस्थाग्रो मे मन द्वारा ग्रपने ही ग्रन्दर स खोजे गए स्रोतो की विधि है।

कम ही सपष्ट है इस बात को ग्रभिव्यक्ति देना क्रोचे के ग्रनुसार हीगल की महत्वपूर्ण उपलब्धि थी। क्रोचे न ग्रपनी पुस्तक व्हाट इज लिविंग एण्ड व्हाट इज

पी० (1953) का क्रोचे विशेषांक। जी केस्टेलनो कृत बेनेडेटो क्रोचे (1936) एव ल ग्रोपेरा फिलोसोफी का स्टोरिका ए लिटरेरिया डी बेनेडेटो क्रोचे (1942) मे पुस्तको की एक विस्तृत सूची दी गई है। ग्रपनी ही दाशनिक स्थिति के बारे मे लिखा गया क्रोचे का स्वय का कथन माई फिलोसोफी म देखें जिसे ई एफ करिट द्वारा 1946 म इसी नाम स ग्रनूदित किया गया।

[1] पहले एक उत्साही व्यापारी थ जिन्होने ग्ररिस्टोटोलियन सोसाइटी के जरिय से लन्दन के किंग्सकालेज मे दशन की प्राध्यापकी प्राप्त की। इस समय उनकी ग्रवस्था 61 वष की थी 1918)। 1925 मे व लासएजेलस म दक्षिणी कली फोर्निया मे चले गए। उनका ग्रपना दशन लबनीज क स्थाणुवादी धार्मिक प्रत्ययवाद का ही एक रूप था, इसके कारण वे लासए जेलस क व्यक्तित्व मूलक वातावरण के ग्रनुकूल सिद्ध हो सकें उनकी पुस्तकें ए थ्योरी ग्राव मोनेडस (1922 एव कोजीट न्स कोजीटेटा (1930) किन्तु पहले बगसो को तथा फिर इटली क प्रत्ययवाद को ब्रितानी पाठको के समक्ष प्रस्तुत करने मे वे प्रख्यात हो गय।

डेड इन द फिलोसाफी आव हीगल (1907)[1] में कही है। क्रोचे कम ही सघर्ष है इस बात को जो उनकी अन्तर्दृष्टि का अनुभव था, एक औपचारिक अभिव्यक्ति देने में सफल हुए हैं। यद्यपि वे हीगल का आदर करते थे फिर भी वे अपने को नव हीगलवादी कहलाना पसन्द नहीं करते थे। वे हीगल के अन्तरिम आदर्श की प्रणाली से घृणा करते थे। उनकी दृष्टि में विकास ही सब कुछ था। अस्थाई व गतिशील प्रणाली से विकसित हुई गतिशील प्रणालो का नाम ही सत्य है। क्रोचे की व्याख्या के अनुसार यह विकास अपने ऊँच समन्वय में विमुखी द्वन्द्वों की ही कोई धारा है। क्रोचे के विचार में हीगल 'विपरीततामों' तथा 'विशिष्टताओं' के बीच उलझ कर रह गए। अच्छाई और बुराई सत्य एवं असत्य निश्चय ही सही विपरीत ताएं हैं और एक द्वन्द्वात्मक संघर्ष में तथा सहकारिता में वे एक दूसरे के करीब रहती हैं जबकि अच्छाई और सत्य इसके विपरीत मानसिक विकास के 'विशिष्ट रूप' हैं जो परस्पर सघर्षशील नहीं हैं और न उन्हें किसी बड़े सिद्धान्त में ही समन्वित किया जा सकता है।

क्रोचे इस तरह मन की ऐसी चार श्रेणियाँ निर्मित करते हैं एवं अपनी पहली चार कृतियों में से तीन या, जो उनके आत्मा के दर्शन (फिलोसोफी आव द स्पिरिट) के सिद्धान्त का निर्माण करती हैं, इन श्रेणियों की प्रकृति एवं उनके पारस्परिक सम्बन्धों का वर्णन करने में ही लगा देते हैं। वे सर्वप्रथम सौंदर्यशास्त्र सम्बन्धी एक पुस्तक (1902) से प्रारम्भ करते हैं। दर्शन की शुरुआत करने का अंग्रेजी की दृष्टि में यह एक विचित्र तरीका है क्योंकि इंग्लैंड में दर्शन परिवार के एक संदिग्ध सिपाही के रूप में ही उसका दर्जा निर्धारित किया गया है। सौंदर्य-शास्त्र का दार्शनिक महत्व इस तथ्य में निहित है कि एक कला की रचना एवं प्रशंसा करने में मन अन्तर्ज्ञान के स्तर पर ही कार्य करता। क्रोचे, मानसिक क्रिया के इसी स्तर की चर्चा करना चाहते हैं। सौन्दर्य शास्त्र उनके लिए अन्तर्बोध का विश्लेषण मात्र है। अपने इसी रूप में बहुत से दार्शनिकों द्वारा इसकी काफी

---

[1] क्रोचे ने अपनी सक्षिप्त रचना को सेगियो सुलो हीगल (1930) नाम से लिखा जिसका बाद में परिवर्धन एवं संशोधन हुआ। क्रोचे की यह आदत थी कि वे अपनी रचनाओं को प्राथमिक अवस्था में ही प्रकाशन के लिए दे देते थे, कई बार तो किसी विद्वत् समाज की कार्यवाही के लिए दे देते थे और तब एक पुस्तक के रूप में उसे प्रकाशित करने के लिए संशोधित करते रहते थे। पाठ्यक्रम एवं पुस्तक सूचि दोनों को पुस्तकाकार एवं पत्रों में प्रकाशित करने की प्रथम तिथि का ही हवाला मैंने दिया है और उसमें क्रोनो लोजिया डले ओपरे डल क्रोचे जो कि सा लेटरटूरा इटालियाना (1951) के 75 वें अंक में सम्मिलित किया गया है उसी का अनुसरण मैंने किया है।

मात्रा मे अवहेलना की गई है। वे प्राय दूसरे तथा सद्धातिक स्तर तक ही जा सके हैं। यह स्तर तार्किक विचार अथवा धारणा का है और क्रोचे ने इसकी व्याख्या लाजिक एज़ द साइन्स आव प्योर कान्सेप्ट नामक पुस्तक मे यह जाने बिना की है कि सभी सफल धारणाए अ तर्ज्ञान पर आधारित होती हैं।

इसी भाति यावहारिक धरातल पर दार्शनिको ने विचार के मित यी स्तर को उपेक्षित छोड दिया है। क्रोचे ने इसे बाद मे जीवन स्तर' (वाइटल लेवल) की सज्ञा दी है और इसी जरिए नीति शास्त्र का पक्ष पोषण किया है जहा हमारी 'मितव्ययी' क्रियाओ को वधारिक दृष्टि से वर्णित किया है। इन लोगो ने जिन्दगी के बुरे अथवा अच्छे रूप का निर्णय कर लिया है, बिना यह जाने कि किस रूप मे जीवन का यह क्रम चालू है। इस तरह ठास जीवन से सपक तुडाकर क्रोचे के मतानुसार (द फिलोसोफी आव द प्रेक्टिकल 1909) दशन एक कल्पना जगत् मे खो जाता है या फिर थोथी विचार सृष्टियो मे।

क्रोचे के मतानुसार मन इन विभिन्न श्रेणियो म निरन्तर भ्रमण करता रहता है और जिसका भी अ तर्ज्ञान उसे होता है उसके सबध म कोई विचार या धारणा वह बना लेता है और तब ताजी प्ररणा के लिए वह फिर अन्तर्ज्ञान के स्तर तक लौट जाता है—या फिर व्यावहारिक रूप से उस सिद्धान्त का परीक्षण करता है—और फिर सद्धान्तिक रूप से यावहार को समझने का प्रयास प्रारम्भ करता है।

इस तरह मन की गति चक्राकार है। विकासवादियो की भाति टेढी मेढी या द्वन्द्वात्मक नही। तो भी यह चक्र वाइको[1] की धारणा के जसा नही है जिसके अनुसार इस चक्र क मात्र रूपाकारो का पुन गठन होता रहता है। मन निरन्तर अपने स्रोत की ओर लौटकर ही आगे बढता है।

तब दशन मन के किस स्तर की उपज है? क्रोचे अपने ग्र थ द थ्योरी एण्ड प्रेक्टिस आव हिस्टोरियोग्राफी (1917) म बतात हैं कि दशन मन की गति म प्रकटे सामान्य सिद्धान्तो के निरूपण के अतिरिक्त और कुछ नही हो सकता दूसरे शब्दो मे दशन इतिहास का रीति विधान है। इतिहास मन के वास्तविक कम

---

[1] ये इटलीवासी इतिहास के दार्शनिक थे जिन्होने इटली के प्रत्ययवादियों को बहुत प्रभावित किया था। देखें क्रोचे कृत द फिलोसोफी आव जी बी वाइको (1911), अनुदित आर० पी० कोलिंगवुड (1913) तथा एच० फिश जी० बर्गिन कृत विको की आत्म कथा का अनुवाद (1944)। जायस कृत उपन्यास फिनेगन्स वेक का दार्शनिक ढाचा विको से ही प्रभाव ग्रहण करता है।

को व्यक्त करता है। दर्शन इतिहास की इसी प्रणाली का वर्णन करता है। बहुत से दार्शनिकों ने यह बात तो स्वीकारी ही है कि दर्शन प्राकृतिक विज्ञान का रीति विधान है। किन्तु क्रोचे के अनुसार प्राकृतिक विज्ञान अमूर्तीकरण का शिकार है। यदि विज्ञान का ऐतिहासिक दृष्टि से अध्ययन किया जाए और उसे मनुष्यों के मन की गति का एक अंश माना जाय, तभी हम उनकी सही प्रकृति को समझ पायेंगे। समझने का अर्थ ऐतिहासिक रूप में देखना है—क्रोचे की विचारधारा का यही केन्द्र बिन्दु है।

क्रोचे के अनुसार तब मन की गति दो प्रकार से है, विपरीतताओं के जरिए हुई उसकी द्वन्द्वात्मक गति, तथा विशिष्टताओं के कारण हुई उसकी चक्राकार गति। अन्य इटली के प्रत्ययवादी विचारक जिनमें मुख्यतः जेन्टाइल हैं इस दुमुखी वृत्ति को विरोधाभासी कहकर अमान्य करार देते हैं। यह कोई आकस्मिक घटना नहीं थी कि जेण्टाइल मुसोलिनी के प्रवक्ता थे।[1] उनकी विचारधारा क्रियावादी एवं एकाधिकारवादी थी। जेण्टाइल द्वारा प्रस्तुत विचारधारा (थ्योरी आव माइण्ड एज प्योर एक्ट, 1916) के अनुसार विचार की विशुद्ध क्रिया के अतिरिक्त कोई वस्तु सत्य नहीं है। उनके अनुसार शृंखला (पेंसियरो पेंसाटे) एक साथ सृष्टि कर्म भी है। 'प्रकृति केवल मृत प्राय विचार है-पेन्सियरो पेंसेटे प्रकृति को विचार के साथ इसी तरह जोड़ने से मन द्वारा प्रकृति बोध संभव है। अन्यथा प्रकृति को स्वायत्त-वस्तु ही माना जा सकता है और इस तरह वह मन के लिये सदैव अज्ञात ही रहेगी। इस प्रकार वस्तुपरकता की बाधाएं जेण्टाइल के दर्शन में पूर्णतः विलीन हो जाती हैं। मानवी विचार के विविध रूप सब 'क्रिया' में आकर सम्मिलित हो जाते हैं। सत्य उस क्रिया के अन्वेषण से ही अस्तित्वमान होता है। बोसांके वस्तुपरकता के इस छोटे भाग में जाने के प्रतिरोध में खड़े हो गए और आश्चर्य की बात नहीं है कि मूर और रसेल के अनुयायियों द्वारा भी जेण्टाइल के दर्शन पर सहानुभूति पूर्वक विचार न हो सका।

अंग्रेजी दार्शनिकों में जो इटालवी विचारधारा के बहुत निकट हैं खास तौर पर क्रोचे के, वह आर० जी० कोलिंगवुड हैं।[2] ये आक्सफोर्ड में चेयर आफ

---

[1] तुलना के लिए देखें पी० रोमेनल कृत क्रोचे वर्सेस जेन्टाइल (1947)। इसमें जीवनी भी है। देखें आर० डब्लू होम्स कृत आइडियलिज्म आव जेण्टाइल (1937) सी० पलिजी कृत 'द प्रोब्लम आव रिलीजन फोर द मोडर्न इटेलियन आइडियलिस्टस' (पी० ए० एस० 1923)

[2] द्रष्टव्य ई० डब्लू० एफ० टोमलिन कृत आर० जी० कोलिंगवुड (1953) आर बी मककेलम, टी एम नोक्स आइ ए रिचमण्ड आदि के निबंध में देखें। पी बी ए 1943 में। द आइडिया आव हिस्ट्री (1943) में टी एम नोक्स द्वारा

व्यक्त हुए हैं वे उसस मेटाफिजिल फिलोसोफी पर जे० ए० स्मिथ के वा॰ ग्रासीन हुए। सभी ग्रवस्थाओं मे तो नही किन्तु कुछेक मामलो म तो कोलिंगवुग भी महाद्वीपीय विचार के प्रति ग्रधिक ग्रास्थाशील दिखते हैं। मानवी सस्कृति ही उनका प्रमुख वध्य है। उनके तकशास्त्र एव उनक तत्वदशन उनके सौन्दय शास्त्र एव इतिहास सिद्धान्त क ग्रन्तगत हो ग्रा जाते हैं। वे इस सामान्य ब्रितानी धारणा क विरुद्ध खड़े होने *का तयार हैं कि भौतिकी ही सही ज्ञान का प्रकार ह* उनके एव क्रोचे के लिए समान रूप स इतिहास न कि भौतिकी हमे वस्तु की सही स्थिति स परिचित कराती ह। किन्तु यह एक ऐसा निष्कप था जिस पर केवल व ही पहुँचे।

एक मात्र दशन जो मनुष्य के लिए उपयोगी दिखाई दता ह–यह बात कोलिंगवुड ग्रपनी पुस्तक स्पेकुलम मेन्टिस (1924) म लिखते हैं–वह यही ह कि मानवी ग्रनुभव के मूल रूपो का सही ढग से विवचन हो।' यह बात काफी परिचित सी लगती ह। कोलिंगवड के इस कथन का हम यही ग्रथ लगा सकते हैं कि दाशनिक एक ज्ञान मीमासक ह। किन्तु कोलिंगवुड का ग्राशय बिल्कुल भिन्न ह। हम लोगों को कलाभ्यास म निरन्तर दखते ह उन्हे ग्रथ म प्रवृत्त देखते हैं *उन्ह विज्ञानादिक ज्ञानो म सलग्न पाते हैं ग्रौर ये ग्रपन द्वारा वरित जीवन मे* बहुत कम प्रसन्न दिखते हैं। किन्तु फिर भी उन्ह प्राय दूसरे लोगो का ग्रपना ग्रनुसरण करने का ग्राग्रह करते हुए देखा जाता ह। वे क्यो यह काम करते हैं ग्रौर उन्हे ग्रपने श्रम से क्या मिलता ह? ऐस ही ग्रनुभवो को कोलिंगवुड ग्रपने दशन का ग्राधार बना कर चलते हैं। य कलाकार के, सत के, वज्ञानिक ग्रादि के बहुविध ग्रनुभव हाते हैं। इनका परम्परागत ज्ञानमीमासा म चर्चित सवदनाए या प्रत्यक्षीकरण' नही ह।

लिखित ग्रामुख देखें। जी राइल कत **'मिस्टर कोलिंगवुड एण्ड द ग्रोण्टोलोजिक ग्रारगूमेण्ट"** (माइण्ड 1935), सी जे ड्यूकास कत **मिस्टर कोलिंगवुड ग्रान फिलोसोफीकल मेथड** (1936 जे पी), ए डी रिशी कत **द लोजिक ग्रान क्वेश्चन एण्ड ग्रान्सर** (माइण्ड 1943) ई ई हैरिस **कोलिंगवुड ग्रान ईटरनल प्रोब्लम्स"** पी० क्यू० (1951), हैरिस कत नेचर माइण्ड एण्ड मोडन साइस मे सशोधित रूप म यह निबध सम्मिलित किया गया है जो यह बताने का प्रयास मात्र है कि विज्ञान म हुए वतमान विकास एक दशन का पूर्वाग्रह रखते हैं जसा कि कोलिंगवुड ने ग्रपनी प्रारम्भिक रचनाओ मे रक्खा। उनमे कहीं वह ग्रनुभववादिता नही है जिसकी एषणा बहुत से विज्ञानमना दाशनिक करते हैं। देखें जी ग्रार म्यूर कत **"बेनेडेटो क्रोचे एण्ड ग्रॉक्सफोड"** (पी क्यू 1954)

अब एक दार्शनिक को इस प्रश्नभूमि पर कैसे बढ़ना चाहिए ? हो सकता है वे वह अपने आपको इस भूमि में सीमाधिकारी बना लेने में ही संतोष का अनुभव करें और विज्ञान के लिए अमुक सिद्धान्त कला के अमुक सिद्धान्त और अन्य के लिए कोई और। किन्तु अपने द्वारा नियुक्त ये सीमाधिकारी कौलिंगवुड के अनुसार अपने द्वारा दिए गए निर्णयों के कारण समादृत नहीं हो सकते। क्योंकि यह बात स्पष्ट है कि दार्शनिक के लिए खड़े होने के लिए कोई भौतिक आधार होना चाहिए और तब उसे शीघ्र मालूम हो जायगा कि जिस असंपृक्त भाव को ग्रहण कर पाने का नाटक उसने रच रखा था उसे केवल एक अहंभावी का प्रलाप कहकर समष्टि रूप में बहिष्कृत कर दिया जाएगा। इससे भी अधिक महत्वपूर्ण बात यह कि न तो कला, न धर्म, और न विज्ञान ही यह स्वीकार करेंगे कि उनकी कोई निर्धारित सीमाएं हैं और न यह मानकर चलते हैं कि मानवी व्यवहार के कुछ ऐसे क्षेत्र हैं जो उसकी पहुंच से परे हैं। कौलिंगवुड विज्ञान के इसी दुराग्रह (इम्प्रासीजेंस) को स्वीकारते हैं। वे कहते हैं कि तथ्य यही है कि कला विज्ञान एवं धर्म एक ही क्षेत्र में विभिन्न अवलोकनों के बनाए गए भिन्न भिन्न नक्शे हैं। ऐतिहासिक तथ्यों की समाप्ति के रूप में ये मन द्वारा अपना ही ज्ञान प्राप्त किए जाने के उदाहरण हैं।

क्या हम इससे यह निष्कर्ष निकालें कि दार्शनिक एक सच्चा नक्शा प्राप्त करने की दृष्टि से प्रमुख पराभावी है। बिल्कुल नहीं। कौलिंगवुड के अनुसार दार्शनिक के पास कलाकर्म, धर्मशास्त्र विज्ञान व धर्म के अलावा अपने निर्देश के लिए कोई अन्य स्थिति है ही नहीं। तो भी आज न तो कलाकार न धर्मशास्त्री और न वैज्ञानिक ही स्वकर्मों से परिचित है। प्रत्येक दार्शनिक के सम्मुख एक चकाचौंध कर देने वाला आइना रख देते हैं जैसे कोई कलाकृति, ईश्वर, प्रकृति या इतिहास। और उसे कहते हैं कि सत्य इन्हीं में निहित है। दार्शनिक कौलिंगवुड इस प्रत्यावर्तन को प्रत्यावर्तन के ही रूप में देखता है। वह जानता है कि इनके सिवाय सचाई से प्राप्त किए गए अनुभवों के अतिरिक्त कोई सत्य नहीं है। इनमें सीमित रूप में अपने ही चारों ओर से एक ऐसे आइने की तलाश दिखाई देती है जो उसके प्रतिबिम्ब को व्यक्त कर दे। वह भी जानता है कि कुछ दर्पण कम चकाचौंध प्रस्तुत करते हैं—इतिहासकार का दर्पण ऐसे अहंभाव को कम से कम प्रस्तुत करता है किन्तु वह यह सब उसी समय जानता है जब इतिहास में अपने आप को अध्यात्म के एक नीचे के स्तर तक उतार लिया है। अपने प्रतिबिम्बों की उन प्रतिबिम्बों से तुलना करके नहीं जो उसके दर्पण में उसकी सही प्रतिच्छाया प्रस्तुत करते रहे हैं।

स्पेकुलम मेण्टिस कौलिंगवुड के दर्शन को प्रमुख कथ्य के रूप में घोषणा करता है किन्तु फिर भी इस पुस्तक में जिस ढंग से उनके विचार

सतुष्ट नही थे। वहा पर भी दशन की स्थिति को अस्पष्ट छोड दिया गया था। *आध्यात्मिक क्रिया का प्रत्येक रूप दशन के साथ गुथ गया है क्योंकि ऐसा प्रत्यक* रूप एक ऐसा माग है जिसके जरिए मन अपने ज्ञान के विषय से परिचित होता है। किन्तु यदि दशन को इस भाति सर्वाधिक महत्व का मान लिया गया तो इसका अपना कोई क्षेत्र शेष नही रह जाएगा। दशन केवल कला, विज्ञान, एव धम आदि की अपनी सीमाओ के ज्ञान का नाम है।

एन ऐसे ऑन फिलोसोफीकल मेथड (1933) म इसके अतिरिक्त दशन को विशेष जाच मानकर चला गया है। वहां कोलिगवुड दशन की विधि या उसके तक को प्रकृति विज्ञान या गणित के तक से भिन्न सिद्ध करने का प्रयास करते हैं और इसी दौरान वे क्रमश वर्गीकरण परिभाषा, आदि के तार्किक प्रक्रिया की चर्चा कर देते हैं तथा यह बताने का प्रयास करते हैं कि दशन का स्पश पाकर ये प्रक्रियाए ही एक *विचित्र रूप ग्रहण कर लेती हैं। इस तरह उदाहरणाय प्रकृति विज्ञान मे जहा* वर्गीकरण से पदार्थों को एक प्रजाति मे एकत्र करने का प्रयास होता है, दाशनिक धारणाए इसके विपरीत इस तरह से सयुक्त प्रजाति नही है। उदाहरण के लिए यथाथ एव अच्छाई सभी वर्गीकरणो से परे है यहा तक कि आकारी तकशास्त्रीय वर्गीकरण मे भी यह विचित्रता देखी जा सकती है। प्रत्येक निणय नकारात्मक एव सकारात्मक होता है। निणय एक साथ एकाकी तथा समष्टिव्यापी होता है—शर्तात्मक एव *पदावस्थात्मक और निणय अनुमान भी होता है।*

इसी तरह दाशनिक परिभाषा प्रकृति विज्ञान की परिभाषा की तरह न होकर इस बात का प्रयास नही है वह प्रजाति का अलगाव करे। रिपब्लिक' म *प्लेटो द्वारा ग्रहीत विधि, दाशनिक परिभाषा का विशिष्ट उदाहरण है। राज्य को* प्राथमिकता आर्थिक ढाचे का आधार मानने क विचार से प्रारम्भ करके प्लेटो धीरे धीरे प्रत्यय की ओर अपना माग बना लेते हैं जो ही वास्तव मे यथाथ स्थिति है—(राज्य भी है)। एक दाशनिक परिभाषा वास्तव म इसी प्रत्यय आकार की खोज है जिसका सदभ देकर उसमे रही अपूण स्थितियो का पता लगाया जा सकता है। उसी भाति जिस तरह 'स्पेकुलम मेण्टिस' म कालिगवुड ने कला धम विज्ञान तथा इतिहास के 'स्थान *का पता दाशनिक सदभ देकर और दशन को वहा आत्म ज्ञान का प्रत्ययी भाव माना है।* इस तरह समझे जाने पर परिभाषा व वर्गीकरण ही दशन के दो मुख्य काय हैं। कोलिगवुड क अनुसार दशन विभिन्न आकारो के मान दण्ड मे किसी धारणा क निर्धारण करने का नाम है और यह काम न तो आगमन और न निगमन से ही समव है। क्योंकि दशन का प्रारम्भ न तो किसी सामान्यी करण से होता है और न उसका अन्त ही। इसके बावजूद इसकी अपनी ही एक कडी तक प्रणाली होती है।

'इतिहासवाद' के ऐसे (निबंध) में बहुत कम ऐसी बात है जिसे महत्व की कही जा सकती है।[1] निश्चय ही उनकी प्रणाली इस रूप में इतिहासवादी है कि वह स्वयं यह देखने का प्रयास करते हैं कि दार्शनिक लोगों ने किस भांति विचारों का सूत्रपात किया है और उन्होंने कौनसी प्रणाली वास्तव में अपनायी है। इसके बावजूद भी वे मानते हैं कि अभी भी दर्शन की बहुत सी समस्याएं हल होनी शेष हैं। उन्होंने दर्शन की परिभाषा एक स्थायी समस्या के हल निकालने वाले सुधारे प्रयास की संज्ञा देकर की है। अपनी इसी धारणा को बाद में उन्होंने घृणा से इस आधार पर त्याग दिया था कि प्लेटो की समस्याएं आधुनिक राजनीति विद् की समस्याओं से भी तो अलग थी।

अपनी आटोबायोग्राफी (1939) में उन्होंने इतिहासवाद में अपने संस्कारित हो जाने की बात को स्वीकारा है। अन्य दार्शनिक आत्मकथाओं की भांति कालिंगवुड द्वारा प्रस्तुत अपने बौद्धिक विकास का विवरण एक ऐतिहासिक वृत्तान्त के बजाय एक आदर्श संभावना के रूप में पढ़ा जा सकता है। कॉलिंगवुड के अनुसार उनके दार्शनिक विचार निरंतर क्रम में विकसित हुए अर्थात् पुरातत्व एवं इतिहास के अध्ययन से बढ़ते-बढ़ते अन्त में तत्व दर्शन की ओर विकसित हुए। यदि ऐसा है तो उनकी प्रकाशित रचनाएं उनके विश्वास का बड़े गलत ढंग से प्रतिनिधित्व करती हैं। क्रोचे के उन पर हुए प्रभाव के विषय में भी उन्होंने बहुत कम लिखा है। क्रोचे का प्रभाव उन पर काफी रहा।[2] वे कम से कम यह तो स्पष्ट करते हैं कि ऑक्सफोर्ड के शिक्षकों ने जो यथार्थवाद उन्हें समझाया था वे उससे असंतुष्ट थे।

---

1 कई बार अप्रत्ययवादियों द्वारा कॉलिंगवुड के प्रत्ययवादी प्रशंसकों द्वारा यह सुझाया जाता है कि मानसिक रुग्णता के 1933 से वे शिकार हुए थे वह सब उनकी अंतिम विसंगतियों से देखी जा सकती है। जब कोई इन अंतिम रचनाओं में निहित अनुमानात्मक मुक्तता का पठन करता है कोई यही सोच सकता है कि उनके समसामयिक भी विचारों की ऐसी ही असंगति से पीड़ित रहे होंगे।

2 उन्होंने क्रोचे एवं रुग्गीरो की भी दो पुस्तकों का अनुवाद किया। तुलना के लिए देखें क्रोचे पर द आइडिया आफ हिस्ट्री 1936 में लिखित किन्तु 1946 में प्रकाशित) में उनके विचार तथा ऑटोबायोग्राफी में उनके अपने सिद्धान्त। किन्तु कॉलिंगवुड क्रोचे से इस बात पर सहमत हो सकते थे कि प्रभाव की चर्चा करना मानवी विचार के विकास को यांत्रिक झटकों से चालू हुआ मानने जैसा है। कोई आदमी इससे उसी वक्त प्रभावित हो सकता है जिससे पहले से ही वह काफी सहानुभूत रहा हो। क्रोचे स्पेकुलम मेण्टिस की आलोचना इस आधार पर करते हैं वह मानवी आत्मा की क्रियाओं की विशिष्टताओं का पर्याप्त हल प्रस्तुत नहीं करता।

यथार्थवादियों की इतिहासहीन दृष्टि के कारण उन्हें बड़ा धक्का लगा। उनके अनुसार मूर एवं कुक विलसन भी ब्रेडले एवं बर्कले की भांति उन दार्शनिक सिद्धान्तों का खण्डन करने में निरत थे जो अपनी भीषण काल्पनिकता के कारण ही विद्यमान थे। पहले तो वे उन लोगों को इस आधार पर क्षमा करना चाहते थे कि वे इतिहास की बात नहीं कहकर दर्शन में ही उलझे थे। किन्तु शीघ्र ही उन्हें यह अनुभूति हुई इस प्रकार की क्षमा असामयिक है। बर्कले एवं ब्रेडले क्या क्या कहना चाहते थे। उसे न समझना अनधिकारी दार्शनिक होना ही है।

विचार करके, जैसा कि छोटे से छोटे उदाहरणों पर जैसे यह लाल गुलाब है यथार्थवादियों ने किसी भांति यह मान लिया है कि ज्ञान पारदर्शी है अर्थात् वह *मन* को वस्तु के समक्ष ले आने में ही निहित है। किन्तु जैसे ही हम अपने आप से यह पूछते हैं कि यह ज्ञान कैसे विकसित होता है तो पुरातत्व की एक खुदाई के समान हमें यह मालूम होता है कि दृष्टि डालने से कोई काम नहीं चलने का। किसी महत्वपूर्ण अर्थ में जानने का मतलब किसी प्रश्न का उत्तर खोजना ही है। ज्ञान एक प्रक्रिया है जिसमें पूछना एक अवस्था है तथा उत्तर देना दूसरी। यह छोटी छोटी अनुभूतियों के लिए भी सही है यद्यपि वहां उत्तर हमें इतना शीघ्र मिल जाता है कि हम सरलता से यह नहीं मालूम कर पाते कि कोई प्रश्न स्थिति भी प्रकटी थी।

ज्ञान के ऐसे सिद्धान्त से कोलिंगवुड का तर्कशास्त्र विकसित हुआ था। उन्होंने रसेल के तर्कवाक्यीय तर्कशास्त्र को इस आधार पर त्याग दिया तथा उसके साथ संलग्न सत्य के सिद्धान्त को भी कि वह प्रश्न एवं उत्तर से विलग हो जाता है। कोई तर्कवाक्य कोलिंगवुड के अनुसार केवल किसी प्रश्न के उत्तर के रूप में ही विद्यमान हो सकता है। प्रश्नोत्तर के माहौल में यदि उसका उत्तर सही है तो वह सत्य हो जाता है या फिर वह एक ऐसे उत्तर के रूप में प्रकटे जो जांच में सहायक हो। इस प्रकार न तो तर्कवाक्य और न कोई सत्य ही जांच पड़ताल की प्रक्रिया *से अलग कहीं विद्यमान है*। किन्तु रसेल के तर्कवाक्यीय सिद्धान्त में यही बात मान ली गई है।

एन ऐसे ऑन मेटाफिजिक्स (1940) में कोलिंगवुड प्रश्नोत्तर तर्कवाक्य को अपने तत्वदर्शन की प्रकृति का विवरण देने वाले रूप का शुभारम्भ मानते हैं। वे यहां परम्परागत इस सिद्धान्त का खण्डन करते हैं कि तत्व दर्शन 'विशुद्ध सत्ता' का सिद्धान्त है। रूपों के *मानदण्ड में अंतिम आश्रय बिन्दु के रूप में है। यह अन्तरिमता एक रूप* की अन्तरिमता जिसमें कोई विचित्रताएं नहीं हैं और इसी कारण जिन्हें किसी उच्चतर रूप पर आश्रित नहीं माना जा सकता, कोलिंगवुड के अनुसार यह सत्ता,

हीनता से अभिन्न है । एक ऐसा रूप जिसके विषय में आगे कुछ नही कहा जा सकता, वह स्वय कुछ नही । इस तरह विशुद्ध सत्ता जाच का विषय नही है ।

उनके विचार म इसके अलावा कुछ अन्तरिम पूव मा यताए भी हैं । पर्याप्ततात ठोस हैं' । प्रत्यक कथन, प्रत्येक तकवाक्य उनके अनुसार किसी प्रश्न का जवाब ही है । किन्तु प्रत्येक प्रश्न भी, अपने आप किसी पूव धारणा पर आश्रित है । जिसके बिना प्रश्न उठना सभव ही नही है । उदाहरण के लिए पुरातत्ववत्ता पूछता है 'इस खुदाई का क्या अथ है? तो वह यह मानकर चलता है कि खुदाई मे एक अथ है । ऐसी पूव धारणा को कोलिंगवुड सापेक्ष मानते हैं क्योंकि यह भी किसी प्रश्न का उत्तर हो सकती है । इस प्रश्न का क्या उस खुदाई म कोई अथ है ?'

इसके विपरीत यह पूवधारणा कि घटनाओ के कारण होते हैं एक अन्तरिम धारणा है । यह वज्ञानिक जाच पडताल स उत्पन्न नही होती है । यह किसी ऐसे प्रश्न का उत्तर नही है जिसे वज्ञानिक ने पूछा हो, यह तो उनकी प्रश्नावलिया की पूव धारणा है या कम से कम इसका ऐसी पूव धारणा के रूप म उपयोग होता रहा है । कोलिंगवुड यह स्वीकारने के लिए बिल्कुल तयार है, पूव धारणाए समय समय पर बदलती रहती हैं किसी एक ऐतिहासिक युग म उनके विचार से पूवधारणाओ का एक पुंज (कोन्स्टेलेशन) कभी इस ओर कभी उस प्रकार की जाच को अनुशासित करता है । जीवशास्त्र की पूवधारणाए भौतिकी की पूव धारणाओ से भिन्न होगी । ये पूर्ण धारणाए युगपद् विचाय होनी चाहिए अर्थात एक साथ इन्ह माना जाना सभव होना चाहिए । इनके पारस्परिक सबधो तथा जाच के विकास क्रम म कालिंगवुड सुझाव देते हैं कि इसके साथ ही तनाव का तत्व मानना आवश्यक है । इस तनाव पर विजय प्राप्त करने मे ही वे पूर्ण धारणाए बदल जाती हैं । वे इस आधार पर त्याग नही दी जाती कि वे दोष पूण है । सत्य एव झूठ के सिद्धान्त उन पर लागू नही होते क्योंकि वे तकवाक्य नही है और न प्रश्नो के उत्तर ही हैं, उन्हे केवल मात्र छोड दिया जाता है ।

कालिंगवुड के पहले के बहुत से दार्शनिको ने अन्तरिम पूर्ण धारणाओ के प्रति अपना लगाव दिखाया था किन्तु उन्होंने प्राय यह माना है कि एक तत्ववादी को ऐसी पूर्ण धारणाओं के सत्य को प्रदर्शन योग्य बनाना चाहिए या फिर उसे किसी निगमनात्मक प्रणाली का अग बना देना चाहिए । यदि कोलिंगवुड सही ह तो ऐसी महत्वाकाक्षाए केवल गलतफहमियो से पदा होती हैं । पूर्ण धारणाए तकवाक्य नही हैं, पूव धारणाओं का कोई विधान नही हो सकता । अपनी प्रकृति से ही उन्हे प्रमाण की आवश्यकता नही हैं । एक दूसरे से उनके सबध बताने का प्रयास करना और उन्हे किन्ही प्रमेयो को निष्कष मानकर उनके विषय मे यह मानना है कि वे अन्तरिम

स्थिति से कम है। अधिक स अधिक तत्वदशन जो कुछ कर सकता है—एक विशेष जाच म प्रयुक्त पू णि धारणाओ से शनै शन किसी ऐतिहासिक स्थल पर आकर युक्त होकर आगे बढता है। बिना कुछ जाने वास्तव मे उ होने यही किया है। अरस्तू एक महान तत्ववादी थ क्योकि वे यूनानी विज्ञान की पूणि धारणाओ को प्रकाश म लाये। काण्ट इसलिए महान थे क्योकि ‍यूटनवादी भौतिकी के लिए उ होने ठीक वसा ही ही काय किया। जब यूनानी दाशनिको ने देवताओ के विरुद्ध ईश्वर पर विचार करना प्रारम किया तो वे घूम फिर कर किसी विज्ञान की विशिष्ट जाच पडतालो के विविध रूपों के एकीकरण का सदम दे रहे थे। सत्रहवी सदी म प्रकति' न भी वैसा ही काय किया और जब स्पिनोजा ने कहा था कि 'ईश्वरप्रकति है तो वे इससे अधिक कुछ नही कह रहे थ कि प्रकति और ईश्वर सबधी पूण धारणाओ म तादात्म्य है।

इम तरह कोलिगवुड दाशनिक विचारो की सृजनवादी मा‍यता को उदधृत करते हैं जिस हमने उन्नीसवी सदी क दशन मे दखा है जहा 19वी शती की सृजन वादी जाच पडताल मनोवज्ञानिक व जीवशास्त्रीय थी कोलिगवुड मूल भूत सृजनवादी विनान का आधार इतिहास मे देखते हैं। यहा तक कि प्राकत विनान भी मूलत ऐतिहासिक है यह बात वे अपनी पुस्तक **द आइडिया आव नेचर** (मरणोपरान्त 1945 मे प्रकाशित) म कहते हैं। इसके तथ्य इस बात म निहित है किसी एक समय म किसी अमुक अमुक स्थान म अमुक अमुक प्रकार के पयवेक्षण किए गए यह बताने के लिए कि ऐसी ही ऐतिहासिक जाच करन की आवश्यकता है। वनानिक सिद्धा‍त भी किसी न किसी के विचार तो हैं ही गुरुत्वाकषण के शास्त्रीय सिद्धान्त को समभना यूटन का विचारधारा की ‍याख्या करना भी है। इस तरह कोलिगवुड इस निष्कष पर पहुचते हैं प्राकृत विनान भी विचारो का एक अवस्था के रूप मे ही विद्यमान है और ऐतिहासिक सदम मे सदा स ही विद्यमान रहा है अपन अस्तित्व के लिए वह ऐतिहासिक विचारधारा पर आश्रित है। विनान को कोई उस समय तक नही समभ सकता जब तक वह इतिहास को न समभता हो और कोई इस प्रश्न का उत्तर भी उस समय तक नही दे सकता कि प्रकृति क्या है, जब तक वह यह न जाने कि इतिहास क्या है ?

ह्यूम न यह बताने का प्रयास किया था कि तत्ववादी प्रश्न उस समय तक अनुत्तरित है जब तक उ हे मनोवज्ञानिक प्रश्नो का रूप न दे दिया गया हो इस प्रश्न का कि किसी कारण की सही प्रकृति क्या है ? वे ऐसे रूपा‍तरित करते हैं—हम यह विश्वास कसे कर सकते हैं कि अ ब का कारण है। इस पर आपत्ति करते हुए कोलिगवुड कहते हैं कि मनोविनान विचार का विनान न होकर अनुभूति एव स‍वेदना का विज्ञान ही है और तत्वदशन की चर्चा मे उसका प्रसग अथहीन

है। सही प्रश्न को जो उत्तर योग्य तथा सदमजय हो इसी प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है कि किन्ही कार्य-कारणो पूर्ण धारणाओ की वैज्ञानिक जाच पडताल करने वाले विचारो के इतिहास के कौन से क्रम म मानकर चलते हैं। इतिहास तब पूर्णत तत्वदर्शन को भी अपने म समेट लेता है। स्पेकुलम मण्टिम मे इतिहास अपने आध्यात्मिक क्रियाओ के दर्शन के करीब पडता है तो इसके स्तर से उसका दर्जा नीचा है। अब इतिहास ही जाच का एक ऐसा रूप है जिसमे मानवी आत्मा सुरक्षा का अनुभव करती है।

प्रत्ययवाद की एक कट्टर शाखा जिसका निकट सम्बन्ध ब्रितानी दर्शन की रूढिगत परिपाटियो से रहा है, का प्रवर्तन जी० एफ० स्टाउट[1] ने किया। उनकी पुस्तक माइण्ड एण्ड मैटर (1931) ब्रितानी प्रत्ययवादी परम्परा की बहु उल्लिखित कृतियो म से एक है और अभी अभी हो जिसके मरणोपरान्तक प्रकाशन मे (गोड एण्ड नेचर 1952) उनका तत्वदर्शन अधिक विस्तार म वर्णित है।

जैसा कि हमने पहले ही कहा है उनके तत्वदर्शन का प्रमुख विचार विमत एक्य' का विचार था। यह विचार प्रत्ययवादियो के ठोस समष्टि के सिद्धान्त के जैसा ही कार्य करता है उनके समष्टि सिद्धान्त म मूल तत्व के रूप म यह बहुत जाना पहचाना विचार है। स्टाउट का समष्टि सिद्धान्त[2] जिस पर अधिकाश कुक विलसन का प्रभाव है इस परम्परागत धारणा के खण्डन से प्रारम्भ होता है कि वस्तुए व्यष्टिया हैं और उनके गुण समष्टिया। एक वस्तु अपने गुणो से ऊपर एव परे की कोई सत्ता नही है यदि गुण समष्टिया हैं तो कहा से कोई वस्तु अपनी व्यष्टि प्राप्त कर सकती। व्यष्टि के लिए स्थान उस समय हो सकेगा जब गुण स्वय

---

[1] द्रष्टव्य अध्याय अष्टम् देखें जोन विज़डम कृत 'प्रोबलम्स आव माइण्ड एण्ड मैटर' (1934) सी० डी० ब्रॉड द्वारा माइण्ड एण्ड मैटर' का रिव्यू (माइण्ड 1932)

[2] द नेचर आव यूनिवर्सल प्रोपोज़ीशन्स (पी० बी० ए० 1921 स्टडीज में पुनर्मुद्रित) एण्ड यूनिवर्सल्स अगेन (पी० ए० एस० एस० 1936) देखें गॉड एण्ड नेचर (फुटनोट 77 म दी गई पुस्तक सूची आलोचना के लिए देखें गोष्ठी आर द करेक्टर्स आव पर्टीकुलर थिंग्स यूनिवर्सल और पर्टीकुलर) इसके साथ प्रकाशित जी० ई० मूर स्टाउट हिक्स आदि की रचनाए भी देखें पी० ए० एस० स० 1935 एन के स्मिथ कृत द नेचर आव द यूनिवर्सल्स (माइण्ड 1927) एच० नाइट कृत स्टाउट ऑन यूनिवर्सल्स (माइण्ड 1936) आर० आई० आरोन कृत द सेंसेज आव द वर्ड यूनिवर्सल्स (माइण्ड 1936) डी० ज० ओकोनर कृत स्टाउटस थ्योरी आव यूनिवर्सल्स (ए० जेपी० 1949)।

व्यष्टियाँ हो जाए। दो बिलियार्ड गेंदों के गुण उनकी दृष्टि में उतने ही विशिष्ट हैं जितनी वे दोनों गेंदें हैं। प्रत्येक गेंद की अपनी सफेदी है, उसकी अपनी गोलाई है, उसकी अपनी चिकनाई है। यहाँ तक तो वे नामवादियों के साथ सहमत हैं किन्तु वे उनकी तरह यह निष्कर्ष नहीं निकालते कि गुण केवल नाम के हिस्सेदार होने के अतिरिक्त कुछ नहीं करते। विभिन्न सफेदियाँ' उनके अनुसार एक ही प्रकार के रूप हैं और इसलिए वे ऐक्य को तृतीय करती हैं यह एक ऐसी एकता है जिसमें अनेकता भी निहित है। सफेदी' उनके दृष्टिकोण से उन सभी विशिष्ट सफेदियों की इकाई है। वह उस एकता से परे और आगे कुछ नहीं है जिस प्रकार एक वस्तु कुछेक पदावस्थाओं की इकाई है—वह कोई तत्व नहीं। आत्म अनुभवों की इकाई है। वह विशुद्ध अहं नहीं है—प्रत्येक दशा में कोई विचरित इयत्ता जिसकी कल्पना व्यष्टियों की इकाई से परे की गई हो। स्टाउट के दर्शन में व्यष्टियों की विभक्त इकाई में रूपान्तरित हो गई है।

क्या कोई सर्वव्यापी इकाई है जिसमें इकाई के ये विभिन्न प्रकार अपना स्थान रखते हैं स्टाउट का विचार था निश्चित ही ऐसा होना चाहिए — गोड एण्ड नेचर में उन्होंने रसेल के विरुद्ध कुछ तर्क दिए हैं। उन्होंने प्रत्ययवादियों की स्थिति सम्बद्ध रसेल के इस कथन को स्वीकारा है प्रत्येक वस्तु जो पूर्ण नहीं है वह आंशिक हैं और स्पष्ट शेष जगत में व्याप्त अपने पूरक भाव की सहायता के बिना उसका अस्तित्व में रहना संभव नहीं है।[1] इस तरह समष्टि से न्यून कोई भी स्थिति स्वायत्त नहीं हो सकती। रसेल ने इस धारणा का दूसरी धारणाओं के साथ तालमेल बैठा दिया था और कहा था कि समष्टि के किसी भी इकाई अंश के जरिए सैद्धान्तिक रूप से पूर्ण समष्टि के विषय में कहा जाना संभव है—रसेल की विचारधारा की दिशा मूलत इसी ओर गतिशील रही और स्टाउट उनकी दूसरी धारणा का विरोध करके उसे त्याग देते हैं।

स्टाउट की मान्यता है कि प्रत्येक अंश कुछ ऐसे प्रश्न उपस्थित करता है जिसका इस विचारधारा में कोई उत्तर नहीं मिलता और इस प्रकार वह अपने आपको विशाल ऐक्य के अंश के रूप में ही फिर प्रकट करता है किन्तु उपस्थित हुए प्रश्नों का उत्तर अकेले उस अंश पर विचार करने से प्राप्त नहीं हो सकता। समष्टि की प्रकृति का यथोचित विवरण देने के लिए हमें अपने 'सम्पूर्ण अनुभव का ब्यौरा देना होगा। तो भी हम प्रश्नाकुलता से पूर्णत मुक्त हो जाएंगे यह

---

[1] द्रष्टव्य एन० के० स्मिथ का निबन्ध द नेचर आव यूनिवर्सल्स तथा जी० राईल कृत प्लेटोज पारमेनिडिज (माइण्ड 1939)।

सभव नही लगता। इसी सीमा तक स्टाउट अपने आपको अनिश्वरवादी मानकर प्रसन्न हैं और ब्रेडले के पक्ष मे अपना मच खडा करते हैं। किन्तु ब्रेडले की इस धारणा को वे नही स्वीकारते कि ये अश अत विरोधी है। स्टाउट के लिए वे समष्टि के शुद्ध अश हैं। वे केवल मात्र अपनी अपूर्वता मे वहा खडे रहते हैं। इस तरह अनुभववाद को त्याग बिना ही स्टाउट प्रत्ययवादी होने की आशा करते हैं।

अब समस्या यही है कि विविध इकाइया जिनकी ओर अनुभव हमे ले जाता है वे मिलकर किस प्रकार एक इकाई का निर्माण करती हैं। गभीर समस्या तो उनकी दृष्टि मे मन एव पदाथ के बीच प्राट द्वैत एव अतारतम्य रहने के कारण प्रस्तुत हो जाती है। यह अतारतम्यता निश्चयत ही परम नही है क्योंकि मेरी मन की क्रियाए मेरे चारो ओर व्याप्त जगत् मे ही प्रवाहित रहती हैं—मैं एक टेनिस के खिलाडी होने के सम्बन्ध मे केवल गेंद एव रैकेट से किसी योजना की शुरूआत कर सकता हूँ। तो भी इस सीमा पर आकर भी अतारतम्यता का कोई न कोई मानदण्ड तो प्रकट हो जायगा क्योंकि भौतिक पदाथ आत्म नही है।

भौतिकवादी एकता अवश्य प्राप्त करले किन्तु उसे तब मन को पदाथ की बलिवेदी पर चढा देना होगा उससे उपजा मानना होगा। 'माइण्ड एण्ड मैटर' का अधिकाश ऐसे भौतिकवादी हलों की आलोचना ही है। स्टाउट का भौतिक तक यह है पदाथ कभी कभी मन जसी अपने से सवथा भिन्न किसी अवस्था को उत्पन्न ही नही कर सकता। इस बिन्दु की स्थापनाथ ह्यूम की आलोचना के विपरीत भी, वे इस दृष्टिकोण का बचाव करते हैं कि कोई एक कारण न केवल किसी वस्तु का पूववर्ती किन्तु किसी काय' का 'बोध गम्य' आकार भी हो सकता है—एक कारण का होना ऐसी ही युक्ति है जिसके जरिए यदि हम पर्याप्त व्यापक एव परिशुद्ध ज्ञान की उपलब्धि कर सकते है, अपितु हम यह भी देखना चाहिए कि कसे व क्यो कोई काय निजी कारण से तार्किक आवश्यकता के रूप मे प्रकट होते हैं। कारण एव काय दोनो की एक ही 'सृजन प्रकृति' होनी चाहिए इस प्रकार ह्यूम के विरुद्ध यह सही नही है कि अमूत रूप म विचार किय जाने पर कोई वस्तु कम दूसरी का कारण बन सकती है। विशेषत जो अमानसिक हैं वह कभी भी मानसिक का कारण नही हो सकती।

यह ऐक्य प्राप्त करने का एक स्थाणुवादी (मानडिस्टिक) माग भी है। इस माग पर वाड के प्रभाव म आकर स्टाउट जान के लिए प्रेरित हो गए थे। भौतिक पदाथ छद्मवेश मे आत्म ही है। किन्तु ससार को हम जसा अनुभव करत हैं वह ससार निश्चय आत्मो की ईकाई नही है और स्थाणुवादी इस छोट से तथ्य का भी स्पष्टीकरण नही दे सके।

स्टाउट का अपना हल यह है कि मन शरीर स्थित मन ही है। कार्टेजियन द्वंद्वात्मकता के विचार की भांति वह विशुद्ध आत्म नहीं है—प्रत्येक भौतिक पदार्थ मनोयुक्त होना चाहिए चाहे वह अपने आपमें केवल मनोमय न हो। इसी प्रकार मन एवं पदार्थ के द्वैत का समन्वय किया जा सकेगा और उनमें तारतम्य देखा जा सकेगा। 'माइण्ड एण्ड मैटर' में वे यह निष्कर्ष प्रस्तुत करते हैं कि प्रकृति एक समष्टिव्यापी एवं शाश्वत मन की अभिव्यक्ति करती है। इस धारणा का अधिक गंभीरतापूर्वक विचार करने का काम उन्होंने अपनी पुस्तक 'गाड एण्ड नेचर' के लिए रख दिया था जिसे आजीवन वे प्रकाशित नहीं करवा सकें और न कभी पूर्ण ही कर सके। तथ्य यह है कि वे दैनिक जीवन से भिन्न प्रकार के अनुमानों को वे सहजता से अपनी स्वीकृति नहीं देना चाहते थे। इसके साथ यह तो स्पष्ट है कि उनका तमाम तत्वदर्शन एक ऐसे मन का विचार प्रस्तुत करता है जो सम्पूर्ण प्रकृति का एकता का 'आधार' है। उनका तर्क है कि हमारे प्रस्तुतीकरण मूलतः अपूर्ण होते हैं और उस वस्तु का संदर्भ देते हैं जिसके अंग वे हैं। पदार्थ स्वयं प्रकृति का अंश है और वह ऐसे प्रश्नों को उजागर करता है जिनका उत्तर समष्टि से न्यून कोई इकाई नहीं दे सकती। हमारा स्वयं मन भी इस तथ्य पर संगठित होता है कि इसके समक्ष विचार का एक मात्र लक्ष्य है—सम्पूर्ण समष्टिभाव ही वह विचार है मन चाहे उस समष्टिभाव का बोध कितने ही अल्पांश में क्यों न करे। तब समष्टिभाव एक इकाई होनी चाहिए किन्तु यह उस समय तक इकाई नहीं हो सकती जब तक कि यह मनोमय न हो। क्योंकि अन्यथा इसकी इकाई भौतिक तत्व एवं आत्म तत्वों के बीच में विभक्त हो जाएगी। समष्टि की इकाई उसके अंशों का संयुक्त नहीं करती यह तो एक विभक्त इकाई है। इस तरह स्टाउट का समष्टिव्यापी मन क्रिस्तानी ईश्वर के बहुत नजदीक पहुंच जाता है ब्रेडले के परमात्म से उसका संबंध उतना नहीं है।

अन्य ब्रितानी तत्ववादियों ने महाद्वीपीय दर्शन में से कोई न कोई प्रेरणा अवश्य ग्रहण की है। एच० जे० पैटन मूलतः इसी बात से संबद्ध रहे हैं कि वे काण्ट के कार्य की पुनर्व्याख्या प्रस्तुत करें। उनका 'काण्ट्स मैटाफिजिक्स आव एक्सपीरिएन्स' (1936) विशेषतः काण्ट के[1] 'क्रिटीक आव प्योर रीजन' की उल्लेखनीय टीका है।

---

[1] उनकी अधुनातर कृति 'मोडर्न प्रेडिकामेण्ट' (1955) धर्म दर्शन पर लिखी गई पुस्तक है। धार्मिक आस्था का एक मात्र आधार धार्मिक अनुभव है आध्यात्मिक युक्ति के विरोध में किन्तु काण्ट द्वारा वस्तु की स्वायत्तता पर किए गए विचार की दिशा में ही वे सोचते हैं कि दर्शन कम से कम यह तो प्रदर्शित कर सकता है कि विज्ञान द्वारा देखा गया संसार यथार्थ को वास्तव में खपा नहीं सकता—ए० बी० गिबसन द्वारा आर० एम० 1956 में प्रस्तुत रिव्यू देखें।

एच० एफ० हैलेट द्वारा अपने ग्रंथ एटरनिटास (1930)[1] में स्पिनोजा की विचारधारा की तफसीरी तथा व्याख्या की गई है तथा उसी क्रम में एलक्जेण्डर एवं व्हाइट हेड की आलोचना की गई है। उनका प्रमुख उद्देश्य यह बताना है कि दर्शन अनुभव के विवरण में कहीं कमजोर नहीं रह सकता। हैलेट इस वर्णन को संघठनवाद (हेगल के ढंग से बिल्कुल नहीं) कहते हैं। इसका उद्देश्य अनुभव के विविधरूपों को अन्तरिम यथार्थ से निगमित करने का प्रयास होना चाहिए। संक्षेप में हैलेट वस्तु स्थितिवाद से किनारा कर लेते हैं। बहुत से अन्य वैज्ञानिक भी विभिन्न मार्गों से इसी निष्कर्ष पर पहुंचते हैं। आज भी स्काटीय विश्वविद्यालयों में प्रत्ययवाद दर्शन को एक मूलभूत प्रबल धारा मानी जाती है।[2]

संयुक्त राज्य अमरीका में प्रत्ययवाद अपने विभिन्न रूपों में आश्चर्यजनक ढंग से प्रचलित हुआ। किसी भी वर्तमान प्रत्ययवादी को उस पर वह अधिकार आज तक नहीं मिला जितना एक बार रोयस को मिला था। यहाँ उनके नाम गिनाना बेकार है और अमरीकन प्रत्ययवाद के विभिन्न प्रकारों के बीच भेद करना एक ऐसा कार्य है जो किसी भी इतिहासकार को शीघ्र सठिया देने के लिए पर्याप्त है। *यदि तीन लेखक डब्लू० ई० होकिंग, बी ब्लेनर्ड एवं डब्लू० एम० अरबन को* ही संक्षिप्त विचार के लिये ले लिया जाय तो वह इस आशा में है, बजाय इस निश्चित विश्वास के साथ, कि वे ही अमरीकी प्रत्ययवाद[3] की उल्लेखनीय धाराओं के प्रतिनिधि रहे हैं।

---

1 द्रष्टव्य सी० डी० ब्रोडकृत प्रोफेसर हैलेट्स एटरनिटास (माइण्ड 1933)।

2 उदाहरण के लिए देखें सी० ए० कम्पबैल कृत स्केप्टिसिज्म एण्ड कन्स्ट्रक्शन (1913), ए० डी० रिशीकृत द नेचुरल हिस्ट्री आव माइण्ड (1936) जोन मैक कृत द बाउण्ड्रीज आफ साइंस (1913) एवं डी० एम० मैककिनान द्वारा पी० ए० एस० में दिया योगदान। उनमें से अधिकांश दार्शनिकों ने अपने दार्शनिक जीवन का एक भाग उत्तरी सामा क्षेत्र पर *बिताया किन्तु स्कॉटलैण्ड ने सदैव ही उनके* अनुकूल वातावरण प्रस्तुत किया है। माइण्ड एवं स्कोटीय फिलोसोफिकल क्वाटरली (1950) के बीच का अन्तर स्पष्ट है। कैम्ब्रिज में एक नीति सिद्धान्तवादी के रूप में प्रख्यात ए० सी० एविंग ने भी प्रत्ययवाद की एक शाखा का प्रवर्तन किया, इसमें स्टाउट से कुछ साम्य था। द्रष्टव्य उनकी कृत आइडियलिज्म ए० क्रिटिकल सर्वे (1934)।

3 कन्टेम्पोरेरी अमेरिकन आइडियलिज्म के दो भागों (स० जी० पी० ऐडेम्स एवं डब्लू० पी० मोण्टेग्यू) बहुत से दार्शनिक सूत्र भी हैं तथा उनके साथ पुस्तक सूची भी है जिसमें प्रमुख अमरीकी प्रत्ययवादियों के नाम हैं जिसमें से जी० पी०

हॉकिंग की अनेक पुस्तकों में से ह्यूमन नेचर एण्ड इट्स रिमार्किंग (1918) नामक जो पुस्तक सर्व प्रसिद्ध है वह नैतिक धार्मिक मान्यता को प्रकट करती है जो प्रबल रूप में अमरीकन प्रत्ययवाद के पीछे निहित है। ब्रेडले या मेक्टेगर्ट की भांति इनके पास वादविवाद की ठोस योग्यता नहीं है। हॉकिंग की दृष्टि एक साथ 'नैतिक' एवं धार्मिक है। उनके दर्शन का प्रारम्भ इस धारणा से होता है कि सृष्टि का कोई अर्थ है।' प्रकृतिवादी विचारकों की तरह इस बात का खण्डन करना दार्शनिक कहलाने के समस्त आधारों को त्यागना है। हॉकिंग की दृष्टि में इसके लिए नग्न सत्य नहीं हैं। प्रत्येक वस्तु का अर्थ है या उसका 'मूल्य' है। हो सकता है यह अर्थ सदैव स्पष्ट न हो। अनुभव हमें बताता है कि वस्तु सम्बन्धी अपनी धारणाओं का यदि हम विस्तृत करें जिसे करने में कवि एवं रहस्यवादी हमारी सहायता करते हैं तो ऐसे ऐसे मूल्य प्रकट होते हैं जिन्हें पहले हमने अनदेखा कर दिया था। इस तरह से एक दार्शनिक के लिए वह विश्वास करने का अर्थ, एकान्तिक विश्वास नहीं है तथ्यों की आन्तरिक संगति न होकर यह उसका अन्धापन ही है जो उसे कभी कभी वे मूल्य देखने से वंचित कर देता है जो दैनिक अनुभवों की भीड़ के रूप में उसके समक्ष प्रस्तुत हो जाते हैं।

समष्टि में 'अर्थ' देखना हॉकिंग की दृष्टि में उसे आत्म के रूप में देखना होगा और इस सम्बन्ध में रहस्यवादी की अन्तर्दृष्टि हमें सत्य के जितना करीब

एडेम्स, एम० डब्लू० कल्किन्स जैसे अदम्य परमात्मवादी तथा जी० वाटस कनिंघम के नाम सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं। इसे जी० एच पामर को समर्पित किया गया है जो हार्वर्ड में जेम्स रॉयस एवं सण्टयाना के सहयोगी थे तथा बहुप्रशंसित शिक्षक भी थे। द्रष्टव्य कन्टेम्पेरेरी आइडियलिज्म इन अमेरिका (सं० सी० बैरेट 1932)। इसके अलावा अन्य समसामयिक अमरीकी तत्त्ववादियों में जो प्रत्ययवादी धारा से अलग हैं और सर्वाधिक चर्चित हैं वे हैं सी० डी० डयूकास जिनकी कृति नेचर माइण्ड एण्ड डेथ (1951) दार्शनिक निबन्धों की एक लम्बी शृंखला का सार संकलन है। वे विशेषतः नीति सिद्धान्तवादी तथा सौन्दर्यशास्त्री के रूप में प्रसिद्ध हैं। उनका विचार दर्शन उनकी कृति फिलोसोफी एट ए० साइन्स (1941) में प्रस्तुत हुआ है—दर्शन का सम्बन्ध अभिशंसाओं का युक्तियुक्त आधार खोजने से है। दर्शन की सामान्य परिभाषा के रूप में इसे अधिक लोगों का समर्थन नहीं मिला। किन्तु नीतिशास्त्र के विवरण की दृष्टि से इसी परिभाषा में लोगों की रुचि रही थी किन्तु डयूकास ने कार्यकरण जैसे मसलों पर भी मुक्त रूप में लिखा। वे कहते हैं कि कार्यकारणी तर्कवाक्य आवश्यक है किन्तु बुद्धिवादियों की धारणा के अनुसार नहीं। उन्होंने मन एवं शरीर के सम्बन्ध पर भी लिखा। उनकी रचनाओं पर हुई चर्चा देखें (पी० पी० आर० 1952)।

ल जाती है उतना परम प्रत्ययवादियो का तकशास्त्र भी नही ल जाता। वब की भाति होकिंग यह नही मानत कि आत्म' भी एक मूल्य है। यही कारण है विनान इसकी कोई सतोषप्रद व्याख्या प्रस्तुत नही कर सका है और यदि विनान ने ऐसा किया है तो बहुत कृत्रिम तौर पर यहा तत्ववादी फिर उन मूल्यो की ओर प्रवत्त हा जाता है जिहे विनान भुला देता है।

ब्रेण्ड ब्ल शड के द्वारा एक बहुत ही दूसर प्रकार के प्रत्ययवाद की रचना की गई है। इनकी पुस्तक द नेचर आव थोट (1939)[1] ब्रितानी प्रत्ययवाद द्वारा प्रवर्तित तकशास्त्र का जिसे विचारो का सिद्धात के रूप मे उहोन स्थापित किया है अनक दष्टियो से सवश्रेष्ठ प्रस्तुतीकरण है। ब्लेशड की दष्टि मे दो ऐसी बाते हैं जिनके आधार पर बोसाके जस लखको के विचारो की पूर्ति की जानी चाहिए। उहोने मनाविनान पर बहुत कम ध्यान रखा[2] और सामाय रूप से विचार सिद्धात के किसी ग्रथ को न मानकर वास्तव मे ही उहोने उसका परित्याग कर दिया और दूसरे उहोने विचारा क प्रत्यय (आदश) को पर्याप्य विस्तार म नही बताया। पहली भूल को सुधारन के लिए ब्लशड मानवी विचार धारा के विकास का वणन तार्किक एव मनोवनानिक दोनो ही दष्टिया स करना चाहते हैं। प्राथमिक प्रत्यक्षीकरण से लकर किसी सुव्यवस्थित नान की ओर का सक्रमण ऐसा अवश्य है जिसका वणन करने म मनोवैज्ञानिक पूण समथ है। तो भी इसक साथ ही साथ मनोवनानिक को यह जान लेना चाहिए कि मानवी विचार क्रम सदव ही अपन विकास के दौरान एक तार्किक आदश स सचालित होता रहता है। विचार मनोवनानिक ढग स वणनीय अवस्थाआ क जरिए ही आग बढत हैं फिर भी उनका माग ऐसा होता है जो एक तार्किक रूपाकार प्रकट करता है।

विचार के प्रत्यय का विवरण देने के लिए ब्लशड ने जाकिम का कम प्रभाव ग्रहण नही किया था। जोकिम को इहोने अपनी एक दो रचनाए समर्पित भी की है। सत्य का समवायी सिद्धात उस आदश का वणन करता है जिसकी ओर सारे मानवी विचारो का रूम है और जिस अय किसी सिद्धात द्वारा वर्णित

---

[1] द्रष्टव्य, ई० नगल कृत सोवरेन रीजन इसी नाम की पुस्तक म (1954)।

[2] ब्लेशड ड्लू० मिचल कत स्ट्रक्चर एण्डग्रोथ आव द माइण्ड (1907) का अपवाद मानते हैं जिसका बोसाक एव होनले न बडे उत्साह स स्वागत किया था। इस तरह यही विस्तार में उत्तर ब्रेडलेवादी दष्टिकोण से हटकर उन्नीसवी शती क मनोविनान पर विचार करने का सवप्रथम प्रयास है। ब्ल शड इसम प्रस्तुत मनोविश्लेषण क सिद्धाता का खूब उपयाग करत हैं। ऐडेलेडी विश्वविद्यालय म बहुत सालो तक मिचेल एक प्रभावशाली शिक्षक रह चुके थ।

किया जाना सभव नही है। यह एक ऐसी प्रणाली है जिसमे उसके मूलभूत तत्व आवश्यकत्व को अपनी व्याख्या से अलग कर देते हैं और आकारवादी इसे तर्क एव गणित के सुपुर्द कर देते हैं प्रत्ययवादी इसे सब ओर देख लेते हैं। एक बार फिर आकारी विवेचको से विवाद करना पडेगा। ब्लेशड अपनी इस धारणा का आखिरी दम तक बचाव करते हैं। स्टाउट की भाति व भी ह्यूम के काय कारण के सव व्यापी होने से ब्लेशड अपना माग इस बात की ओर निकालते है कि किसी आवश्यक प्रणाली की सवव्यापकता होनी ही चाहिए। इस तरह ब्लेशड का दशन अपनी मनोविज्ञान सबधी मागो के साथ, मूलत परम प्रत्ययवाद की ब्रितानी शाखा का ही एक अग है कई अशो म व रोयस क करीब आ जाते हैं किन्तु वे रोयस के तकशास्त्री रूप के ही निकट आते है रोयस के नीति शास्त्री के करीब नही।

डब्लू एम अरबन [1] अपने को प्रत्ययवादी कहलाया जाना नापसन्द करते थे। उनकी एक पुस्तक का शीषक भी बियोण्ड रीअलिज्म एण्ड आइडियलिज्म (1949) है। ज्ञानमूलक प्रत्ययवाद को ही अरबन ने हीगल के पुन दिग्दशन मे पार करने का प्रयास किया है। उनका ध्येय एक ऐसे दशन की रचना करना है जो उस सीमा तक प्रत्ययवादी है जहा तक वह यह स्वीकारता है कि सत्य भी वास्तव म आदश ही है। किन्तु जो इस बात का खण्डन करता है कि जिसे हम तात्कालिक रूप मे जानते है अपने अस्तित्व के तथा रूप के लिए उस मन पर आश्रित है जो उसका बोध करता है। अरबन की दृष्टि म ऐसा दशन मानवी मन के स्वाभाविक तत्वदशन के साथ मेल खायगा। यह फिर शाश्वत दशन' के लिए एक योगदान हो जायगा जिसका रूप हमे प्लेटो अरस्तू एन्सेल्म, एक्वीनस स्पिनोजा तथा लबनीज आदि के दशन मे दिखाई देता है। और जिनका विरोध अति प्राकृतवादियो द्वारा ही किया जा सकता है जो हार्विम की दृष्टि से दाशनिक कहे जाने योग्य भी नही है। अपने म अन्तर्निहित तथ्य तथा मूल्य' के लिए सघष के साथ प्राकृतवाद मे तथा शाश्वत दशन म न कि ज्ञान मूलक आदशवादियो तथा यथाथ-वादियो के बीच रहे घातक झगडो मे ही वतमान विचार का सूक्ष्मतम सुवाद प्रस्तुत हुआ है।

'मानवी मन का स्वाभाविक तत्वदशन' दैनिक जीवन की वस्तुओ की सब साधारण धारणा को स्वीकार करता है, एव पदावस्थाए-तत्व एव गुणो से सम्बद्ध पदावस्थाए जिनका उपयोग स्वाभाविक भाषा म होता है लैंग्वेज एण्ड रीअलिटी (1939) म अरबन यही बताने का प्रयास करते हैं कि कोई सिद्धान्त अन्तत

---

[1] जे० ई० स्मिथ द्वारा लिखित बियोण्ड रीअलिज्म एण्ड आइडियलिज्म एन एप्रीशिएसन आव डब्लू० एम० अरबन (आर० एम० 1957)।

इसके अतिरिक्त और कुछ नही कर सकता। वे स्वीकारते हैं कि उस समय निश्चय ही कुछ मुश्किल आती है जब स्वाभाविक तत्वदशन की पदावस्थाओ को अनुभव के क्षेत्र से बाहर व्यवहृत करना होता है। इस दृष्टिकोण म कुछ अथ तो है कि शाश्वत दशन के प्रति अनुभववादी तत्वदशन मे परम यथाथ के रूप में ईश्वर सबधी इसकी धारणा निराशाजनक रूप स मानव-समरूपी है किन्तु यह साथकता उसी समय विलीन हो जाती है जब हम एक बार यह अनुभव करते हैं कि तत्ववादी प्रतीको की भाषा म बातचीत करता है। शायद इसीलिए तत्ववादी को उसके शाब्दिक रूप मे स्वीकार करके ही काण्ट ने पारवर्ती तत्वदशन के निर्माण के विरुद्ध इतनी प्रबल आवाज बुलन्द की थी। अरबन की दृष्टि म ईश्वर सबधी सिद्धान्त अपरिहाय रूप से प्रतीकात्मक है, रूपकात्मक है।[1] इसका यह अथ नही कि वे निरथक हैं।

उनके येल यूनिवर्सिटी स सेवामुक्त हो जाने के पश्चात् वह विश्वविद्यालय उनके एक अनुवर्ती की खोज म था जो उस परम्परा का निर्वाह कर सके जो उनके द्वारा स्थापित की गई थी। अर्नेस्ट कसिरर के रूप म उन्हे ऐसा व्यक्ति मिला जो 1932 से अपन दश जमनी से निष्कासित था। उस समय तक उनकी रचनाओ म से सिवाय सबस्टैंस एण्ड फक्शन (1910) एव आइंस्टीन्स थ्योरी आव रिलेटिविटी (1921) के अंग्रेजी वेशभूषा म प्रकट नहीं हुई थी। 1923 म इन दोनो पुस्तको का एक अनुवाद प्रस्तुत हुआ। पिछले कुछ वर्षों म तो कसिरर की रचनाओ क अनुवाद की धूम मच गई। ऐसे आन मैन (1944) को उन्होन अंग्रेजी पाठको के सुविधाथ फिलोसोफी आव सिम्बोलिक फाम्स समझान के लिए लिखा। यह पुस्तक अनेक बार मुद्रित हुई एव लाइब्रेरी आव लिविंग फिलोसोफस ने तो पूरा एक संस्करण उनके लिए प्रकाशित किया।[2]

---

[1] यह तत्वदशन के प्रति ऐसी दृष्टि है जिसका प्रवतन वतमान विचारकों मे हुआ है। अंशत नवमार्गवादियो के प्रभाव मे। इसे वस्तुस्थितिवादी आलोचको के विरुद्ध तत्ववाद की सुरक्षा का अस्त्र माना गया है। उदाहरण क लिए देखें ई० बेवन कृत सिम्बोलिज्म एण्ड बिलीफ (1938) डी० एम० एमट द नेचर आव मैटाफिजिकल थिंकिंग (1945)। तत्ववाद को रूपकात्मक दृष्टि स व्यक्त करन म इस पुस्तक को काफी महत्व की माना गया है। ए० एन० व्हाइटहैड कृत सिम्बोलिज्म इटस मीनिंग एण्ड इफेक्ट (1928)। एमट इस पुस्तक के बडे ऋणी है। नवमार्गीय सिद्धान्त पर देखें एम० पनिडो कृत ले रोले डि ला एनालोजी एन थियोलोजी डोग्मेटिक (1931), इसके साथ ही टोमवादी रचनाए देखें जो आगे वर्णित है।

[2] द फिलोसोफी आव अनस्ट कसिरर (स० पी० ए० शिल्प 1949 देखें सी० डब्लू० हेन्डल द्वारा लिखित द फिलोसोफी आव सिम्बोलिक फोर्म्स (1923) के

तो भी कम से कम इंगलैण्ड में तो कैसिरर को दार्शनिक होने का गौरव प्राप्त न हो सका। लिविंग फिलोसोफर्स के लेखकों में से एक भी अंग्रेज नहीं है—और उनमें से सिवाय अरबन के तत्ववादी होने का गौरव भी प्राप्त नहीं। माइण्ड (1953) प्रोब्लम्स आव नोलेज के समीक्षक आदि ने स्पष्ट रूप से उनकी पुस्तक का 'बहुत बुरी पुस्तक' कहा था।

जी० सी० जे० मिजल जैसे टिप्पणीकार कैसिरर के सम्बन्ध में यह मानने को *तैयार थे कि संस्कृति के इतिहासकार के रूप में उन्होंने नए क्षितिजों का स्पर्श* किया है चाहे इतिहासकार के रूप में अपनी भूमि की चिनाई मजूरे ढंग से ही उन्होंने की हो। यह प्रतिक्रिया खास तौर की है। इंग्लैण्ड में कैसिरर की प्रकृति दार्शनिक इतिहासकार के रूप में हुई है विशुद्ध दार्शनिक के रूप में नहीं। कैसिरर की दृष्टि में यह बिना स्थापना का गौरव है। काण्ट की ही भांति दर्शन उनके लिए आत्मज्ञान है। और संस्कृति में आत्मज्ञान का अर्थ है मानवी आत्मा की क्रियाओं के सम्बन्ध में हुआ ज्ञान।

कोहेन के शिष्य के रूप में तथा मारबर्ग की नवकाण्टवादी शाखा के सदस्य के रूप में ही कैसिरर की विचारधारा का विकास हुआ। शेष के उनके आध्यात्मिक पूर्व प्रभावों में हीगल के फिलोमेनोलोजी आव स्पिरिट तथा हर्डर के इतिहास *दर्शन का प्रभाव तथा हर्ज की भौतिक शास्त्र की प्रतीकवादी व्याख्या का प्रभाव* देखा जा सकता है। इन स्रोतों से वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि मानवी संस्कृति का कोई भी बड़ा क्षेत्र जिनमें विज्ञान धर्म कला पुराख्यान तथा भाषा हैं यथार्थ का कोई चित्र हमारे समक्ष प्रस्तुत कर पाने में समर्थ नहीं हुआ। और उसे ऐसे बाहरी जगत् के रूप में देख रखा है जिसे केवल मनुष्य मात्र को समझना शेष है। इनमें से प्रत्येक बोध का ही एक प्रकार है। वह प्रस्तुत जगत् का मात्र प्रत्यक्षीकरण नहीं है किन्तु हमारे द्वारा प्राप्त अनुभव का सुव्यवस्थित रूप से व्यवहृत किये जाने का मार्ग निर्मित करना है। बोध की यह एक ऐसी अवस्था है जिसे प्रतीक रचना *द्वारा सुकर बनाई जा सकती है तथा एकान्तिक आत्मपरकता से इसकी सुरक्षा इसकी* युक्ति-युक्तता तथा व्यवस्था के जरिए की जा सकती है।

कैसिरर भौतिकी के क्षेत्र से प्रारम्भ करते हैं। उनकी दृष्टि में भौतिकी का विकास निम्न यथार्थ से होता हुआ प्रतीकात्मक रचना का रूप ग्रहण करता

अंग्रेजी अनुवाद का आमुख। एस० लेंगर कृत फिलोसोफी इन ए न्यू की (1942) संस्कृति के दर्शन की एक जीवन्त एवं मौलिक रचना है। कैसिरर इसके मूल प्रभाव स्रोत रहे हैं किन्तु अन्य स्रोतों से भी उसने प्रभाव ग्रहण किया है, विशेषकर व्हाइटहैड से और उसे कम तत्त्ववादी पदावलियों में प्रस्तुत किया गया है।

चलता है जो और अधिक वर्णन नहीं करता अपितु एक जगत् की व्यवस्था करता है, उसमें एक क्रम देखता है। आवश्यक रूप से दार्शनिक भौतिकी की ओर अपना ध्यान केन्द्रित किए रहते हैं क्योंकि वे गलत रूप में यह विश्वास करते हैं कि यथार्थ की ओर पहुँचने का भौतिकी एक अद्वितीय मार्ग है। एक बार हम इसके सर्जनात्मक अथवा प्रतीकात्मक स्वरूप को जान लें तो हम भौतिकी मानवी संस्कृति का अंश लगेगी जो हर जगह ठोस यथार्थ की भिन्न दिखने वाली धरती से आदर्श की समान रूप से प्रवाहित होने वाली धारा के रूप में अमूर्त की वह एक ऐसी प्रणाली है जिसमें मानवी आत्मा अपनी अभिव्यक्ति पाती है। मनुष्य को समझने का केन्द्र बिन्दु उसका विज्ञान नहीं है उसकी भाषा है। मनुष्य प्रतीकीकरण करने वाला प्राणी है—और मानवी भाषा भी संवेदना के स्तर से अमूर्त तथा समष्टि की ओर विकसित होने वाला प्रतीक है।

ब्रितानी परम्परा के अनुसार ही यदि हम यह प्रश्न पूछें जो कसिरर के नवकाण्टवादी तत्वदर्शन के अनुरूप ही है—'प्रस्तुत' में कौनसी कौनसी अवस्थाएं है और बोध का रूप या आकार क्या है ?' 'सत्य एवं झूठ में क्या भेद है ?', तो कैसिरर की रचनाओं में कदाचित् उसका कोई उत्तर न हो। कदाचित् कोई यह तो कह सकता है उनमें से ऐसे बहुत से प्रश्नों के उत्तर मिल सकते है जो परस्पर संघर्षशील है[1]। इस बात का नकारने का कि वे एक दार्शनिक हैं यही औचित्य है। ब्रितानी दार्शनिकों द्वारा यह शब्द भली भांति समझ लिया गया है। चाहे किसी दार्शनिक की रचनाएं मानवी संस्कृति के विकास के रूप में पढ़ी जाय, ये जीवन से ही उत्सित माना जायेंगी। इससे पूर्व भी दर्शन के इतिहासकारों पर इनका प्रभाव रहा था। उन्होंने ही सर्वप्रथम न्यूटन बाइल, गलीलियो के महत्व का ज्ञान दर्शन के लिए बताया था।[2] तो भी कुछ सीमाएं ना रहना ही चाहिएं क्योंकि कोई भी उन्हें एकमात्र इतिहासकार के रूप में अध्ययन नहीं कर सकता। उनके द्वारा मानवी संस्कृति का किया गया एक रचनात्मक विश्लेषण जो ठीक उसी प्रकार का है जैसा टायनबी के ग्रंथ द स्टडी ऑव हिस्ट्री में देखा जा सकता है, में तुलनात्मक दृष्टि से कुछ सीमाएं है।[3]

---

[1] उदाहरणार्थ देखें आइ० के स्टीवन्स एवं डब्लू० सी० स्वब कृत द फिलोसोफी ऑव अर्न्स्ट कसिरर में के निबंध।

[2] कसिरर के कार्य को बाद में ई० ए० बर्ट द्वारा अपनी प्रभावशाली कृति मैटाफिजिकल फाउण्डेशन ऑव मोडर्न फिजिकल साइंस (1925) द्वारा आगे चलाया गया।

[3] तुलना के लिए देखें डब्लू० एम० सालमिज द्वारा लिखित द फिलोसोफी ऑफ अर्न्स्ट कसिरर में 'कसिरर ऑन गैलीलियो' नामक निबंध।

जब वे अपने तत्वदशन का बचाव एक शाश्वत दशन के रूप म करते हैं तो अरबन नव–माग–वादियो द्वारा एक्वीनास के दशन के लिए गए मुहावरे का उपयोग करते हुए लगते हैं। अरबन इस बात को स्वीकारने मे कोई सकोच नही करते कि उनक दाशनिक विचार–कुल म एक्वीनास का स्थान भी गौरव पूण है। किन्तु वे यह मानने के लिए कतई तयार नही कि टोम वाद ही शाश्वत दर्शन है। एक्वीनास के ब्रितानी प्रशसको की यह एक सहज प्रवृत्ति रही है कि व अपने विचारो को स्वतन्त्र रूप से व्यक्त करने म विश्वास करते हैं। वेब, टेलर एमेट सदृश लेखक (धम–दर्शन मे अपनी विशेष अभिरुचि रखने वाले) एक्वीनास से मुक्त रूप से सभी प्रभाव ग्रहण करते हैं फिर भी उन्हे अन्तमि वरिष्ठता देना नहीं चाहते। बहुत से विख्यात ब्रितानी तथा अमरीकी दार्शनिक इससे भी आगे पहुच गए हैं। उन्होंने तो नव मागवाद की ही अवहेलना कर दी है। ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार उन्होंने द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की इस आधार पर अवहेलना की है कि यह सगठन विशेष की विचारधारा है और उसमे किसी सच्ची दार्शनिक आत्मा के स्वतन्त्र काय की अभिव्यक्ति नही है।[1]

योरप महाद्वीप म इसके अतिरिक्त नवमागवाद तथा विशेषतया नव-टोमवाद बौद्धिक क्षेत्र म उस समय से प्रमुख अङ्ग रहे थे जब एटरनी पेट्रिस (1879) नाम स एक चर्चीय विश्वकोश म यह बात कही गई कि एक्वीनास की रचनाओं को रोमन कथोलिक उपगोष्ठियो म दिए जाने वाल दार्शनिक उपदेशो का आधार मानना चाहिए। यदि दश न का महत्व उसक शास्त्रीय अनुयायियो स ही आका जाय तो केवल द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद[2] के अतिरिक्त नव टोमवाद का कोई सीधा प्रतिद्वन्द्वी ही नही।

---

[1] जैसा कि अपेक्षित है उत्तर–विटजनस्टीन भाषाई आदोलन एव नव-मागवाद के कुछ सदस्यो मे परस्पर सहानुभूति के चिन्ह दखे जा सकते हैं। मार्गीय विश्लेषण के सूक्ष्म भेदो की पुन सहानुभूतिपूवक चर्चा शुरू हो गई है। इसी प्रकार आकारी तकशास्त्र के पुनरावतन के साथ ही मार्गीय तकशास्त्रियो की रचना म रुचि जाग्रत की गई है। इस रुचि को स्पष्टत सी० एस० पीयस की रचनाओ म दखा जा सकता है। अभी अभी ए० एन० पायर ने मध्यकालीन एव आधुनिक तकशास्त्र के बीच की समानताओ पर बल दिया है। उदाहरण के लिए देखें उनकी फोमल लोजिक (1953)। दखे ज० एस० जुबुरा कृत प्रजेण्ट डे थिंकस न्यू स्कोलास्टिसिज्म (1926)।

[2] पुस्तक सूची के लिए दखें पी० मण्डोनेट एव ज० डस्ट्रूज कृत बिब्लियोग्राफी टोमिस्टे (1921) एव जे० बुर्के कृत टामिस्टक बिब्लियोग्राफी (1920–40) (1945), टोमवाद की भूमिका के लिए दखें ए० जी० सर्टीलेंजिस कृत ले टोमिस्मे

स्वभावत नव–मागवादियो ने मपनी मधिकाश ऊर्जा मध्यकालीन दाशनिको पर टिप्पणिया तथा सस्करण तैयार करने मे ही व्यय कर दी। इन्ही के कारण मध्यकालीन लखको की रचनाए माधुनिक पाठक के समक्ष प्रशसनीय सस्करणों तथा मनुवादों म प्रस्तुत हो सकी है। मन्य बहुत से मागवादियो ने जैस कि इग्लेण्ड म एफ० जे० कपल्टन मादि पौराणिक मध्यकालीन एव माधुनिक दर्शन के इतिहास पर विवेचनात्मक मध्ययन किया है। लाउवेन बेलजियम) मे द इन्स्टीट्यूट सुपीरियर डो फिलोसोफी नामक सस्था ने जिसकी स्थापना कार्डिनेल मरसियर द्वारा हुई, केवल नव टोमवादी दशन के केन्द्र के रूप मे ही काय किया मपितु यहा से बहुत सी विशाल दाशनिक जीवन गाथाए प्रकाशित भी हुई है।

यह बात उल्लखनीय है कि सभी नव मागवादी मपने मध्यकालीन प्रमावको को पुन स्थापित करके प्रसन्न नहीं थे। पी० ज० मोरचल मपनी बृहद् रचना द पाइन्ट माव डिपाचर फोर मैटाफिजिक्स (1923–6)म टोमवाद को मन्य धारामों के साथ समन्वित करने का प्रयत्न करते हैं विशेष रूप से माधुनिक दशनो मे से वे काण्टवादी धारा के साथ इसका समन्वय करते हैं। ए० गमैली के नेतृत्व मे जो रिविस्टा डी फिलोसोफिया नियोस्कोलास्टिक के सम्पादक य इटली के लेखको के एक समुदाय ने माधुनिक दशन एव विज्ञान के परिणामो का टोमवाद के सामान्य माकार म खपा देना चाहा। जमन नवमागवाद बहुत कम ही विशुद्ध टोमवादी रहा। जे० गेस जसे दार्शनिक के हाथो मे पडकर वह सघटनवाद के साथ सधि मे पड गया।

सख्या की दृष्टि स ये लखक किसी ऐस दार्शनिक मान्दोलन के प्रवतकों के रूप मे नगण्य वग का ही प्रतिनिधित्व करते हैं जो मुख्यत कट्टर नव टोमवाद से ही सतुष्ट हो गए थे। इस कट्टरता ने फ्रास म जैकस मारीटेन के हाथों म पड़कर

---

19 20) (मग्रेजी मनुवाद) द फिलोसोफी माव सेण्ट टामस एक्वीनास (1924) एव द स्पिरिट माव मेडीवल फिलोसोफी (1932) नवमार्गीय पुनरावतन के सक्षिप्त विवरण के लिए देखें सदभ सहित माइ० एम० बोकेंस की कृत योरोपाइस्चे फिलोसोफी डेर मेगेनवर्ट (1947 मग्रेजी मनुवाद 1656)। पुनर्जागरण के प्रथम वर्षों के विस्तृत विवरण के लिए देखें, जे० एल परनियर कृत द रिवाइवल माव द स्कोलास्टिक फिलोसोफी इन द नाइन्टीन्थ सेन्चुरी (1908) द्रष्टव्य, एफ एर्वलिंग कृत द टोमिस्टिक माउटलुक इन फिलोसोफी (पी० ए० एस० 1932), नवमार्गीय पत्रों मे से महत्वपूण ये हैं-द न्यू स्कोलास्टिसिज्म, डोमिनिकन स्टडीज एव द स्टीटूट सुपीरियर डे फिलोसोफी लोवेन की पत्रिका—

एक प्रबल बौद्धिक अभि यक्ति प्राप्त की थी।[1] बहुत से रोमन कथोलिक बुद्धिवादियो की भाति मारीटेन पहले एक पक्के बर्गसावादी थ किन्तु वे बर्गसा एव फासीसी प्रत्ययवादियो को नव-टोमवाद के हित म निन्ति करने के लिए भी जीवित रह। फास के बाहर वे कला तथा राजनीति के लेखक के रूप मे विख्यात हैं। उनकी अपेक्षाकृत कम दार्शनिक रचना द डिग्रीज आव नोलेज 1932) को व्यापक रूप म पढा गया है। इसमे वे वज्ञानिक ज्ञान, तत्वदर्शन तथा रहस्यानुभूति को अलग अलग मानकर भेद करते हैं-किन्तु भिन्न भिन्न होते हुए भी ज्ञान की दृष्टि से य जुड़े हुए अश हैं। व ऐसी प्रत्येक बात के विरोध म हैं कि इनम स एक ही यथाथ की ओर ल जाता है।

ब्रितानी (एव आयरिश) नव आगवादी लोग बडे पमाने पर उपगोष्ठियो के लिए पाठ्यपुस्तको के तयार करन म लगे रहे। जे० रिकाबी क विशिष्टाक एव पी० कोफी की अपेक्षाकत अधिक महत्वपूर्ण पाठ्यपुस्तकें इस प्रकार क प्रसिद्ध उदाहरण हैं। ओक्सफड के जसुइट पादरी एल० जे० वाकर तथा एम० सी० डी० आरकी अपेक्षाकत अधिक महत्वाकाक्षी रहे हैं। वाकर कृत थ्योरीज आव नालेज (1910) आलोचनात्मक ढग से ज्ञानमीमासा की प्रमुख शाखाओ की विश्लेषण करती है। उसका उद्देश्य यह बताना भी है कि जिन सत्याशो का उनम व्यक्त किया किया गया है वे अरस्तू-टामवादी तत्वदशन म पहले से ही विद्यमान हैं। डी आरकी कृत द नेचर आव बिलीफ (1931) उन प्रश्नो का पुन परीक्षण है जिन्होने न्यूमैन को द ग्रामर आव एसेण्ट म परेशान कर दिया था। अब इन पर उस ढग से विचार हुआ है जसा न्यूमैन ने नही किया था अर्थात् यह विचार नव-आगवादी ढग से हुआ है।

पिछले पचास वर्षों म तत्वदर्शन की बहुत सी शाखाएँ महाद्वीप मे प्रादुर्भूत हो गई हैं। इग्लण्ड म लोग इनसे अधिक प्रभावित नही हुए। लिओन ब्रशविक[2] अपनी रचना द डेवलपमेण्ट आव थोट इन वेस्टन फिलोसोफी (1927) म उसी विचारधारा क प्रवाह म लिखते हैं जिसम क्रोचे एव बाद मे कोलिंगवुड रहे। वे इस सिद्धात पर प्रहार करते हैं जो मुख्यत गणितीय तर्कशास्त्रियो से सम्बध रखता है-कि यह तो दार्शनिक का काम है कि पहले से प्रस्तुत धारणाओ को वह व्यवस्थित एव परिभाषित करे। इस दृष्टिकोण से तो सद्धातिक रूप से मानवी मस्तिष्क को एक कलन मशीन का एवजी माना जा सकता है-जबकि तथ्य यह है

---

[1] द्रष्टव्य सी० ए० फेचर कृत द फिलोसोफी आव जेकस मारीटन (1953)।

[2] द्रष्टव्य ब्रूशविक विशेषाक (आर० आई० पी० 1951) एव आर० एम० एम० 1945 का अङ्क। फ्रेंच प्रत्ययवाद के लिए सामान्यत देखें ए० एचेवेरी कृत ला आइडियलिज्मे फ्रांकाइज कण्टेम्पोराइन (1933)

कि धारणाए मन की क्रिया की अ श हैं और य धारणाए प्रकृति की व्याख्या के उसके प्रयास से उपजी है। इस तरह धारणाओ पर दार्शनिक रूप स विचार करने के लिए हमे मन की क्रिया का परीक्षण करना चाहिए। किन्तु इसका यह अथ नही यह बात व सेल्फ नोलेज (1931) म कह दते हैं कि दर्शन अ तदर्शन ही है। मन को जानना उसकी निगरानी करना है उसे सक्रिय देखना है और उसे अपनी रुचि की अनन्त शाखाओ मे निरत देखना है।

जमन म इसी बीच एक ऐसा हल्ला हुआ था जिसके परिणामस्वरूप अस्तित्ववाद का प्राकट्य हो गया। विचारो का यह आन्दोलन जो स्पष्टत मार्टिन एडेगर म देखा जा सकता है प्रस्तुत प्रसग क लिए अभी हटा दिया जाता है। फिर भी एन० हाटमेन[1] को समथ तात्विकी (आण्टालोजी) का उल्लेख करना ही चाहिए। उनकी एथिक्स (1925) अग्रेजी भाषा म 1932 म अनूदित हुई है। दूसरी तरफ उनके तात्विकीय लेखों को जिनके पाच भाग 1933 से 1950 तक प्रकाश मे आए, ग्रेट ब्रिटेन या अमरीका म व्यापक तौर पर पढ़ा गया। यह आश्चयजनक बात नही ह। समसामयिक ब्रिटिश दर्शन के मुख्य रूप मे विवेचन-विश्लेषण-युक्त वातावरण म हाटमैन का सत्ता का सिद्धान्त (थ्योरी आव बीग) निर्माण करने के आकाक्षी प्रयत्न को भी सहानुभूति के साथ कठिनता से पढ़ा गया, यद्यपि कार्टेजियन परम्परा पर उनके आघात का तब भी लागो ने उचित रूप मे स्वागत किया। लेकिन यह बात तब भी द्रष्टव्य है कि बडे पमाने पर दर्शन के इग्लेड म मृतप्राय होने के बावजूद भी यारप महाद्वीप म अब भी उसका चलन ह।[2]

---

[1] देखें श्री समुमल की ए फाउण्डेशन आव ओण्टोलोजी ए क्रिटिकल एनलिसिस आव निकोलाइ हाट मैन 1954।

[2] बोचेस्की के अनुसार आधुनिक युग के तीन महान् दार्शनिक मैरिटेन हाटमैन और व्हाइटहड हैं। समसामयिक फ्रेंच जमन लटिन और समसामयिक ब्रिटिश दर्शन के मध्य की खाई को कोई भी विवरण ठीक से पाट नही सकता, भले ही वे दोनो ओर के लखक ऐस क्यो न हो जो अपने अपने देश वासियो के निणय से सहमत न होते हो।

अध्याय १४

प्रकृति वैज्ञानिक दार्शनिक बने

उन्नीसवीं शताब्दी में प्रकृति-विज्ञान कालान्तर में आगे चलकर जब एक सामाजिक संस्थान बन गया तो उसने स्कूलों और विश्वविद्यालयों में प्रवेश कर इस बात की मांग की कि वैज्ञानिक प्रयोगशालाओं को पुस्तकालयों के समकक्ष रखना चाहिए क्योंकि दर्शन अथवा मार्गीय साहित्य (क्लासिसिज्म) सच्चे शिक्षक न होकर यही सच्चे शिक्षक हैं। स्वभावतः ही इन मांगों का विरोध हुआ। विज्ञान अपने लिए कोई न कोई स्थान स्वार्थपूर्ण उद्देश्यों के कारण ही प्राप्त कर सकता था। हाइकल हक्सले और क्लिफोर्ड जिस मुद्दे को लेकर भिड़ गये वह विज्ञान ही था, जो आक्रामक तरीके से बढ़ रहा था। इन लेखकों ने जनसाधारण का ध्यान एक नए और शक्तिशाली सामाजिक प्रभाव की ओर खींचा जो बाद में चलकर पर्याप्त रूप से प्रभावी हो गया। इन लेखकों द्वारा इस नये प्रभाव के अवतार की सूचना देने का ढंग कुछ ऐसा उत्साहपूर्ण और चाव पैदा करने वाला था जैसा कि एक किशोर का अल्हड़पन और गर्वीला व्यवहार इस बात की सूचना देता सा लगता है कि मुझ में एक नया व्यक्ति जन्म ले रहा है जो किसी से कम नहीं है। इसी बीच दूसरे वैज्ञानिक एक अलग ही तरह के क्षोभ के लक्षण प्रकट कर रहे थे। ये लक्षण थे अन्तरालोचनात्मक विश्लेषण और स्वालोचन। इस आत्मालोचन ने आरम्भ में कुछ इस प्रकार की दिशा ली कि जो-जो बातें एक वस्तु निष्ठावादी मानस को विचलित करती हों-या वस्तु-निष्ठावादी बुद्धि को नहीं जंचती हों उन्हें विज्ञान के विशेषकर यान्त्रिकी के क्षेत्र से बाहर निकाल फेंका जाय। इस प्रकार वैज्ञानिक नव-कान्टवाद पर एक पाद-टिप्पणी सी लिख रहे थे।

जी० आर० करखाफ की पुस्तक प्रिंसिपल्स आव मिकेनिक्स (1874) की भूमिका में वैज्ञानिक वस्तु निष्ठावाद की पूरी योजना रूपांकित है। करखाफ लिखते हैं-मिकेनिक्स यान्त्रिकी गति का विज्ञान है। इसके उद्देश्य की परिभाषा हम यों करते हैं कि यह प्रकृति में पैदा होने वाली गतियों का सरलातिसरल तरीके से संपूर्ण वर्णन करता है। करखाफ इसका पूर्ण विरोध करने पर तुले हुए हैं कि विज्ञान का उद्देश्य घटनाओं के कारण का वर्णन करना है कि वे क्यों घटती हैं। उनका कहना है कि वैज्ञानिक के लिए 'क्यों' का स्वरूप 'कैसे' में निहित है। घटनाओं के बीच पारस्परिक नये सम्बन्धों को खोजकर न कि घटनाओं के परे के किसी कारण की खोज करके, वैज्ञानिक अपने लक्ष्य की प्राप्ति करता है।

अर्न्स्ट मैश का ग्रंथ द साइंस आव मिकेनिक्स (1883) [अंग्रेजी अनुवाद (1893)] करखाफ के सिद्धान्तों के महत्त्वपूर्ण प्रयोग के रूप में बहुत बड़े क्षेत्र में आदर प्राप्त कर चुका है यद्यपि 1872 में ही मैश ने अलग से उसी प्रकार के निष्कर्ष निकाल लिये थे। वास्तव में तो मैश-करखाफ मार्का वस्तुनिष्ठावाद तत्कालीन वैज्ञानिक व दार्शनिक वातावरण के कारण उद्भूत हुआ। जिस विज्ञान ने अपने विकास में अन्तर्निहित कारणों से अणु वेग तथा निरपेक्ष गरिमा जैसी धारणाओं पर अविश्वास करना शुरू किया जिस ने विचारवादी तत्वदर्शन के विरुद्ध अपने आपको लगा दिया उस विज्ञान ने अवश्य ही स्वभावतः नव-कान्तवाद का प्रभाव ग्रहण किया होगा। मैश ने अपने पापुलर साइंटिफिक लेक्चर्स (1866) में लिखा, 'द क्रिटीक आव प्योर रीजन' ने पुराणपंथी तत्वदर्शन के घिसे-पिटे नकली विचारों को निकाल कर अंधकार जगत में भगा दिया। उनका उद्देश्य प्राचीन यांत्रिकी के पुराणपंथी विचारों के साथ भी यही सलूक करने का था। इसलिए वह कहते हैं कि विज्ञान अनुभवों के मितव्ययतापूर्ण उपयोग के प्रयत्न का नाम है। अत्यधिक संख्या के नाना प्रकार के अनुभवों का एक संक्षिप्त सूत्र में वर्णन कर जो कि एक, आम बात है विज्ञान इस बात की आशंका को कम करता है कि हम अपने आपको एक सर्वथा अज्ञात स्थिति में पाएं। एक प्रकार से वे सोचते हैं कि विज्ञान हमें भ्रमित करता है। वस्तुओं में से उनका जादू निकाल लेता है। कारण कि वह हमें बताता है कि जो कुछ हम सर्वथा अपरिचित और अजीब सा लगता है वह विभिन्न अनुभवों के पारस्परिक सम्बन्धों में अत्यन्त परिचित स्वरूप की ही एक विशेष अभिव्यक्ति है। ऐसी भ्रामकता अपरिचित का परिचित में ऐसा परिवर्तन एक साथ वही सब कुछ है जिसकी हमें उस हेतु आवश्यकता है और जिसे बकले ने जीवन के व्यवहार की सना दी है[1]।

मैश की परम्परागत यांत्रिकी की आलोचना यहीं से प्रारम्भ होती है। प्रवाही विद्युत की अणुओं की एक यांत्रिकी, जो (जैसे बोलने से) अनुभवों से परे चली जाती है वह कहते हैं अपने उद्देश्य में असफल हो रही है। वे इस बात को मानने को तैयार हैं कि परमाणु सिद्धान्त को एक गणितीय प्रकृति मान लिए जाने पर ही वह अनुभवों के साथ हमारे व्यवहार को सुकर कर सकता है। लेकिन यदि वैज्ञानिक अपनी उपलब्धियों के संदर्भ में यह मानने लग जाय कि परमाणु अपने आप में सत्य हैं तब वह विज्ञान के उन फलदायी क्षेत्रों का सीमोल्लंघन कर जाता है जो उसे तत्ववादी परिकल्पनाओं के दलदली बंजर से अलग करते हैं।

---

[1] बी० जे० पी० एस० 1953 में० आर० पापर ने मैश एवं बकले की तुलना की है।

निरपक्ष दिक्, निरपेक्ष काल, यहा तक कि आकस्मिक घटनाए, जसा कि मैश ने सोचा, ये सब परमाणुओ के माग से होकर जाते हैं। प्रकृति मे न तो काय ही है और न कारण ही। प्रकृति मात्र चलती जाती है। एक विकसित विज्ञान अपने परिणामो को काय-कलनीय सम्बन्धो क रूप म अभिव्यक्त करेगा। अपूयिक (अ-सेप्टिक) सून तत्वदर्शन की काय-कारण-युत कडियो का स्थान परिवतन कर देते हैं। निरपेक्ष दिक और निरपेक्ष काल आदि, ये धारणाए मैश के अनुसार मध्यकालीन अवशेष हैं। वह विरोध करते हुए कहते हैं कि किसी भौतिक पदार्थ के दिकीय अथवा उसकी लौकिक स्थिति के बार के सिवाय किसी अन्य पदाथ से उसके सम्बन्ध के बारे म बात करना निरयक है। भौतिक-शास्त्री एक पण्डुलम की गतिविधि की तुलना किसी घटी-मुख के सामने घूमते हाथो से कर सकता है न कि निरपेक्ष काल के विकास से। किसी प्रक्रिया की निरपेक्ष कालावधि की चर्चा करना अथवा उसकी निरपेक्ष तिथि के सम्बन्ध म बात करना व्यथ तत्वदर्शन है और सक्षेप मे ऐसी धारणाएँ निरपेक्ष दिक पर ही लागू होती हैं। मैश की विचारधारा का यही एक पक्ष है जो आइन्स्टीन को प्रभावित कर सकता था।

मैश के विज्ञान दशन का एक अन्य सतत कथ्य निष्कृति म महत्वपूण सिद्ध होने वाला था। उन्होंने भौतिकवादियो के लेखो मे विद्यमान प्रदर्शन पर अतिरिक्त बल दिया। उनके अनुसार वह बल एसा था जो उन्हे एक कडे आदर्श, जो कि मिथ्या और भ्रमपूण था, की तरफ ले जाता था। एक वज्ञानिक प्राकल्पना को जिसे दूसरे शब्दो म एक नया नियम कहा जा सकता था तथाकथित प्रथम सिद्धान्तो मे से बनावटी ढग से नही निकाला जाना चाहिए था। उन्होने कहा यदि ऐसी कोई प्राकल्पना जाच से सिद्ध हो सकती तो वही सब कुछ उसके लिए, हमारी अपेक्षानुसार पर्याप्त था।' उन्होने लिखा कि जब एक उपयुक्त कालावधि के पश्चात् एक प्राकल्पना को उचित ढग से जाच कर सिद्ध कर लिया गया हो तो एक विज्ञान क लिए इसके अतिरिक्त और कोई भी अपेक्षा अनावश्यक हो जानी चाहिए। उपयुक्त कालावधि' और उचित ढग से जाच-सिद्ध जसे वाक्याशो की अस्पष्टता यहा एकदम स्पष्ट हो जाती है। तथ्य यह है कि विज्ञान पर कडे प्रदर्शन के रूप म प्लेटो-कार्टेजियनवादी धारणा पर मैश द्वारा किए गए आघात रीतिविधान क अनुवर्ती विकास क क्षेत्र म महत्वपूण देन हैं।

इग्लण्ड मे जहा मैश की अनूदित पुस्तकें शीघ्र ही लोकप्रिय हो गई डब्ल्यू० के० क्लिफाड और अधिक विस्तार मे लिखने वाले उनके मित्र और शिष्य जीव वज्ञानिक-सांख्यिक काल पियसन ने भी कुछ वसे ही विचार दिए। क्लिफोड ने अपने भाषण[1] आन थ्योरीज आव फिजिकल फोर्सेज मे, कई ऐसे वाक्यो को जो प्रश्नात्मक

---

[1] 1870 मे दिया। लेक्चर्स एण्ड एसेज' पुस्तक 1879 म उनकी मृत्यू परान्त प्रकाशित हुआ।

स्वरूप के होते हुए भी सच्चे अर्थों में प्रश्न नहीं होते, घटनाएँ क्यों घटती हैं इस वाक्य के सन्दर्भ से अपनी बात में सोदाहरण समझाया है। इस वे सूचना-प्राप्ति करने की सच्ची माँग न मानकर एक कूट प्रश्न ही मानते हैं। हम 'वास्तव में क्या (घटनाएँ) घटती हैं ?' जैसे सच्चे वैज्ञानिक प्रश्न को भी अच्छी तरह पूछ सकते हैं कारण कि हम उत्तर देने की आशा रख सकते हैं। माइण्ड में अपने निबन्ध आन द नेचर आव थिंग्स इन दमसेल्वज (1878) में उन्होंने पुनः यह टिप्पणी की कि 'कारण' शब्द का विज्ञान अथवा दर्शन में कहीं भी कोई वैध स्थान नहीं है।

कोई भी देख सकता है कि हवा का रुख किस ओर है। सत्य यही है कि ये सब प्रसंगोक्ति से अधिक कुछ नहीं है। क्लिफोर्ड की कामनसेंस आव द एक्जेक्ट साइंसेज (1885) जिसे पियर्सन ने संपादित और पूर्ण किया है अधिक सारभूत ग्रंथ है।[1] उसमें क्लिफोर्ड नव-यूक्लीडियन ज्यामितियों के उन परिणामों पर विचार करते हैं जिन्हें जर्मन दार्शनिक-वैज्ञानिक एच० वान हेल्महोल्ज ने अपने भाषण 'द ओरिजिन एण्ड मीनिंग आव ज्योमेट्रिकल एग्जियम्स'[2] में बहुत पहले ही दे दिया है। तत्पश्चात् यह विचार त्याग दिया गया कि युक्लिड की ही एक मात्र ज्यामिति है जो कि गणित शास्त्र की शुद्ध निर्णायक शाखा है और जो दिक् में सबों द्वारा गृहीत माप का एक आदर्श विवरण है। अब व्यावहारिक ज्यामिति को शुद्ध ज्यामिति से अच्छी तरह अलग रखा जाता है। क्लिफोर्ड कहते हैं कि शुद्ध गणित की एक शाखा ज्यामिति को दूसरी ज्यामिति की तुलना में ठीक या गलत मानना वैसा ही अनुचित है जैसा क्रिकेट को सही मानकर हाकी को गलत मानना। क्रिकेट के साथ किसी एक घटना विशेष का सम्बन्ध कर उसे भले ही यह कहकर गलत करार दे दिया जाय कि वह क्रिकेट के खेल के नियम के अनुकूल नहीं है। इसी प्रकार एक शुद्ध रेखागणितज्ञ नियमों की गलती करता है। पर एक ज्यामिति तभी गलत या सही होती है जब वह व्यवहार में आती है, जब उसे चलित लवों द्वारा ग्राह्य माप का विवरण मान कर लिया जाता है। ऐसी स्थिति में ज्यामिति अपने आपको आनुभविक जाँचों के लिए मुक्त कर देने के कारण तुरन्त ही गणित-भिन्न हो जाती है। गणित और उसके प्रयोग का यह उग्र अन्तर पिछली दशाब्दियों में अत्यधिक

---

[1] 1846 का संस्करण देखें जिसमें जे० आर० न्यूमैन की भूमिका और बर्ट्रेंड रसेल की प्रस्तावना है।

[2] माइण्ड में (1876 1878) पुनः प्रकाशित हुआ और उनके पापुलर लेक्चर्स आन साइंटिफिक सब्जेक्ट्स में (1865 अंग्रेजी अनुवाद 1873) प्रकाशित हुआ। देखें हेल्महोल्ज पर लिखित वी० एफ० लन्जेन का हेल्महोल्ज थ्योरी आव नोलेज (स्टडीज एण्ड ऐसेज इन आनर आव जार्ज सार्टन, संपादक एम ए मोंटेग्यू, 1944 में प्रकाशित)।

व्यवहृत हुआ था चाहे जिस विशष ढग से ज्यामिति व्यवहृत होती है उसके बारे म ननु नच की गई हो ।

काल[1] पियसन क्लिफोड का गणित का सिद्धात स्वीकार कर अत्यत सतुष्ट थे। मैश की ही माति जिहोने अपनी साइस आव मैकेनिक्स[2] पियसन को समर्पित की थी उनकी रुचि भी यान्त्रिकी के क्षत्र म ही थी । द ग्रामर आव साइस' क उन भागो म जिनका जो यान्त्रिकी से सम्बधित हैं मश लिखते हैं, पियसन उही सकेतो को आगे बढाते हैं जिह क्लिफोड ने छोड दिया था, और जिह पियसन ही ने न कि क्लिफोड ने अधिक ब्योरा दिया था। द ग्रामर आव साइस' (1892) जिसम पियसन ने यान्त्रिकी के सिद्धान्त का एक व्यवस्थित रूप म प्रतिपादन किया था व्यापक रूप मे प्रभावशाली रहा है। इसके स्तर का प्रमाण कुछ इस तथ्य से भी लग सकता है कि वह एवरीमस लाइब्रेरी' मे पुन प्रकाशित भी हुआ था। वज्ञानिकों के दशन को कई अय योगदानो की भाति कदाचित द ग्रामर आव साइन्स दाशनिक परिनिरीक्षा मे खरी नही उतरे। जो यति का सिद्धात (epistemology) इसमे है वह लौक और बकले के बीच एक अनुचित समझौता है लेकिन वह अपनी आधुनिकता से हमे बहुधा चौंका देता है। इनमे से बहुत से शोध-प्रबध (Theses) जो कि बाद म चलकर ताकिक वस्तुनिष्ठावाद के रूप मे जाने जाते थ यहा इस ग्रथ म स्पष्ट रूप स प्रतिपादित किए गए हैं।

अपन अनुगामियो की तरह प्रथमत पियसन भी विनान की एकता और सव व्यापकता पर बल देते हैं। मानसिक और भौतिक वस्तुजगत का सारा क्षत्र, समस्त ब्रह्माण्ड ही उसका क्षत्र है।' जब धमशास्त्री और तत्ववादी इस बात की माग करते है कि विज्ञान को अपने उचित व्यापार कम तक ही सीमित रहना चाहिए तो व सीमाए बाधत हैं। इस पर पियसन कहते है कि इसको कोई वनानिक स्वीकार नही कर सकता। ऐसा कुछ भी नही है जो वनानिक अनुसधान के क्षेत्र से बाहर रहता हो।

इस प्रकार पियसन बिना किसी समझौते के इस बात को नकारते हैं कि धम अथवा तत्वदशन हम उसक वनानिक नान से परे का कुछ देते है। व कहते हैं कि सत्य तक पहुचने का एक ही माग है वह है तथयो का विभाजित और उन पर

---

[1] देखें ई एम पियसन के पियसन एन्ड अप्रीसिएशन (बोएमेट्रिका 1938)

[2] पियसन साथ ही विपुल रूप से मश का भी प्रसग देते हैं। क्लिफोड, पियस और मश के बीच प्राथमिकताएँ स्थापित करने का प्रयत्न एक निरथक प्रयत्न होगा।

विमर्श करने से प्राप्त मार्ग । यदि हम इस वैज्ञानिक रीति का उपयोग करते हैं तो हम सबको अन्ततः एक ही परिणाम मिलते हैं । मात्र एक ही तथ्य इस बात को सिद्ध करने के लिये पर्याप्त है कि चूंकि प्रत्येक तत्ववादी का अपना अलग ढंग है, तत्वदर्शन के पास मानव ज्ञान को देने के लिए कुछ भी नहीं है । लांग से सहमत होकर पियर्सन कहते हैं कि तत्ववादी एक प्रकार का कवि है लेकिन एक खतरनाक कवि, कारण यह है कि वह बौद्धिक विमर्श में लय होने का ढोंग भी रचता है ।

अन्त में मैश और करखाफ की ही भांति पियर्सन इस बात को भी नकारते हैं कि विज्ञान क्यों की व्याख्या भी करता है । पियर्सन के अनुसार एक वैज्ञानिक नियम हमारे प्रतिबोधन (perception) की व्यवस्था का एक संक्षिप्त विवरण ही है । उदाहरणार्थ जब एक भौतिकशास्त्री कहता है कि वह वस्तुओं के यान्त्रिक स्पष्टीकरण तक पहुंच गया है तो उसका कुल मिला कर यही अर्थ हो सकता है कि यान्त्रिकी की भाषा में अनुभवों के कुछ तत्यकों का वह वर्णन मात्र कर सकता है । वास्तव में यान्त्रिकी एक सुविधाजनक भाषा ही है जिसमें हम अपने अनुभवों का सार दे सकते हैं–इससे अधिक या कम कुछ नहीं ।

एक दूसरे दृष्टिकोण से भी पियर्सन का कार्य मैश की अपेक्षा अधिक रोचक है । वह अपने समय की यान्त्रिकी से असन्तुष्ट थे । उन्होंने लिखा, द्रव्य, पिंड और शक्ति की धारणाओं में व्याप्त सम्भ्रम को शुद्ध करने के लिए एक तेज ठण्डी हवा की आवश्यकता है ।' किसी को यह नहीं समझना चाहिए कि उन्नीसवीं शती का वस्तुस्थितिवाद कुछ उग्र और आत्मसंतुष्ट वैज्ञानिकों के दर्शन पर आघात का ही एक रूप था प्रत्युत एक महत्वपूर्ण सीमा तक, उसने स्वयं विज्ञान के अन्दर ही बीसवीं शती की क्रान्ति के लिए मार्ग प्रशस्त किया, जो आइंस्टीन के नाम के साथ सम्बद्ध थी ।

इससे पूर्व कि हम उस क्रान्ति के स्वभाव और प्रभाव पर विचार करें हम उस समय के कुछ दार्शनिक वैज्ञानिकों के बारे में भी कुछ कहना चाहिए जिनके लेखक मैश के वस्तुस्थितिवाद से एकदम प्रभावित थे । जर्मन भौतिकशास्त्री एच० हर्ट्ज हैल्महोल्ज के ही शिष्य थे, जो अपने शिष्य हर्ट्ज के अपूर्ण और मृत्यूपरान्त प्रकाशित ग्रंथ द प्रिन्सिपल्स आव मैकनिक्स प्रजेन्टेड इन ए न्यू फोर्म' (1884 अंग्रेजी अनुवाद 1899) की प्रस्तावना लिखने के लिए ही जीवित रहे । इस ग्रंथ में हर्ट्ज ने यान्त्रिकी में प्रागभावी और आनुभविक क्या है इन दोनों का पारस्परिक अन्तर स्पष्ट करने का यत्न किया । उन्होंने अपना कार्य इस ढंग से किया जिससे उनके एक सहकर्मी इंजीनियर विटजन्स्टीन और उनके बाद उस समय के कई ब्रिटिश विज्ञान दार्शनिक भी विशेष प्रभावित हुए ।

हट ज के अनुसार शुद्ध या निगम्य यान्त्रिकी बिम्बो और धारणाओ मे बनती है। इन बिम्बो को प्रायोगिक तथ्यो की अनुकृतिया अथवा सामान्य प्रतिबिम्ब नही माना जा सकता। वे मानते हैं कि य बिम्ब तथ्यो क अनुकूल होते हैं लकिन यह अनुकूलता एक चित्र स उस वस्तु की जिसका वह चित्र प्रतिनिधित्व करता है अनुकूलता जसी नही है। बशर्ते कि व बिम्ब हम आवश्यक पूर्वानुमान करन क योग्य बनाते हो। यथाथ के साथ यही एक समझौता है जिसकी हम उनस अपक्षा कर सकते है। हट ज साचत है कि बिम्बा की कोइ भी सख्या समान रूप स सन्तोष अनक हो सकती है यदि हम उन्ह उनके आनुभविक व्यावहारिकता के दृष्टिकोण स दखें। इस प्रकार अपने इलेक्ट्रिकल वक्स (1882 म अंग्रेजी अनुवाद 1893) मे वे इस बात की धारणा करते हैं कि मक्सवल के हैल्महोलज क तथा उन सबके विद्युत के सिद्धान्त जिन्हे वे यहा प्रस्तुत कर रहे हैं स्वरूप की विशष भिन्नताओ के बावजूद भी एक ही आन्तरिक महत्व को लिए हैं और इसीलिए उन्ह एक स पदार्थों का हा बना हुआ होना चाहिए।

यदि कोई भौतिकशास्त्री एक की बजाय दूसरे बिम्ब को अधिमान देता है जबकि प्रत्यक बिम्ब एक ही समीकार की ओर अग्रसर होता है तो यह मान इसीलिए है कि कुछ बिम्ब दूसरो की तुलना म अधिक सरल और उपयुक्त हैं यथा कि य वस्तु के आवश्यक सम्बन्धो के दूसरो की तुलना म अधिक चित्र प्रस्तुत करते हैं और उनम दूसरो की अपेक्षा खाली और सतही सम्बन्धों की सख्या कम है। हमारे प्रत्येक चित्र म वे कुछ न कुछ ऐस गुण अवश्य हाते हैं जो उसके प्रमुख काय के लिए इतने आवश्यक नही होते, उदाहरणाथ किसी नक्श की कुछ विशेषताए उस कागज पर भी आधारित होती हैं जिस पर वह बना हुआ हाता है न कि उस क्षत्र के भूगोल पर हो जिसका कि वह प्रतिनिधित्व करता है। एक चित्र म ऐसी असगतिया जितनी कम होगी चित्र उतना ही अच्छा होगा। इसी आधार को लेकर हटज ने अपने विद्युत के सिद्धान्त को मक्सवेल के सिद्धान्त की तुलना म अधिमान दिया। वह इस बात की धारणा नहीं करते कि उनका सिद्धान्त उन बिन्दुओं पर भी सही है जिन पर मक्सवेल का गलत है। सामान्य रूप से हट ज अधिक स्पष्टता और सादगी के लिए न कि अधिक परिशुद्धता के लिए यान्त्रिकी का पुन लेखन करते हैं।

जो प्रणाली उन्होने बनाई है वह अपने आपको कायरत भौतिकशास्त्रियों[1] के लिए अनुकूल नही मानती। उनके लिए जो चीज महत्व की थी वह उनका विभिन्न बिम्बा का अन्तर था, जिसके माध्यम से यान्त्रिक तथ्यो और वास्तविक तथ्यो का प्रतिनिधित्व होता था, और उस अन्तर के साथ जो अन्य बात थी वह इसी बात

---

[1] ए० जे० पी० म स्माट और पी० फाउल्के के मध्य विमर्श दखें (1951-52

को दर्शाने का प्रयत्न था कि यान्त्रिकी में एक शुद्ध प्राग्भावी तथ्य भी है। द प्रिंसिपल्स आव मेकनिक्स को दो भागों में बाँटा गया है—प्रथम पुस्तक की आमुख-टिप्पणी में हर्ट्ज इस विश्वास को अभिव्यक्त करते हैं कि उस पुस्तक की विषय वस्तु अनुभव से पूर्णत स्वतन्त्र है। यदि यह बात सत्य हो तो इससे भिन्न के ढंग की पूर्णतया 'आनुभविक यान्त्रिकी' की सम्भावना समाप्त हो जाती है। उसी के साथ उसके प्राग्भावी तत्त्व अब उन बिम्बों की इकाइयों के अतिरिक्त और कुछ नहीं रहते जिन्हें हम आनुभविक के साथ अधिक प्रभावशाली होने के लिए निर्मित कर देते हैं। ये किसी भी अर्थ में विवेक की आवश्यकता नहीं हैं। इस प्रकार हर्ट्ज का यान्त्रिकी का विश्लेषण पारम्परिक अनुभववाद और पारम्परिक बुद्धिवाद (Rationalism) के बीच का मार्ग प्रशस्त करता है।

साइंस ऐंड हाइपोथेसिस (1902 अंग्रेजी अनुवाद 1905) जैसे ग्रन्थों में गणितीय भौतिक शास्त्रों को प्रशिक्षित करते हुए हेनरी पोइनकेयर[1] ने अपेक्षाकृत अधिक लोकप्रिय तथा निष्कृति में शीघ्र प्रभावशाली स्वरूप में बहुत कुछ वैसी ही स्थिति सामने रखी। पोइनकेयर इस विचार को नकारने में विशेष रूप से सन्नद्ध हैं कि सिद्धान्ततः यान्त्रिक ढंग से विज्ञान का निर्माण स्वयंसिद्धों में से निष्कृतियाँ निकालकर ही किया जा सकता है। इस दृष्टि से वह आत्मा से उसी विचार आन्दोलन के हामी हैं जिसके बर्गसाँ और अर्थक्रियावादी हैं। वह विचार के यन्त्रीकरण के किसी भी प्रयत्न के विरोध में सहजता और अन्तर्ज्ञान की रक्षा करते हैं। इस कारण से उन्होंने रसल और उसके सहयोगियों के गणितीय तर्क पर प्रबलता से आघात किया है। उन्होंने सोचा कि गणित को तर्कशास्त्र में बदलने का अर्थ उस सहजता और अन्तर्ज्ञान के तत्त्व को नष्ट करना होगा जिसे उन्होंने विशेष महत्त्व दिया है।

उस 'रूढ़िवाद' की यही पृष्ठभूमि है जो पोइनकेयर के नाम के साथ जुड़ी है। जब उन्होंने इस बात की धारणा की कि यान्त्रिकी के नियम परिपाटियाँ हैं तो वह इस लिए थी कि परिपाटी मानवीय आत्मा का एक स्वतन्त्र सृजन है। जैसा कि अर्थक्रियावादियों ने कहा था यदि नियम अनुभवों का एकमात्र सारांश ही होता तो वैज्ञानिक का कार्य उसके पर्यवेक्षणों के रिकार्ड करने और उनके सारांश निकालने तक ही सीमित रहता। वैज्ञानिक वास्तव में एक संवेदनशील मशीन के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। लेकिन यदि इसके विपरीत नियम मात्र परिपाटियाँ या छद्मवेशी परिभाषाएँ अथवा ऐसी भाषा ही है जिसे हम लचों की गति के सम्बन्ध में बात करने की व्यवस्था के लिए निर्मित करते हैं, तो वैज्ञानिक एक सर्जक है।

---

[1] आर० एम० एम० (1913) का पोइनकेयर अंक देखें, टी० डेनजिग हेनरी पोइनकेयर (1954)

यह सिद्धान्त प्रत्यक्ष ही विज्ञान की वस्तुपरकता को नष्ट कर देता है। उसे काव्य की एक प्रजाति (Species) में बदल देता है। पाइनकेयर के मत में उनके कुछ शिष्य[1] परिपाटीवाद (Conventionalism) को उस दिशा में बहुत दूर तक ले गए, और आदर्शवाद में लाकर विलीन कर दिया। इसलिए उन्होंने यह दर्शाने की चेष्टा की कि परिपाटी एक स्वतन्त्र सृजन होने के बावजूद भी स्वेच्छा नहीं है। अनुभव यदि किसी वैज्ञानिक को एक विशेष परिपाटी पर चलने के लिए बाध्य नहीं करता तो कम से कम एक दिशा को छोड़कर दूसरी किसी दिशा में जाने के लिए निर्देशित तो करता ही है। पाइनकेयर अपने प्रिय उदाहरण में कि वैज्ञानिक ग्रहों की गति के सम्बन्ध में एक टोलेमिक और और एक कोपर्निकन, विवरणों में से किसी एक परिपाटी को चुनते हुए न कि किसी तथ्य को रिकार्ड करते हुए अपने चुनाव में किञ्चित भी नहीं सकुचाता। विज्ञान की वस्तुपरकता इसी बात से निकलती है कि एक बार एक परिपाटी के चला दिए जाने पर वैज्ञानिक लोग उसकी वरिष्ठता को स्वीकार कर लें। पाइनकेयर ने सोचा गलीलियो सत्य के लिए संघर्ष कर रहा था भले ही सत्य वास्तव में वह न हो जिसे गलीलियो ने मान रखा था।

पोइनकेयर परिपाटीवादी और आनुभविक तत्वों को समन्वित करने में वास्तव में भले ही सफल न हुए हों, वे अपने सहकर्मी वैज्ञानिक पियर दुहीम[2] का

---

[1] उदाहरणार्थ के लिए ई० ली राय। देखें उनकी द लोजिक आव इनवेंशन' (आर एम एम 1905)। परिपाटीवाद का एक संस्करण पहले ही जी० मिल्हाड के द्वारा अपनी ले रेशनल (1898) में रसायनशास्त्र में व्यवहृत हुआ था। फ्रांसीसी रीतिवादी सामान्यत इसे दर्शन की ही एक शाखा मानते हैं जो कि फ्रांस में अधिक सक्रिय हैं। देखें ए लीलेण्ड पब्लिकेशन्स इन द फिलोसोफी आव द साइन्सेस (1900) जो फिलोसोफीकल थोट इन फ्रांस एण्ड द यूनाइटेड स्टेटस में प्रकाशित हुआ (संपादन एम० फारबर (1950) द नेचर आव फिजिकल थ्योरी (1931) नामक बी लेन्जन के ग्रन्थ में और ए० पथ की द ए प्रियोरी इन फिजिकल थ्योरी (1946) में इन सबने यह कह कर कि व्यापक रूप से पुष्ट प्राक्कल्पनाएं परिपाटियों की तरह ही काम करती हैं, परिपाटीवाद को अनुभववाद के साथ समन्वित करने के प्रयत्न किये, यद्यपि बाद के अनुभवों ने भले ही उन्हें उलटा कर दिया हो। सी लवी कृत पैप का रिव्यू (माइण्ड 1947) भी देखें।

[2] देखें दुहीम कृत ए रे की पुस्तक ला थ्योरी दे ला फिजीक चेज लेस फिजीसियेन्स कन्तेम्पोरेन्स (1907) की समीक्षा जिसे एक परिशिष्ट के रूप में उनकी पुस्तक फिजिक्स इट्स आब्जेक्टस, इट्स स्ट्रक्चर (1906 अंग्रेजी अनुवाद 1954) के द्वितीय संस्करण के साथ (1914) में जोड़ा गया।

इस बात से आश्वस्त करने में निश्चय ही असफल रहे कि वे वैसा समन्वय कर सके थे। दुहैम इस बात का स्वीकार करते हैं कि वैज्ञानिक सिद्धान्तो को बडे अनमने मन से अस्वीकार किया जाता है। कभी कभी तो उनके अवगुण लम्बे प्रयोगो के प्रमाण के पश्चात ही सामने आते हैं, तब भी वे इस बात को स्वीकार नही करते कि ये शुद्ध परिपाटियां हैं, कोई भी प्रयोग सिद्धान्त रूप में उन्हें असिद्ध नही कर सकता। उनका उद्देश्य वैज्ञानिक सिद्धान्तो का एक ऐसा ढांचा तैयार करने का है जो उन्हें अनुभवसिद्ध होने के लिए प्रस्तुत करे यद्यपि उस जांच का सीधा और तात्कालिक होना जरूरी नही है।

दुहेम के अनुसार रीतिवादी एक भ्रामक किन्तु खतरनाक गलती में पडते हैं। वे शरीरविज्ञान अथवा दैनिक जीवन की भांति भौतिक सिद्धान्तो को भी, विज्ञान की आनुभविक प्राक्कल्पनाओ के साथ मिलाते हैं। लेकिन जहां ऐसी कोई प्राक्कल्पना कुछ विशेष पर्यवेक्षणीय इयत्ताओं के गुणो का वर्णन करती हैं, दुहैम कहते हैं वहां एक भौतिक नियम अमूर्त और प्रतीकात्मक होता है। वह भौतिक इयत्ताओ के स्थान पर पुंजो, दबावो और आयतनो को सम्मिलित करता हैं। यदि एक वैज्ञानिक किसी दबाव और ताप को देखने की बात करता है दुहैम चुनौती देते हुए कहते हैं कि, तो उसे यह स्मरण रखना चाहिए कि उसका पर्यवेक्षण एक सैद्धान्तिक सम्बन्ध को पहले से मान कर चलता है यथा पारे के खाने के घनत्व में ताप और एक परिवर्तन के बीच का सम्बन्ध। इस प्रकार यह मानना एकदम गलत है कि भौतिक विज्ञान ऐसी आनुभविक प्राक्कल्पनाओ से बनता है जो पर्यवेक्षण द्वारा अन्तिम रूप से प्रस्थापित या विस्थापित की जा सकती हैं। तथाकथित पर्यवेक्षण स्वयं अपने आप में वैज्ञानिक सिद्धान्तो को अन्तर्निहित किए रहते हैं और यह उन्ही सिद्धान्तो में से हमारे पर्यवेक्षणो के विरोध में हो सकता है प्राक्कल्पनाएं विरोधी नही हैं।

भौतिक शास्त्र की प्रणाली को जैसा कि दुहेम वर्णन करते हैं चार अवस्थाओ में बांटा जाता है। प्रथमत भौतिकशास्त्री भौतिक प्रक्रियाओ के सरलतम अंगो को चुन लेता है जो उसे सरल दिखते हैं, वह गलती पर भी हो सकता है (कारण कि वे कैसे विखण्डित होते हैं, वह नही जानता, लेकिन तब भी उनमें से वह कुछ अधिक जटिल प्रक्रियाओं का निर्माण कर सकता है।) वह इन्हें गणितीय प्रतीको के रूप में रूपांकित करता है यहां वास्तव में शुद्ध परम्परा का एक तत्व आ जाता है। जैसे कि भौतिकशास्त्री ताप को एक सेन्टीग्रेड पर बहुत [illegible] अंशमानो में प्रतीकित करने के लिए चुनता है तो अपनी रचनात्मक गणितीय कल्पना के प्रयोग से वह इन प्रतीकों को एक सामान्य सिद्धान्त के रूप में जोड़ देता है। यहां तक अनुभव भी भौतिकशास्त्री को सुधारने में असमर्थ है, उसका कार्य अभेद्य रहता है। जब तक कि

उसमें या तार्किक विरोध प्रकट न हो जाए। लेकिन अन्त में वह अनुभव की तरफ ही अधिक लौटता है। नंगे तथ्यों की तरफ नहीं बल्कि प्रयोगात्मक नियमों की तरफ। यदि उसके सिद्धान्त में से ज्ञात प्रयोगात्मक नियमों को निगमित किया जा सकें तो वह इसे सच्चा मानता है लेकिन यदि जो परिणाम वह निकालता है प्रयोगात्मक नियमों के साथ असंगत हैं तो उसके उपकरण चाहे जिस सीमा तक परिशुद्धता की इजाजत देते हों वह अपना सिद्धान्त झूठा मानकर छोड़ देता है अथवा उसमें कोई न कोई संशोधन अवश्य कर देता है। तब इन अवस्थाओं में प्रयोगात्मक नियम निर्णायक हो जाते हैं।

कुछ मायनों में दुहेम का ढंग मैशियन है। वह कहते हैं कि भौतिक सिद्धान्त एक व्याख्या नहीं है। व्याख्या का कार्य तत्त्वदर्शनवादियों के लिए छोड़ देना चाहिए[1]। वह आगे कहते हैं, एक सिद्धान्त गणितीय तर्कवाक्यों की ऐसी व्यवस्था है जो अधिकाधिक सरल पूर्ण और सही ढंग से प्रयोगात्मक नियमों के पूरे समूह का प्रतिनिधित्व करने का प्रयत्न करती है। लेकिन साथ ही वे किसी भी स्थिति में मैश के अनुगामी मात्र नहीं हैं। उनकी मौलिकता प्रथमतः सिद्धान्तों और प्रयोगात्मक नियमों के स्पष्ट अन्तर दिखाने में, दूसरे एक असली (क्रूशल) प्रयोग के आदर्श को त्याग देने में तथा तीसरे उनके इस बात के आग्रह में है कि भौतिक सिद्धान्तों को गणितीय स्वरूप ही ग्रहण करना चाहिए अर्थात् यह उनकी यान्त्रिक आरूपों की अस्वीकृति हुई।

ई० मेयरसन[2] के लेखों में मैश का विरोध अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ट और मुँहफट है। संभवतः यह बात अमहत्वपूर्ण नहीं है कि मेयरसन का प्रशिक्षण एक रसायनशास्त्री के रूप में ही हुआ था अतः एक दृष्टि से विज्ञान का उनका सिद्धान्त मैश के वस्तुस्थितिवाद के विरोध में एक परम्परात्मक रासायनिक यथार्थवाद के बचाव के रूप में लिया जा सकता है। दुहेम और पियर्सन से ये वैसे

---

[1] वैसे दुहेम एक कैथोलिक थे। उन्होंने भौतिकशास्त्र को तत्ववादी दर्शन से जिस तीव्रता के साथ अलग कर दिया वह भौतिकशास्त्र के लिए भी उतने ही हित का था जितना तत्ववादी दर्शन के। अभिनव दर्शन की एक महत्वपूर्ण विशेषता वास्तव में कैथोलिक दार्शनिकों की विज्ञान की वस्तुस्थितिवादी व्याख्याओं को इस आधार पर स्वीकार करने की तत्परता ही रही है कि वे धर्म का काफी गुंजाइश दे देते हैं।

[2] देखें जी० बास ए क्रिटिकल एग्जामिनेशन आव द फिलोसोफी आव ई० मेयरसन (1930), ए० ई० ब्लूमबर्ग का ई० मेयरसन्स क्रिटीक आव पोजिटिविज्म' मोनिस्ट 1992) मैटर एण्ड लाइट (1937, अंग्रेजी अनुवाद 1939) में प्रकाशित एल० डी ब्रोगली का स्मारक निबंध।

कनिष्ठ हैं। वास्तव में दशन को इनका अत्य त व्यापक योगदान द प्रोग्रेस आव थोट (1931) तक प्रकाशित नही हुआ था। तथ्य यही है कि उनको विचारधारा पूव आइ स्टीन काल मे ही निमित हो गई थी। यह विचारधारा वातावरण के लिहाज स पुरातन थी इतिहास का कालक्रम अवश्य नया था।

मयरसन की पहली महत्वपूण पुस्तक आइडेंटिटी एण्ड रियलिटी (1908 अ ग्रे० अनु० 1930) उनकी कृतियों के दोनो मुख्य बि दुओ को सुझाती है। वस्तुनिष्ठावादी इस सिद्धा त के विपरीत कि विज्ञान सवगो को अनुशासित करता है उ होने इस बात की पुष्टि की कि विनान का उद्देश्य है यथार्थो तक वस्तुओ को भेदना क्योंकि वास्तव म यही तात्विक आवेग (ontological impulse) हैं। जो वस्तुत है, उसकी खोज ही विनान का प्रेरक तत्व है। मयरसन के अनुसार परमाणुसिद्धान्त एक आदश वनानिक सिद्धा त का अच्छा उदाहरण है। दूसर, इस विचार के खिलाफ कि विज्ञान अपने आपको अचल सयोजको (Constant Conjunctions) की खोज तक ही सीमित रखता है, वे कहते हैं कि विनान समरूपकों की खोज है। विनान प्रदर्शित करता है कि जो सतही तौर पर सृष्टि और विनाश की प्रक्रिया दिखती है, वह वाकई म पदार्थों के अ दर होने वाली ऐसी पुन यवस्थाओ के अतिरिक्त और कुछ नही हैं जो प्रत्यक्ष परिवतनो क माध्यम स अपनी समरूपता को कायम रखती हैं। और उस दृष्टिकोण से मेयरसन ने सोचा कि मरक्षण सब धी नियम वनानिक जाच म से ही निकले हैं। वास्तव म यदि विनान पूण रूप म सफल होता तो वह व्यथ की पुनरुक्तियो मे उलझ कर कभी का समाप्त हो गया होता। यह एक ऐसी नियति थी जिसस वह बचा रहा—यद्यपि यह पर्याप्त विरोधाभासी लगता है, पर यह सब इसलिए हुआ क्योंकि विनान पूणत कभी भी अविवेकी स्थितियो पर विजय प्राप्त नही कर सका अर्थात् वह उन विभिन्नताओ म रही एकरूपता को प्रकट करने म असफल रहा।

स्पष्टत मेयरसन की रचनाए समसामयिक दशन की प्रमुख धाराओ क सीधे विरोध म आती है। आज उ हे एक दाशनिक मानने की बजाय विनान के इतिहासकार क रूप म अधिक ख्याति प्राप्त है, दूसर लेखकों के विपरीत जिनकी रचनाओ पर हम विचार करते रहे हैं—जसे मश, पियसन क्लिफोड हट ज, दुहैम पाइनकेयर, और जिनकी कृतियो ने विज्ञानदशनो का आकार ग्रहण किया व समसामयिको का ध्यान अपनी ओर के द्रित किया। इसी बीच भौतिकशास्त्री स्वय तत्ववादी अनुमान की गहराइयो मे चल गए।

पिछली कुछ दशाब्दियो मे दाशनिक प्रवत्तिवाले वज्ञानिको की रचनाओं में एक महत्वपूण प्रवृत्तिमूलक परिवतन प्रकट हुआ है। दुहैम और मश दोनों ने अले

हो यह भिन्न भिन्न कारणों से किया हो तत्वदर्शन से भौतिकशास्त्र के स्वतन्त्र होने की बात पर जोर दिया। उन्होंने इस बात की धारणा की कि भौतिकशास्त्र न तो किसी का ऋणी ही था और न उसने परम्परात्मक दर्शन को ही कुछ दिया। इसके विपरीत एडिंगटन और व्हाइटहेड जो शिक्षा से गणितज्ञ भी थे पूर्णत तत्ववादी रहे जबकि तत्वदर्शन को साधारणतया पेशेवर दार्शनिकों द्वारा दूर से ही टाल दिया जाता रहा।

भौतिकशास्त्र की प्रकृति में हुए परिवर्तन, ऐसे परिवर्तन जिनके विषय में हम केवल नाम और[1] तिथि लिख सकते हैं दर्शन के प्रति वैज्ञानिकों के दृष्टिकोण में कुछ क्रान्तिकारी संशोधन के लिए उत्तरदायी हैं। अनेक अर्थों में ऐसा आभास हुआ कि भौतिकशास्त्र तत्ववाद की जिम्मेदारियों के लिए उसका वारिस हो गया। प्रथम परिवर्तन था दिक और काल के सम्बन्ध में। आइन्स्टीन का सापेक्षता का विशेष सिद्धान्त (1905) सापेक्षता के पक्ष में इस बहु विवादित दार्शनिक समस्या को लेकर धीरे धीरे जम रहा था कि क्या दिकीय स्थिति और कालावधि प्रभूत्त और सापेक्ष है? एक भौतिकशास्त्री के, न कि एक तत्ववादी के प्रयत्नों से एक दार्शनिक सुवाद अन्तत समाप्त हुआ। दूसरे जैसा कि कहा गया था भौतिकशास्त्र ने प्राचीन नियतिवादी सुवाद पर एक नई रोशनी डाली। शास्त्रीय नियतिवाद को इस प्रकार रक्खा जा सकता है—यदि दिए हुए समय में एक भौतिक पद्धति का तथा उस पर लागू होने वाले समस्त बाह्य प्रभावों का सम्पूर्ण विवरण उपलब्ध हो, तो सिद्धान्त रूप से उस पद्धति की भावी स्थिति के बारे में पूर्वानुमान करना सदैव संभव है। ऊर्जाणु-यान्त्रिकी ने जो हिसेनबर्ग के 'अनिश्चय सिद्धान्त' में प्रकट हुई थी और जिसे एडिंगटन ने 'अनियततत्ववादी सिद्धान्त' की संज्ञा दी थी उप-अण्वीक्षणीय प्रक्रियाओं के संबंध में तो कम से कम 'पूर्ण विवरण' की संभावना को रद्द कर शास्त्रीय नियतिवाद के सिद्धान्त को नीचा दिखाया है। एक विद्युतकण की स्थिति को पूर्ण परिशुद्धता के साथ निश्चित करने के दौरान में ही हिसेनबर्ग ने कहा कि भौतिकशास्त्री उसकी निश्चयीकरण की संभावनाओं को स्वत ही समाप्त कर देता है। अनेक भौतिकशास्त्रियों ने जब इसका यह अर्थ निकाला कि कार्यकारण सम्बन्धी सिद्धान्त को पछाड़ दिया गया है, तो ऐसा आभास हुआ कि एक महत्वपूर्ण दार्शनिक निष्पत्ति भौतिकशास्त्रियों के विचारविमर्शों से एक बार फिर प्रकट हुई है।

---

[1] विस्तृत विवरणों के लिए देखें ए० आइन्स्टीन और एल० इनफील्ड की द इवोल्युशन आव फिजिक्स (1938), डब्ल्यू० विलसन की ए हन्ड्रेड ईयर्स आव फिजिक्स (1950)।

तीसरे नवभौतिकी बहुत कुछ महत्वपूर्ण अंशों में ज्ञानमीमांसीय थी। उसकी सफलताओं ने, जैसा कि बताया गया, हमेशा के लिए ज्ञानमीमांसा के तमाम परम्परावादी झगड़ों को तय कर दिया था। यह कसौटी—जिसे अब एक शास्त्रीय उदाहरण का स्तर प्राप्त हो गया है, आइंस्टीन की परम समकालिकता (एब्सोल्यूट सायमल्टेनिटी) की धारणा की आलोचना है। आइन्स्टीन पूछते हैं, कोई इस बात को कैसे देख सकता है कि दो सुदूर घटनाएं एकदम समकालिक हैं? आइंस्टीन सिद्ध करने के प्रयास में कहते हैं—ऐसा कोई भी प्रयत्न जिससे हम उनकी समकालिकता को स्थापित करने की आशा करते हैं एक दोषपूर्ण प्रतिगमन (वीसियस रिग्रेस) को ही अपने में सन्निहित करता है। उदाहरणार्थ मान लीजिए कि हम यह सुझाते हैं कि दो घटनाएं समकालिक हैं क्योंकि वे घटी मुखों पर नापे जाने के पश्चात् एक ही समय में घटती दिखती हैं। सुदूर वस्तुओं के मामले में कोई इस बात का निश्चय कैसे कर सकता है कि घटी-मुखों पर पहुंचने वाले हाथ एक बिन्दु पर एक ही समय में पहुंचे हैं?

आइंस्टीन समापन करते हुए कहते हैं कि सुदूर वस्तुओं की परम समकालिकता की धारणा निरर्थक है। आइंस्टीन कहते हैं कि ह्यूम और मैश के अध्ययन ने उन पर निश्चय ही प्रभाव डाला है। ज्ञानमीमांसीय विश्लेषण जिसका यहां भौतिक सिद्धान्त की रचना के लिये प्रयोग हुआ है वह न तो लोक और न बर्कले ही के लिए एक ऐसी प्रक्रिया है जिसे बाह्य विवेचनात्मक माना जाय। अब यह भौतिक शास्त्री के कार्योपकरणों में से एक ऐसा उपकरण है जिसका औचित्य किसी अन्य उपकरण की भांति भौतिक समस्या के हल करने के पश्चात् उपलब्ध सफलता का संकेत देता है। इस आधार पर एक मात्र स्वीकार्य ज्ञानमीमांसा वही है जो संक्रिय भाषा में धारणाओं को परिभाषित करे और जो उन सब धारणाओं को निरर्थक कह कर त्याग दे जो कार्यशील परिभाषाओं के अन्तर्गत नहीं आतीं।

भौतिक शास्त्र के इस दार्शनिक रूपान्तर का सभी भौतिकशास्त्रियों ने प्रसन्नतापूर्वक स्वागत नहीं किया। एडिंगटन ने इसे प्राकृत दर्शन का पुनरुद्भव माना है। रदरफोर्ड जैसे प्रयोगवादी इन नयी प्रवृत्तियों के प्रति पूर्ण सन्देहशील थे। तो भी सम्पूर्णतः गणितीय भौतिकशास्त्री जिनके लिए ज्ञानमीमांसक विश्लेषण प्रयोगशाला के शिक्षण से कहीं अधिक उपयुक्त है, आधुनिक विज्ञान का प्रवक्ता रहा।[1] वे भी आधुनिक भौतिकशास्त्र के दार्शनिकीकरण के संबंध में एकमत नहीं

---

[1] इस संबंध में एक उल्लेखनीय अपवाद हैं प्रयोगवादी एन० आर० कैम्पबेल, जिनकी रचना फिजिक्स द एलीमेण्ट्स (1920) भौतिक नियमों एवं भौतिक सिद्धान्तों के बीच रहे संबंधों की महत्वपूर्ण ढंग से व्याख्या प्रस्तुत करती है। स्ट्रक्चर एण्ड

थ। आइस्टीन एव प्लक[1] इन दोनो म से एक भी यह स्वीकारने के लिए तयार नही कि हिसनबग का अनिश्चितता का सिद्धा त काय कारण के सिद्धान्त का अ तिम रूप स उ मूलन कर देने म सफल हुआ है। और न सभी भौतिकशास्त्रियो ने आइ स्टीन के दिककाल सिद्धा त को ही स्वीकार किया। कम से कम थोडे हेर फर के बाद ही धारणाओ एव सक्रियता के बीच के सबधो को विभिन्न धरातलो पर स्थापित किया गया। कि तु उन मतभेदों के बीच की दूरी कितनी ही रही हो तथ्य यह है कि परम्परागत दशन ही अधिकाश समस्याओ को अब भौतिक सिद्धा तो क आधार पर ही चर्चित किया जा रहा था। भौतिकशास्त्री अब उन विवादो पर अपनी विशेषज्ञ दृष्टि से विवचन करने लगे जि ह व कभी रूखे तत्ववाद का विषय मानकर त्याग देते थे।[2]

पेशेवर दार्शनिक, दार्शनिक पत्रकार नही भौतिकी म हुई क्राति स बहुत न्यून रूप मे प्रभावित हुए। उन को यह सदेह करना पडा था कि बहुत सी अन्य क्रान्तियो की भाति भौतिकी की क्राति ने भी कोई नई दार्शनिक समस्या को खडा नहीं किया और न पुरानी समस्याओ को ही हल किया है। हा, केवल हगामा ही अधिक मचाया है। इसके साथ यह तो माना जाना ही चाहिए कि व्यवसायी दार्शनिको को यह बात डरा गई कि दार्शनिक भौतिकी अपनी युक्ति के महत्त्वपूर्ण बि दुओ पर गणित मे जाकर विलीन होती चली जा रही है। न दार्शनिको की यह आस्था कि वे सूक्ष्म बातो को भी समझ सकते हैं उ ह इस अपेक्षा की ओर ही ले गई कि उनके बाध मे

थ्योरीज नामक इसी का एक अध्याय फागल एव ब्रौडबक की कृति रीडिंग्स इन द फिलोसोफी आव साइन्स म भी पढा जा सकता है। रीतिविधान की चर्चा करने वाली रचनाओ मे कम्पबल की रचनाए बहुधा अचर्चित ही रह जाती हैं। (ब्रथवेट की साइण्टिफिक एक्सप्लेनेशन्स चाहे इसका अपवाद है) कि तु युवा ब्रिटिश विचारकों म इन्हें बडे सम्मान से पढा जाता है।

[1] आइ स्टीन फिलोसोफर साइण्टिस्ट (लाइब्रेरी आव लिविंग फिलोसोफर्स स० पी० ए० शिल्प (1949) म देखें यही चर्चा।

[2] उदाहरण के लिये देखें एम० प्लैंक कृत व्हेयर इज साइन्स गोइंग? (1932) (अंग्रेजी अनुवाद 1933)। डब्लू० हिसेन्बग कृत फिलोसोफिकल प्रोब्लेम्स आव न्यूक्लियर साइन्स (1935) अंग्रेजी अनुवाद (1952) एम० बान कृत नेचुरल फिलोसोफी आव कौज एण्ड चान्स (1949) एल० डी० ब्रोगली कृत मैटर एण्ड लाइट (1937 अंग्रेजी अनुवाद 1939) एच० मारजिनो द नेचर आव फिजिकल रीयलिटी (1950); एच० वील कृत द फिलोसोफी आव मैथेमेटिक्स एण्ड नेचुरल साइन्स परिवर्द्धित संस्करण 1939 (मूल जमन टेक्स्ट 1926 का था)

कोई विशप महूत्व का चमत्कार उत्पन्न होने वाला है। केवल अपवाद अवश्य रहे होंगे। उल्लेखनीय दाशनिक राजनीतिज्ञ आर० बी० हाल्डेन, अपनी बहुपठित पुस्तक द रेन आव रिलेटिविटी (1921)[1] म अपनी होगलवादी आस्था पर म इस्टीन के मापप्नता के सिद्धा त की याख्या करने का प्रयास करत हैं। एलेक्जेण्डर ने कालन्कि सम्बंधी सिद्धा त की उनके द्वारा की गई आंशिक पुष्टि का स्वागत किया। रसल ने नवमौतिकी की लोकप्रिय याख्या की तथा उसक प्रमाव चि हो का वहा दर्शाया। बहुत से केम्ब्रिज दाशनिको ने जमे सी० डी० ब्रोड इस बात का मानवोचित प्रयास किया कि मौतिकी क समसामायिक विकास मे से कोई दाशनिक मथ निकाला जा सके। सब मिलाकर अभिनव विज्ञान के दाशनिक स्वर की खोज के लिए वनानिक दाशनिको की ओर ही मुँह कर के हमे देखना होगा जो इस काल म बहुतायत मे थे।

अग्रेंज लेखको म सर आथर एडिंगटन नाम के ज्योतिषी सुविख्यात हैं[2] उनकी कृति स्पेस टाइम एण्ड ग्रेविटेशन (1920) म उन्होने आधुनिक वैनानिक विचारो के स्पष्टतम व्याख्याता के रूप मे यश कमाया। नेचर आव फिजीकल वल्ड (1928) एव द फिलोसोफी आव फिजिकल साइन्स (1939) मे वे प्रबुद्ध प्राकृत दाशनिक के रूप मे प्रकटे हैं। उनक दशन म नवमौतिकी की व्याख्या के लिए उपयोग म ली गई व्यक्तित्वमूलक प्रत्ययवान्दी प्रवृत्ति के दशन किये जा सकते हैं।[3]

---

1 इमके साथ ही विशिष्ट राजनीतिज्ञ होने क नात लाड हाल्डन दाशनिक कृतियो की एक दीघ शृ खला क निर्माता थ जिनमे द पाथवे टू रीअलिटी सव-प्रसिद्ध है। यहा यह बात उल्लखनीय है कि रेन आव रिलेटिविटी (1903 4) ब्रिटन के व्यवसाय के लिए आणविक ऊर्जा पर काय किय जाने की सम्भावना और उसके महत्व पर बल देते हैं। प्रत्ययवान्दी तत्ववादी दाशनिक द्वारा एकाएक अपने ग्र थ म सहज व्यावहारिकता का यह प्रयोग किया जाना वास्तव म अद्वितीय है। देखें ए एस प्रिगल पटीसन द्वारा लिखित मृत्युलेख (पी० बी० ए० 1028)

2 दखें ए० डी० रिशी द्वारा दिये गय एडिगटन की स्मृति मे भाषण (1948), ई० हाइटाकर (1951), एच० डिंगल (1954), जी० डी० हिक्स कृत प्रोफसेर एडिगट स फिलोसोफी आफ नेचर (पी० ए० एस० 1928) एन० आर० कम्पबल "एरम आव सर आथर एडिगटन' (फिलो० 1931) ई० व्हाइटाकर फ्रोम यूक्लिड टू एडिगटन (1949) आर० बी० ब्र थवट क रिव्यू (माइण्ड 1929 1949) सी० डी० ब्राड (फिलो० 1940)

3 देखें एस० स्टबिंग फिलोसोफी एण्ड फिजिसिस्ट 1937, पी० फ्रैंक इण्टरप्रिटेश स एण्ड मिसइण्टरप्रिटेशन्स आव माडन फिजिक्स (1939), द न्यू फिजिक्स एण्ड मैटाफिजिकल मैटीरियलिज्म (पी० ए० एस० 1942) एव रीअलिज्म एण्ड मोडन फिजिक्स (पी० ए० एस०,एस० 1929 पर विचार), ई० नेजल सोवरेन रीजन (1954)

एडिंगटन यह मानते हैं सब प्रश्नों से परे, कि हम प्रत्यक्षतः हमारी चेतना के उपकरणों के अतिरिक्त अन्य किसी भी वस्तु से परिचित नहीं होते। इस मामले में तथा और भी बहुत से मामलों में उनके दार्शनिक विचार सीधे रूप में डब्लू० के० क्लिफोर्ड से प्रभावित हैं। वे इस एक मान्यता नहीं मानते किन्तु यह एक तथ्य हैं जो अन्य मान्यताओं से कहीं अधिक इस संबंध में सन्देहशील है कि एडिंगटन का दर्शन आधुनिक विज्ञान की ही एक परिणति है और कार्टेजियन परम्परा से प्रभावित नहीं है।

इस तरह एडिंगटन के लिए आइंस्टीन की भौतिक धारणाओं संबंधी कार्यकारी परिभाषा चेतना के उपकरणों की बात की ही सिद्धि है। अनुभव या क्रियाएं ऐसे ही उपकरणों से पूर्णतः निर्मित हैं। तो भी इसके साथ ही मनुष्य अपरिहार्य रूप से उस ज्ञान की ओर पहुंचने का प्रयत्न करते हैं जो अपनी चेतना से परे विद्यमान है—बाह्य जगत के रूप में। एडिंगटन के सामने भी तब आत्मपरकतावाद की मूलभूत समस्या आ खड़ी होती है। उन्हें अब यह बताना है कि ज्ञान भी हमारी चेतना तक ही सीमित है। वह साथ ही साथ किसी ऐसी अवस्था का ज्ञान भी हो सकता है जो चेतना से परे है। उनका हल नव-काण्टवादी हल है। यदि बाह्य जगत् चेतना की प्रकृति का ही होता तो अनुभव हमें उसके रूप से परिचित करा सकता था, यह उनका तर्क है। इस प्रकार बाह्य जगत् चेतना ही है—जीवन है। बाह्य जगत् का ज्ञान ही सारा वस्तुपरक ज्ञान है, वह आत्मा का ही ज्ञान है। विशुद्ध रूप से वस्तु परक जगत् आत्म जगत् ही है जिसे भौतिकी छायित या प्रतिबिम्बित ही कर सकती है तिरोहित नहीं कर सकती।

हमें यह आश्चर्य नहीं करना चाहिए कि दार्शनिकों ने जिनके द्वारा इस प्रकार के अर्द्ध परिपक्ववाद के जरिए ही इसका प्रवर्तन एवं रक्षा की गई है, एडिंगटन के तत्ववाद पर गम्भीरता पूर्वक विचार किया जाने से इंकार कर दिया है। उनके विज्ञान दर्शन ने संकुचित रूप में अधिक रुचि जाग्रत की थी। इसमें आकर्षण है और अभिनव भौतिकी की युक्तियां तथा अभिप्रेतों की सुन्दर व्याख्या है।

एडिंगटन की दृष्टि में भौतिक शास्त्री 'अदृष्ट तत्वों के त्याग में अभी भी पर्याप्त रूप से दृढ़ नहीं हो पाए हैं। ऐसी धारणाएं जो एक विशिष्ट अवस्था पर बनी हैं, कभी भी सत्यापित नहीं हो सकतीं। एक बार आइंस्टीन प्रणाली के अभिप्रेतों को गंभीरता पूर्वक स्वीकार लिया जाए तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि भौतिकी बिन्दुसूचकों को या मीटरी जांच को संयोजित करने के अतिरिक्त और किसी काम की नहीं है। ये बिन्दुसूचक जो अदृष्ट' प्रक्रियाएं या इयत्ताएं नहीं हैं, इस तरह भौतिकी की विषय वस्तु है। भौतिक जगत् जो जीवाणुओं, विद्युदणुओं

आदि का जगत् है (जिसे किसी भी भांति जीवन या चेतना का बाह्य जगत् नही मानना चाहिए) वही एक ऐसे जगत् के रूप म परिमापित किया जा सकता है जिसकी कि बिन्दुसूचक व्याख्या करते हुए माने गए है।

तब एडिगटन की दप्टि म भौतिक जगत् वस्तुपरक नही है। इस तरह वे नियम जिन्ह भौतिकशास्त्री भौतिक इयत्ताओ के व्यवहार का नियामक मानते है वे निश्चय ही वास्तव मे विद्यमान अवस्थाओ के विवरण नही हैं– सभी प्राकृतिक नियम आत्मपरक हैं। उन्हे एडिगटन द्वारा आत्मपरक कहे जाने का यही आशय है कि उन्ह ज्ञानमीमासा के सिद्धान्त से निगमित किया जा सकता है या फिर प्राग्भावी सिद्धान्तो के जरिए। वे यहा काण्ट से भी आगे चल जाते हैं। यहा तक कि प्राकृतिक स्थिराक के रूप म समष्टि म विद्यमान परमाणुओ की सख्या को प्राग्भावी विचार द्वारा बिना अस्पष्ट हुए निगमित किया जा सकता है और इस तरह वे पूर्णत आत्मपरक हैं। यह एक चकाचौध कर देने वाला सिद्धान्त है। यह एक विचित्र सिद्धान्त है किन्तु इसे केवल विचित्र या स्वौयात्मक (आर बिट्ररी) सिद्धान्त कहकर त्यागा नही जा सकता। एडिगटन सशक्त रूपसे नव भौतिकवादी सिद्धान्तो की ओर युक्तिपूवक हमारा ध्यान खीचना चाहते हैं जिनके जरिय एक प्रस्तुत परिस्थिति म ज्ञान प्राप्त करना हमारे लिए सभव है। इस बिन्दु के सबध म उनके द्वारा प्रस्तुत विस्तृत उदाहरण, व इस पर जो तत्ववादी ज्ञानमीमासक धारणाए उन्होने बनाई वे दशन–वैज्ञानिको के लिये विशेष महत्व की हो गई हैं।

स्पष्टत यह देखा जा सकता है कि एडिगटन आत्मपरक एव वस्तुपरक भौतिक एव बाह्य जगत् सबधी धारणाओ से जूझने मे लगे हैं। वे इस अनिवादी धारणा को मानने मे हिचकते हैं कि भौतिक जगत् एक साथ आत्मपरक भी है तथा एकमात्र विद्यमान जगत् भी है। उनके दशन म प्रस्तुत बाह्य जगत् म मूल्यो के लिय पर्याप्त स्थान है। वस्तुपरकता के आदश को न छोडकर भी वे यह सब कर सके हैं। एडिगटन के साथी भौतिकशास्त्रियो का उनसे इस बात म असतुष्ट रहना अस्वाभाविक नहीं था कि ज्ञान उस सीमा तक ही वस्तुपरक है जहा तक वह भौतिकी की सीमा स बाहर है।

जिन लोगो ने एडिगटन के बाह्य जगत् के सिद्धान्त का परित्याग कर दिया है और अन्य मामलो मे जो उनके दाशनिक क्षेत्र तक ही सीमित रहे हैं– उनम दो व्यक्ति उल्लेखनीय हैं एच० डिगल एव पी० डब्लू० ब्रिजमेन। डिगल कृत द सोर्सेज आव एडिगटन्स फिलोसोफी (1954) नामक शोधलेख स्पष्ट रूप स उनके और अपने बीच रहे विज्ञान–दशन सबधी मतभेदो को व्यक्त करता है। डिगल के अनुसार एडिगटन यह जानने म पूर्णत असफल रहे कि उनकी दाशनिक कृतियो का क्या

एडिंगटन यह मानते हैं सब प्रश्नों से परे, कि हम प्रत्यक्षतः हमारी चेतना के उपकरणों के अतिरिक्त अन्य किसी भी वस्तु से परिचित नहीं होते। इस मामले में तथा और भी बहुत से मामलों में उनके दार्शनिक विचार सीधे रूप में डब्लू० के० क्लिफर्ड से प्रभावित हैं। वे इसे एक मान्यता नहीं मानते किन्तु यह एक तथ्य है जो अन्य मान्यताओं से कहीं अधिक इस सम्बन्ध में आग्रहशील है कि एडिंगटन का दर्शन आधुनिक विज्ञान की ही एक परिणति है और कार्टेजियन परम्परा से प्रभावित नहीं है।

इस तरह एडिंगटन के लिए आइन्स्टीन की भौतिक धारणाओं सम्बन्धी कार्यकारी परिभाषा चेतना के उपकरणों की बात की ही सिद्धि है। अनुभव या क्रियाएं ऐसे ही उपकरणों से पूर्णतः निर्मित हैं। तो भी इसके साथ ही मनुष्य अपरिहार्य रूप से उस ज्ञान की ओर पहुंचने का प्रयत्न करते हैं जो अपनी चेतना से परे विद्यमान है—बाह्य जगत के रूप में। एडिंगटन के सामने भी तब आत्मपरकतावाद की मूलभूत समस्या आ खड़ी होती है। उन्हें अब यह बताना है कि ज्ञान भी हमारी चेतना तक ही सीमित है। वह साथ ही साथ किसी ऐसी अवस्था का ज्ञान भी हो सकता है जो चेतना से परे है। उनका हल नव-काण्टवादी हल है। यदि बाह्य जगत् चेतना की प्रकृति का ही होता तो अनुभव हमें उसके रूप से परिचित करा सकता था, यह उनका तर्क है। इस प्रकार बाह्य जगत् चेतना ही है—जीवन है। बाह्य जगत् का ज्ञान ही सारा वस्तुपरक ज्ञान है, वह आत्मा का ही ज्ञान है। विशुद्ध रूप से वस्तु परक जगत् आत्म जगत् ही है जिसे भौतिकी छायित या प्रतिबिम्बित ही कर सकती है तिरोहित नहीं कर सकती।

हमें यह आश्चर्य नहीं करना चाहिए कि दार्शनिकों ने जिनके द्वारा इस प्रकार के अर्द्ध परिपक्ववाद के जरिए ही इसका प्रवर्तन एवं रक्षा की गई है, एडिंगटन के तत्ववाद पर गम्भीरता पूर्वक विचार किया जाने से इन्कार कर दिया है। उनके विज्ञान दर्शन ने संकुचित रूप में, अधिक रुचि जाग्रत की थी। इसमें आकर्षण है और अभिनव भौतिकी की युक्तियां तथा अभिप्रेतों की सुन्दर व्याख्या है।

एडिंगटन की दृष्टि में भौतिक शास्त्री 'अदृष्ट' तत्वों के त्याग में अभी भी पर्याप्त रूप से दृढ़ नहीं हो पाए हैं। ऐसी धारणाएं जो एक विशिष्ट अवस्था पर बनी हैं कभी भी सत्यापित नहीं हो सकतीं। एक बार आइन्स्टीन प्रणाली के अभिप्रेतों को गम्भीरता पूर्वक स्वीकार किया जाए तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि भौतिकी बिन्दुसूचकों को या मीटरी जांच को संयोजित करने के अतिरिक्त और किसी काम की नहीं है। ये बिन्दुसूचक जो 'अदृष्ट' प्रक्रियाएं या इयत्ताएं नहीं हैं, इस तरह भौतिकी की विषय वस्तु हैं। भौतिक जगत् जो जीवाणुओं, विद्युदणुओं

आदि का जगत् है (जिसे किसी भी भांति जीवन या चेतना का बाह्य जगत् नही मानना चाहिए) वही एक ऐसे जगत् के रूप में परिमापित किया जा सकता है जिसकी कि बिन्दुसूचक व्याख्या करते हुए माने गए हैं।

तब एडिंगटन की दृष्टि में भौतिक जगत् वस्तुपरक नही है। इस तरह वे नियम जिन्हें भौतिकशास्त्री भौतिक इयत्ताओं के व्यवहार का नियामक मानते हैं वे निश्चय ही वास्तव मे विद्यमान अवस्थाओं के विवरण नही हैं– सभी प्राकृतिक नियम आत्मपरक हैं। उन्हें एडिंगटन द्वारा आत्मपरक कहे जाने का यही आशय है कि उन्हें ज्ञानमीमांसा के सिद्धान्त से निगमित किया जा सकता है या फिर प्राग्भावी सिद्धान्तों के जरिए। वे यहां काण्ट से भी आगे चल जाते हैं। यहां तक कि प्राकृतिक स्थिरांक' के रूप में समष्टि में विद्यमान परमाणुओं की संख्या को प्राग्भावी विचार द्वारा बिना अस्पष्ट हुए निगमित किया जा सकता है और इस तरह वे पूर्णत आत्मपरक हैं। यह एक चकाचौंध कर देने वाला सिद्धान्त है। यह एक विचित्र सिद्धान्त है किन्तु इसे केवल विचित्र या स्वोयात्मक (आर बिट्री) सिद्धान्त कहकर त्यागा नही जा सकता। एडिंगटन सशक्त रूप में नव भौतिकवादी सिद्धान्तों की ओर युक्तिपूर्वक हमारा ध्यान खींचना चाहते हैं जिनके जरिये एक प्रस्तुत परिस्थिति में ज्ञान प्राप्त करना हमारे लिए संभव है। इस बिन्दु के संबंध में उनके द्वारा प्रस्तुत विस्तृत उदाहरण, व इस पर जो तत्ववादी ज्ञानमीमांसक धारणाएं उन्होने बनाई वे दर्शन-वैज्ञानिकों के लिये विशेष महत्व की हो गई हैं।

स्पष्टत यह देखा जा सकता है कि एडिंगटन आत्मपरक एवं वस्तुपरक भौतिक एवं बाह्य जगत् संबंधी धारणाओं से जूझने में लगे हैं। वे इस प्रतिवादी धारणा को मानने मे हिचकते हैं कि भौतिक जगत् एक साथ आत्मपरक भी है तथा एक मात्र विद्यमान जगत् भी है। उनके दर्शन में प्रस्तुत बाह्य जगत् में मूल्यों के लिये पर्याप्त स्थान है। वस्तुपरकता के आदर्श को न छोड़कर भी वे यह सब कर सके हैं। एडिंगटन के साथी भौतिकशास्त्रियों का उनसे इस बात में असंतुष्ट रहना अस्वाभाविक नहीं था कि ज्ञान उस सीमा तक ही वस्तुपरक है जहां तक वह भौतिकी की सीमा से बाहर है।

जिन लोगों ने एडिंगटन के बाह्य जगत् के सिद्धान्त का परित्याग कर दिया है और अन्य मामलों में जो उनके दार्शनिक क्षेत्र तक ही सीमित रहे हैं– उनमें दो व्यक्ति उल्लेखनीय हैं, एच० डिंगल एवं पी० डब्लू० ब्रिजमैन। डिंगल कृत द सोर्सेज आव एडिंगटन्स फिलोसोफी (1954) नामक शोधलेख स्पष्ट रूप से उनके और अपने बीच रहे विज्ञान-दर्शन संबंधी मतभेदों को व्यक्त करता है। डिंगल के अनुसार एडिंगटन यह जानने में पूर्णत असफल रहे कि उनकी दार्शनिक कृतियों का क्या

मतलब निकाला जा सकता है। वे यह नहीं देख पाते कि उन्होंने बाह्य जगत् की विक्टोरियन धारणा को अर्थहीनता म बदल दिया है– विशेषकर यह देखते हुये भी कि कितने विक्टोरियन भौतिकशास्त्री सघटनवादी हुए हैं। यह जान करके कि भौतिक विज्ञान बाह्य जगत् को व्यक्त करने म असफल रहा, एडिंगटन ने निष्कर्ष निकाला कि इसे दूसरे ढग से व्यक्त किया जाना चाहिये। डिगल प्रतिवाद म कहते हैं कि अच्छा तो यह होता कि वे यह कह देते कि बाह्य जगत् है ही नहीं। डिगल मैश से इस बात मे सहमत हैं कि विज्ञान अनुभवो का सह-सम्बन्ध ही है, एव भौतिक-शास्त्र के मामले म ये अनुभव बिन्दुसूचकों का रूप ले लेते हैं – और इनका सह सम्बन्ध विद्युदणुओ जीवाणुओ तथा तरग-क्रियाओ आदि के जगत् मे से ऐसे बिन्दुसूचको की रचना कर देना ही होगा।

जीवविज्ञान के मामले म अनुभव जविक निरीक्षण होते हैं जो विकासशील जगत् मे समन्वित हो जाते हैं, इसी म पतृकता आदि जविक धारणाए भी शामिल हैं। इसी प्रकार धम एव आचारशास्त्र मे धार्मिक एव नतिक अनुभवो का समन्वय होता है। न तो भौतिकी और न जीवशास्त्र न तो मटिक या अमैट्रिक पयवेक्षण हमे विज्ञान के जगत् से बाहर ले जाने मे समथ है–क्योकि यह जगत् सहसबधी अनुभवों के अलावा अन्य कुछ नही रखता–एक ऐसे बाहरी जगत को जिसे सभावित वज्ञानिक सयोग से परे मान लिया गया है। न नतिकता तथा धम ही ऐसे अति-अनुभवी जगत् की रचना करने मे समथ हैं। अनुभव सभी कुछ है एव पर्याप्त है।

ब्रिजमैन का सनियवाद' जो सवप्रथम लोजिक आव मोडन फिजिक्स (1927) मे भली भाति प्रवतन म आया है, एडिंगटन के विज्ञान दशन की भाति ज्ञान मीमासीय गुत्थियो से भरपूर है। इसम जो सर्वाधिक प्रभावशाली[1] है वह है इसका यह अथक्रियावादी सिद्धान्त कि धारणा प्रत्यभिमुखी क्रियाओ की इकाई का ही पर्याय है।' उदाहरणाथ लम्बाई की धारणा जिसे ब्रिजमैन ने विस्तार म वर्णित किया है–उन क्रियाओ के समूह से अभिन्न है जिनके जरिए हम यह कहते है कि लम्बाई माप की जाती है। इसमे यह निष्कर्ष निकलता है कि तारकमापी

---

[1] देखें इस पर आधारित रचनाए बी॰ एफ॰ स्किनर द बिहेवियर आव ओरगेनिज्म (1939)सी॰ बी॰ प्रट द लोजिक आव मोडन साइकोलोजी (1939), आपरेशनिज्म इन साइकोलोजी पर साइकोलोजिकल रिव्यू (1945) का प्रकाशित विशेषाक। गूढ अध्ययन के लिए देखें ए॰ सी॰ बन्जामिन कृत ओपरेशनिज्म (1955) मथेडोस नामक पत्रिका के प्रकाशक इटली के रीतिविधायक समुदाय के लोग थे। ब्रिजमन द्वारा प्रवतित विचारो को जमनी के रीतिविधायक ह्यूगो डिगलर की रचनाओ म देखा जा सकता है। देखें मैथेडोस (1952)।

लम्बाई थ्योडोलाइट से मापी लम्बाई की धारणा से बिल्कुल भिन्न है। इससे यह भी निष्कर्ष निकलता है कि सभी ज्ञान सापेक्ष है। विजमैन हालडेन कृत 'द रेन ग्राव रिलेटिविटी' का यहा पर समर्थनपूर्वक सदर्भ देते हैं। विजमैन के अनुसार आइस्टीन के सापेक्षता के सिद्धान्त के ये अपरिहार्य निष्कर्ष हैं। जब तक कि हम उन्हे स्वीकार नही करते तब तक हम आइस्टीन की विचारधारा के क्रांतिकारी पक्ष को पसन्द करने मे असफल हो जाएगे।

सभी वैज्ञानिको मे से यदि गणितज्ञो को भी इस श्रेणी मे मान लिया जाए–जिन जिन ने भी अपने को दार्शनिक बना लिया है उनमे सर्वप्रसिद्ध हैं ए० एन० व्हाइटहेड। कुछ ऐसे लोग भी जो हैं जो यह मानते हैं कि वह हमारी शती के प्रमुख दार्शनिक हैं जबकि कुछ ऐसे भी हैं जो उनकी तत्ववादी सृष्टि को रहस्यमय निजी स्वप्न की सृष्टि कहकर त्यागने योग्य मानते हैं। इतिहास का अन्तिम कथन कुछ भी हो–जिसकी अभी से पूर्वकल्पना करना मूर्खता पूर्ण ही होगा–किन्तु हम यह तो कह ही सकते हैं–कि कोई भी व्यक्ति कभी भी उनकी रचनाओ का ऐसा विवरण कदाचित न दे पाएगा जो बहुत अधिक अशो मे स्वीयात्मक न हो। मतो का परिवर्तन जो हर स्थान पर स्पष्टत देखा जा सकता है और जो उन सात्विक एव विविध रचनाओ के कारण ही नही है जो उनके अपने सुदीर्घ जीवन काल मे लिखी गई हैं, किन्तु एक अध्याय की सीमा मे भी बदल कर यह रूप देखा जा सकता है। अभिव्यक्ति की धूमिलता तथा लोच तो हर जगह इनमे विद्यमान है। उनके द्वारा विज्ञान, कला, समाज, दर्शन के इतिहास आदि से सबद्ध सदर्भ की चौंधिया देने वाली बस्ति ये सब समसामयिक विचारो का इतिहास लिखने वाले के मन मे निराशा का भाव जागृत कर देते हैं। सर्वश्रेष्ठ यही है कि उनकी विचारधारा का एक ऐसा खाका बनाया जाय ताकि पाठक अपनी सामर्थ्यानुसार उसमे से ही उन्हें समझ सकें।[1]

---

[1] इतने पर भी वी० लोवी कृत डवलपमेण्ट आव व्हाइटहेडस फिलोसोफी (द लाइब्रेरी आव लिविंग फिलोसोफर्स एलफ्रेड नोर्थ व्हाइटहेड 1914) पुस्तक से कम किसी कृति द्वारा उनका सदर्भ देना समवत उन्हे गलत समझना ही होगा। इस ग्रन्थ मे दूसरे निबध भी देखें। व्हाइटहेड पर रिव्यू भी देखें। सी० डी० ब्राड, ब्रेथवेट, स्टेबिंग, जोनसन कृत व्हाइटहेडस थ्योरी आव रीअलिटी (1952) जिसमे आलोचनात्मक निबध के अलावा कई पुस्तकसूचियाँ भी हैं। डी० एमेट कृत व्हाइटहेडस फिलोसोफी आव आरगेनिज्म (1932), ए० एन० व्हाइटहेड (पी बी ए 1947) ए० एन० व्हाइटहेड द लास्ट फज (माइण्ड 1948), डब्लू० डब्लू० हेमरश्मिट कृत व्हाइटहेडस फिलोसोफी आव टाइम (1947) ई० पी० शाहा कृत व्हाइटहेडस थ्योरी आव एक्स्पीरिएन्स 1950 मिलर डी० एल० तथा जेन्ट्री जी० कृत

ह्वाइटहेड ने एक गणितज्ञ के रूप में अपना कार्य प्रारंभ किया किन्तु उनके गणित में वे भाव पहले ही थे जिनके जरिए वे प्रमुख युगान्तरकारी दार्शनिक रचनाएं लिख पाए। उन्होंने सर्वदा ही व्यापक तौर पर सम्भाव्य सामान्यीकरणों की स्थापना करने का प्रयास किया है। अपनी प्रथम विशाल कृति ए ट्रीटीज आन यूनिवर्सल एल्जेब्रा (1891)[1] में उन्होंने बीजगणित के ऐसे ही सामान्यीकरण को आगे बढ़ाया–उसे गणित से बिल्कुल मुक्त कर दिया। ये बात हम पहले भी जोर्ज बूले की रचनाओं में देख चुके हैं। ह्वाइटहेड एक ऐसे बीजगणित की रचना करने की आशा करते थे जो वास्तव में समष्टिव्यापी हो, एक ऐसा बीज गणित, जिसका प्रवर्त्तन में आया बीजगणित एक अंश मात्र ही हो। इसके साथ ही साथ उनकी कृति ट्रीटीज में एक उपशीर्षक भी है 'विद एप्लीकेशन'। वे अपरिभाषित प्रतीकों से काम लेने से असंतुष्ट थे। वे अपने प्रतीकों का ज्ञान के विशेष क्षेत्रों की जांच के लिए उपयोग करना चाहते थे। यदि हम उनकी तुलना उनके समसामयिक ब्रितानी दार्शनिकों से करें तो हमें मालूम होगा कि वे उनसे जितना मूर्तरूपों में भिन्न हैं उतना ही अमूर्त रूपों में भी। एक ओर जहां वे उनके द्वारा माने गए विशेष का सामान्यीकरण कर देते हैं वहीं दूसरी ओर उनके सामान्यीकरणों की वे भौतिकी, शिक्षाशास्त्र, कला आदि सिद्धान्त के रूप में व्याख्या करते हैं। उनके विशेषीकरण दर्शन के क्षेत्र के अतिरिक्त और कहीं अपना स्थान नहीं रखते।

यूनिवर्सल एल्जेब्रा की रचना के पश्चात् के ह्वाइटहेड के जीवन के वर्ष अपने कभी रहे शिष्य बर्ट्रेण्ड रसेल के साथ मिलकर 'प्रिंसिपिया मैथेमेटिका'[2] की रचना में व्यतीत हुए, किन्तु इसके बावजूद भी उन्हें रोयल सोसाइटी के लिए एक उल्लेखनीय स्मारिका जिसका शीर्षक मैथेमेटिकल कान्सेप्ट्स फोर द मैटीरियल वर्ल्ड (1905)[3]

द फिलोसोफी आव ह्वाइटहेड (1938) वी० लोवी, सी० हार्ट्सहोर्न एवं ए० एच० जानसन कृत ह्वाइटहेड एण्ड द मोडर्न वर्ल्ड (1950)।

[1] देखें डब्लू० वी० ओ० क्वाइन कृत ह्वाइटहेड एण्ड द राइज आव मोडर्न लोजिक। इसी पुस्तक में शिल्प द्वारा निखित सी० आई० लेविस कृत सर्वे आव सिम्बोलिक लोजिक।

[2] देखें अध्याय 9। प्रिंसिपिया मैथेमेटिका में ह्वाइटहेड के योगदान की अनुशंसा के लिए देखें रसेल कृत ह्वाइटहेड एण्ड प्रिंसिपिया मैथेमेटिका (माइण्ड 1948) द्रष्टव्य ह्वाइटहेड का लेख द आरगेनाइजेशन आव थोट (1916) जो 1991 में द एम्स आव एज्यूकेशन में तथा उपर्युक्त शीर्षक में ही 1917 में प्रकाशित हुआ।

[3] सर्वप्रथम द फिलोसोफिकल ट्रांजेक्शंस आव द रायल सोसाइटी (1906) में प्रकाशित एफ० एस० सी० नोथ्राप एवं एम० डबलू० ग्रोस कृत अल्फ्रेड नोर्थ ह्वाइटहेड एन एन्थोलोजी (1953) में पुनः मुद्रित है।

था लिखने का समय मिल ही गया। यह प्रतीकात्मक तर्कशास्त्र की भाषा के ऐसे प्रयोग का प्रयास है जिसके माध्यम से अन्तरिम इयत्ताओं तथा दिक के बीच समाविष्ट सम्बन्धों की चर्चा हुई है। इसमें सर्वसामान्य भाषा का प्रयोग है तथा इसमें माना गया है कि अन्तिम इयत्ताओं से ही दिक् में विद्यमान भूत (stuff) का निर्माण हुआ है।

उनकी स्मारिका में दो बातें विशेष ध्यान देने योग्य हैं। व्हाइट हैड की शिकायत है कि दार्शनिक पूर्णतः अपर्याप्त तार्किक उपकरणों की सहायता से ही काम चला लेता है। वह तत्व गुण एवं अधिक कर ता द्विपादी संबंधसूचकों के बाहर नहीं जाता। भौतिक पदार्थ एवं दिक के बीच विद्यमान संबंधों का कोई भी यथोचित विवरण देने के लिए उसे अनेकिक संबंध सूचकों का उपयोग करना चाहिए। बहुत से परम्परागत सिद्धान्त तो तार्किक संभावनाओं की अति सरलीकरण की चाहना के कारण ही ध्वस्त हो जाते हैं यही बताना उनके दर्शन का सतत कथ्य था।

दूसरे स्थान पर इस स्मारिका में यह बात स्पष्ट देखी जा सकती है कि व्हाइटहैड क्यों भौतिक जगत् की परम्परागत धारणा से असंतुष्ट थे तथा क्यों वे मौलिक रूप से इसके स्थान पर एक नई तात्विकी का प्रयोग करना चाहते थे। दिक बिन्दु पदार्थ–परमाणु काल–प्रकरण के रूप में किए गए तीन भेदों को पूर्णतः सामान्यीकरण तक ले जाकर शास्त्रीय विचारक व्हाइटहैड की अपेक्षित मांगों को संतुष्ट करने में असफल रहे। अभी तक तो वे इस संभावना का सुझाव भी नहीं दे रहे कि काल के प्रकरण को छोड़ा जा सकता है किन्तु वे अभी से इस संबंध में कि दिक–बिन्दुओं को भौतिक परमाणुओं की भाषा में परिभाषित किया जा सकता है–श्रमपूर्वक विचार करने में संलग्न दिखाई देते हैं। उनके अनुसार जहां तक विशुद्ध ज्यामिति तक ही सीमित रहने का प्रश्न है वहां तक शास्त्रीय सिद्धान्त द्वारा किया गया कार्य प्रशंसनीय है क्योंकि यह उनके परिवर्तन का यथोचित विवरण नहीं दे सकता। स्पष्टतः ही दिक् में विद्यमान स्थिर बिन्दु परिवर्तित नहीं हो सकते। और इस तरह भौतिक शास्त्री के समक्ष परिवर्तनशील परमाणुओं तथा स्थिर बिन्दुओं का एक हल न किया जा सकने वाला द्वैत है। किसी प्रकरण में परमाणु द्वारा एक बिन्दु का आभरण पूर्णतः स्वीयात्मक नहीं है। किसी भी रूप में वह बिन्दु की, परमाणु की अथवा प्रकरण की प्रकृति से निर्गमित नहीं है। स्वीयात्मकता की इस स्थिति ने व्हाइटहैड को परेशान कर रक्खा था।

उनकी स्मारिका से यह स्पष्ट हो गया था कि व्हाइटहैड रसेल के विचारों के प्रभाव में आ गए थे। यह बात अपेक्षित भी थी। वास्तव में रसेल कृत फिलोसोफी आव लेबनीज जो उस समय दर्शन को एक महत्वपूर्ण योगदान था, व्हाइटहैड को

प्रणाली द्वारा ह्वाइटहैड प्रकरणों की परिभाषा अनुभव से करते हैं और उस अनुभव को वास्तव में उनका तदाकारी नहीं स्वीकारते। प्रकरणों की परिभाषा अवधियों के समूह को उस श्रेणी से दी गई है जिसमें अन्य प्रकरणों से विशेषतः व्यापक सम्बन्ध विद्यमान हैं।[1]

चौथी बात ह्वाइटहैड का प्लेटोवाद अब पूर्णता पर है—वे घटनाओं एवं पदार्थों का भेद करते हैं—

प्रत्येक घटना अपने आप में अद्वितीय है—अपनी प्रकृति से ही वह अपुनर्घटनीय है।' हम कह सकते हैं कि घटनाएं प्रकृति की विशिष्टताएं हैं अभिधान हैं। दूसरी ओर पदार्थ वही हैं जिन्हें प्रकृति में हम परिचित रूपों में पहचान सकते हैं। और ये प्रकृति के स्थायी अङ्ग हैं। न तो पदार्थ और न घटनाएं ही पृथक रूप में अस्तित्वमान रह सकते हैं। प्रत्येक घटना का एक विशेष रूप होता है अर्थात् कोई पदार्थ निश्चय ही उसमें अन्तः प्रविष्ट हुआ होता है जबकि प्रत्येक पदार्थ किसी घटना को ही मूर्तिमान करता है। तो भी यद्यपि हम पदार्थ की स्थिति को समुचित रूप से बता सकते हैं, यह सोचना भीषण भूल हो जायगी कि यह केवल मात्र उसी दायरे में है। उदाहरण के लिए हम कह सकते हैं कि झंझा एटलांटिक महासागर में स्थित है। वह तो है ही, किन्तु इंग्लैण्ड के मनोरंजन यात्री डर कर कई बार इंग्लैण्ड से ही अपनी बर्थ रद्द करवा लेते हैं। इसलिए झंझा इंग्लैण्ड में भी है और एटलांटिक में भी। एक पदार्थ अपने आसपास के तत्त्वों से भी बना है और उसका आसपास का वातावरण भी असीमित है।[2]

पांचवीं बात जो उनके दर्शन में सर्वाधिक प्रभावशाली थी और विशेष रूप से जिसे साइन्स एण्ड द मोडर्न वर्ल्ड में पूर्ण अभिव्यक्ति मिली थी वह यह है कि ह्वाइटहैड प्रकृति के विभाजन का विरोध करते हैं। यह सब तो गलीलियो–लौक द्वारा किया गया समष्टि वर्णन है जिसमें रंगों ध्वनियों गन्धों के तात्कालिक अनुभव जगत् में तथा विज्ञान की इयत्ताओं जिनमें न गंध है न रंग है, न ध्वनि का भेद है और जिन वस्तुओं में हमारे मन की आसक्ति हो यह द्वैत उसीके विषय में एक

---

[1] ह्वाइटहैड के दर्शन में प्रिंसिपिया मैथेमेटिका में प्रयुक्त प्रणाली को ही महत्त्वपूर्ण प्रणाली माना जा सकता है। विस्तार के लिए देखें द प्रिंसिपल्स आव नेचुरल नौलेज (भाग० 3) द कोन्सेप्ट आव नेचर (अध्याय 5) प्रोसेस एण्ड रीयलिटी (भाग 4)।

[2] देखें स्टेबिंग ग्रेथवेट तथा डो० एम० रिंच कृत इज द फलेसी आव सिम्पल लोकेशन ए फेलेसी ? (पी० ए० एस० एस० 1927)।

विभ्रम भी उत्पन्न कर देता है। विनान के लिए सूर्यास्त की रक्ताभा प्रकति का उतना ही प्र श है जितना परमाणुग्रो का कम्पन। यदि वनानिक सूर्यास्त का मन–सयोग स उत्पन्न स्थिति मानत हैं तो उससे उसकी प्रकृति की मूल स्थिति का सम्यक विवरण द पान की ग्रसमथता ही जाहिर हागी। जा कुछ जाना गया है उस विनान का फिर से सह–सयुक्त करना चाहिए ग्रोर इस बात की चिता नही करनी चाहिए कि पहल उसे किस रूप म समझा या जाना गया है। ग्रपनी बहुत गलत समझी गई ग्रोर व्यापक रूप स गलत व्यवहृत बात को जब व्हाइटहड न यो लिखा प्रकृति ने मन के लिए ग्रपने सब द्वार बद कर लिए हैं तो व मूलत यही कहना चाहत थे।

प्रकट रूप म तत्ववादी ग्रपनी रचनाग्रो म जिन्ह व्हाइटहैड न ग्रपने बाद के वर्षों मे लिखा खासतौर पर 63 वष की ग्रवस्था म हावड की चेयर ग्राव फिलोसोफी प्राप्त करने क बाद, तो उनके प्रकृति दशन क कथ्य एक बार पुन व्याख्यायित हुए तथा विकसित हुए। बाद की इन रचनाग्रा म स 1925 मे लिखी साइन्स एण्ड द मोडन वल्ड का व्यापक रूप स पढा गया। इस इतना ग्रपन तत्वदशन के लिए नही पढा गया जितना मानवी सस्कृति को समझ सकने की दिशा म किए गए यागदान क रूप म पढा गया। एडवेंचस ग्राव ग्राइडियाज’ को भी उन्ही कारणा से वैसी ही लाकप्रियता मिली। केवल प्रोसेस एण्ड रीग्रलिटी (1929) म ही व्हाइटहैड का तत्वदशन पूरी ग्रभिव्यक्ति पा सका–चाह यह ग्रभिव्यक्ति ग्रपने ग्रापम कितनी ही दुविधाजनक क्यो न रही हो।

स्वभावत प्रोसेस एण्ड रीग्रलिटी की तुलना एलेक्जेण्डर की स्पेस टाइम एण्ड डीटी से किया जाना काफी सभव है। व्हाइटहैड ने इस पुस्तक की बडी प्रशसा की। किन्तु य ग्रनुशसाए पारस्परिक थी। दोना ही लेखको की दृष्टि मे दशन की मूलभूत समस्या काल दिक का विशिष्ट वस्तुग्रा स सम्बन्ध नियत करना है। इन दोनों के हल फिर भी बहुत भिन्न हैं। इसके ग्रातिरिक वे दोनो एक ही प्रकार का दाशनिक प्रणाली का उपयोग करते हैं, ग्रर्थात् ऐसी विधि का जिसे ग्रनादर की दृष्टि स दखते हुए हम म ग्रापको बताता हूँ’ वाली प्रणाली कह सकते हैं। फिर भी दानो पूणत बुभौवल वाली इसी प्रणाली से विचार व्यक्त नही करते। रिलीजन इन द मेकिंग (1926) म व्हाइटहैड ने लिखा कि तत्ववाद एक विवरण है। मानवी रुचि क एक विशेष चेत्र म जहा पर वह सत्य का कोई सामान्य रूप दखने की गध प्राप्त कर लेता है तत्ववादी उसी चेत्र मे सचाई ढूढता है। वह तब इन्हे काम–चलाऊ तौर पर पदावस्थाए मान लेता है। तथा इस खोज म कि वे वस्तुत क्या है, लग जाता है ग्रोर मानवी रुचि के ग्रन्य

क्षेत्रों में प्रस्तुत उनके उद्धरणों से उनकी तुलना करता है। सामान्य सिद्धान्तों से अनुभव का निगमन असम्भव है। उसका उल्टा विचार ही तत्ववादी की भीषण भूल रही है। तो भी हम अनुभव के अतिसामान्य रूप का वर्णन कर सकते हैं। 'प्रोसेस एण्ड रीयलिटी' ऐसे ही एक विवरण का प्रयास है।

व्हाइटहेड के लिए इसकी शुरुआत प्रत्यक्षीकरण के सिद्धान्त से होती है। जहाँ प्राकृतिक दर्शन में उनकी दृष्टि समरूपी है, अर्थात् मानवी चिंतन या प्रत्यक्षीकरण की क्रिया का कोई संदर्भ प्रस्तुत नहीं करती उनका तत्वदर्शन विषमरूपी है—अर्थात् वहाँ वे प्रकृति के संबंध में हमारे चिंतन का विश्लेषण कर रहे हैं। प्रत्ययवादी दर्शन आधुनिक दर्शन का यह आत्मपरक आधार स्वीकार लेता है कि सम्पूर्ण विश्व ऐसे तत्वों से बना है जो कर्ता के अनुभवों में प्रकटते हैं। इस तरह वे जानबूझकर अपने तत्वदर्शन को प्रत्ययवादी परम्परा से जोड़ देते हैं। उनका उद्देश्य परम प्रत्ययवादी सिद्धान्त का यथार्थवादी आधार पर रूपान्तर करना है। वे इस तरह बोसांके तथा हाल्डेन की सूक्ष्ममयी कृतियों के ब्रैडले की अपेक्षा, अधिक निकट लगते हैं—यद्यपि ब्रैडले के अनुभूति सिद्धान्त से वे कृतज्ञतापूर्वक बहुत प्रभाव भी ग्रहण करते हैं। हाल्डेन के वे इस सिद्धान्त को स्वीकारते हैं कि हमें यह विश्वास करने के लिए तत्पर रहना चाहिए कि संसार हमें जितने और जैसे रूप में दिखाई दे उतने और वैसे ही रूप में हम उसे स्वीकार लें। परम प्रत्ययवादियों में तथा व्हाइटहेड में जो बात संयोग से मिल जाती है और कदाचित् यही बात उन्हें रसल से बिल्कुल विलग कर देती है वह है उनके द्वारा इस सिद्धान्त का स्वीकरण कि प्रत्येक तथ्यवाक्य एक समष्टि का संदर्भ देता है और उसका कोई न कोई सामान्य तत्ववादी रूप होता ही है और अपने अंतिम विश्लेषण तक उस तथ्य के संबंध में अपेक्षित समष्टि का सामान्य रूप घोषित करना ही चाहिए। यह निष्कर्ष इस सिद्धान्त की स्वाभाविक निष्पत्ति है कि वस्तु में निहित सभी तत्व किसी प्रणाली से उसका संबंध स्थापित करते समय प्रकट हो सकते हैं।

व्हाइटहेड के दर्शन[1] की जीवशास्त्रीय ध्वनि निश्चय ही प्रत्ययवादी परम्परा

---

[1] जीवशास्त्रीय दर्शन जो व्हाइटहेड के प्रभाव में निर्मित हुआ उसके लिए देखें डब्लू ई एगर *ए कण्ट्रीब्यूशन टू द थ्योरी आव लिविंग आरगेनिज्म (1943)*। जैसा कि हम अध्याय 11 में देख चुके हैं भौतिक एवं जीवशास्त्री दोनों अपनी वैज्ञानिक जाँच पड़तालों में आई मुश्किलों के कारण ही दार्शनिक बन गए थे। उदाहरणार्थ देखें सी शेरिंगटन मैन आन हिज नेचर (1940), जे० एस० हाल्डेन द फिलोसोफी आव ए बायलोजिस्ट (1935), एल० होगबेन द नेचर आव लिविंग मैटर (1930)।

म नही मिलती । इस बिन्दु पर कदाचित् व्हाइटहेड अमरीकी अर्थक्रियावाद स ही प्रभावित हैं । सवप्रथम प्रत्यक्षीकरण का जीव शास्त्रीय सकेत अनुबोधन म विकल्पित करके और उस अवयवव्यापी वातावरण को अग मानकर व इसी परिग्रहण (प्रीहेंशन) को सभी वस्तुओं मे निहित पारस्परिक सम्बन्धो के जरिए खोजते हैं-चाहे वह वस्तु कोई अवयव हो या नही । उनकी व्याख्या के अनुसार यह समष्टि अस्तित्व की इकाइयो स बनी है और य इकाइया (अनुभूतिया) परिग्रहण से ही बनी हैं । व्हाइटहेड की दृष्टि मे दार्शनिक इसलिए भटक गए हैं क्योकि उन्होने यह मान लिया कि दृष्टि सबधसूचकता की विशेष अवस्था है । व्हाइटहेड इन्हे अपनी आन्तराग सवदना पर विचार करने के लिए कहते हैं । तभी वे शायद यह देख पाएगें कि परिग्रहण एव प्रतिराध केवल नीरस सवेदन का प्राप्त करना हो नही, बल्कि वे तत्व हैं जो न केवल प्रत्यक्षीकरण के मूलभूत अङ्ग हैं अपितु, समष्टि के निर्मायक सारे सबधो के भी ।

अध्याय १५

कुछ केम्ब्रिज दाशनिक तथा विटजनस्टीन कत टैक्टेटस

केम्ब्रिज मोरल सा म फकल्टी वतमान शती की पहली दशाब्दियो म किस प्रकार असफल रही यह पहले ही पर्याप्त रूप से दर्शाया जा चुका है। एक ऐसा विश्वविद्यालय जो मूर रसल मक्टेगट व्हाइटहेड वाड एव स्टाउट सदृश विचारकों क योगदानो के लिए श्रेयाभाक है उस पर बजरता का या सकीणता का आरोप तो कुछ अथ नही रखता तो भी हमारी कहानी अभी अधूरी है। केम्ब्रिज म पोषित अ य विचारको ने भी इस विश्वविद्यालय के दाशनिक श्रेय के आकार मे वृद्धि की है। इनम सबसे पहले उल्लेख योग्य है वह दाशनिक जिसे इस विश्वविद्यालय ने पहल एक मेधावी छात्र के रूप म तथा बाद म एक प्राध्यापक के रूप मे स्थान दिया और जो बाद म जाकर हमारी शती का महान् विचारक बना वह था आस्ट्रिया–वासी लुडविग विटजनस्टीन।

डब्लू० ई० जानसन देशज विचारका म से उल्लेखनीय हैं। इनके विषय म हम सक्षेप म पहले ही (अध्याय ६ म) लिख चुके हैं। द लोजिकल कैलकुलस (1892) पर उनके निबधो से उनके द्वारा युगस्वर का पूर्वानुमान लगाए जाने का सकेत मिलता है और आशिक रूप स वह सारी चर्चा भी जो बाद की विचारधाराओ के रूप म कम्ब्रिज म विकसित हुई इनके विचारो मे पहल स ही व्यक्त हुई है। इसके बाद क वर्षो म उन्होने शिक्षक के रूप म महान् प्रभाव डाला लेकिन प्रकाशित कुछ भी नही कराया। 1920 तक तो लोजिक[1] शीपक से लिखी अपनी प्रमुख पुस्तक

---

[1] भाग 1 1921 म भाग दो (उपशीपक डेमोन्स्ट्रेटिव इन्फरेन्स डिडक्टिव एण्ड इण्डक्टिव) 1922 म, भाग 3 द लोजीकल फाउण्डशन आव साइन्स 1924 म भाग चतुथ की रूपरेखा के कुछ भाग जो प्रोबेबिलिटी पर लिखे गए हैं उनके मरणोपरान्त माइण्ड 1932 म प्रकाशित हुए। सी० डी० ब्रोड, 'डब्लू० ई० जोनसन (पी० बी० ए० 1931) तथा द्वितीय भाग का उनका आलोचनात्मक रिव्यू (माइण्ड 1922) भाग 3 (माइण्ड 1924) एच० डब्लू० बी० जोसेफ व्हाट डज मि० जोनसन मीन बाई ए प्रोपोजीशन ? (माइण्ड 1927–8) ए० ए न० प्रायर डिटरमिनेबल्स डिटमिनेटस एण्ड डिटरमेनेण्टस' (माइण्ड 1949) तकशास्त्र की पुस्तकें जिनम जोनसन की रचनाओ का उपयोग किया गया है उनमे आर० एम० ईटन जनरल लोजिक,एन इन्ट्रोडक्टरी सर्वे (1931) सी० ए० मस द प्रिंसिपल्स आव लॉजिक (1733) तथा एल० एस० स्टेबिंग ए माडन इन्ट्रोडक्शन टू लाजिक उल्लेखनीय हैं।

का प्रकाशन भी नहीं कर पाए थे। उसे भी उनके विद्यार्थियों में से एक के ही दबाव से, स्वयं की प्रेरणा से नहीं उन्होंने आकलित करके पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित कराया। यह एक सुनिश्चित योजना के आधार पर लिखी गई कृति नहीं। इसका मूल्य इसकी व्यापकता में निहित है। अब इस सम्बन्ध में जो भी किया जा सकता है वह यही कि इसमें प्रस्तुत विचारों को एक सामान्य रूप दिया जाय।

यद्यपि जानसन का प्रशिक्षण एक गणितज्ञ के रूप में हुआ उनकी कृति लोजिक गणितीय न होकर मूलतः दार्शनिक है। यह पुस्तक युक्तिपूर्वक तर्क को गणित से निगमित करने की दिशा में सहानुभूति पूर्वक अग्रसर है। तो भी वे इस कार्य में भाग नहीं लेते। वे केवल रसेल की तर्कवाक्यीय फलन के सिद्धान्त की कटु आलोचना ही प्रस्तुत करते हैं। वास्तव में वे जे० एम० कीन्स से कनिष्ठ तर्कशास्त्रियों का नाम तक नहीं लेते। कीन्स के नवनिर्मित परम्परागत तर्कशास्त्र का उपयोग वे अपनी रचनाओं में अवश्य ही करते हैं।

जैसा हम पहले कह चुके हैं वे तर्कवाक्य से आरम्भ करते हैं। इसके साथ ही प्रत्ययवादी तर्कशास्त्र से उनका अलगाव इतना तीव्र नहीं होता है। ‘तर्कवाक्य निर्णय की ठोस क्रिया का केवल एक अंश मात्र है’। जोनसन द्वारा विशद भेदों की ओर दिए गए बल के बावजूद भी निर्णय एवं तर्कवाक्यों के बीच का सम्बन्ध जताने वाले विभिन्न विवरणों को संगति में लाना असम्भव है। यह तथ्य, जो उनके ग्रन्थ लोजिक की आत्मा को भी छूता है इस बात का स्वयं प्रमाण है कि इसका पाठक पर एक एकीभूत प्रभाव क्यों नहीं पड़ता। प्रत्ययवादियों के विरुद्ध ये आकारी तर्कशास्त्र को एक स्वतः पूर्ण शास्त्र का दर्जा देते हैं और उसे तर्कवाक्यों का सिद्धान्त मानते हैं। इसके साथ ही यह स्वतःपूर्ति (आटोनोमी) स्वाग्रहों (रिजर्वेशन्स) से इतनी अधिक आक्रान्त हैं कि आकारी तर्कशास्त्र मात्र एक ‘कठपुतली राज्य’ रह गया है—वास्तविक सत्तासूत्र तो ज्ञानमीमांसा के हाथों से बँधे हैं।

परिणामतः जोनसन का ग्रन्थ लोजिक अप्रत्याशित क्षेत्रों तक अतिक्रमण कर जाता है, उदाहरण के लिए इसमें मन काय सम्बन्धों का सुन्दर विश्लेषण है। तर्कशास्त्र, ‘जो विचार का विश्लेषण विवेचन मात्र है, आगमन की अवहेलना नहीं कर सकता—आगमन सम्बन्धी कोई भी समुचित चर्चा कारण एवं तत्व-संबंधी धारणाओं पर एक प्रकार की खोज ही होनी चाहिए। ऐसी खोज यदि इसे गंभीर रूप से किया गया तो मन काय-संबंधों से उपजी विशेष समस्याओं का विवरण एवं निदान प्रस्तुत करने के लिए है। जोनसन संक्षेप में अपनी युक्तियों का वहाँ तक अनुसरण करते हैं जहाँ तक वे उन्हें ले जाती हैं। उनका लोजिक सामान्य दर्शन क्षेत्र को भी उनका एक योगदान है, केवल तर्कशास्त्र नहीं है। किन्तु केम्ब्रिज

वैचारिक अथवा तार्किक परम्परा क्या रही है इसका विवेचन उन्होंने बड़े ही सुंदर ढंग से किया है। उनकी दार्शनिक चर्चाएं साफ सुथरी विश्लेषणात्मक व विभेद मूलक अवश्य हैं किन्तु बहुत कम अंशों में निर्णयात्मक है।

जोनसन कुछ बातों के लिए प्रभावशाली रहे। उनके नव तर्कवादों ने (यद्यपि ऐसा बहुत कम हुआ है) व्यापक स्वीकरण प्राप्त किया है। उसमें ऐसे फिकर प्रयुक्त हैं, जैसे प्रदर्शन योग्य परिभाषा (आस्टेंसिव डेफिनीशन), व ऐसी विपरीतताएँ बतलाते हैं जैसे 'ज्ञान मूलक एवं संरचनाकारी' में 'अवधारक एवं अवधाय' में सतत (कंटिन्युएंट) एवं घटनशील (आकरेंट) में। ये दार्शनिक साहित्य की परिचित शब्दावलियाँ हो गई हैं। इससे केवल यह अर्थ नहीं निकलता कि जोनसन शब्दों के मात्र एक चतुर शिल्पी थे। उन्हें दार्शनिक सुवादों का नया रूप देने तथा उन्हें प्रबलतर करने के लिए अपने नवान्वेषणों की उपयोगिता सिद्ध करनी ही थी।

वे यह बताने के लिए निकलते हैं कि परिभाषा की केवल एक प्रक्रिया नहीं है और न आगमन की ही एक प्रक्रिया है, वे अनेकों हैं। इसके बावजूद जब वे नवान्वेषित स्थितियों का नामकरण करते हैं तो यह केवल शैल्पिक दृष्टि से नहीं है, ऐसा मान लेने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। वे फिर एक बार तर्कशास्त्रियों को तार्किक आकारों का निर्धारण करने में उनके द्वारा बरती गयी बेफिक्री के कारण बुरा भला कहने से भी नहीं चूकते। विशेष रूप से उनका विचार है कि उन्होंने लाल एक रंग है तथा प्लेटो एक मनुष्य है जैसे दो तर्कवाक्यों को गलत ढंग से एक सरणि में रख दिया है। उस अन्तर का निर्धारण करते हुए जिसे उनके अनुसार उन्होंने अनदेखा कर दिया था वे अधिकारी एवं अवधाय के भेद को अपने तर्कशास्त्र में प्रकटाते हैं। प्लेटो एक मनुष्य है, यह तर्कवाक्य वर्ग सदस्यता के विषय में न कह कर अवधारी के अवधाय होने के विषय में बताता है। लाल, हरे, पीले ये एक अवधारी रंग के अवधाय हैं। उसी प्रकार, जिस प्रकार वर्ग, वर्तुल, अण्डाकार आदि सब अवधारी शक्ल के अवधाय हैं। इन अवधारियों की इकाइयों की जो बात स्वीकृति करती है वह वर्ग सदस्य की भाँति इस बात पर निर्भर नहीं करती कि उनमें कहीं समानता है लेकिन जोनसन के सुझावानुसार, इसका यही अर्थ है कि उनमें किसी एक खास तरीके का भिन्नत्व है। एक ही अवधाय के अवधारी एक दूसरे से अलग अलग होते हैं। वह भी इस विशेष अर्थ में कि वे एक ही समय में उसी क्षेत्र को अवच्छिन्न नहीं करते। एक ही क्षेत्र लाल और गोलाकार हो सकता है किन्तु एक ही समय में लाल और हरा नहीं हो सकता। इसके अलावा उनका अन्तर तुलनीय भी है। जबकि विभिन्न अवधायों के लिए यह नहीं कह सकते।' यह कहा जा सकता है कि लाल एवं हरे रंग में जो अन्तर है वह लाल और नारंगी रंग के अन्तर से कहीं ज्यादा है, किन्तु हम यह नहीं कह सकते कि यह अन्तर लाल एवं गोलाकार के अन्तर की भाँति बड़ा छोटा या बराबर है।

जोनसन की प्रतिभा इसी प्रकार के सतर्क भेदों की रचना करने की ओर लगी हैं। उनकी गणितीय क्षमता का स्मरण करते समय यह मालूम करके आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि समाव्यता के सिद्धान्त की ओर वे स्वभावत आकर्षित हुए होंगे जिसमें सतर्क विश्लेषण के द्वारा गणित तर्कशास्त्र एवं ज्ञानमीमांसा के बीच में से कुछ मूल्यवान तत्त्व प्राप्त कर लेना उन्हें संभव लगता था। समाव्यता पर उनकी कृतियाँ आंशिक हैं और पूर्णत समर्थित नहीं हैं। वे उस समय तक तो प्रकाशित ही नहीं हुईं जब तक 11 वर्ष नहीं बीत चुके और केम्ब्रिज विचारक जे० एम० कीन्स ने अपनी कृति ए ट्रीटीज आन प्रोबेबिलिटी (1921) प्रकाशित नहीं कर दी जिसमें आंशिक रूप से जोनसन से प्राप्त शिक्षा का मूर्त रूप मिला है और जो आंशिक रूप से उन क्षेत्रों के भी जिनका प्रावक्लन करना जानसन के बूते के बाहर की बात थी, बाहर के क्षेत्र में चली जाती है।

कीन्स पर जोनसन का ऋण केवल मात्र इस बात में निहित माना जाता है कि उन्होंने उनके परिमेयों का सदर्भ प्रस्तुत किया है। जोनसन को कीन्स पहले अपने पिता जे० एन० कीन्स के मित्र के रूप में फिर एक अध्यापक तथा फिर एक सहकर्मी के रूप में भी जानते थे। तो भी, वास्तव में ट्रीटीज के दार्शनिक अंशों की आत्मा निश्चय ही जोनसन की[2] है। अपनी भूमिका में कीन्स ने मूर एवं रसेल के साथ जोनसन का नाम जोड़ा है। और उन्हें ऐसे दार्शनिक माना है जो तथ्य के उजागर करने की दिशा में एक ही तरह से संयुक्त हुए हैं। उन्होंने अपने विषय को मात्र काल्पनिक अभियोग से निकाल कर वैज्ञानिक भूमि प्रदान करवाई। प्रिंसिपिया एथिका में मूर ने कहा है कि शिव (गुड) अपरिभाष्य है। इस आधार पर कीन्स को भी यह कहने का साहस मिला कि समाव्यता की भी यही स्थिति है। रसेल ने तर्कशास्त्र से गणित का निगमन किया। कीन्स ने भी समाव्यता के सिद्धान्त से यही करना चाहा। किन्तु ट्रीटीज में पाया जाने वाला एक अनोखा 'नान तर्कागम वातावरण' भली भांति जोनसन से उद्‌भूत हुआ माना जा सकता है।

कीन्स जोनसन की तरह, तर्कवाक्य से प्रारम्भ करते हैं, वेन की भांति घटना या 'होना' से नहीं। तारतम्य के सिद्धान्त पर प्रस्तुत वेन की इस धारणा को कि प्याले से निकाली जाने वाली दूसरी गेंद शायद काली होगी वे एक समाव्यता का रूप देना चाहते हैं। जब तक कि समाव्यता का सिद्धान्त अपने सभी

---

[1] द्रष्टव्य आर० एफ० हेरडस द लाइफ आफ जे० एम० कीन्स (1951) इसमें न केवल कीन्स के सदर्भ ही देखें अपितु केम्ब्रिज में नैतिक विज्ञान के वातावरण का विवरण देने वाले ग्रन्थ के रूप में भी इसकी उपादेयता है।

[2] एच० जेफ्रीज की साइंटिफिक नोलेज' की भूमिका भी देखें।

दावो म दनिक उपयोग का होना सिद्ध नही करता तब तक इसे उन क्षेत्रो तक ही सीमित रहना चाहिए जिनमे तारतम्य का सिद्धा त स्पष्टत प्रयुक्त हो सकता है, और जिसके भेद निकालने स सबधित कोई धारणा कारगर लग सकती है ।

किसी तकवाक्य को समाव्यता के स्तर तक ले जाना की स के अनुसार उसे ज्ञान के किसी अङ्ग से जोडना हुआ । समाव्यता तकवाक्य की आत्मज य विशेषता स उपजी हुई बात नही है । यह तो अपन युक्तियुक्त होने की मात्रा का सकेत हमारे पास विद्यमान प्रमाणो के आधार पर देती है और इसके आधार पर ही हम किसी तकवाक्य को सही मान सकते हैं । इस तरह से अथवाक्य सदव ही सापेक्ष ही सापेक्ष है तो भी इस अथ म कि उसमे एक एसी समाव्यता है जो प्रमाण से सम्बन्धित है समाव्यता वस्तुपरक भी है–चाहे हम इस समा यता को पहचानें या नही । हम अब यह पूछ सकते हैं कि प्रमाण एव निष्कष के बोध कुछ समा य बताने का सबध किस बात स है । की स का उत्तर है, यह एक अद्वितीय तार्किक सबध है जिसे अ य सबध मे बदला नही जा सकता । हमे इसका बोध अत –प्रेरणा से होता है उसी प्रकार जिस प्रकार हमे अभिप्रेतो का बोध होता है ।

तो भी अभिप्रेत क विपरीत, समाव्यता का सबध अशमानो को स्वीकारता है । प्रदत्त प्रमाणो पर एक निष्कष दूसरे की अपेक्षा अधिक समाव्य हो सकता है । इस तथ्य को जानकर कुछ समा यता के सद्धान्तिक इस निष्कष पर ही पहु च गए कि समा यताए सदव ही परिमाणत तुलनीय है,। की स के मत म एक बार फिर उ होने बिल्कुल ही असमा य आधार पर यह निष्कष निकाला है– और वह भी ऐसे मामले म जहाँ प्याले स गेंद निकालने के वक्त सिवाय काली और सफद गेंदो के और किसी प्रकार की गद नही हैं कि विकल्प ऐकान्तिक हैं समसमा य है तथा अन्तिम सपूण (एक्जास्टिव) है । ऐसी अवस्था मे तो समा यता निश्चय ही आशिक रूप म प्रावकलित हो सकती है । किन्तु इस मामल पर अधिक यापक रूप से विचार हो तो हम शीघ्र पता लगेगा कि क्रम तक की तुलनाओ को भी प्रश्न उठाये जान की बात नही रहती परिमाणात्मक सरचनाओ के बात तो जाने ही दीजिये । परीक्षणो की एव सामा यीकरण की इकाइयो के बीच विद्यमान सबध पर विचार करें, और मान लें कि अमुक अ वाले मामला मे परीक्षणो की सख्या अपेक्षाकृत अधिक है, ब वाले मामल म विविध प्रकार परीक्षण हुए हैं एव स वाले मामले म सामा यीकरण का क्षेत्र और भी यापक है । ऐसी अवस्थाओ मे किस इकाई के आधार पर हम इन विभिन्न

प्रकरणो के समूहों को सामान्यीकरण की संभावना के सम्बन्ध मे रखकर देख पाएगे तथा उनकी तुलना कर सकेंगे ?

कीन्स के संभाव्यता के सिद्धान्तानुसार संभाव्यता एवं अन्त साक्ष्य में गहरा संबंध है। यह कहना कि एक तर्कवाक्य की रचना उचित आगमन के आधार पर हुई है इस कथन से मेल खाता है कि यह काफी संभाव्य है। तो फिर यह शास्त्रीय समस्या कि 'आगमन का औचित्य कैसे दिया जाय,' इस रूप मे परिवर्तित हो जाती है कि हम कब यह मानें कि एक सामान्यीकरण काफी संभाव्य हो गया है ? कीन्स यह बताने का प्रयास करते हैं कि इस संबंधी कोई भी निष्कर्ष एक सामान्य अभिधारणा पर आश्रित होता है। कीन्स ने इस अभिधारणा को 'प्रिंसिपल आव लिमिटेड वेराइटी' (सीमित विविधता का सिद्धान्त) कहा है। इसे मिल के 'यूनिफोर्मिटी आव नेचर' (प्रकृति की एकरूपता) के सिद्धान्त का संशोधित रूप माना जा सकता है। वे लिखते हैं कि हम उस सीमा तक पूर्ण मेल की प्रणाली का तथा अन्य आगमनात्मक प्रणालियो का औचित्य दे सकते हैं कि प्रस्तुत क्षेत्र के पदार्थों के (जिन पर ही हमारे सामान्यीकरण टिके हैं) स्वतन्त्र गुणों की असीम संख्या नही है। अर्थात् उनके रूप चाहे जितने विविध हो उन्हे अपरिवर्तनीय संबधो के समूह में समाहित किया जा सकता है जो संख्या मे ससीम है।

दूसरे शब्दों मे आगमन इसलिए उचित है क्योंकि वस्तुओ के गुण अपने साथ अन्य गुणो को भी लिए हुए होते हैं। मिल की अपेक्षा कीन्स का यह सिद्धान्त आगमन की कितनी रक्षा कर सका यह बात कीन्स के अनुयायियों को अभी भी संशय में डाले हुए है।

वैज्ञानिक चिंतन मे रुचि रखने वाले अन्य कैम्ब्रिज विचारकों में से सबसे अधिक परिचित तथा विपुल ग्रन्थों की रचना करने वाले सी० डी०[1] ब्रोड हैं।

---

[1] ब्रोड का संदर्भ देने वाले बहुत से निबंध एवं किताबें हैं। किन्तु उनमें से बहुत कम उनकी रचनाओं पर आधारित है। लाइब्रेरी आव लिविंग फिलोसोफर्स (1957) की शृंखला में ही एक ग्रंथ उन पर भी निकलने वाला था। सेन्स परसेप्शन एण्ड मैटर (1953) में एम० लीन ने ब्रोड के प्रत्यक्षीकरण संबंधी विचारों का विवेचनात्मक परीक्षण किया है। यह एक ऐसा विषय था जिस पर ब्रोड स्वयं बड़ा ध्यान देते थे। ब्रोड के समय सिद्धान्त पर हुई चर्चा के लिए देखें जे० डी० मेबोट कृत 'ब्रॉड्स ऍब्सट्रैक्ट एक्स्पीरिएन्स आव टाइम' (1951 माइण्ड)। सी० डब्लू० के० मण्डल द्वारा किया गया 'हाऊ स्पेसियस इज द स्पेसियस प्रेजेण्ट?' नामक निबंध (माइण्ड 1954 में उत्तर)। आर० एम० ब्लेक कृत 'मिस्टर ब्रोड्स थ्योरी आव टाइम' (माइण्ड 1925)।

ग्रपने साइण्टिफिक थोट (1923) नामक ग्रथ म वे ग्रपनी ही प्रतिभा का [illegible]कन इस प्रकार करते हैं। यदि दाशनिक विचारधारा म कहीं भी मेरा स्थान है तो न तो वह ऐलक्जेण्डर जैसी रचनात्मक उवरता ग्रौर न मूर के से तीव्र ग्रालोचनात्मक चातुय के कारण ही है। व्हाइटहैड एव रसेल की रचनाग्रो म प्राप्त इन दोनो की तकनीकी गणितीय विशेषताग्रो का समन्वित रूप भी मेरी प्रतिभा का स्वरूप नहीं है। मै तो ग्रधिक से ग्रधिक वस्तुग्रो के सबध म ग्रधिक विनम्रता तथा कम छिछलेपन से कुछ कहने की ही क्षमता रखता हू।' उनके इस ग्रात्मकथन के साथ रसेल द्वारा उनकी कृति परसेप्शन फिजिक्स एण्ड रिग्रलिटी (1914) पर लिखे गए रिव्यू की कुछ बातें भी जोडी जा सकती हैं, इस पुस्तक मे ग्रपनी कोई मौलिक नवीनताए नहीं हैं किन्तु इसका महत्व दूसरो के द्वारा प्रस्तुत विचारों को ग्रसाधारण न्याय निष्पक्षता एव विवेक से प्रस्तुत करने म ही है। ग्रब इससे ग्रधिक ग्रौर क्या कहा जाय? ब्रोड दशन' के नाम से कुछ भी वणन योग्य नहीं। क्योंकि इस ग्रालोचना का प्रत्युत्तर देने के लिए वहा कोई खास प्रमाण नहीं। उनके स्पष्ट एव सतक साराशो का साराश निकालना कमलिनी को रौंद कर बिगाडना ही होगा। हमे तो केवल उनके विचारो की रूपरेखा मे ही सतुष्ट होना होगा जो उन्होने दशन की प्रकृति के विषय मे लिखे है। विशेषत यह देखने लिए कि कहीं हम एक सामान्य गलती तो नहीं कर रहे है ग्रौर ग्र शत इसलिए भी कि केम्ब्रिज दशन के सदभ म उन्हें कहीं रखने का यह सरलतम माग है।

ब्रोड[1] विवेचनात्मक एव ग्रनुमानात्मक दशन में भेद करते हैं– विवेचनात्मक दशन वह दशन है जो मूर, रसेल की विचारधारा म प्रकटा है। इसका उद्देश्य विज्ञान की तथा दनिक जीवन की मूलभूत धारणाग्रो का विश्लेषण करना ही है जसे कि कारण गुण ग्रवस्था ग्रादि। तथा फिर उन सामान्य तत्ववाक्यो को कडी जाच क लिय प्रस्तुत करना है जिन्हे वज्ञानिक एव सामान्य ग्रादमी दनिक रूप से बोलता है, या प्रस्तुत करता है। जसे प्रत्येक घटना का एक कारण होता है' या प्रकृति एकरूपा है।' इस तरह ब्रोड की ग्रधिकाश रचनाए विश्लेषणात्मक ही हैं–यद्यपि इनम प्रस्तुत विश्लेषण प्राय कुछ ऊपर उठकर किए गए हैं। इनके द्वारा भौतिक वस्तुग्रो की धारणा का इतना विश्लेषण नहीं किया गया है जितना उन वस्तुग्रो के विश्लेषण के विषय मे रखी गई

---

[1] द्रष्टव्य सी० बी० पी० ग्राई० मे क्रिटिकल एण्ड स्पेकुलेटिव फिलोसोफी नाम से लिखा गया निबध साइण्टिफिक थोट (1923)। सम ग्रथइस ग्राव स्पेकुलेटिव फिलोसोफी (पी० ए० एस० 1947)।

धारणा का माइण्ड एण्ड इट्स प्लेस इन नेचर (1925) का अन्तिम अध्याय जिसमें ब्राड मन एवं पदार्थ के संबंधों पर सत्रह प्रकार के सिद्धान्तों का उल्लेख करते हैं—उनकी इस प्रणाली की सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि अथवा हठादाकृष्ट उपलब्धि कहा जा सकता है।

तो भी ब्रोड विचारानुमान के शत्रु नहीं। 'यदि हम इस संसार को समझने के लिए रूपरेखा बनाकर नहीं सोचते तो हमारे सम्मुख निश्चय ही एक संकुचित दृष्टिकोण रहेगा'। एक विशुद्ध विवेचनात्मक दर्शन शुष्क एवं अनम्य (रिजिड) है। वे प्रत्ययवाद की प्रशंसा करते हैं क्योंकि इसके जरिए कला, विज्ञान, धर्म एवं सामाजिक नियमों को एक ही सिद्धान्त की कसौटी पर रख कर मूर्त रूप दिया गया है। ब्रोड केवल विचारानुमानी दर्शनों पर ही प्रहार करते हैं।

इस तरह सबसे पहले उन उन लोगों के लिए जो दर्शन को स्वभावतः प्रेरणास्पद, रूपकात्मक तथा काव्यात्मक मानते हैं ब्रोड सहानुभूति के विषय नहीं है। 'जो कुछ भी कथनीय है उसे किसी भी भाषा के स्पष्ट एवं उपयुक्त, प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त किया जा सकता है।' दूसरी बात कि वे विचारानुमानी दर्शन को कभी पूर्ण परीक्षण या प्रदर्शन की कसौटी पर खड़ा होने लायक नहीं मानते। प्रकृति से ही उसे काम-चलाऊ प्रवाही विज्ञान के नए अन्वेषणों के साथ के नए मार्गों का अनुसरण करने तथा सामाजिक जीवन में हुए नए प्रयोगों के अनुकूल सिद्ध होने की क्षमता रखनी चाहिए। पहले से ही दर्शन के जरिए यह निर्धारण नहीं हो सकता कि मूलभूत स्थिति क्या है? इसकी विषयवस्तु इसे अपने बाहर से मिलती है।

तीसरी बात कि विचारानुमानी दर्शन का सदैव ही विवेचक दर्शन के आधार पर टिका रखना चाहिए—वह विचारानुमानी दार्शनिक जो हरेक की मान्यताओं को बिना विवेचना के ग्रहण कर लेता वह गल्पसृष्टियों पर खड़ा होगा। ब्रोड की स्वयं की रचनाएं भी विचारानुमानी दर्शन की भूमिका के रूप में लिखी गई हैं। स्वयं भी वे कुछ अंशों में विचारानुमानी हैं। साइण्टिफिक थोट नामक उनके ग्रंथ में प्रकृतिविज्ञान के काम में लाई गई धारणाओं का स्पष्टीकरण किया गया है। इसके साथ ही इसे भौतिकी, ज्ञानदर्शन एवं सामान्य बुद्धि के सिद्धान्त के जरिए व्यक्त करने का प्रयास भी माना जा सकता है। माइण्ड एण्ड इट्स प्लेस इन नेचर में मनोवैज्ञानिक धारणाओं का विश्लेषण है। चाहे वे मन को प्रकृति में ही कहीं पदस्थापित करने का प्रयास करते हों। यह पुस्तक आलोचना से परे की वस्तु हो जाती है। ब्रोड 'भौतिक उद्भव' के सिद्धान्त के ही एक संस्करण का पक्ष लेते हैं। वास्तव में हम इस विषय में आश्चर्य करने लग जाते हैं कि ब्रोड द्वारा आरम्भ

म सुझाया गया विश्लेपण एव विचारानुमान का भेद क्या अभी तक कायम रह सका है ?

ब्रोड के अधिकाश पाठको को तो इस बात का गहरा धक्का लगा क्योकि उन्होंने माइण्ड एण्ड इटस प्लेस इन नेचर म यह बात कही थी। इस तरह का व्यवहार एक केम्ब्रिज विश्लेपणवादी दाशनिक से किसी भी भाति अपेक्षित नही है। ब्रोड ने 'साइकिकल रिसच एण्ड फिलोसफी'[1] म अपनी दाशनिक मान्यताओ को काफी विस्तार मे लिखा है।

सवप्रथम उन्होने निबध रूप से उन लोगो का खण्डन किया है जिनके लिए दशन की साथकता यह बात निविरोध रूप से स्वीकारने मे निहित थी कि यूरोप एव अमरीका के सममामयिक आदमी के लिए जो विश्वास सामान्य रूप से प्रचलित हैं उनका विश्लपण ही दशन का ध्येय है, अर्थात् इस प्रकार के आदमी के उन विश्वासों का विश्लेपण जिन्हें निविवाद रूप से उसने ग्रहण किया है और जिन पर अविश्वास करने का उसे कोई कारण नही प्रतीत होता।' एक जगह उन्होने यह भी लिखा कि अब यह बात स्पष्ट हो गई है सामान्य बोध पर बहुत कम लिखा या कहा जा सकता है। विश्लेपण इस तरह एक नगण्य बौद्धिक कसरत है। इस मामले मे वे रसेल के काफी करीब तथा मूर स कोसो दूर पडते हैं। उनका प्रारम्भिक बिन्दु सामान्य बोध के बजाय विज्ञान है। यदि इन दोनो म कोई सघष होता है तो सामान्य बोध को विज्ञान के लिए माग छोड देना चाहिए। इसके साथ ही वे रसेल की साहसिकता के बजाय मूर की सतकता की नकल करने के प्रयत्न म रहते हैं। एक बार उन्होने इस प्रकार पश्चात्ताप भी किया, सौ मूर सावेट सी रसल पावेट।' उनके आदशभूत यही दो मान जा सकते हैं--रसेल का ज्ञान व मूर की विश्लपणात्मक क्षमता, इनका सयोग।

इस तरह सामान्य बोध का मनस्तत्वशोध के विरुद्ध स्थापित किया जाना औचित्यपूण नही है। न ही प्राग्भावी तत्वदशन सब प्रकार की भूतबाधाओ का समाधान कर सकता है। चाहे हम कहे कि इस समय प्राग्भावी तत्वदशन है नहीं, होता तो ऐसा करता। मनस्तत्वशोध को स्वय अपने विषय मे कहने के लिए पृथक रूप से छोड दिया जाना चाहिए। हाँ इसे विवेचनात्मक दशन से निश्चय ही सयमित किया जाना चाहिए। यह ब्रोड का मूलभूत दृष्टिकोण है।

सभी तत्ववादियो म से मेक्टेगट की ब्रोड सर्वाधिक प्रशसा करते हैं। क्योकि

---

[1] फिलोसोफी (1949) मे प्रथम प्रकाशित रिलिजन, फिलोसोफी एण्ड साइकिकल रिसच 1953) मे पुन प्रकाशित। मनुस्तात्त्विक शोध कर इसमे प्रचुर सामग्री दखें। फ्लू कृत न्यू अप्रोच टू साइकिकल रिसच तथा फिलोसोफी (1949) एव (पी० ए० एस० एस० 1950 म भी समझी है।

मैक्टेगट ने उस बात का प्रयत्न किया जो असमव है, उन्होने निगमनात्मक तत्वदशन की रचना करनी चाही। ब्रोड ने अपने जीवन के अनेक वर्ष एक्जामिनेशन आव मैक्टेगट स फिलोसोफी (1923-8) क तीन भागो क लिखने म बिताए। यह पुस्तक जो साथ ही एक टिप्पणी भी है-ब्रोड की दर्शन-सम्बधी रचनाओ का अच्छा उदाहरण देती है। मैक्टेगट म ब्रोड को सतोप देने वाली दो वस्तुए थी उनकी शीतलता एव स्पष्टता। कोई भी दार्शनिक इतना कम उग्र नही रहा होगा और न ही किसी ने स्पष्ट होने का इतना जी-तोड प्रयास किया होगा। ब्रोड के अनुसार एक बार निश्चित प्रमेयो का सरल भाषा मे निर्धारण हो जाय एव उनम से तक पूर्ण ढग से निश्चित निष्कष निकाल लिए जाए तो फिर उनका अनुसरण करके उन्हें स्वीकार करने या फिर अस्वीकार करन म हम कोई कठिनाई नही आयगी। ब्रोड ने मैक्टेगट को इस व्यापक परीक्षण म सही पाया था। यही इस बात का प्रमाण है कि ब्रोड के विचारानुमान के प्रति उनकी सहानुभूति थी इस सहानुभूति का विशेष रूप भी था, इसका भी यह प्रमाण है।

साई टिकिक यांट के मामुख म ब्रोड ने लिखा कि '*मैं* *पतक गभार दृष्टि स* मेरे उन मित्रो द्वारा दशन क क्षेत्र मे की गई उछलकूद को देखता रहू गा क्योकि य सब हर विटजनस्टीन की बासुरी क जादुई स्वरो क सम्मोहन म आकर इधर उधर नाच रहे हैं।' ये सब 1925 म उन्होन लिखा। विटजनस्टीन कृत ट्रक्टेटस लोजिको फिलोसोफिकल का अग्रेजी सस्करण[1] इससे तीन वर्ष पूर्व ही निकला था। जमन भाषा मे इसका प्रकाशन 1921 म हो गया था। इस तरह ब्रोड द्वारा ट्रक्टेटस की यह टिप्पणी युवा कम्ब्रिज दार्शनिको पर पडे विटजनस्टीन के तात्कालिक प्रभाव का ही प्रमाण है। क्योकि जो कुछ भी हो, वह 19 वी शती के उत्तरार्द्ध तक इग्लण्ड मे व्यापक रूप स पढा नही जा सका था और आज भी उसे विस्तृत विवेचन एव टिप्पणी का आधार बहुत कम ही बनाया गया है।

वास्तव मे यह एक ऐसी पुस्तक है जिसे साधारणत जरूरत स ज्यादा हिचकिचाहट की स्थिति म ही वर्णित किया जा सकता है।[2] अशत इसे विटजन-

---

[1] इसका अनुवाद असाधारण रूप स खराब है। मैंने जो उद्धरण दिये हैं उनमे परिवर्तन सशोधन करना पडा है।

[2] यहा लिखी जा रही बात को अन्तरिम रिपोर्ट माननी चाहिये। विटजनस्टीन की महत्वपूर्ण हस्तलिपिया जिनके जरिए ट्रक्टेटस पर पर्याप्त प्रकाश डाला जा सकता है अभी भी प्रकाशन के लिए तयार की जा रही हैं। इनमे ट्रक्टेटस से पूर्व की एक नोटबुक भी सम्मिलित है। ट्रक्टेटस पर लम्बी टिप्पणिया भी अभी निर्माणाधीन हैं। पूर्ण व्याख्यात्मक टिप्पणी जी० ई० एन० कौलम्बो कृत इतालव अनुवाद मे प्रकाशित है। देखें जी० टी० गेस्किग कृत एण्डरसन एण्ड द ट्रक्टेटस लोजिको फिलोसाफिकस, एन ऐसे इन फिलोसोफिकल ट्रासलेशन्स (एजेपी 1949) जे० आर० वीयन-

म सुझाया गया विश्लेषण एव विचारानुमान का भेद क्या अभी तक कायम रह सका है ?

ब्रोड के अधिकाश पाठको को तो इस बात का गहरा धक्का लगा क्योकि उन्होंने माइण्ड एण्ड इटस प्लेस इन नेचर म यह बात कही थी। इस तरह का व्यवहार एक केम्ब्रिज विश्लेषणवादी दार्शनिक से किसी भी भांति अपेक्षित नही है। ब्रोड ने 'साइकिकल रिसर्च एण्ड फिलोसफी"[1] मे अपनी दार्शनिक मान्यताओ को काफी विस्तार मे लिखा है।

सर्वप्रथम उन्होंने निबंध रूप से उन लोगो का खण्डन किया है जिनके लिए दर्शन की सार्थकता यह बात निर्विरोध रूप से स्वीकारने मे निहित थी कि यूरोप एव अमरीका के समसामयिक आदमो के लिए जो विश्वास सामान्य रूप से प्रचलित हैं उनका विश्लेषण ही दर्शन का ध्येय है, अर्थात् इस प्रकार के आदमी के उन विश्वासो का विश्लेषण जिन्हे निर्विवाद रूप से उसने ग्रहण किया है और जिन पर अविश्वास करने का उसे कोई कारण नही प्रतीत होता।' एक जगह उन्होंने यह भी लिखा कि अब यह बात स्पष्ट हो गई है सामान्य बोध पर बहुत कम लिखा या कहा जा सकता है। विश्लेषण इस तरह एक नगण्य बौद्धिक कसरत है। इस मामले मे वे रसेल के काफी करीब तथा मूर से कोसो दूर पड़ते हैं। उनका प्रारम्भिक बिन्दु सामान्य बोध के बजाय विज्ञान है। यदि इन दोनो म कोई संघर्ष होता है तो सामान्य बोध को विज्ञान के लिए मार्ग छोड देना चाहिए। इसके साथ ही वे रसेल की साहसिकता के बजाय मूर की सतर्कता की नकल करने के प्रयत्न म रहते हैं। एक बार उन्होंने इस प्रकार पश्चात्ताप भी किया, सी मूर सावेट सी रसेल पावेट।' उनके आदर्शभूत यही दो माने जा सकते हैं—रसेल का ज्ञान व मूर की विश्लेषणात्मक क्षमता इनका संयोग।

इस तरह सामान्य बोध का मनस्तत्वशोध के विरुद्ध स्थापित किया जाना औचित्यपूर्ण नही है। न ही प्राग्भावी तत्वदर्शन सब प्रकार की भूतबाधाओ का समाधान कर सकता है। चाहे हम कहे कि इस समय प्राग्भावी तत्वदर्शन है नही, होता तो ऐसा करता। मनस्तत्वशोध को स्वय अपने विषय मे कहने के लिए पृथक रूप से छोड दिया जाना चाहिए। हाँ इसे विवेचनात्मक दर्शन से निश्चय ही संयमित किया जाना चाहिए। यह ब्रोड का मूलभूत दृष्टिकोण है।

सभी तत्ववादियो म से मेक्टेगट की ब्रोड सर्वाधिक प्रशसा करते हैं। क्योकि

---

[1] फिलोसोफी (1949) म प्रथम प्रकाशित रिलिजन, फिलोसोफी एण्ड साइकिकल रिसर्च 1953) मे पुन प्रकाशित। मनस्तात्त्विक शोध कर इसम प्रचुर सामग्री देखें। फ्लू कृत न्यू अप्रोच टू साइकिकल रिसर्च तथा फिलोसोफी (1949) एव (पी० ए० एस० एस० 1950 म भी समझी है।

मैक्टेगर्ट ने उस बात का प्रयत्न किया जो असम्भव है, उन्होंने निगमनात्मक तत्वदर्शन की रचना करनी चाही। ब्रोड ने अपने जीवन के अनेक वर्ष एक्जामिनेशन आव मैक्टेगर्ट्स फिलोसोफी (1923-8) के तीन भागों के लिखने में बिताए। यह पुस्तक जो साथ ही एक टिप्पणी भी है—ब्रोड की दर्शन सम्बन्धी रचनाओं का अच्छा उदाहरण देती है। मैक्टेगर्ट में ब्रोड को सन्तोष देने वाली दो वस्तुएं थीं उनकी शातलता एवं स्पष्टता। कोई भी दार्शनिक इतना कम उग्र नहीं रहा होगा और न ही किसी ने स्पष्ट होने का इतना जी-तोड़ प्रयास किया होगा। ब्रोड के अनुसार एक बार निश्चित प्रमेयों का सरल भाषा में निर्धारण हो जाय एवं उनमें से तर्कपूर्ण ढंग से निश्चित निष्कर्ष निकाल लिए जाएं तो फिर उनका अनुसरण करके उन्हें स्वीकार करने या फिर अस्वीकार करने में हमें कोई कठिनाई नहीं आयगी। ब्रोड ने मैक्टेगर्ट को इस व्यापक परीक्षण में सही पाया था। यही इस बात का प्रमाण है कि ब्रोड के विचारानुमान के प्रति उनकी सहानुभूति थी इस सहानुभूति का विशेष रूप भी था, इसका भी यह प्रमाण है।

साइंटिफिक थॉट के आमुख में ब्रोड ने लिखा कि 'मैं पैतृक गम्भीर दृष्टि से मेरे उन मित्रों द्वारा दर्शन के क्षेत्र में की गई उछलकूद को देखता रहूंगा क्योंकि ये सब हर विटजनस्टीन की बांसुरी के जादुई स्वरों के सम्मोहन में आकर इधर उधर नाच रहे हैं।'[1] ये सब 1925 में उन्होंने लिखा। विटजनस्टीन के ट्रैक्टेटस लोजिको फिलोसोफिकल का अंग्रेजी संस्करण[2] इससे तीन वर्ष पूर्व ही निकला था। जर्मन भाषा में इसका प्रकाशन 1921 में हो गया था। इस तरह ब्रोड द्वारा ट्रैक्टेटस की यह टिप्पणी युवा केम्ब्रिज दार्शनिकों पर पड़े विटजनस्टीन के तात्कालिक प्रभाव का ही प्रमाण है। क्योंकि जो कुछ भी हो, वह 19 वीं शती के उत्तरार्द्ध तक इंग्लैण्ड में व्यापक रूप से पढ़ा नहीं जा सका था और आज भी उसे विस्तृत विवेचन एवं टिप्पणी का आधार बहुत कम ही बनाया गया है।

वास्तव में यह एक ऐसी पुस्तक है जिसे साधारणतः जरूरत से ज्यादा हिचकिचाहट की स्थिति में ही वर्णित किया जा सकता है।[3] अतः इसे विटजन-

---

[1] इसका अनुवाद असाधारण रूप से खराब है। मैंने जो उद्धरण दिये हैं उनमें परिवर्तन संशोधन करना पड़ा है।

[2] यहां लिखी जा रही बात को अंतरिम रिपोर्ट माननी चाहिए। विटजनस्टीन की महत्वपूर्ण हस्तलिपियां जिनके जरिए ट्रैक्टेटस पर पर्याप्त प्रकाश डाला जा सकता है अभी भी प्रकाशन के लिए तैयार की जा रही हैं। इनमें ट्रैक्टेटस से पूर्व की एक नोटबुक भी सम्मिलित है। ट्रैक्टेटस पर लम्बी टिप्पणियां भी अभी निर्माणाधीन हैं। पूर्ण व्याख्यात्मक टिप्पणी जी० ई० एन० कोलम्बो कृत इतालवी अनुवाद में प्रकाशित है। देखें जी० टी० वेस्किंग कृत एण्डरसन एण्ड द ट्रैक्टेटस लोजिको फिलोसोफिकस, एन ऐसे इन फिलोसोफिकल ट्रांसलेशन्स (एजेपी 1949) जे० आर० वीयन-

स्टीन द्वारा अपने शिष्यो म दशन क प्रति उत्साह पदा करने का परिणाम भी कहा जा सकता है। आज, आज क्या कभी भी, ऐसा कोइ व्यक्ति न रहा होगा जो ट्रक्टेटस के सभी प्रमुख सिद्धान्तो का कायल हो। स्वय विटजनस्टीन ने इसकी आलोचना की है। अभी भी बहुत से चेत्रो म इस बात पर विश्वास करने म लोगो का हिचक है कि विटजनस्टीन ने कोई ऐसी गलती की है जो अन्य लोगो जसी गलती है। विटजनस्टीन ने यदि गलती की है तो वह गलती भी कोई विवकपूण गलती ही रही होगी और कम से कम अपने समसामयिको की गलतिया की बजाय उसमे कुछ गूढता रही होगी। एक बार फिर शिष्यत्व सबधी नाजुक प्रश्न खडे हो जाते हैं। यह प्रश्न कि विटजनस्टीन का आशय क्या था? इस दूसरे प्रश्न से जुडा है कि कौन उनकी रचनाओ को सही ढग से समझ सका है और उनके काय को आग ल जा सका है? इसके दूसरी ओर कुछ ऐसे लोग भी हैं जो विटजनस्टीन को धूत कहकर अमान्य कर देते हैं। यह बात तो स्पष्ट है कि ट्रक्टेटस के किसी भी विवरण का साव भौम स्वीकृति नही मिल सकती।

उन बाह्य कठिनाइयो के अलावा दशन क इतिहासकार को सापक्षतया भटकने क खतरे स बचने के लिए अपने वणन मे सयम भी रखना पडेगा—क्योंकि ट्रक्टेटस स्वय म ही एक पर्याप्त उत्तेजक रचनाओ मे स है। इस मे विचित्र रूप से सूक्ष्म प्रश्नो पर विमश किया गया है जसे साथकता तकशास्त्र की प्रकृति तथ्य एव सत्कवाक्य दशन का काय, एक तरह से तो यह कृति रोमाण्टिक एव आकारी दशन रूपों को बिना झिझक के मिला देती है।

बग कृत एन एग्जामिनेशन आव लोजिकल पोजिटिविज्म (1936), एन० ब्लक लग्वज एण्ड फिलोसोफी (1949), माइण्ड 1923 म एफ० आर० रेमसे द्वारा दिया गया विवेचनात्मक टिप्पण जो 1931 मे फाउण्डेशन्स आव मैथेमेटिक्स के रूप मे प्रकाशित हुआ। ट्रक्टेटस के अग्रजी सस्करण मे लिखी रसेल की भूमिका। जे ओ अमसन् फिलोसोफाकल एनालिसिस (1956)। विटजनस्टीन पर सामान्यत स्मरण लेखाश देखें जो गस्किग एव जेकसन द्वारा लिख गए हैं (जे० पी० 1951)। जी० राइल (अनालेसिस 1951) जे० विजडम (माइण्ड 1952) बी० रसेल (माइण्ड 1951) के विटन (केम्ब्रिज जनल 1954), जी० वोन० राइट (पी० आर० 1955)। मैंने एक अप्रकाशित शोधलेख का भी जो डी श्वेडर द्वारा लिखित हैं तथा बोडल लाइब्रेरी, आक्सफोड मे मिला है, उपयोग किया है। मैं आक्सफोड में ट्रक्टेटस पर प्रस्तुत हुई चर्चा से भी काफी प्रभावित हुआ हू जो कुमारी एसकोम्ब मिस्टर डेविड पीयस एव प्रो० गिल्बट राइल के बीच हुई थी। उस मैं यहा इसलिए प्रस्तुत नही कर रहा हू कि उसे सभी अपनी स्वीकृति दे दें। इसके बावजूद भी यह लिखने में मुझे सकोच नही है कि उसे कोई भी स्वीकृति नहीं देगा।

इसका आमुख एक साथ इन दो धाराओं का परिचय देता है। इसका पहला वाक्य है, 'यह किताब केवल उन्हीं लोगों द्वारा समझी जायगी जिन्होंने पहले से ही उन विचारों पर विचार कर लिया है जो इसमें व्यक्त हैं या फिर उनके समानान्तर विचारों से जिनका परिचय हो।' यह बात रोमेण्टिसिज्म की उत्कृष्ट परम्परा के अनुसरण में ही लिखी गई लगती है। कम से कम इस रूप में कि केवल चुनी हुई आत्माएं जिन पर कृपादृष्टि हो चुकी है वे ही वास्तव में इसे समझ पाएं। तो भी विटजनस्टीन हमें यह बताते हैं कि ट्रेक्टेटस का साराश यह है कि जो कुछ कथनीय है उसे स्पष्टत: कहा जा सकता है और जहां कोई व्यक्ति बोलने का अधिकारी न हो वहां उसे चुप रहना चाहिए। यहां ट्रेक्टेटस की केन्द्रीय विरोधाभासी स्थिति का आभास मिलने लगता है क्योंकि इसमें वह तो कहा गया है जो अकथनीय है और जो बात स्पष्टता से कही जानी चाहिये वह रूपकों एवं सूक्तियों के जरिये दुरूह बना कर प्रस्तुत की गई है। ट्रेक्टेटस का रूप भी इस विरोधाभासता की पुष्टि करता है। प्रत्येक पैरा एक सुघरी प्रणाली के साथ गणनांकित किया गया है। मानो अब हम एक ऐसे दार्शनिक की बात पढ़ रहे हैं जो प्रत्येक सम्भव तरीके से हमारे समझने में सहायता देना चाहता हो। तो भी इस तरह से अंकित पैरे एक प्रहेलिकात्मक शैली में रचे गए हैं। और उनकी वाक्यश्रृंखला इतनी तनावपूर्ण है कि कदाचित् ही कोई पैराग्राफ व्याख्या-संबंधी कोई गंभीर कठिनाई प्रस्तुत करने से बाज आता हो।

इस तरह यदि मैं ट्रेक्टेटस की व्याख्या करने के योग्य अपने को समझूं तो कहूंगा कि यह कार्य सूक्ष्म दृष्टि एवं दीर्घ स्थान की अपेक्षा रखेगा। सीमाओं को देखते हुए मैं जो कुछ भी करने की आशा कर सकता [illegible] वह है उन बिन्दुओं का विचाराय चुनाव करना, जिनके कारण ट्रेक्टेटस का प्रभाव जम सका है।

सबसे पहले तो ट्रेक्टेटस की बौद्धिक पृष्ठभूमि के विषय में विचार होना चाहिए। विटजनस्टीन का प्रशिक्षण दार्शनिक के रूप में न होकर एक इंजीनियर के रूप में हुआ था। इसलिये कोई उनके विषय में यह नहीं मान सकता कि उन्हें मार्गीय दर्शन का साधारण ज्ञान भी था। वह अन्य सभी नौसिखियों की भांति शोपेनहोवर में रुचि रखने लगे थे। यदि कहीं कहीं उनकी रचनाओं में काण्ट का सा पुट मिल जाता है तो उसका यही कारण है। उन्हें मैश एवं हर्ज के विषय में भी कुछ मालूम था और शायद उन्होंने मीनोंग एवं हसर्ल के विषय में लोगों से केवल चर्चाएं ही सुनी थीं। विश्वास के साथ एक मात्र यही बात कही जा सकती है कि ट्रेक्टेटस लिखते समय विटजनस्टीन केवल फ्रेगे एवं रसेल की कृतियों में देखी या पढ़ी या उनके साथ चर्चा की गई विचार धारा के आधार पर अपना पथ अलग से खोजना चाहते थे। रसेल के तर्कसम्मत अणुवाद के दर्शन से वे कितना प्रभावित हुए और कितना उसमें उन्होंने योगदान किया यह बात कहना मुश्किल है। वे कभी भी अपने किसी पूर्ववर्ती

की चालू सन्दर्भ देने के अतिरिक्त और कोई चर्चा नहीं करते। कभी कभी फ्रेगे एवं रसेल के विषय में भी वे जो कहते हैं वह बड़ा पेचीदा होता है। संक्षेप में इस तरह से उन पर हुए प्रभावों पर निश्चय से कहना निरर्थक ही होगा।

अब ट्रैक्टेटस पर सीधी चर्चा ही करें। इसका समारम्भ सजील उद्घोषों से होता है। यह संसार ही सब कुछ है। बस मामला इतना ही है। संसार तथ्यों की, न कि वस्तुओं की पूर्णता से संगुम्फित है।' तो भी स्पष्टतः यह वास्तविक प्रारम्भ नहीं हुआ है। विटजनस्टीन ने ट्रैक्टेटस के परों को बड़े ही कलात्मक, प्रभावोत्पादक, एवं क्रमवार तरीके से संयोजित किया है। यदि हम यह समझने की आशा करें कि जो कुछ वह कहने जा रहे हैं वह क्या है तो हमें उसी शृंखला में आगे पीछे घूमना भटकना पड़ेगा। वास्तव में उन्होंने सार्थकता के सिद्धान्त से ही इस पुस्तक का प्रारम्भ किया है, न कि अत साक्ष्य से प्राप्त तात्विकी से।

विटजनस्टीन की महत्वपूर्ण धारणा है कि प्रत्येक तर्कवाक्य का अर्थ स्पष्ट एवं निश्चित होता है। और इसके साथ यह मान्यता भी कि यह अर्थ तर्कवाक्य के संसार से संबंधित होने के कारण ही है। दैनिक जीवन के तर्कवाक्य में भी जटिल अभिव्यक्तियां होती हैं और ये रसेल की धारणा के अनुरूप तर्क सम्मत कोई विशिष्ट नाम नहीं हैं। इन जटिल अभिव्यक्तियों को विवरण के जरिए बदला जा सकता है। उदाहरणार्थ यदि हम कोई यह पूछे कि सभी लखपती जिद्दी होते हैं का क्या अर्थ है, तो हम इसका उत्तर लखपती एवं जिद्दी का विवरण प्रस्तुत करके दे सकते हैं। इसका विवरण हम यों दे सकते हैं कि 'वे सभी व्यक्ति जिनके पास एक लाख पौण्ड से ज्यादा राशि है उन्हें समझाया जा सकना कठिन है।' किन्तु इस तरह का विवरण देने से हमने अर्थ को स्पष्ट एवं निश्चित नहीं बनाया। हमें तब अपने ही इस विवरण की एवज में कुछ दूसरा विवरण जो इससे कम या ज्यादा जटिल हो देने के लिए कहा जा सकता है। तर्कवाक्य के सम्बन्ध में एक निश्चित अर्थ पर पहुंचने के लिए अर्थात् तर्कवाक्य का एक ही— और केवल एक ही परिपूर्ण विश्लेषण करने के लिए विटजनस्टीन के अनुसार हम जटिल चिह्नों को तार्किक दृष्टि से विशिष्ट नाम देकर परिभाषित करना चाहिये। वे लिखते हैं कि यह तो स्पष्ट है कि तर्कवाक्यों का विश्लेषण करते समय हमें प्राथमिक तर्कवाक्यों का सहारा लेना चाहिए जो अपने तात्कालिक संयोग द्वारा घटित नामों पर आश्रित रहते हैं। इस बिन्दु पर आकर अब हम यह नहीं पूछ सकते कि अर्थ अब भी और स्पष्ट किया जाय। क्योंकि नाम की व्याख्या-परिभाषा नहीं हो सकती। न हम यह आग्रह उस तर्कविषय के लिए ही करना चाहिये जिसमें नामों के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता और जो तत्काल ही हमें संसार से जोड़ देते हैं। इसका अर्थ सीधा हमें समझ में आ जाता है— क्यों कि इसमें दिये गए सन्दर्भ भौतिक इयत्ताओं के सरल मिश्रण से बनते हैं।

तब जिसे विटजनस्टीन सरल इयत्ताए मानते हैं, वे पदार्थों के रूप म होनी चाहिए। क्योकि उनका कोई नाम तो है और तकवाक्यो के निश्चित अथ क लिये नामो का होना आवश्यक है। विटजनस्टीन इन सरल इयत्ताओ का नाम बताने म रुचिशील नही थे। आशय उनका यही है कि ये सरलताए आवश्यक रहनी चाहिए ये सब क्या हैं यह बात प्राथमिक महत्व की नही है। उनका कहना है ' कि यदि यह जगत् अनन्त रूप से जटिल हों ऐसा कि, जिसम प्रत्येक तथ्य मे अनन्त सख्या म आणविक तथ्य निहित हो एव प्रत्यक आणविक तथ्य भी अन त सख्या के पदार्थों स निर्मित हो तो भी पदाथ एव आणविक तथ्य अवश्य होने चाहिए। यह बात ह्यूम क बजाय उन्ह लेबनीज के अधिक निकट ले आती है।

नामो का किसी तकवाक्य के सदभ के बिना कोई अथ नही होता। उसी भाति हम किसी पदाथ की कल्पना नही कर सकते सिवा उस रूप मे जिसमे उसका सबध किसी अन्य विविध पदार्थों से हो। पदार्थों के बीच ऐसे ही सभव सबधो को आणविक तथ्य कहा जा सकता है। यह बात बडी अजीब लगती है कि सभव सबधो को तथ्य मान लिया जाय। साधारणत हम तथ्य के विषय मे उसकी वास्तविकता को लकर ही सोच सकते हैं, सभावना को लेकर नही। तो भी 'सैचवरोल्ट' जैसे जमन शब्द का कोई अन्य अनुवाद किया जाना कठिन ही है। यह विचित्रता उस समय थोडी कम होती लगेगी जब हम आणविक तथ्य के विषय मे यह सोचें कि इसी के कारण तकवाक्य सही और गलत हो सकता है।

एक तकवाक्य सही है यदि कुछ आणविक तथ्य उसमे विद्यमान हैं। गलत है यदि वे विद्यमान नही हैं। तब आणविक तथ्य कुछ इस प्रकार के होने चाहिए जिससे यह प्रश्न कि वे अस्तित्वशील हैं अथवा नही, (प्राप्त होते हैं अथवा नही) उठाया जाता रह सके। आणविक तथ्य उपलब्ध सभावनाए हैं यदि कोई तकवाक्य जो उन्ह चित्रित करता है, वह सही हो। यदि वह गलत होगा तो अनुपलब्ध सभावनाए होंगी। कि तु सभावनाओं के रूप मे उनका अस्तित्व इस प्रश्न से प्रभावित नही रहता है कि उपलब्ध है अथवा नही। अर्थात् इस प्रश्न से कि वे ठोस रूप मे सत्य हैं भी अथवा नही। विटजनस्टीन के मतानुसार तकशास्त्र का अध्ययन करने म हमे तथ्यों की ठोसता से दरअसल कोई वास्ता नही होता, सारी सभावनाए ही इसके तथ्य हैं। उनके विचार म अपरिहाय रूप से यह सब ऐसा ही है, क्योकि गलत तकवाक्य जो ऐसी सभावनाओ के विषय म कहते हैं जो उपलब्ध व ठोस भी हैं तकशास्त्र द्वारा अनुशासित जगत के भी उतने ही अश हैं जितने वे स्वीकार अथवा अस्वीकार कर दिये जाने के काबिल भी हैं सही तकवाक्यो के रूप म कुछ अभिप्राय निहित रखते हैं अथवा नही ।

तब फिर तकवाक्य तथ्यो से किस तरह सयुक्त हैं ? विटजनस्टीन का उत्तर है कि वे तथ्यो के चित्र हैं। यह दृष्टिकोण उनके मस्तिष्क म कसे बना इसके विषय म अनेक किस्से हैं। किन्तु इन किस्सो मे एक अथ म सहमति भी है—कि वे एक ऐसे मोडल से काफी प्रभावित थे जिसे कोई दुघटना व्यक्त करने के लिए प्रयुक्त किया गया था—जसे कि मोटर दुघटना। अब जसे ही उन्होने छोटी सी चित्रित मोटर सडक एव आसपास की बाडी देखी तभी उन्होने समझ लिया कि तकवाक्य प्रकट हो गया।

इस तरह, विटजनस्टीन ने समस्या का रूप इस प्रकार देखा, समस्या है कि तकवाक्य का विवरण देन के लिए सवप्रथम इस बात की स्वीकृति देना है कि हमे गलत एव दोनों प्रकार के तकवाक्यो की रचना करने की स्वतन्त्रता है, और दूसरी बात यह कि तकवाक्य का मूल ससार से रहे उसके सम्बन्ध के कारण ही बनता है। यह 'चित्र रूपक दोनो ही दृष्टियो से सतोषजनक लगता है। स्पष्ट ही चित्राकित मोटर कार के जरिए जो कुछ वास्तव मे घटित हुआ उसका गलत चित्र दिया जा सकता है। स्पष्टत ही मोटर कार बनाते समय हमारे द्वारा प्रयुक्त की गई प्रक्रिया व दृश्य ही विश्व के विषय मे कुछ कहना व्यक्त करेंगे।

निश्चय ही मोटरकार अपने आपमे तकवाक्य नहीं हैं। हम उसका प्रयोग खेल में तथा दुघटना के चित्र दोनो मे कर सकते हैं। केवल उन्हे एक विशेष तरीके से रखने से ही वे जो कुछ घटित हुआ है उसे, भली भांति सप्रेषित कर देंगे। इस प्रकार रख जाने से ही वे तकवाक्यीय चिन्ह होते हैं। तकवाक्य ससार पर प्रक्षेपित किया गया एक ऐसा ही चिन्ह है अर्थात् उसी के जरिए यह कहा या न कहा जा सकता है कि मामला यो हैं। किन्तु अब मामले का (एक सामान्य मामल का) क्या होगा जब तकवाक्यीय चिन्ह केवल शब्दो से बना हो ? यद्यपि हमारी साधारण भाषा अब अधिक प्रतीकात्मक नहीं हैं उनकी दृष्टि म इसमे चित्रलिप्यात्मक प्रतीक के जो मूल स्वर हैं उन्हें अपने मे पा लिया है। जिस वस्तु का प्रतिनिधित्व हम करना चाहते हैं उसके सम्प्रेषण की क्षमता इसमे है। यद्यपि हमने वास्तव म यह कभी नही देखा है कि दरअसल भाषा किस का प्रतिनिधित्व कर रही है और इस अवस्था म जहा तकवाक्य गलत है तो हम सभवत यह भी नही देख सके हैं कि वह किसे सम्प्रेषित कर रही है। सम्प्रेषण की क्षमता इस तथ्य पर निभर करती है कि तकवाक्य की ठीक वही बनावट है या नही जसी उसकी जिसका कि वह प्रतिनिधित्व करता है। एक नाम एक वस्तु के लिए है दूसरा दूसरी के लिए और उन्हे जोड दिया जाता है, इस तरह सम्पूण मिलकर एक चित्रपट की भाति आणविक तथ्यो का प्रस्तुतीकरण कर देता है। एक तकवाक्य मे उतनी ही वस्तुए उपलब्ध होनी चाहिए जितनी वस्तुस्थिति मे हैं और जिनका भाषा मे

प्रतिनिधित्व हो रहा है।[1]

एक आपत्ति इस संबंध में जो हमें दिखाई देती है वह यह है कि यह सिद्धान्त अधिक से अधिक प्रारम्भिक छोटे वाले तर्कवाक्यों पर लागू हो सकता है। सामान्य तर्कवाक्य आणविक तथ्यों का चित्रण नहीं करते। उनमें तो ऐसी अभिव्यक्तियाँ होती हैं जैसे 'सब' 'कुछ' या' एवं नहीं'। आणविक तथ्यों में इनका कोई अनुरूप नहीं मिलता। इन तथ्यों को आणविक कहने का विटजनस्टीन का आशय कदाचित् यह हो कि वे तार्किक दृष्टि से स्वतन्त्र हैं—एक आणविक तथ्य के अस्तित्व से किसी दूसरे आणविक तथ्य के अस्तित्व या अनस्तित्व की किसी प्रकार की सूचना नहीं मिलती। इस तरह नकारात्मक आणविक तथ्य को हम मान ही नहीं सकते। सार्वभौम आणविक तथ्यों के बारे में तो यह कतई संभव नहीं है ही, पर ऐसे भी तथ्य इस प्रकार नहीं बनते क्योंकि क्ष य नहीं है' का अस्तित्व तार्किक रूप से क्ष य है के अनस्तित्व' से मुक्त नहीं है।

विटजनस्टीन ने इसीलिए लिखा कि मेरा मूलभूत विचार यही है कि तार्किक स्थिरांकों में प्रतिनिधित्व की क्षमता नहीं होती। यद्यपि ये सब तर्कवाक्यों में ही प्रकटते हैं तो भी तार्किक स्थिरांक इस प्रकार चित्र के अंश नहीं बनते। वे काफी विस्तार से इस बात पर चर्चा करते हैं कि नहीं' (नाट) का क्या महत्व है। उनके विचार में यह तो स्पष्ट ही है कि नहीं' किसी संबंध का नाम नहीं है—उसी प्रकार जैसे दाएँ' या बाएँ, संबंधों के नाम नहीं हैं। वास्तव में 'नहीं' नाम हो ही नहीं सकता। यदि ऐसा होता तो 'नहीं-नहीं-प (या प भिन्न नहीं) प से बिल्कुल भिन्न कथन होता और प' एक अलग ही नाम होता और इस कथन के दो नहीं' को 'प' बिल्कुल व्यक्त नहीं कर पाता। वे कहते हैं कि इससे यह अजीबोगरीब स्थिति भी पैदा हो जाती कि प नाम के एकाकी तथ्य से दूसरे अनन्त तथ्य या नाम निकाले जा सकते थे प के साथ 'नहीं' नहीं का अर्थात् दो नकारों का प्रयोग करते चले जाकर—तो यह सिद्ध हुआ कि 'नहीं कोई अभिधान नहीं है। यह किसी का अपने आपमें चित्रण नहीं करता जिस प्रकार एक तार्किक स्थिरांक किसी का संकेतन करता है—इस उदाहरण में वह यह संकेत करता है कि प पर एक क्रिया की गई है—जो नकारने की क्रिया' है।

तार्किक स्थिरांकों का इस तरह तर्कवाक्य में स्थान निर्धारित कर

---

[1] इस संबंध में हुए विचार विमर्श के लिए तथा विटजनस्टीन की व्याख्या के समय उत्पन्न हो जाने वाली कठिनाइयों के उदाहरणार्थ देखें, ई० डज अत 'द पिक्चर थ्यारी आव मीनिंग' (माइण्ड 1953) और उसके जवाब के लिए देखें, ई० ईवान्स अत ट्रैक्टेटस' 3–1432 (माइण्ड 1955)

विटजनस्टीन इस निष्कर्ष की ओर पहुचे हैं कि प्रत्येक अप्राथमिक तर्कवाक्य आरम्भिक तर्कवाक्यो के सत्य फलन हैं। सम रिमार्क्स आन लोजिकल फोर्म' (पी० ए० एस० एस० (1929) नामक अपने शोध निबन्ध[1] मे वे वस्तुस्थिति को इस तरह प्रस्तुत करते हैं– यदि हम प्रस्तुत तर्कवाक्य का विश्लेषण करने का प्रयत्न करे तो हमे सामान्य रूप से यह मालूम होगा कि वे या तो तार्किक योग है या कोई उपकरण, या फिर आसान तर्कवाक्यो के सत्य फलन हैं। यदि हम अपने विश्लेषण को ओर तक ले जाए तो इसे उस बिन्दु का स्पर्श करना होगा जहा वह ऐसे तर्कवाक्यीय आकारो तक पहुच जाएगा जो स्वय सरलतम तर्कवाक्यीय आकारो से नही बने हैं। हम तब पदो के बीच रहे अन्तरिम सबधो तक भी पहुच जाएगे, अर्थात् उन तात्कालिक सवेगो तक जिन्हे तर्कवाक्यीय आधार को नष्ट किए बिना विभक्त किया जाना सभव नही हैं। रसेल की ही भाति इन अन्तरिम सयोगो के सूचक तर्कवाक्यों को मै आणविक तर्कवाक्य कहता हू। ये प्रत्येक तर्कवाक्य के दाने हैं इनमे तत्व निहित हैं और शेष सभी इसी तत्व का विकास मात्र है।

मान लो हम प या फ नामक तर्कवाक्य पर विचार करते हैं। तब या यह अन्तिम सयोग का प्रतिनिधित्व नही करता। जैसा कि इस तथ्य मे प्रकटता है कि प या फ का अर्थ पूर्णत किया जा सकता है यदि उसके सत्याधारो का सदर्भ हम दे दे। इस प्रक्रिया मे या' का कोई स्थान नही है। यह भी सत्य होगा यदि प तथा फ दोनो सत्य हैं। यह तो उस समय भी सत्य रहेगा जब प सही है और फ गलत

---

[1] इस शोध लेख से विटजनस्टीन इतने असतुष्ट थे जो ट्रेक्टेटस के बाद का उनका एक मात्र प्रकाशन था कि उसके पढे जाने का समय आया तो उन्होने उस पर विचार विमर्श करने या उसे पढे जान से भी इन्कार कर दिया। किन्तु तब भी मुझे ऐसा नही लगता है कि मैंने उस निबध के जो वाक्याश यहा दिए है उन से भी वे असतुष्ट थे।

[2] विटजनस्टीन एक एक अमरीकी तर्कशास्त्री एच० एम० शेफर की रचना का उपयोग करते हैं। शेफर ने ए सेट आव फाइव इण्डिपेण्डेण्ट पोस्चलेटस फोर बूलियन अलजबरा (ट्रास अमरिकन मथ सोसाइटी 1913) यह सिद्ध किया था कि एक तर्कवाक्य के सभी सत्य–फलनो को एक बार के नकार से ही रचा जा सकता है (न–प एव न–फ)। शेफर ने बहुत कम प्रकाशित करवाया किन्तु वे एक प्रभाव शाली अध्यापक थे। देखें स्ट्रक्चर मैथड एण्ड मीनिंग ऐसेज इन आनर आफ हेनरी एम० शेफर, सपा० पी० हनले (1951)। सत्य सारणी एव शेफर द्वारा सुझाए आघाती स्वरो के सिद्धान्तों के लिए देखें पी० एफ० स्टासन कृत इण्ट्रोडक्शन टू लोजिकल थ्योरी (1952)। सदर्भ जोनसन (पृ० 138)।

उस वक्त भी होगा जब प गलत है तथा फ सत्य है। यह गलत उसी समय होगा जब प गलत है और फ भी गलत। इन परिणामों का एक चार्ट बनालें और उसे सत्य सारणी कहें। तब इसका परिणाम एक ऐसा तर्कवाक्यीय चिह्न होगा जो स्पष्टतः प या फ के अर्थ को ध्वनित करेगा। प्रत्येक अप्राथमिक तर्कवाक्य को इस प्रणाली द्वारा विश्लेषित किया जा सकता है चाहे उसमें समष्टि वाची परिमाणक सब विद्यमान हों—और चाहे इसमें विशिष्ट कठिनाइयां ही क्यों न प्रकट जाती हों। इस परिणाम को वैकल्पिक रूप से भी व्यक्त किया जा सकता है कि समा तर्कवाक्यों का एक ही सामान्य आकार होता है—पधिक तथ्यों की शृंखला में से एक का चुनाव विशिष्ट संयोगों को नकार करके ही संभव है।

इस प्रकार के चुनाव में दो प्रतिवादी स्थितियां प्रकटती हैं। पहली वह जिसमें से कोई भी संयोग अलग नहीं किया जा सकता तथा दूसरी जिसमें से प्रत्येक संयोग अलगाया जा सकता है। इस तरह मान लो यदि हम न-'प' में जो 'प' है उसे 'प-या-फ में फ' का एवजी मानलें, तब परिणामी अभिव्यक्ति 'प या न-प' सभी संभावनाओं के लिए सत्य होगी। प-या-फ' द्वारा जो एक मात्र संभावना अलगायी जा रही है वह वही है जहां प एवं फ दोनों गलत हैं। यह बात तब नहीं होगी जब हम फ' की जगह न-प को रख देते हैं। ऐसी अभिव्यक्ति को जो प या न-प' के आकार की हो विटजनस्टीन पुनरुक्त (टॉटोलाजी) ही मानते हैं। प एवं न-प जिसमें किसी संभावना को मूर्तरूप नहीं मिलता, उसे वे विरोधाभास मानते हैं। पुनरुक्तियां एवं विरोधाभास निरर्थक हैं, क्योंकि वे संसार का चित्रण नहीं करते। मैं मौसम के विषय में कुछ नहीं जानता जब मैं यह जानता हूं कि या तो बरसात हो रही है या नहीं हो रही है तो भी ये अनुपयोगी नहीं हैं—वे प्रतीकात्मकता की अज्ञात अभिव्यक्ति करते हैं।

तर्कवाक्य के तमाम सत्य विटजनस्टीन द्वारा पुनरुक्तियों की श्रेणी में रख दिए जाते हैं। यह बात सत्य फलन संबंधी विश्लेषण से प्राप्त हुई। उदाहरणार्थ इस तार्किक सत्य को लें 'प या फ तथा उसके साथ ही न-प मिलकर फ को प्रकट करते हैं।" अब 'प या फ' के तथा न-प' के सत्याधारों का निर्धारण करें तो तत्काल ही हम यह बात ध्यान में आती हुई नजर आएगी कि 'प या फ एवं न-प' दोनों सही नहीं हो सकते। सिवाय उस समय जब फ सत्य हो। यह तथ्य वैकल्पिक रूप से भी विटजनस्टीन के आशय के सिद्धान्त के जरिए यह कहकर प्रकटाया जा सकता है कि फ का आशय प या फ के एवं न-प के आशय में सम्मिलित है। एक यथोचित प्रतीक में (एक आदर्श भाषा में) विटजनस्टीन के मतानुसार यह बात तत्काल ही स्पष्ट हो जायगी। हम उस समय इस दुनिया के विषय में कुछ नहीं कह रहे हैं जब हम यह कहते हैं कि प या फ एवं न-प दोनों फ का व्यक्त करते

हैं। ऐसा कहकर हम किसी मौलिक संभावना को अलग नहीं कर रहे। विटजनस्टीन के अनुसार हम हमारे प्रतीकांकन की ओर सबका ध्यान आकर्षित कर रहे हैं–उस अवस्था की ओर जिसके विषय में हमारा प्रतीकांकन स्वयं कहेगा। तार्किक कथन की यह विशेषता है कि हम प्रतीक के जरिए ही यह देख सकते हैं कि वह सही है।

यदि तर्कशास्त्र पुनरुक्तियों से भरा है तब यह पूछा जा सकता है कि हम तर्ककथनों के लिए प्रमाणों को प्रस्तुत करना क्यों आवश्यक मानते हैं? विटजनस्टीन इसके उत्तर में कहते हैं कि पुनरुक्तियों के शीघ्रता से जान लेने के लिए प्रयुक्त एक यान्त्रिक सिद्धीकरण के अलावा प्रमाण की कोई आवश्यकता नहीं है। यह दृष्टिकोण कि तर्कशास्त्र में कुछ आदिम तर्कवाक्य हैं जिनसे अन्य तर्कशास्त्रीय तर्कवाक्यों का निगमन किया जा सकता है एक भ्रममात्र है। शास्त्र की प्रत्येक उक्तियाँ इसी सहारे पर खड़ी हैं–वे सब एक ही बात कहती हैं, अर्थात् कुछ भी नहीं कहतीं।

गणित की तब क्या स्थिति है? विटजनस्टीन के अनुसार वह समीकरणों से बना है जिससे सीधा यह अर्थ निकलता है कि गणितीय तर्कवाक्य भी निरर्थक हैं। क्योंकि यह मानना सदैव ही निरर्थक है कि दो भिन्न पदार्थ एक ही हैं। और किसी वस्तु के विषय में यह बताना कि वह अपने ही से तादात्म्य रखती है कुछ भी न कहने के बराबर है। गणित हमें अपने द्वारा प्रयुक्त प्रतीकांकन के विषय में बताता है–अर्थात् यह बताता है कि कुछ अभिव्यक्तियों को एक दूसरे के एवज में रखा जा सकता है। और यह सब हो सकता दुनिया के बारे में हमें संकेत देता है किन्तु यह संसार को किसी भी भाँति चित्रित नहीं करता। इस प्रकार गणित के सारे कथन आशयहीन हैं।

आशयहीन ये अवश्य हैं किन्तु निरर्थक नहीं। इसके अतिरिक्त विटजनस्टीन का मत है कि तत्ववादी पूर्णतः निरर्थक बकवास करता है। विटजनस्टीन के इस अभियोग में नवीनता नहीं है। यदि हम इस बात की खोज अधिक गहराई से न भी करें तो १० वीं शती के वस्तुस्थितिवादियों के दैनिक आलोचना-विवेचन में यह देखा जा सकता है। प्रथम नवीन यह अभियोग था कि तत्ववाद इस तथ्य से प्रकटता है कि दार्शनिक अपनी ही भाषा की तर्क शक्ति से परिचित नहीं हो पाते।

इसका स्पष्ट उदाहरण लें तो कहना होगा कि एक दार्शनिक इस तथ्य द्वारा मार्गच्युत कर दिए गए दिखते हैं कि हमारे तर्ककथनों की व्याकरणसम्मत रचना सदैव ही उसके तार्किक आकार के अनुरूप नहीं होती। व्याकरण में लखपती अनस्तित्वशील हैं' एवं लखपती असहयोगी हैं' दोनों का आकार एक सा

ही है केवल इस कारण कि दार्शनिक को यह विश्वास करना पड़ता है कि अनस्तित्वशील एक गुण है और तब वह अनस्तित्व की प्रकृति के संबंधों में जांच करने के लिए अपने को आमादा कर देता है। एक स्वतःपूर्ण भाषा में जिसमें प्रत्येक चिह्न उसके तार्किक फलन को व्यक्त करता है, ऐसी गलतफहमियां नहीं रह जाएंगी और हम जिसे 'लखपती अनस्तित्वशील है' करके लिखते हैं, उसे वहां तब इस प्रकार व्यक्त किया जाएगा जिससे अनस्तित्वशील है' विधेय के रूप में नहीं लगेगा। ऐसी भाषा तर्क को आवश्यक तथा तत्वदर्शन को असंभव बना देगी।

अन्य मामलों में तत्वदर्शन उस प्रयास से उपजता है जब भाषा की सीमा से बाहर जाने का प्रयास किया जाता है। अर्थात् भाषा एवं संसार के बीच के सम्बन्धों की चर्चा करने जैसा कि हम करते रहे हैं। विटजिस्टीन के मतानुसार कोई भी तर्कवाक्य संसार के अनुरूप किसी भी वस्तु का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकता, जिसके जरिए वह उसी प्रकार का एक परिशुद्ध चित्रांकन कर सके। यह करने के लिए इसे अपने आपमें संसार के एक अंश का अचित्रित रूप अपने में समाहित करना होगा, ताकि संसार और चित्र में वह तुलना कर सके। किंतु विटजिस्टीन की दृष्टि में यह असंभव चेष्टा है। संसार के विषय में बातचीत करने का मतलब ही उसका चित्रांकन करना है। इसके विपरीत कुछ भी मान लेना यह कल्पना करना है कि हम भाषाओं से परे की किसी अवस्था की चर्चा कर सकते हैं, अर्थात् कथनीय से परे के विषय में भी हम कुछ कह रहे हैं।

तब दार्शनिक क्या कह सकता है? विटजिस्टीन का बेझिझक उत्तर है, कुछ भी नहीं।' 'दर्शन का सही कर्म यही है कि वह वही कहे जो कहने योग्य है।' अर्थात् उस संबंध में जिसका दर्शन से कोई ताल्लुक नहीं है और जब कोई कुछ भी तत्ववादी कहना चाहे उसे यह बताए कि उसने अपने तर्क कथनों में से कुछेक चिह्नों का कोई अर्थ ही नहीं प्रकटाया है। इस दृष्टिकोण से दर्शन एक सिद्धांत नहीं एक क्रिया है। लोगों के सम्मुख यह स्पष्ट करने की क्रिया कि वे किसी विषय में क्या कह सकते हैं और क्या नहीं।

इसके उत्तर में हम यह कहने को उत्सुक हो सकते हैं कि कम से कम कुछ ऐसे दार्शनिक कथन भी हैं, जो अतत्ववादी हैं, प्रयोजनीय हैं जैसे वैज्ञानिक विधि के विश्लेषण से उत्पन्न कथन पर। इसे विटजिस्टीन नहीं मानते। उनके अनुसार ऐसे तर्कवाक्य या तो मानवी मनोविज्ञान संबंधी तर्कवाक्य हैं और या वे विश्लेषण से तर्ककथन ही लगते हैं। वे केवल प्रतीकांकन संबंधी कथन हैं। पहले प्रकार के वाक्यों के लिए सर्वप्रसिद्ध उदाहरण है, आगमन का तथाकथित नियम।' विटजिस्टीन के द्वारा परिभाषित आगमन ऐसा सरलतम नियम निर्धारण करने की चेष्टा

ही है जो हमारे अनुभव के अनुरूप हो। किन्तु इसका यह अथ नही है, कि सरलतम अवस्थाए ही वास्तव मे घटित होती हैं। यह तो केवल एक आकल्प है कि सूय कल उदय होगा। इसके विषय म हम पूरा ज्ञान नहीं है कि वह कल उगेगा ही। ऐसा हम उसी समय जानते यदि वह हमारे अनुभव से नि सृत एक आवश्यक तार्किक परिणति होती। तार्किक आवश्यकता के अतिरिक्त और कोई आवश्यकता है ही नही। तार्किक अनुमान के अतिरिक्त अ य कोई अनुभव है ही नहीं। किसी भी रूप म किसी अनुमान को एक अनुभव की अवस्था से दूसरे की अवस्था पर लागू नहीं किया जा सकता है। काय कारण के परिणाम से अ धविश्वास ज मा है। इसस यह निष्कय निकलता है, कि अनुमान का नियम निश्चय ही तब तकशास्त्र का कथन नही है। विटजिस्टीन की दृष्टि म यह तो केवल (और इसी कारण वह दशन का कथन न होकर मनोविज्ञान का कथन हो जाता है) यही कहता है कि मानव साधारणत जटिल यवस्था के बजाय सरलतम व्याख्याए या स्पष्टीकरण पसन्द करते हैं।

काय कारण के नियम के लिए विटजिस्टीन का कहना है कि वह छद्मवेश म तकशास्त्र का ही एक कथन है। प्रतीकाकन के रूप म ही जो दिखाया जा सकता है उसी के इस प्रकार कहने का प्रयास है कि नियम प्राकृतिक होते हैं। चारो ओर फले विश्व की ओर देखने पर हमे एकरूपता नही मिलेगी। ये एकरूपता तो हमारी बातचीत म ही प्रकटती हुई मिलगी और एक रूपता सबधी क्या यह एक ज्वलत तथ्य नही है कि हम परस्पर किसी एक माध्यम से बातचीत कर रहे हैं? इसी भाति जि हे हट ज ने यान्त्रिकी के प्राग्भावी नियमो के रूप म चुना, वे प्रतीकाकन के दौरान प्रकट विवरण हैं। ये ऐसे विवरण हैं जिनके विषय मे हमारा यह प्रतीकाकन स्वत प्रकट करता है। यदि हम विज्ञान को ससार का सु दर तर्कों की शबलता के द्वारा वणन करने का प्रयास मानें तो विटजिस्टीन के अनुसार प्राग्भावी नियम उस परिणाम के अ श नही हैं जिन पर हम इस तरह पहुचते हैं। इसके विपरीत वे तो इस तक–शबलता के मूल अ ग हैं (यद्यपि विटजिस्टीन के अनुसार ये हम यह तो बताते हैं कि ससार का वणन अमुक अमुक नियमो से किया जा सकता है)। इसके विपरीत वे तो इस तक–श्रृखला के मूल अ ग है (विटजनस्टीन के अनुसार वे हमे यह तो बताते हैं कि ससार का वणन अमुक अमुक तरह से हो सकता है[1]। इस तरह उनका कहना है कि

---

[1] देखें डब्लू० एच० वाटसन आन अण्डरस्टैण्डिग फिजिक्स (1938)। इस पुस्तक को ट्रैक्टेटस के प्रभाव म आकर भौतिकी सिद्धा त के निर्माण के लिए देखें एस० टोलमिन कृत द फिलोसोफी आव साइ स (1953) विटजनस्टीन के दृष्टिकोण का विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत करती है और उसकी रचना इस ढग से की गई है

उसका अपना सामान्य नियम यही है कि ससार का चित्रण करने वाले तकवाक्य प्रकृति विज्ञान के ही तकवाक्य हैं और जो ससार का चित्राकन नही करते तो यदि वे निरथक नही तो पुनरुक्तिया तो हैं ही। दाशनिक तकवाक्यों की इससे कोई विचित्र श्रेणी है ही नही। यह निश्चय ही एक दूषित निष्कष था।

केम्ब्रिज विचारकों मे से जो लोग तत्काल ही ट्रैक्टेटस से प्रभावित हुए उनमे एफ० पी० रेमजे का नाम उल्लेखनीय है। रेमजे छब्बीस वष की अवस्था मे दिवगत हुए और उनके थोड़े से परिपक्व अवस्था के वष दशन, गणितीय तकशास्त्र एव अथशास्त्र सम्बन्धी धारणाए प्रस्तुत करने म बट गए। रमजे उन लोगो म से नही थे जो प्रारम्भ म ही एक निश्चित माग पकड लेते हैं और बाद मे भी उसके प्रति आस्थाशील बने रहते हैं। उन्होने कोई बडा ग्रन्थ भी नही लिखा—आर० बी० ब्रैथवेट द्वारा सकलित उनके निबन्धो का मरणोपरान्त प्रकाशन द फाउण्डेशन्स आव मैथेमेटिक्स (1931) शीषक कृति उनके मानसिक विकास की विभिन्न अवस्थाओ का चित्रण करती है, उनकी विचारधारा के सुनियोजित विकास का नही—तो भी ये निबध किसी भाति कम महत्व के नही है।

जिस निबध के (1925) कारण फाउण्डेशन्स आव मैथेमेटिक्स का शीषक रखा गया—उसमे रेमजे, ह्वाइटहेड एव रसेल के तर्कों के आधार पर हिलबट एव ब्राउवर के विरुद्ध अपना पर जमाते हैं लेकिन शीघ्र अपनी मौलिकता का परिचय भी दे देते हैं। विटजनस्टीन के विरुद्ध उनकी यह मान्यता है कि गणितीय तकवाक्य भी समीकरण न होकर पुनरुक्तियां हैं—और वे इस बात को और आगे बढा सके कि गणित भी तकशास्त्र से ही निगमित है। इसके साथ ही विटजनस्टीन से ही वे यह सीखे कि तकशास्त्र पुनरुक्तिया से निर्मित है। विटजनस्टीन के सामान्य तकवाक्यो के सत्य-फलनीय विश्लेषण की सहायता से उनका उद्देश्य यह दर्शाना था कि गणित को एक ऐसे तकशास्त्र स निगमित किया जा सकता है जिसमे न तो कोई अनुभवजन्य तथ्यकथन हो और न न्यूनीकरण के स्वत सिद्ध कथन या फिर अनन्तता के स्वय-सिद्ध आदि। तो भी वह विरोधाभास नही पडता।[1] ह्वाइटहेड एव

कि इसके कारण टोलमिन दुहैम के निकट लगने लगते हैं विशेषतया वे भौतिक नियमों एव अनुभवजन्य सामान्यीकरणों मे तीव्र भेद मानते हैं—तथा भौतिकी एव प्राकृतिक इतिहास मे भी। देखें ई० नजल कृत रिव्यू (माइण्ड 1954) एव एच० डिंगल फिलोसोफी (1955)।

[1] विस्तार के लिए देखें अध्याय 9। बाद मे उन्हें ऐसे तकशास्त्र द्वारा जो अनुभववादी तथ्यकथनो से च्युत हो, विशुद्ध गणित की सुरक्षा करने की सभावना मे सदेह हो गया था। गणित के लिए इससे खराब स्थिति और क्या हो सकती थी, यही उनका निष्कष था।

रसेल द्वारा प्रारम्भ की गई जाच पड़ताल को ट्रेक्टेटस के माध्यम से आग बढ़ान वालों मे रेमजे महायुद्ध–कालीन ब्रितानो विचारको म अद्वितीय थे। बहुत स दाशनिक तो जिनकी रुचिया गणितीय होने के बजाय साहित्यिक एतिहासिक या भाषाई थी, उन सब लोगो के समक्ष जब प्रिंसिपिया मैथेमेटिका रखी गई तो उन्होने विचार लिया कि आकारी तकशास्त्र उनके उपयुक्त अब नही रहा–और इसी कारण वे तमाम ज्ञानवाद की अधिक सु–स्पष्ट सीमारेखा तक लौट आए।

रेमजे भी इसी दिशा के राही थ–खास तौर पर इसलिए कि उन पर अ शत जोनसन का प्रभाव था और अ शत इसलिए भी कि उन्होने पीयस को पढ़ा था तथा रसेल का भी अनुसरण व कर रहे थ। इस तरह फेक्टस एण्ड प्रोपोजीशन (1927) का अन्तिम निष्कष विटजनस्टीन से अपना तार्किक आधार ग्रहण करने के बावजूद भी अपनी मूल प्रकृति मे अथक्रियावादी ही रहा। नकारात्मकता क विश्लेषण म उनमे यह बात बहुत साफ दिखाइ दे सकती है। विटजनस्टीन के साथ व इस बात म सहमत हो जाते हैं कि प–भिन्न नहीं (नाटनॉट पी) तकवाक्य प ही है। और इस तरह नही कोई नाम नही। है किन्तु वे मामले को यही नहीं छोड़ना चाहते। उनक अनुसार नही शब्द अनुभूति मे एक विभिन्नता बतलाता है, अर्थात् स्वीकारने और नकारने के बीच विभिन्नता। इस प्रकार यह परिणित होगा कि प पर अविश्वास' करने का अथ प–नहीं पर विश्वास करन से अभिन्न हुआ। इस परिणमन का रेमजे विशिष्टत अथक्रियावादी माग स औचित्य सिद्ध करना चाहत हैं *इन दो विभिन्न मानसिक सम्भावना क कारणा और परिणामा को* बतलाकर।

इसी प्रकार अपनी ट्रूथ एण्ड प्रोबेबिलिटी (1926) म वे विटजनस्टीन क इस सिद्धान्त को अस्वीकृत करते हैं कि हम इस प्रकार क अनुमानो का कोई आधार नही दिखता जो पुनरुक्तिपूर्ण है। पियस के अनुसरण म ही वे आगमन की याख्या 'मानव मन की एक आदत' के रूप मे करते हैं जिसका विशुद्ध *आकारी तक द्वारा कोई औचित्य नही बतलाया जा सकता समावना सिद्धान्त के* द्वारा भी नही जसा कि कीन्स ने सोचा था–पर साथ ही व यह भी मानत थे कि इसी कारण उस आदत को अस्वीकृत कर देना किसी भी भाति युक्तियुक्त भी नही है। आगमन का तक जो कि एक मानवीय तक है–उनके वणनानुसार सफलता की उस मात्रा को बतलाता है जिससे एक अन्वेषक सत्य तक पहुचने के विभिन्न प्रकारो का प्रयोग करता है। आगमन अथक्रियावादी दृष्टि से औचित्यपूर्ण है, यह औचित्य युक्तियुक्त भी है केवल मनस्तात्विक मामला ही नही, जसा कि विटजनस्टीन मानते हैं।

'जनरल प्रोपोजीशंस ऐंड कजुअलिटी' (1929) मे भी अर्थक्रियावाद की ओर यह अभियान दृष्टिगोचर होता है। विटजनस्टीन से पूर्व मे गृहीत इस दृष्टिकोण को भी रैमजे यहा आकर अस्वीकृत कर देते हैं कि एक सामान्य तर्कवचन आणविक तर्ककथनो का पुंज है चाहे वह ऐसा विशेषता वाला पुंज हो जिसके विभिन्न अवयवो को हम अपनी प्रतीकग्राहिणी शक्ति की कमजोरी के कारण विसकलित नही कर सकते हो। (इस पर रैमजे ने फिकरा कसा है कि जिसे हम नही कह सकते उसे नही ही कह सकते गुनगुना या फुसफुसा भी उसे नही सकते।) साथ ही वे अब भी इस बात पर दृढ़ता से आश्वस्त हैं कि सारे तर्कवचन सत्यफलन हैं, इससे वह यह निष्कर्ष निकालते हैं कि सामान्य तर्कवचन वास्तविक रूप मे तर्कवचन ही नही हैं। उन्हें हम 'सत्य' और 'असत्य' के रूप मे वर्गीकृत करने की आवश्यकता ही नही है, केवल हम उन्हें यो वर्गीकृत कर सकते हैं कि आया वे सही हैं या गलत युक्तियुक्त हैं या युक्तिहीन। वे भविष्य के बारे मे सोचने के तरीके मात्र हैं। 'मनुष्य मरणशील है' कहने का अर्थ है कि आगे जब कभी किसी मनुष्य को देखें तो हम उसे मरणशील समझ लें चाहे लोग हमें इस धारणा से झटका देने का प्रयत्न करें या हमें अविवेकी बता दें। पर इसी लिए यह कथन असत्य सिद्ध नही हो जाता कि यह वस्तुओं की प्रकृति के बारे मे कोई निश्चित बात नही कहता।

विटजनस्टीन के विरुद्ध एक बार फिर, रैमजे यह मानते हैं कि दर्शन खास तौर के तर्कवाक्यों की एक श्रेणी उनका विशदीकरण, श्रेणीकरण, परिभाषा तथा विवरण कुछ इस ढंग से करता है जिसके जरिए कोई भी प्रयुक्त संज्ञा परिभाषित हो सके। उनकी दृष्टि मे दर्शन के समक्ष कठिनाई यही है कि इसकी परिभाषाएं और उनका विशदीकरण पूर्णत अन्योन्याश्रित है एक सत्ता और परिभाषा दूसरी मे समाहित है। उदाहरणार्थ, हम अपना विशदीकरण यह मानकर नही कर सकते कि अर्थ' की (मीनिंग की) प्रकृति पहले ही बहुत सुस्पष्ट है, और तब हम दिक एव काल के लिए उस शब्द अर्थ (मीनिंग) का प्रयोग करें, क्योंकि अर्थ की प्रकृति का स्पष्टीकरण करने के लिए भी हमे पहले दिक् एव काल संबंधी कुछ समझ तो होनी ही चाहिए। इस तरह विशदीकृति-मुखी दर्शन का एक बड़ा खतरा यह है कि उससे शास्त्रीयता आ जाती है। रैमजे के अनुसार शास्त्रीयता का मतलब है-'जो अस्पष्ट है उसे स्पष्ट मानकर पूर्णत स्पष्ट एव यथोचित मानकर अभिहित करना और तब उसे सही तार्किक पदावस्था में रख देना।' इस टिप्पण के साथ ही हम पुराने और नये कैम्ब्रिज की सीमारेखा को पार कर गए हैं।

फिलहाल तब भी, विशदता पर ही बल दिया जाता रहा। रसेल मूर, विटजिस्टीन ब्राड, जोनसन, सभी के अध्ययन द्वारा यही निष्कर्ष निकलता माना

जाता रहा कि दर्शन विश्लेषण है, विशदीकरण है। इस युग की एक विशेष उपलब्धि **एनालिसिस** नामक पत्र का 1933 में प्रकाशित होना है। इसका सम्पादन ए० डंकन जोन्स ने स्टेबिंग, सी० ए० मेस[1] तथा जी० राइल के सहयोग से किया।

एनालिसिस का उद्देश्य जैसा कि उसमें ही बताया गया था यह था ऐसे निबंधों को प्रकाशित करना, जो छोटे सीमित एवं समुचित रूप से परिभाषित हों तथा दार्शनिक मसलों पर एवं ज्ञात तथ्यों पर तैयार किये गये हों। उसमें लम्बे अतिसामान्य एवं सम्भाव्य तथ्यों पर सम्पूर्ण जगत् पर किए गई अमूर्त तत्ववादी विचारानुमानों को स्थान नहीं मिलता। यह स्पष्टतः रसेल की उस माँग का पुनः प्रस्तुतीकरण है जिसमें उन्होंने खण्ड खण्ड जाँच की बात कही है। यह बात स्वयं रसेल की पुस्तकों में भी उतनी व्यक्त नहीं हो पाई जितनी मूर के दार्शनिक निबंधों में व्यक्त हुई है। 1954 में जब **एनालिसिस** की तत्कालीन सम्पादिका मार्गरेट मेकडानल्ड ने उसमें प्रकाशित निबंधों का एक संग्रह **फिलोसोफी एण्ड एनालिसिस** शीर्षक से प्रकाशित किया तो उसमें उन्होंने इस पुस्तक का प्राक्कथन मूर या रसेल से न लेकर **ट्रैक्टेटस** से लिया। दर्शन का उद्देश्य विचारों का तार्किक स्पष्टीकरण है। दर्शन की परिणति दार्शनिक तर्कवाक्यों की संख्या बढ़ाना नहीं किन्तु तर्कवाक्यों का स्पष्टीकरण करना है। मूर ने जिसे व्यवहार में लिया, विटजिंस्टीन ने उसकी शिक्षा दी ऐसा माना जाता था। ट्रैक्टेटस को एक विश्लेषक की हस्तपुस्तिका के रूप में पढ़ा गया है।

तो भी स्वभावतः रसेल मूर एवं विटजिंस्टीन की इस त्रिवेणी के कारण कुछ कठिनाइयाँ खड़ी हो गईं। यह पूछा गया था कि वास्तव में यह 'विश्लेषण' किसका विश्लेषण करता है? एक वाक्य का तर्कवाक्य का, धारणा का या शब्द का? इससे भी महत्वपूर्ण बात यह कि वह विश्लेषण के जरिए उसे क्या रूप देना चाहता है? ये प्रश्न बहुत चर्चित हुए[2] थे, और यह कहना उचित ही है कि विश्लेषणात्मक प्रणाली 'विश्लेषण के विश्लेषण' में मुक्तहस्त से प्रयुक्त होती रही बजाय किसी वस्तु के विश्लेषण के।

---

[1] दार्शनिक मनोवैज्ञानिक के रूप में प्रसिद्ध, जो ब्रेण्टानो तथा स्टाउट की परंपरा को आगे बढ़ाते हैं। वे समसामयिक दर्शन के प्रति पूर्ण जागरूक थे। उनकी **प्रिंसिपल्स ऑव लॉजिक** (1933) नामक पुस्तक एक ऐसी पाठ्य पुस्तक थी जिसे केम्ब्रिज परम्परा पर लिखा गया था। उन्होंने विचार तथा भाषा के सम्बन्ध पर अनेक निबन्ध लिखे हैं। ब्रितानी दर्शन के इतिहास के इस काल के लिए देखें जे० ओ० अर्मसन कृत **फिलोसोफिकल एनालिसिस** (1946)।

[2] इस चर्चा के कुछ उदाहरण मूर एवं रसेल (अध्याय 1) में हैं।

जिन विविध चेत्रो से ये चर्चाएं गुजरी वे सब एल० एस० स्टेबिंग[1] की रचनाओं म देखी जा सकती हैं। उनकी कृति द मेथड आव अनालिसिस इन फिलो सोफी मे (पी० ए० एस० 1931) तकवाक्य के तात्कालिक सदम (अर्थात् उस सुनते ही जो ध्वनि हमारे मन म उभरती है) मे तथा उसके सही सदभ म जिसमे व सभी बातें सम्मिलित होती है जो वाक्य के सही होन पर लागू होते भेद दिखाया गया है। उदाहरणार्थ 'सभी अथशास्त्री गलती कर सकते हैं' नामक तकवाक्य का तात्कालिक सदम कीन्स की गलती को अपने मे समाहित नही करता। हम इस तकवाक्य को कीन्स के विषय मे कुछ न सुनकर भी समझ सकते हैं किन्तु कीन्स की गलती इस कथन के सही सदम को भी अभत यक्त करती है। स्टेबिंग का कहना है, कि चूंकि यह तकवाक्य सही है इसीलिए यह भी सही है कि कीन्स गलती कर सकता हैं।

स्टेबिंग मानती हैं, कि तत्ववादी विश्लेषण, दो मान्यताओं स काम चलाता है। सबसे प्रथम यही कि तात्कानिक सदम के स्तर पर हम यह भली भांति समझते हैं कि तकवाक्य मे विविधता है। दूसरी बात कि ऐसे तकवाक्य आधारभूत तकवाक्यों के प्रति सही सदम व्यक्त करते हैं तत्वों की अन्तरिम इकाइयों का सदम दत हैं जिनकी अन्तिमता इस तथ्य पर आधृत होती है कि उनके तात्कालिक सदम और सही सदभ एक ही है। उनके दिमाग मे मूर की यह धारणा है कि हम सब यह भली भांति मानते हैं कि मुर्गियां अण्डे देती हैं। किन्तु इस तकवाक्य के अन्तिम विश्लेषण मे हमारा मतभेद हो जाता है। इसके साथ ही तत्वों की इकाई का सिद्धान्त विटजिंस्टीन के तत्वों के सयोग एव आणविक तथ्यों के सिद्धान्त से मेल खाता है। इस तरह उनकी व्याख्या से मूर तथा ट्रैक्टेटस द्वारा एक ही बात कही गई है कि दार्शनिक विश्लेषण आधारभूत तकवाक्यो का घूंघट उघाडने का काय है जिसका प्रत्यक साम य तकवाक्य अन्तत सदम देता ही है।

वहुत स्पष्ट रूप से यह तो कहना होगा कि इस परिभाषा मे सभी विश्लेषण परिभाषित नही होते। उनकी कृति लोजिकल पोजिटिवज्म एण्ड एनालिसिस (पी०

---

[1] उनके 'माडन इन्ट्रोडक्सन टू लाजिक' (1930) ने आधुनिक तकशास्त्र का, विशेषत उसके केम्ब्रिजीय रूप को अधिकाधिक पाठको तक पहुँचाने म काफी योग दान किया। उन्होने मूर रसेल, जानसन, व्हाइटहेड तथा ब्राड से धागे लेकर एक ताना बाना बनाया। उनकी कृति फिलासफी एण्ड द फिजिसिस्ट्स (1937) म उन्होने जीन्स तथा एडिंगटन की परिकल्पनाओं के विरुद्ध साधारण बुद्धि के पक्ष मे काफी कुछ कहा है। फिलोसोफीकल स्टडीज एसेज इन मेमरी आव एल० सूसन स्टेबिंग (1948) म विविध सदम देखें। ई० डी० ब्रानस्टीन मिस स्टेबिंग्स डिरेक्शनल एनलीसिस एण्ड वसिक फक्टस' (एनलिसिस 1934) भी देखें।

अध्याय १६

तर्कसम्मत वस्तुस्थितिवाद

वियना विश्वविद्यालय म आगमनात्मक विज्ञानों के दशन के प्राध्यापक के लिए नवनिर्मित स्थान पर 1895 म मख की नियुक्ति हुई। यह नियुक्ति वियना म रही अनुभववादी परम्परा का एक प्रमाण था और अब एक ऐसा माध्यम था जिसक कारण वह परम्परा सशक्त एव पुष्ट होती थी। 1922 मे वही पद मोरिज श्लिक को प्रदान किया गया जिन्होने इसस पूव ही एक दाशनिक वज्ञानिक के रूप म ख्याति अर्जित करली थी। विशेषत यह ख्याति उन्हें आइन्स्टीन के व्याख्याकार के रूप मे मिली थी। श्लिक के चारो ओर बहुत जल्दी ही विचारको का एक दल सगठित हो गया और उस वियना वृत्त[1] (द वियना सरकिल) का नाम दिया गया। इस वृत्त के अधिकांश सदस्य जो मख के प्रभाव म आकर पहले ही अतत्त्ववादी हो गए थ- या तो वज्ञानिक या फिर गणितज्ञ थे। श्लिक को छोडकर इनमे बहुत कम लोग दाशनिक परम्परा स परिचित थ और न ही वे उसकी कोई चिन्ता ही करते थे। वृत्त म किए गए ट्रक्टेटस के पारायण स या फिर वसमन एव श्लिक द्वारा विट्जिस्टीन के नए सिद्धान्तो से परिचित कराए जाने पर ही इस वग को अपने क्षेत्र से परे की

---

[1] इसके गठन एव बाद के इतिहास क विवरण के लिए देख वी० क्राफ्ट कृत द वीयना सरकिल (1950 अग्रेजी अनुवाद 1953), एव प्रो० न्यूरेथ कृत ले डेवलपमेण्ट दू सरकिल डी वियना एट [illegible] एवनिर दे ला एम्परिसिज्मे लोजीक (एक्चुअलिटीज 1935)। 'वियना सरकिल' नामक मुहावरा 1928 का निर्मित है। वृत्त का प्रोग्राम 1929 मे इस शीर्षक से प्रकाशित हुआ विसेन्स्चेफ्लिशे वेल्टाउफासुग देर वीनर क्रेइस इसके प्रकाशन का प्रमुख माध्यम था एक पत्र अरकेण्टनिस (1930) जिसका 1939-40 के अङ्क मे द जनल आव यूनीफाइड साइन्स नामकरण हो गया। इस वृत्त के विख्यात सदस्यो मे एम० श्लिक, आर० कारनप एफ० वसमैन प्रो० न्यूरेथ एच० फीगल वी० वोन जूहोस एफ० कोफमन एच० हेन, के० मेन्जर के० गोडल बर्लिन की सोसाइटी आव एम्पिरिकल फिलोसोफी के भी ये लोग निकट सम्पक मे रहे थे। इसके सदस्यो मे एच० राइकेनबक थे जो कारनेप के साथ ही अरकेण्टनिस के सह सम्पादक थे तथा एफ० क्राउस डब्लू० ड्यूबिस्लाव के० ग्रेलिग आदि थे। द्रष्टव्य ए० जे० एयर द्वारा रिवोल्यूशन इन फिलोसोफी मे द वियना सरकिल पर लिखी गई टिप्पणी।

विचारधारा की जानकारी होती थी।[1] विट्गेन्स्टीन स्वयं एक वैज्ञानिक थे, एक अतत्ववादी, और आदर के साथ सुने या पढ़े जाने के सुयोग्य अधिकारी थे।

इस वृत्त का मत था कि विट्जन्स्टीन ने अनुभववादियों को विचारों के खतरनाक दर्रे से निकलने का मार्ग बताया था। अनुभववादी उत्सुकता से इस बात की जाँच करते रहे थे कि किस प्रकार गणित की इसी निश्चितता तथा आदर्श अवस्था को अनुभववाद के इस सिद्धान्त से समन्वित किया जा सकता है कि सभी बोधगम्य तर्कवाक्य अनुभव पर आधारित हैं।

बहुत से अनुभववादियों में तो मिल के तर्कशास्त्र का कड़ा विरोध करने की ही क्षमता नहीं थी, जिसके अनुसार गणितीय तर्कवाक्यों को अनुभव का सामान्यीकरण माना गया था।[2] केवल विट्जन्स्टीन की भाँति उनकी व्याख्या तादात्म्यकारी मानकर की जाय तभी उनके लिए ठीक था।[3] अनुभववादी को उनकी मौलिक स्थापनाओं में ज़रा सा संशोधन करना था। अब वह यह कह सकने योग्य था कि तादात्म्यकारी अवस्था को टालकर, सभी बोधगम्य तर्कवाक्य अनुभव पर आश्रित हैं। चूँकि कोई तत्वमार्गी यह स्वीकारने के लिए तैयार नहीं हो सकता कि उसके तर्कवाक्य संसार के विषय में कोई सूचना नहीं देते, उनका यह संशोधन तत्ववाद पर अनुभववादियों की आलोचना का कोई गम्भीर प्रभाव नहीं डालता था और यही बात थी जो वियना वृत्त की रुचि का कारण बनी।

इस वृत्त के सदस्यों के लिए जिन्हें बाद में लॉजिकल पोजिटिविस्ट्स[4] के

---

[1] 1956 तक भी विश्वास के साथ यह नहीं कहा जा सकता था कि विट्जन्स्टीन ने श्लिक एवं वैसमन से क्या मन्त्रणा की थी। विट्जन्स्टीन द्वारा टंकित करवा के प्रेषित कुछ पत्र जो वियनावृत्त की स्थापना से प्रारम्भ होकर उसके विकास तक का संकेत देते हैं अभी तक प्रकाशित नहीं हुए हैं। उनके 1929 में लॉजिकल फार्म पर पढ़े गए उनके शोध निबन्ध से यह स्पष्ट हो जाता है कि विट्जन्स्टीन ट्रैक्टेटस से अभी बहुत आगे नहीं गए थे और जितनी दूर वे गए थे वह दिशा तर्कसम्मत वस्तुस्थितिवाद की ही ओर थी।

[2] संदर्भ के लिए देखें जॉन एण्डरसन कृत एम्पिरिसिज्म (ए॰जे॰पी॰ 1927)

[3] अतत्ववादी गणितज्ञ एच॰ हॉन ने सर्वप्रथम वृत्त का ध्यान ट्रैक्टेटस की ओर खींचा था। उनकी पुस्तकें लॉजिक, मैथेमैटिक, एत कोनोइसांस दे ला रीएलिटी (एक्चुअलिटीज 1935) एवं डी बेदतुंग देर विसेनशैफ्टलिशेन वेल्टाउफसुंग (अर्क 1930) देखें पी॰ फ्रैंक द्वारा हॉन पर लिखा मृत्युलेख (अर्क 1934)

[4] ब्लूमबर्ग एवं फीगल कृत लॉजिकल पोजिटिविज्म (जे॰ पी॰ 1931)। श्लिक इस नाम के स्थान पर कन्सिस्टेण्ट पोजिटिविज्म (संगत अनुभववाद) नाम पसन्द करते थे। देखें जे॰ आर॰ वीनबर्ग कृत एन एग्जामिनेशन ऑव लॉजिकल

नाम से जाना गया । तत्वदर्शन यह बताने का प्रयास मात्र है कि कुछ ऐसी इयत्ताएं हैं जो संभावित अनुभव की पहुंच से परे विद्यमान हैं जैसे कि कांट द्वारा सुझाई गई वस्तु स्वायत्तता (थिंग्स इन देमसेल्व्ज) । इस कारण स्वभावतः ही वे निरूपण के सिद्धान्त (प्रिंसिपल आव वेरीफियेबिलिटी) की ओर आकर्षित हो गए । इस सिद्धान्त के अनुसार किसी तर्कवाक्य का अर्थ उसके निरूपित किये जाने की क्षमता में ही निहित है । इस प्रणाली के उपयोग से उन्हें विच्युतीकरण का वह मार्ग मिल गया जिसमें वे ऐसी सभी इयत्ताओं को अर्थहीन कहकर नकार सकें जो पर्यवेक्षण के क्षेत्र में नहीं आ सकतीं । तत्वदर्शन को भी इसी प्रक्रिया में तत्र अर्थहीन कहकर परित्याज्य मान लिया गया । तत्वदर्शन के विरुद्ध विस्तार में वाद-विवाद करना समय का पूर्ण दुरुपयोग है । यदि एक तत्ववादी यह कहता है कि 'सत्य परमात्म हैं' और दूसरा यह कि सत्य आत्मतत्वों की बहुलता में निहित है, तो अनुभववादी को उनका उत्तर देने के लिए अपने दिमाग को कष्ट देने की आवश्यकता नहीं । उसे तो यही कहना चाहिए– आपके बीच के विवाद को सुलझाने के लिए कौन से संभावित अनुभव की आवश्यकता है ? इस प्रश्न का तत्वदर्शन में कोई उत्तर नहीं है और निरूपण के सिद्धान्त के अनुसार इससे यही अर्थ निकलता है कि उनकी स्थापनाएं बिल्कुल निरर्थक हैं । इस दृष्टि से यह कहना अर्थहीन है कि 'सत्य परमात्म नहीं है या सत्य ही परमात्म है' क्योंकि दोनों में से एक भी स्थापना को अनुभव से निरूपित नहीं किया जा सकता । इस तरह तत्ववादी विवाद अर्थ सार-विहीन हैं ।

निरूपण भी तार्किक वस्तुस्थितिवादियों ने विटजस्टीन के ट्रैक्टेटस से उद्धृत किया था । विटजस्टीन ने निश्चय ही वहां यह लिखा था कि किसी

पोजिटिविज्म (1936) सी० डब्लू० मौरिस कृत लोजिकल पोजिटिविज्म, प्रैग्मेटिज्म एण्ड साइण्टिफिक एम्पिरिसिज्म (एक्चुअलिटीज 1937) जी० बर्गमन कृत द मेटाफिजिक्स आव लोजिकल पोजिटिविज्म (1954) आर० वोन मिसेस कृत पोजिटिविज्म (1939 अंग्रेजी अनुवाद 1951) जे० जोर्गेंसन कृत द डवलपमेण्ट आव लोजिकल एम्पिरिसिज्म (यू०एस० 1951), एल०एस० स्टेबिंग कृत लोजिकल पोजिटिविज्म एण्ड एनालिसिस (पी०बी०ए० 1933) ई० नजल कृत एनालिटिक फिलोसोफी इन युरोप (जे०पी० 1936) डब्लू०एच० वकमीस्टर कृत सेवेन थीसेस आव लोजिकल पोजिटिविज्म क्रिटिकली एग्जामिण्ड (पी०आर० 1937) वी० वान जूहोस कृत प्रिंसिपल्स आव लोजिकल एम्पिरिसिज्म (माइण्ड 1937) जे०ए० पासमूर कृत लोजिकल पोजिटिविज्म (ए०जे०पी० 1943 44 48) एच० फीगल कृत लाजिकल एम्पिरिसिज्म (ट्वेण्टीयथ सेंचुरी फिलोसोफी स० डी० डी० रून्स 1944), डब्लू० टी० स्टेस कृत पोजिटिविज्म (1948 माइण्ड) टी० स्टारर कृत एन एनालिसिस आव लोजिकल पोजिटिविज्म (मथोडोज 1951) ।

तर्कवाक्य को समझने का अर्थ यह जानना है कि यदि वह सत्य है तो किस रूप में। फिर भी वस्तुस्थितियो का वह कदम थाडा बहुत उस उच्चस्तरीय सूक्ति से, जिसमे तर्कवाक्यीय अर्थ का उसकी निरूपण प्रणाली के तादात्म्य से किया गया था, थोडा हटकर था। विटजस्टीन के ही मतानुसार वस्तुस्थितिवादियो ने उनके उस कथन को गलत समझ लिया जो वाद विवाद मे ही उन्होने अधूरा छोड दिया था। उन्हे यह कहता हुआ देखा गया[1] कि मैं कभी कभी यह कहा करता था कि किसी वाक्य को क्यो प्रयोग किया गया है। इसका स्पष्टीकरण प्राप्त करने के लिए यह बहुत अच्छी युक्ति थी कि अपने से ही एक प्रश्न पूछा जाय कि कोई कैसे अमुक कथन का निरूपण कर सकता है? किन्तु किसी शब्द के प्रयोग के सम्बन्ध मे स्पष्टीकरण प्राप्त करने के लिए यह तो केवल एक तरीका ही है। कुछ लोगो ने इस सुझाव को रूढ मानकर निरूपण की प्रबल माग करनी प्रारम्भ कर दी है और उससे ऐसा ध्वनित होता है जैसे कि मै ऐसा करके सार्थकता के सिद्धान्त की स्थापना कर रहा [illegible]।'

इसका उद्गम चाहे जो भी रहा हो, पैस एव पीयरसन के तर्कवाक्य का पुन सगठन करने के अतिरिक्त यह और कुछ नहीं है। निरूपण का सिद्धान्त इसके बाद तो शीघ्र ही तर्कसम्मत वस्तुस्थितिवाद का मूलाधार बन गया। सबसे पहले स्पष्टत इसका प्रयोग एफ० वसमैन द्वारा सन १९३० मे प्रकाशित अपने निबन्ध लोजिस्चे एनालाइसे देस वेहर्स्केनलिक इसबगिफ्स मे किया है। इस निबन्ध के तत्काल पश्चात् ही इसकी सार्थकता इसके स्तर एव इसकी उपयोगिता पर झगडे खडे होने प्रारम्भ हो गए[2]।

---

[1] डी०ए०टी०जी० एव ए०सी०जे० द्वारा लिखे गए अश (एजी०पी० 1951)।

[2] शिलक कृत पोजिटिविज्म एण्ड रीयलिस्मस (1932 अर्क) इस सम्बन्ध का एक अन्य प्रारम्भिक कथन है। डी० शीरिन की टिप्पणी जो इस निबन्ध के साथ फ्रेंच मे किए गए अनुवाद मे प्रस्तुत है, को सिन्थसी (1948) मे देखे। तर्कसम्मत वस्तुस्थितिवाद पर सामान्य रचनाओ का अवलोकन करें सी०आई० लविस कृत एक्सपीरिएन्स एण्ड मीनिंग (पी०आर० 1934) एल० एस० स्टबिंग, ए०ई० होप, रसल कम्यूनिकेशन एण्ड वरीफिकेशन (पी०ए०एस०एस० 1934), एम० श्लिक द प्रिंसिपल आव वरीफाइबिलिटी (अनालिसिस 1934), ई० नजल कृत वरीफाइबिलिटी ट्रुथ एण्ड वेरीफिकेशन (जे०पी० 1934), डब्लू० टी० स्टेस मेटाफिजिक्स एण्ड मीनिंग (माइण्ड 1935), सी०जे० ड्यूकास वरीफिकेशन, वेरीफाइबिलिटी, एण्ड मीनिंगफुलनस (जे०पी० 1936) जी० राइल कृत अनवरीफाइबिलिटी बाई मी (एनालिसिस 1936), ए०सी० एविंग कृत मीनिंगलेसनस (माइण्ड 1937) एम० लजराविज द प्रिंसिपल आव वरीफाइबिलिटी (माइण्ड 1937) एव स्टेस

विवाद के कुछ बिंदुओं का सारांश इस प्रकार दिया जा सकता है—

(1) प्रत्यक्षत निरूपण का सिद्धान्त अपने आप मे न तो आनुभविक सामान्योकरण है और न एक समानार्थक सिद्धान्त ही है। तब इसका स्तर क्या है ?

(2) हम सामान्यत शब्दों या वाक्यों के अर्थ की जांच करते रहते हैं। एक तर्कवाक्य वाक्य मे निहित अर्थ को ही बताता है—कुछ ऐसी स्थिति का नहीं जो साधक है। इसके अतिरिक्त एक तर्कवाक्य को ही हम निरूपित करते हैं उसे सत्य और झूठ सिद्ध करते हैं तब निरूपण का अर्थ के साथ तादात्म्य कैसे सम्भव है ?

(3 तर्कवाक्य अनिरूपणीय या तो इसलिए हो सकते हैं कि हम तक्षण किसी ऐसे मार्ग का निर्धारण नही कर सकते जिससे उन्हें निरूपित किया जाय या फिर भौतिक रूप से उनका निरूपण असम्भव है या फिर तार्किक कारणों से उन्हें निरूपित किये जाने का प्रश्न ही नहीं रहता। इनमें से कौनसी अनिरूपणीय प्रजाति अर्थहीनता लिए हुए है ?

(4) 'निरूपण अस्पष्ट है इसका अर्थ 'सत्य सिद्ध करना है' या फिर सत्य परीक्षित करना है। क्या हम तब यह कहना पड़ेगा कि जब तक ऐसे मार्ग मे बढ़ने *का कोई जरिया न हो जो उसे सत्य सिद्ध कहेगा तब तक तर्कवाक्य निरर्थक ही रहेगा* या फिर इसमें इतनी ही मांग की गई है कि इसकी सचाई की जांच करने का कोई न कोई मार्ग मार्ग होना चाहिए ? इसके अतिरिक्त उपर्युक्त दोनो प्रकार की प्रक्रिया की प्रणाली से क्या तर्कवाक्य की सार्थकता का तादात्म्य है या फिर यह इतना ही बताने के लिए है कि इसमे कोई अर्थ तो है ?

(5) निरूपण का सिद्धान्त अन्तत निकषों पर जाकर टिक जाता है। यदि किसी तर्कवाक्य की सार्थकता उस अवस्था में ही निहित है जो निरूपित कर सकती है तो ये निकष स्वयं तर्कवाक्य नही हो सकते या वैकल्पिक रूप से ये ऐसे तर्कवाक्य होने चाहिए जिनकी सार्थकता उन्ही में अन्तर्निहित हो। फिर ये निरूपण क्या है ?

तर्कसम्मत वस्तुस्थितिवाद का जटिल इतिहास इन विषयों का हल निकालने मे ही जिसकी रचना हो गई, भली भांति इस वृत्त के दो प्रमुख सदस्य श्लिक एवं कारनेप की रचनाएं पढ़कर समझा जा सकता है। या फिर इसके एक मात्र ब्रितानी प्रवर्तक ए० जे० एयर की कृतियां पढ़कर। जैसा हम पहले देख चुके हैं

एण्ड वीक वेरीफिकेशन (माइण्ड 1939) जे० विजडम मेटाफिजिक्स एण्ड वेरीफिकेशन (माइण्ड 1938), आई० बर्लिन वेरीफिकेशन (पी०ए०एस० 1938) डी० मक्निनान एफ० वसवन डबलू सी० नील वेरीफाइबिलिटी (पी०ए०एस० एस० 1945) आर० आई० पी० के 1950 1951 के विशेषांक जे०एल० इवान्स मीनिंग एण्ड वेरीफिकेशन (माइण्ड 1953)।

श्लिक दर्शन के इतिहास से कुछ मात्रा में परिचित थे और वे कभी इस बात को नकारते नहीं हैं, कि दर्शन का भी मूल्य है, किन्तु उसका ज्ञान की शाखा के रूप मे कोई मूल्य नहीं । उनके साथी वस्तुस्थितिवादियो ने इस सम्बन्ध मे काफी भ्रम फैलाया । जब रसेल के पद-चिन्हो पर चलकर उन्होंने एक वैज्ञानिक दर्शन की स्थापना की या फिर उन्होने दर्शन को रूप गुणहीन शब्दो से सजाना उचित समझते हुए लिखा कि यह तर्क का विज्ञान है ।'[1] वे ऐसा सोचकर भूल कर रहे थे कि उनकी स्वयं की रचनाएं परम्परागत दर्शन से असंपृक्त थी । लेकिन एक और भूल जो वे कर रहे थे वह यही, कि कोई भी विज्ञान दर्शन का एवजी हो सकता है । श्लिक विटजिंस्टीन के साथ सहमत होते हुए कहते हैं कि दर्शन एक क्रिया है, सिद्धान्त नहीं । यह सार्थकता खोजने की क्रिया है, इस तरह इसका अपना कोई कथ्य नहीं होते हुए भी हम हमारी धारणाओ को अधिक स्पष्ट रूप मे व्यक्त करने मे सहायता करती है और इस रूप में वह विज्ञान से भी काफी भिन्न है ।

इस स्थिति पर एक प्रकट आपत्ति प्रस्तुत होती है–श्लिक स्वयं दार्शनिक स्थापनाएं करने से नहीं चूक रहे । उदाहरणार्थ निरूपणीय सार्थकता का सिद्धान्त । तब वे इस बात को कैसे नकार सकते हैं कि दर्शन एक ज्ञान की शाखा है ? विटजिंस्टीन इस प्रकार की आलोचना की पूर्वापेक्षा करते हुए स्वीकारते हैं कि ट्रैक्टेटस के तर्कवाक्य जहां तक वे दार्शनिक हैं, अर्थहीन हैं । तो भी उनकी अर्थहीनता एक विचित्र प्रकार की है–तत्ववाद के अन्धकार-पूर्ण अनर्थ से प्रकाशित करने मात्र की ही निरर्थकता उसे क्यों न मानें । श्लिक इस तरह के अन्तर को स्वीकारना नहीं चाहते । उनके अनुसार निरूपण का सिद्धान्त एक स्वयंसिद्ध स्थिति है । यह कोई नवीन बात नहीं कहता । हमने जो सदैव जाना है उसकी ओर हमारा ध्यान आकर्षित करने के अतिरिक्त और यह कुछ नहीं करता । इसके कोई आश्चर्य नहीं कि उनके साथी वस्तुस्थितिवादियों को न तो श्लिक के और न विटजिंस्टीन के निष्कर्षों से कोई संतोष हुआ । एक स्वयंसिद्ध भी एक सत्य है, तथा निरर्थकता प्रकाशित नहीं कर सकती ऐसा इन लोगों का मत था । इसलिए उन्होंने दार्शनिक सत्यों के वैकल्पिक विवरण की बात सोचनी प्रारम्भ करदी ।

प्रकट रूप से श्लिक द्वारा सार्थकता की खोज एवं सत्य की खोज के भेद असमीचीन है । सार्थकता की खोज करना ही सच्चे तर्कवाक्य को उपलब्ध करना

---

[1] देखें उनकी कृति ल इकोले दे वियने एत ला फिलोसोफी ट्रैडीशनेल्ले (एक्चुअलिटीज 1937), द्रष्टव्य एफ० वसमैन द्वारा श्लिक के ग्रन्थ गेसामेल्टे औफसाजे 1926–36 मे लिखा गया आमुख तथा एच राइकनबक द्वारा मृत्युलेख (प्रक० 1936), पी० फ्रैंक (प्रक० 1937) एवं एच० फीगल (प्रक० 1639, ।

है। एक ऐसे तर्कवाक्य का जिसमें तर्कवाक्य के सही-सही अर्थ का भी पता लगता है किन्तु इन खोजों को तर्कवाक्य के रूप में अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता। यदि कोई हम से पूछे कि कन्दरावासी (ट्रोग्लोडाइट) का क्या अर्थ है हम निस्सन्देह उसे उत्तर देंगे गुहावासी। किन्तु यह उत्तर केवल प्रारम्भिक उत्तर होगा, क्योंकि इससे फिर एक प्रश्न उत्पन्न हो जाता है वह यह ठीक है किन्तु गुहावासी का क्या अर्थ है? किसी अभिव्यक्ति का अन्तरिम अर्थ प्रकटाने के लिए या ऐसी अभिव्यंजना करने के लिए जो आगे के सभी प्रश्नों का मुँह बन्द कर दे हमें शब्दों से बिल्कुल परे जाना होगा। तब हमें केवल सीधे रूप में हाव भावों से वह सब बताना होगा जिसका हमारी अभिव्यक्ति से सम्बन्ध है।

हमें यह भी देखना है कि यद्यपि निरूपण सिद्धान्त तर्कवाक्य में सार्थकता खोजने की विधि है तो भी श्लिक के शब्द को परिभाषित करने की प्रणाली क्या है? श्लिक अभी भी यह बताना चाहते हैं कि कैसे एक शब्द की सार्थकता तर्कवाक्य की सार्थकता से सम्बद्ध है। फैक्ट्स एण्ड प्रोपोज़ीशन्स (एनालिसिस 1935) में वे यही चर्चा करते हैं। यहाँ वे तर्कवाक्य की निम्नांकित परिभाषा देते हैं—ध्वनियों या अन्य प्रतीकों की शृंखला (वाक्य), इनके साथ जब इन्हीं से सम्बन्धित तार्किक नियमों का प्रयोग हो। ये नियम हों जब प्रत्यक्षसिद्ध (डाइक्टिक) परिभाषाओं को प्राप्त कर लेते हैं तब वे किसी भी तर्कवाक्य में सार्थकता प्रकटा देते हैं।

किन्तु अब हमें यह पूछने का पूर्ण अधिकार हो जाता है कि इस तरह परिभाषित तर्कवाक्यों का निरूपण कैसे सम्भव होगा? न तो कोई प्रतीक न कोई नियम इस सम्बन्ध में कभी मर्यादित होने की अवस्था में आएंगे। इसी तरह प्रतीकों के संयोजक तथा नियम किस तरह नियमों को अर्थ बता दे सकेंगे?

कदाचित् ऐसी ही कठिनाइयों के फलस्वरूप श्लिक को मीनिंग एण्ड वेरीफिकेशन (पी॰ आर॰ 1936) में लिखना पड़ा, केवल वाक्यों की, न कि तर्कवाक्यों की अपनी कोई सार्थकता होती है। नियम उनके अनुसार, अब प्रतीकों की अर्थसीमाएँ हैं प्रतीकों से संयुक्त नियमों की नहीं। इसके बावजूद भी उन्हें यह मानने से कोई नहीं रोक सका (यह बात उन्होंने इस के बाद के ही पृष्ठ में लिखी) कि मूल रूप से निरूपण का सिद्धान्त तर्कवाक्यीय आकार का ही है। श्लिक के दर्शन में परम्परागत वस्तुस्थितिवाद जिसमें, निरूपण की ही सार्थकता है—और नव विचारवादियों में जिन्होंने वाक्य-प्रयोग के साथ सार्थकता का तादात्म्य स्थापित किया था एक सुलझाया न जा सकने वाला संघर्ष तथा भेद देखा जा सकता है।

यह द्वन्द्वात्मकता अनवेरीफाइबिलिटी नामक उनके निबन्ध में काफी स्पष्ट रूप से सामने आई है। उन्नीसवीं शती के वस्तुस्थितिवादियों के समक्ष अर्थहीनता एक

ऐसी अवस्था थी, जिसका परीक्षण विज्ञान द्वारा किया जाना सम्भव नहीं था। इस परिभाषा के आधार पर उन्होंने बहुत से वैज्ञानिकों की उन धारणाओं को निरर्थक बताया है जिन्हें आधुनिक वैज्ञानिक सत्य के रूप में स्वीकृत मानकर चल रहे थे। उदाहरण के लिए तारों की रासायनिक रचना के विषय में बताने वाले बहुत से तर्कवाक्यों को इस तरह अर्थहीन करार दे दिया गया है। श्लिक अब अर्थहीनता की ऐसी परिभाषा प्रस्तुत करना चाहते हैं कि अमुक तर्कवाक्य की सार्थकता प्रस्तुत समय की वैज्ञानिक परिधि से बाहर की वस्तु हो गयी है। एक तर्कवाक्य उसी समय निरर्थक है जब 'सैद्धान्तिक रूप से भी अनिरूपणीय हो।' इसके उद्धरण में वे एक उदाहरण प्रस्तुत करते हैं 'बालक नंगा है किन्तु वह एक लम्बा नाइटगाउन पहने है।' श्लिक के अनुसार ऐसा कहना अर्थहीन है, क्योंकि नंगा शब्द का प्रयोग करने से नियम हम इस बात की इजाजत नहीं देते कि हम उन व्यक्तियों के साथ जो लम्बा गाउन पहने हों, इसका प्रयोग करें। जब हम तत्त्ववादी कथनों की जाँच करने लग जाते हैं तो हमें पता लगता कि उनकी अर्थहीनता कुछ ऐसे ही प्रकारों के कारण हैं। वे तार्किक व्याकरण के नियमों का उल्लंघन करते हैं। इसके वैकल्पिक रूप में विटजिंस्टीन ने भी इस स्थिति को ट्रैक्टेटस में यों प्रस्तुत किया—'हम देखते हैं कि तत्त्ववादियों ने अपनी धारणाओं में प्रयुक्त कुछ चिह्नों को कोई अर्थ नहीं दिया। दोनों ही स्थिति से एक तत्त्ववादी की अभिव्यक्ति किसी न किसी रूप में नियमों से अयुक्त रह गई है, इसलिए सैद्धान्तिक रूप से निरूपण योग्य नहीं।'

इससे स्वाभाविक रूप से यही निष्कर्ष निकला कि निरूपण की माँग विशुद्ध तार्किक आधार पर ही की जा सकती है अर्थात् उसका निर्धारण उन नियमों से सम्भव है जो प्रतीकों को अनुशासित करते हैं, और इस तरह बना निरूपण योग्य एक वाक्य हमारे समक्ष प्रस्तुत करते हैं—श्लिक कभी कभी इतना ही कहते हैं। वे लिखते हैं कि निरूपणीयता जो किसी वाक्य को अर्थवान करने का पर्याप्त आधार है वह तार्किक क्रम की ही एक सम्भावना मात्र है। इसकी सृष्टि ऐसे वाक्यों के रचने में निहित है जो पदों की व्याख्या या परिभाषा प्रस्तुत कर देने वाले पदों से निर्मित हो। निरूपण तार्किक दृष्टि से वहीं असम्भव है जहाँ आपने ऐसे वाक्यों की रचना बिना इन नियमों का पालन किए की है और अब जिनके कारण निरूपण असम्भव हो गया है।

इससे तो ऐसा लगता है कि अब पूर्णतः अनुभवजन्य वस्तुस्थितिवाद की सार्थकता के निकष का परित्याग कर दिया गया हो। किन्तु श्लिक यह नहीं मानते कि उनका विचार परिवर्तन हो गया है। भाषाई नियम मूलतः प्रकट रूप से परिभाषित किए जाने वाले अनुभवों के आधार पर ही बने हैं। सार्थकता खोजने के लिए हमें संसार को देखना होगा। तर्क एवं अनुभव में कोई विरोधाभास नहीं है—और न

यह जरूरी ही है कि एक तार्किक ही अनुभववादी हो सकता है। यदि वह यह समझना चाहता है, कि वह क्या कर रहा है तो उसे दोनो म से एक होना होगा। यह निष्कर्ष, कि सार्थकता की खोज एक साथ ही तार्किक पर्वेषण भी है तथा अनुभववादी जांच पड़ताल भी किसी को भी सन्तुष्ट नहीं कर सके।

किसी भी स्थिति म जब श्लिक ने अनुभव' सबधी कोई अपनी मान्यता प्रस्तुत की गम्भीर मुश्किलें उठ खड़ी हुई हैं। इन मुश्किलो को समझने के लिए हमें श्लिक के साथ उनके मौलिक निरूपण सिद्धा त की ओर लौटना होगा, जहा पर उन्होंने निरूपण का अर्थात् सार्थकता का अनुभव मे बदले जाने योग्य स्थिति [illegible] तादात्म्य रखा है। ए न्यू फिलोसोफी ऑव एक्स्पीरिएन्स[1] म उन्होंने लिखा है, कि तर्कवाक्य को समझने के लिए हम सही रूप म उन विशिष्ट परिस्थितियो का बताना होगा जो उसे सत्य बताने का कारण रही हैं तथा उन दूसरी विशिष्ट परिस्थितियो का भी जो उसे झूठा बना देंगी। परिस्थितियों का अर्थ है अनुभव के तथ्य और इसी तरह ये अनुभव किसी तर्कवाक्य के सत्यासत्य की विवेचना कर सकते हैं। अनुभव तर्कवाक्यो का निरूपण है और इसीलिए किसी समस्या के हल करने की कसौटी उसे सम्भावित अनुभवो म बदला जा सकना ही है।

मैश की ही भांति श्लिक यहा पर उत्तर-योग्य एव अनुत्तर-योग्य प्रश्नों के भेद का वर्णन करते है। अनुत्तर-योग्य प्रश्न जैसे 'जीवन की सार्थकता क्या है इस तथ्य पर आधारित हैं कि उनके सम्बन्ध म प्रस्तुत तथाकथित हलो म से किसी एक को उत्तरयोग्य मानने का कोई औचित्य नहीं है और न ऐसे हलो को अनुभव म परख कर देखा जाना ही सभव है।

अब श्लिक के लिए अनुभव मन की ऐसी अवस्था है—जो मूलत मुझी को प्राप्त हो ऐसा नहीं क्योंकि यह भी अनुभव से निर्मित हुआ है। किन्तु अब यह विश्लेषण करने से मुझ से सबद्ध लगने लगा है। यह कहना निरर्थक है कि दूसरे लोगो को पास मन है या नहीं—यह प्रश्न उत्तर योग्य नहीं है, क्योंकि दूसरा के मन को सैद्धान्तिक रूप से मेरे अनुभवों मे रूपायित किया जाना असभव है। इस तरह अनुभवजन्य निरूपणीयता उस मानसिक अवस्था का निरूपण ही है जिसे अकेला [illegible] अनुभव कर सकता हू। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि सैद्धान्तिक रूप से मेरे अलावा किसी के द्वारा भी यह निर्धारित करने का कोई आधार नहीं है, कि कोई तर्कवाक्य निरूपणीय है या अनिरूपणीय। चू कि सार्थकता एव निरूपणीयता म तादात्म्य है इस लिए हम स्पष्टत ही इस अजीब निष्कर्ष पर पहुचते हैं कि

---

[1] पब्लिकेशन्स इन फिलोसोफी स० द कॉलेज ऑफ द पैसेफिक (1932)।

केवल मैं ही यह जान सकता हूँ कि एक तकवाक्य का क्या अथ है? वास्तव म किसी और के विषय म यह कहना कि 'वह जानता है कि अमुक तकवाक्य का क्या अथ है,' निरथक है।

श्लिक इस निष्कष से बचने क प्रयास मे रसेल–पोइनकेयर के इस दृष्टिकोण का समथन करते हैं कि वज्ञानिक ज्ञान सदव ही सरचना का ज्ञान है जो अनुभव म जीने या उसे भोगने स भिन्न है। उदाहरण के लिए जब हम हरे रग की सवदना का उपभोग करते हैं, तो श्लिक क अनुसार यह अनुभव निजी होता है। दूसरे लोग भी निस्सदेह उस वक्त हरे शब्द का प्रयोग करते हैं जब वे पत्ती को देखते हैं। इसस यह निष्कष नहीं निकलता, कि उन्हें भी वही अनुभव हुआ। उनके अनुभव की विषय वस्तु वही है। जितना हम अधिक से अधिक जान सकते हैं और जितना एक वैज्ञानिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए अधिक स अधिक हमारे जानने योग्य है, यही है कि सरचना-सबध उनके अनुभवो एव हमारे अनुभवो क बीच मेल खाते हैं। भौतिक–शास्त्रियों के लिए इस दृष्टिकोण स 'हरा' किसी अनुभव का नाम न होकर सबधो से जुडी प्रणाली के एक अभिधान का नाम है जसे कि रगीन चाट। विकसित भौतिकी म हरा' जसे शब्द की जगह में पूणत गणितीय अभिव्यक्तियां रखी जा सकती हैं। इस तरह विशुद्ध भौतिकी के तकवाक्य पूणत आकारी हैं।[1]

किन्तु इन तकवाक्यो का क्या अथ है? एक ओर श्लिक को हम यह कहते हुए देखते हैं कि सरचनात्मक होने के कारण उसका अथ सरचना के अलावा और कुछ नहीं हो सकता अर्थात ऐसा कुछ नहीं हो सकता जो सावजनीन हो एव प्रत्यात्म–निष्ठ (इटरसब्जेक्टिव) हो। इसके साथ ही वे इस बात से अनभिज्ञ नहीं है कि बिना विषय वस्तु के आकार खोखला है। इस तरह हम उन्हें यह मानते हुए देखते हैं कि वज्ञानिक प्रणाली का खोखला आकार, एक विषय वस्तु स भरा जाना आवश्यक है। इससे विज्ञान वास्तविक ज्ञान से सम्बन्ध सही विज्ञान हो सकेगा और यह सब पयवेक्षण या अनुभव से ही सम्भव होगा। वास्तविक ज्ञान को गणितीय समरूपताओं से परे किसी न किसी रूप मे विषय वस्तु स जुडना होगा क्योंकि वह निरतर उनका केवल सदभ देकर नहीं रह सकता।

ऐसी विषय वस्तुए असम्प्रेषणीय एव निजी हैं। प्रत्यक दशन उसम अपनी विषय वस्तु भरता है और इस तरह अपने प्रतीको को अद्वितीय अथ देता है और सून आकारो को इस प्रकार भरा जाना उसी प्रकार है जिस प्रकार कोई बालक

---

[1] द्रष्टव्य 1932 में लदन म श्लिक द्वारा फाम एण्ड कन्टेण्ट विषय पर दिए गए भाषण, जिन्हे श्लिक न तो प्रकाशित नहीं करवाया, किन्तु जो गेसामेल्टे आफसाजे मे प्रकाशित हो गए। मूलरूप स अपनी पूव विटजिस्टोनकालीन रचना आलेमैने अर्केण्टनिस्लेहर (1911)।

रेखाओ से खिचे किसी चित्र मे रग भरता है। इससे लगता है कि वनानिक कथनों की अतरिम साथकता भी अन्तत अबूझ है। एक वस्तुस्थितिवादी क लिए यह निष्कष निकालना विचित्र ही हो सकता है। अब श्लिक के तत्वदशन को यह परिभाषा कि वह आकार स परे विषय की ओर जाने का माग है और उनके द्वारा विषयवस्तु पर किया गया विमश यह सब उनके साथी वस्तु स्थितिवादियो की दृष्टि म इसलिए खण्डन योग्य है क्योकि यह तत्ववादी है।

कारनेप के इस निश्चय ने ही कि व रूप विषय के इस द्वद का निवारण कर दग उनके दशन क विकास म बडी सहायता की है। सवप्रथम लोजिकल कस्ट्रक्शन आव द वल्ड (1901)[1] नामक ग्रथ म उन्होने श्लिक के सिद्धान्त का अख्तियार किया है इसके बावजूद भी कि स्वय उनकी दाशनिक विचारधारा श्लिक से भिन्न अनौपचा[illegible]। श्लिक अपने आपको सुकरात का शिष्य ही मानते थे तथा उनकी शली एक प्रणाली–निर्मायक भाक[illegible]साहित्यिक थी। कारनप, जो फ्रेग के शिष्य थ, इसक विपरीत [illegible] तथा उन थोडे से समसामयिक विचारको म स है, जिहोने दाशनिक उद्देश्य की पूर्ति के लि[illegible] [illegible] प्रतीकात्मक तक[illegible]उपयोग [illegible] किया।

इस तरह व आदिम प्रत्ययो' की एक ऐसी सृष्टि की रचना करना चाहते हैं जिसे आदिम सम्बन्धबोधको से जोडा जा सके। अपने आरम्भिक प्रयत्नो के रूप म वे अनुभव प्रवाह मे स्वत आने वाली अतर्धाराओ (क्रास सेक्श स) का चुनाव करते हैं रसल की भाति केन्द्रीय सवेदन का नही। आदिम होने के कारण ये अतर्धाराए आगे और किसी विश्लेषण का स्वीकार नही करती। इस अत प्रवाह स्थिति म हम मूलभूत तत्वो के रूप म जिन्हे देखते है (जस रग आदि) उनका निर्माण आदिम सम्बन्धो स ही होना चाहिए। यह सम्बन्ध समानता के अभिज्ञान' का सम्बन्ध हो सकता है।

---

[1] इस पुस्तक का अग्रेजी अनुवाद नही हुआ है–और इगलण्ड म इसका प्रभाव भी नगण्य रहा है। अमरीका म फिर भी यह पुस्तक नेल्सन गुडमैन की प्रेरक रही जिनके ग्रन्थ द स्ट्रक्चर आव एपीयरेन्स (1951) म कारनप की पुस्तक की बडी ही सुकर एव अच्छी विवेचना है। गुडमन द्वारा स्वय एक रचनात्मक दशन के निर्माण के लिए किये गये प्रयास के सम्बन्ध म देखें एम० ड्यूमेट द्वारा माइण्ड 1955 मे की गई आलोचनात्मक टिप्पणी। जी० वगमन कृत द टाइम्स आव लिग्विस्टिक फिलोसोफी (आर० एम० 1952) एव द मैटाफिजिक्स आव लोजिकल पोजिटिविज्म (1954) वी० लवी एव एच० वाग द्वारा गुडमन की यक्तिवादी धारणा पर टिप्पणी एव सी० जी० हम्पेल की टिप्पणी (पी० आर० 1957 मे) देखें।

तकनीकी क्रियाओं का अन्वेषण इस उद्देश्य के लिए बहुत सी चातुर्यपूर्ण करके कारनप अनुभवाशों को गुणात्मक वर्गों से 'समानता के अभिज्ञान' के सिद्धा त के आधार पर जोड देते हैं। तब वे ही उनके मतानुसार बोध-वग (स म क्लास) मे बदल जाता हैं। यदि समानता की शृ खला से आबद्ध हो तो दो गुण-वग एक ही बोध-वग की जाति मे आते हैं। उदाहरणाथ कोई दो रगो को किसी माध्यम से एक रूप दिया जा सकता है, जबकि एक रग एव एक स्वर जो परस्पर इस तरह सम्बद्ध नही हैं, दो विभिन्न वर्गों के हैं। बोध-वग, सवेदन क्षेत्र' के ही अग हैं और कारनैप के अनुसार उनकी परिभाषा आयामो पदो म की जा सकती है। 'श्रवण सवेन्न क्षेत्र कवल द्वयायामी चाक्षुप सवेदन क्षेत्र' पचायामी बोधवर्ग है। इसी प्रकार गुणो की परिभाषा भी पूणत आकारी एव सरचनात्मक बोधवग है। 'लाल रग को ऐसे समानधर्मी वग के रूप म परि तरीक से की जा सकती है। जो पचायामी प्रणाली म कही न कही, कोई स्थान भाषित किया जा सकता है कारनप तब सामान्य भाषा म इसकी व्याख्या करते हुए एक ऐसी प्रणाली रखता ही है। निर्मित करते हैं जिसके जरिए वस्तुए गुणो से अलग होने पर भी आकार रूप म निर्मित मानी जा सकती हैं जबकि पुस्तक का यह भाग केवल मात्र एक खाका है।

कारनेप की आकारी रचना बहुत सी कठिनाइयो स भरी है। यही एक कारण है कि व आफबाऊ म घोषित अपनी योजना का कभी समापन नही कर पाए। इसका मूलभूत कारण यह है कि वह इस पुस्तक की मूल स्थापना से ही असतुष्ट थे। विज्ञान सम्बन्धी ज्ञान का सामान्य जगत् कभी भी निजी अनुभवो के अन्त प्रभावो से निर्मित नही हो सकता। इस तरह तकसम्मत वस्तुस्थितिवाद के प्रारम्भिक सूत्रो को अमान्य करके वे इस वृत्त के प्रगतिशील सदस्य एव तत्वदशन के प्रबल भन्जक ओटो न्यूरेथ से काफी प्रभावित थ।

श्लिक के लॉक के स्थान पर बकल को भाग करके न्यूरेथ ने यह कहा कि वाक्यो की तुलना केवल वाक्यो स ही हो सकती हैं अव्यक्त यथाथ[1] स बिल्कुल नही

---

[1] श्लिक एव न्यूरथ के बीच रहे सुवाद के लिए देखें एक्चुअलिटीज (1935) इसमे श्लिक की उत्तर देख फन्दोम त दर एरेकेत्तनिस नामक रचना का फ्रेंच अनुवाद है। यह एक ऐसी रचना थी जिसने न्यूरथ को विशेषत उनके विरुद्ध उग्र बनाया। देखें फक्टस एण्ड प्रोपोजीश म। तथा श्लिक के निबध सुर लस को स्टेटेशन। न्यूरथ के उत्तर के लिए देखें ले डेवलेपण्ट डू सरकिल डे वियने'। जी० सी० हैम्पेल द्वारा की गई श्लिक की आलोचना 'द लोजिकल पोजिटिविस्ट थ्योरी आव ट्रूथ' नामक निबध मे (एनालिसिस 1955) एव वी० वान जुहास कत एम्पिरिसिज्म एण्ड फिजिकलिज्म' (एनालिसिस 1955) यह वादकी रचना अधिक रूढ़िवादी वस्तुस्थिति वादियो की न्यूरथ के नवान्वेषणो के प्रति एक प्रतिक्रिया व्यक्त करती हैं।

प्रब लगता है कि निरूपण परस्पर वाक्यो क बीच रहे सम्बन्धो के जरिय ही सभव था न कि अनुभव एव वाक्यो के पारस्परिक सम्बन्धो के जरिए । वाक्यो को प्रधिकृत वाक्यो के माध्यम से निरूपित किया जाना है । ऐसे वाक्यो का, यूरेथ के सुझावानुसार बिल्कुल प्राकारी स्तर का माना जा सकता है और उन्हे ऐस सरचनात्मक रूपो म रखा जा सकता है । यह बात उन्होन अपने निबन्ध प्रोटोकोल साज (प्रक० 1922) मे लिखी । जस प्रोटो की रिपोट 3 17 सायकाल प्रोटा के भाषण सम्बन्धी विचार 3 16 सायकाल व 3 15 मिनट पर प्रोटो अपने कमरे मे थे तथा वहा पर उन्होने एक मेज देखी थी । प्रधिकृत वाक्य प्रसशोधनीय नही है यह मानना कि ऐसे प्रश्नरहित प्रधिकृत प्रामाणिकी या मूलवाक्यो का रचा जाना सम्भव है, तत्ववादी प्रोज मे अन्तरिम स्थापनायें करने का स्वप्न देखना है ।

श्लिक ने यह माना था कि सभी वैज्ञानिक तकवाक्य सशोधन योग्य हैं । इससे यह प्रथ निकला कि विज्ञान की प्रसशोधनीय धारणाए तकवाक्य नहीं हैं किन्तु वे अनुभव के साथ सीधे अ-क्रियापदी (नान वर्बेलाइजेबल) सपक (कान्स्टटेशन्स) हैं । अव्यक्त को तत्ववादी मानकर परित्यक्त करते हुए किन्तु श्लिक के इस मत को स्वीकारते हुए कि अनुभववादी कथन सदव ही सशोधन योग्य है, यूरथ यह मानने को बाध्य थे कि प्रधिकृत कथन इस मामल म अन्य सभी अनुभववादी कथनो के ही समानान्तर हैं । यदि कोई नया वाक्य हमारे समक्ष प्रस्तुत किया जाय तो हम उसकी तुलना उस प्रणाली म करते हैं जिससे हमारा सबध है' हम उस प्रणाली का परीक्षण यह देखने के लिए भी करते हैं, कि नया वाक्य उसके अनुकूल है या नही । यदि नया वाक्य इस प्रणाली के विरोधाभास मे खडा हो जाय तो हम उसे अप्रयोज्य (इन एप्लीकेबल) या दोषयुक्त मानकर त्याग देते हैं अन्यथा हम उस पहल स्वीकार लते है फिर प्रणाली को बदल देते हैं ताकि यह उस समय के बाद स्वत सगत रह सके जब नया वाक्य उससे सयुक्त हो । इस प्रकार न्यूरेथ द्वारा प्रस्तुत तत्वदशन पर प्रहार उन्हे लौटकर सत्य के समवायी सिद्धान्त की ओर प्रवृत्त कर देता है जिससे हम पूव परिचित हैं और जिसे हमन परम-प्रत्ययवादियो द्वारा उपयोग म लाये जाते हुए देखा है । इसमे आश्चय नही कि उनके लिए भी पारवतन (ट्रा सेन्डन्स) एक महान शत्रु था ।[1]

---

[1] नोट करें न्यूरथ के कथनो एव जम्स क सत्य के सिद्धान्त में एकरूपता (अध्याय 5) । अमरीका म तार्किक वस्तुस्थितिवाद सहजता से वातावरणानुकूल हो गया । दूसरी दशाब्दी के उत्तराश म उन्हे वहा भाषण के लिए निमन्त्रण दिया गया था तत्पश्चात् बहुत से प्रमुख वस्तुस्थितिवादी (कारनप, बगमन, फीग्ल एव फ्रेंक) जो अमरीका मे ही बस गए खास कर उस समय जब जमनी एव आस्ट्रिया

न्यूरेथ के अधिकत वाक्य प्रत्यक्षीकरण की क्रियाओ से भी सदर्भित हैं, जिनकी व्यवहारवादियो की भांति जीवशास्त्र प्रक्रिया के जरिए व्याख्या की जानी चाहिए। यही कारण है कि वास्तव मे न्यूरेथ के अधिकत वाक्य प्रत्यक्षीकरण की क्रियाओ का सबध सार्वजनिक रूप से पहचाने जा सकने वाले प्रसिद्ध व्यक्तियो के साथ जोडते हैं आत्मपरक ज्ञानमीमासा के 'मैं' से नही। इनसे उन्हे यह आशा है कि वे पूर्णत सभी दुर्गम अनुभवो के मदम को मेट देंगे। उनके हाथो मे तर्कसम्मत वस्तुस्थितिवाद व्यवहारवाद के साथ साथ अपना गठबन्धन कर लेता है। अनुभव सबधी सभी कथन उनके अनुसार, भौतिक शास्त्रीय भाषा के माध्यम से अभिव्यक्ति किये जा सकते हैं। अर्थात् दिक् एव काल मे होने वाली प्रक्रियाओ का मदम देकर यह सब किया जा सकता है। यही न्यूरेथ के भौतिकतावाद (फिजिकलिज्म) का सार है जो उनके विज्ञान की एकता पर किये गये शोध से काफी सबधित है। चूकि सभी अनुभववादी कथनो को भौतिकी की भाषा मे व्यक्त किया जा सकता है अत जो इस प्रकार व्यक्त न किए जा सकें वे या तो अर्थहीन वाक्य हैं या पुनरुक्तियां। आध्यात्मिक विज्ञान का कोई ऐसा स्थान नही है, जिसमे उसे प्रकृति विज्ञानो की प्रतिस्पर्द्धा मे खडा किया जा सके। सभी विज्ञान समान रूप से प्राकृतिक हैं और इसी कारण एकता मे बंधे हैं[1]।

मे विचारको पर अत्याचार किये जाने शुरू हो गए। सी० डब्लू० मौरिस ने खास तौर पर अपने आपको अर्थक्रियावाद एव वस्तुस्थितिवाद के बीच मे सम्पर्क अधिकारी का काम करने के लिए सुपुर्द कर दिया था। द्रष्टव्य लोजिकल पोजिटिविज्म प्राग्मेटिज्म एण्ड साइण्टिफिक एम्पिरिसिज्म (एक्चुअलिटीज 1937)।

[1] प्राकृतिक एव आध्यात्मिक विज्ञानो मे रहा भेद जैसा हम पहले देख चुके है-(अध्याय 4, नोट) योरप महाद्वीप मे व्यापक रूप से स्वीकृति पा चुका था, चाहे इगलण्ड मे इसका थोडा बहुत भी प्रभाव नही पडा हो। प्रशिक्षण से समाजशास्त्री होने के कारण न्यूरथ इस मत के विरुद्ध लडने को तैयार थे कि समाजशास्त्र अपनी प्रकृति से ही अनुभववादी जाच पर आश्रित नही है। विज्ञानो की एकता की धारणा उनके हृदय के बहुत करीब थी। इसके नाम से उन्होने काग्रेसो को सगठित किया जिनमे से पाच की रिपोर्ट 1934 से 40 तक के एर्कन्तनिस के अको मे छपी। वे एन्साइक्लोपेडिया आव यूनीफाइड साइन्स (1938) के प्रमुख सम्पादक थे। उनके दार्शनिक महत्व की बात पर अभी विस्तार से चर्चा नही हुई है। हलचल करना ही उनकी किले बन्दी थी। देखें टाउल्मिन द्वारा न्यूरेथ के लेख ले डवेलपमेण्ट ड सर्किल डे वियने की भूमिका, एच० एम० केलन द्वारा लिखित मृत्युलेख पी० पी० आर० (1946), डे० लेयड द्वारा चेम्बर्स एनसाइक्लोपेडिया (1950) मे न्यूरथ पर लिखा अश। भौतिकवातावाद के लिए देखें सी० ए० नेस कृत फिजिकलिज्म (पी० ए० एस० 1936)।

न्यूरथ के नवान्वेषणों ने इसी वृत्त में ही काफी हलचल उत्पन्न कर दी, किन्तु कारनप के रूप में उन्हें एक शक्तिशाली सहयोगी मिला, चाहे कारनप ने उनकी आलोचना ही क्यों न की। कारनप ने न्यूरथ का भौतिकतावाद तथा विज्ञान की एकता का सिद्धान्त स्वीकार किया, चाहे अधिकृत कथनों के विषय में उनकी राय उनसे कुछ भिन्न रही हो। द यूनिटी आव साइन्स[1] में जिसका न्यूरथ ने प्रोटोकोलसा लिखकर उत्तर दिया था, उन्होंने अधिकृत कथनों की परिभाषा ऐसे वाक्यों से की थी जो प्रस्तुत का संदर्भ देते हों या प्रस्तुत अनुभव या घटना को सीधा व्यक्त करते हों। या फिर (आकारी रूप में ही) ऐसे कथनों के रूप में जिनके औचित्य की आवश्यकता न हो और जो विज्ञान के शेष कथनों के लिए स्थापकों का कार्य कर सकें। इस तरह वे असंशोधनीय स्थापक वाक्य हो जाते हैं जिन्हें न्यूरथ ने तत्ववादी कहकर खण्डित किया है। इसके अतिरिक्त कारनप अधिकृत कथनों के सही रूप के विषय में अनिश्चित हैं। ता भी जिनका वे प्रचार करते हैं, उनमें से एक भी संभावना किसी णक का संदर्भ नहीं देती। अधिकृत कथन उनकी दृष्टि में अनुभव को रिकार्ड करते हैं किन्तु किसी अनुभोक्ता का नाम नहीं देते।

कारनप का अधिकृत कथनों का सिद्धान्त द यूनिटी आव साइंस के लिए पर्याप्त है। प्रत्येक अधिकृत वाक्य एक निजी अनुभव का रिकार्ड करना मात्र है। तब फिर कैसे ये वाक्य सार्वजनीन स्थापनाओं का काम करेंगे एवं अंततः सत्यापनीय वाक्यों के विज्ञान का आधार कैसे सिद्ध होगा इस समस्या को हल करने के प्रयत्न में वे आरम्भ से ही यह मान कर चलते हैं कि विज्ञान में एकत्व है और सभी अनुभववादी कथनों को एक भाषा में व्यक्त किया जा सकता है। सब मामलों की अवस्थाएं एक ही प्रकार की हैं और उन्हें एक ही प्रणाली से जाना जाता है। स्पष्टतः किसी ने भी कभी इस बात से इंकार नहीं किया है कि सभी अनुभववादी कथनों को एक भाषा में व्यक्त किया जा सकता है (जैसे अंग्रेजी में)। किन्तु कारनप की रचनाओं में भाषा का तब एक दूसरा भिन्न अर्थ है। इस अर्थ में कि अर्थशास्त्र की भाषा भौतिकी की भाषा से भिन्न है।

एक भाषा इस तथ्य से बनी है, कि उसका शब्दभण्डार पर्याप्त है। उसमें आदिम प्रत्ययों के समूह होते हैं या फिर मूलभूत धारणाओं के। एक वाक्यसंघटना अनुवाद करने के निश्चित नियम एक तरह के वाक्यों को दूसरी तरह के वाक्यों में बदलने के नियम (चाहे उस भाषा में ही हो या उसके बाहर की किसी भाषा में)

---

[1] सर्वप्रथम (अंक०—1932) में प्रकाशित उसका डी फिजिकालिशे स्प्राखेअल्स यूनिवर्सल स्प्राखे देर विस सखेपट शीर्षक का लेख अंग्रेजी अनुवाद 1934 में साइके मिनिएचर के रूप में।

आदि होते हैं। एक भाषा में व्यक्त किए जा सकते हैं का यही अर्थ हुआ कि आधार-भूत अभिव्यक्तियों की एक निश्चित इकाई है, जिससे सभी अन्य प्रकार की अभिव्यक्तियों का अनूदित किया जा सकता है और अनुवाद की यह विधि एक ही तरह की है जिसका प्रयोग सभी अनुभववादी कथनों पर समान रूप से हो सकता है।

न्यूरथ का अनुसरण करते हुए कारनप यह तर्क करते हैं कि यह मूलभूत भाषा भौतिकी की भाषा है—जिसमें विशिष्ट संयोजकों की इकाई के साथ भौतिक अवस्था के गुणांक का एक निश्चित मूल्य या मूल्यक्रम प्रस्तुत कर दिया जाता है। विज्ञान के सभी तर्कवाक्यों की रचना इस आधार के जरिए की जा सकती है। उनके सामने समस्या यही देखने की है कि क्या यह बात समान रूप से अधिकृत कथनों के साथ भी लागू होती है या नहीं? अनुभव के ये वे सीधे रिकार्ड हैं जिन पर वैज्ञानिक कथन आश्रित हैं। कारनप की दृष्टि से विज्ञान असंभव है जब तक कि अधिकृत कथन इस प्रकार अनुवादयोग्य नहीं हैं। श्लिक की भांति यह कहना ही काफी नहीं है कि विज्ञान केवल संरचना में ही रुचि रखता है। अन्ततः वैज्ञानिक तर्कवाक्यों का भी परीक्षण किया जाना चाहिए—अनुभव के संदर्भ से, एवं इसका यह अर्थ हो गया कि संरचना एवं अनुभव दोनों को एक ही भाषा में अभिव्यक्त किया जा सकना संभव होना चाहिए।

यह बताने के लिये कि अधिकृत कथन कैसे वैज्ञानिक ढंग से व्यक्त हो सकते हैं कारनप न्यूरथ के भौतिकतावाद का पल्ला पकड़ते हैं। 'प्रत्येक अधिकृत कथन को मेरे शरीर की अवस्थाओं के विषय में भी अनूदित किया जा सकता है। हमारे पास यह निश्चित करने के तरीके हैं कि स नामकी अमुक काया अब लाल रंग देख रही है (अर्थात् स से यह कह कर कि जब भी वह लाल रंग देखे तो वह एक बटन दबा दे।) और स की काया अब लाल रंग देख रही है' यह उनकी दृष्टि में इस अधिकृत कथन 'अब लाल' का तार्किक रूप से समानार्थी है। यह समानार्थकता कारनप को वह सब दे देता है जिसकी अपेक्षा वे करते हैं। यदि कोई आपत्ति करे, 'ठीक है, किन्तु लाल अनुभव करने से मेरा जो आशय है वह मुझे लाल उत्प्रेरक की प्रतिक्रिया में देखते तुमसे बिल्कुल ही भिन्न है। कारनप की दृष्टि में वह यहां अर्थ का वैज्ञानिक ढंग से प्रयोग नहीं कर रहा। यदि दो कथन तार्किक रूप से समानार्थी हैं यदि प्रत्येक का एक दूसरे से अनुमान लगाया जा सकता है, तो उससे यही ध्वनित होता है कि उनका अर्थ भी एक ही है। दो कथनों के बीच का भेद केवल अर्थ से सम्बन्धित नहीं होगा। यह विशुद्ध रूप से व्यक्तिगत पूर्वाग्रहों के आधार पर होगा।

जब न्यूरथ कारनप पर प्रहार करते हैं उनके निरंतर यह मानने के लिए कि कुछ तर्क विषय अनुभव के सीधे रिकार्ड हैं तो कारनप (यूबर प्रोकोल्साज 1932) में उसका यह उत्तर देते हैं कि न्यूरथ एवं उनमें कोई मौलिक विवाद नहीं है। व

तो केवल माग्र विनान की मापा की रचना के विभिन्न जरिए सुझा रहे थ। कारनप का कथन है कि प्रधिकत कथन विनान मापा की परिधि से बाहर के हैं प्रर्थात् उनकी सरचना मापा मे बनी बनाई नही होती, चाहे मापा मे उहे अनूदित करने के विशेप नियम ही क्यो न बने हो। जबकि न्यूरथ का मत है कि वे मापा के क्षेत्र म ही पडते हैं उनका एक निश्चित रूप होता है और इसीलिए अनुवाद का कोई प्रश्न ही नही उठता। यह मा यता का मौलिक प तर है जो कारनप की दृष्टि मे अनुभव के जरिए ही हल हो सकता है। एक सगत मापा या तो उनके या फिर न्यूरथ के माग पर ही निर्मित हो सकती है। यहां दोनो के बीच का विकल्प इस बात पर टिका होगा कि दोनो म से कौनसी प्रधिक सुविधाजनक ह इसके प्रतिरिक्त और कोई कारण मामले पर असर नहीं डाल सकता। कारनप स्वीकारते हैं कि उनकी भापा म न्यूरथ की प्रपेक्षा तत्वदशन की ओर ले जाने का अधिक खतरा है। उनकी स्वय की दिशा इस दृष्टिकोण की ओर काल पोपर से विचार विमश करने के कारण मुड गई थी। और न्यूरथ के विरोध मे वे यह मानने लगे थ कि दशक का सम्म देने वाले तकवाक्यो की ही बात न ही है बल्कि कोई भी एक तकवाक्य अधिकृत कथन का काम कर सकता है। किन्तु वे न्यूरथ से सहमत होते हुए कहते हैं कि इन वाक्यों को पहले से ही विनान की मापा मे अभि यक्ति मिल चुकी है।

कारनप द्वारा न्यूरथ को परिपाटीवादी प्रकृति से दिया गया उत्तर अपनी उच्चतम अवस्था तक उस समय पहुच जाता है जब कारनप की काफी प्रभावशाली पुस्तक द लोजिकल सिन्टेक्स आय लग्वेज (1934) प्रकाशित होती है जिसमे कारनप वतमान तकशास्त्र के अभिनव विकासमार्गों के आधार पर (सदभ अध्याय 18) इस बात की धारणा का कि सहिष्णुता का सिद्धान्त क्या है प्रतिपादन करते हैं। 'तकशास्त्र म कोई नतिक मान नही होते। प्रत्येक को अपना तक रच लेने की स्वतत्रता है-अर्थात् जसा वह चाहे वसी मापा का प्रयोग करने की स्वतत्रता है।' कारनप की दृष्टि म दशन तकशास्त्र की ही एक शाखा है। वे उसे विनान का तकशास्त्र कहते हैं। दशन हमे पारवर्ती इयत्ताओ की सूचना नही देता क्योंकि ऐसी इयत्ताओ का सदभ दने वाले सभी वाक्य अथहीन हाते हैं। इसके बहुत से तकवाक्य नीतिशास्त्र के तत्वदशन सबधी तकवाक्य, भावना को यक्त तथा उत्प्रेरित करते हैं (लग की शब्दावली मे वह एक प्रकार के गीतिकाव्य हैं) किन्तु ससार क विपय मे कुछ भी नही कहते। तत्वदशन के व तकवाक्य, जो इसे किसी बात की सूचना देते हैं, उदाहरण के लिए ज्ञान मीमासा के कुछ तकवाक्य, व सब मन-सम्ब धी अनुभववादी विज्ञान (मनोविज्ञान) की ही सीमा म आते हैं। दशन की सीमा म मान के बजाय उसके द्वारा किए गए इस अल्प काय के पश्चात् भी जो कुछ शेप रह जाता है वह सब या तो वज्ञानिको द्वारा प्रयुक्त की गई मापा का ही विवरण

मात्र है या उस भाषा का संशोधन करने का प्रयास मात्र। मैश ने कहा भी था कि मैशियन दर्शन सर्वोपरि नहीं है, सर्वोपरि है वैज्ञानिक रीतिविधान। कारनप यह घोषणा करते हैं कि जब तर्कशास्त्र की भाषा निस्सार समस्याओं की जटिलता में उलझ जाती है, तब वह दर्शन के नाम से जानी जाती है।

दर्शन की ऐसी भाषाई व्याख्या की धारणा स्वीकार करने में बड़ी मुश्किल है क्योंकि दर्शन के तर्कवाक्य विभिन्न प्रकार की इयत्ताओं के विषय में होते हैं जैसे संबंधों, गुणों, अंकों, अर्थों आदि आदि के, जो स्पष्टतः भाषाई रूप नहीं है। इस आपत्ति का उत्तर देने के लिए कारनैप तीन प्रकार के वाक्यों का भेद प्रस्तुत करते हैं। व्याकरणसम्मत वाक्य भाषा का ही वर्णन करते हैं। एक प्रयोजन वाक्य (आब्जेक्ट सैन्टैंस) जो एक पदार्थ का वर्णन करता है तथा आभासी प्रयोजन वाक्य (स्यूडो आब्जेक्ट सैन्टैंस) जो दर्शन में बहुलता से मिलते हैं, वे प्रयोजन वाक्य दिखाई तो देते हैं, लेकिन विश्लेषण करने में मात्र व्याकरण सम्मत लगते हैं।

इस प्रकार यह दार्शनिक कथन कि 'पांच एक वस्तु नहीं है—एक अंक है' उनकी दृष्टि में इस प्रयोजन वाक्य के समानान्तर नहीं है। 'पानी क्षारीय नहीं है—अम्लीय है' इस प्रस्तुत समानान्तरण को दो तरह से अमान्य किया जा सकता है। यह प्रमाणित करने के कोई ऐसे अनुभवसम्मत परीक्षण नहीं हैं जिनके जरिए यह बताया जा सके कि पांच एक वस्तु है या एक अंक। यह ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो लिटमस कागज के उपयोग की भांति यह बताए कि अमुक चीज क्षारीय है और अमुक अम्लीय। दूसरी ओर दार्शनिक वाक्यों को व्याकरण पदों में बदला जा सकता है—जो उसके आकार को ही व्यक्त करते हैं, जैसे पांच कोई वस्तु शब्द नहीं है किन्तु आंकिक अभिव्यक्ति है, जबकि क्षार या अम्ल का ऐसा कोई व्याकरण सम्मत अनुवाद नहीं है। दार्शनिक सामान्यतः भौतिक अवस्थाओं से प्रारंभ करते हैं, अर्थात् वे वस्तु शब्दों के स्थान पर वस्तुओं के विषय में ही चर्चा करते हैं, अंकीय अभिव्यक्तियों के स्थान पर अंकों का ही प्रयोग करते हैं। यह प्रक्रिया अपने आपमें अलाभकारी नहीं है किंतु इससे सहजता से हम तत्वदर्शन की ओर चले जाएंगे और अर्द्ध संबंधी प्रकृति की छलपूर्ण समस्या में उलझ जाएंगे।

इसी प्रकार कारनप की मान्यता है कि अर्थ या विषयवस्तु को ध्वनित करने वाले सभी वाक्य आभासी कथन हैं। इस तरह यह वाक्य 'कल के भाषण में बेबीलोन का जिक्र था,' इससे ध्वनित तो यह होता है जैसे कल का भाषण बेबीलोन नामक किसी इयत्ता से जुड़ा हो जबकि यह वास्तव में बेबीलोन के विषय में कुछ भी व्यक्त नहीं करता। यहां केवल वाक्य की रचना में बेबीलोन नामक शब्द के स्थित रहने भर का संकेत मिलता है। आकारी अवस्था में इसको

तब ऐसे गढ़ा जाना चाहिए कल के भाषण में बवीलोन नामक शब्द प्रयुक्त हुआ। इसी भांति 'दिन का तारा शब्द सूर्य का प्रतीक है।' इस आकारी अवस्था में रूपांतरित होगा शब्द दिन का तारा सूर्य शब्द का ही पर्याय है। यदि दार्शनिक ऐसे अनुमान का सदैव ध्यान रक्खे, तो कारनप की दृष्टि में सभी विवाद कि 'अर्थ क्या है' हमेशा के लिए विलीन हो जाएंगे।

स्पष्टतः ही दिन का तारा एवं सूर्य नामक शब्द एक भाषा में पर्याप्त हो सकते हैं दूसरी भाषा में वे संभवतः न हों। जैसे फिन एवं एक्सेलेन्ट नामक शब्द फ्रेंच भाषा में पर्यायवाची हैं जबकि अंग्रेजी में नहीं। पर्याय सम्बन्धी कथन तब भाषा-सापेक्ष हैं। कारनप के अनुसार सभी दार्शनिक स्थापनाओं के विषय में भी यही है। विटजिंस्टीन श्लिक तथा विशेषतः कारनप ने अपनी प्रारंभिक रचनाओं में भी यही माना कि सभी वाक्य एक भाषण के अंश के रूप में कार्य करते हैं—ताकि वाक्य या तो पूर्णतः पुनरुक्त अथवा अपुनरुक्त सार्थक या निरर्थक होना है। लोजिकल सिण्टेक्स आव लैंग्वेज में इसके विपरीत कारनप का कहना है, कि यह निर्णय कि एक वाक्य पुनरुक्त है प्रयोग में लाई गई भाषा से काफी संबद्ध है। जितने प्रकार की रचना करना चाहें उतने प्रकार की भाषा हमारे लिए विद्यमान है और सुविधा के अलावा और कुछ भी उन्हें अनुशासित करने के नियम निर्धारित नहीं हैं। एक दार्शनिक कथन, आकारी अवस्था में भी पूर्णतः अभिव्यक्ति नहीं माना जायगा जब तक उसमें उस भाषा का संदर्भ विद्यमान न हो जो काम में लाई जा रही है। एक बार यह शर्त पूरी हो जाय तो दार्शनिक झगड़े खत्म हो जाएंगे। न्यूरथ भी कारनप के साथ इस बात में सहमत थे कि ये तथ्यों संबंधी विवाद नहीं होकर, भाषाई रचना के वैकल्पिक विधान हैं।

उदाहरण के लिए जब कोई गणितीय दार्शनिक यह कहता है कि अंक वर्गों के वर्ग हैं और दूसरा यह कहता है कि वे आदिम अभिव्यक्तियाँ हैं' तो दोनों में प्रत्येक अपनी ही भाषा का विवरण दे रहा है—या फिर इनमें से प्रत्येक गणितज्ञों के समक्ष ऐसी विशिष्ट अवस्था प्रस्तुत कर रहे हैं जो गणितीय प्रणाली की रचना से संबद्ध हैं। इस तरह दोनों एक दूसरे का विरोध नहीं कर रहे। इसलिए ऐसी दार्शनिक अभिव्यक्तियों के लिए जो व्याकरणीय रूप में प्रस्तुत हो सकने का दृढ़तापूर्वक विरोध करते हैं तो कारनप विटजन्स्टीन के इस कथन का उद्धरण देते हैं—'वास्तव में अव्यक्त तो है ही'। या फिर श्लिक के इस कथन का जिसमें उन्होंने अकथनीय विषय वस्तु की बात कही है—इन सभी को निरर्थक कहकर त्याग देना चाहिए।

दर्शन की अब अपनी एक विषयवस्तु हो जाती है। जैसा हम पहले देख चुके हैं कि विटजन्स्टीन इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि ट्रैक्टेटस के तर्कवाक्य अर्थहीन

है । 'इस तरह मरी तर्कोक्तिया केवल व्याख्या प्रस्तुत करती है और जो मुझे समझ गया है वह अ तत यह जान लेता है कि जब वह उनके द्वारा उन पर, उनके ऊपर स जाकर जाच कर लेता है तो निरथक हो जाती है । यह निष्कष उनके पाठकों के समक्ष उनके प्रतिवादी विरोधास्पद रूप को सामन प्रस्तुत करता है । इस तरह जूलियन बल नामक कवि अपनी कविता एपिसल आन द सबजेक्ट आव द एथिकल एण्ड एस्थेटिक बिलीफ्स आव हेर लुडविग विटजस्टीन म यह शिकायत करते हैं ।

'वह पथ की बकवास करता है, बहुत सी उक्तिया कहता है, हमशा के लिए चुप रहन की उसकी प्रतिना टूट जाती है ।" उ होने उनके 'प्रदशन के सिद्धा त म तत्ववाद का प्रतिरूप ही देखा —

'जो ज्ञान के किसी गुप्त स्रोत से तस्कर करता है
जो अ तत एक सम्पुष्ट एव प्रकट रहस्यवादी है–
जो पुरान शत्रु की भाति लौट कर आया हुआ है–
जो अपने प्रत्यक्ष अनुभव से ही जानता है–
कि सभी प्रकार के नान एव सार्थकता से परे क्या है"

क्योंकि जब विटजस्टीन ने लिखा था कि वास्तव मे कही अव्यक्त तो है ही तो यह क्या उनके रहस्यवादी होने का सकेत नही है ?

इसमे आश्चय नही कि विज्ञानमना वस्तुस्थितिवादी इस सिद्धा त से असतुष्ट हो गए । रसेल ने ट्रैक्टेटस के आमुख म इसका एक विकल्प सुझाया कि यद्यपि कोई भाषा स्वय अपने रूप का वणन नही कर सकती तथापि इसका रूप दूसरी भाषा द्वारा व्यक्त किया जा सकता है और उस भाषा का रूप भी तब किसी तीसरी भाषा से व्यक्त किया जा सकता है आदि । इसका प्रभाव यह होगा कि भाषा क रूप का वणन किया जाना सदा सदा के लिए सभव हो जायगा चाहे यह उस भाषा मे न हो जो अमुक रूप प्रदर्शित कर रही है । रसेल की भाषा में उच्चक्रम (हायरार्की) सबधी यह धारणा तकशास्त्र के विकास के महत्वपूर्ण योग मे सहायक रही है और कारनैप ने इसे दाशनिक जनो के समक्ष प्रस्तुत करने का भरसक प्रयत्न भी किया । इसके बावजूद भी चाहे वे लॉजिकल सिन्टैक्स आव लग्वेज के प्रारम्भ मे ही इस बात पर बल देते हैं कि एक प्रस्तुत भाषा के कथनों एव उन कथनों मे जो ऐसे कथनों का वणन करते हैं रहा भेद, काफी महत्व का है वे सब अ तत एक व्यापक भाषा की सृष्टि करते है तो भी उनकी मा यता है कि ऐसे तकवाक्य जो भाषा के सम्ब ध मे कुछ कहते हैं, उस भाषा का अ श भी हो सकते हैं जिसका वणन व कर रहे हैं । इसका कारण देखा जा सकता है । उ ह किसी भाति यह बताना है

कि विज्ञान की भाषा का वर्णन करने वाले कथन उसी भाषा के अङ्ग हैं। और क्योंकि वे पुनरुक्तियाँ नहीं हैं हम यह निष्कर्ष नहीं निकाल सकते कि एक विशिष्ट भाषा के विशिष्ट नियम होते हैं, इसीलिए वे निरर्थक हैं। वे यह बात मानने के लिए तैयार नहीं थे। इस तरह या तो वे विज्ञान के अंश हैं या कारनप की इस त्रिविधा की वैज्ञानिक, निरर्थक, पुनरुक्तियुक्त मान्यता टूट जाती है।

कारनप का विचार था कि वे यह बता सकते हैं—विट्गेंस्टीन के विरुद्ध कि भाषा का रूप भाषा से ही वर्णित हो सकता है। विट्गेंस्टीन के लिए भाषा का रूप वही है जो उसके लिए सामान्य है और उस यथार्थ के लिए भी जिसे वह व्यक्त कर रही है इस कारण से भाषा के परे किसी वस्तु का संदर्भ देकर उसका रूप उस भाषा से व्यक्त नहीं हो सकता। कारनप की कृति लॉजिकल सिन्टैक्स ऑव लैंग्वेज में किसी भाषा का रूप उसके द्वारा नियमों से ही बनता है। रचना के नियम यह निर्धारित करते हैं कि अमुक वाक्य सुगठित है या जिनसे एक वाक्य दूसरे वाक्य से निगमित किया जा सकता है। विज्ञान की भाषा अपने अन्दर ही ऐसे नियमों को निहित किये रह सकती है। भाषारचना के ये सामान्य नियम जो भाषा द्वारा अवहृत समाविष्ट रूपों को व्यक्त करते हैं गणित सम्बन्धी हो सकते हैं संयोज्य विश्लेषण (काम्बीनेटोरियल) के रूप में। एवं भाषारचना संबंधी तर्कवाक्य जो आकार रूप में किसी विशेष भाषा के ढाँचे को वर्णित करते हैं—वे प्रयुक्त गणित के तर्कवाक्य होते हैं जो केवल प्रतीकों का संदर्भ देते हैं—(उदाहरण के लिए 'दी' का प्रतीक जो इस पृष्ठ में दो बार आया है) भौतिकी के तर्कवाक्य हैं। विज्ञान के तर्कवाक्य की रचना विज्ञानभाषा की व्याकरणसम्मत वाक्यशैलियों में की जा सकती है किन्तु इनसे विज्ञानेतर किसी अन्य क्षेत्र की अभिनव सृष्टि संभव नहीं है। भाषापकरण या वाक्यशैली जो शुद्ध एवं विवरणात्मक है भाषा की भौतिकी या गणित से अधिक कुछ नहीं है। इस तरह दार्शनिक तर्कवाक्यों के लिए भी विज्ञानों के पारस्परिक व्यवहार में से कोई न कोई स्थान निकल ही आता है।

तब फिर सार्थकता के सत्यापनीयता सिद्धान्त का क्या होगा? इसके वैशिष्ट्यपूर्ण इतिहास का उद्धरण सर्वोत्तम ढंग से कारनप कृत टेस्टेबिलिटी एण्ड मीनिंग (पी० ए० एस० 1936) का संदर्भ लेकर किया जा सकता है। यहाँ पर सत्यापनीयता सिद्धान्त (निरूपण) को न तो एक स्वयंसिद्ध माना गया है और न अर्थहीनता की कोई बहक किन्तु विज्ञान की भाषा रचित करने के लिए उसकी सिफारिश की गई है। सिफारिश के तौर पर ही उन अनुभववादियों के समक्ष प्रस्तुत किया गया है जो निश्चय ही विज्ञान की भाषारचना में स्वाभाविक रूप से रुचिशील हैं और यह देखना चाहते हैं कि तत्ववादी तर्कवाक्यों को इसके जरिए व्यक्त न करना पड़ जाए। कारनप के अनुसार अनुभववादी को निश्चय ही ऐसे कहना चाहिए

कि सभी ज्ञान अनुभवसिद्ध हैं अर्थात् उसके पास ऐसे कथन हैं जो इस ससार के विषय मे ही कुछ न कुछ कहते हैं। उन्हे इस बात का स्पष्टीकरण करना चाहिए कि वे जो कुछ कर रहे हैं वह सब भाषा मे लगाए गए कुछ अवरोधो की सिफारिश के लिए ही है। ये अवरोध अंग्रेजी जैसी स्वाभाविक भाषा के लिए लागू नही होते। इस तरह उनका उद्देश्य एक आदर्श भाषा की रचना करना है-जिसे यह कहकर परिभाषित किया गया है कि जिसके आधार पर अनुभववादी जो चाहता है वह कह सकता है। अर्थात् वैज्ञानिक गणिततर्कीय तर्ककथनो के रूप मे। किन्तु वह सभी तत्ववादी कथनो को निरर्थक कहकर अमान्य कर देगी। तत्ववादी इससे भिन्न आदर्श रखकर चलेगा। यदि तत्ववादी अनुभववाद के विकल्प के रूप मे किसी भाषा की रचना कर सकता तो वह सिवाय यह देखने के कि भाषा सगत है या नही और कोई आपत्ति का आधार ढूंढ नही सकता था चाहे तत्ववादी की भाषा का प्रयोग फिर भी वह न करना चाहे।

अनुभववादी भाषा के सामान्य ढाचे मे फिर भी अन्य बहुत सी सभावनाए है। इनमे निश्चितता के अंशमानो का अन्तर अवश्य है। एक अनुभववादी को यह मानना चाहिए कि विज्ञान के वे आदिम विधेय जो उसके आधारभूत कथनो या अधिकृत कथनो मे काम मे लाए जाते है वे सभी पर्यवेक्षण योग्य है, लेकिन इसके बावजूद भी वह अपनी भाषा मे केवल वस्तु भाषी विधेयो का उपयोग ही कर सकता है।[1] इस दूसरी अवस्था मे कुछ अन्य विकल्प और हैं, मनोवैज्ञानिक विधेय अपने रूप मे सघटनात्मक हो सकते हैं और चेतना की निजी अवस्था का सदर्भ दे सकते हैं, अथवा वे भौतिकवादी विधेय (फिजिकलिस्ट) हो सकते हैं। ऐसे विधेय जो मनोवैज्ञानिक क्रियाओ का सदर्भ प्रस्तुत करते हैं-जैसे 'क्रोधित होने' या 'एक कुत्ते को देखने की क्रिया का।' इन क्रियाओं को केवल अभिकर्त्ता ही अनुभव कर सकता है किन्तु इनकी उपस्थिति को स्वतंत्र दर्शक द्वारा भी पुष्ट किया जा सकता है। स्वयं पोपर का अनुसरण करते हुए कारनप वस्तु भाषा के समर्थन मे अपना निश्चय प्रकट करते हैं। यह बात उनकी आरम्भिक सघटनवादी वृत्ति या फिर न्यूरैथ की उनके द्वारा अपनायी अधिकृत कथनो की बात के विरुद्ध है। वे यह सब इस आधार

---

[1] वस्तु भाषा, दैनिक भाषाई विधेयो से बनी है और इसमे उष्ण 'चतुष्कोणीय' तथा नीला आदि शब्दो को भौतिक पदार्थों का विवरण देने के लिए उपयोग मे लिया गया है। कारनप के विचार मे वस्तुभाषा का उस समय भी भाव उनके मन मे था जब उन्होने यह माना कि भौतिकी की भाषा (द लैंग्वेज आफ फ़िजिक्स) ही मूल भाषा है। द्रष्टव्य बर्गमन कृत द मेटाफिजिक्स आव लोजिकल पोजिटिविज्म। इस सम्बन्ध मे (एक आदर्श भाषा) इसमे पर्याप्त कहा गया है। इसमे मनोवैज्ञानिक विधेयो की बात भी शामिल है।

पर स्वीकार करते हैं कि किसी अन्य भाषा से विज्ञान की एकातिक वस्तुपरकता सुरक्षित नहीं की जा सकती। स्वभावत कुछ वस्तुस्थितिवादियो ने बडे आक्रोशपूर्ण ढग से उनके इस निर्णय का स्वागत किया और इसे वस्तुस्थितिवाद से फिर यथाथ वाद की ओर लौटने की सज्ञा दी।

श्लिक की प्रारम्भिक रचनाओ म यह बात स्पष्ट रूप से स्वीकार की गई है कि वस्तुस्थितिवादी प्राय इस बात पर सहमत थ कि सब अनादिम विधयो को भी आदिम विधेयो की भाषा म ही परिभाषित किया जाना चाहिए। कारनप ने बिलकुल इसी मत को स्वीकारा है जब उन्होने द यूनिटी आव साइन्स म कहा है कि सभी अनुभववादी कथनों को भौतिकी की भाषा म अनूदित किया जा सकता है। टस्टे-बिलिटी एण्ड मीनिंग मे एक बार फिर वे इस कठोर आवश्यकता से विमुख हो जाते हैं। अब वे अनुवाद्यता पर जोर न देकर न्यूनीकरण पर बल देते हैं जो न्यूनीकृत युग्मो से प्रकट हो जाता है और एक अनुभववादी अधिक से अधिक इसकी माग ही कर सकता है। उन्हे विशेषत इस निष्कष पर पहुचने के लिए जो बात प्रेरित करती है, वह यही कि उनके पास प्रस्तुत विधेयो को दूसरी तरह स परिभाषित करने का कोई आधार नही है (जसे घुलनशील, दश्यमान श्रवणयोग्य आदि शब्दो को आदिम विधेयो के साथ सयोजक क रूप मे उपयोग म लाने का कोई माग नही है)। इसके अलावा उनका विचार है कि अनुभववादी घुलनशील' जसे विधेय को अपनी भाषा मे तकवाक्य युग्मों के माध्यम से प्रविष्ट करा सकता है। यदि क्ष को त समय मे पानी मे डाल दिया जाता है तो यदि [illegible] पानी मे घुलनशील है तो त समय मे वह उसमें घुल जायगा और यदि क्ष को पानी म त समय मे डाला गया और क्ष घुलनशील नहीं है तो [illegible] समय म वह नही घुलेगा। इस तरह घुलनशीलता का परीक्षण तो हमने कर लिया किन्तु हमे प्रस्तुत वाक्य के इस आकार के अनुवाद की यह विधि उपलब्ध नहीं हुई। क्ष घुलनशील है इस क्ष के दृश्यमान विधयो म बदल जाने योग्य तकवाक्यो मे बदला जाना नही आया। क्यों कि क्ष घुलनशील तो हो सकता है चाहे उसकी घुलनशीलता का प्रयोग उसे पानी मे डालकर किसी ने न किया हो।

अनुवाद्यता से परीक्ष्यता (टस्टबिलिटी) की ऐसी ही एक बात कारनप द्वारा फिलोसोफी एण्ड लोजिकल सिण्टेक्स (1935) मे दिए गए सत्यापनीयता के वणन म देखी जा चुकी है। वहा उन्होने निरूपण (सत्यापन) क दो भेद किए हैं प्रत्यक्ष एव परोक्ष। उन्होने कहा है कि केवल अधिकृत कथनो को ही प्रत्यक्षत सत्यापित किया जा सकता है क्योकि अनुभव के अकन का बीडा वे ही लेकर चलते हैं। अन्य तकवाक्य जसे एकविषयी वाक्य यह चाबी लोहे की बनी है तथा समष्टिकथन जस यदि किसी लौहिक पदाथ को चुम्बक के पास रखा जायगा तो वह उसके द्वारा आकर्षित हो जायगा इस बात का निरूपण केवल परोक्षत ही सभव है। इस तरह

एकविषयी कथन तथा विज्ञान के समष्टि व्यापी नियम दोनों मे ही प्राकल्प का भाव मौजूद है।[1] परोक्ष निरूपण (सत्यापन) की परिभाषा कारनप जब यह देते हैं कि इन्हें निरूपण (सत्यापन) के लिए पहले से निरूपित तर्कवाक्यों के साथ इस तरह रखना होगा जिससे एक प्रत्यक्षत: सत्यापनयोग्य तर्कवाक्य प्रकट सके। उदाहरणार्थ 'यह चाबी लोहे से बनी है' का निरूपण पहले से निरूपित इस नियम के आधार पर होगा कि यदि एक लोहवस्तु चुम्बक के समीप रख दी जाए तो वह इससे आकर्षित हो जाएगी और प्रत्यक्षत: निरूपित किए गए अनुभव से कि 'चाबी चुम्बक की ओर आकर्षित हुई है' हम यह पता लगा लें कि चाबी लोहनिर्मित है। निरूपण (सत्यापन) का इससे अधिक कुछ मूल्य नहीं है कि उससे वस्तु की सत्यता की जाँच हो जाय। फिर इस वाक्यांश मे यह अर्थ तो अभी भी है कि अमुक वस्तु प्रत्यक्षत: निरूपित हुई है, इस वाक्यांश मे नहीं कि परोक्षत: निरूपित हुई है। क्योंकि परोक्ष निरूपण (सत्यापन) के जरिए हम निरूपित तर्कवाक्य के सत्य की सिद्धि नहीं कर सकते। तो फिर इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं कि टेस्टेबिलिटी एण्ड मीनिंग में कारनेप निरूपणीय शब्द को छोड़कर उसके स्थान पर परीक्षणीय को अपना लेते हैं एक ऐसे मामले मे जिसमें परीक्षित निरूपण की प्रणाली वास्तव में हमारे अधिकार में हो या वह पुष्टिकरणीय (कन्फर्मेबल) हो यदि हम उस प्रणाली का नामकरण न कर सकें तो।

हमारे वर्तमान कार्य की पूर्ति के लिए सारभूत बिन्दु यह है कि एक तर्कवाक्य में उस समय भी अर्थ हो सकता है यदि वह उस अर्थ मे निरूपणीय न भी हो जिसमे वस्तुस्थितिवादी उसे वैसा मानते हैं। अथवा चाहे वह आणविक तर्कवाक्यों या अनुभवों की एक ससीम इकाई का समानार्थी न भी हो। पुराना वस्तुस्थितिवादी सिद्धान्त कारनप के अनुसार असुविधाजनक था क्योंकि इसने उन सभी तर्कवाक्यों को निरर्थक कहकर समाप्त कर दिया था, जिनमें अनिर्बंधित सामान्यता थी। सारे भौतिकी नियम, और वास्तव में वे सब तर्कवाक्य जिनमें ऐसे विधेय हों जिन्हें आदिम विधेयों में न्यूनीकृत नहीं किया जा सकता। श्लिक ने इस कठिनाई पर रैमसे की भाँति विजय प्राप्त करनी चाही यह मानकर, कि भौतिक नियम स्वीकारोक्तियां न होकर इन कथनों की रचना के लिए प्रस्तुत सूचनाएं हैं। कारनप इनका उत्तर देते हुए कहते हैं कि भौतिक नियमों को वैज्ञानिकों द्वारा वाक्याकार में ही रखा जाता

---

[1] इस प्रश्न पर देखें, एन० मैलकम कृत सरटेनटी एण्ड एम्पिरिकल स्टेटमेण्ट्स (माइण्ड 1942), पी० हेनले कृत आन द सरटेन्टी आव एम्पिरिकल स्टेटमेण्ट्स एवं डब्लू० टी० स्टेस कृत आर आल एम्पिरिकल स्टेटमेण्ट्स हाइपोथीसेस ? (जे० पी० 1947)।

है– नियमों के रूप में नहीं। उनकी खुद की सिफारिश यही है कि अनिबंधित सामान्यता के तर्कवाक्यों को विज्ञान में प्रवेश मिल जाना चाहिए।

यह धारणा उन्हें इस निष्कर्ष की ओर ले जाती है कि विज्ञान के लिए सर्वाधिक उपयुक्त भाषा ऐसे नियमों से बनी हैं जो बहुत रियायती प्रकार के हों। अनुभववादी को केवल यही माँग करनी चाहिए कि प्रत्येक समन्वयकारी तर्कवाक्य पुष्टीकरणीय होना चाहिए। उनके विचार में यह नियम तत्वदर्शन का उन्मूलन करने के लिए काफी सशक्त है क्योंकि तत्ववादी तर्कवाक्य किसी भी भाँति अनुभववादी पुष्टीकरण के पात्र नहीं हैं। उनके विपरीत ये विज्ञान के विकास में बाधक भी नहीं हैं। स्पष्ट ही कारनेप अपनी इस प्रारम्भिक धारणा से काफी दूर आ गए हैं जिसमें उन्होंने सार्थकता का अनुभव की अनुवाद्यता से तादात्म्य स्वीकार किया था। अब अधिक से अधिक वे यही कहने को तैयार हैं कि एक तर्कवाक्य अर्थहीन है यदि उसका निष्कर्ष अनुभवसम्मत न हो। कारनेप को इसमें भी कठिनाइयाँ दिखीं, याने सार्थकता एवं पुष्टीकरण दोनों में। इन कठिनाइयों का हल प्रस्तुत करने के सम्बन्ध में उनका प्रयास तर्कसम्मत वस्तुस्थितिवाद से भी परे ले गया और उन्हें ऐसे सुवादों में उलझ जाना पड़ा जिनकी चर्चा हम आगे के अध्याय में करेंगे।

इंगलैण्ड में ए० जे० आयर तर्कसम्मत वस्तुस्थितिवाद के प्रमुख प्रवर्तक थे। 1936 में प्रकाशित उनकी एक पुस्तक लैंग्वेज ट्रूथ एण्ड लोजिक, एक युवा व्यक्ति की पुस्तक जो जीवन्त असमन्वयवादी एवं चुनौती देने वाली है– वास्तव में सहजता से प्राप्त तर्कसम्मत वस्तुस्थितिवाद की संघटनवादी तथा शास्त्रीय अभिमण्डन हैं।

स्वभावतः यह पुस्तक भी उन मुश्किलों पर विचार प्रस्तुत करती है जो निरूपण के सिद्धान्त के समय उठ खड़ी हुई थी। आयर एक सशक्त और अशक्त निरूपण के सिद्धान्त में भेद करते हैं। सशक्त सिद्धान्त यह बताता है कि एक तर्कवाक्य उस समय तक अर्थहीन है जब तक अनुभव अन्तिम रूप से उसकी सचाई सिद्ध नहीं कर देता, एक अशक्त सिद्धान्त के लिए यही अपेक्षित है कि कुछ पर्यवेक्षण उस स्थिति में सदर्थयुक्त होने चाहिए जिनसे उसके सत्यासत्य का निर्धारण हो सके। ये निरूपण को केवल उसके क्षीण अर्थ में ही ग्रहण करते हैं। वह भी इस आधार पर कि न वे समष्टि नियमों को निरर्थक ही मानते और न भूतकाल सम्बन्धी कथनों को अर्थहीन। इन दोनों में से एक को भी वर्तमान अनुभवों में बदलकर नहीं देखा जा सकता। इस रूप में तो यह सिद्धान्त तत्ववादी दर्शन का उन्मूलन करने के लिए पूर्णतः पर्याप्त है। इसके आधार पर अपने आप में किसी भी पर्यवेक्षण का ऐसे तत्ववादी कथन से कोई सम्बन्ध नहीं है जैसे संवेदनजन्य अनुभवों का जगत् मिथ्या

हैं', न कोई ऐसा पर्यवेक्षण ही कर सकता है जिससे इस बात का निर्धारण हो सक कि 'यह जगत, एक मात्र अ तरिम सत्ता है, या मूल तत्वो की बहुलता मे बिखरी हुई कोई सृष्टि ही है।

एक बार हम दर्शन के इस दाव को कि वह तत्ववादी सत्यो का अनुगामी है अमा य कर देते हैं तो दिखाई देगा कि उसका वास्तविक कार्य विश्लपण ही है। वह कार्य जिस सिद्धान्त रूप म बकले ह्यूम तथा लोक ने कार्या वत किया। इसस हमे यह निष्कर्ष लेने का अधिकार नहीं है कि दर्शन वस्तुओ को आणविक इयत्ताओ म खण्डित कर देने का ही नाम है। यह धारणा कि यह जगत् वास्तव म प्रायमिक इयत्ताओ के आकलन से निर्मित है एक तत्ववादी निरयकता है। दार्शनिक विश्लेपण आयर के मतानुसार भाषाई हैं। यह हमे प्रतीको को परिभाषित करने का अवसर देते हैं, जिससे हम उ हे ऐसे वाक्यो मे अनुवादित कर सकते हैं जिनमे न तो वह प्रतीक ही होता है न उसका कोई पर्याय हो। रसेल का विवरण का सिद्धा त इसका उदाहरण है– और यही बात भौतिक पदार्थों सम्ब धी वाक्यो के सघटनात्मक अनुवाद म मिलती है जो उ हे ऐ द्रियाघातो के वाक्यो मे बदल देते हैं।

इस तरह महाद्वीपीय तकसम्मत वस्तुस्थितिवाद का ब्रितानी दार्शनिक विश्लेपण से जोडकर आयर सबका ध्यान एक परिशुद्ध ऐतिहासिक सयोग की ओर आकृष्ट कर रहे हैं। इसके साथ ही उ होने बहुतो को यह भी आभास दिया कि विश्लेपण और तार्किक वस्तुस्थितिवाद वास्तव मे एक रूप हैं। यह एक ऐसा दृष्टिकोण है जो आज भी पढ़े लिखे दर्शन के पाठको म प्रचलित है और जो वस्तुत दर्शन के व्यवसाय मे लगे नही हैं।[1] वास्तव मे तार्किक वस्तुस्थितिवादी उन ज्ञान-मीमासक समस्याओ मे बहुत कम रुचि लेते थे जिन पर ब्रितानी विश्लपणवादियो ने अपना ध्यान केन्द्रित किया था। अपनी ओर स विश्लेपणवादियो ने दूसरी ओर वज्ञानिक तथा गणितीय रचना के सिद्धा तो की ओर बहुत कम ध्यान दिया। जबकि ब्रितानी विश्लपणवादी तथा महाद्वीपीय वस्तुस्थितिवादी दोनो ही तत्वदर्शन के विरोधी हैं। दोनो अपनी वृत्ति म अनुभववादी हैं। कि तु दशन क रचनात्मक रूप क विषय म व काफी मतभेद रखते है।

आयर के लिए तो यह कहा जा सकता है कि उनका दशन ब्रितानी अनुभववादी की भाषाई व्याख्या म ही निहित है। यह बात द फाउण्डेश स आव एम्पिरिकल

---

[1] देखें एन० एस० स्टेबिंग कृत लोजिकल पोजिटिविज्म एण्ड एनालिसिस एव एम० ब्लक कृत रिलेश स बिटवीन लोजिकल पोजिटिविज्म एण्ड द केम्ब्रिज स्कूल आव एनालिसिस (जनल यूनिफाइड साइ स 1939)।

नोलेज (1945) *म स्पष्ट हो जाती है। यह किताब पूर्णत शास्त्रीय ब्रिटिश समस्या* स सम्बद्ध है जो बाह्यजगत सम्ब धी हमारे ज्ञान की है। इसके साथ ही उनके विमश से यह प्रकट होता है कि उन्होने महाद्वीपीय दशन सम्ब धी खोज भी की है। *व यह प्रदर्शित करने का प्रयास करते है कि कोई भी पयवेक्षण यथाथवादियो तथा* ऐंद्रिय सवेदना के सिद्धान्तवादियो के बीच के झगडे को सुलझा नही सकता। जब ऐंद्रिय सघात के हामी यह कहते हैं कि पदार्थों के प्रत्यक्षीकरण के समय जो परिवतन कार्यशील रहते है वे *तथा विभिन्न प्रकार के दशको के द्वारा किए गए पर्यवेक्षणो की* विविधताएँ इस दृष्टिकोण के साथ समन्वित नही हो सकती कि हम भौतिक पदार्थों को प्रत्यक्षत देखते हैं तब यथाथवादी सदव ही इसका यह उत्तर दे सकते हैं कि ऐंद्रिय सघात के हामी भौतिक पदार्थों का एक *अत्यन्त सकीर्ण दृष्टिकोण* लेकर चल रहे हैं। तब प्रश्न यह रहता है कि क्या यथाथवादियो के साथ यह कहना अधिक सुविधा-जनक है कि भौतिक पदाथ एक ही समय से विभिन्न रगो के हो सकते हैं? या फिर ऐंद्रिय सवेदन के हामियों के साथ यह कहना कि वे एक साथ विभिन्न रगो के नही हो सकते? यह एक ऐसा प्रश्न है जिसका पयवेक्षण से कोई नाता नही है। चूँकि हम जगत् के विषय म सुगम एव सगत भाषा म या तो ऐंद्रिय सवदन की भाषा म या फिर भौतिक पदाथ की भाषा मे बातचीत कर सकते हैं। हमे यही निश्चित करना पडेगा कि ऐसी कौनसी भाषा है जो सुगमता पूवक हमारे श्रोठो स प्रवाहित हो सके।[1]

आयर की स्वय की तरजीह *ऐंद्रिय सवेदन भाषा* को है। व फाउण्डेशन्स आव एम्पिरिकल लग्वेज को सघटनवाद के बचाव के पक्ष का एक ग्रथ मानकर व्यापक रूप म पढा गया है। आयर का कथन है कि ब्रितानी अनुभववादी इसलिए *भटक गए क्योंकि व ऐंद्रिय सघातो प्रत्ययो तथा ऐसे कुछ पदो का इयत्ताओ के नाम* समझते रहे और यह मानत रहे कि इनक मूलभूत तत्वो पर भी ठीक उसी प्रकार विचार हो सकता है जस दूसरी इयत्ताओ पर। इस तरह हम यह बात भली भाति *पूछ सकते हैं कि क्या ऐंद्रिय सवदन कोई ऐसी धातु होती है जिसे हम देख नही* पाते? इस तरह चर्चा करन से ऐंद्रिय सवदनात्मक पदावली के पूरे उपयोग को खो देना होगा। या तो ऐंद्रिय सवदन के विभ्रम की शास्त्रीय समस्या फिर हमारे समक्ष

---

[1] विटजिंस्टीन के प्रभाव मे ऐसा ही दृष्टिकोण जी० ए० पाल द्वारा अपनाया गया है। देखें उनका निबन्ध इज देयर ए प्राबलम अबाउट सेन्सडेटा? (पी० ए० एस० एस० 1936) (एन० एल० 1 म पुन मुद्रित) यह निबन्ध आज के ज्ञान मीमासा सम्बन्धी विवादो म शास्त्रीय महत्व का हो गया है। पाल ने वस बहुत कम लिखा है– किन्तु वे एक प्रभावशाली अध्यापक रहे हैं, अमरीका एव आस्ट्रेलिया दोनों मे। इन्ही दशो म उन्होने विटजिंस्टीन की स्थापनाओ की चर्चा की।

प्रस्तुत हो जाएगा। यदि उदाहरण के लिए कोई हमसे पूछता है जब एक व्यक्ति तारे देखता है तो वह कितने तारे देखता है? हम इस प्रश्न का उत्तर देने से इस आधार पर मना कर देना चाहिए कि इसका कोई आधार नही है क्योंकि जो व्यक्ति वास्तव मे तारे देख रहा है वह यह नही बता सकता कि उसने कितने तारे देखे हैं। हम यह अनुमान नही लगाना है कि उसके ऐन्द्रिय संवेदन मे उस समय वे तत्व सक्रिय थे जिन पर उसने ध्यान नही दिया बल्कि यही कि ऐन्द्रियसबद्ध तारे गणनीय नही हो सकते, यद्यपि वास्तविक तारे ऐसे हैं।[1]

सघटनवाद की रचना आयर की दृष्टि मे इस प्रकार श्रेष्ठ ढग से हो सकेगी। भौतिक पदार्थों से सबद्ध दैनिक कथनो को ऐसे वाक्यो मे अनूदित किया जा सकता है जो मात्र ऐन्द्रिय सवेदन को ही सदर्भित करते है। इनमे उस प्रकार के सशर्त कथन भी शामिल है कि यदि मैं अमुक अमुक काम करूँ तो मुझे अमुक अमुक ऐन्द्रिय सवेदन का अनुभव होगा। इस अवस्था पर की गई एक विदित आपत्ति यह है कि ऐन्द्रिय सवेदन को बताने वाले कथनो की इकाई भौतिक पदार्थों से सबद्ध कथन के किसी भी तरह समानार्थी नही है। यह बात इस तथ्य मे प्रकटती है कि भौतिक पदार्थों से सबद्ध कथन सदैव ही सुधार योग्य हैं और इस सबध मे प्राप्त नए अनुभव हम उनके दोषपूर्ण कथन का अधिकार [illegible] जाते हैं जबकि ऐन्द्रिय सवेदन से सबधित कथनो की इकाई परिभाषा से ही असशोधनीय है। आयर इस प्रकार समानार्थी कथनो की अनुपस्थिति को स्वीकृति देते है। किन्तु वे यह नही मानते कि भौतिक पदार्थसबधी कथन ऐन्द्रिय सवेदनो से भिन्न कोई और अनुभूति प्रकटाता है। कोई व्यक्ति दरवाजे पर है यह वाक्य किसी विशिष्ट व्यक्ति सबधी कथनो का समानार्थी नही है। जैसे या तो क या ख या ग दरवाजे पर हैं।' तो व्यक्ति' कोई यहा किसी ऐसी इयत्ता का नाम नही है जो उस विशिष्ट व्यक्ति से अलग हो।

अधिक से अधिक हम इतना ही कह सकते है कि ऐन्द्रिय सवेदन कथन कभी भी समुचित रूप मे भौतिक पदार्थों का अकन नही कर सकते। परिणामत यह विश्लेषण करना मुश्किल हो जाता है कि मन से सबधित कथनो को ऐन्द्रिय कथनो की इकाई मे बदल दिया जाय तो भी हम ह्यूम की भांति ऐन्द्रिय सवेदन के बीच रहे सबधो का जिक्र कर सकते हैं जो हमें हमारे अनुभवो से भौतिक पदार्थों से सबधित कथनो की रचना करने की प्रेरणा दे सकते हैं। यहां यह बात महत्वपूर्ण है—कि ह्यूम की पुनर्व्याख्या करने के प्रयास मे आयर ब्रितानी अनुभववाद की परम्परागत

---

[1] इसके बाद हुए सवाद के लिए देखें आयर कृत द टर्मिनोलोजी आव सेंस डेटा (माइंड 1945), पुन मुद्रित फिलोसोफीकल ऐसेज 1954 मे। तथा उसमे सदर्भ रूप मे दिया गया साहित्य।

भौतिकवादी अवस्था में चले जाते हैं। उन्होंने लिखा कि समस्या को उठाने के समय मुझे यह अधिक सुविधाजनक लगा मानो मैं एक प्रकार के पदार्थों से दूसरे प्रकार के पदार्थों की रचना करता चल रहा हूँ। किन्तु मूलतः इस शब्दों का संदर्भ देने वाली समस्या की दृष्टि से ही देखना चाहिए।' उनके पाठक उनकी इस बात से सदैव ही आश्वस्त नहीं हुए कि उनके वाद-विवाद को सहजता से आकारगत अवस्था में अनूदित किया जा सकता है। जबकि तथ्य यह है कि आयर की पुस्तक की नवीनता संघटनवाद को भाषापदों में बदल सकना थी।[1]

लैंग्वेज, ट्रूथ एण्ड लोजिक (1940) के द्वितीय संस्करण में आयर के आमुख को तर्कसम्मत वस्तुस्थितिवाद पर अन्तिम कथन कहा जा सकता है। यह आमुख उन मुश्किलों को जो इस वाद के समक्ष प्रस्तुत हुई हैं बहुत ही सफाई के साथ प्रस्तुत करता है। हम उन्हें स्पष्ट ही इस बात को समझने में बेचैन देख सकते हैं कि जो कुछ निरूपित (सत्यापित) किया जाना है वह मूलतः क्या है? वे वाक्य एवं तर्कवाक्य के बीच कथन को दर्शन में नया संदर्भ देकर प्रवेश कराते हैं। वाक्य की परिभाषा वे व्याकरणसम्मत सार्थक शब्दों के समूह के रूप में करते हैं। एक कथन यह बताता है कि उन शब्दों की अभिव्यक्ति का स्वरूप क्या है तथा एक तर्कवाक्य वाक्यों की अनुश्रेणी है जिसमें केवल सार्थक शब्दों या वाक्यांशों का प्रयोग किया गया हो। इस तरह यह वाक्यांश 'अर्थहीन तर्कवाक्य' आयर की दृष्टि में एक विरोधाभास है। केवल वाक्य ही शब्दशः सार्थक हो सकते हैं एवं कथन ही निरूपणीय (सत्यापनीय) हैं। इस बात को यों ही स्वीकार किया जाय या नहीं या फिर इसमें और कोई संशोधन हो यह बात पाठकों पर छोड़ दी गई है।

आयर एक बार फिर निरूपण (सत्यापन) की प्रकृति के संबंध में परेशान हो जाते हैं। सशक्त रूप में निरूपण किए जाने की व्याख्या करें तो ऐसा लगता कि आधारभूत तर्कवाक्यों के अलावा अन्य सभी को नकारना होगा (विशेषकर उस समय जब श्लिक की भाँति कोंस्टेटेशंस की परिभाषा करें तो) और तो भी अपने क्षीण रूप में देखें तो बात पर्याप्ततः वस्तुस्थितिवादियों जैसी नहीं लगती

---

[1] इसी विषय पर अन्य समसामयिक विवादों के लिए देखें 1937 में आर० बी० ब्रेथवेट द्वारा पी० ए० एस० में लिखे संघटनवाद पर कुछ निबंध जी० एफ० स्टाउट के (1938), आर० आई० आरन के (1938) डी० जी० सी० मक्नब (1940) डब्लू० एफ० हार्डी (1945) एवं आयर द्वारा पुनर्विचारित व्याख्याएं। (1946) संघटनवाद की विशद व्याख्या के लिए देखें डब्लू० टी० स्टेस कृत थ्योरी आव नोलेज एण्ड एग्ज़िस्टेंस (1932)।

क्योंकि निश्चय ही तत्त्ववादी तर्कवाक्यों में प्रस्तुत कुछ अनुभव तो साधक होते हैं।[1] वास्तव में यही विभ्रम है जिसमें निरन्तर ह्यूम की भाँति वस्तुस्थितिवादियों ने अपने को पड़ा पाया। तत्त्ववाद को अग्नि में डाला तो विज्ञान भी उसके साथ उसकी आहुति बन जाएगा। अग्नि की लपटों से विज्ञान को बचाओ तो तत्त्ववाद रेंगता हुआ उसके साथ आ जायगा।[2] आयर इस स्थिति का सामना निरूपण के सिद्धान्त में एक मौलिक सुधार करके करते हैं—जिसका यहाँ वर्णन करना जरा दुष्कर है।[3] वास्तव में तर्कसम्मत वस्तुस्थितिवाद का सर्वाधिक महत्त्व तो इसमें है कि उसमें तत्त्ववाद का सरलतम भाषा में खण्डन किया गया है। एक बार यह मान लें कि निरूपण के सिद्धान्त के विस्तृत विवेचन में तत्त्ववादी विश्लेषण की अपेक्षा पड़ेगी, बस, तो फिर समूचा तर्कसम्मत वस्तुस्थितिवाद का ढाँचा ढह जायगा। इसका जादू विलीन हो जायगा।

आयर द्वारा प्रस्तुत आमुख का सामान्य उद्देश्य तर्कसम्मत वस्तुस्थितिवाद के जरिए भाषा विश्लेषण की दिशा में जाना था। जिसके लिए एक बार वे विस्फोटक रहे अब वे उसकी अत्यन्त धैर्य के साथ सिफारिश करते हैं। एक मूलभूत आधार पर वे भाषाई व्याख्या में भी परे चले जाते हैं इस बात का अस्वीकार करके कि प्राग्भावी तर्कवाक्य भाषाई नियम मात्र हैं। ऐसे नियम उनकी दृष्टि में स्वीयात्मक हैं जबकि तर्क के नियम आवश्यक सत्य हैं।[4]

चूँकि दर्शन के सम्बन्ध में भाषाई दृष्टिकोण ह्वटेस में दिये गए गणितीय एवं तर्कीय सत्यों के आधार पर ही प्रारम्भ हुआ था इस मामले में प्रस्तुत किये गए पुनर्विचार ऐतिहासिक महत्त्व के हैं। फिर भी आयर यह मानते हैं कि तार्किक सत्यों की आवश्यकता चाहे नियमों की इकाइयों से तादात्म्य न भी रखे, तो भी उनका ही परिणाम है। मूलतः वे भाषाई पीढ़ी के वस्तुस्थितिवादी ही रह जाते हैं।

---

[1] आधारभूत तर्कवाक्यों के लिए देखें आयर का निबंध 'फिलोसोफिकल एनालिसिस' में सपा० एम० ब्लैक (1950)। फिलोसोफिकल ऐसेज के नाम से पुनः प्रकाशित।

[2] देखें जे० ए० पासमूर ह्यूम्स इन्टेन्शन्स (1952)।

[3] आलोचना के लिए देखें ए० चर्च को (जे० एम० एल० 1949 में)।

[4] प्रारम्भिक दृष्टिकोण के लिए देखें ए० जे० आयर, सी० एच० 'ह्वाइटले व एम० ब्लैक कृत ट्रुथ बाई कन्वेन्शन (एनालिसिस 1936), एम० मैलकम आर नेसेसरी प्रोपाजीशन्स रीयली वर्बल? (माइण्ड 1946) ए० सी० यूविंग कृत द लिंग्विस्टिक थ्योरी आव अप्रायोरी प्रोपोजीशन्स (पी०एस०एस० 1939), डब्लू० सी० ब्रिटन एवं जे० ओ० अमसन कृत आर नेसेसरी ट्रुथ्स ट्रू बाई कन्वेन्शन? (पी० ए० एस० एस० 1947)।

अध्याय १७

तर्कशास्त्र अर्थविज्ञान एवं रीतिविधान

प्रिंसिपिया मैथेमेटिका के प्रकाशन के बाद इंग्लैण्ड में प्रतीकात्मक तर्कशास्त्र के प्रति लोगों की रुचि कम होती गई। इसका नेतृत्व जर्मनी, हालैण्ड, पोलैण्ड एवं संयुक्त राज्य अमरीका के हाथों चला गया। और वह भी दार्शनिकों[1] के हाथों में न रहकर गणितशास्त्रियों के हाथों में। सर्वप्रथम प्रिंसिपिया मैथेमेटिका में संशोधन किए जाने पर बल दिया गया। इसके स्वयंसिद्धों को एक स्वयंसिद्ध में बदल दिया गया और यह कार्य प्रकारों के सिद्धांत तथा 'यूनीकरण के स्वयंसिद्ध के सिद्धान्त' के निचोड़ पर सिद्ध किया गया।[2] अब गणितशास्त्री इस बात पर सहमत नहीं थे कि गणित की रचना केवल रसल-व्हाइटहेड द्वारा सुझाई विधि के अनुसार तर्कशास्त्र पर की जानी चाहिए। या फिर तर्कशास्त्र की संगति गणित से अलग भी सिद्ध की जानी चाहिए।

इस तरह अतर्क समारी (एंटीलाजिस्टिक) गणित के दो भाग शीघ्र निर्धारित हो गए। पहला हिल्बर्ट के नेतृत्व में आकारवादियों का तथा ब्राउवर के अधीन

---

[1] इसके बावजूद भी ऐसे संकेत मिले हैं कि ब्रितानी दार्शनिकों में प्रतीकात्मक तर्कशास्त्र के प्रति एक रुचि जाग्रत हो रही थी। यही कारण है मैंने इन दार्शनिक खोजकर्त्ताओं के बारे में एक अलग संक्षिप्त निर्देशिका इसमें सम्मिलित कर ली है। मुझे इस बात की गलतफहमी नहीं है कि जो कुछ मैंने लिखा है वही उस विशाल विविध एवं कठिन साहित्य का उपयुक्त विवरण है। इसके लिए जे० एस० एल० में प्रकाशित व्यापक रिव्यू तथा ओमनिया देखें। द्रष्टव्य आर० फेज बिरैवशास नोवलैस दे ला लोजिस्तीक आवस एतरस कनिस (रिव्यू नियोस्कोलास्तीक दे फिलोसोफी 1946), एम० बास एवं जे० रीनहार्ट लोजिक इन फ्रांस इन द ट्वेंटियथ सेंचुरी (फिलोसोफिकल थोट इन फ्रांस एण्ड यूनाइटेड स्टेटस सपा० एम० फारबर 1950) फोनीकस दे ग्वेरे तथा फ्रोमोकस देस एवीस द अप्रेस ग्वेरे (एक्वपलिटीज 1950)।

[2] देखें अध्याय 9 (प्रकारों के सिद्धांत के लिए)। रसल के स्वयंसिद्धों का एक स्वयंसिद्ध में अवयूनित (रिड्यूस्ड) किया जा सकता है। यह बात सर्वप्रथम जे० नीकोड ने ए रिडक्शन इन द नम्बर आव द प्रिमिटिव प्रोपोजीशन्स आव लोजिक (प्रोसीडिंग्स आव द केम्ब्रिज फिलोसोफीकल सोसाइटी 1917 में) लिखी।

अन्त साक्ष्यवादियो का।[1] गणित की[2] स्थापना पर लिखी गई रचनाओ म हिलबट न पूणत आकारी गणित की सभावना को प्रकटाया। अर्थात् तर्काकार के ऐसे गणित को जो अपनी अभिव्यक्तियो क आशय स पूणत मुक्त हैं। इस तरह के विशुद्ध कलन म जो प्रिंसिपिया मैथेमेटिका म भी उपलब्ध नही है किसी स्पष्ट परिभाषा की उपलब्धि नही है क्योकि इसमे किसी इयत्ता के विशेष वग का सदभ प्रस्तुत नही है। परिभाषाओ का स्थानान्तरण ऐसे रचना सबधी नियमो ने कर लिया है जो उस अवस्था को पेश करते हैं जिसम प्रणाली के प्रतीक काय करत हैं तथा उस रूपान्तर के नियमो के जरिए भी, जो स्वयसिद्धो स सूत्र प्राप्त करन की विधि का नियमन करते हैं। यद्यपि ये नियम प्रणाली के स्वयसिद्धो म म ही निर्मित होत हैं तो भी य स्वय सिद्धसत्य नही होते। ये हिलबट की सृष्टि म उसी प्रकार स काय करते हैं जिस प्रकार शतरज के नियम। प्रतीको का भी विचार रखना पडेगा केवल (वास्तविक या सभव) कागज म चिह्न के रूप मे, किसी विशेप वस्तु का प्रतीकाकन करन क लिए नही।

रसेल आकारवादियो के प्रति शिकायत करते हुए कहते हैं कि एक आकारवादी ऐस घडी बनाने वाले मे कम नही जो घडियो को सुन्दर बनाने मे इतना निरत है कि वह समय बनाने के उनके उद्देश्य को भी भूल जाता है।' उनका तक है कि

---

1 विवाद के बिन्दुओ के लिए देखें एम० ब्लक द नेचर आव मैथेमेटिक्स (1933), एफ० गोसेथ द्वारा सपा० फिलोसोफी मैथेमेटीक (एक्चुअलिटीज 1939) एव अधिक शास्त्रीय चचा के लिए देखें एस० सी० क्लीन कृत इण्ट्रोडक्शन टू मैटामैथेमेटिक्स 1952।

2 देखें डी० हिल्बट आन द फाउण्डेशास आव लोजिक एण्ड अरिथमेटिक (मोनिस्ट 1905), डी० हिल्बट एव पी० बर्नेस कृत गुदलेगेन देर मैथेमेटिका (1934–1939), डी० हिल्बट एव डब्लू० एकरमन प्रिंसिपल्स आव मैथेमेटिकल लोजिक (1928 अंग्रेजी अनुवाद द्वितीय सस्करण जिसम आर० एफ० ल्यूस क नोटस है 1950), एच० बी० करी आउटलाइन्स आव ए फोमलिस्ट फिलोसोफी आव मैथेमेटिक्स (1951)। अनुभववादी विज्ञान को आकारगत रूप देने क प्रयास भी हुए हैं। इसक लिए देखें जे० एच० वूजर कृत द टेकनीक आव थ्योरी कस्ट्रक्शन (यू० एस० 1939)। यह इस क्षेत्र की एक सुन्दर भूमिका देती है। आकारवादियो का दृष्टिकोण पूणत एग्जियोमेटिक मेथड इन बायोलोजी (1957) म देखा जा सकता है। बायोलोजी एण्ड लग्वेज (1952) स्वयसिद्धो की दृष्टि स अपेक्षाकृत उससे कम सबधित है। यह पुस्तक प्रयोगात्मक विज्ञान के रीतिविधान से सम्बद्ध अनेक महत्वपूर्ण समस्याओ की चर्चा करती है। आकारी मनोविज्ञान के लिए देखें सी० एन० हल कृत प्रिंसिपल्स आव बिहेवियर (1943)।

गणित का प्रारम्भ प्राकृतिक अंकों से होना चाहिए, व्याख्या न किए गए प्रतीकों से नहीं। और इनकी अभिव्यक्ति भी गणितीय सत्यों मे होनी चाहिए–स्वीयात्मक नियमों मे नहीं। हिल्बर्ट रसेल से इस बात मे सहमत होने के लिए तैयार थे कि गिनती के लिए हम साधारणतः गणित के अङ्कों का उपयोग मे लेते हैं, किन्तु उनका उद्देश्य साधारण तो नहीं है। वे तो स्वयं गणित की संगति सिद्ध करने मे लगे। इस विशेष उद्देश्य के लिए सबसे पहले उनके लिए यह आवश्यक है कि वे गणित को आकारी स्वयंसिद्ध प्रणाली मे बदलें। ऐसी आकारी की रचना एवं परीक्षण करना ही अधिगणित (मेटामैथेटिक्स) का उद्देश्य है जो गणित से भिन्न है। अधिगणित मे गणितीय प्रणालियों पर विचार होता है उनका उपयोग नहीं। यही कारण है कि गणितीय प्रतीक अधिगणितज्ञ के लिए कागज पर मढ़े चिह्न मात्र होते हैं। गणित का आकार देकर अधिगणितज्ञ यह विचारने के लिये आगे बढ़ सकता है कि क्या अमुक अमुक स्वयंसिद्धों की इकाई से निगमित परिणामों से विरोधाभास प्रकट सकता है? अर्थात् क्या विरोधाभासी सूत्रों को इस प्रणाली से निष्पन्न किया जा सकता है? यदि ऐसा कोई विरोधाभास नहीं प्रकटता है तो आकारी प्रणाली संगत है। किन्तु आगे अब अधिगणितज्ञ अपनी क्षमता का प्रदर्शन भी करता है। कोई भी प्रणाली जो प्रतीकों की व्याख्या सहवर्ती परिभाषाओं के माध्यम से करती है और उन्हें किसी एक विशेष वर्ग की इयत्ताओं के लिए उपयुक्त मानती है तो प्राकृतिक अङ्क भी संगत होने चाहिए। इस तरह साधारण गणित की संगति भी पूर्णतः आकारी प्रणाली के जरिए भी सिद्ध की जा सकती है।

इस योजना को कार्यान्वित करने के लिए आकारवादी को यह निश्चय करने के लिए कि उसका सूत्र वैध है सामान्य प्रणाली की आवश्यकता होती। क्योंकि केवल मात्र यह देख लेना और इसी की प्रतीक्षा करना पर्याप्त नहीं है कि क्या विरोधाभास स्वयं उस दौरान प्रकटता है या नहीं? आकारवादी को यह बताना पड़ेगा कि विरोधाभास उसकी प्रणाली मे उत्पन्न नहीं हो सकते। और यह ऐसा उसी वक्त कर सकता है जब वह किसी प्रस्तुत सूत्र के विषय मे यह निश्चित रूप से कह सके कि वह प्रणाली मे वैध है या नहीं। इसलिए उस वक्त आवश्यकता से अधिक हलचल मची जब (1931 में) कुर्त गोदेल ने यह बता दिया कि प्रिंसिपिया मैथेमेटिका जैसी प्रणाली मे और वास्तव मे किसी भी प्रणाली मे–जो गणित की दृष्टि से सुसम्पन्न हो ऐसे तर्कवाक्य अवश्य ही होंगे जो उस प्रणाली द्वारा अपने आप में ही सिद्धीकरणीय न हों। अब यह बात स्पष्ट थी कि आकारवादियों को समस्त गणित को संगत सिद्ध करने मे कठिनाई क्यों आई थी। यह कार्य अपने आप मे ऐसी प्रकृति का था कि वह कभी भी पूर्ण नहीं हो सकता

था ।[1] क्योंकि यदि आकारवादी अपनी अतिवादी महत्त्वाकांक्षाओं का त्याग भी कर देते, तो भी उनका प्रभाव प्रतीकात्मक तर्कशास्त्र पर काफी गहरा पड़ा था । बहुत से तर्कशास्त्री तो इस बात से आश्वस्त हो गए थे कि जब तक एक आकारी स्वयंसिद्ध प्रणाली में किसी तार्किक सिद्धान्त को रखा नहीं जाता तब तक उसका महत्त्व क्षणिक ही होता है ।

हिल्बर्ट का गणित-दर्शन परिष्कृत स्वयंसिद्ध ज्यामिति को अपने गणित का सामान्य नमूना मानता है । इसके विपरीत अंतःसाक्ष्यवादियों के लिए यह सामान्यतः गणितीय आगमन में निहित है । गणितीय आगमन की दो अवस्थाओं ने अंतःसाक्ष्यवादियों का ध्यान अपनी ओर खींचा । पहली तो यह कि सारे अंकों के सम्बन्ध में यद्यपि यह एक निष्कर्ष पर पहुँचने की विधि है तो भी वह कहीं यह मानकर नहीं चलती कि अंकों की वास्तविक समग्रता (टोटलिटी) जैसी कोई चीज है भी जिसे वास्तविक अनन्त कहा जा सके । दूसरे इसमें 'जोड़' करने जैसी किसी प्रक्रिया का भी उपयोग हुआ है जिसे प्रयुक्त करना हम जानते हैं और इसमें सिवाय उन अंकों के अन्य किसी अंक का संदर्भ भी नहीं है जिसकी रचना करना भी (जैसे अमुक अंक के अनुवर्ती) हम जानते हैं । हिल्बर्ट ने कहा था, यद्यपि अधिगणित को अपने आपको उन्हीं प्रविधियों तक ही सीमित कर लेना चाहिए जिनकी वैधता का अंतःसाक्ष्य से अनुमान लग सकता हो । गणित का हाथ उससे भी मुक्त है । अंतःसाक्ष्यवादी इसके विपरीत, सिवाय इसके कि गणित में भी वे ही प्रक्रियाएं काम में ली जानी चाहिए जिनका अंतःसाक्ष्य से स्पष्ट संकेत मिल रहा हो, अन्य कोई बात मानने के लिए तैयार नहीं हैं– और इससे उन्हें विशुद्ध गणित की कुछ शाखाओं को भी परित्याग करने का जिम्मा लेना पड़ा है । उनकी दृष्टि में इसी प्रकार गणित को विरोधास्पद स्थिति में पड़ने से बचाया जा सकता है ।

---

[1] गोडेल का निबंध उबर फोरमल अनेन्तशीडबेयर सात्ज़े देर प्रिंसिपिया मैथेमेटिका अंड वेरवान्तर सिस्टिमे जो मोनात्सेफ्ते फूर मैथेमेटिक अंड फिजिक में प्रकाशित हुआ । अन्य मामलों में उनके तर्क की चर्चा सी० ए० चर्च के निबंध ए नोट आन द एन्तसीदुंग्स प्राब्लेम' (जे० एस० एल० 1936) में देखें । देखें, बी० रौसर कृत एन इनफारमल एक्सपोज़ीशन आव प्रूफ्स आव गोडेल्स थ्योरम्स एण्ड चर्चेस थ्योरम्स' (जे० एस० एल० 1939) एवं जे० एन० फिण्डले कृत, गोडेलियन सेण्टेंसेज ए नान न्यूमेरिकल एप्रोच' (माइण्ड 1942) । बाद की चर्चाओं के लिए (पुस्तकसूची सहित) देखें ए तारस्की अनडिसाइडेबल थ्योरीज (1953), डब्लू एकरमैन कृत सोल्वेबल केसेज आव द डिसीज़न प्रोब्लेम (1954), निर्णय-समस्या या "एन्तसीदुंग्स प्रोब्लेम' उन शर्तों को प्रस्तुत करने की समस्या है, जिनमें कोई तर्कवाक्य सिद्ध हो सकता है ।

अन्त साक्ष्यवादियो की दष्टि मे गणित अनुभव से चुनने तथा तदनन्तर अनन्त रूप से उनकी पुनरावृत्ति करने की सम्भावना से प्रकटता है। वे किसी ऐसे अक को मानते ही नही जिसे इस तरीके से व्यक्त किया जा सके।[1] इस तरह वे गणित को तक पर आश्रित नही मानते। क्योंकि तकशास्त्र पहले ही इस गणितीय सत्य को मानता है कि प्रतीक पुनरावत्य (रिपीटेबल) हैं। गणित की सुसगति तथा तक की सुसगति दोनो को वास्तव मे, समान रूप से साथ साथ स्थापित करना पडेगा।

शास्त्रीय गणितज्ञ को यदि यह सिद्ध करने के लिए कहा जाय कि 'प गुण से युक्त एक न विद्यमान है' तो वह यह काम इस तकवाक्य से यह विरोधाभास निगमित करके कर सकता है कि सब न के साथ यह बात सही नही है कि न मे प गुण है। यह बतलाने मे कि यदि हम किसी अक की रचना करना जानते हैं तो वह अक अस्तित्व म है अन्त साक्ष्यवादी अस्तित्व के तमाम परोक्ष प्रमाणो की वधता को अमान्य कर देता है। शुद्धिवादियो का इस सम्बन्ध मे कुछ चौका देने वाला यह निष्कष है कि 'विलम्बित मध्य का शास्त्रीय सिद्धान्त' (प्रिंसिपल आव एक्सक्लूडेड मिडल) भी इसके साथ ही अमान्य कर दिया जाना चाहिए। क्योंकि यदि अन्त साक्ष्यवादी यह मानता है कि इन वाक्यो का इस प्रकार बदलाव सही है अर्थात् 'यह गलत है कि सब न के साथ यह बात लागू नहीं है कि न मे प का गुण विद्यमान है' को बदलकर 'कम से कम एक न म तो प गुण मोजूद है' कहना वध है तो तत्काल ही वह यह भी मान रहा होगा कि अक का अस्तित्व परोक्ष रूप स स्थापित किया जा सकता है। ब्राउवर की दष्टि मे यह तकवाक्य कि 'कम से कम एक न मे तो प गुण मौजूद है' इस सदभ म न तो सही है और न गलत। वे उसे अनिश्चयात्मक मानते हैं। क्योंकि प्रस्तुत न की व्याख्या करने के सम्बन्ध म कोई नियम बन नही पाए हैं। इसलिए जो तकशास्त्र गणित के समानान्तर दौडता है त्रि-मूल्यात्मक होना चाहिए। वही तकशास्त्र ऐसा है जिसकी सगति प्रदर्शित की जा सकती है। ब्राउवर इस सबध

---

[1] अन्त साक्ष्यवादियो की दाशनिक पृष्ठभूमि के लिए देख एल० ई० जे० ब्राउवर कृत कोन्शसनस फिलोसोफी मेथेमेटिक्स (प्रासीडिंग्स आव द टेथ इण्टरनेशनल काग्रेस आव फिलासोफी 1949) देखें उन्ही का लिखा निबन्ध 'इण्ट्यूशनिज्म एण्ड फोमलिज्म' (बुलेटिन आव द अमेरिकन मथमटिकल सोसाइटी 1913) देखें एच० वील कृत फिलोसोफी आव मेथेमेटिक्स एण्ड नेचुरल साइन्स (1949) ए डूसडन ब्राउवस कण्ट्रीब्युशन्स [illegible] [illegible] फाउण्डेशन्स आव मैथेमेटिक्स (बुलेटिन अमरिकन मैथेमेटिकल सोसाइटी 1924) ए० एम्ब्रोस कृत फिनिटिज्म एण्ड द लिमिटस आव एम्पिरिसिज्म (माइण्ड 1937) अन्त साक्ष्यवादी तकशास्त्र को ए हेटिंग एव कोल्मोगोरोफ द्वारा नराकार दिया गया है देखें ए० हेटिंग कृत इण्ट्यूशनिज्म (1956)

के परिचित 'सत्य या असत्य' के द्वैत को 'सत्य, असत्य या अनिश्चयात्मक' को त्रैत में विभक्त करते हैं।

पोलैण्ड में, इसी बीच, बिल्कुल भिन्न दार्शनिक धरातल पर त्रि-मूल्यात्मक तर्कशास्त्रों के प्रति रुचि जाग्रत होनी प्रारम्भ हो गई थी।[1] पोलिश तर्कशास्त्र का आधार अरस्तूवादी तर्कशास्त्र था। अरस्तू द्वारा सुझाई समुद्री लड़ाई की समस्या ने ही जिसे सामान्य भाषा में 'भविष्य की आयत्तता (फ्यूचर कंटिंजेंटस) की समस्या' कहा गया था, लूकासीविज को विलगाए मध्य' के सिद्धान्त पर आक्रामक होने को विवश कर दिया था।[2] उदाहरण के लिए, यदि घटना घटित होने से पूर्व कोई यह कहे कि

---

[1] मीनोंग के शिष्य ट्वार्डोव्स्की द्वारा स्पष्ट एवं सही के भेद पर दिए गए बल ने पोलैण्ड में तर्कशास्त्र के प्रति रुचि जाग्रत कर दी। इनके प्रसिद्ध शिष्य थे जैन लूकासीविज। इनको न केवल पोलिश प्रतीकवाद का प्रवर्तन करने का श्रेय मिला, और जिसके कारण जटिल तार्किक आकारों की रचना में भी सुविधा मिली थी, अपितु इन्हें पोलिश तर्कशास्त्रियों को बहुत से मूलभूत विचारों को समझाने का श्रेय भी प्राप्त है। इसी भाग से अर्थात् वारसा भाग से टार्स्की एवं लेस्नोव्स्की आए जिनके व्यष्टि कलन' (कलकुलस आव द इंडिविज्युअल्स) सिद्धान्त ने बहुतों का ध्यान आकर्षित किया है। (उदाहरणार्थ देखें, एन गुडमैन कृत द स्ट्रक्चर आव एपीयरेंस) क्रैको में तर्कवादियों के एक स्वतन्त्र भाग के विषय में सबसे सुन्दर सूचना एल० चिवस्टेक की रचनाओं में मिलती है जिन्होंने थ्योरी आव कन्स्ट्रक्टिव टाइप्स' (1914-15) नामक सिद्धान्त दिया। देखें उनकी पुस्तक द लिमिट्स आव साइन्स (1935) एवं इस पुस्तक का अध्याय 9, (नोट)। पोलिश भाग के सम्बन्ध में विस्तार के लिए देखें, जेड० जारदन कृत "द डेवेलमेण्ट आव मैथमटिकल लोजिक एण्ड आव लाजिकल पोजिटिविज्म इन पोलैण्ड बिटविन द टू वार्स" (पोलिश साइन्स एण्ड लर्निंग नं० 6, 1945), ए एन प्रायर कृत फोर्मल लोजिक (1953) जिसे त्रि-मूल्यात्मक एवं तर्काकारों के लिए विशेष रूप से देखा जाना चाहिए। उन्हीं की टिप्पणी *'लूकासीविजेन सिम्बोलिक लोजिक* (ए० जे० पी० 1952) देखें। आई० बोचेन्स्की कृत प्रेसी दी लोजीक मैथेमेटीक (1948) भी देखें जो पोलिश एवं रसेलवादी प्रतीकवाद के बीच रहे स्पष्ट सम्बन्धों का उल्लेख करती है। वर्तमान पोलिश तर्कशास्त्र के लिए देखें टी० कोटारबिन्सकी कृत ला लोजीक एन पोलोने 1945 55' (लि एत्यूदीस फिलोसोफिक्स 1956)

[2] पोलिश भाषा में उनकी प्रथम पुस्तक थी द प्रिंसिपल्स आव कण्ट्राडिक्शन एन एरिस्टाटेलियन लोजिक (1910)। वर्तमान एवं पुराने (मध्ययुगीय) तर्कशास्त्र के पारस्परिक सम्बन्धों में रुचि रखना पोलिश तर्कशास्त्र की मुख्य प्रकृति थी। प्रायर की पुस्तक तथा उसमें संदर्भित अनेक निबन्ध इस सम्बन्ध में देखें। विशेष तौर पर जे०

सेलेमीस का युद्ध तो होगा तो प्रकटत यह कथन असत्य दिखाई नहीं देता, किन्तु फिर भी, यदि यह सत्य है तो लूकासीविज के विचार में हम यह निष्कर्ष लेने के लिए विवश हैं कि भविष्य पूर्व-निश्चित है, क्योंकि इसी कारण तो यह बात वास्तविक युद्ध से पूर्व ही सही हो गई। इस नियतिवादी निष्कर्ष से बचने का एक ही मार्ग है कि सत्य-असत्य के मूल्य से परे हम एक तीसरे मूल्य को स्वीकारना होगा। यह मूल्य तटस्थता का मूल्य होगा। तब हम यह कहने योग्य होंगे कि सेलमीस का युद्ध होगा न तो सत्य है न असत्य।' और इस तरह हम असत्य या नियतिवादी व्यूह में फसने से बच जाएँगे। एक बार इन तीनों मूल्यों के सिद्धान्त को तर्क में स्वीकृति *मिल जाय तो फिर इस बात का कोई कारण नहीं दिखाई देता कि हम उपर्युक्त* अपर्याप्त निष्कर्ष पर ही लटके रह जाएं। इसीलिए पोलिश तर्कशास्त्री तटस्थ (एन वेल्यूड) मूल्य प्रणाली पर तत्काल ही विचार करने में लग गए।

अन्य मामले में अरस्तू में उनकी रुचि उन्हें परम्परागत द्विमूल्यीय तर्कशास्त्र से आगे ले जा सकी। इस बार अब इस रुचि ने उन्हें एक यथावस्थी तर्कशास्त्र (मोडल लाजिक) निर्मित करने की ओर प्रेरित किया, जिसमें तर्कवाक्यों को या तो आवश्यक या सम्भव या असम्भव कहा गया है तथा इसके साथ ही साथ उन्हें सत्य असत्य भी माना गया है।[1] पोलेण्ड की क्रांतिकारी आस्था से प्रेरित होकर अन्य तर्कशास्त्रियों ने तर्कशास्त्र के क्षेत्र को अवश्यकरणीयता के तर्कशास्त्र में बदलने का प्रयास भी किया था जो कथन सम्बन्धी परम्परागत तर्कशास्त्र के अतिरिक्त था।

बोचन्स्की कृत एनसिएण्ट फार्मल लोजिक (1951) देखें। पी० बोएह्नर कृत मैडावल लोजिक (1952) जे० लूकासीविज कृत एरिस्टोटल्स सिलोजिस्टिक (1951) ए० एन० प्रायर कृत थ्री-वल्यूड लोजिक एण्ड फ्यूचर कण्टिन्जेण्टस (पी० क्यू० 1952) आर० जे० बटलर कृत एरिस्टोटल्स सी फाइट एण्ड थ्री वेल्यूड लोजिक (पी० आर० 1955) जी० ई० एम० एंसकोम्बे कृत अरिस्टोटल एण्ड द सी बटल (माइण्ड 1956)। आकारीभूत बहुमूल्यीय तर्कशास्त्र के लिए देखें जे० बी० रोसेर एवं ए० आर० टर्केट कृत मैनीवल्यूड लाजिक्स (1952)। इस ग्रन्थ में प्रारम्भिक डायलाग उन दार्शनिक विचारों की चर्चा करता है जिनसे बहुमूल्य तर्कशास्त्र का उद्भव हुआ।

[1] यथावस्थी फलनों ने पहले ही सी० आई० लूइस एवं सी० एच० लगफोर्ड की कृति सिम्बोलिक लोजिक में अपना प्रभाव दिखाना शुरू कर दिया था। इसमें आवश्यकता पर बल दिया गया था। देखें जी० एच० वान राइट कृत एन एसे इन मोडल लोजिक (1951) आर० फेज ले लोजिक्स नोवलेस दे ला मोदलोइत (रिव्यू निओ स्कोलास्टीक दे फिलोसोफी 1937)।

प्रश्नात्मक तकशास्त्र की सम्भावना प्रकटाने स सम्बधित जाच पडताल भी की गई थी।[1]

इन विकासो न स्वभावत ही आकारवादी तकशास्त्रियो म प्रसन्नता की एक लहर दौड़ा दी थी। आकारी रूप देने के लिए एक प्रणाली के बाद दूसरी प्रणाली की रचनाएँ होने लगी ताकि सगति का परीक्षण लिया जा सक। तटस्थ (न) मूल्य क स्वयसिद्धीकरण क विषय म काफी शक्ति एव ऊर्जा लगाई जा रही थी। यथार्थतात्मक प्रणालिया के निर्माण तथा उनम निहित निर्णायक समस्याओ पर विचार करने की दिशा म भी बहुत लोग प्रवृत्त हो गए थ। मूड्स के कठोर अभिप्रत' की प्रणाली को भी बूले क बीजगणितीय तकशास्त्र पर प्रयुक्त किया गया। और तो और अरस्तू क तकशास्त्र को भी इसस अछूता नही छोड़ा गया। आश्चय नही कि बहुत कम लोग इस सबक बावजूद भी गणितीय क्षमता रखने वाले थे जिसस व प्रतीकात्मक प्रहेलिकाओ का तत्र क माध्यम से अध्ययन कर सकें। आकारी करण के मूल्य को स्वीकृत करते हुए और उसका शुद्ध से शुद्धतम गणित पर प्रयोग करने क लिए महत्व मानकर भी बहुत स दाशनिक यह कहने को उद्यत थ कि इसका दाशनिक महत्व नगण्य ही था। तो भी जसा हम देख चुके हैं तात्त्विक समस्याओ पर आकारी दृष्टिकोण का निश्चय ही कारनप एव तकसम्मत वस्तुस्थितिवादियो पर सीधा-सीधा प्रभाव पड़ा था। किन्तु इसके परोक्ष प्रभाव भी रह थ। साधारण भाषा म दशन को भलीभाति आकारीकरण की प्रणाली क विरुद्ध एक प्रतिक्रिया माना जा सकता है। एसा सकेत भी है कि नव तकशास्त्र दशन को विविध दिशाओ म बढ़ने की ओर भी प्रेरित कर जाएँ।[2]

---

[1] निश्चयात्मक तकशास्त्रीय सस्करणों के लिए देखें ई० मली प्र द सेजेसेत्ज़े देस सोलेंस (1926), ज० जार्जसन इम्परेटिव्स एण्ड लाजिक (एक० 1938), ए० होफ्स्टट्टर एव ज० सी० सी० मकिन्सी ग्रान द लोजिक ग्राव इम्पेरटिवस (पी० एस० सी० 1939) ए० रास इम्परेटिव्स एण्ड लाजिक' (पी० एस० सी० 1944), आर० एम० हेयर 'इम्परेटिव सेण्टेंसज (माइण्ड 1949), ए० ई० डकन-जोंस एसशन्स एण्ड कमाण्ड्स' (पी० एस० सी० 1951)। प्रश्नों के लिए देखें एम० एल० एव ए० एन० प्रायर इरोटेटिक लोजिक (पी० आर० 1955)। द्रष्टव्य डिओण्टिक लाजिक सलक जी एच वोन-राइट (माइण्ड 1951) तथा इसक साथ ही ए एन प्रायर कत द एथिकल कोपुला' (ए जे पी 1951)।

[2] द्रष्टव्य के आर० पापर डब्ल्यू० सी० नील ए० ज० प्रायर ह्वाट कन लौजिक डू फोर फिलोसोफी ? (पी० ए० एस० एस० 1949)। ऐसे सामान्य प्रश्नो पर कि क्या वकल्पिक तकशास्त्र हो सकता है ? अथवा अरस्तू एव रसेल की भाति क्या तक की कोई एक प्रणाली हो सकती है ? देखें वगफोड 'कन्सनिग लोजिक्स

पोलिश तर्कशास्त्रियो म से अग्रेजी जगत के परिचित लोगो में बहुत विख्यात हैं ए० तार्स्की । *उन्ही की पुस्तक इन्ट्रोडक्शन टू लोजिक एण्ड टू द मेथडोलोजी आव* डिडक्टिव साइन्सेज (1936) 1941 मे अग्रेजी सस्करण के रूप मे भी प्रकाशित हुई है । टार्स्की का नाम विशेषत दो बातो के साथ जुडा है तर्कशास्त्र एव अधितर्कशास्त्र सबधी भेद के लिए तथा सत्य के अर्थ-विज्ञानसबधी सिद्धान्त के लिये । अधितर्कशास्त्र तार्किक प्रणालियों की चर्चा करता है उसी भाति जिस भाति अधिगणित गणित को आकारी रूप देता है । फिर भी हिलबर्ट के अधिगणित एव टार्स्की के अधितर्कशास्त्र म मौलिक भेद है । हिलबर्ट के अनुसार अधिगणित गणित की निराकारी चर्चा है जबकि टार्स्की एक आकारी अधितर्कशास्त्र की रचना करने क लिए चेष्टाशील थे जो उनकी दृष्टि मे साधारण भाषा की अस्पष्ट एव अयुक्तियुक्त अभिव्यक्तियो स मुक्त होगा, और वह अपनी बधता क लिए हिलबर्ट द्वारा सुझाये गये प्रत्यक्ष अन्त साक्ष्य पर आश्रित भी नही होगा ।

कारनप कृत लोजिकल सिन्टेक्स आव लग्वेज टार्स्की की प्रणाली का व्यवहार म लिए जाने का उदाहरण है । यहा तक कि सर्वाधिक आकारवादी तर्कग्रन्थ भी इस धारणा की व्याख्या को साधारण भाषा म कहने के अनुच्छेदों से भरे हैं और उनमे तार्किक सूत्रो के निर्माण की विधि तथा उनके पारस्परिक सबधो का सकेत देने का प्रयास है । कारनप का कथन है यदि ये सरणिया स्वय आकारी हो जायें तो तमाम तर्कशास्त्र पूर्णत सही हो जायगा ।' द लोजिकल सिन्टेक्स आव लग्वज ऐसे वाक्यो के विषय मे वाक्यों की रचना करने की सही विधि का वर्णन करता है । किन्तु अर्थविज्ञान पर कार्य करते हुए इसी दौरान म टार्स्की ने ही कारनप को लोजिकल सिन्टेक्स आव लग्वज की कठोरता को थोडा नरम करने के लिए सहमत किया, क्योकि इस पुस्तक म कारनप ने उन सारे अर्थ-सदर्भों को तत्ववादी कहकर अनादृत किया था जिन्हे वाक्यों के पारस्परिक सबधों के जरिए व्यक्त नही किया जा सकता हो । टार्स्की के प्रभाव म आकर उन्होने स्टडीज इन सेमेंटिक्स लिखा जो पहले से कम आरम्भ प्रहारवादी थी ।

अपने सक्षिप्त इतिहास में अर्थविज्ञान (सेमटिक्स) नामक शब्द ने बौद्धिक क्रिया की विविध भूमियो पर पदक्षेप किया है । ऐसे बे सेमान्तीक (1897) में

प्रिंसिपल्स (बुले० अमे० मैथ० सोसा० 1928) । पी० वीस आन आल्टरनेटिव लोजिक्स (पी०आर० 1937) एफ० वसमन आर देयर आल्टरनेटिव लोजिक्स ? (पी० ए० एस० 1945), सी० आई० लूइस की इसी पुस्तक के बारहवें अध्याय में पढ़े । ई० टोम्स कृत द ला आव एक्सक्लूडेड मिडिल (पी० एस० सी० 1941), सी० आई० लूइस पाल वीस आन आल्टरनेटिव लाजिक्स (पी० आर० 1934) ।

मिस्टर ब्रियल ने इस शब्द को गढ़ा था और उसे अर्थ सम्बन्धी भाषाई जांच की संज्ञा से अभिहित किया था। ब्लिस्टेम्ब द्वारा इसका आशय वही लिया गया जो कारनप द्वारा तर्कसम्मत वाक्यावली (लाजिकल सिन्टेक्स) का लिया गया था। इसका प्रयोग बहुधा अर्थ संबंधी जांच पड़ताल के लिए भी हुआ है जो पीयर्स के संकेत सिद्धान्त में प्रकटी है या जो फ्रेगे द्वारा प्रस्तुत अर्थ एवं संदर्भ के भेद में प्रकटी है तथा जो विट्जनस्टीन के चित्र सिद्धान्त में व्यक्त हुई है। अधिक लोकप्रिय स्तर पर कहें तो कहना होगा कि विश्लेषण करने का ऐसा प्रयास जो भाषा की जटिल हुई स्थितियों के लिए प्रयुक्त हुआ हो अर्थ विज्ञान कहलाएगा।[1]

अर्थ-विज्ञान का यह वाद का संस्करण द मीनिंग आव मीनिंग में रूपायित हुआ है। इसकी रचना सी० के० ओगडेन ने एवं आई० ए० रिचर्ड्स ने की जिन्होंने पीयर्स के निबंधों का मनोयोग [illegible] अध्ययन किया था और जिन पर उन्होंने एक लम्बा परिशिष्ट भी दिया है। और थोड़ा बहुत (रसल के माध्यम से) उनका फ्रेगे से भी परिचय था। सामान्य शब्दों में, उन्होंने पीयर्स के संकेत सिद्धान्त एवं व्यवहारवादियों के मनोविज्ञान को उस रूप में संयुक्त करके रखा जो रसेल कृत एनालिसिस आव माइण्ड में अभिव्यक्त हुआ।

द मीनिंग आव मीनिंग की दो बातों ने विशेष हलचल मचाई। इसमें प्रस्तुत 'नाममात्रवाद' (नोमिनलिज्म) एवं 'भावनात्मक अर्थ के सिद्धान्त' ने। जैसा कि समसामयिक दर्शन में भी बहुधा चर्चा रहती है, ऑगडन एवं रिचर्ड्स ने भी मीनोंग महोदय के उस 'पदार्थ सिद्धान्त' से भीषण उद्धरण प्रस्तुत किए हैं। यदि हम यह मानने का दुस्साहस करें कि अमूर्त सत्ताएं 'नामरूप' मात्र सत्ताएं हैं,[2] तो यही घटित होगा। आगडेन एवं रिचर्ड्स यहां आकर एक दूसरे ही प्रतिवादी छोर

---

[1] मैक्स ब्लैक कृत लैंग्वेज एण्ड फिलोसोफी (1949) नामक ग्रंथ में वर्तमान समय में प्रकटी अर्थ विज्ञान संबंधी विविधताओं की सुंदर व्याख्या है। सेमेंटिक्स नामक अध्याय में इस संबंध में लिखी गई अधिकांश रचनाओं का इसमें संदर्भ है। मुझे अपने इस ग्रंथ में बहुधा ब्लैक की रचनाओं का उल्लेख करने का सुअवसर मिला है, जो असंपृक्त अनुभववादी दृष्टिकोण से लिखी गई है। ब्लैक की रचना में समसामयिक दर्शन की प्रमुख समस्याओं की सुंदर विवेचना मिलेगी। उनके निबंधों के संग्रह में जो उन्होंने एल० लिंस्की के सहकार में सेमेण्टिक्स एण्ड द फिलोसोफी आव लंग्वेज (1952) के नाम से संकलित किया है, अभिधायकता सत्य एवं सार्थकता के संबंध में अमरीकी विद्वानों के मत भी दिए गए हैं।

[2] इसके भीषण प्रतिवाद के लिए देखें, ए०एल० प्रायर कृत एण्टिटीज (ए जे पी 1954)।

में जा पड़ते हैं, जिसकी आलोचना विटजनस्टीन को भी फिलोसोफिकल इन्वेस्टीगेशन्स नामक पुस्तक में करनी पड़ी। उन्होंने यह तर्क प्रस्तुत किया कि प्रतीकवादी उपस्थापना (सिम्बालिक एक्सप्रेसन) से अलग हटकर उचित प्रतीक सदैव ही किसी वास्तविक घटना का नामांकन करता है या फिर उसका विस्तार इसी प्रकार के नामों को इकाई में किया जा सकता है। उनकी रचनाओं में प्रस्तुत यह दृष्टि साइन्स एण्ड सेनिटी (1933) में ए० कोजिब्स्की द्वारा तथा द टिरेनी आव वर्ड्स (1938) में स्टुअर्ट चेज द्वारा अपनायी गयी। अमूर्तता पर इतनी प्रबलता में कदाचित कभी भी प्रहार नहीं किया गया हो। मानवी विचारों के एक व्यापक क्षेत्र को अपमानजनक शब्दावलि में खोखले अमूर्तीकरण की संज्ञा दे दी गयी थी।

वर्णनात्मक (डेस्क्रिप्टिव) एवं भावात्मक (इमोटिव) भाषा के इनके द्वारा किए गए भेद को मानने वाले सभी जगह पैदा होते चले गए। प्रायः इसका प्रयोग उस भाषा या अर्थ के स्वरूप पर प्रहार करने के लिए होता था जो भौतिक विज्ञान के तर्कवाक्य' की कसौटी पर नहीं आ सकता था। किन्तु इसके व्यापक दार्शनिक परिणाम निकले।[1] यह अच्छा है नामक तर्कवाक्य के संबंध में आगडन एवं रिचर्ड्स लिखते हैं कि अच्छा' शब्द का एक खास नैतिक अर्थ है अतः यह विशुद्ध रूप से भावात्मक शब्द है। अच्छा है का कोई प्रतीकात्मक फलन नहीं है। यह केवल एक मनोवृत्ति को व्यक्त करने वाला चिह्न है। और यह कदाचित अन्य लोगों में भी इसी मनोवृत्ति को जाग्रत करता है या फिर उन्हें एक या दूसरी तरह के ऐसे ही कार्य करने की ओर प्रेरित करता है। नीतिशास्त्र के प्रति यह दृष्टिकोण सी० एल० स्टीवेन्सन के निबंध परसुएजिव डफिनीशन्स (माइण्ड 1938) में पूर्णतः अभिव्यक्त हुआ है। उनकी पुस्तक एथिक्स एण्ड लैंग्वेज (1944) में भी यह व्यक्त हुआ है। इस दृष्टिकोण ने उस दृष्टिकोण का खण्डन करने में सहायता की कि प्रत्येक कथन जिसका आकार सत्य है' वाला है केवल सत्य का ही विवरण प्रस्तुत करता है। इस तरह कथनों के विविध आशयों के संबंध में इसके जरिए मार्ग खुल गया। बाद में तो शीघ्र ही वर्णनात्मक एवं भावात्मक शब्दों का द्वैत भी नगण्य मानकर त्याग दिया गया।

---

[1] देखें ब्लैक, स्टीवेन्सन एवं रिचर्ड्स कृत ए सिम्पोजियम आन इमोटिव मीनिंग (पी०आर० 1948)। साधारण भाषा में यदि आप वर्णनात्मक एवं भावात्मक शब्दों के अन्तर को देखना चाहें तो देखें, एम० ई० टोमलिन एवं के० बेयर कृत आन डिस्क्राइबिंग (माइण्ड 1952)। भाषा के प्रकारों का गंभीर एवं तात्विक विश्लेषण देखें कम्युनिकेशन (1939), लेखक के० ब्रिटन। रिचर्ड्स एवं आगडन से सीखी हुई बातों को ब्रिटन ने समन्वित कर दिया है और ऐसा करते समय उन्हें रसेल कारनप जोन, विजडम आदि का भी खयाल रहा है।

उन प्रथ३नानिको मे से जिनकी रचनाए व मोनिग ग्राव मीनिग के ही स्तर की है सर्वाधिक गमीर एव व्यवस्थित सी डब्लू० मोरिस[1] हैं। वे भी पीयस के बडे उपकृत हैं। वास्तव म उनकी रचनाए मी पीयस के सकेत के सिद्धा त की विस्तृत विवेचना है और वे मो व्यवहारवादी दाशनिक हैं। फाउण्डेश स ग्राव द थ्योरी ग्राव साइ स (यू० एस० 1938) नामक अपने ग्र थ मे उ होंने सकेत क सामा य सिद्धा त को तीन मागो म विभक्त किया है, ग्रोर उसके लिए ऐसी प्रणाली अपनायी है जिससे माषा के प्रयाग सबधी कोई स्थिर नियम निर्धारित हो सकें। यह बात उ होने सीमिग्रोटिक्स' (शब्दाथ-विनान) के विवेचन के समय उठाई है। इन तीनो म पहला मापाई उप-विनान है-वाक्यघटन-विद्या (सिण्टेक्टिक्स), जो शब्द-प्रतीको के पारस्परिक सबध म बताता है, फिर ग्रथ विनान (सेमेण्टिक्स) जो उस विधि का वणन करता है जिसके जरिये शब्द अपना ग्रथ बताते हैं, एव ग्रथ क्रिया विनान' (प्रैग्मेटिक्स) जो शब्द सकेता एव उनक व्याख्याकारो के बोच के सबध का बताता है। मोरिम स्वय मी मुख्यत व्याख्या म रुचिशील हैं। वे विशपत इस बात का बताने का प्रयास करते हैं कि प्रतीको की व्याख्या केवल निजो मानसिक मामला न०ी है, किन्तु वह भी सावजनिक दृष्टि म ग्राने वाले व्यवहार से सबधित अवस्था का मामला है। अन्तत वे मी अपने शब्दाथ-विज्ञान (सेमिग्रोटिक्स) पर पुन विचार करन के लिए बाध्य हो ही जाते हैं। उनको भान होता है कि उन्होने माषा पर ग्रावश्यकता से अधिक बल द दिया था। व मानते हैं कि पीयस का सकेत सिद्धान्त हो उचित विनान है जो व्यवहार की उन अवस्थाग्रो को प्राथमिक मानता है जिनम हमारी क्रियाए हमारे द्वारा प्रस्तुत स्थिति की व्याख्या के परिणाम के रूप मे वर्णित की गई है। सकेत के उपयोग का विशिट व्यवहार इस दृष्टिकोण से हमारे कोट पहनने की क्रिया से उदघृत किया गया है-जो किताब पढ़कर नही, बादल को घुमडता देखकर प्रकट हुई है। मोरिस कत साइ स लग्वेज एण्ड बिहेवियर मे वास्तव म ग्रथविनान सामाजिक मनोविना न के क्षेत्र तक मी चला गया है।

दाशनिक क्षेत्र का अधिक सकीण ग्रथ विनान ग्रागडन एव रिचड्र्स के बजाय टार्स्की म देखा जा सकता है। कठोर ऐतिहासिक याय के हिसाब से, हमे लेस्नो स्की एव टी० कोटारबिस्की की रचनाग्रो का उल्लेख करना होगा, जिनका टार्स्की पर

---

[1] द्रष्ट य सी हे ड्यूकास कृत सम कमेण्ट् ग्रान सी डब्लू मॉरिसेज फाउण्डेशस ग्राव थ्योरी ग्राव साइ स (पी० पी० ग्रार० 1942), जोन वाइल्ड एव ड्यूकास के बीच रहे बाद के सुवाद के लिए देखें (पी० पी० ग्रार० 1947)। मोरिस कत साइस, लग्वेज एण्ड बिहेवियर (1946) म एक मारी पुस्तक-सूची मी है।

काफी प्रभाव पड़ा था। किन्तु यह सब अभी भी अप्रकाशित है—या फिर केवल पोलिश भाषा में ही प्रकाशित हुआ है। पोलण्ड के बाहरी क्षेत्रों में पोलिश अर्थविज्ञान का प्रारम्भ टार्स्की द्वारा 1939 में सत्य की अर्थवैज्ञानिक धारणा[1] पर पढ़े गए निबंध के जर्मन अनुवाद से ही माना जाता है।

यदि तत्ववाद के दैत्य का दमन करना है तो कारनप एवं थूरथ की मान्यतानुसार अर्थ, सत्य एवं शब्द संकेत (डेसिग्नेशन) जैसी अभिव्यक्तियों की परिभाषा विशुद्ध वाक्यविज्ञान के आधार पर ही करनी पड़ेगी [अर्थात् एक आकारी प्रणाली के वाक्यों के गुणों के संदर्भ में ही]। लोजिकल सिण्टेक्स आव लैंग्वेज में कारनप द्वारा इस योजना के जरिए ही इसके कटु निष्कर्ष तक पहुंचने का प्रयास उन्हें भीषण धारणाएं बनाने के लिए बाध्य कर देता है। वे बहुत संकुचित हो जाते हैं। वे कल के भाषण में अफ्रीका का वर्णन था की व्याख्या यों करते हैं कि यह कल के भाषण में अफ्रीका शब्द आ गया इस बात के कहने का गलतफहमी उत्पन्न करने वाला प्रकार है। कारनप टार्स्की के अर्थविज्ञान का स्वागत करते हैं क्योंकि उससे ऐसे जबरदस्ती के अनुवादों की संभावना हट गई थी। जबकि कुछ हठी वस्तुस्थितिवादियों की धारणा थी कि टार्स्की आकारी वेशभूषा में एक तत्ववादी ही थे।

इसके अतिरिक्त भी भाषाई विरोधास्पदों का हल करने का एक तरीका भी टार्स्की ने निकाल लिया। ये विरोधास्पद स्थितियां उस भाषा द्वारा हल नहीं हो सकतीं जिसमें अर्थविज्ञान की गुंजाइश न हो—अर्थात् एक ऐसी भाषा जिसमें न केवल वाक्य हों बल्कि ये वाक्य किस प्रकार के हों उनके नाम भी हों—[बर्फ सफेद है को ही उद्धरण चिह्नों में लिखकर हम बर्फ सफेद है—नामक सीधे वाक्य का नामरूप मान सकते हैं] तथा इसी प्रकार वाक्यों के पद का वर्णन सत्य असत्य' का पर्यायवाची कहकर हम कर सकते हैं। ऐसी किसी भी भाषा में सब वाक्यों की चिन्ता इस आकार में हो सकती है 'सब सत्य वाक्य क्ष हैं।' इस तरह के तमाम वाक्य स्वयं अपना संदर्भ देते हैं। टार्स्की के अनुसार विरोधास्पद स्थिति उस समय स्वयं ही प्रकटती है जब भाषा में ऐसे स्वसन्दर्भित वाक्यों को प्रवेश मिल जाता है। टार्स्की के तर्क इस सम्बन्ध में आकारवादियों के लिए साधारण भाषी दर्शन के

---

[1] इस निबंध का शीर्षक है देर हारेत्स बेग्रिफ इन देन फोर्मेलीसिएर्तन स्प्राखेन' (1936)। उन्हीं की रचना देखें द सेमेण्टिक कंसेप्शन आव ट्रूथ (पी पी आर 1944) जो लिंस्की में पुनः मुद्रित हुई। कोटेरबिंस्की के लिए देखें मार रण्ड का निबंध (एक 1938 जर्मन भाषा में), या फिर उनके तत्वदर्शन के लिए फण्डामेण्टल आइडियाज आव पनसोमेटिज्म (माइण्ड 1955)। यह 1935 में लिखे उनके निबंध का अनुवाद है।

विरुद्ध उपयोग में लिए जाने के तीक्ष्ण उपयोगी हथियारों का काम करते रहे हैं। और चूँकि साधारण भाषा में ऐसे स्व-मन्मशील वाक्यों का आना स्वाभाविक है इस हेतु इनमें अनिवारणीय विरोधास्पदों[1] का होना लाजिमी है।

अर्थविज्ञान के सम्बन्ध में टार्स्की का सुविख्यात योगदान है उनकी सत्य की परिभाषा जो ऐसी परिभाषा के लिए आकार बनाने के लिए भौतिक उपयुक्तता से पूर्ण दिशाओं की खोज करती है। सत्य की उपयुक्त परिभाषा में सम-भाव रहना चाहिए। 'बर्फ सफेद है' उसी समय और केवल उसी समय सत्य है जब बर्फ सफेद हो। अधिक सामान्य भाषा में यह तो कहना पड़ेगा, जहाँ प एक वाक्य है और क्ष उस वाक्य का नाम, तो इसकी परिभाषा इस तरह होगी कि यदि प सही है तो क्ष एवं क्ष के समानार्थी भी सही होंगे। यह सम भाव अपने आप में सत्य की परिभाषा नहीं है। यह बात गलती से कई बार सोच ली गई है। ये तो उनकी दशाओं को प्रस्तुत करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं करता जिनकी आवश्यकता सत्य-सम्बन्धी परिभाषा पूरित करने के लिए होती है। यह स्व-मदय हटाने के लिए सत्य की परिभाषा अधिभाषा (मेटालैंग्वेज) में की जानी चाहिए, ऐसी अधिभाषा में जो *विषयभाषा के प्रत्येक वाक्य को अपने में समाहित कर सकती हो, (क्योंकि ऐसा* कोई भी वाक्य परिभाषा में प्रयुक्त समभावी श्रेणी के प की एवज में रखा जा सकता है) साथ ही विषय वाक्यों के नाम रूपों को भी समाहित कर सकती हो और उन सामान्य तार्किक अभिव्यक्तियों के नामरूप भी, जिन्हें 'यदि एवं केवल मात्र यदि' के आकार में व्यक्त किया गया हो। इस अधिभाषा के द्वारा ही टार्स्की असल सत्य की परिभाषा पर पहुँचते हैं। वह इतनी तकनीकी है कि उस की चर्चा यहाँ करना सम्भव नहीं है। उनके अनुसार यह परिभाषा भौतिक उपयुक्तता की आवश्यकता को पूर्ण करती है और उसमें ऐसी कमी भी नहीं रहती जिससे उसमें विरोधास्पद स्थिति प्रकट सके।

ऐसे आकारी अर्थ विज्ञान के उपयोग के सम्बन्ध में बहुत से दार्शनिक शंकालु हो गए। किन्तु कारनैप को कोई शंका नहीं थी। टार्स्की द्वारा व्यवहृत नई प्रणालियों का वे उत्साहपूर्वक समर्थन करते रहे।[2] इस तरह कारनैप की अभिनव रचनाओं में

---

[1] देखें स्ट्राल कृत इज एवरीडे लैंग्वेज इनकंसिस्टेंट ?'' (माइण्ड 1954) तथा उसमें प्रस्तुत सामग्री का संदर्भ। के आर पापर कृत सेल्फ रेफरेंस एण्ड मीनिंग इन आर्डिनरी लैंग्वेज (वही पुस्तक)।

[2] द्रष्टव्य एम ब्लैक 'द सेमण्टिक डेफानीशन आव ट्रूथ' (एनालिसिस 1948) जो लैंग्वेज एण्ड फिलोसोफी के नाम से पुनः मुद्रित हुई। साथ ही देखें निबंध 'कारनेप आन सिमेण्टिक्स एण्ड लोजिक,' प्रोबलेम्स आव एनालिसिस में (1954), जे एफ

दर्शन को शब्दार्थ-विज्ञान (सेमिओटिक्स) के ही पर्याय के रूप म देखा गया है । (यह मौरिस की शब्दावलि है जो उन्होने ग्रहण की है) वाक्यशैली (सिंटेक्स) को दर्शन मे महत्व नही दिया गया । ऐसे बहुत से प्रश्न (जिनमे एक सार्थकता की समस्या भी है) जिन्हे पहले उन्होने द्वयार्थक पदो मे व्यवहृत किया था अब वे उन्हे ही अर्थविज्ञान की प्राथमिक समस्या मानकर चलते हैं ।[1] किन्तु इसका यह अर्थ नही कि आकार रूप मे उनका कार्य सीमित हो गया है ।

इसके विपरीत द फाउण्डेशन आव लोजिक (1943) सत्य असत्य सत्य का मूल्य तथा चलाक के मूल्य जैसी शब्दार्थक अभिव्यक्तियो को आकार रूप देने का प्रयास है । कारनप की शिकायत है कि तर्कशास्त्रियो ने अब तक इनको अनाकारी रूप म ही प्रयुक्त किया है । उन्होने अपने आपको गलती से बचाने के लिए सामान्य बुद्धि तथा सहज वृत्ति (इन्स्टिंक्ट) से अधिक किसी अन्य माध्यम का सहारा नही लिया ।

मीनिंग एण्ड नेसेसिटी (1947) मे जो कारनप का अर्थविज्ञान सम्बन्धी अध्ययन की तीसरी कृति है कारनप एक बार फिर मिल तथा फ्रेगे[2] के प्रिय कथ्यो की ही चर्चा करते हैं । आधुनिक दार्शनिक तर्कशास्त्रियो ने कारनप की दृष्टि मे सामान्य रूप से यह मान रखा है कि सुगठित भाषा की प्रत्येक अभिव्यक्ति किसी

थोमसन ए नोट आन ट्रूथ' (अनालिसिस 1949) पी एफ स्ट्रासन ट्रूथ वही) एवं देखें पी ए एस एस 1950 । अर्थ क्रिया विज्ञान (प्रग्मेटिक्स) को भी आकारी रूप देने का प्रयास हुआ है । देखें डबलू सेलर्स प्योर प्रग्मेटिक्स एण्ड एपिस्टेमोलोजी (पी एस सी 1947) आर कारनप आन सम कान्सेप्ट्स आव प्रेग्मेटिक्स तथा इसके साथ आर एम चिशोल्म कृत ए नोट आन कारनप्स मीनिंग एनालिसिस (दोनो पी एस 1955 म मुद्रित) ।

[1] कारनप द्वारा लोजिकल सिन्टेक्स आव लंग्वज मे किए गए संशोधनो के लिए देखें इण्ट्रोडक्शन टू सेमेण्टिक्स 1942 का परिशिष्ट । बहुत से मामलो म उनके दृष्टिकोण की श्रेष्ठतम अभिव्यक्ति द फाउण्डेशन्स आव लोजिक एण्ड मैथेमेटिक्स (यू एस *1939)* म देखी जा सकती है ।

[2] राइल का रिव्यू देखें (फिलोसोफी 1949 म) । उन्होने लिखा है, मेरी प्रमुख मान्यता यह है कि यह कार्य नव-दर्शन के लिए चमत्कार-पूर्ण तकनीकी विचारीकरण है । इसके सिद्धान्त मिल से प्रभावित तथा प्रिंसिपल्स आव मैथेमेटिक्स के बाद मुरझाते हुए युग से प्रकट हुए है ।' नेजल का रिव्यू भी देखें (जे पी 1948) एवं कारनेप द्वारा दिया गया राइल एवं नेजल का उत्तर भी देखें एम्पिरिसिज्म सेमेटिक्स एण्ड ओण्टोलोजी (आर आई पी 1950 लिस्की म पुन मुद्रित) ।

ठोस उपजीवी इयत्ता का नाम ही है, जबकि वास्तव म अभिव्यक्तियों का साथकता उनके आशय एव उनके द्वारा एक विस्तृत क्षेत्र की प्राप्ति म निहित है। फ्रेगे की भाषा म उनकी साथकता एक सदभ रखने तथा उसका कोई आशय होने मे निहित है। शब्द-सकेत (डेजिग्नेशन) क इस सिद्धा त क आधार पर जिसको काफी विस्तार मे लिखा गया है, कारनप यथावस्थी तकशास्त्र (मोडल लाजिक) की रचना करते हैं जिसम यथावस्थी वाक्य वाक्य की शब्दाथक धातुओ की 'याख्या करता हुआ माना गया है। [illegible] आवश्यक रूप स ब है' का मतलब यही है कि अ ब है यह वाक्य आवश्यक तकवाक्य है। इस तरह यथावस्थी तकशास्त्र भी अथविज्ञान की एक शाखा मात्र हो जाता है। वास्तव म यदि कारनप सही है तो अथविज्ञान तक की प्रत्येक शाखा का मूलभूत एव महत्वपूण अभिय ता है।

अपनी सभी रचनाओ म, अ य सब मामलो मे चाहे उनम कितनी ही विविधता मिले, कारनप न ताकिक एव वास्तविक सत्य म भेद बनाए ही रखा है। वे यह जान कर दुखी थे कि टार्स्की ने इस भेद को नगण्य माना था। अमरीका के बहुत स प्रमुख तकशास्त्रियो मे डब्लू वी ओ क्वाइन का नाम विख्यात है। वे टार्स्की के विषमवादी सुझावो को एक प्रभावपूण अतिरेक तक ले गए हैं।

हम जिन तकशास्त्रियो की चर्चा कर रहे हैं उनक विपरीत रसल-'हाइटहेड की तक प्रणाली के प्रति क्वाइन वफादार रहे। यद्यपि अपनी पुस्तक 'यू फाउण्डेशा स आव मथेमेटिकल लोजिक[1] म वे प्रकारो के सिद्धा त की परिभाषा कर देत हैं और अपना काय प्राथमिक ताकिक प्रत्ययो की बहुत थोडी सख्या से चला लते हैं प्रिंसिपिया म प्रयुक्त प्रत्ययो से भी कम म। उनकी नव स्थापनाए सम्पूण खण्डन न होकर एक प्रकार का 'हाइटहेड रसल के गणित दशन का सशोधन मात्र है। क्वाइन फिर भी वस्तु-निर्देशात्मक तकशास्त्र के आदश के वफादार हैं और इस बात के प्रति भी सदेहशील हैं कि बिना सिद्धा तो की हत्या किये यथावस्थी तकशास्त्र निर्मित किया जा सकता है। यदि उ हे एक तकशास्त्री क रूप मे रूढिवादी माना भी जाय तो भी यह मानना होगा कि उनकी दाशनिक उक्तिया जो उनके तक से कहीं अधिक सशक्त हैं निश्चय ही ताजे किस्म की हैं। यदि हम उ हे क्रातिकारी न भी कहें तो।

उनके सक्षिप्त निबधो म से खास तौर पर आन 'हाट देयर इज' (आर० एम० 1948) एव टू डोगमाज आव एम्पिरिसिजम[2]

---

[1] सव प्रथम अमेरिकन मैथेमेटिकल म थली (1937) मे प्रकाशित हुआ। सशोधित रूप म पुन मुद्रित हुआ-फ्रोम ए लोजिकल पोइण्ट आव व्यू (1953)।

[2] फ्रोम ए लोजिकल पोइण्ट आव व्यू मे से रिफरे स एण्ड माडेलिटी वाला अध्याय देखें और मीनिंग एण्ड नसेसिटी म कारनेप के साथ रहे सुवाद का भी।

(पी ग्रार 1955)[1] नामक दा निबधो न उनके समसामयिक विचारकों का ग्राश्चय मे डाल दिया है। ग्रान हाट देयर इज इस बात का विचार करने का प्रयास है कि किन मामलो म एक विशिष्ट तार्किक सिद्धान्त क प्रति हमारा स्वीकरण हमे तात्विकी की दृष्टि से प्रतिबद्ध करता है। यह एक ऐसी योजना थी जिसे बहुत से ब्रितानी दाशनिक प्राग्मावी कहकर छाड देते तथा यह कहते कि तकशास्त्र तात्विक दष्टि स तटस्थ है। केवल नामो का प्रयोग हम यह स्वीकारने क लिए प्रतिबद्ध नही करता कि जो नाम हम प्रयुक्त कर रहे हैं–(जैसे पगासस) वे सब ऐसी इयत्ताग्रो का सदभ प्रस्तुत करते हैं, ग्रोर न विधेयों का प्रयाग हो यह बताता है कि समष्टिया विद्यमान होनी चाहिए। इसके दूसरी ग्रोर क्वाइन के ग्रनुसार बद्ध चलाकों का प्रयोग हम प्रतिबद्ध करता ही है। उदाहरण क लिए यह कथन लें कुछ कुत्ते सफेद हैं। यह कहना इस स्वीकरण से किसी भांति कम नही है कि एक ऐसी वस्तु है जिसम कुत्तात्व ग्रोर सफेदत्व दोनो हैं। चाहे यह सब सफेदी एव कुत्ता पन के ग्रस्तित्व को सिद्ध न भी करती हो। इसी भांति क्वाइन की मा यता है कि यह कहना कि कुछ जन्तुग्रो की प्रजाति पारस्परिक रूप मे उवरा है' प्रकट रूप म यह स्वीकारना है कि वह कम से कम ग्रस्तित्व मे तो है।

यह स्वीकरण केवल प्रकट मे है क्योकि एक तकशास्त्री को ऐसी प्रणाली की जिससे य कथन रचे जा सकें ग्रावश्यकता रहती है। यह एक ऐसी प्रणाली है जो रसेल के विवरण के सिद्धान्त' के समाना तर है। इस तरह यह प्रजाति का व्यजित नही करती। ये नव रचित कथन भी ता हम किसी न किसी वस्तु के ग्रस्तित्व से प्रतिबद्ध कर देंगे। कि तु कदाचित् प्रजाति के ग्रस्तित्व क विषय म नही। एक तकशास्त्री हम ग्रपने नव रचित कथन को स्वीकारने के लिए विवश नही कर सकता। कि तु यह देखना महत्वपूण है कि क्या एक एस तकशास्त्र की भी रचना की जा सकती है जो प्रजाति क ग्रस्तित्व से प्रतिबद्ध न हो ग्रौर फिर भी जीवशास्त्रीय कथनों की रचना उससे हो सके ? तब यदि कुछ ग्र य कारणों स (क्योकि शायद यह हम एक ग्रधिक सरल एव व्यापक विचार सबधी योजना प्रदान करती है), हम प्रजाति मुक्त तात्विकी को ग्र गीकार करने की सोच लें तो हम कम स कम यह ता जानेंगे कि तकशास्त्र म ऐसी कोई बात नही है जा हम ऐसी तात्विकी के परित्याग करने के लिए विवश करे। क्वाइन इसी तरह ऐसे गणितीय तकवाक्यो की रचना करना चाहते थे जिनसे उ हे समष्टियो के सम्बन्ध मे प्रतिबद्ध न होना पडे। वे पूणत यह स्वीकारते हैं कि ऐसा करने मे उनक ग्रनुसरण के लिये किसी को थोडा भी बाध्य

---

[1] फ्रोम ए लौजिकल पोइण्ट ग्राव व्यू म दोनो पुन मुद्रित हुए। देखें जे जे सी स्माट कृत क्रिटिकल नोटिस (ए जे पी 1953) एव पी एफ स्ट्रासन कृत ए लौजिशियन्स लण्डस्केप,' (फिलोसोफी 1955)।

नही होना चाहिये अर्थात् उनकी नामवादी धारणा को स्वीकार करके।[2] वे जिस एक बात पर बल देना चाहते हैं वह यह है कि यदि हम आकारीकरण का एक विशिष्ट तरीका अपना लें, तो हम उसी समय उसके साथ चलने वाली तात्विकी को स्वीकारने के लिए भी विवश हो जाते हैं। वे इस बात को संक्षेप मे कहते हैं कि अमूर्त इयत्ताओं को स्वीकारना ही गलत है। और तब उनके स्वीकरण की व्याख्या करते रहना और भी गलत। यों वे उपसंहार करते हैं।

'टू डॉग्माज ऑव एम्पिरिसिज्म' मे क्वाइन दो भिन्न किन्तु जुड़वा रूढ़ियों पर प्रहार करते हैं। पहली यह कि असंशोधनीय (या संश्लेषणात्मक) एवं संशोधनीय (या विश्लेषणात्मक) तर्कवाक्यों मे मौलिक भेद है, तथा दूसरी, कि प्रत्येक सार्थक कथन तात्कालिक अनुभवों की ही रचना है। क्वाइन दुहेम के अनुसरण मे कहते हैं कि वैज्ञानिक तर्कवाक्यों के एक समूह को परीक्षण के लिए लाता है किसी विभक्त कथन को नही। इसलिए एक तर्कवाक्य एक वैज्ञानिक प्रणाली का मूल तत्व है बजाय अनुभवों का सारांश होने के। यदि अनुभव अप्रत्याशित रूप से प्रकट हो जाता है तो कोई भी अग्रिम रूप से यह नहीं कह सकता कि वैज्ञानिक तर्कवाक्यों की कौनसी इकाई त्याज्य होगी। सैद्धान्तिक रूप से तो इनमे से कोई भी संशोधनीय हो सकती है-अर्थात् असंश्लेषणात्मक हो सकता है। इनमे से कुछ तो निस्संदेह दुर्भेद्य दिखाई देती हैं। हम किसी ऐसी स्थिति की कल्पना नही कर सकते जिसमे हम इनको छोड़ सकें। किन्तु प्रमात्रा-संघटनाओं (क्वांटा फ़िनोमिना) के सिद्धान्त की खोज ने जिसके विषय मे अग्रिम रूप से किसी ने भी कल्पना नही की थी, बहुत से वैज्ञानिकों को प्रकट रूप मे अभेद्य तर्ककथनों को छोड़ देने को बाध्य कर दिया-जैसे, कारण-कार्य के तथा विलगित मध्य के सिद्धान्त। यह क्वाइन की दृष्टि मे हमारे लिए एक चेतावनी होनी चाहिए, यह न मानने की कि कोई भी तर्कवाक्य अपने आप मे अनुभव द्वारा असंशोधनीय है।

विश्लेषण संबंधी आकारी परीक्षण ज्ञानमीमांसीय परीक्षणों से किसी भी दृष्टि मे अधिक संतोषजनक नही है। निम्नांकित पंक्ति पर विचार करें। कोई भी

---

[1] देखें पी टी गीच ए जे आयर व डब्लू वी ओ क्वाइन का 'आन व्हाट देयर इज' (पी ए एस एस 1957), एन गुडमैन एवं क्वाइन का 'स्टेप्स टुवर्ड्स ए कोंस्ट्रक्टिव नोमिनलिज्म' (जे एस एल 1947)। इसके साथ क्वाइन का इस निबन्ध पर नोट 'आन व्हाट देयर इज' की पुस्तकसूची म दिया गया है। ए चर्च 'द नीड फोर एब्स्ट्रैक्ट एण्टिटीज इन सेमेण्टिक एनालिसिस' (प्रोसी अमे एकाडेमी आव आर्टस एण्ड साइंस (1951)। कारनेप कृत 'एम्पिरिसिज्म, सेमेण्टिक्स एण्ड आण्टोलोजी' (आर आइ पी 1950), जी जे वारनक 'मैटाफिजिक्स इन लोजिक' (पी ए एस 1950)।

कुमारा शादी–शुदा नहीं है, तो यह विश्लेषणात्मक होगी, क्योंकि इसे पुनरुक्ति में बदला जा सकता है और 'कुमारा' के स्थान पर 'अ–शादी शुदा आदमी' को पर्याय के रूप में रखा जा सकता है। हम यह कैसे कहेंगे कि 'कुमारे' तथा 'अ–शादी शुदा' आदमी पर्यायवाची हैं? तो भी विश्लेषण की दृष्टि से इसका पर्याय बताने के लिए ही होता है। दो अभिव्यक्तियाँ [illegible] तथा य उस समय पर्यायवाची होंगी यदि क्ष य है विश्लेषण योग्य है। किन्तु हर कोई जो इन पर्यायवाचियों को किसी की एवज में रखने की प्रणाली से विश्लेषण का परीक्षण करता है उसे पर्याय की स्वतन्त्र परिभाषा देनी होगी। पर्याय की कोई भी व्याख्या यह तरकीब करने से सफल नहीं होगी। और इससे हम यह निष्कर्ष निकालते हैं कि न तो पर्यायों की एवज में रखने की प्रणाली से और न किसी अन्य माध्यम से ही तर्कवाक्य की एक श्रेणी को विश्लेषण–योग्य मानकर चुना जा सकता है।[1] वे यह मानने को बिल्कुल तैयार हैं कि कुछ ऐसे तर्कवाक्य तो हैं (उदाहरणार्थ गणित के तर्कवाक्य) जिन्हें अन्तिम आधार मानकर हम छोड़ देना चाहिए। किन्तु इसके अतिरिक्त ऐसा नहीं है कि कहीं कोई ऐसा तर्कवाक्य भी है जिसे सैद्धान्तिक रूप में आगे के अनुभव से परिशुद्ध मानकर छोड़ा नहीं जा सके।

आज के तर्कशास्त्रियों में सर्वाधिक स्वतन्त्र (यद्यपि वे भी टार्स्की से अवश्य प्रभावित हुए थे) कार्ल पापर हैं जिनकी रचनाएँ अभी तक निबंधों के रूप में ही प्रकट हुई हैं। अपनी 'न्यू फाउण्डेशन फोर लोजिक' माइण्ड 1943)[2] में वे तर्कशास्त्र की मूलभूत समस्या से प्रारम्भ करते हैं अर्थात् वैध अनुमानों को अवैध अनुमानों से कैसे भिन्न करें इस पर टार्स्की का अनुसरण करते हुए वे वैध अनुमान की परिभाषा

---

[1] देखें लिस्की का सेमेण्टिक्स। गुडमैन का 'आन लाइकनेस आव मीनिंग' (एनालिसिस 1949 के एक निबंध का परिवर्धित संस्करण) बी मैटस 'सिनोनिमिटी' (यूनिवर्सिटी आव कैलीफोर्निया पब्लिकेशन्स 1950) एम जी व्हाइट का 'द एनालिटिक एण्ड द सिंथेटिक एन अनटेनेबल ड्यूएलिज्म' जोन ड्यूई 'फिलोसोफर आव साइन्स एण्ड फ्रीडम' सम्पा० एस हुक (1950)। एनालिसिस में पर्यायत्व पर सी डी रोलिंस के निबंध हैं (1950)। पी वियनपाल (1951) जे एफ टामलिन एवं एल मैकलर (1953) के भी निबंध हैं। द्रष्टव्य एच पी ग्राइस एवं स्ट्रासन 'इन डिफेन्स आव ए डोग्मा' (पी आर 1956)। ए होफस्टेडटर 'द मिथ आव द होल' (जे पी 1954) आर कारनप 'मीनिंग एण्ड सिनोनिमिटी इन नेचुरल लैंग्वेजेस' (पी० स० 1953) डी डब्लू हैमलिन 'एनालिटिक ट्रूथ्स' (1956 माइण्ड)। देखें प्रिंसिपल्स आव साइकोलोजी का अध्याय 14 जो वेसमन एवं जेम्स पर लिखा गया है तथा जिसमें 'आवश्यक सत्यों' पर चर्चा है।

[2] माइण्ड 1948 में किए गए सुधार एवं संशोधन देखें।

उस अनुमान में देते हैं जो इस तरह रखा जाए कि इसकी कोई भी व्याख्या जो इसके प्रमेयों को सत्य बनाती है, उसके निष्कर्ष को भी सत्य करे। इस तरह, उदाहरण के लिए 'यदि प एवं फ, तो प' एक वैध अनुमान होगा क्योंकि कोई भी सत्य तर्क वाक्य यदि 'प एवं फ' में आये हुए प एवं फ की एवज में रख दिया जाए तो इसी व्याख्या से इसका निष्कर्ष प भी सही होगा।

इस मामले में अनुमान की वैधता अमहत्वपूर्ण अल्प है। हम यह कहकर आपत्ति कर सकते हैं कि 'यदि प एवं फ तो प' यह अनुमान ही नहीं है। किन्तु पापर का यह अमहत्वपूर्ण अल्प चुनाव जानबूझ कर है। अपने एक भाषण में (जो उन्होंने टेन्थ इण्टरनेशनल कांग्रेस आव फिलोसोफी (1948) में दिया था) उन्होंने जिसे गणितीय तर्कशास्त्र का अल्पीकरण (ट्रिवियलाइजेशन) करना कहा है, उसी को वे यहां पूर्ण रूप देना चाहते थे। इसके पहले के सारे प्रयास जिनमें तर्कशास्त्र के अल्पीकरण का प्रयास सत्य-सारणी प्रणाली' के जरिए किया गया था, असफल हो गए थे। पापर अपने प्रहार का एक भिन्न मार्ग ही अपनाते हैं। वे सबसे पहले यह बताने निकलते हैं कि गणितीय तर्क के सब मुख्य विचारों को एकाकी आदिम तर्कविचार द्वारा परिभाषित किया जा सकता है। ऐसा निगमनीयता के प्रत्यावर्ती संबंधों तथा अकर्मक संबंधों के जरिए किया जा सकता है। यहां तक कि तादात्म्य एवं परिमाणन भी, जो सत्य-सारणी प्रणाली से परिभाष्य नहीं है, इस निगमनीयता द्वारा परिभाषित हो सकते हैं। इस तरह केवल अल्पाश्रयी अनुमानों के अतिरिक्त अन्य किसी के बिना सहारे गणित के जटिल रूप को इन परिभाषाओं से पूर्णतः प्रकटाया जा सकता है—इस प्रकार जिसे पापर बिना धारणा के तर्कशास्त्र' की संज्ञा देते हैं उसकी रचना करना संभव है। इस स्वयंसिद्धों की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि निगमन का सामान्य सिद्धान्त भी अपने में पर्याप्त रूप से उचित प्रारम्भिक बिन्दु है।

अंग्रेजी प्रदेशों में पापर की विख्यात पुस्तक है, द ओपन सोसाइटी एण्ड इट्स एनीमीज (1945) जिसके प्लेटो एवं हीगल पर किए गए प्रबल प्रहारों के कारण इसने तहलका मचा दिया था। यद्यपि इस पुस्तक में बात ही बात में, तार्किक एवं गणितीय प्रश्न उठ खड़े हुए हैं, तो भी यह हमारी पहुंच से परे की पुस्तक है। किन्तु उनके स्वदेश आस्ट्रिया में पापर ने सर्वप्रथम अपना स्थान रीति वैधानिक के रूप में बनाया। उस समय उन्होंने लोजिक देर फोर्सचुंग (1935) लिखा था। यद्यपि यह किताब अभी भी अंग्रेजी में अनूदित नहीं हुई है और समझने में भी कठिन है तो भी इसके मुख्य सिद्धान्तों का ब्रितानी रीति-वैधानिक रचनाओं पर काफी प्रभाव पड़ा।[1]

---

[1] देखें जे० ओ० विजडम फाउण्डेशंस आव इनफरेंस इन नेचुरल साइन्स (1952), मान सयद रीसेंट फिलोसोफीस (1936), वी० क्राफ्ट द वियना

पोपर सीमानिर्धारण की समस्या (द प्रॉब्लम ऑव डिमार्केशन) को ही अपने अलगाव का बिन्दु मानते हैं। समस्या विज्ञान एवं आभासी विज्ञान में भेद करने की है। आभासी विज्ञान में पोपर के अनुसार न केवल पारवर्ती तत्त्वदर्शन ही शामिल है किन्तु तारकशास्त्र (ज्योतिष) भी जो अनुभववादी होने का दावा रखता है। इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण बात है कि प्रकट रूप से वैज्ञानिक दिखाई देने वाले सिद्धान्त (जैसे मनोविश्लेषण या मार्क्स का इतिहासदर्शन) भी आभासी विज्ञान की ही श्रेणी में आते हैं। पापर यह चर्चा करने में कोई सार नहीं देखते कि ये सिद्धान्त सत्य है या नहीं। बल्कि वे तो यही देखते हैं कि, जैसा वे दावा करते हैं क्या वे उतने ही वैज्ञानिक हैं? खण्डन के शोध कथ्य (थीसिस ऑव रिफ्यूटेबिलिटी) के पीछे कदाचित उनका यही उद्देश्य है। कोई प्राकल्प उसी समय वैज्ञानिक है यदि केवल मात्र सैद्धान्तिक रूप में उसके खण्डन किये जाने की सम्भावना हो।

यद्यपि पॉपर कभी भी वियना वृत्त के सदस्य नहीं रहे वे इसके निकट सम्पर्क में थे और उनके 'खण्डन के शोधकथ्य' के सिद्धान्त को कारनेप द्वारा सार्थकता के निकषण सिद्धान्त का संशोधित रूप ही माना है।[1] उनका यह कथन यों पढ़ा गया 'नहीं सैद्धान्तिक रूप से सत्यापन (निकषण) से नहीं अपितु खण्डन से ही सार्थकता का परीक्षण सम्भव है।' वास्तव में पापर इस बात से आश्वस्त थे कि सार्थकता की समस्या मूलभूत महत्त्व की नहीं है। वस्तुस्थितिवादियों द्वारा निर्धारित सार्थकता की कसौटी द्वारा कोई ठोस परिणाम नहीं निकले हैं। केवल स्वीयात्मक (आर्बिट्ररी) नियमनों की ही स्थापना हो सकी है। खण्डन सार्थकता की कसौटी नहीं है किन्तु विज्ञान एवं उसके यथाकारी प्रतिरूप (सिम्युलक्रा) दिखाई देने वाले आभासी विज्ञानों के बीच का भेद निर्धारण करने की प्रणाली है।

मरकिल (1950), वर्कमीस्टर सेवन थीसेज ऑव लोजिकल पोजिटिविज्म क्रिटीकली एग्जामिण्ड (पी० आर० 1937) कारनेप टेस्टेबिलिटी एण्ड मीनिंग (पी० एस० सी० 1936-7)। राइकनबक कारनेप नीले एवं न्यूरथ की रचनाएँ भी देखें जो इसी अध्याय में चर्चित हुई हैं। पापर का निबन्ध द पावर्टी ऑव हिस्टोरिसिज्म (इकोनोमिका 1944-5) सामाजिक विज्ञानों के रीतिविधान के लिए महत्त्वपूर्ण योगदान है। वे अब लन्दन स्कूल ऑव इकोनोमिक्स में लोजिक एवं साइण्टिफिक मेथड के प्राध्यापक हैं। उनका वर्णन करना हमें अपने अभीष्ट से बहुत दूर ले जायगा। लोजिक डेर फार्शुंग का अनुवाद 1958 में प्रकाशित हो गया है तथा द पावर्टी ऑव हिस्टोरिसिज्म पुस्तकाकार रूप में 1957 में प्रकाशित हुई है।

[1] इसी रूप में इसने कारनेप पर इतना प्रभाव डाला कि वे निकषण से परीक्षण पर आ गए। न्यूरथ इसके अतिरिक्त इसकी आक्रोशपूर्वक आलोचना ही करते रहे। देखें, उनकी कृति सुडो-रेशनलिस्मस दर फाल्सीफिकेशन (एक० 1935)।

कभी कभी ऐसा भी कहा जाता है कि वैज्ञानिक प्राक्कल्प वही है जिसे पुष्ट किया जा सके। कभी ऐसा भी कहा जाता है कि यदि कोई प्राक्कल्प बहुत अधिक सम्भव हो तो वह वैज्ञानिक हो जाएगा। और यहां तक भी, कि वह वैज्ञानिक है यदि वह उस सब की व्याख्या करता है जो सम्भवतया घटित हो सकता है।' खण्डन का सिद्धान्त इन्हीं दृष्टिकोणों के विरुद्ध प्रस्तुत किया गया है। यदि कोई प्राक्कल्प सभी सम्भावनाओं को व्यक्त कर देता है तो वह कुछ भी व्यक्त नहीं करता। यदि उसे किसी पर्यवेक्षण को व्यक्त करना है तो उसे किसी दूसरे पर्यवेक्षण के साथ अप्रयोज्य भी होना होगा। इसी आधार पर पापर मार्क्सवाद के वैज्ञानिक होने के दावे को अमान्य कर देते हैं। जो कुछ घटता है वह सभी सामाजिक विकास के उनके द्वारा स्थापित प्राक्कल्प की ही पुष्टि करता है। किन्तु यदि ऐसा है तो वे कभी भी यह कहने योग्य नहीं रहेंगे कि वस्तुएं एक प्रकार से ही निर्मित न होकर क्यों भिन्न भिन्न प्रकार से निर्मित हो जाती हैं? इस तरह उनके प्राक्कल्प अपनी प्रकृति से ही पूर्णत अवैज्ञानिक है।

किसी अधिक असम्भाव्य प्राक्कल्प पर विचार किया जाना कोई मुश्किल कार्य नहीं है। हम इस सम्बन्ध में जो कुछ करना है वह यही कि हम कोई अल्प या बिल्कुल खोखला सुझाव ही प्रस्तुत करें। जितना कम हम इससे प्रतिबद्ध होंगे, उतना ही अधिक सम्भाव्य वह होगा। इस तरह यदि हम स्पष्ट करना चाहें कि अमुक अमुक व्यक्ति को बुखार क्यों आ गया है तो इसका स्पष्टीकरण कि उसके साथ कुछ न कुछ गड़बड़ है, अधिक सम्भाव्य स्थिति है। कदाचित् इससे भी अधिक कि उसे खसरे का रोग हो गया। किन्तु यह सब पूर्णत वैज्ञानिक मूल्य से विरहित है। पापर के अनुसार वैज्ञानिक अधिक सम्भव प्राक्कल्प की खोज नहीं करता, किन्तु ऐसी स्थिति की खोज करता है जिसमें निश्चित अपेक्षाएं हों। और यदि वे अपेक्षाएं नहीं प्रकटतीं तो निश्चयतः उन्हें अमान्य कर दिया जाएगा। यह सोचना एक उपयोगी श्रम है प्रत्येक वैज्ञानिक कथन किस किस बात को अमान्य करता है। उदाहरणार्थ 'सभी चीते मनुष्यभक्षी हैं' अमनुष्यभक्षी चीतों की सम्भावना को ही अमान्य कर देता है। इस तरह हमें इस की शक्ति का पता चलता है, और हम देखते हैं कि कितना शीघ्र इसका खण्डन भी हो गया ऐसे चीतों की खोज करके।

अन्त में यह कहना ही पर्याप्त नहीं है कि वैज्ञानिक प्राक्कल्प वही है जिसे पुष्ट किया जा सके। क्योंकि यह सदैव ही सम्भव रहा है कि किसी प्राक्कल्प की किसी तरह पुष्टि कर दी जाय। वास्तविक प्रश्न यही है कि क्या एक प्राक्कल्प का भली भांति परीक्षण हो चुका है? अर्थात् क्या उसका खण्डन किये जा सकने की दिशा में पूरे प्रयत्न कर लिये गए हैं? यही आधार पापर तारक विज्ञान के दावों को भी ठुकरा देते हैं। तारक विज्ञानी प्राक्कल्प जैसे कि सितम्बर में जन्मे

लोग भावुक होते हैं, निश्चय ही अनेक व्यक्तियों के जरिए हो सकता है किन्तु ज्योतिषी अपने इस प्राकल्प को खंडन के प्रयास या परीक्षण तक नहीं ले जाता। इसी तरह संक्षेप में खण्डनीयता वैज्ञानिक प्राकल्प का विशेष रूप है और विज्ञान वहीं है जहाँ खण्डन किये जाने के लिये व्यवस्थित प्रयत्न हों चाहे सफलीभूत हों या असफल।

यह तो स्पष्ट है कि पॉपर ने वैज्ञानिक प्रणाली के आगमनात्मक विश्लेषण को त्याग दिया है जिसके अनुसार विज्ञान विशुद्ध पर्यवेक्षण पर आधृत है और आगमन से शनैः शनैः सामान्यीकरण की ओर हम बढ़ सकते हैं। वैज्ञानिक शनैः शनैः यह विश्वास करने लग जाते हैं कि नियमितताओं का अस्तित्व है केवल यह देखकर कि उनके प्रयोगों के परिणामों द्वारा घटनाओं के एक ही प्रकार के रूपाकार (पैटर्न) बार बार प्रकटे हैं। पॉपर के अनुसार दरअसल हम सभी अपेक्षाओं प्रत्याशाओं को लेकर जन्मे हैं और हमारे अन्दर जन्मजात प्रतिक्रियाएं भी हैं जिनमें से नियमितताओं की अपेक्षा सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। हम शनैः शनैः एक आलोचनात्मक दृष्टि विकसित करनी पड़ेगी जिससे सामान्यीकरण की वृत्ति से हम हट सकें। किन्तु हमारे सामान्यीकरणों को परीक्षण तक ले जाने की इच्छा भी रहनी चाहिए।

वे कहते हैं कि पर्यवेक्षण सिद्धान्तों के लिए कोई उपादान (कच्चा माल) नहीं हैं वरन् सिद्धान्त ही हमें पर्यवेक्षणों की ओर ले जाते हैं। **द पोवर्टी ऑव हिस्टोरिसिज्म** में वे लिखते हैं कि वैज्ञानिक विकास की किसी भी अवस्था में हम सिद्धान्त जैसी किसी वस्तु के बिना प्रारम्भ नहीं करते जो हमारे पर्यवेक्षण का निदेशन करता है और पर्यवेक्षण के असंख्य पदार्थों में से चुनाव करने में सहायता करता है। ह्यूम के इस सुझाव पर कि हमारी अपेक्षाएं हमारे अनुभवों के बीच रहे साम्यों के कारण प्रकटती हैं, पॉपर यह आपत्ति करते हैं कि समरूपता सदैव ही हमारे लिए महत्वपूर्ण किसी स्थिति के समानान्तर स्थिति के प्रकट जाने में ही है। इस प्रकार समानता की स्थिति की पहचान ही यह बतलाती है कि हम पहले से ही अपेक्षाएं रखते हैं।

विज्ञान का प्रारम्भिक बिन्दु गल्पों का तीक्ष्ण विवेचन है, उन गल्पों का जो हमारी सहजात रूढ़ियों के कारण उपजते हैं। और ये पर्यवेक्षणों के आकलन नहीं होते। इस प्रकार वे निष्कर्ष निकालते हैं कि वैज्ञानिक का कार्य यह बताने का नहीं है कि वह कैसे पर्यवेक्षणों से सिद्धान्त की ओर गया। आगमन की कोई समस्या उसके समक्ष नहीं है। प्राकल्पों से प्रारम्भ करके वैज्ञानिक गलत प्राकल्पों को अमान्य करता जाता है और यह बताता है कि उनसे ये गलत निष्कर्ष निकले हैं। उसकी विधि का तार्किक औचित्य इस तथ्य में निहित है कि समष्टिगत

तकवाक्य भी, जो विज्ञान की सीमा के अग हैं, ऐसे तकवाक्यो द्वारा गलत सिद्ध हो सकते हैं जो काल और दिक् के एक विशेष बिंदु पर प्रकटो घटनाओं के अस्तित्व का ज्ञापन करते हैं। इस तरह के तकवाक्य आधारभूत हैं। इस अर्थ मे नही कि वे किसी तात्कालिक अनुभव को व्यक्त करते हैं बल्कि इसलिए कि उनक जरिए एक प्राकल्प का परीक्षण हो जाता है। यदि हम एक आधारभूत तकवाक्य को स्वीकार लें क्योंकि इसी बिंदु पर आकर हमारी आस्था का तत्र प्रकटन लगता है, तो हम उन सब प्राकल्पो का परित्याग करना पडेगा जो इसके विरोध मे हैं। कोई प्राकल्प उनकी दृष्टि म आधारभूत तकवाक्यो की इकाई स निर्मित नही होते। मूलत इसी कारण कि ऐसी कोई भी इकाई एक समष्टिगत तकवाक्य की समरूपिणी (इक्वलेन्ट) नही हो सकती अर्थात् ऐसे तकवाक्य की जो अस्तित्वशील तकवाक्यो को नकारता हो। (तकवाक्यो की य इकाइयाँ 'यह एक मनुष्यभक्षी चीता है' —'वह एक मनुष्यभक्षी चीता है' आदि दोनो मिलकर भी कोई चीता अमनुष्यभक्षी नहीं है' की समरूपिणी नही होगी।) इस तरह सामान्य प्राकल्प को संभवत आगमन द्वारा स्थापित नही किया जा सकता।

पापर की रचनाओ का एक तीसरा महत्वपूर्ण पहलू उनके द्वारा सारवाद (एसेंशलिज्म) की आलोचना है। अर्थात् अमुक अमुक वस्तु क्या है ?' इस आकार के प्रश्नो का उत्तर देन का प्रयास। प्रस्तुत वस्तु के सार या वास्तविक प्रकृति क निरूपण के जरिए यह इनक उत्तर देन का प्रयास मात्र है। अधिक सामान्य रूप से, सारवाद एक ऐसा दृष्टिकोण बताता है कि अंतरिम स्पष्टीकरण देन का श्रेय तो केवल विज्ञान को ही है। पोपर की दृष्टि म इससे जिज्ञासाएँ प्रकट जाएगी एव रहस्यवाद प्रारंभ हो जायगा। दरअसल सारवाद की आलोचना करने वाले पापर पहले ही व्यक्ति नही है। इसके पूर्वालोचक बर्कले एव मैश न भी सामान्यत यह विचार किया है कि सारवाद का एकमात्र विकल्प उपकरण वाद (इन्स्ट्रूमेंटलिज्म) है। वैज्ञानिक सिद्धांत उनकी दृष्टि म संसार की अधिक प्रभावशाली प्रतिलिपियाँ प्रस्तुत करने का प्रयास है। वह केवल विवरण नही है। किंतु पोपर की दृष्टि मे उपकरणवाद वैज्ञानिक प्राकल्पो क परीक्षण की प्रणाली का विवरण देने म असमर्थ है। एक उपकरण टूट भी सकता है, या फैशन स बाहर हो सकता है किंतु निश्चय ही इसको अमान्य नही किया जा सकता। इसके अतिरिक्त उपकरण-वाद विज्ञान का एक विशुद्ध तकनीकी दृष्टि स देखने की माग करता है। और इस तरह वैज्ञानिक सिद्धान्तो क उपयोगी ढंग से लागू किए जान से संबद्ध ऐसी समीचीनता को प्रकटाता है जो अन्तत वैज्ञानिक विकास क लिए ही घातक हो जाता है।

पापर, इस तरह उपकरणवाद एव सारवाद के बीच का एक मध्य माग खोजने की आशा करते हैं। एक वैज्ञानिक सिद्धान्त संसार के लिए एक ज्ञान-

पूर्ण अनुमान है और यह अनुमान कठोर आलोचनात्मक परीक्षणों को प्रस्टा सकता है। यह बात जीवित प्राणियों के लिए भी उतनी ही सच्ची है जितनी विद्युदणुओं के प्राक्कल्प के संबंध में सही है। पॉपर की दृष्टि से एक उपकरणवादी गलती से यह सोचता है कि पदार्थ का विद्युदणु-सिद्धान्त मेज कुर्सियों के यथार्थ का खण्डन ही कर देता है और यह बताता है कि अपनी वास्तविक प्रकृति में वे केवल अणुओं के आकलन मात्र हैं। उपकरणवादी यह सोचकर भी कम गलती नहीं करते कि आणविक सिद्धान्त ही यथार्थ की व्याख्या करने के लिए एकमात्र सिद्धान्त है वह उसका विवरण नहीं है। मेजें विद्युदणुओं की सही प्रकृति की नहीं हैं और नहीं विद्युदणु ही मेजों की प्रकृति के हैं। विद्युदणु एवं मेजें दोनों के सत्य संबंधी दावे यथोचित हैं।[1]

पॉपर की रचनाओं में बहुत सी समस्याएँ खड़ी हो गई हैं। इनमें से सर्वाधिक स्पष्ट (जो विशेषतया सांख्यिक यान्त्रिकी से प्रकटी है) यह है कि यद्यपि सम्भाव्य कथन विज्ञान में महत्वपूर्ण कार्य करते हैं तो भी वे खण्डन-योग्य नहीं लगते। कोई भी अस्तित्वशील तर्कवाक्य (जैसे आज बरसात हो रही है) इस प्रकार के किसी प्राक्कल्प को अमान्य नहीं कर सकता है कि कैनबरा में बरसात होने की संभावना का मूल्यांक 'प है। पॉपर ने इस कठिनाई पर काफी सोचा विचारा है। सर्वप्रथम तो वे यह कहते हैं कि यद्यपि प्रमात्रा-नियमों को सांख्यिकीय पर्यवेक्षण से जांचा जा सकता है तो भी वे अपने आपमें सांख्यिकीय नहीं हैं। तथा दूसरे, इसके विपरीत भाव प्रकट जाने पर भी सम्भाव्यता के प्राक्कल्प सैद्धान्तिक रूप से खण्डनीय हैं क्योंकि वे ससीम श्रेणियों की बारंबारता के संबंध में कुछ कहते हैं। किन्तु हम पॉपर के सिद्धान्त के इस पहलू को और भी अच्छी प्रकार से समझ सकेंगे (यह किसी भी दृष्टि से प्रभावशाली भी नहीं रहा है) यदि हम सम्भाव्यता पर हुए अभिनव कार्यों के संदर्भ में ही इसकी जांच करें।

इस संबंध का अधिकांश कार्य अभिनव गणितीय तर्कशास्त्र की भांति (जिसमें प्रायः इसका निकट का संबंध माना गया है) काफी मात्रा में तकनीकी है। उसमें प्रकट दार्शनिक प्रश्नों को यहाँ उठाना सरल नहीं है। केवल सम्भाव्यता के दो प्रमुख मार्गों का वर्णन करके उनमें विद्यमान भेद की चर्चा हो सकती है। पहला मार्ग उन

---

[1] इस प्रश्न पर देखें जे० जे० सी० स्मार्ट द रीअलिटी आव थ्योरेटिकल एंटिटीज (ए० जे० पी० 1956)। जे० वी० थोर्नटन साइण्टिफिक एण्टिटीज (ए०जे०पी० 1953)। सी० एफ० प्रेसले लॉज एण्ड थ्योरीज इन द फिजिकल साइंस (ए०जे०पी० 1954)।

लोगों का है को कीन्स की भांति सम्भाव्यता की परिभाषा दो तर्कवाक्यों के तार्किक सम्बन्धों में देते हैं। तटस्थ तर्कवाक्यों की इकाई की इस सम्बन्ध सूचकता के कारण ही तर्कवाक्य स म प की सम्भाव्यता प्रकटी है।' दूसरा भाग उनका है जो वन के अनुसरण में सम्भाव्यता के बारम्बारी सिद्धान्त की वकालत करते हैं। उनकी व्याख्यानुसार सम्भाव्यता के सिद्धान्त इस प्रकार के हैं, ब घटनाओं का वर्ग घ घटनाओं के वर्ग में क नामक बारम्बारता के साथ घटित होता है। किन्तु जैसा हम देखेंगे "सभी सीमाएँ इतनी स्पष्ट नहीं हैं। और इसकी उप प्रजातियां तो अनन्त हैं[1] ही।

अभिनव रीतिविधायकों में म हेराल्ड जेफ्रेंज कीन्स के बहुत निकट हैं। कीन्सवादी तरीके से सम्भाव्यता के तुलनात्मक विश्लेषण प्रारम्भ करके जेफ्रीज यह बताने का प्रयास करते हैं (साइण्टिफिक इन्फरेंस 1931 में) कि एक ठोस परिमाणात्मक सम्भाव्यता–विश्लेषण गणक मूल्यों व परम्परागत प्रदानों (असाइनमेंटस) की सहायता में ऐसे स्वयंसिद्धों पर स्थापित किए जा सकते हैं जो केवल तुलनात्मक सम्भावनाओं का ही उजागर करते हैं। जेफ्रेंज की रचनाएं आकार में स्वयं सिद्धान्तिक हैं। एक आकस्मिक पाठक के लिए यह बिल्कुल नहीं लिखी गई है और न एक ऐसे दार्शनिक के लिए जो गणितमना न हो। कीन्सवादी दृष्टि का इसमें उल्लेखनीय पुनरुत्थान तथा विकास देखा जा सकता है।

इसी प्रकार का एक और सिद्धान्त जो बारबानों, एवं अभिनव रूप से जे० वोन क्राईज कृत प्रिंसिपल्स आव द केलकुलस आव प्रोबेबिलिटीज (1886) से ही निःसृत है, विटजनस्टीन द्वारा ट्रेक्टेटस में सुझाया गया था और वसमैन द्वारा उसे व्यापक रूप दिया गया। (देखें[2] अर्केन्तनिस 1930 के प्रथम अङ्क में उनका लेख)। यह सिद्धान्त यह मानकर चलता है कि प्रत्येक तर्कवाक्य का अपना एवं निश्चित

---

1 सम्भाव्यता पर नूतन रचना के लिए देखें, ई० नजल प्रिंसिपल्स आव थ्योरी आव प्रोबेबिलिटी (यू० एस० 1949)। एम० जी० केण्डल थान द रिफाइन लिएशन आव थ्योरीज आव प्रोबेबिलिटीज में (1949 जिसमें एक प्रमुख सांख्यकार द्वारा कीन्सवादी तथा बारम्बारी सिद्धान्तों का समन्वय किया है।) केलकुल देस प्रोबेबिलिटीस एक्चुअलिटीज 1951) पी० पी० आर० 1946–6 में आयोजित एक व्यापक एवं गम्भीर गोष्ठी जो सम्भाव्यता पर थी, देखें। जी० बर्गमैन आर० कारनैप, काफमैन नजल ए। विलियम्स आदि ने इसमें भाग लिया था।

2 लोजिस्के एनालाइस दो वारस्कीनलिकिस्त बग्रिफ'। इस अङ्क में राइकेनबक आर० वान मीसस हुआ था फीगल द्वारा सम्भाव्यता पर लिखे निबंध हैं।

क्षेत्र (स्पाइलरोम) होता है अर्थात् उससे कुछ संभावनाएं प्रकटती हैं। विट्जनस्टीन के लिए तर्कवाक्य का क्षेत्र उसके सत्याधारों से मेल खाता हुआ है। यदि एक तर्कवाक्य के सत्याधारों की संख्या र का प्रतिनिधित्व अ प्रतीक से होता है और र तथा स तर्कवाक्यों में विद्यमान सत्याधारों की संख्या को 'अ स' प्रतीक द्वारा व्यक्त किया गया है तो अ स का अ के प्रति अनुपात उस संभाव्यता का मापदण्ड होगा जो र द्वारा स को दी गई है। इस तरह 'प या फ' के संबंध में प की संभाव्यता $\frac{1}{2}$ हो जाती है क्योंकि सत्य सारणियों में से 'प एवं (प या फ)' एक बटा दो अंश में सत्य है जबकि प या फ सही हैं। इसी प्रकार किसी भी आणविक तर्कवाक्य प की संभावना किसी अन्य फ तर्कवाक्य के प्रमाण पर $\frac{1}{2}$ हो जाती है क्योंकि 'प एवं फ' के सत्याधारों के अङ्कों का फ के सत्याधारों के अंकों में यही अनुपात है।

विट्जनस्टीन कीन्स से इस बात में सहमत हो जाते हैं कि किसी असीम (सिम्प्लिसिटर) की संभावना के बारे में बातचीत करने का कोई अर्थ नहीं है। प्रश्न सदैव ही परिचित परिस्थितियों के अन्दर उसकी संभावनाएं निहित करने का है और यह संभावना तार्किक संभावनाओं में रहे पारस्परिक आकारी संबंधों के बीच की प्रागभावी स्थिति के रूप में परिमापित हुई है। केवल इसी दृष्टिकोण के जरिए विट्जनस्टीन के अनुसार हम यह समझ सकते हैं कि संभाव्यता का कलन कैसे हो सकता है। यह कहना कि एक प्याले में से निकाली जा रही काली गेंदों की संख्या करीब करीब उतनी ही पड़ती है जितनी सफेद गेंदों की एक अनुभववादी तथ्य है। गणितीय तर्कवाक्यों के विट्जनस्टीन द्वारा किए गए विवरण से यह तथ्य गणित का नहीं है। इस तरह बारम्बारी सिद्धान्त संभाव्यता के संबंध सूचकों की तर्क गणितीय प्रकृति के विषय में कहने में असफल हो जाता है।

विट्जनस्टीन के लिए अनुभव से निर्धारित सापेक्ष बारम्बारता संभाव्यता के विश्लेषण में एक नकारात्मक महत्व की स्थिति है। मान लो कि इस सूचना के आधार पर (जो मेरे अधिकार में रही साधक सूचना है।) कि एक प्याले में बराबर बराबर सफेद व काले रंग की गेंदें हैं मैंने इस संभाव्यता का कलन किया है कि 'एक काली गेंद अब प्याले से निकाली जायगी।' तब मुझे पता लगता है कि वास्तव में सफेद गेंदों की संख्या निकाली गई काली गेंदों के बराबर ही है। यह बात मुझे मेरी इस धारणा में दृढ़ करती है कि गेंदों का निकाला जाना मुझसे अज्ञात परिस्थितियों के हाथों में अवलम्बित नहीं है। किन्तु संभाव्यता का वास्तविक कलन सदैव ही तार्किक निगमन का विषय है। वैसमैन भी इसी भांति यह मानेंगे कि श्रेणियों में अनुपारी स्थितियों की मात्रा का माप सदैव ही तार्किक दृष्टि पर निश्चय नहीं हो सकता, क्योंकि अनुपारी स्थितियों (ओवरलपिंग) में से विभिन्न संभावित अनुमानों का चुनाव करके हम सांख्यिक अनुभव के आधार पर अपने

परिणाम लाने का प्रयास करते हैं, किन्तु तो भी समाव्यता तो स्वय ही इन्ही श्रेणियो मे रहे सबधों पर टिकी है।

बारम्बारता के सद्धान्तिकों ने, इसके विपरीत बारम्बारता को समाव्यता के साथ मिला दिया है। बारम्बारता का सिद्धान्त समावना को पार्थिव रूप दता है और उसे प्राग्मावी समावनाओ के रहस्य-क्षेत्रो से अलग ले जाता है। साथ ही इसका एक सास्यकार के व्यावहारिक जगत से निकटतम सबध जोडता है। वास्तव म आर० वोन मीसेज ने प्राबेबिलिटी स्टेटिस्टिक्स एण्ड ट्रूथ (1928)[1] म समाव्यता के बारम्बारी सिद्धान्त की रचना की है जो उतनी ही आनुभविक है जितनी सद्धान्तिक भौतिकी। किन्तु उनकी रचनाओं का वास्तविक प्रभाव बारम्बारी सिद्धान्तो की अनुमववादी प्रकृति पर शका उत्पन्न करना ही था। बारम्बारवादी यह मानने के अभ्यासी हो गए थे कि 'एक पनी (सिक्का) के सिर वाले सिरे से गिरने की समावना $\frac{1}{2}$ है' कहने का यही अथ है कि 'अन्त म जाकर पनी के सिरने की समावना समग्र अङ्को से आधी है।' स्पष्टत यहां अन्त म जाकर नामक वाक्याश अनुपयुक्त है। इसके साथ ही एक अन्य मुश्किल भी है। मानलो सदव ऐसा ही होता कि प्रत्यक पाचवी उछाल का परिणाम पैनी का पिछला सिरा एव प्रत्येक दसवा उसका सिर वाला सिरा होता, तब, यद्यपि यह बात सही है कि अन्तत इस क्रम मे आधी उछालों का परिणाम सर ही होने वाला है तो भी एक पैनी की उछालो को सामान्य क्रम म आधे आधे रूप म विभाजित किया जाना उचित नहीं जान पडता। समाव्यता का सिद्धान्त जुए की विषमताओं से प्रकटा है। निश्चय ही वे विषमताए पूर्णत बदल जाएगी यदि यह भविष्यवाणी की जाए कि एक विशेष उछाल सदव ही, (तथा अमुक उछाल कभी भी नही) सर के रूप मे ही परिणमित होगी। इस तरह बारम्बारता कभी भी समान्यता के साथ तादात्म्य नही रख सकती।

वोन मीसेस इन दोनो आपत्तियो का हल निकालने का प्रयास करते हैं। वे एक समूहवाची धारणा को प्रस्तुत करते हैं। इसकी परिभाषा उन्होने पयवेक्षण

---

[1] अंग्रेजी अनुवाद (1936) देखें। ब्रोड का रिव्यू माइण्ड (1937) मे देखें। आर एल गुडस्टीन 'आन वोन मीसस थ्योरी आव प्रोबेबिलिटी,' (माइण्ड 1940)। नीले कृत प्रोबेबिलीटी एण्ड इण्डक्शन में वान मीसेस पर हुई चर्चा, वेसमैन एव फीगल की आलोचना, अर्केण्टनिस (1930)। बारम्बारता के सिद्धान्त का एक दूसरा सस्करण ए० कोल्मोगोरोव की फाउण्डेशन्स आव द थ्योरी आव प्रोबेबिलिटी (1933 अंग्रेजी अनुवाद 1950) म देखें। आर० एफ० फिशर की रचनाए भी देखें। उनकी पुस्तक द डिजाइन आव एक्सपेरीमेण्ट्स (1935) एव स्टेटिस्टिकल मेथड एण्ड साइण्टिफिक इ फेरेन्स (1956) म।

के ऐसे असीम वर्ग से की है जो दो शर्तों को पूरा करते हों। पहली, जिस बारम्बारता के माध्यम से एक समूहवाची के विशिष्ट सदस्यों का निर्धारण होता है वह एक सीमा में सन्तुलित हो जाए, दूसरे, इस सीमा का मूल्य उस समय भी अप्रभावित रहता हो यदि हम समूहवाची के सभी समावित सदस्यों की इकाई की चर्चा करने के बजाय एक ऐसे उप समूह पर, जो अपने किसी विशिष्ट भाव के कारण सबसे भिन्न है, विचार करें। (यही बेतरतीबता की माँग भी है जिसे वोन मीसेस द्यूत प्रणाली का असम्भावी सिद्धान्त कहते हैं।) यह मान भी लें कि समूहवाची विचार सम्भाव्यता की गणितीय कलन सम्बन्धी क्रिया को सुविधाजनक बनाता है, तो भी बारम्बारी तर्क वाक्यों के आनुभविक स्तर सम्बन्धी गंभीर समस्याएँ भी खड़ी कर देता है। यदि बारम्बारी कथन अनिश्चित वर्ग में व्याप्त विविधता के सन्दर्भ से सम्भाव्यता को परिमापित कर भी दें तो कैसे वे आनुभाविक जाँच पड़ताल को मण्डित या खण्डित कर सकेंगे? क्योंकि यह तो ससीम वर्ग तक ही सीमित हैं? यह प्रश्न स्वभावत खड़ा हो ही जाता है।

पापर का विचार था कि वे बारम्बारता के सिद्धान्त को आनुभविक पृष्ठभूमि पर वोन मीसेस की सीमा से सम्बद्ध सापेक्ष बारम्बारता के संघनन बिन्दु की एवज में रखकर पुनः प्राप्त कर सकते हैं। सीमा से अलग संघटन (कंडेंसेशन) बिन्दु किसी क्रम के ससीम अंश की एक वास्तविक बाम्बारता ही है। यह एक ऐसी बारम्बारता है जो अन्य अंशों की बारम्बारता से अलग है और वह भी बहुत सूक्ष्मांशों में। यह बारम्बारता ही सम्भाव्यता है। एक प्राक्कल्प के रूप में तब हम यह कह सकते हैं कि किसी क्रम के भावी अंशों की बारम्बारता संघनन बिन्दु के मूल्य से अधिक प्रदायी मात्राओं में भिन्न नहीं होगा। इस तरह कुछ सीमाओं में सामान्य कथन भी परीक्षणीय हैं।[1]

बारम्बारता के सर्व विख्यात समर्थक निश्चय ही एच० राइकनबक हैं।[2] राइकेनबक के ज्ञानदर्शन की प्रमुख नवीनता (जो अन्यथा परम्परागत वस्तुस्थितिवादी ढर्रे में चली है) है भार को तृतीय सत्य मूल्यांक मानना। वास्तव में अन्त में तो वे

---

[1] ए० एच० कोपलैंड कृत प्रेडिक्शंस एण्ड प्रोबबिलीटीज (1936) भी देखिए।

[2] उनकी थ्योरी आव प्रोबबिलिटी सर्वप्रथम जर्मन भाषा में छपी (1935) अंग्रेजी अनुवाद (1949)। इसमें कुछ और बातें भी हैं। रसेल द्वारा ह्यूमन नोलेंज (1948) में इसकी आलोचना देखें। इस ग्रन्थ में रसेल की दृष्टि के लिए देखें, एच० जेफ्रेज बर्ट्रेण्ड रसेल आन प्रोबबिलिटीज (माइण्ड 1950)। राइकेनबक की विचारधारा के एक आरम्भिक वृत्तान्त के लिए देखें एक्सपीरिएन्स एण्ड प्रेडिक्शन

उसे सत्य मूल्यांकों का एवजी ही मानते हैं। बहुत कम तर्कवाक्यों को सत्य या असत्य का दर्जा दिया जा सकता है। इस तरह हम कभी भी भावी तर्कवाक्य का विवरण देने की स्थिति में नहीं रहते। प्रत्येक तर्कवाक्य का निश्चित भार होता है, जो सत्य के विपरीत) एक निरन्तर माप द्वारा मापा जा सकता है। सत्य एवं असत्य राइकेनबैक के मत में *ऐसे ही सीमित मसलों के आदर्श मापदण्डों से निर्मित हुए हैं।* कीन्स की भाँति राइकेनबैक का विश्वास है कि हमारे ज्ञान की अवस्था से ही किसी तर्कवाक्य का माप सम्बन्धित है। किन्तु कीन्स के विपरीत वे यह मानते हैं कि प्रत्येक सार्थक तर्कवाक्य का एक निश्चित भार होता है। यह निश्चित परिणाम का होना ही उनकी दृष्टि में सार्थकता की कसौटी है और इसका कथन बारम्बारता के सन्दर्भ से हो सकता है।

कीन्स ने सम्भाव्यता के बारम्बारी विश्लेषण को दो बातों के कारण अमान्य कर दिया था। एक तो यह कि यह किसी एक मामले में होने वाली सम्भावना को प्रकट नहीं कर सकता तथा दूसरी यह कि यह घटनाओं की बारम्बारता से अलग तर्कवाक्यों की सम्भावनाओं से कोई सार्थक बात नहीं कहता। राइकेनबैक स्वीकारते हैं कि बारम्बारवादी किसी भी एक घटना की सम्भावना के सन्दर्भ को अनुपयुक्त कह कर त्याग देंगे। यह वाक्य कि 'बीस सम्भावनाओं में से एक सम्भावना यह भी है कि जोन स्मिथ एक साल के अन्दर अन्दर मर जायगा' बारम्बारता के सिद्धान्त के अनुसार *केवल वृत्ताकार दोष ही प्रकटा सकता है।* तथ्य के आधार पर इसका यही आशय है कि वह एक उपवर्ग का सदस्य है तथा उससे छोटे किसी वर्ग का सदस्य नहीं है जिसके सम्बन्ध में हमें यह सांख्यिक ज्ञान है [मान (पोजिट)] कि उसका मरना बीस में से एक सम्भावना है।' उदाहरणार्थ यह जानते हुए कि जान स्मिथ टी० बी० का मरीज है, एवं उसकी उम्र 21 साल है और यह भी कि ऐसे बीस मरीजों में से एक, साल पूरा होने से पूर्व ही मर जाते हैं और इसके साथ यह जान कर भी कि वह किसी अन्य छोटे वर्ग का सदस्य नहीं है (जैसे कमजोर हृदय वाले टी० बी० के बीमारों का एक वर्ग जिसके विषय में हम समुचित सांख्यिक ज्ञान है--)

(1938)। राइकेनबैक की आलोचना के लिए देखें, पापर की पुस्तक द लोजिक आव साइण्टिफिक इन्वेस्टिगेशन, एवं पी० ह्यूज, (एफ० 1939), ई० जे० नेल्सन प्रोफसर राइकनबैक आन इण्डक्शन (जे० पी० 1936), ई० नैजल का रिव्यू आव द थ्योरी आव प्रोबेबिलटी (माइण्ड 1936), तथा प्रोबेबिलिटी एण्ड थ्योरी आव नोलेज (पी० एस० सी० 1939)। गोर्यारिंगर कृत ऊबर दी वार चीनलिक्कीन वोन हाइपोथेसेन' (जर्नल यूनीफाइड साइंस 1939)। आइ० पी० नीड द जस्टीफिकेशन आव द हबिट आव इण्डक्शन (जे० पी० 1940)। राइकेनबैक ने इन सभी को तत्काल ही उत्तर दिया।

हम यह शत लगा सकते हैं कि 20 म स एक के रूप म मरनेवालो म उसकी बारी भी है। किन्तु हमारी यह शत उस समय बदल भी सकती है यदि हमारे ज्ञान क अवस्था म ही परिवतन आ जाए। अर्थात् यदि हमे मालुम हो जाये कि जोन स्मिथ मोटरसाइकल भी चलाता हैं। इससे यही सिद्ध हुआ कि एक घटना के घटित होने की समावना मे केवल स्थानान्तरी समावना हैं। जबकि निश्चित प्रमाणो पर प्रस्तुत भार (इन कथनों से विपरीत कि इक्कीस वर्षीय टी० बी० क मरीजो मे स बीस म से एक साल पूरा होने क अ दर अ दर मर जाता है) इस बात का तथ्य इस बात स अप्रभावित रहता है कि ऐस मरीजो मे कोई अ य गुण भी मौजूद हैं।

तो भी जहा व्यक्तियो सबधी सभाव्य कथन गल्पात्मक (फिक्टीशस) होते हैं, व्यावहारिक बुद्धि हम ऐसे कथनो को सशत कथनो (पोजिट) क रूप म प्रस्तुत करने के लिए बाध्य भी करती है। हम इस उद्देश्य के लिये सांख्यिक प्रमाण प्रस्तुत करने का औचित्य दे सकते हैं। चू कि इस सबध म आगे बढने का इससे बढिया कोई माग नही है। जब तक इस कथन को कि अमुक अमुक घटना सभाव्य ह' इस आकार मे प्रस्तुत नही किया जाय कि 'यह घटना घटेगी, राइकेनबक के अनुसार, ऐसा कहने वाल का बारम्बारी विश्लेषण तत्काल ही घटनाओ के विवरण के लिए भी उतनी ही शीघ्रता से लागू किया जा सकता है जितना समाव्य तकवाक्यो पर। बारम्बारता क सिद्धा त पर कीन्स की दूसरी आपत्ति भी इस पहली आपत्ति क साथ समाप्त हो जाती है।

समाव्यता के बारम्बारी विश्लेषण को आकार रूप देने के लिए राइकनबक एक बहुमूल्यीय समा यता के तकशास्त्र की रचना करते हैं जिसमे सत्य असत्य सबधी द्विमूल्यात्मक धारणा को बहुमूल्यी धारणा 'भार' स स्थाना तरित कर दिया है। इस तरह क आकारी सम्भावना के तकशास्त्र की रचना, राइकेनबक क अनुसार, इसलिए की जा सकती है क्योकि बारम्बारी व्याख्या के माध्यम से यह गणितीय धारणा म बदल जाती है। अब यह नही माना जाना चाहिए कि जब हम कोई वाक्य बोलते हैं (जिसके सत्य होने के विषय मे कुछ नही जानते और जो भावी अवस्थाओ का उदघोषक है) तो हम सूचनात्मक तकशास्त्र के एक विशेष प्रकार का ही उपयोग कर रहे होते हैं। उनके अनुसार राइकनबक का समाव्यता का तकशास्त्र, आकारी तकशास्त्र को अनुभवसिद्ध बनाने के काय को पूरा करता है। उनका विश्वास है कि उन्होने रसेल क विरुद्ध भी इस बात को सिद्ध कर दिया है कि इस सबध मे अनाकारी, अ तर्बोधी प्राग्भावी सिद्धा तो की सहायता की आवश्यकता भावी कथनो के लिए कतई आवश्यक नहीं हैं।

एक सभा यतात्मक तकशास्त्र इस तरह सामा य कथनो के जरिए कलन करने की ही विधि है। प्रश्न यही रहता है कि हम कसे इन सामा य कथनो की

स्थापना करते हैं। वास्तव म तो हम जिस बात को देख सकते हैं वह है ऐसे मामलो की एक सीमित इकाई। मान लो कि इस इकाई मे कोई विशेष बात निश्चित आवृत्ति के रूप मे प्रकटती है। तो यह कैसे सिद्ध करेगी कि ऐसे ही अन्य मामलो मे इसकी आवृत्ति इसी तरह घटेगी ? या फिर अमुक अमुक सीमाओं म घटेगी ? राइकेनबैक के लिए यह आगमन के शास्त्रीय पक्ष को सही ढग से प्रस्तुत करने का ही तरीका है। उनकी दृष्टि मे आगमन एक नीति है, बारम्बारता की सीमा निर्धारित करने की नीति। इस तरह (जटिलताओं का निवारण करके) इस सीमा तक पहुचा जाता है उन इकाइयो मे जिनकी चर्चा हमने की है। भावी अनुभव के प्रकाश मे इस मूल्य का सशोधन करना ही यह नीति है। आगमनात्मक नीति उचित नीति है क्योकि यदि बारम्बारता की कोई सीमा है तो यही उस सीमा का पता लगाने का सर्वश्रेष्ठ तरीका है।

इस तरह राइकनबैक एक सुदढ बारम्बारवादी सिद्ध होते हैं। कारनैप अपने प्रकृत्यनुसार मध्यममार्गी होने[1] का रास्ता ही अपनाते हैं। वे दो प्रकार की सभावनाओं के बीच तीव्र भेद करते हैं। बारम्बारी सभाव्यता तथा पुष्टीकरणीय सभाव्यता। पहली सभाव्यता का क्षेत्र साख्यिकीकार का क्षेत्र है। तथा दूसरी का तकशास्त्रियो का। यदि राइकेनबक की भाति हम उसे एक सिद्धान्त मे बदलने का कोशिश करेंगे तो इससे बड़ी गड़बड़ और नही हो सकती। यह सुझाव देना बहुत घातक है कि बारम्बारता ही वास्तविक प्रकार की सभावना है, जबकि यह मानना भी उतना ही घातक है कि सभाव्य कथनों म बारम्बारता नहीं है। कारनप के अनुसार, तब, बारम्बारवादी तथा उनके विरोधी दोनो भिन्न भूमियों पर विचार कर रहे हैं। दोना सम्भाव्यतासम्बन्धी दो बिल्कुल भिन्न धारणाओं पर।

एक विशिष्ट सभाव्य कथन की चर्चा मे हम जाच से सदा यह निश्चित नही कर सकते कि सभाव्यता की कोनसी धारणा को यह मूतिमान कर रहा है। मानलो एक भरी हुई द्यूत के पासों की पेटी का सदभ देकर कोई कहे कि इस द्यूत पेटी मे से निकलने वाले पासो मे ६ अक के निकलने की सभावना 0 15 है। उससे यदि पूछें कि इसका तुम्हारे पास क्या प्रमाण है ? तो वह उत्तर मे कहेगा कि 1000 बार पासा फॅकने की लम्बी शृखला में ६ अकों की आवृत्ति कवल 150 बार हुई। इस

---

[1] इसके लिए देखिये उनकी कृति लोजिकल फाउण्डेशस आव प्रोबेबिलिटी (1950)। इस पुस्तक की दशन से सम्बन्धित सामग्री का प्रकाशन दी नेचर एण्ड एप्लीकेशन आव इण्डक्टिव लोजिक (1951) मे अलग से किया गया है। देखिये एस० टोलमिन का रिव्यू (माइण्ड, 1953) तथा एच० वान राइट का विवेचन।

तरह इससे कोई यह धारणा भी निकाल सकता है कि वह इसमें सामान्यता का बारम्बारी सिद्धान्त ही उपयोग में ला रहा है। किन्तु कारनप का सुझाव है कि यदि वह आगे बढ़े तो उसे मालूम होगा कि वह मात्र बारम्बारता को नहीं गिन रहा, वह बारम्बारता पर एक सामान्यता का अनुमान लगा रहा है। इस तरह उसके कथन की सार्थकता इतनी ही है कि मेरे द्वारा प्रमाणों के आधार पर यह घोषणा करने की काफी सम्भावना है कि छः अंक की सापेक्ष बारम्बारता भविष्य की फेंक की दीर्घ शृंखला में भी कम से कम इस पासे में थोड़े बहुत समयान्तर के बाद ० १५ ही हो जाएगी।[1] इसलिए कारनप का कथन है कि सापेक्ष बारम्बारता से संबंधित यह अनुभवजन्य कथन नहीं है किन्तु प्रमाणों एवं निष्कर्षों के तार्किक संबंधों से उपजा एक तार्किक विश्लेषण है।

यद्यपि इस प्रकार कारनप भी यह मानने के लिए तैयार हैं कि कभी कभी सामान्य कथन बारम्बारता को व्यक्त करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं करते तो भी उनकी दृष्टि में बारम्बारता की व्याख्या के लागू किये जाने का क्षेत्र बहुत सीमित है। इसके प्रवर्तकों द्वारा सोचे गए क्षेत्र से भी बहुत ज्यादा सीमित। सामान्य रूप से कारनप कीन्स से इस बात पर सहमत हो जाते हैं कि सम्भावनाएं किसी खास घटना को केवल तार्किक आधार पर ही मिल सकती हैं। किन्तु कीन्स के विपरीत एक प्राकल्प को सम्भावनाएं प्रदत्त करने के संबंध में वे एक परिमाणात्मक विधि की रचना करना चाहते हैं। तथा वसमैन से भी अलग वे यह सोचते हैं कि श्रेणियों के अनुपातों की माप या फिर एक वाक्य का दूसरे के द्वारा पुष्टीकरणीयता का अंशमान (*डिग्री आव कन्फर्मेबिलिटी*) विशुद्ध तार्किक विधि से *निर्धारित हो सकता* है। और इसके लिए न्यूनतम सांख्यिक पर्यवेक्षण की अपेक्षा नहीं है। ये ही प्रणालियाँ आगमनात्मक तर्कशास्त्र की स्थापना करती हैं।

कारनप पॉपर के साथ सहमत होते हुए कहते हैं कि कोई भी तर्कशास्त्र हमें यह नहीं बता सकता कि सही प्राकल्प की सिद्धि हम कैसे कर सकते हैं। किन्तु इस संदर्भ में आगमनात्मक एवं निगमनात्मक तर्कशास्त्रों की भली भाँति तुलना की जा सकती है–कुछ स्वयंसिद्धों को छोड़कर कोई ऐसी विधि नहीं है जिससे नए साध्यों (थ्योरम्स) की रचना की जा सके, चाहे उसमें दिए गए प्रमाण को जाँचने का यह विधि मौजूद अवश्य हो कि अमुक अमुक साध्य उस स्वयंसिद्ध से निकला है। इसी प्रकार यद्यपि ई प्रमाण हमारे पास है तो भी हमारे पास ऐसी कोई विधि नहीं है जो [illegible] प्राकल्प के उजागर होने की उस स्थिति को बताए जिसमें ई आया है। कारनप के विचार में तर्कों के परीक्षण की ऐसी प्रणालियाँ हैं जो यह सिद्ध करने का दावा करती हैं कि ई के प्रमाण पर ह के पुष्टीकरण का एक अंशमान है जो र है। (यहाँ र एक वास्तविक अङ्क है)। परीक्षण की ये विधियाँ जो अरस्तू

के तकपदो के नियमो के मनुकूल ही हैं, मागमनात्मक तकशास्त्र की रचना करती हैं। इससे यह ता स्पष्ट हो गया कि कारनप की दृष्टि म मागमनात्मक तकशास्त्र का क्षेत्र बहुत सीमित है। मभी तक कारनप ने मपन मागमन क सिद्धान्त को ही व्यक्त किया है। उसके कुछ पहलू तो निश्चय ही बोधगम्य है।[1]

---

[1] देखें द कण्टीनुग्रम माव इण्डक्टिव मेथडस (1952) एक शोध जिसे प्रोबेबिलिटी एण्ड इण्डक्शन क द्वितीय म क म स ल लिया गया था। निकोड कृत लोजिक माव इण्डक्शन (1923) फाउण्डेशन्स माव ज्योमेट्री एण्ड इण्डक्शन (1930) के रूप म पुन प्रकाशित यह पुस्तक की स एव पुष्टीकरण सिद्धान्त के मध्य रही ऐतिहासिक कड़ी है। कारनप हम्पल क ल[illegible] स्टडीज इन द लोजिक माव कनफरेमशन' (माइण्ड 1945) का काफी उपयोग करत हैं। तथा ए डेफीनिशन माव डिग्री माव कन्फरमेशन (पी० एस० सी० 1945) का भी जो पी० मोपरनहीम के सहकार से लिखा गया। हम्पल इस बात की विस्तृत चर्चा करते हैं कि प्राकल्प के पुष्टीकरण का क्या मथ है ? व नीकोड के इस दृष्टिकोण को कि पुष्टीकरण सदैव ही इस माकार का है ममान्य कर देते हैं। 'यह म एव ब दोनो है' यहा प्राकल्प यह है कि 'सब म ब हैं। व इस माधार पर इसका खडन करत हैं कि इसका क्षेत्र बहुत सकुचित होगया है। मौर उनका मत है कि मधिक मुक्त परिभाषाए सरलता से विरोधास्पास्पद स्थितियो की मोर ल जा सकती हैं। इस तरह यह कहना कि एक तकवाक्य प्रत्येक ऐसे तकवाक्य स पुष्ट हो सकता है जो उससे निकला है इसका परिणाम यह होगा कि 'सब हस सफद है," इसकी पुष्टि किसी ऐसी बात से हो सकेगी जो न तो सफेद ही हो मौर न हस ही मर्थात् एक काले कौव से। हैम्पल इस तरह के मतिवाद स बचकर पुष्टीकरण की परिभाषा करने का प्रयास करते हैं। स्पष्टीकरण पर उनकी रचनाए विशेप कर द फक्शन माव जनरल लाज इन हिस्ट्री (जे० पी० 1942) [फीगल एव सेलस की रीडिंग्स भी] काफी प्रभावशाली रही है। उन्होन पापर के इस दृष्टिकोण को काफी चचनीय बनाया कि किसी सघटना की सही व्याख्या करने का मथ यह बताना है कि उसका विकास समष्टि नियमो से तथा विशिष्ट मौलिक दशाम्रो से हुमा है। 'पुष्टीकरण-सिद्धान्त' की मालोचना के लिए देखें, कारनप एव गुडमैन के मध्य हुए सुवाद को (पी पी मार 1947) एव गुडमैन कृत फेक्ट फिक्शन एण्ड फोरकास्ट (1954) को। गुडमैन इसम प्रक्षेपणीयता (प्रोजेक्टबिलिटी) के सिद्धान्त की चर्चा करते हैं जिसस शायद पुष्टीकरण के विरोधाभास दूर हो सकें। मसत्यीकरण के प्रममानो पर हुई चर्चा क लिए देखें पोपर के द लोजिक माव साइण्टिफिक इन्वस्टीगेशन, एफ० बी० फिच एव ए० डब्लू० बक्स जस्टीफिकेशन इन साइ स (एम० व्हाइट द्वारा सपादित एकेडमिक फ्रीडम एण्ड रिलीजन मे 1953) बारहिल एव कारनप के बीच रहे सुवाद के लिए देखें बी० जे० पी० एस० (1952)।

चार अन्य अभिनव कृतिया इमी समान्यता एव आगमन के कथ्य की चर्चा करती हैं। डी० सी० विलियम्स कृत द ग्राउण्ड आव इण्डक्शन (1947), डब्लू० नीले कृत प्रोबेबिलिटी एण्ड इण्डक्शन (1941), जी० एच० वोन राइट कृत द लोजिकल प्रोबलम आव इण्डक्शन (1941) एव आर० बी० बेंथवेट कृत साइण्टिफिक एक्स्प्लेनेशन (1953)। विलियम्स इनमे सबसे अधिक आशावादी हैं। आगमन उनके लिए केवल आकारी दृष्टि से वध युक्ति की एक विशिष्ट प्रजाति है। इसमे यह विचित्रता रहती है कि इनके निष्कप प्रमेया से ही अन्तिम रूप से नि सृत नहीं होते किन्तु उनमे एक उच्च समावना रहती है। उदाहरणाथ मान लें, हमारे समक्ष सेवो का एक ढेर लगा है और हम यह निर्धारित करना चाहते हैं कि उसमे से कीडो द्वारा कितने खाए हुए हैं। विशुद्ध गणितीय युक्ति से विलियम्स के अनुमार हम यह सिद्ध कर सकते हैं कि यदि हम उम ढेर मे से एक निश्चित परिमाण का एक नमूना निकाल लें तो इस तरह थोडे से अ श मे से चुने गए इस नमूने म कीडों द्वारा खाए सेवो का जो अनुपात होगा वह किसी भाति पूरे ढेर म विद्यमान कीडो द्वारा खाए सेवो के अनुपात से कम नही होगा। उदाहरण के लिए यदि चुने हुए नमूने मे 30 प्रतिशत सेव कीडों द्वारा खाए हुए हैं—तो हम यह निष्कप देने के अधिकारी हैं कि यह अधिक मात्रा मे समव है कि 25 प्रतिशत से 35 प्रतिशत तक के सेव (सारे ढेर मे से) कीडो द्वारा खाए हुग हैं। इस प्रकार वे यह तक देते हैं हम हमारे आगमनात्मक निष्कर्षों को विशुद्ध तक गणितीय युक्ति से उचित ठहरा सकते हैं। निस्सदेह यहा खतरा मोल लेने की स्थिति अवश्य है। यह नमूना प्रतिनिधि नहीं भी हो सकता। किन्तु यह खतरा गिना गिनाया है। ऐसा खतरा उठाने से कोई भी विवेकशील प्राणी नही कतराएगा।[1]

एक तरह से तो वान राइट[2] की ट्रीटिस आन इडक्शन एण्ड प्रोबेबिलिटी

---

[1] देखें विलियम्स की प्रोबेबिलिटी इण्डक्शन एण्ड प्रोबिडेण्ट मैन' एम० फारबर कृत फिलोसोफिकल थोट इन फ्रास एण्ड द यूनाइटेड स्टेटस मे सकलित। इसमे विलियम अपने तकवाक्या को कारनैप के तकवाक्यों से जोडते हैं। पी० पी० आर० 1946–6 मे हुई सभाव्यता पर परिचर्चा विलियम्म के शास्त्रीय समान्यता के पक्षकार होने के कारण उनकी आलोचना पर हुई है। नजल को जे० पी० (1947) म नीले को फिलोसोफी (1949) म एव ब्लक को जे० एस० एल० 1947 म उनके रिव्यू करते देखें तथा उसके साथ आव द डायरेक्ट प्रोबेबिलिटी आव इण्डक्शन्स (माइण्ड 1953) में विलियम्स द्वारा उनके उत्तर देखें।

[2] वोन राइट फिनलेण्ड के एक दार्शनिक थे। वे केम्ब्रिज चेयर मे विटजनस्टीन के कुछ समय तक उत्तराधिकारी रहे, किन्तु अब फिनलण्ड लौट गए हैं। उन्होने ई० कला के जिन्होने वियना वृत्त की चर्चाओं मे भाग लिया था, सरक्षण मे अध्ययन

एक रूढ़िवादी पुस्तक है। वे बारी बारी से आगमनात्मक अनुमानों का परम्परागत तरीके से औचित्य देने की बात करते हैं। सबसे पहले आगमनात्मक विधि का निर्धारण करके, दूसरे उन्हें ऐसे सामान्य सिद्धान्तो पर आधारित करके जैसे प्रकृति की एकरूपता का सिद्धान्त, तीसरे, परम्परागत ढग से यह तर्क देकर कि आगमनात्मक ढग से स्थापित तर्कवाक्य परिभाषा की दृष्टि से सत्य है, चौथे, आगमन से नि सृत तर्कवाक्यो का यदि सत्य रूप म दर्शाया न भी जा सके तो भी वे बहुत अधिक सभाव्य तो हैं ही। प्रत्येक अवस्था म वान राइट इन बातों का औचित्य अधिक सशक्त ढग स प्रस्तुत करते हैं[1], और इसके साथ ही प्रतीकात्मक तर्कवाक्य के सभी उपकरणो का सहारा ले लेते हैं। उनका सामान्य निष्कर्ष यही है कि औचित्य से कभी भी आगमन की वैधता का प्रदर्शन नही हो सकता। किन्तु औचित्य की प्रत्येक विधि खास परिस्थितियो के सदर्भ म काफी प्रभावशाली हो सकती है। कुल मिलाकर, वान राइट परम्परागत औचित्य को आकार देने म ही अधिक निरत दिखते हैं, बजाय विस्तार म यह बताने के कि आगमन को औचित्य देने के लिए उन्हे किस सदर्भ म रखा जाना चाहिए।

इसी भाति सम्भाव्यता पर वान राइट द्वारा किया गया विचार-विमर्श खास तौर पर ए ट्रीटाइज आन इण्डक्शन एण्ड प्रोबेबिलिटी (1951) मे, एक स्वय सिद्ध प्रणाली की रचना म लगा हुआ लगता है। इसकी व्याख्या के सम्बन्ध म बहुत न्यून कहा गया है। वास्तव मे उनका स्वय का यह निष्कर्ष है कि जब हम युक्तियो को आगमनात्मक सम्भाव्यता के सहारे कोई आकार देते हैं तो हमे पता लगता है कि वे निपट नगण्य हैं तथा व्यावहारिक रुचि से शून्य हैं। सम्भाव्यता का सिद्धान्त कलन के रूप में जितना रुचिकर है उतना जाच पडताल के व्यावहारिक उपकरण के रूप म नहीं। किन्तु इसका सकेत देना मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान का एक महत्वपूर्ण अश होगा क्योकि यह सभाव्यता के सैद्धान्तिक को यह मानने से रोक देगा कि उसने कोई जादुई प्रणाली प्राप्त करली है।

किया। देखें सी० ब्रोड कृत हेर वोन राइट आन द लोजिकल इण्डक्शन (माइण्ड 1944) जे० सी० कमनी 'ए ट्रीटीज आन इण्डक्शन एण्ड प्रोबबिलिटी (पी० आर० 1953)। राइट के सभाव्यता सबधी विचार देखें उन्ही के निबध 'आन प्रोबेबिलिटी' (माइण्ड 1940) मे।

[1] खास तौर पर वे मिल की विधि का ही पुनरचन कर रहे हैं, 'दशाओं का तर्कशास्त्र' कहकर। वे यहा ब्रोड के निबध द प्रिसिपल्स आव डिमोंस्ट्रेटिव इण्डक्शन (माइण्ड 1930) से प्रभावित हैं।

विलियम्स की ही भांति नीले[1] सम्भाव्यता का एक तार्किक सिद्धान्त निर्मित करना चाहते थे। उनके अनुसार सम्भाव्यता तर्कवाक्यीय फलनों को जोड़ने वाला वस्तुपरक सम्बन्ध है। सम्भाव्य कथन यह कहते हैं कि म का र जैसा होना इस बात को सम्भव करता है कि वह स के प्रकार का है। इन कथनों का महत्व विवेकशील कर्म से उनके सम्बन्ध में निहित है। कोई भी सन्तोषजनक सम्भाव्यता का सिद्धान्त इतना समझने में हमारी मदद करेगा– (जो बारम्बारता का सिद्धान्त नहीं करता) कि किसी कार्य के लिए सम्भाव्य तर्कवाक्य का उपयोग करना क्यों युक्तियुक्त है ?

नीले के तर्क का एक प्रबल पहलू यह भी है वे अब रूढ़ करार दे दिए गए सिद्धान्तों एवं उचित रूप से स्वीकृत तथ्यों के तादात्म्य को त्याग देते हैं। वे कहते हैं कि सिद्धान्त यह जरूर बताते हैं कि तथ्य क्या हो सकते हैं किन्तु वे अपने आप में तथ्य नहीं है। कुछ सिद्धान्त, जैसे एक ही समय में कोई वस्तु लाल एवं हरी दोनों नहीं हो सकती, अन्तर्ज्ञानीय आगमन से सीधे समझी गई स्थितियां हैं। कुछ सिद्धान्तों का जिनमें प्राकृतिक नियम भी शामिल हैं सीधा बोध नहीं हो सकता। तो भी वे सिद्धान्त तो हैं ही। प्रकृति का यह नियम कि 'प फ है' इस बात को ही सिद्ध नहीं करता कि प्रत्येक प फ है किन्तु इससे भी कहीं ज्यादा कि फ हुए बिना कोई भी स्थिति प नहीं हो सकती।' आगमनात्मक समस्या इस तरह नील के लिए यही बताना है कि ऐसे अन्त बोध हीन सिद्धान्तों को प्राकृतिक नियमों के अन्तर्गत क्यों माना जाए।

नील सम्भाव्यता के क्षेत्रीय सिद्धान्त का संशोधित रूप स्वीकार करते हैं। यह सम्भाव्यता कि म प होकर भ गुण को प्राप्त करता यह बात प क्षेत्र के एवं भ क्षेत्र के फलन के पारस्परिक संबंधों को लेकर है। विट्जनस्टीन ट्रैक्टेटस में तर्कवाक्य के क्षेत्र का आणविक तर्कवाक्य के संयोजक के रूप में प्रकट कर सकते थे। उनके लिए क्षेत्रों की तुलना करना आणविक तर्कवाक्यों का अंकन करने जैसा ही एक सफल कार्य था। इसके विपरीत नील यह मानते हैं कि कि तर्कवाक्यीय फलन, जैसे 'सेब होना' सम्भावनाओं के अनन्त क्षेत्रों को खोलना है। सेब को वर्णित करने के सम्भव मार्गों का कोई अन्त नहीं है। किन्तु ये सम्भावनाएं उनके अनुसार (यहां आकर उनका तर्क बहुत अमूर्त एवं कठिन हो जाता है) उप-श्रेणियों में रखी जा सकती हैं ताकि सेब होने के विभिन्न वैकल्पिक तरीकों के समूहों को सिद्धान्ततः अन्य

---

[1] ब्राड का रिव्यू देखें माइण्ड (1950) में, एफ० एल० विल नोलेज थ्योरी आव प्राबेबिलिटी एण्ड इण्डक्शन' (पी० आर० 1954) एफ० जे० ए सकोम्बे मिस्टर नीले आन प्रोबेबिलिटी एण्ड इण्डक्शन एवं नीले का उत्तर (माइण्ड 1951)।

वकल्पिक तरीको के साथ (जिनमे कीडो द्वारा खाए गये सेवो का विवरण भी शामिल है) रखा जा सकता है। इस प्रकार का समूहीकरण ऐसी दशाओ मे समव है जो सामान्यत सतोषजनक नही है, किन्तु उनका काय तो समावना की परिभाषा करना है। उन्ह यह डीग हाकने की आवश्यकता नही कि उसका माप क्या है इसकी उन्हे पूण सूचना है।

तकवाक्यीय फलनों का क्षेत्र, नीले के अनुसार, वज्ञानिक एव तार्किक नियमो द्वारा नियमित है। केवल सिद्धान्त ही यह बता सकते हैं कि य कौनसी समावनाओ के माग खोलता है, और किसके साथ वह अनुरयुक्त है। प्राकृतिक नियमो की समावना पर विचार करना निरथक है। प्राकृतिक नियम तो वे हैं जो समावनाओ का निर्धारण करते हैं। वे अपने आपमे न तो समव हैं और न असमव।

नीले स्वीकारते हैं कि निःसदेह हम कभी कभी प्राकल्पो को समान्यता प्रदान कर देते हैं अर्थात् एक ऐसे तकवाक्य को जिसके हम प्राकृतिक नियम होने की शका रखते ह। किन्तु ऐसा करके हम समाव्यता की उस धारणा का उपयोग कर रहे हैं जो सयोगो के कलन मे रही समान्यता से बिल्कुल भिन्न है। और इसका प्रकटीकरण इस तथ्य मे होता है कि हम सायक रूप म एक प्राकल्प की समाव्यता को एक आकिक मूल्य प्रदान नही कर सकते। यहाँ फिर एक प्राकल्प की समावना के सबध मे बात करने के बजाय उसी अगीकरणीयता (एक्सेप्टेबिली) पर चर्चा करना बेहतर होगा। केन्द्रीय आगमनात्मक प्रश्न को इस तरह व्यक्त किया जा सकता है कि किन अवस्थाओ मे उसे सिद्धान्त मानकर काय मे प्रयुक्त करना विवेकपूण है? नीले का उत्तर है कि एक प्राकल्प अगीकाय होगा यदि उसे प्राप्त करने म आगमनात्मक नीति का सहारा लिया गया हो। अर्थात् अनुभव द्वारा अब तक प्रकटाई गई बारम्बारताओ का सामान्यीकरण करने की नीति। इस तरह यदि हमे किसी ऐसे क्ष का ज्ञान नही है जो य नही हो तो यह आगमनात्मक नीति है कि यह मानलें कि सब क्ष य हैं। जबकि इसके साथ ही (नीले पापर से भी काफी प्रभावित थे) हम ऐसे अनुभवो पर भी सतकता मे आखें लगाए रहना होगा जो हमारे सामान्यीकरणो के विपरीत कुछ सिद्ध करे। यहा हम पूछ सकते हैं कि 'यह नीति अपने आपमे कसे उचित है?' नीले बताना चाहते हैं कि यदि हम भविष्य[1] के सम्बन्ध म कुछ कहना है तो इस नीति को अपनाना सवश्रेष्ठ है।

---

[1] जसा पीयस कभी कभी सुझाते थे। देखें फीगल **द लॉजिकल करेक्टर आव द प्रिंसिपल आव इण्डक्शन** (पी० एस० सी० 1934) एव 'डी प्रिंसिपाइस नोन ऐस्ट डिस्प्यूटेण्डम' फिलोसोफीकल अनालिसिस, सपा० ब्लक 1950)। यह देखा गया है कि इस अध्याय म नामाकित बहुत से समाव्यता के सैद्धान्तिक आगमन का औचित्य

नीले की रचनाए अपनी आत्मा मे कुक–विलसन–वादी हैं, जबकि ब्रेथवेट, इसके विपरीत, रुचि एव दृष्टिकोण मे पूणत कम्प्रिजवादी हैं। उनकी कृति साइण्टिफिक एक्सप्लेनेशन रीतिविधानिक मसलो की एक बडी सख्या मे चर्चा करती है। उदाहरणाथ नीले के विरुद्ध यह बताना चाहते हैं कि प्राकृतिक नियमो मे एक विचित्र प्रकार की आवश्यकता दिखाई देती है। केवल इसीलिए कि व वनानिक प्रणालियो के निर्माण मे एक महत्वपूण हाथ वटा रही हैं। इसके अलावा भी वे प्रतिमानो (माडल्स) के वनानिक सिद्धा तो मे प्रयुक्त किए जाने की काफी विस्तार म चर्चा भी करते ह। किन्तु हम तो यहा उनके द्वारा प्रस्तुत समाभ्यता एव आगमन के विश्लेपण पर ही वल देना है।

ब्रेथवेट की पुस्तक का एक महत्वपूण पहलू यह है कि दार्शनिक क्षेत्र म भी वे नेमैन पीयसन मार्गी' साख्यिकीकारो की रचनाओ का जिक्र छेड देते हैं, तथा उनके प्रभाव[1] मे विकसित हुए खेलो के सिद्धा त को भी। इस समस्या से अभिमुख होने पर कि यह सब कसे समव है कि समाभ्यता के कथनों को कसे प्रदर्शित या खण्डित करें ब्रेथवेट का कहना है कि समाभ्यता के कथनो के लिए खण्डन का नियम बनाने की समावना तो है (जिसे वे क नियम' कहते हैं) किन्तु इस प्रावधान के साथ खण्डन कभी भी अ तिम नहीं है। जब हम एक समाभ्य प्राकल्प का खण्डन करते हैं तो इस दृष्टि के अनुसार तो वह इस स्वाग्रह के साथ ही हमेशा होता है कि भावी अनुभव इसे पुन स्थापित भी कर सकता है। यह तथ्य कि वे इस तरह

व्यावहारिक कारणो पर देते ह। उनके तक सकलित करके आलोचनात्मक ढग से रिव्यू भी कर लिये गए ह। (एम० ब्लक प्रोब्लम्स आव एनालिसिस।) ब्लक का कथन है कि ये सभी औचित्य पुनरुक्तियां ही सिद्ध हुए हैं। वे यही कहती है कि आगमनात्मक नीतिया ही एक मात्र माग है जिससे विशिष्ट उद्दश्य की प्राप्ति हो सकती है और जिनकी उपलब्धि ही आगमन को दूसरी नीतियो से अलग करती है। ब्लक का मत है आगमन की कोई समस्या ही नही।

[1] देखें ज० एल० रसेल द्वारा प्रस्तुत ब्रथवेट की पुस्तक का रिव्यू, फिलोसोफी एव आर० जे० हुन्ट (पी० क्यू० 1954)। कारनेप ने भी नमन पीयसन माग की ओर ध्यान दिया है। किन्तु वहुत से समाभ्यता के विचारक आर० ए० फिशर जसे साख्यिकीकारों के अलावा किसी को भी नही पढते। देखें उदाहरणाथ जे० नैमन एव पीयसन द टेस्टिंग आव स्टेटिस्टिकल हाइपोथेसेज इन रिलेशन टु प्रोबेबिलिटीज ए प्रायारी (प्रोसी० केम्ब्रिज फिलोसोफी सोसाइटी 1933) एव ए० वाल्ड की रचनाए जिन्हे सक्षेप म स्टटिस्टिकल डिसीशन फक्शन्स (1952) मे लिखा गया है। खेल के सिद्धान्त के लिए देखें जे० न्यूमन एव ओ० मोर्जेनस्टन द थ्योरी आव गेम्स एण्ड इकोनोमिक बिहेवियर (1944)।

अस्थायी तौर पर खण्डित किए जा सकते हैं, सभाव्य कथनो की आनुभविक प्रकृति की सुरक्षा कर लेता है। इस बात म यहा पापर का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है।

'क नियम' यह निर्धारित करता है कि यह प्राक्कल्प कि 'एक अ एक ब है तथा उसके साथ प की सभावना है' अमान्य हो जाएगा यदि ब की सख्या अ सबधी 'न' रूपी अनुभवो म प से उस एक मात्रा मे ज्यादा या कम है जो लघु सख्या क का फलन है। क को दिये जाने वाले मूल्य का निर्धारण सभाव्यताओ के कलन क्षेत्र मे नही आता। यदि कोई प्राकल्प बहुत ज्यादा व्यावहारिक महत्व का है तो हम क को बहुत न्यून मूल्य प्रदान करते हैं, ताकि प्राकल्प उस वक्त अमान्य हो जाए जब अ के तटस्थ पर्यवेक्षणो मे ब का प्रतिशत प से काफी अशो में भिन्न आता है। यदि प्राकल्प सद्धान्तिक महत्व का है तो हम क को केवल बहुत उच्च मान प्रदान करेंगे। इस तरह नैतिक रुचिया, जो सापेक्ष महत्वो के विचार हैं, इस प्रश्न के अन्तस्तल तक बैठ जाती हैं कि अमुक प्राकल्प को अमान्य करना है या नहीं। ऐसे ही विचारों की सहायता से ब्रैथवेट आगे बताते हैं कि हम वैकल्पिक प्राकल्पो मे से कुछ निर्णय ले सकते हैं। खास तौर पर उस समय जब क नियम द्वारा किसी बात का खण्डन न किया जा सकता हो।

इसका यह अर्थ नहीं कि प्राकल्पों के बीच का निर्णय केवल स्वीयात्मक निर्णय है, क्योंकि सिद्धान्तत तो यह सभव है कि जिस बात को हम प्राप्त कर रहे या गवा रहे हैं उसकी गणना हम करलें। तथा इसके लिए तो एक विशिष्ट प्राकल्प बना ही सकते हैं। हमारा चुनाव विवेकपूर्ण होगा जब हम सर्वाधिक उपयोगी प्राकल्प चुनेंगे। अन्त मे विशुद्ध तर्क न होकर उपादेयता ही हमारे चुनाव का निर्देशन करेगी। और तो भी उपादेयता हमे उसी वक्त निर्देशित करेगी जब वैकल्पिक प्राकल्पों की सापेक्ष उपादेयताओ की गणितीय रूप से तुलना की जा सके।

अध्याय १८

विटजनस्टीन एव साधारण भाषा दशन

ट्रैक्टेटस के आमुख म विटजनस्टीन ने विश्वासपूवक अपने विषय मे यह कहा है कि विचारो से सबधित जिस सत्य का सम्प्रेषण यहा किया गया है वह मुझे अकाट्य एव निश्चित लगता है।' उन्होने आगे लिखा मेरा मत यह है कि तात्विक रूप से समस्याए पूणत हल कर दी गई हैं।' इसके बाद यह जानकर किसी को आश्चय नही करना चाहिए कि उन्होने दशन को अनेक वर्षों के लिए त्याग दिया। दाशनिक तो वे एक ऐसे इन्जीनियर की भाति विवशता म बने थे, जिसे कीचड व मौसन-भरे एक स्थल को सुखाने का काय करना था। यह काय पूण हुआ और उसके बाद उससे अधिक कुछ भी नही कहा जाना था।

अपने मौन वर्षों म पूणत अकेले नही थे। रेमजे एव ब्रथवट ने उन्हे आस्ट्रिया मे जाकर खोज लिया था तथा कुछ समय के लिए वे शिलक एव वसमेन के निकट सम्पक मे रहे।[1] 1928 के आसपास दशन मे उनकी रुचि पुन जाग्रत हुई। इसकी प्रेरणा कदाचित् उन्हे गणित सम्बन्धी स्थापनाओ पर दिए गए ब्राउवर भाषणो से हुई हो। इसमे मूलत वे ही समस्याए उठाई गई थी जिनके कारण विटजनस्टीन दशन की ओर प्रवृत्त हुए थे। 1929 मे वे केम्ब्रिज लौट आए।

तार्किक आकारो पर उनका लेख उन विचारो स युक्त उनका अन्तिम सावजनिक कथन था जिन्हे निधडक होकर बाद मे उन्होने स्वय ही अस्वीकृत किया था। उसी वष इसका प्रकाशन प्रोसीडिंग आव द एरिस्टोटेलियन सोसाइटी (पूरक अङ्क) में हुआ था। विटजनस्टीन कहते हैं दशन एक आदश भाषा के निर्माण का प्रयास

---

[1] विटजनस्टीन का कहना है कि रेमसे के साथ हुई उनकी बातचीत ने उन्ह अपनी रूढिवादी नीद से जगाया था। अभी तक तो हम यही अनुमान लगा सकते हैं कि ये चर्चाए किन विषयो पर हुई थी, किन्तु यह उल्लेखनीय है कि रेमसे की बाद की रचनाओ एव फिलोसोफीकल इन्वेस्टीगेशन्स मे अथक्रियावादी स्पश मिलता है। प्रो० डी० ए० टी० गेस्किग ने मुझे सुझाव दिया है कि विज्ञान सबधी उनमे कुछ विचार एन० केम्पवल कृत फिजिक्स द एलीमेण्ट्स मे देखे जा सकते हैं और सभव है इस विषय की सूचना भी रेमसे द्वारा ही विटजनस्टीन को मिली हो। विटजनस्टीन अथशास्त्री पी० स्रोफा की आलोचनाओ से बहुत प्रभावित थे। मैं नही जानता किन मामलो म।

है। पदों से युक्त ऐसी भाषा का जिन्ह समुचित रूप स परिभाषित किया गया है तथा ऐसे वाक्यो स युक्त भाषा का जो बिना अस्पष्टता के उन तथ्यो का जिनका सदभ वे दे रहे है, एक तार्किक आकार प्रकटाए। ऐसी पूण भाषा आणविक तकवाक्यो पर आधारित रहना चाहिए। मूलभूत दार्शनिक समस्या इ ही आणविक तकवाक्यों की रचना का विवरण दना है। उनकी बाद की रचनाए अधिकाश रसेल के तकसम्मत अणुवादी दशन की विरोधी प्रतिक्रियाए है।[1]

दार्शनिको न अपनी क्रियाओ को वज्ञानिको की नकल पर खडी करने का प्रयास करके गलती की है, जसा कि तकसम्मत अणुवाद नामक मुहावरे स ही स्पष्ट हो जाता है। यही कारण है कि उनको ठोस परिभाषाए देनी पडी है। और असामान्य रूप से अमूर्त समष्टिवचनो म युक्त सत्य की खोज करनी पडी है। उदाहरण के लिए जब सुकरात एव थिएटेटस से पूछा गया कि दशन क्या है तो थियटेटस ने उन विभिन्न अवस्थाओ का ही सदभ दिया जिसके जरिए ज्ञान प्राप्त किया जाता है। सुकरात न इस उत्तर को स्वीकारने स मना कर दिया और उसे सम्बन्ध म चर्चा का प्रारम्भिक बि दु मानन स भी मना कर दिया। उ ह उस

विटजनस्टीन ने 1930 से 1947 तक केम्ब्रिज मे किस विषय की शिक्षा इसका पूरा ब्योरा अभी तक अप्रकाशित है। ब्लू बुक नाम से सामान्य रूप विख्यात उनके भाषणों के अ श तथा टाइप किए कुछ पन्ने, जिन्हे ब्राउन बुक की सज्ञा दी गई, बहुत ज्यादा पढे गए। उनकी कक्षाओ मे जाने वाले कुछ सदस्यो ने उनके भाषणो का साराश प्रकाशित भी करवाया है। मुझे यह उचित नही लगता कि विटजनस्टीन के इन भाषणो के विषय मे विस्तृत चर्चा करू जो अपूण प्रतिलिपियो म है। मैं केवल उनके मरणोपरा त प्रकाशित उनकी कृति फिलोसोफिकल इन्वस्टिगेश स (1652) की चर्चा करूगा। तथा उनके एलबम स भी कुछ एक अश चुनूगा, जो उनके जीवन की पिछली दो दशाब्दियो मे बहुत महत्व क रहे। किन्तु मरे प्रस्तुतीकरण का अधिकाश निस्सदेह उनकी अप्रकाशित रचनाओ से ही प्रभावित रहा है। पीछे उनकी स्मारिका का सदभ भी दखें। जी० ई० मूर कृत विटजनस्टीन्स लेक्चर्स इन 1930-3 (माइण्ड 1954-5), जे० एन० फिण्डले सम रिएक्शा स टू रीसेंट केम्ब्रिज फिलोसोफी (ए० जे० पी० 1940-1) एव विटजस्टीन कृत फिलोसोफिकल इ वेस्टीगेश स (आर० आई० पी० 1953), एन मैलकम के रिव्यू (पी० आर० 1954), पी० एफ० स्ट्रासन के, (माइण्ड 1954), फिण्डले के (फिलोसोफी 1955), पी० एल० हीथ के (पी० क्यू० 1997, जी० ए० पाल 'विटजनस्टीन रिवोल्यूशन इन फिलोसोफी (जी० राइल एव अन्य 1956)। ब्लू एव ब्राउन बुक्स 1958 मे प्रकाशित हुई। देखें, डेविड पाल व लेटर फिलोसोफी आव विटजनस्टीन (1958)।

प्रयास से कम किसी भी बात से सतोष नही हो सकता था जिसमे नान के साराश को कठोर परिभाषा देकर प्रस्तुत नही किया गया हो। तो भी ऐसी कठोर परिभाषा न तो सभव है और न वाछनीय है।

अवश्य ही हम अपनी परिभाषाओ को तो कठोर कर सकते हैं किन्तु वह केवल इस स्वीयात्मक निणय के खतरे पर कि यह या वह वास्तव म नान नहीं है। किन्तु विटजनस्टीन के अनुसार ऐसे आगे बढना दशन की प्रकृति को ही गलत समझ लेना है। दशन के लिए हमे लोगो द्वारा नान का वास्तविक अथ निकाले जाने का एक विस्तृत परीक्षण करना होगा ताकि दाशनिको की उस तथाकथित परिभाषा मे से कोई भाग निकल सके जिसे हम ज्ञान-मीमासा की सज्ञा से अभिहित करते रहे हैं। अर्थात् इस सम्बन्ध मे हमारी दनिक व्यवहार की भाषा मे ज्ञान का जो अथ है वही महत्वपूण होगा। परिष्कृत भाषा के शब्द काम मे नही आएगे। शब्दों के इन स्वभिन्न प्रयोगो को किसी लघुसूत्र मे बाधा नही जा सकता अर्थात् किसी ठोस परिभाषा में भी नही। जो शब्द दाशनिको को अच्छे लगते हैं व सुबोध, ज्ञानगम्य शब्द हैं, जो अनेक अर्थों मे प्रयुक्त होते हैं किन्तु जिनका कोई उत्तरदायित्व निश्चित एव परिभाषित नही किया गया है। सीधियम जसे व्यावसायिक शब्दों से भिन्न उन शब्दों के अनेक अथ होते हैं।

किन्तु ज्ञान शब्द का विभिन्न अर्थों में प्रयोग करने वाले तरीकों को एक साथ कैसे जोडा जाए ? खास तौर पर यदि किसी आकारी परिभाषा के जरिए यह काय न किया जाए तो ? एक ठोस बात प्रस्तुत है–कि हम यह देखें कि शब्दो के प्रयोगो को परस्पर जोडा जा सकता है बिना किसी एक व्यापक सूत्र के जरिए वर्णित कर के। उदाहरणाथ, 'खेल' शब्द ही लें। तख्तो के खेल पत्तो के खेलो से कई प्रकार से मिलते जुलते हैं और उनके नियम बहुत कम फुटबाल पर लागू हो सकते हैं। किन्तु शतरज के विषय मे, तब, हमारे सर्वेक्षण का परिणाम विटजन स्टोन के अनुसार यही है कि हम बहुत सी वस्तुओ मे समानताओ का एक जटिल जाल गुथा हुआ देखते हैं। कभी कभी प्रत्येक बात समान दिखाई देती है कभी कभी विस्तार में समानता रहती है। ऐसे गुथे जाल को कुटुम्ब की सज्ञा दी है उन्होंने। ऐसी ही जटिलता मे खेल का मूलभेद छिपा है, और खेल शब्द का प्रयोग मात्र ही इस जटिलता को अपने मे गूथे हुए है। एक सूक्ति में वे इसका निष्कष यों देते हैं साराश व्याकरण द्वारा व्यक्त होता है। व्याकरण हमे यह बताता है कि अमुक पदाथ किस तरह का है।

पाठक एव उनके व्याख्याकार ही प्राय उनसे विग्र स्खलित हो जाते हैं क्योंकि विटजनस्टीन क्षण भर को भी यह स्पष्ट करने के लिए नही रुकते कि वे इस अभिव्यक्ति का[1] प्रयोग कसे कर रहे हैं। यह स्पष्ट करने म उनकी असफलता चाहे उचित हो अथवा नही, उनकी दशन-सम्बन्धी धारणा से उपजी यह सीधी परिणति है। कसी हुई परिभाषाओं स दशन विज्ञान की एक जाति के समान ही लगेगा। विटजनस्टीन की धारणा है कि दशन किसी बात की भी व्याख्या नही करता, और न किसी वस्तु का विश्लेषण ही करता है, केवल वणन करता ह।

इसके अतिरिक्त चिकित्सा-विज्ञान की प्रक्रिया म जिस भाति तत्वों का महत्व है उसी भाति दशन मे भी उसके द्वारा प्रस्तुत विवरणो का महत्व है। नान शब्द के प्रयोग के तरीको मे प्रकटे कुछ पहलू ही दशन की गडबड़ियो के जन्म दाता हैं तथा इनके कारण ही हम बौद्धिक रूप स कुण्ठित हो जाते हैं। इससे कम कोई भी अवस्था हमारा उपचार नहीं कर सकती कि हम वास्तविक भाषाई प्रयोग का सही विवरण प्रस्तुत करें। एक ऐसा विवरण जो किसी भी भाति मूल अभिरुचि का नही। दार्शनिक द्वारा किसी प्रश्न पर विचार उसी प्रकार होता है जसे किसी बीमारी का हुआ करता है। एक भिन्न रूपक लें तो कहेंगे कि दार्शनिक एक घबड़ाई हुई मक्खी को उस बोतल मे से निकलने का माग बताता है जिसम वह चली गई है।

[दार्शनिक का इन सदर्भों म अर्थ है अच्छा दार्शनिक अर्थात् वह दार्शनिक जो विटजनस्टीन की प्रणाली का उपयोग करता है। बहुत स दार्शनिकों ने तो बीमारी का इलाज करने के बजाय बीमारी फलाई है और मक्खी को बोतल मे घुसने के लिए ही आकर्षित किया है।[2]]

इस पर भी यदि हम विटजनस्टीन के द्वारा प्रस्तुत दार्शनिक प्रश्न को समझना चाहें, तो हम सबसे पहल यही पूछना चाहिए कि किन विशिष्ट प्रलोभनों से वे हमें मुक्त करना चाहते हैं। उनकी आवश्यकता की चर्चा को ही लें। इसम विटजनस्टीन दो

---

[1] तुलना के लिए देखें, मूर का यह कथन, 'मैं अभी भी सोचता हू कि व्याकरण के नियमों की बाबत उनके द्वारा कही हुई बात का साधारण अर्थ नहीं था, और मैं अभी तक इस सबध म स्पष्ट नहीं हो पाया हू कि वे किस अर्थ मे उसका उपयोग करते रहे थे।' तथा मैलकम का यह कथन 'थोड़ी हिचक के साथ ही मैं निरूप की धारणा पर कुछ कहूगा, क्योंकि यही विटजनस्टीन के दशन का सर्वाधिक कठिन स्थल है।'

[2] देखें बी० ए० करेल 'एन एप्रेजल आव थेरेप्यूटिक पोजिटिविज्म' (माइण्ड 1946)।

प्रयास से कम किसी भी बात [illegible] संतोष नहीं हो सकता था जिसमें ज्ञान के सारांश को कठोर परिभाषा देकर प्रस्तुत नहीं किया गया हो। तो भी ऐसी कठोर परिभाषा न तो संभव है और न वांछनीय है।

अवश्य ही हम अपनी परिभाषाओं को तो कठोर कर सकते हैं किन्तु वह केवल इस स्वीयात्मक निर्णय के खतरे पर कि यह या वह वास्तव में ज्ञान नहीं है। किन्तु विट्जनस्टीन के अनुसार ऐसे आगे बढ़ना दर्शन की प्रकृति को ही गलत समझ लेना हैं। दर्शन के लिए हमें लोगों द्वारा ज्ञान का वास्तविक अर्थ निकाले जाने का एक विस्तृत परीक्षण करना होगा ताकि दार्शनिकों की उस तथाकथित परिभाषा में से कोई भाग निकल सके जिसे हम ज्ञान-मीमांसा की संज्ञा से अभिहित करते रहे हैं। अर्थात् इस सम्बन्ध में हमारी दैनिक व्यवहार की भाषा में ज्ञान का जो अर्थ है वही महत्त्वपूर्ण होगा। परिष्कृत भाषा के शब्द काम में नहीं आएंगे। शब्दों के इन स्वमिश्र प्रयोगों को किसी लघुसूत्र में बांधा नहीं जा सकता अर्थात् किसी ठोस परिभाषा में भी नहीं। जो शब्द दार्शनिकों को अच्छे लगते हैं वे सुबोध ज्ञानगम्य शब्द हैं, जो अनेक अर्थों में प्रयुक्त होते हैं किन्तु जिनका कोई उत्तरदायित्व निश्चित एवं परिभाषित नहीं किया गया है। लीथियम जैसे व्यावसायिक शब्दों से भिन्न, उन शब्दों के अनेक अर्थ होते हैं।

किन्तु ज्ञान शब्द का विभिन्न अर्थों में प्रयोग करने वाले तरीकों को एक साथ कैसे जोड़ा जाए? खास तौर पर यदि किसी आकारी परिभाषा के जरिए यह कार्य न किया जाए तो? एक ठोस बात प्रस्तुत है–कि हम यह देखें कि शब्दों के प्रयोगों को परस्पर जोड़ा जा सकता है बिना किसी एक व्यापक सूत्र के जरिए वर्णित कर के। उदाहरणार्थ, 'खेल' शब्द ही लें। ताशों के खेल पत्तों के खेलों से कई प्रकार से मिलते जुलते हैं और उनके नियम बहुत कम फुटबाल पर लागू हो सकते हैं। किन्तु शतरंज के विषय में तब, हमारे सर्वेक्षण का परिणाम विट्जनस्टीन के अनुसार यही है कि हम बहुत सी वस्तुओं में समानताओं का एक जटिल जाल गुंथा हुआ देखते हैं। कभी कभी प्रत्येक बात समान दिखाई देती है कभी कभी विस्तार में समानता रहती है। ऐसे गुंथे जाल को कुटुम्ब की संज्ञा दी है उन्होंने। ऐसी ही जटिलता में खेल का मूलभेद छिपा है, और खेल शब्द का प्रयोग मात्र ही इस जटिलता को अपने में गूंथे [illegible] है। एक सूक्ति में वे इसका निष्कर्ष यों देते हैं सारांश व्याकरण द्वारा व्यक्त होता है। व्याकरण हमें यह बताता है कि अमुक पदार्थ किस तरह का है।

व्याकरण, यहां एक तकनीकी अभिव्यक्ति है। फिलोसोफिकल इन्वेस्टिगेशन्स में कुछ अन्य पद भी हैं जैसे 'भाषा' 'क्रीडा' एवं निकष (क्राइटेरियन)। उनके

पाठक एव उनके व्याख्याकार ही प्राय उनसे विशृंखलित हो जाते हैं क्योंकि विटजनस्टीन क्षण भर को भी यह स्पष्ट करने के लिए नहीं रुकते कि वे इस अभिव्यक्ति का[1] प्रयोग कैसे कर रहे हैं। यह स्पष्ट करने म उनको असफलता चाहे उचित हो अथवा नहीं, उनकी दशन-सम्बन्धी धारणा से उपजी यह सीधी परिणति है। कसी हुई परिभाषाओ से दशन विज्ञान की एक जाति के समान ही लगेगा । विटजनस्टीन की धारणा है कि दशन किसी बात की भी व्याख्या नहीं करता, और न किसी वस्तु का विश्लेषण ही करता है, केवल वणन करता है ।

इसके अतिरिक्त चिकित्सा–विनान की प्रक्रिया मे जिस भाति तत्वों का महत्व है उसी भाति दशन म भी उसके द्वारा प्रस्तुत विवरणो का महत्व है । 'ज्ञान' शब्द के प्रयोग के तरीको मे प्रकट कुछ पहलू ही दशन की गडबडियो के जन्मदाता हैं तथा इनके कारण ही हम बौद्धिक रूप स कुंठित हो जाते हैं । इससे कम कोई भी अवस्था हमारा उपचार नहीं कर सकती कि हम वास्तविक भाषाई प्रयोग का सही विवरण प्रस्तुत करें । एक ऐसा विवरण जो किसी भी भाति मूल अभिरुचि का नहीं । दाशनिक द्वारा किसी प्रश्न पर विचार उसी प्रकार होता है जसे किसी बीमारी का हुआ करता है । एक भिन्न रूपक लें तो कहगे कि दाशनिक एक घबडाई हुई मक्खी को उस बोतल मे से निकलने का माग बताता है जिसमे वह चली गई है।

[दाशनिक का इन सदर्भों मे अर्थ है अच्छा दाशनिक अर्थात् वह दाशनिक जो विटजनस्टीन की प्रणाली का उपयोग करता है । बहुत स दाशनिकों ने तो बीमारी का इलाज करने के बजाय बीमारी फलाई है और मक्खी को बोतल मे घुसने के लिए ही आकर्षित किया है ।[2]]

इस पर भी यदि हम विटजनस्टीन के द्वारा प्रस्तुत दाशनिक प्रश्न को समझना चाह, तो हमे सबसे पहले यही पूछना चाहिए कि किस विशिष्ट प्रलोभनो से वे हमे मुक्त करना चाहते हैं । उनकी आवश्यकता की चर्चा को ही लें । इसम विटजनस्टीन दो

---

[1] तुलना के लिए देखें, मूर का यह कथन 'मै अभी भी सोचता हूँ कि व्याकरण के नियमों की बाबत उनके द्वारा कही हुई बात का साधारण अर्थ नहीं था, और मैं अभी तक इस सबध म स्पष्ट नहीं हो पाया हूँ कि व किस अर्थ मे उसका उपयोग करते रहे थे ।' तथा मैलकम का या कथन, 'थोड़ी हिचक के साथ ही मैं निकष की धारणा पर कुछ कहूगा, क्योंकि यही विटजनस्टीन के दशन का सर्वाधिक कठिन स्थल है ।'

[2] देखें बी० ए० फरेल 'एन एप्रेजल आव थेरेप्यूटिक पोजिटिविज्म' (माइण्ड 1946) ।

प्रमुख प्रलोभनों पर चर्चा करते हैं। पहला है– प्रत्येक शब्द को एक नाम मानना। यह एक ऐसा प्रलोभन है जो हम मीनोंग की भाँति, आभासी इयत्ताओं के रचने की ओर प्रवृत्त करता है। खास तौर पर अमूर्त संज्ञाओं के सन्दर्भ में। तथा दूसरा यह सोचना कि 'शब्द बोध' या 'शब्द सार्थकता का ज्ञान' ये सब कोई न कोई मानसिक प्रक्रिया है। जो उस विचार के पदार्थ हैं जिसे लाक ने प्रत्यय (आइडिया) तथा श्लिक ने विषय वस्तु (कण्टेण्ट) माना है। यह अर्थ का ऐसा विश्लेषण है जो अपरिहार्य रूप से उन पहेलियों की ओर ले जाता है जो श्लिक की रचनाओं में भरी पड़ी है।[1]

यदि हम चुप हो जाएँ और शब्द वस्तुतः जिस तरह प्रयुक्त होते हैं उसी पर बिना पूर्वाग्रह के विचार करें तो अर्थ का रहस्य उड़ जायगा। हम सरलता से अपना सन्तुलन बनाए रख सकते हैं यदि हम वास्तविक भाषाओं के बजाय सम्भव भाषा का प्रयोग करें। कारनैप का दृष्टिकोण भी यही है किन्तु द लोजिकल सिण्टेक्स आव लैंग्वेज में कारनैप सम्भव भाषा का जो विवरण देते हैं वह जटिल एवं कृत्रिम सूत्रों में बद्ध है। इसे हम दैनिक कारोबार की जिन्दगी में प्रयुक्त नहीं कर सकते, जबकि विटजनस्टीन सामाजिक व्यवहार के एक रूप को वर्णित करते हैं–(चाहे यह व्यवहार किसी वास्तविक समुदाय का न लगकर काल्पनिक जाति का ही लगता हो–) और हम उस तरह की भाषा का प्रयोग करने के लिए कहते हैं जो व्यावहारिक रूप से उस

---

[1] यदि मुझे ट्रैक्टेटस के अलावा कोई दो पुस्तकों के विषय में कहने के लिए कोई कहे जो मेरी दृष्टि में फिलोसोफिकल इन्वेस्टीगेशन्स के अध्ययन के लिए उपयुक्त है तो मैं श्लिक की पुस्तक गेसामेल्टे आफ मार्जे (खास तौर पर उनके फार्म एण्ड कण्टेण्ट पर दिए गए भाषणों का) तथा विलियम जेम्स की प्रिंसिपल्स आव साइकोलोजी (जो उनके प्रेग्मेटिज्म नामक ग्रन्थ के पूरक के रूप में निकली थी) का सन्दर्भ देना चाहूँगा। विटजनस्टीन ने जेम्स का सन्दर्भ बहुत दिया है जो एक अपर सम्मान है। किन्तु यह सब उन्होंने कदाचित जेम्स से रहे अपने सम्बन्धों का ब्यौरा देने के लिए किया हो। विटजनस्टीन सेंट आगस्टीन के कन्फेशन्स का भी जिक्र करते हैं जो उत्तम ढंग से उन अवस्थाओं का वर्णन करते हैं जिनमें दार्शनिक समस्याएँ खड़ी होती हैं। मैंने जेम्स के उन पर रहे प्रभाव के विषय में निजी प्रमाणों पर लिखा है। उनके एक पहले के शिष्य ए॰ सी॰ जेकसन ने मुझे कहा है कि विटजनस्टीन ने जेम्स का अविकल सन्दर्भ दिया है तथा आश्चर्य की बात तो यह है कि एक जगह तो उन्होंने उनकी पुस्तक के एक पृष्ठ का सन्दर्भ भी दिया है। एक अवसर पर तो उनके बुक शेल्फ पर केवल जेम्स की ही पुस्तक प्रिंसिपल्स आव साइकोलोजी दिखाई दिया करती थी।

प्रकार के जीवन के लिए उपयोगी हो सकेगा।[1] उदाहरण के लिए, मान लो, एक कारीगर मजदूर के साथ काम कर रहा है। वह जब ईट कहता है तो मजदूर को ईट लाने की शिक्षा देता है। और जब वह 'पत्थर की पट्टी' कहता है तो उसका तात्पर्य उसे पत्थर की पट्टी लाने का सकेत समझाना है। तब विटजनस्टीन के लिए यही एक ऐसी भाषा है जो दार्शनिको के काम की है। खास तौर पर वे भाषा का यह मानकर प्रयोग करें कि वह केवल नामो से ही बनी है। वे यहा आगस्टीन का सदर्भ देते हैं।

ऐसी भाषा निश्चय ही अग्रेजी भाषा से बहुत अधिक सरल होगी। यह बहुत कम सामाजिक परिस्थितियो मे उपयोगी होगी। किन्तु इतने सरलीकृत आकार के प्राप्त हो जाने पर भी शब्द केवल नाम नही रह पाते। 'पत्थर की पट्टी' को समझने का अर्थ होगा उसे भाषाई खेल में कही उपयोग करने का आशय समझना। इस सदर्भ मे यह खेल आदेश देने और लेने की स्थिति है। इस बात को समझने के लिए हमे कारीगर को सुनने की प्रक्रिया को स्वीकारना पडेगा जब वह किसी पदार्थ की ओर सकेत करते हुए कह रहा हो कि 'यह पत्थर की पट्टी है'। वैकल्पिक रूप से, मामले पर विचार करने का एक तरीका, जैसा विटजनस्टीन ने सोचा है, इसी तथ्य को उजागर करता है कि नाम केवल छाप है। पत्थर की पट्टियो मे वास्तव मे पट्टी नामक शब्द लिखा जा सकता है। तब हमे इस शब्द को पढने की शिक्षा ग्रहण करनी पडेगी इससे पूर्व कि हम कारीगर के आदेश मान सकें। किन्तु ऐसी प्रक्रियाए (जिन्हे हम वस्तुओ के नाम जानने की प्रक्रिया कह सकते हैं) भाषा के प्रयोग की प्रारम्भिक अवस्थाए हैं उसके उदाहरण नही। नामकरण मात्र भाषाई खेल मे कोई बहुत बडी गति नही है। शतरज मे चाल चलने का मतलब है कि उस तख्ते मे मोहरे को एक स्थान से हटाकर दूसरे स्थान पर रखना।

तब फिर पट्टी का अर्थ नाम रूप-पदार्थ तक ही सीमित नहीं रहेगा, किन्तु भाषा मे इसका कैसे प्रयोग होता है इसका सकेत देगा। यदि वास्तविक पट्टी (भौतिक पदार्थ) भी पट्टी के अर्थ का अश होता तभी हम विटजनस्टीन के अनुसार

---

[1] इस विषय पर कारनप के अनुयायियो तथा साधारण भाषाविचारको के बीच काफी सुवाद चला। उदाहरणार्थ देखें, वाई० बार हिलेल एनालिसिस आव करेक्ट लग्वेज (माइण्ड 1946), एव विटजनस्टीन की तरफ से ए० एम्ब्रोस कृत द प्रोब्लेम आव लिग्विस्टिक इनएडीक्वसी' (फिलोसोफिकल एनालिसिस सपा० एम० ब्लक 1950)। जे० एस० एल० के समीक्षकों ने सदैव ही कडवाहट के साथ यह शिकायत की है कि तार्किक विषयो पर ब्रितानी दार्शनिकों की रचनाए चर्चा करने के लिए अपने आकारों में अपर्याप्त है।

यह कहने लायक होते कि मैंने पट्टी शब्द मे एक अंश को तोड दिया है ।' मैंने आज पट्टी शब्द के सैंकडो टुकडे कर दिए हैं ।' आदि । ऐसे वाक्य स्पष्ट ही निरर्थक हैं—जो हमें यह देखने म सहायता करते हैं कि अर्थों के नामकरण का सिद्धात भी निरर्थक है । यहा विटजनस्टीन का तर्क उस विधि का एक महत्वपूर्ण उदाहरण बन जाता है जिसे वे स्वय उपचार विधि की सज्ञा देते हैं । वे छिपे हुए निरर्थक भाव को प्रकट निरर्थक भाव का रूप देते हैं ।

कुछ खास मामलो म विटजनस्टीन स्वीकारते हैं कि हम किसी को कहते हैं कि पट्टी शब्द का मतलब है इस प्रकार का इमारत का सामान' । उसके साथ पट्टी की ओर इशारा करते हुए हम सकेत भी देंगे । किन्तु उनके विचार मे, तब हम ऐसे व्यक्ति से बात कर रहे होगे जो हमारे भाषाई खेल को भली भांति समझ रहा है । और हम उसे एक खास बिन्दु पर आकर 'पट्टी' शब्द का प्रयोग करने के लिए कहग, ईंट का नही । सार्थकता के नामकरण का सिद्धात अपनी सगति उन अप्रतिनिधि बातो के हवाले से प्राप्त करता है जिसम हम किसी परिचित भाषा म ही अपनी वाक्य शक्ति का प्रसार कर रहे होते हैं या फिर विदशी भाषा सीख रहे होते हैं जबकि एक समुचित विश्लेषण के लिए उन्हीं बातों पर ध्यान को केन्द्रित करना पडेगा जिनके जरिए हम अपनी ही भाषा को समझ सकते हैं । मामले पर इस तरह दृष्टि रखने पर हम शीघ्र यह देख पाएगे कि यह जान लेना ही कि किन वस्तुओ पर किसकी छाप लगानी है' एक भाषा को समझ लेना नही होगा । चाहे अंकन एव पुनरंकन, समझने के दौर के प्राथमिक कदम के रूप मे जरूरी हो अथवा उपयोगी ।

विटजनस्टीन का प्रश्न है सार्थकता के सिद्धात में सकेतन या प्रकट परिभाषा पर इतना बल क्यो दिया गया है ? क्योंकि दार्शनिको ने सोचा था कि सकेतन से मामला साफ हो जाता है कि यह हमे गलत-फहमी के खतरे से बाहर ले जाता है जब हम चर्चनीय विषय को समुचित रूप से सूक्ष्मतम रूप म स्पष्ट कर लेत हैं । किन्तु विटजनस्टीन का कहना है कि गलत-फहमी क खतरे से बचन का कोई मार्ग नही है—हम किसी क द्वारा दिए गए सकेत को भी गलत समझ सकते हैं—उसी प्रकार जिस प्रकार हम एक आकारी क्रिया पदात्मक परिभाषा को गलत समझ सकते हैं । उदाहरणार्थ यदि एक शिक्षक लाल' वर्ग की ओर सकेत करता हुआ कहता है, लाल । उसके शिष्य यह समझ सकते हैं कि उनका शिक्षक उन्ह वर्ग का नाम बता रहा है । दार्शनिको न मान लिया था कि (यहा अब विटजनस्टीन के मस्तिष्क म ट्रैक्टेटस एव रसेल के तर्कसम्मत अनुवाद की बात है) 'अभिव्यक्ति के अर्थ का भी अन्तिम विश्लेषण होना चाहिए ।' ऐसा विश्लेषण जो सरल तत्वो से बना हो ताकि अर्थ को पूर्ण सरलता से समझने के लिए हम उसम प्रयुक्त शब्दो के सकेत को समझ

सकें। किन्तु अब विटजनस्टीन सोचते हैं कि तकसम्मत अणुवाद के जिन सरलाकारो की माग की गई है व सरलाकार (सिम्पल्स) मिलने सभव नही हैं।

एक प्रस्तुत भाषाई खेल के लिए वे यह मानने के लिए तैयार हैं कि कुछ वस्तुओ को सरल मानकर चल सकते हैं। (तब उनके नाम हमारे वाक्यो मे आगे विश्लेषणापेक्षी नही होंगे।) किन्तु तात्विक रूप से ऐसे पदार्थ सरल नहीं होते। वे ससार के अन्तिम मौलिक तत्व भी नहीं होते। रसल की एक तकसम्मत समुचित सत्ता की खोज' एक ऐसी सत्ता (नाम) की खोज, प्रकृति से ही आगे के विश्लेषण की अपेक्षा नही रखेगी, अन्ततः उन्हें इस निष्कर्ष पर ले गई कि प्रदर्शन-योग्य यह (This) नामक शब्द ही एक ऐसा नाम है जो इस माग की पूर्ति करता है। तो भी यह शब्द विटजनस्टीन के अनुसार कोई नाम है ही नहीं। सही निष्कर्ष तो यही है कि ऐसी एक भी तार्किक रूप से समुचित सत्ता नही है जिससे यह निष्कर्ष निकले कि सार्थकता का विश्लेषण सिद्धान्त (तथा उसके साथ यह दृष्टिकोण भी कि दर्शन का यह विशेष कार्य है कि वह अन्तरिम विश्लेषण सुझाए) पूर्णतः अमान्य कर दिया जाना चाहिए।

तब, हमे कौनसी वस्तु भटका देती है? कौनसी ऐसी अवस्था है जो सरलाकारों एव अन्तिम विश्लेषण की ओर प्रवृत्त करती है? हम इस बात के तो आदी हो गए हैं कि यदि हमारे सामने कोई गलतफहमी पदा हो तो उस गलतफहमी मे डालने वाले वाक्य के स्थान पर हम एक ऐसे एवजी कथन को रख देते हैं जो उसकी अपेक्षा ज्यादा स्पष्ट है। युक्तिपूवक ऐसे एवजी कथन को मौलिक कथन के विश्लेषण का ही अग माना जा सकता है। इस तरह हम यह मानने को विवश होना पड़ता है कि एक पूर्णत उपयुक्त एव पारदर्शी भाषा भी हो सकती है-जिसमे अन्तिम विश्लेषण बताने वाले पदों के अतिरिक्त अन्य कोई भी अभिव्यक्तिया न हों। ऐसी भाषा को खोजने के लिए हमे वे ही प्रश्न पूछने के लिय विवश होना पड़ेगा-जो ट्रैक्टेटस मे उठाए गए हैं, जैसे एक तकवाक्य का वास्तविक आकार क्या है? या अन्तिम भाषा के उपकरण क्या हैं? आदि। हम सदव ही एक प्रत्यय के कारण तत्ववादी जटिलताओ म घुसकर उसके बन्दी हो जाते हैं। इसलिए उनका सवप्रथम कम उस प्रत्यय का विनाश करना है। उन्हे इस बात का भान था कि ऐसा करने पर उनके आलोचक जो कुछ महान एव महत्वपूण है उसे नष्ट करने का अभियोग उन पर लगावेंगे जब कि उनके खुद के मत म वे केवल ताश के पत्तों का मकान ही ढहा रहे हैं। ये पत्तो के मकान आप ही ढह जाएगे यदि हम उस जमीन की सफाई कर देंगे जिन पर वे खड़े हैं। अर्थात् हम सामान्य दनिक भाषा मे जिस तरह 'ज्ञान-कथन' एव नाम' का वणन करते हैं उसका सही विश्लेषण करने पर यह बात स्वाभाविक रूप से तय हो जाएगी।

यह कहने लायक होते कि मैंने पट्टी शब्द में एक अंश को तोड़ दिया है। मैंने आज पट्टी शब्द के सैकड़ों टुकड़े कर दिए हैं।' आदि। ऐसे वाक्य स्पष्ट ही निरर्थक हैं—जो हमें यह देखने में सहायता करते हैं कि अर्थों के नामकरण का सिद्धान्त भी निरर्थक है। यहां विटजनस्टीन का तर्क उस विधि का एक महत्वपूर्ण उदाहरण बन जाता है जिसे वे स्वयं उपचार विधि की संज्ञा देते हैं। वे छिपे हुए निरर्थक भाव को प्रकट निरर्थक भाव का रूप देते हैं।

कुछ खास मामलों में विटजनस्टीन स्वीकारते हैं कि हम किसी को कहते हैं कि पट्टी शब्द का मतलब है इस प्रकार का इमारत का सामान'। उसके साथ पट्टी की ओर इशारा करते हुए हम संकेत भी देंगे। किन्तु उनके विचार में, तब हम ऐसे व्यक्ति से बात कर रहे होंगे जो हमारे भाषाई खेल को भली भांति समझ रहा है। और हम उसे एक खास बिन्दु पर आकर 'पट्टी' शब्द का प्रयोग करने के लिए कहेंगे, ईंट का नहीं। सार्थकता के नामकरण का सिद्धान्त अपनी संगति उन अप्रतिनिधि बातों के हवाले से प्राप्त करता है जिसमें हम किसी परिचित भाषा में ही अपनी वाक्य शक्ति का प्रसार कर रहे होते हैं या फिर विदेशी भाषा सीख रहे होते हैं, जबकि एक समुचित विश्लेषण के लिए उन्हीं बातों पर ध्यान को केन्द्रित करना पड़ेगा जिनके जरिए हम अपनी ही भाषा को समझ सकते हैं। मामले पर इस तरह दृष्टि रखने पर हम शीघ्र यह देख पाएंगे कि यह जान लेना ही कि 'किन वस्तुओं पर किसकी छाप लगानी है' एक भाषा को समझ लेना नहीं होगा। चाहे अंकन एवं पुनरंकन समझने के दौर के प्राथमिक कदम के रूप में जरूरी हो अथवा उपयोगी।

विटजनस्टीन का प्रश्न है सार्थकता के सिद्धान्त में संकेतन या प्रकट परिभाषा पर इतना बल क्यों दिया गया है? क्योंकि दार्शनिकों ने सोचा था कि संकेतन से मामला साफ हो जाता है कि यह हमें गलत-फहमी के खतरे से बाहर ले आता है जब हम चर्चनीय विषय को समुचित रूप से सूक्ष्मतम रूप में स्पष्ट कर लेते हैं। किन्तु विटजनस्टीन का कहना है कि गलत-फहमी के खतरे से बचने का कोई मार्ग नहीं है—हम किसी के द्वारा दिए गए संकेत को भी गलत समझ सकते हैं—उसी प्रकार जिस प्रकार हम एक आकारी क्रिया पदात्मक परिभाषा को गलत समझ सकते हैं। उदाहरणार्थ यदि एक शिक्षक लाल' वर्ग की ओर संकेत करता हुआ कहता है, लाल। उसके शिष्य यह समझ सकते हैं कि उनका शिक्षक उन्हें वर्ग का नाम बता रहा है। दार्शनिकों ने मान लिया था कि (यहां अब विटजनस्टीन के मस्तिष्क में ट्रैक्टेटस एवं रसल के तर्कसम्मत अनुवाद की बात है) 'अभिव्यक्ति के अर्थ का भी अंतिम विश्लेषण होना चाहिए।' ऐसा विश्लेषण जो सरल तत्वों से बना हो ताकि अर्थ को पूर्ण सरलता से समझने के लिए हम उसमें प्रयुक्त शब्दों के संकेत को समझ

सकें। किन्तु अब विट्जनस्टीन सोचते हैं कि तर्कसम्मत अणुवाद के जिन सरलाकारों की माँग की गई है वे सरलाकार (सिम्पल्स) मिलना सम्भव नहीं हैं।

एक प्रस्तुत भाषाई खेल के लिए वे यह मानने के लिए तैयार हैं कि कुछ वस्तुओं को सरल मानकर चल सकते हैं। (तब उनके नाम हमारे वाक्यों में आगे विश्लेषणापेक्षी नहीं होंगे।) किन्तु तात्विक रूप से ऐसे पदार्थ सरल नहीं होते। वे संसार के अंतिम मौलिक तत्व भी नहीं होते। रसल की एक तर्कसम्मत समुचित संज्ञा की खोज' एक ऐसी संज्ञा (नाम) की खोज, प्रकृति से ही आगे के विश्लेषण की अपेक्षा नहीं रखेगी, अन्ततः उन्हें इस निष्कर्ष पर ले गई कि प्रदर्शन-योग्य यह (This) नामक शब्द ही एक ऐसा नाम है जो इस माँग की पूर्ति करता है। तो भी यह शब्द विट्जनस्टीन के अनुसार कोई नाम है ही नहीं। सही निष्कर्ष तो यही है कि ऐसी एक भी तार्किक रूप से समुचित संज्ञा नहीं है जिससे यह निष्कर्ष निकले कि सार्थकता का विश्लेषण सिद्धान्त (तथा उसके साथ यह दृष्टिकोण भी कि दर्शन का यह विशेष कार्य है कि वह अन्तरिम विश्लेषण सुझाए) पूर्णतः समाप्त कर दिया जाना चाहिए।

तब हमें कौनसी वस्तु भटका देती है? कौनसी ऐसी अवस्था है जो सरलाकारों एवं अन्तिम विश्लेषण की ओर प्रवृत्त करती है? हम इस बात के तो आदी हो गए हैं कि यदि हमारे सामने कोई गलतफहमी पैदा हो तो उस गलतफहमी में डालने वाले वाक्य के स्थान पर हम एक ऐसे एवजी कथन को रख देते हैं जो उसकी अपेक्षा ज्यादा स्पष्ट है। युक्तिपूर्वक ऐसे एवजी कथन को मौलिक कथन के विश्लेषण का ही अंग माना जा सकता है। इस तरह हमें यह मानने को विवश होना पड़ता है कि एक पूर्णतः उपयुक्त एवं पारदर्शी' भाषा भी हो सकती है-जिसमें अन्तिम विश्लेषण बताने वाले पदों के अतिरिक्त अन्य कोई भी अभिव्यक्तियाँ न हों। ऐसी भाषा को खोजने के लिए हमें वे ही प्रश्न पूछने के लिये विवश होना पड़ेगा—जो ट्रैक्टेटस में उठाए गए हैं, जैसे एक तर्कवाक्य का वास्तविक आकार क्या है? या अन्तिम भाषा के उपकरण क्या हैं? आदि। हम सदैव ही एक प्रत्यय के कारण तत्ववादी जटिलताओं में घुसकर उसके बन्दी हो जाते हैं। इसलिए उनका सर्वप्रथम कार्य उस प्रत्यय का विनाश करना है। उन्हें इस बात का ज्ञान था कि ऐसा करने पर उनके आलोचक जो कुछ महान एवं महत्वपूर्ण है उसे नष्ट करने का अभियोग उन पर लगाएँगे जब कि उनके खुद के मत में वे केवल ताश के पत्तों का मकान ही ढहा रहे हैं। ये पत्तों के मकान आप ही ढह जाएँगे यदि हम उस जमीन की सफाई कर देंगे जिन पर वे खड़े हैं। अर्थात् हम सामान्य दैनिक भाषा में जिस तरह ज्ञान-कथन' एवं नाम' का वर्णन करते हैं उसका सही विश्लेषण करने पर यह बात स्वाभाविक रूप से तय हो जाएगी।

यद्यपि बात विटजनस्टीन जैसी सूक्ष्मता से नही कही जा सकी है तो भी भाषा को समझने की उनकी दृष्टि पर इतना कहना काफी है जो यह मानती है कि भाषा के समझने का मतलब यही है कि हम केवल मात्र उन पदार्थों का सकेत समझते हैं, (अर्थात् उन पदार्थों का जो किसी भाषा म शब्दो द्वारा नामाकित होते हैं) चाहे वह सन्निहित (अन्तरिम) रूप से हो या अन्तिम रूप से। अब इससे कठिनतर समस्या भी आती है कि बोध एक मानसिक प्रक्रिया है यह मानने के आवेग को हम कैसे जीतें? एक व्यक्ति के विषय म यह कह सकते हैं कि वह समझता है'। मान लो, एक शिक्षक इस क्रम को लिखता है 3, 9 27। और तब अपने शिष्य से कहता है, आगे जारी रखो। और शिष्य लिखता है–81, 243। और शिक्षक सतुष्ट हो जाता है, यह जानकर कि उसका शिष्य समझता है। या फिर मानलो हम किसी को यह लिखते हुए देखें 1, 3, 6 और मुश्किल मे पड जाए क्योंकि हम 6 के स्थान पर 5 की आशा करते हैं। और तब वह 10 लिखता है तो हम तुरन्त कह सकते हैं कि उसी क्रम मे आग वह 15 21 लिखेगा और हम अपने आप से कहेंगे, कि हम समझ गए।

समझ की ऐसी प्रक्रिया के समय इसके बहुत से सहचारी अग भी हो सकते हैं। हम तनाव का अनुभव कर सकते हैं और तब एक मुक्ति का। हम अपने आप से कहगे 'म तर केवल एक ज्यादा होने का ही था।' हम जिन अको की अपेक्षा करते हैं उनका मानसिक बिम्ब हमारे समक्ष हो सकता है–किन्तु इनम से एक भी हमारी समझ के लिए पर्याप्त नही है। जब हम समझते हैं तो चाहे सामान्यत हमारे समक्ष चाक्षुष बिम्ब रहते हो तो भी इन बिम्बो का सदव ही कुछ अन्य उपकरणो से स्थानान्तर किया जा सकता है। जैसे लाल बिम्ब का होना वर्णफलक को देखकर स्थानान्तरित हो सकता है। और इसम हमारी समझ का कोई भी भाग कम नही हुआ होगा। यदि सामान्यत हम अपने से ही किसी सूत्र म बात करें तो चाहे जितना जोर से हम उसे कह तो भी इससे हमारी समझ पर कोई फर्क नही पडेगा। इसके अतिरिक्त हमारे सामने एक बिम्ब हो सकता है जो हमारे लिए एक सूत्र हो, तो भी हम उसे नहीं समझें यह स्थिति भी हो सकती है। इस तरह विटजनस्टीन का मत है कि जिस रूप मे भी प्रक्रियाए हैं (मानसिक प्रक्रियाओ समेत), ऐसी प्रक्रियाए जिनसे समझ स्पष्ट होती है वे तो ठीक हैं किन्तु समझ अपने आपमे एक मानसिक प्रक्रिया हो यह सही नही है।

यदि समझ मानसिक प्रक्रिया नही है'–तब स्वभावत यही प्रश्न उठेगा कि यह क्या है'? यह मूल प्रश्न है। इसे विटजनस्टीन की दृष्टि मे व्याकरण की समस्या माननी चाहिए। वे समझ के विषय की विशिष्ट समस्या पर अपना ध्यान केन्द्रित करते ह। और उसे मनोवैज्ञानिक शब्दों की एक सामान्य समस्या का रूप देना

चाहते हैं। वे पूछते हैं ये शब्द कैसे कार्य करते हैं? हम संभवत यह कैसे बता सकते हैं कि हम उन्हें सही या गलत ढंग से प्रयुक्त कर रहे हैं? ये सब ऐसे प्रश्न हैं जिनका उत्तर विटजनस्टीन इन्वेस्टिगेशन्स के उत्तरार्द्ध में देने का प्रयास करते हैं। किन्तु वहां भी हम एक यथोचित एवं निश्चित उत्तर मिलने की आशा नहीं रखनी चाहिए। यह तो विटजनस्टीन की मूल विधि से भी बाहर जाना हो जायगा। उनका उद्देश्य चिकित्सात्मक है। यहां उसका यही अर्थ है कि वे हमारी इस प्रवृत्ति की चिकित्सा करते हैं। जिसके आधार पर हम यह मान लेते हैं कि मनोवैज्ञानिक शब्द सदैव ही ऐसे निजी अनुभवों का नामांकन करते हैं—जिन्हें अकेले हम ही जान सकते हैं। या फिर जैसा वे इसे प्रस्तुत करते हैं उसके अनुसार यह प्रवृत्ति यह मानने की है कि हममें से प्रत्येक एक निजी भाषा का प्रयोग कर रहा है, जिसके शब्द गुप्त मानसिक जीवन का नामांकन कर रहे हैं।

विटजनस्टीन के अनुसार ऐसा निजी भाषा का विचार मात्र ही अबोधगम्य है।[1] भाषा में नामों का प्रयोग उसके अन्तर्बाह्य नियमों के आधार पर ही होगा। अर्थात् वह नियमों पर संचालित है, यही बात भाषा को अर्थहीन कोलाहल या कागज के चिन्हों से अलग करती है। किन्तु विटजनस्टीन का प्रश्न है कि हम तब यह कैसे कहेंगे कि हमारी निजी भाषा में आए नाम समुचित रूप से प्रयुक्त हुए हैं? संवेदनाएं, प्रभाव या जैसा आप सोचें, प्राकल्प से ही प्रवहमान हैं—अस्थायी हैं—हम उन्हें अपने वर्तमान अनुभवों से तुलना करने के लिए वापस लौटा नहीं सकते, ताकि हम यह देख सकें कि उन्हें वही नाम दिया जाय या नहीं जो हमने पहली बार सोचा था। विटजनस्टीन के अनुसार केवल यही जवाब देना पर्याप्त नहीं है कि, वे मुझे वैसे ही दिखाई देते हैं। यह कसौटी कि मैं अपनी भाषा का सही प्रयोग कर रहा हूं या नहीं केवल इस तथ्य में ही निहित नहीं हो सकती कि मैं अपने आप को वैसा करता हुआ देख रहा हूं। एक निश्चय का प्रयोग यह निर्धारित करने के लिए ही होता है कि जो कुछ दिखाई दे रहा है वह सही है या नहीं। यही इसका मूल बिन्दु है। 'आभास होना', ही इस तरह अपने आपमें एक कसौटी नहीं है। यह उत्तर कि मुझे उसके वैसा होने का स्मरण है' भी किसी अच्छी स्थिति का संकेत नहीं है, जब तक कि सामान्य घटनाओं को स्मरण करने के अपने दावे की ही भांति उसको जांच सकने का भी कोई स्वतन्त्र तरीका न हो। अन्यथा केवल अपनी स्मृति का ही सहारा लेना ऐसा है मानो कोई सुबह के एक अखबार की ही अनेक प्रतियां जांच हेतु खरीद लें और उसी आधार पर कहे कि जो कुछ उसमें

---

[1] देखें ए० जे० आयर एवं आर० रीज 'केन देयर बि ए प्राइवेट लैंग्वेज?' (पी० ए० एस० एस० 1954)।

कहा गया है वह सही है। वास्तव में तो इस बात की कोई कसौटी है ही नहीं कि जिस तथाकथित निजी भाषा का प्रयोग हम कर रहे हैं उसके शब्द सही ढंग से प्रयुक्त हो रहे हैं अथवा नहीं। और इसका अर्थ यही हुआ कि ऐसी कोई भाषा नहीं है।

क्या इससे हम यही निष्कर्ष निकालें कि शब्द संवेदनाओं को व्यक्त नहीं कर सकते? यह विटजनस्टीन की दृष्टि में बेहूदा निष्कर्ष होगा। क्या हम प्रतिदिन संवेदनाओं की बात नहीं करते और उन्हें कोई नाम नहीं देते? केवल वास्तविक प्रश्न यही है कि वे कैसे किसी वस्तु का सन्दर्भ देते हैं? दूसरे शब्दों में हम 'संवेदन शब्दों' को जैसे पीड़ा को कैसे अभिव्यक्त करते हैं? यहां एक संभावना है कि शब्द संवेदना की आदिम एवं स्वाभाविक अभिव्यक्ति से जुड़े हैं और स्वस्थान में ही प्रयुक्त होते हैं। एक बच्चे ने अपने को चोट पहुंचा ली है और वह चिल्लाता है—और तब बुजुर्ग उससे बातचीत करते हैं—और उसे हाव भाव सिखाते हैं और बाद में वाक्यों की रचना भी। इस प्रकार वे बच्चे को नया पीड़ा-व्यवहार सिखाते हैं।

यहां विटजनस्टीन विचार कर कहते हैं कि संभावना यही है कि मैं पीड़ा में हूं नामक वाक्य चिल्लाहट एवं पश्चात्ताप का स्थानान्तर करले चाहे इसका आकार अब एक कथन का हो गया है। अर्थात् वास्तव में यह पीड़ा-व्यवहार का ही एक अन्य प्रकार है—बजाय एक वर्णनात्मक कथन होने के। हम ऐसी व्याख्या को इस आधार पर तत्काल ही अमान्य कर सकते हैं कि एक व्यक्ति सदा ही विचार व्यक्त करने के लिए ही भाषा का प्रयोग करता है। एक तर्कवाक्य का अभिव्यक्ति देने के लिए या कोई निर्णय देने के लिए। किन्तु यह तो इतना ही है कि विटजनस्टीन इसके प्रतिवाद में कह रहे हैं। निर्णय लेना उन बहुत से मार्गों में से एक है जिनमें हम भाषा का उपयोग करते हैं। वे आगे कहते हैं कि इसका अर्थ यह हो सकता है कि मैं पीड़ा में हूं' का भिन्न भिन्न सन्दर्भ में भिन्न भिन्न अर्थ हो। वे लिखते हैं हम निश्चय ही यह नहीं कहते कि कोई शिकायत कर रहा है क्योंकि वह कहता है कि वह पीड़ित है। इस तरह यह शब्द मैं हूं' शिकायत की चिल्लाहट भी हो सकती है या और कुछ भी। महत्वपूर्ण बात तो यह है कि इनका कथन होना जरूरी नहीं है। इसी प्रकार की मान्यता मैं डर गया हूं जैसे मनोवैज्ञानिक कथनों पर भी लागू हो सकती है। यदि हम यह कहें कि मैं डर गया हूं तो हमें पूछा जाता है कि क्या हमारी उक्ति भय की चिल्लाहट है या केवल मैं जैसा अनुभव कर रहा हूं मात्र उसको बताने का प्रयास है? या हमारे मन की वर्तमान अवस्था का चित्रण है? तो हम इसके विषय में भी कभी कुछ और कभी कुछ उत्तर देंगे। और कई दफा हम यह भी नहीं मान पाएंगे कि हम क्या कहना है। इस प्रश्न का कि 'मैं डर गया हूं' का वास्तव में क्या अर्थ है?' कोई सीधा उत्तर नहीं है।

हमे मदद ही सन्म का सहारा लेना होगा एक भाषाई खेल म [जिसमे शब्द बोले गए हैं]। निश्चय ही हम नही मान सकते कि यही वह बिदु है जिस पर विटजनस्टीन खास तौर पर बल देना चाहते हैं कि जो कोई भी ऐसी बात कहता है वह एक मानसिक अवस्था का ही विवरण द रहा है।

ज्ञानवादियो ने सामान्यत यही कहा है कि मैं पीडा म हू एक निजी अवस्था का ही विवरण है और इसी आधार पर उन्होने यह निष्कर्ष निकाला है कि 'केवल मैं ही जानता हू कि मैं पीडा म हू।' किन्तु विटजनस्टीन की आपत्ति है कि यह सब स्पष्टत है ही नही। यह तो दैनिक अनुभव की बात है कि लोगो को यह पता लग जाता है कि मैं कष्ट पा रहा हू। वास्तव म तो मैं स्वय जान नही सकता कि मैं तकलीफ म हू। मैं जानता हू कि मैं पीडा म हू कहना निरर्थक है। इसकी सार्थकता उसी समय होगी जब मैं जानता हू कि पीडा म हू की ऐसे वाक्यो के साथ तुलना की जाय मेरा विचार है कि मैं पीडा म हूँ' या मैं दृढता पूर्वक विश्वास करता हू कि मैं पीडा म हू।' आदि आदि। दूसरे व्यक्ति मुझे देखकर यह कह सकते हैं कि मैं जानता हू कि वह पीडा म है। क्योंकि विटजनस्टीन के अनुसार दूसरी परिस्थितियो म वे सोच सकते हैं या दृढता पूर्वक विश्वास कर सकते हैं कि मैं पीडा म हू, (बिना जाने कि मैं पीडित हूँ अथवा नही किन्तु इसके विपरीत इससे यह कहा सिद्ध होता है कि मैं पीडा मे हूँ इसका ज्ञान मुझे होता है।

जब एक दार्शनिक हम कहे कि हम इस विषय म कभी निश्चित नही हो सकते कि कोई पीडित है या नही, तो विटजनस्टीन के अनुसार वह यही कहना चाहता है क्या तुम इस सभावना की कल्पना नही कर सकते कि यद्यपि वह चिल्ला रहा है पछता रहा है, गुर्रा रहा है तो भी हो सकता है वह सभी अवस्थाओ म केवल बहाना बना रहा हो। विटजनस्टीन भली भाति यह स्वीकारने के लिए तैयार हैं कि हम यह सहज ही कल्पना कर सकते हैं कि कोई कैसे इन मामलो म सदेहशील हो सकता है किन्तु इस माने हुए परिणाम को तो स्वीकारना नही होगा कि कोई कभी भी निश्चित हो ही नही सकता। कोई यह कल्पना भी तो कर सकता है कि एक व्यक्ति जो अपने कमरे का दरवाजा खोलते समय सदा यह सदेह करता है कि बाहर की जमीन ठोस है अथवा नही, और यह अभिमान भी कर सकता है कि एक खास अवसर पर ऐसा व्यक्ति निश्चय ही खोखल शून्य म पर रखेगा तो भी हम इस बात पर सदेह नही करते कि मैदान ठोस है या नही। विटजनस्टीन उपदेश के स्वर म कहते हैं-एक सत्य मामले का लेकर यह जाचने का प्रयत्न करना चाहिए कि अमुक व्यक्ति सचमुच भयभीत है या पीडित ? किन्तु यहा भी कोई दूसरा आपत्ति कर देगा कि यदि आप निश्चित हैं तो सदेह के सामने क्या आप

अपनी आखें बंद करके ही वठ गय ? विटजनस्टीन का उत्तर समझौतावादी नही है। वे कहते हैं आखें बंद हैं। हम अपने गलत होने की सभावना को अमान्य नही कर सकते। किंतु यह निष्कष लना भी ठीक नही है कि हम कभी भी निश्चित नही हो सकते।

सामान्यत विटजनस्टीन के शिष्य अपने गुरु के उदाहरण का अनुकरण करते हैं। खास तौर पर उनके मौन के दिनो म। यह बिल्कुल स्पष्ट है कि व कभी भी दूसरो द्वारा दिए गए दृष्टिकोण की परवाह नही करत थे। कुछ ऐसे कम्ब्रिज दाशनिक थ (जिनम सुविख्यात हैं जान विजडम)[1] जिन्होने जो बात विटजनस्टीन से एक सूत्र स ग्रहण की उस अपने अपने ढग से ही प्रस्तुत किया—और इस तरह कम्ब्रिज एव बाह्य जगत के बीच विचारो के सम्प्रेषण को खुला रखा।

बहुत से अन्य समसामयिक दाशनिको क विपरीत विजडम कला धम एव व्यक्तिगत सम्बन्धो म विशेष रूप स रुचिशील थे जिन पर उन्होने उल्लखनीय बातें कही हैं। यही कारण है कि वे कुछ अशो म तत्ववाद की ओर सहानुभूति रखत हैं। कोई भी जो साहित्य को या मनोविश्लेषण को गभीरतापूवक लेता है वह इस सिद्धान्त के आगे घुटने नही टेकेगा कि जो कुछ भी कथनीय है उसे स्पष्ट एक कसी हुई भाषा मे कहा जा सकता है। वह इस बात स भी सतुष्ट नही हो सकता कि केवल सत्य कथन ही ज्ञानदायक हो सकते हैं। विजडम का कहना है कि तत्ववाद आज भी मूल्यवान हो सकता है और उसमे वस्तुस्थितिवाद से पूव की इस धारणा को बदलन की आवश्यकता भी नही है कि यह एक पारानुभवी (सुप्रा एम्पिरिकल) इयत्ताओ का सकेत नही है।

तत्ववादी मुवादो की मूल प्रकृति को उजागर करने के लिए विजडम तीन विभिन्न प्रकार के विवादो की चर्चा करत हैं—(1) अनुभववादी विवाद (उदाहरणाथ

---

[1] देखें अध्याय 15 (प्रो०लेम्स आव माइण्ड एण्ड मैटर के बाद उन्होने कोई ग्रथ नही लिखा किंतु उनके निबधो का सग्रह अदर माइण्डस (1952) म सकलित किया है।) तथा फिलोसोफी एण्ड साइकोएनालिसिस (1953)। उनकी रचनाए सामान्य शली मे लिखी गइ हैं जो उनके बोलने क लहजे के बिल्कुल निकट है। लिखित अंग्रेजी भाषा के लहजे से वह काफी भिन्न है। इस तरह एक विचित्र तरीके से वे दुरूह हो जाती हैं। देखें गेस्किग द्वारा विजडम दशन पर चर्चा (ए० जे० पी० 1954) जिससे मैंने काफी सदभ लिया है। विटजनस्टीन के बाद म विकसित हुई केम्ब्रिज विचारधारा के लिए नोमन मैलकम लेवी एम्ब्रोस एस्केस्वे पाल व गेस्किग की रचनाए देखें। लोजिक एण्ड लग्वज (सपा फ्लू 1951 एव 1953) के दो अङ्क तथा ब्लक द्वारा सगृहीत फिलोसोफिकल अनालिसिस (1950) भी देखें।

हीलियम गैस की ज्वलनशीलता के विषय में रहा विवाद)। ये विवाद पर्यवेक्षण एवं परीक्षण से सुलझ जाते हैं। (2) तार्किक विवाद जो भाषा प्रयोग संबंधी दृढ़ नियमों के संदर्भ से हल हो जाते हैं। इस तरह इस विवाद का हल निकालने के लिये। कि 2+2=4 यह एक नियम है या नहीं हम केवल यही बताना चाहिए कि कोई नियम अपने प्रयोग में न सत्य है न असत्य, जबकि तर्क गणितीय तर्कवाक्य दोनों ही हो सकता है। मानलो अब कोई ऐसी समस्या को प्रस्तुत करता है जब एक कुत्ता गाय पर हमला कर रहा होता है तो गाय अपने सींग उसकी ओर किए रहती है और कुत्ते की ओर मुँह किये उसके साथ-साथ घूमती रहती है तो क्या कुत्ता गाय के चारों ओर घूमता है[1]? ऐसे समयों में चारों ओर का सामान्य अर्थ नहीं लगाना होगा। विज़डम के अनुसार यह एक (3) संघर्षमय विवाद है। इसे केवल नई परम्पराएं डालकर ही हल किया जा सकता है, यह निर्णय करके कि इसके लिए कौन सा शब्द प्रयोग में लाना है और कौनसा नहीं—अर्थात् 'चारों ओर' को यहाँ किस रूप में प्रयुक्त करना है और किसमें नहीं।

दार्शनिकों के लिए विचित्र बात यह है कि वे ऐसी मान्यताएं रखते हैं जिन्हें शुद्ध तर्क की कसौटी पर कसें तो वे स्पष्ट ही असत्य नजर आएंगी। वे कहते चले जाते हैं कि गणित के नियम वस्तुतः व्याकरण के नियम ही हैं—जबकि हम उन्हें यह बता देते हैं कि कोई नियम अपने आपमें सत्य या असत्य नहीं होता। वे तब भी कहते हैं (मूर की भांति) कि चाहे हम यह बता दें कि यहाँ एक भौतिक पदार्थ है, तो भौतिक पदार्थ अस्तित्वशील नहीं होता। अब आप ही बताएं कि विवादों के सुलझाने के लिए निश्चित नियमों को स्वीकारने से साफ मना करने की उनकी जिद का हमारे पास क्या इलाज है? तथ्य तो यह है कि दार्शनिक साधारण भाषाई प्रयोग से असंतुष्ट रहते हैं—और इसलिए भाषाई माध्यम से की गई किसी भी धारणा को वे स्वीकार नहीं करेंगे। वे भाषाई नवान्वेषण की वकालत करेंगे। जहाँ हम एक तार्किक विवाद देखते हैं वे वहाँ एक संघर्ष देखते हैं।

दार्शनिक का हठ उसी सीमा तक तो मूल्यवान है जहाँ तक वह हमारा ध्यान उन समान स्थितियों की ओर खींचता है जिन्हें अन्यथा हम अनदेखा कर देते। मान लो एक मनोवैज्ञानिक कहता है हरेक व्यक्ति रुग्णमना (न्यूराटिक) है तो सबसे पहले हम यह सोचते हैं कि यह तर्कवाक्य अनुभवजन्य खोज को व्यक्त करता है। और इसका प्रभाव हम यहाँ तक भी देख सकते हैं। सूक्ष्म विश्लेषण करने पर हम

---

[1] जेम्स द्वारा प्रैग्मेटिज्म में काम में लिए गए 'गिलहरी के उदाहरण' का विज़डम द्वारा किया गया संस्करण इसी बात को सिद्ध करने के लिए ही है।

उन सभी मामलों में एक रुग्ण मन स्थिति का बोध होगा जहाँ पहले हमने ऐसा नहीं पाया था।' यह ठीक उसी प्रकार है जैसे एक शरीर-चिकित्सक इस बात का पता लगा सकता है कि प्रत्येक जीवित प्राणी में कैंसर के कीटाणु विद्यमान होते हैं। किन्तु विजडम के अनुसार हम मनोवैज्ञानिक की पूरी बात को खो देंगे यदि हम उसका जवाब दें कि यह सत्य नहीं है सतर्क जाँच से यह पता लगा है कि जनसंख्या का केवल 14 प्रतिशत भाग ही रुग्ण मन स्थिति का शिकार है।' अर्थात् इसे यदि हम उपर्युक्त कथन की तुलना में रखें तो अनुभव से यही बात सामने आती है। क्योंकि यदि यह सुझाया भी जाय कि इस खोज में कि रुग्णमना एवं स्वस्थ मना लोगों की स्थितियों का भेद जैसा हम मानते हैं उसकी अपेक्षा मुश्किल से अंकित किया जा सकता है तो भी 'प्रत्येक व्यक्ति रुग्णमना है' यह कथन विजडम की दृष्टि में केवल प्राग्भावी है, आनुभविक नहीं। मनोवैज्ञानिक यह सिफारिश कर रहा है कि हमें रुग्णमना शब्द के प्रयोग करने के तरीके को बदलना है। मौलिक रूप से उसके द्वारा की गई इस सिफारिश से होने वाले परिणामों के कारण कदाचित् हम उसकी बात को अमान्य कर दें। इसी भाँति यदि एक दार्शनिक हमसे कहता है कि सभी गणितीय कथन व्याकरण के नियम हैं तो इसका एक मात्र जवाब यदि यह हो कि 'नहीं, निश्चय ही ये नियम नहीं हैं।' तो यह उत्तर सत्य तो होगा पर एक संगत उत्तर नहीं। उचित जवाब इसका होगा कि 'हाँ मैं देखता तो हूँ कि वे उसी प्रकार के नियम अवश्य हैं पर   ।' तब हम यही कहेंगे कि दार्शनिक द्वारा प्रस्तुत विरोधास्पद स्थिति के गौरव को भी हमने बनाए रखा है।

तब फिर विशेषतः दार्शनिक के क्षेत्र की सिफारिशें क्या हैं? वह किन सामान्यताओं पर विशेषतः हमारा ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं? इसका परम्परागत उत्तर विजडम के अनुसार यही होगा कि दार्शनिक सत्ता के दोनों को परस्पर संयोजित करता है, भौतिक पदार्थ तथा ऐन्द्रिय संवेदन, तथ्य तथा मूल्य। किन्तु यह उत्तर हमें यह गलत विश्वास करने की ओर प्रेरित कर सकता है कि ऐन्द्रिय संवेदन मूल्यों आदि जैसी विचित्र कोई व्यवस्थाएँ हैं और इनका किसी भाँति दार्शनिक तथ्यों से संबंध बताता है, उसी भाँति जैसे एक डाक्टर वाइरस को बीमारी से जोड़ता है। इससे तो यह स्थिति ही कम भ्रामक होगी कि हम दार्शनिक का एक ऐसा व्यक्ति मान लें जो विभिन्न श्रेणी के वाक्यों के तर्काकार का वर्णन करता हो जो हमें बताए कि वे कैसे निरूपित होते हैं तर्कों द्वारा समर्थित होते हैं और चर्चित होते हैं। एक दार्शनिक उपयोगितापूर्वक इसकी चर्चा कर सकता है कि 'यह लाल है' 'नेपोलियन एक आदमी था' 'मिस्टर पिकविक एक अच्छा आदमी था' आदि वाक्यों के क्या तर्काकार हैं। किन्तु वह उस समय तत्ववाद के बीहड़ में या फिर तार्किक विश्लेपण के जंगल में भटक जायगा यदि वह आभासी एवं वास्तविक सत्ता में तथा मूल्यों एवं तथ्यों के भेद के निरूपण में उलझ गया।

जिन समानताओ म एक दाशनिक रुचि रखता है व वाक्यो क आकारो मे रही समानताए एव असमानताए है। उसकी विरोधास्पद स्थितिया उपयोगी हैं जहा व इन समानताओ पर प्रकाश डालती है। उदाहरण क लिए, जब वस्तुस्थितिवादी यह कहता है कि तत्ववादी तकवाक्य निरथक है तो उसका यह विरोधास्पद सामान्यत उस अन्तर की ओर हमारा ध्यान खीचता है जो वैज्ञानिक तथा दाशनिक कथनो के तक क बीच विद्यमान है। जब वह कहता है कि हम कभी भी दूसरे लोगो के मन की बात नही जान सकते तो वह यह देखने म हमारी मदद करता है कि दूसरे लोगो के मन के विषय स सम्बन्धित कथनो का निरूपण उस तरह नही करत जिस तरह हम मजो या कुर्सियो के विषय म करते है। यह एक ऐसी बात है जिसकी विजडम न अदर माइण्डस नामक अपने निबन्ध मे विस्तृत चर्चा की है। तो भी विजडम यह ता स्वीकारते हैं कि इ ही शब्दो स तत्ववादी विवादो की गहराई एव उसकी विचित्र उत्तेजनाओ की चर्चा करना काफी कठिन है। केवल मौखिक सिफारिश स ही इतनी गर्मी क्यो उत्पन्न हो? इस समस्या के सम्मुख आते ही विजडम अपनी रुचि के विषय मनोविश्लेषण[1] का सहारा लत है। उन दाशनिको को धैयपूवक सुनत हुए जो हठपूवक यह कहते हैं कि दूसरे लोग क्या अनुभव एव विचार करते हैं इसके विषय म हम कभी नही जान सकते तो हम एकदम रुग्णमना वाल दीघकालिक सदेह का स्मरण हो आता है। तत्ववाद की भूलभुलया मे भी वही फुसफुसाहट है जसी काफका के ट्रिबूनल की उन सीढियो मे चढते समय सुनाई देती है जा सदा ही एक ऊची मजिल पर स्थित रहती है।[1] दाशनिक अपने विषय मे यह सोच सकता है कि वह लक्ष्य की ओर अग्रसर हो रहा है। उदाहरण के लिए दूसर लोगो के मन का प्रत्यक्ष बोध करन वाल लक्ष्य की ओर, जबकि रुग्ण मन स्थिति के मामल की भाति, कोई भी कल्पनीय अनुभव उसे इस बात के लिए आश्वस्त नही कर रह हैं कि उसन लक्ष्य प्राप्त कर ही लिया है। किन्तु यदि हम लक्ष्य क विषय म भूल जाए एव दाशनिक

---

[1] किसी को भी यह अजीब लग सकता है कि एक दार्शनिक को कोई विजडम (बुद्धिमानी) कहे, या यह बात कि एक ही नाम के दो व्यक्ति समसामयिक दार्शनिक हो सकत हैं, युक्तियुक्तता की सीमा से परे की बात लगन लग जाती है। यह दोनो ही मनोविश्लेषण म रुचिशील थ, इस बात ने बहुतो क मन म यह विचार खडा कर दिया है कि दोनो एक हा है। किन्तु तो भी इस बात पर कम बल दिया नही जाना चाहिए कि लन्दन क स्कूल आव इकानामिक्स के जे० ओ० विजडम जिन्होने अन्-कोन्शस ओरीजिन आव बर्कलेज फिलोसोफी (1953) म यह बताने का प्रयास किया है कि कैसे मनोविश्लेषणात्मक शब्दावली स बर्कले के दर्शन की विचित्रताओ का वर्णन किया जा सकता है। यह बात केम्ब्रिज विश्वविद्यालय क प्रोफेसर जान विजडम स बिलकुल ही मेल नही खाती।

कम को उसके द्वारा प्राप्त कर लिए बिंदु का पुन विवरण मानलें तो हमे यह पता लग जायगा कि उसका वास्तविक मूल्य किस बात म निहित हैं ।

विजडम की दाशनिक स्थिति के विषय मे मेरे द्वारा दिया गया विवरण एक महत्वपूर्ण दृष्टि स भ्रामक है । मैंने उनके विषय मे यही बताया है कि वे बहुत सुलझे हुए हैं जबकि वे उतने सुस्पष्ट एव सुलझे हुए नही है । उनकी खास प्रणाली यही है कि वे पहले भेद कर लेते हैं जसे तार्किक एव मधपशील विचारों के बीच का भेद यह मानकर कि यही खास भेद है जो करणीय है । और तब इस भेद की तीक्ष्ण धार को मौंटा कर लेते हैं या फिर यह कहते हैं कि दाशनिक विरोधास्पदियां' केवल क्रियापरनात्मक सिफारिशें हैं– और तब उसके विपरीत कुछ स्वीकार कर जाते हैं । मैंने कहा है कि दाशनिकों के प्रश्न एव सिद्धान्त वस्तुत क्रियावाची होते हैं' (यह बात उन्होंने फिलोसोफीकल परप्लेक्सिटी (पी० ए० एस० 1936) नामक एक लेख मे कही) किन्तु यदि आप चाहे तो हम ऐसा नही कहेंगे या फिर उसके विपरीत ही कोई बात कह दग ।' विजडम की चकाचौंध करने की वृत्ति केवल अनुत्तरदायी एव शिथिल नही है । यह तो उनकी इस पक्की आस्था से प्रवाहित होती हैं कि दाशनिक सिद्धान्त एक साथ ही ज्ञान प्रकाश देने वाले तथा भ्रामक होते हैं । और इस दोनों ही बातों को उजागर किया जाना चाहिए । इस बेहूदी स्थिति को पार कर पाने की कोई आशा नही है और इस तरह ऐसे दाशनिक निष्कर्षों तक पहच सकने की भी जो भ्रामक न हो । अधिक से अधिक एक दाशनिक यही कर सकता है कि वह हम दुष्प्रवृत्त करे और तब उसके बाद स्पष्टत उन बिन्दुओ की ओर हमारा ध्यान खीचे जो स्वय भ्रामक नही हैं किन्तु उसने जो कुछ कहा है वह भ्रामक है ।

लेजरोविच के द्वारा सकलित निबन्धो के सग्रह द स्ट्रक्चर आव मेटाफिजिक्स (1958) की भूमिका म विजडम ने लिखा कि जब लोग विटजनस्टीन को सुनते थे तो प्राय उनके लिये एक ऐसा स्थिर प्रकाश को पा लेना कठिन हो जाता था जिसके जरिए वे जो कुछ देखना चाहते हैं उसका व्यवस्थित रूप देख पाते और आज भी जब व उन्ह पढते हैं तो उनके सामने यही कठिनाई रहती है । विजडम की अपनी रचनाओ के विषय म यही बात बहुत से लोग कहेंग । किन्तु विटजनस्टीन के बाद के दशन की सामान्य प्रवृत्ति निश्चितता की ओर लौटने की है चाहे उसकी आत्मा विटजनस्टीन जसे समय विचारक के हाथ मे पडकर परिष्कृत हो गई हो । हम यह वृत्ति लेजेरोविच की पुस्तक म स्पष्ट रूप से देख सकते हैं । व विजडम के मुख्य कथ्य से प्रारम्भ करते हैं कि दाशनिक विरोधास्पदिया केवल क्रियावाची सिफारिशें हैं जिनकी पृष्ठभूमि मे अचेतन प्रयोजन है मानो यह एक ऐसा वनानिक सिद्धान्त है जिसे विभिन दाशनिक विवादो के निरूप मे रखकर निरूपित किया जा सकता है । विजडम स्पष्ट ही इस प्रकार के परिणामो के कारण पशोपेश म है । वे आगे जोडना चाहते हैं—हां, किन्तु इसके दूसरी ओर– यह भी ध्यान रखना चाहिए कि ।'

इसी प्रकार क कारणो मे (क्योकि व उ हे या तो अपर्याप्तरूपेण सूक्ष्म लगत हैं या अति स्पष्ट) विटजनस्टीन क सब विद्यार्थी उनक साधारण भाषा दशन क प्रति सहानुभूतिपूण दृष्टि नही रखत [1] जिसन बाद म ओक्सफोड क दाशनिक क्षेत्र का व्यापक रूप स घेर लिया था।

सभी म विटजनस्टीन के प्रभाव क लक्षण मिलत हैं। आक्सफड म विटजनस्टीन क विचारो को एक दूसर ही स्तर म प्रवेश मिला जो कम्ब्रिज म व्याप्त दाशनिक वातावरण स काफी भिन्न पडा। आक्सफाड के दाशनिको न दशन का अध्ययन पाठ्यक्रम क अनुसार शास्त्रीय पद्धति स ही किया था खास तौर पर ओक्सफोड मे अरस्तू का जितना प्रभाव है उतना कम्ब्रिज म नही है। जबकि कोई शास्त्रीय विचारक जो दोनो स्थलो म समान रूप स प्रभावशील रहा है वह प्लेटो है अरस्तू नही। और यही बात विटजनस्टीन एव मूर के लिए भी लागू हो सकती है।

---

[1] देखें, एम० वीज ओक्सफोड फिलोसोफी (पी० आर० 1953)। साधारण भाषा के प्रभाव एव भौतिक प्रकृति क विषय म हुई चर्चा के लिए देखें के० बयर कृत द आर्डिनरी यूज आव द वड्स' (पी० ए० एस० 1951), जी० राइल कृत आर्डिनरी लग्वज' (पी० आर० 1943), ए० जी० एन० फ्लू फिलोसोफी एण्ड लग्वेज' (पी० क्यू० 1955)। आलोचनाओ मे शामिल हैं आर० एल० हीथ का 'अपील टु आर्डिनरी लग्वेज' (पी० क्यू० 1952), जे० ए० पासमूर रिफलेक्शन्स आव लोजिक एण्ड लग्वज (ए० जे० पी० 1952) एव प्रोफेसर राइल्स यूज एण्ड यूसेज' (पी० आर० 1954), चिश्लोम फिलोसोफस एण्ड ओर्डिनरी लग्वेज' (पी० आर० 1951)। इसके साथ मैलकम का उत्तर फिलोसोफी ओर फिलोसोफस भी देखें। एकसम्मत वस्तुस्थितिवाद एव आक्सफोड क साधारण भाषाई दर्शन के बीच रहे बडे अन्तर के लिए देखें, जी० जे० वारनाक का वेरीफिकेशन एण्ड द यूज आव लग्वेज (आर० आई० पी० 1951) एव कारनप के मीनिंग एण्ड नेससिटी (फिलोसोफी 1949) की राइल द्वारा की गई समीक्षा, देखें स्टासन के निबन्ध भी। एव व रिवो ल्यूशन इन फिलोसोफी (1956) म वारनाक के लेख। अभिनव आक्सफोड दर्शन दो अर्थों म साधारण भाषाई दर्शन है– क्योकि (1) प्रतीकवादी तकवादियो की आकारी रचनाओ से भिन्न ओक्सफोडवादी तार्किक मसलो पर अनाकारी तौर पर चर्चा करते हैं और वे इसके लिए नई गढी भाषा का सहारा भी नही लत। (2) कि दार्शनिक समस्याओ पर चर्चा करन क लिए हम साधारण तौर पर जो कुछ बातचीत करते हैं इसे प्राथमिक आधार बताया जाता है, किन्तु सहमति के इन बिन्दुओ के बीच असहमति के भी बहुत से बिन्दु सम्मिलित हैं विशेषकर आकारी तकशास्त्र के खास महत्व के लिये। और जिस सीमा म जाकर भाषाई प्रयोगो की विस्तृत चर्चा हुई है, वह अपने आपम दार्शनिक रुचि उत्पन्न करती है।

जब अरस्तू इस प्रश्न की चर्चा करते हैं कि क्या सद्गुण संवेग हैं, तो यहां वे साधारण भाषा के प्रमाण के सहारे ही इसकी चर्चा करना चाहते हैं। सद्गुण संवेग नहीं हैं क्योंकि हम इस आधार पर अच्छे या बुरे नहीं कहलाते कि कोई खास संवेग प्रदर्शित करते हैं किन्तु हम सद्गुणी उसी समय कहे जाएंगे जब हम कोई अच्छा या बुरा कर्म करते हैं। आगे वे कहते हैं, संवेग के विषय में यह कहा जाता कि वह हमें प्रवृत्त (मूव) कर देता है—जबकि एक सद्गुण या दुर्गुण हमें अनुशासित (गवर्न) करते हैं।’ तब हम जो कहें वही निर्णायक स्थिति है। इस प्रकार की युक्तियां नाइकोमेकियन एथिक्स नामक संग्रह में हर स्थान पर मिलेंगी। और विख्यात अरस्तूवादी ऑक्सफोर्ड के विचारकों द्वारा खूब प्रयुक्त की गई मिलेंगी। जैसा हम देख चुके हैं, कुक विल्सन ने सदैव ही एक सामान्य मुहावरा निर्धारित करने के महत्व पर काफी बल दिया है। डब्ल्यू० टी० रास की नैतिक रचनाओं में, जो मूर की प्रिंसिपिया एथिका से काफी भिन्न हैं, साधारण आदमी के कथन पर एवं उसकी महत्ता पर काफी जोर दिया गया है।

इन विशिष्ट प्रभावों में यह सामान्य विचार और जोड़ें कि शास्त्रीय रूप से प्रशिक्षित व्यक्ति सदैव ही 'सहीपन’ पर अधिक बल देंगे जिसका मृत भाषा में भी एक निश्चित अर्थ होता है और यह तब आश्चर्य की बात नहीं लगेगी कि साधारण भाषा सम्बन्धी दर्शन ने ऑक्सफोर्ड जैसे स्थल में इतनी त्वरित गति पाई। ऑक्सफोर्ड में ही विट्जनस्टीन के विचारों को अरस्तू के मासाई भण्डार में भरती किया जा सका। इस भण्डार में से ऐसे फल निकले हैं जो अन्य बातों के अतिरिक्त अपने केम्ब्रिज प्रतिरूपों की अपेक्षा अधिक सूखे एवं ठण्डे हैं।

ऑक्सफोर्ड दर्शन में भी विशेषकर जे० एम० ऑस्टिन की रचनाओं में भाषा में रुचि देखी जा सकती है। यह रुचि भाषा में अपने ही स्वरूप के लिए है। जो बात विट्जनस्टीन में नहीं मिलती। बहुत से ऑक्सफोर्ड के विचारकों की दृष्टि में भी मन, ज्ञान, प्रत्यक्षीकरण जैसे शब्दों के प्रयोग का अपना अलग महत्व है और यह महत्व उसके चिकित्सात्मक (विश्लेषणात्मक) और तत्ववादविरोधी शक्ति प्रकटाने की दृष्टि से बिल्कुल अलग है। इनके लिए, दर्शन का एक निजी एवं व्यवस्थित कर्म है। केम्ब्रिज के विट्जनस्टीनवादियों के बहुत से पुराने संरक्षकों की दृष्टि में ऑक्सफोर्ड दर्शन मार्गीमता में आकर शापित हो गया है। ऑक्सफोर्ड के विख्यात साधारण भाषाई दार्शनिक गिल्बर्ट राइल हैं। राइल की शिक्षा कुक विल्सन परम्परा में हुई। अरस्तू सदैव ही उनके लिए अलगाव के स्वाभाविक बिन्दु रहे हैं। किन्तु वे महाद्वीपीय दर्शन में भी रुचिशील थे। पहले हुसल व मीनोंग में बाद में तर्कसम्मत वस्तुस्थितिवादियों में। वे एक प्रशिक्षित शास्त्रीय दार्शनिक थे जैसे विट्जनस्टीन नहीं थे परम्परा कायम करने वाले एक दार्शनिक चाहे वे कितने ही रूढ़िहीन क्यों न रहे

हो। यही कारण है कि उनके विचारों की व्यापक रूप से चर्चा हुई है। यहाँ तक कि उन लोगों के द्वारा भी जो विटजनस्टीन में कोई सूत्र नहीं खोज सके।

सिस्टेमेटिक्ली मिसलीडिंग एक्सप्रेशन्स’ (पी० ए० एस० 1931 एवं एल० एल० 1) में राइल अपने परिवर्तन की घोषणा करते हैं यद्यपि यह परिवर्तन झिझक व्यक्त करता है। वे अब यह मानते हैं कि दर्शन का कर्म भाषाई मुहावरों के प्रचलित दुरुपयोग तथा बेहूदे सिद्धान्तों की खोज करना है। ब्रेडले, फ्रेंग तथा रसेल की भाँति अभिव्यक्ति के व्याकरणात्मक आकार तथा उसके द्वारा वर्णित तथ्यों के आकार का अन्तर करके राइल यह तर्क देते हैं कि दैनिक जीवन की बहुत सी अभिव्यक्तियाँ अपने व्याकरणसम्मत आकार के कारण व्यवस्थितता की दृष्टि से भ्रामक हैं। केवल इसीलिए कि एक वाक्य उदाहरणार्थ मिस्टर पिकविक एक गल्प हैं, व्याकरण की दृष्टि से मिस्टर मेंजीस एक राजनीतिज्ञ हैं का समरूपी (अनेलोगस) है। हम इसे यह जानकर भी पढ़ सकते हैं कि मानो यह एक व्यक्ति का वर्णन हो अर्थात् एक ऐसे व्यक्ति का वर्णन जिसमें गल्पात्मकता के गुण मौजूद हैं। वास्तव में यह कथन एक गल्पात्मक व्यक्ति के विषय में नहीं है। यह मिस्टर पिकविक जैसे विचित्र गुणों से युक्त, वास्तविक व्यक्ति के विषय में न होकर डिकिन्स के विषय में है– या एक वास्तविक पुस्तक पिकविक पेपर्स के विषय में है। यदि कोई बात तत्काल स्वीकार न हो तो फिर यह सब कैसे बताया जाय? यदि मिस्टर पिकविक एक गल्प हैं’ एक पिकविक नाम के व्यक्ति के विषय में होता तो इससे यह तर्ककथन निर्मित होता कि ‘मिस्टर पिकविक अमुक अमुक साल में जन्मे हैं।’ अर्थात् यह ऐसा परिणाम है जो मौलिक कथन का ही विरोधाभास है। विरोधास्पद स्थितियाँ एवं विपरीतताएँ इसके प्रमाण हैं कि एक अभिव्यक्ति व्यवस्थितता की दृष्टि से भ्रामक है।

राइल जान बूझकर ऐसी अभिव्यक्तियों के विषय में कहते हैं कि ‘गल्प हैं’ जैसे आकार दैनिक जीवन में हम भ्रमित नहीं करते– किन्तु तत्ववादी जो तथ्यों के आकार में या सत्ता की पदावस्था में विशेष रुचि रखते हैं अपने विचित्र सिद्धान्तों से सम्मोहित हो गये हैं, क्योंकि वे कथनों के व्याकरणसम्मत आकार को उनके ऊपरी रूप में देखने लगे हैं। उन्हें यह मानने को विवश होना पड़ा है कि समष्टियों का अस्तित्व है। यहाँ यह बात स्मरणीय है कि राइल, हुसर्ल एवं मीनोंग का अध्ययन करते रहे हैं। इन लोगों ने गलती से यह मान लिया था कि ‘समय की पावन्दी एक सद्गुण है’ यह तर्कवाक्य व्याकरण की दृष्टि से ‘ह्यूम एक दार्शनिक हैं’ के समानान्तर है। अर्थात् ह्यूम की ही भाँति समय की पावन्दी भी एक नाम है या फिर केवल मात्र इसलिए भी कि हम सही तौर पर यह कहते हैं कि ‘छुट्टी लेने का विचार अभी अभी मेरे मन में आया है’ इस वाक्य को पढ़कर दार्शनिकों ने यह निष्कर्ष निकाल लिया है कि विचार नाम की कोई इयत्ता भी विद्यमान है जिसे छुट्टा लेने का विचार मूर्त रूप देता है।

दैनिक जीवन के समापणो से इस प्रकार के भ्रामक सुझावों का निवारण करने के लिए दाशनिक को वाक्यो को दुबारा प्रस्तुत करने की शिक्षा मिलनी चाहिए। और उसे यह सब रसेल के विवरण सिद्धान्त की ही भाति प्रस्तुत करने की विधि आनी चाहिए। राइल एव रेमसे के लिए यह तो दशन का एक नमूना है ताकि तथ्यों के आकार को स्पष्टत प्रदर्शित किया जा सके, जिनकी जाच पडताल का माध्यम दशन है। दार्शनिक विश्लेषण उनकी दृष्टि मे ऐसी ही पुन रचनाओ' म निहित है। स्पष्ट ही राइल अब दोनो ही प्रकार की स्थितियो को स्वीकारते हैं कि दर्शन चिकित्सात्मक भी है तथा इसका एक निश्चित काय भी है—अर्थात् तथ्यों के वास्तविक आकारो को प्रकट करना। व्यवस्थितता की दृष्टि से भ्रामक अभिव्यक्तिया वास्तव म विटजनस्टीनयुग के आरम्भिक काल की ही मानी जानी चाहिए। यह युग बाद मे जाकर विजडम के तार्किक सरचना के युग के रूप मे बदल गया। ऐसे समय मे जब कुक विलसन के अनुयायी आक्सफोड म छाए थे, एक आक्सफोड के विद्वान् का कैम्ब्रिज–पद्धति पर चलना महत्वपूर्ण बात थी। (यद्यपि इससे पूव प्राइस ने रसेल के एन्द्रिय सवेदन के सिद्धान्त के प्रति सहानुभूतिशील होकर ओक्सफोड म एक निराशा उत्पन्न करदी थी।)

राइल ने बाद के वर्षों म बहुत से दार्शनिक निबध लिखे थ। 'द कन्सेप्ट आव माइण्ड' को समझने के लिए दो बहुत महत्वपूर्ण है केटेगेरीज (पी० ए० एस० 1937) एव उनका उद्घाटन भाषण (फिलोसोफिकल आरग्यूमेण्ट्स 1945)। केटेगोरीज मे राइल न पदावस्था (केटेगारी) को इस तरह स परिभाषित किया है कि अपने म उन सभी बातों को भी समाहित किया जा सके जो अरस्तू एव काण्ट के दशन म मूल्यवान थी। जबकि उन्होने पदावस्था[1] म दो कथनो को भिन्न सिद्ध करने का एक निश्चित माग भी सुझाया था जो उन दोनो ने नही किया था। थोडी देर के लिए इस अपूर्ण अभिव्यक्ति पर विचार करें (जो वाक्य के आकार की है) कि बिस्तर पर है ऐसी स्थिति मे बिना बेहूदगी के हम खाली स्थान की पूर्ति 'जोन्स या सुकरात' जैसे नाम रखकर कर सकते हैं। किन्तु यहा शनिवार नही रखा जा सकता। यह बात यह सिद्ध करने के लिए काफी है कि 'जोन्स' शनिवार' से भिन्न पदावस्था को व्यक्त करता है। अभी यह तो सिद्ध हुआ ही नही कि जो■ एव सुकरात एक ही पदावस्था के हैं या नही क्य कि कुछ ऐसे वाक्याकार हो सकते

---

[1] आलोचना के लिए देखें ज० जे० सी० स्मार्ट ए नोट आन केटेगोरीज (बी० जे० पी० एस० 1953)। इसम उनका तक है कि राइल के कथनानुसार तो दो अभिव्यक्तिया कभी भी एक पदावस्था के आकार की नही होंगी। ए० जे० बेकर केटेगोरी मिस्टेकस (ए० ज० पी० 1956)। तुलनीय रसेल का प्रकारो का सिद्धान्त।

हैं जहां 'जोन्स' तो रखा जा सकता है किन्तु सुकरात को रखना निरर्थक हो जायगा। इस तरह '   ने अरस्तू का अध्ययन किया है,' जैसे वाक्याकार के रिक्त स्थान पर यद्यपि या तो 'वह' (उसने) या फिर 'इस किताब के लेखक' जैसे शब्द भरे जा सकते हैं। तो भी ये दोनों शब्द भिन्न पदावस्थाओं के हैं। क्योंकि '   ने पुस्तक नहीं लिखी है' जैसे वाक्य में 'इस किताब के लेखक' के बजाय 'वह' (उसने) ही भरा जाना उपयुक्त होगा।

ऐसे मामले में किसी वाक्याकार को अनुचित रूप से पूर दिया जाना ही निरर्थकता का कारण हो सकता है। किन्तु इसके विपरीत यह बात कहां स्पष्ट है कि यदि हम '   असत्य है' के खाली स्थान को, 'जो बात मैं कह रहा हूं' से भर दें तो हम विपरीतताओं तथा विरोधाभासों में पड़ जायेंगे। इस प्रकार की अस्पष्ट बहुढंगिया दार्शनिक दृष्टि से रोचक हैं।[1] वास्तव में दार्शनिक लोग व्यवस्थित रूप से पदावस्थाओं के भेद करने की ओर प्रवृत्त हो गए हैं केवल इसीलिए कि उनसे अप्रत्याशित विपरीतताओं पर प्रकाश पड़ता है। तब वे यह पता लगाने निकल पड़ते हैं कि ऐसे मामलों में छिपी हुई विपरीतताएं कहां हैं, जिनमें पदावस्था का भेद भी छिपा पड़ा है।

'कटेगोरी' नामक राइल के निबंध के दो पहलू महत्त्वपूर्ण हैं। इनमें उनके दृष्टिकोण को समझने में सहायता मिलती है। प्रथम तो यही कि यद्यपि वे सदैव ही अभिव्यक्तियों की ही बात करते हैं वे यह नहीं कहते कि कोई धारणा या विश्वास पूर्णतः बेहूदा हो सकता है। उनका कथन है कि वे कोई भाषा वैज्ञानिक जांच नहीं कर रहे हैं। वे तो वस्तुओं की प्रकृति के विषय में ही कुछ कहना चाहते हैं। या वे केवल धारणाओं के विषय में ही कम से कम कह रहे हैं। इस बात पर बल देना उन्होंने जारी रखा है। बहुत से आलोचक जो अन्यथा उनकी कृतियों से सहानुभूति रखते हैं, यह शिकायत करते हैं कि उनके निष्कर्ष आकारी अवस्था[2] में व्यक्त होने के बजाय भौतिक अवस्था में भ्रामकता पूर्वक व्यक्त हो गए हैं। दूसरे पदावस्थाओं का भेद राइल के वर्णनानुसार दार्शनिक युक्ति की अपेक्षा रखता है अर्थात् एक तार्किक अनुगणन की (रेशियासिनेशन की)। यह बात उन लोगों के द्वारा, जो दर्शन को विश्लेषण मानते हैं, भुला दी गई है, या अनदेखी कर दी गई है।

इस आशय के कथ्य की अभिव्यक्ति के लिए ही उनके भाषण का अधिकांश

---

[1] देखें राइल 'हीटेरालोजिकलिटी' (एनालिसिस 1950), जे० एल० मकी तथा स्मार्ट 'ए वेरिएण्ट आव द हीटरोलाजिकल पराडोक्स' (वही 1952)।

[2] द्रष्टव्य एन० आर० हेन्सन 'प्रोफेसर राइल्स माइण्ड' (पी० क्यू० 1952)।

लगा था। दार्शनिक तर्क न तो आगमन है न प्रदर्शन। दार्शनिक की अपनी एक अलग ही विधि है। जिसका सर्वाधिक प्रतिनिधित्व रिडक्शियो एड एब्सर्डम (असंगतता-निवारण) की विधि के जरिए होता है। अर्थात्, एक तर्कवाक्य में से अथवा तर्कवाक्यों के समूह से ऐसे निष्कर्ष निगमित करना जो परस्पर असंगत हों या फिर मूल तर्कवाक्य से असंगत हों।’ दार्शनिक ऐसे तर्कवाक्यों की वहूदगी बताता है। राइल का यह आशय नहीं है कि दार्शनिक तर्कोक्तियाँ केवल मात्र विध्वंसात्मक ही हैं। रिडक्शियो एड ऐब्सर्डम (असंगतता निवारण) का सिद्धान्त एक छिद्रान्वेषी पटी का ही कार्य करता है। या फिर रूपक को बदलें तो यों कहेंगे कि उन सीमाओं का निर्धारण कर देने पर जहाँ वहूदगी प्रकट हो जाती है, यह तर्कवाक्य के प्रयोग संबंधी वास्तविक चेन का अंकन करने में सहायक होता है।

प्रत्येक तर्कवाक्य में कुछ तार्किक शक्ति भी रहती है। अधिकांश में हम जिस तर्कवाक्य का प्रयोग करते हैं उसकी सीमित तार्किक शक्ति से ही परिचित होते हैं। उनके अर्थ को हम केवल एक आंशिक रूप में ग्रहण कर पाते हैं। तो भी हम ऐसे तर्कवाक्यों का प्रयोग कर सकते हैं जैसे $3 \times 3 = 9$’ या लन्दन ब्राइटन के उत्तर में है।’ और इस वक्त हम उन गणितीय या भौगोलिक भूलों में नहीं पड़ते जो इस बात का प्रयास होगा कि हम जो कुछ कर रहे हों उसे भी भली भाँति समझे हुए नहीं हों। यदि हम उन नियमों का ब्यौरा नहीं दे सकते जिनसे ये तर्कवाक्य संचालित हैं, तो भी कम से कम हम यह तो जानते हैं कि सामान्य परिस्थितियों में इनका उपयोग कैसे किया जाए। यदि ऐसा नहीं होता, तो राइल के मत में दार्शनिक को कोई बात आरम्भ करने का अवसर या मौका ही नहीं मिलता।

जब तर्कवाक्यों में कुछ समानताएँ आ जाती हैं तो राइल के अनुसार कभी कभी यह सुविधा हो जाती है कि इस सामान्य अंश को धारणा मान ली जाए। उदाहरणार्थ वाक्यों के एक समूह में से जॉन समझदारी का व्यवहार करता है’ ब्राउन समझदारी से विचार करता है आदि, हम समझदारी की धारणा का चुनाव कर सकते हैं। मूर ने अपनी आरंभिक रचनाओं में लिखा है मानो तर्कवाक्यों की रचना करते समय एक धारणा उसका निर्मायक तत्व है (बिल्डिंग ब्लाक) है।’ राइल मूर के विरोध में यह कहते हैं कि धारणा तर्कवाक्य के परिवार के लिए एक हस्तामनक रूप गुटका (हैंडी एब्रीवियेशन) है।’ इस तरह जब राइल धारणा की तार्किक शक्ति के विषय में चर्चा करते हैं तो उनका मतलब है कि वे उन तमाम तर्कवाक्यों की तार्किक शक्ति का संक्षिप्त रूपान्तर प्रस्तुत कर रहे हैं—जो कुछ अंशों में समान गुणों से युक्त हैं।

द कन्सेप्ट आव माइण्ड (1949) मानसिक धारणाओं[1] की तार्किक शक्तियों का विश्लेषण करती है। दैनिक जीवन में हम इन धारणाओं से भली भांति काम चला सकते हैं। हम उदाहरण के लिए यह निर्णय लेना जानते हैं कि 'कौन समझदार है या मूर्ख'—वह केवल मजाक कर रहा है या कि किसी समस्या पर विचार कर रहा है'।

हम जब यह जानने की कोशिश करते हैं कि ऐसी अभिव्यक्तियाँ को कौनसी पदावस्था में रखा जा सकता है तो हम भ्रमित हो जाते हैं। अर्थात् उस समय यह स्थिति उपस्थित होती है जब तर्कवाक्यों में प्रविष्ट पदावस्थाओं की तार्किक शक्ति की खोज हम करनी पड़ती है। इस उलझन पर विजय प्राप्त करने के लिए राइल के मतानुसार, हम विविध मानसिक धारणाओं का नक्शा बनाना पड़ेगा। दूसरे शब्दों में, उनके प्रयोग की सीमाएं निर्धारित करनी पड़ेंगी।

किन्तु सबसे पहले यह गल्पाख्यान (मिथ) भंजित करना होगा एक प्राधिकारिक (आफिशल) या कार्टेजियन गल्पाख्यान कि 'मनो व्यवहारी अभिव्यक्तियाँ एक विचित्र प्रकार की इयत्ता का [illegible] है जो मन या आत्मा के नाम से जाना गया है। यह शरीर से इस अर्थ में भिन्न है कि वह निजी है, अ-दिक्कीय है और केवल अन्त दर्शन द्वारा ही जाना जा सकता है। और यह जानकर कि समझदारी जैसे शब्द ऐसी इयत्ताओं का नामकरण नहीं करते जो यान्त्रिक नियमों से संचालित हैं, दार्शनिक यह मानने को विवश हो गए हैं कि वे सब ऐसी इयत्ताओं का नामांकित करते हैं जो यान्त्रिक न हों, तथा आत्मिक नियमों से संचालित हों। वास्तव में यह मानना पदावस्था-संबंधी भूल है कि वे किसी न किसी इयत्ता का नामांकन तो करती ही हैं। समझदारी शब्द का कार्य मानवी

---

[1] हैम्पशायर की समीक्षा देखें (माइण्ड 1950)। हैम्पशायर ने जो आधुनिक ऑक्सफोर्ड के विचारकों में सर्वाधिक प्रतिभासम्पन्न एवं प्रत्ययवादी थे मानस के दर्शन की ओर विशेष ध्यान दिया है। देखें, उनका 'आन रेफरिंग एण्ड इन्टेण्डिंग' (पी० आर० 1956)। इसमें वे प्रकट (ओवर्ट) क्या है और क्या नहीं इस भेद को व्यक्त करने के लिए एक मार्ग सुझाते हैं। देखें मेक्नालड 'प्रोफेसर राइल आन द कान्सेप्ट आव माइण्ड' (पी० आर० 1951)। जे० न विजडम 'द कोन्सेप्ट आव माइण्ड' (पी० ए० एस० 1928)। ए० सी० गारनेट 'माइण्ड एज माइंडिंग' (माइण्ड 1952)। एवं ए० सी० यूइंग 'प्रोफेसर राइल्स अटैक आन ड्यूएलिज्म' (पी० ए० एस० 1952)। जे० हालोवे 'लैंग्वेज एण्ड इण्टेलीजेन्स' 1951) जो इसी से सम्बन्धित विषयों पर इसी ढंग से चर्चा करती है। लो स्पिरिटो कोमे काम्पोर्टामिण्टो' के नाम से एफ० रासी-लैण्डी द्वारा कृत इटालवी अनुवाद में भी अनुवादक द्वारा बहुत उपयोगी प्रस्तावना प्रस्तुत की गई है।

व्यवहार का वर्णन करना है, किसी इयत्ता का नामांकन करना नहीं।' डेकार्ट एवं उन ज्ञानमीमांसकों के अनुसार जो उनका अनुसरण करते हैं मनुष्य ही विभिन्न इयत्ताओं से निर्मित है मनस एवं शरीर, आत्मा एवं यान्त्रिकी काया[1]।' बस तभी ज्ञानमीमांसकों के समक्ष समस्याओं की एक भीड़ लग जाती है कि कैसे एक अभौतिक आत्मा भौतिक शरीर के कार्यों पर प्रभाव डाल सकती है, कैसे आत्मा अपने चारों ओर व्याप्त भूत जगत् में प्रविष्ट हो सकती है? ऐसे प्रश्नों का राइल की दृष्टि में कोई उत्तर ही नहीं है। तो भी इनका यह कहकर विनाश भी नहीं करना चाहिए (प्रत्ययवादी की भांति) कि वास्तव में मनुष्य आत्म तत्व से ही निर्मित है या (भौतिकवादी के साथ) कि वास्तव में वह एक यन्त्र है। मनुष्य न तो केवल आत्मा ही है, न केवल यन्त्र। वह एक मनुष्य मात्र है जो कभी तो समझदारी से व्यवहार करता है कभी मूर्खता से। कभी तो वस्तुओं को देखता है और कभी उन्हें अनदेखा कर जाता है। कभी तो क्रियाशील रहता है और कभी चुपचाप। राइल के अनुसार मनुष्य को आत्म-तत्व से वंचित मानकर यन्त्र नहीं मानना चाहिए क्योंकि आखिर तो वह उच्च श्रेणी का स्तनधारी प्राणी है। अभी तक जोखिम से भरी यह उछाल हम लेनी ही है कि हम मनुष्य मनुष्य ही हैं' के आकल्प को साहसपूर्वक व्यक्त कर सकें।

दार्शनिकों ने यह मान लिया है कि समझदारी से कार्य करना सिद्धान्तीकरण का पर्याय है या सत्य की खोज करने' का पर्याय है। किन्तु चूंकि विचार प्रायः निजी सीमाओं में ही होता है अतः (एक बार बचपन में हम यह विचार रूपी चालाकी सीखलें तो) यह निष्कर्ष निकालना सरल हो जाता है कि समझदारी की प्रत्येक क्रिया का संबंध एक निजी एवं गुप्त जगत से है। किन्तु राइल का तर्क है कि सिद्धान्तीकरण' केवल बुद्धिमत्तापूर्ण व्यवहार की एक प्रजाति है। इस प्रकार सर्वाधिक बुद्धिमत्तापूर्ण कार्य यह जानने में है कि कैसे किसी काम को उसके निष्कर्ष तक ले जाया जाय, या यह जानने में कि एक खेल कैसे खेला जाय या फ्रेंच भाषा कैसे बोली जाय, एक घर कैसे बनाया जाय और ये सब (कैसे) खेलों के, भाषा बोलने के तथा मकान बनाने के विषय में किये गये सिद्धान्तीकरण से बिल्कुल भिन्न हैं। यदि वास्तव में हम यह कहने की कोशिश करें कि व्यवहार उसी समय बुद्धिमत्तापूर्ण होगा यदि उस पर पहले से बुद्धिमत्तापूर्ण विचार कर लिया गया हो तो हम एक अनन्त चक्राकार स्थिति में पड़ जाएंगे। ऐसा मान लेने का यदि कोई भी अच्छा कारण होता कि बुद्धिमानी से क्रिकेट खेलने के लिए यह आवश्यक

---

[1] द कॉन्सेप्ट आव माइण्ड के साथ ही साथ सी० डी० ब्रोड कृत माइण्ड एण्ड इट्स प्लेस इन नेचर पढ़ना अच्छा तरीका है।

है कि क्रिकेट के विषय मे बुद्धिमत्तापूण सिद्धा तीकरण इससे पहले किया जा चुका हो, तो यह विश्वास कर लने का भी उतना ही औचित्य होता कि बुद्धिमत्तापूण सिद्धा तीकरणक लिए उससे पहले सिद्धा तीकरण का बुद्धिमत्तापूण सिद्धा तीकरण होना आवश्यक है, इत्यादि और इस तरह अन त क्रम चलता रहेगा। एक अवस्था पर और क्यो न एक ही बार म ? हमे यह जान लेना पडेगा कि क्रिया का कोई भी रूप (आकार) बुद्धिमत्तापूण होता है चाह कोई स्थिति उससे पूव हो या न हो।

किन्तु यहा यह आपत्ति खडी की जा सकती है कि किसी क्रिया के केवल परीक्षण से ही हम यह नही कह सकते कि वह बुद्धिमत्तापूण है। यह तो मात्र सयोग भी हो सकता है। शतरज के खेल को बहुत कम जानने वाला भी कभी कभी एक सही और मुश्किल मे डाल दने वाली चाल चल सकता है। इसलिए राइल यह स्वीकारते हैं कि हम यह निर्धारित करन के लिये कि कोई कम बुद्धिमत्तापूण है या नही, उस काम से परे जाकर देखना होगा। यह पार दर्शन किसी रहस्य का पता लगा लने जसा नही है, जो हमारे लिय बिलकुल अपनी मानसिक क्रिया को किसी भावल्प से प्रकटता हो। इसके बजाय हम तो उसके (अभि)कर्ता की सामा य क्षमताओ एव शक्तिओ की जाच पडताल करते हैं। क्या वह अन्य परिस्थितियो मे भी ऐसी ही चाल चलेगा ? क्या वह दूसरो के द्वारा चली गई ऐसी चालो को पस द कर या समझ सकेगा ? यदि हमारे प्रश्न का उत्तर स्वीकारात्मक है तो वह शतरज खेलना जानता है।

जानने की क्रिया राइल के अनुसार, चित्तवत्यात्मक है। ऐसा कहकर वे यह सुझाव नही दे रहे हैं कि वह खेल एक विशेष प्रकार की इयत्ता का खेल है जिसका नाम चित्तवत्ति है। यह तकवाक्य कि काच म टूटने की प्रवत्ति (डिस्पाजीशन) होती है,' उनके अनुसार (अस्पष्ट एव सीमित) शत कथनो की शृ खला की एक शीघ्रलिपि मात्र है। यदि आप काच को गिरा दें या पत्थर से उस पर चोट करें या इसे मोडने की कोशिश करें तो यह टूट जाएगा। यदि काच कभी न टूटता हो या हमारे अनुभव मे काच टूटने की घटनाए कभी प्रस्तुत न हुई हो तो भी हम उसे टूटनीय' नही कहना चाहिए। इस तरह उसका वणन कर हम किसी घटना का वणन नही कर रह अपितु एक सशत कथन को ही कह रहे होते हैं।[1]

---

[1] आलोचना के लिए देखें डी० पीयस 'द लोजिकल स्टेटस आव सपोजीशन' (पी० ए० एस० एस० 1951), एस० हैम्पशायर डिस्पोजीश स' एव ए० आर० व्हाइट 'मिस्टर हैम्पशायर एण्ड प्रोफेसर राइल आन डिस्पाजीश स (एनालिसिस 1953), जी० एन० बड मिस्टर हैम्पशायर आन डिस्पोजीश स (वही)। देखें,

तब यद्यपि हम एक व्यक्ति के विषय मे यही कहना चाहिए कि वह फ्रेंच भाषा मे पढ सकता है यदि वह कभी कभी ऐसे काय करता है जो फ्रेंच भाषा के पाठको स अपेक्षित हैं– या वह चिडचिडा है यदि वह झुंझलाता है जब वह क्रोध म हाता है या फिर वह मृदुस्वभावी है' यदि वह मित्रतापूण व्यवहार करता है। तो भी कोई ऐसी विशष घटना नही है जिसका घटना इस सम्बन्ध मे आवश्यक एव पर्याप्त दशा हो ताकि उसे व्यक्ति की चित्तवृत्ति के विवरण के लिए[1] लागू किया जा सके। एक इयत्ता या धारणा की खोज करना जो चित्तवृति के द्वारा नामांकित होती हो– एक किसी काल्पनिक प्राणी की खोज करने से अधिक कुछ नही है। राइल की दृष्टि मे यह कहना कि हमारी चित्तवृत्ति अमुक अमुक प्रकार की है' केवल यही कहना है कि हमारा व्यवहार नियमबद्ध है अथात् यह एक नियमित रूप से सचालित है।

इसी से सम्बद्ध भाषण जो काउण्टर–फेक्चुअल कण्डीशन्स' नाम से प्रसारित किए गए। अर्थात् ऐसे सशत कथन जस यदि सीजर ने रूबीकन नदी पार नही की होती तो गणतन्त्र नष्ट नहीं होता शामिल हैं। अभी अभी ऐसे तकवाक्यो पर व्यापक तौर पर चर्चा हुई क्योकि (1) ये किसी भी सघटनवादी एव चित्तवस्त्यात्मक मन या शरीर क विवरण मे एकाएक प्रकट हो जाते हैं। (2) प्राकृतिक नियमो एव मात्र नियमितताओ के भेद को केवल इसी बात म निहित माना गया है (देखें अध्याय 17 नीले पर) कि नियम तो इन दशाओ को स्वीकारते हैं किन्तु मात्र नियमतिताए ऐसा नही होने देती। (3) किसी सत्यफलनीय तकशास्त्र की दृष्टि से उनकी व्याख्या करना स्पष्ट ही ऊटपटाग निष्कष पर पहुचना होगा। जम यदि, तो ' के तर्काकार का भौतिक अभिप्रत प्राप्त करने पर प्रत्येक प्रतितथ्यात्मक दशात्मकता इसी तथ्य के बल पर सही होगी कि उसका पूवपक्षी (एंटिसीडेंट) गलत है। किन्तु प्रकट म कुछ ऐसे तकवाक्य जसे यदि पत्थर से काच पर चोट की जाय तो वह उसे तोड देगा सही है जबकि कुछ अन्य जसे यदि पख से काच पर चोट की जाय तो वह उसे तोड देगा' गलत हो जायगा। चिश्लोम द कण्ट्री टू फक्ट कण्डीशनल (माइण्ड 1946) गुडमैन द प्राब्लम आव काउटर–फक्चुअल कडीशनल (जे० पी० 1943) इसका पुनमुद्रण फक्ट फिक्शन एण्ड फोरकास्ट के नाम स हुआ (1954), जिसमे इसी विषय की विस्तृत चर्चा है। बिल क्नुन द कण्ट्रेरी टू फक्ट कण्डीशनल' (माइण्ड 1947), पोपर कृत ए नोट आन नेचुरल लाज एण्ड द सो काल्ड कण्ट्ररी टू फेक्ट कण्डीशनरस' (एनालिसिस 1949) पी० ज० डिग्स काउण्टर फेक्चुअल कण्डीशनल्स' (माइण्ड 1952) हेम्पशायर सबजकटिव कण्डीशनल्स (एनालिसिस 1948), चिश्लोम ला स्टेटमेण्टस एण्ड काउण्टरफेक्चुअल इनफरेंस (एनालिसिस 1954)।

[1] तुलना के लिए देखें विटजनस्टीन द्वारा समझ पर कही गई बातें। इसी पुस्तक म विवेचित।

राइल द्वारा किया गया प्रयोजनों का विश्लेषण भी इसी आधार पर विकसित होता है। एक प्रयोजन से काम करना, आदत के अनुसार काम करना है। यह बात इस तथ्य में प्रकट होती है कि हम प्रायः इस विषय में अनिश्चित रहते हैं कि अमुक व्यक्ति ने किसी विशेष प्रयोजन से अमुक कार्य किया है या किसी आदत से। किसी कार्य को आदतन प्रकट हुआ मानना उसके रहस्य का उद्घाटन करना है। किन्तु तब उसे अप्रत्याशित या विचित्र कहना अर्थहीन होगा। इसी तरह किसी कार्य को प्रयोजनवश किया हुआ मानना भी उसे किसी सामान्य प्रकार के कर्म की श्रेणी में रखना होगा– और यह उसे कार्य कारण रूप से प्रकट करने से भिन्न होगा। महत्वाकांक्षा से प्रेरित होकर कार्य करना, किसी महत्वाकांक्षी कार्य को उजागर करना है। महत्वाकांक्षा एक अद्भुत अयांत्रिक कारण नहीं है।[1]

ऐसी तथाकथित मानसिक प्रक्रियाओं के बारे में वे कहते हैं (जैसे इच्छाशक्ति की क्रियाएं), कि वे किसी भी दशा में प्रक्रियाओं के समान नहीं हैं। किसी प्रकार के विवरण की प्रक्रिया साधारणतः इस पर लागू नहीं होती। यह पूछना निरर्थक है कि इच्छाएं निरन्तर हैं या बाधित? किस प्रकार उन्हें गति दी जा सकती है और कैसे उन्हें धीमा किया जा सकता है? वे सब शुरू एवं खत्म कब होती हैं? स्वैच्छिक एवं अनैच्छिक व्यवहार इस तथ्य पर आश्रित नहीं रहते कि स्वैच्छिक व्यवहार पूर्ववर्ती है जब कि अनैच्छिक व्यवहार किसी भी इच्छित कर्म का पूर्ववर्ती नहीं है।

इसी भांति यद्यपि देखने और न देखने में, स्मरण एवं पुनः स्मरण करने में निश्चय ही भेद है, तो भी ये कोई मानसिक प्रक्रियाएं नहीं हैं। राइल के तर्क के अनुसार, वे देखने की तथा पुनः स्मरण की क्रियाएं ही हैं। देखना एवं पुनः स्मरण करना वास्तव में, उपलब्धिद्योतक शब्द हैं, प्रक्रियात्मक शब्द नहीं। देखना एक कर्म में सफल होना है, यह तो एक दौड़ जीतने के समानान्तर है जो दौड़ लगाने से भिन्न है। यदि मूर मानसिक क्रियाओं की चकाचौंध से उलझन में पड़ गए थे तो यह सब इसीलिए था कि वे उस वस्तु की खोज कर रहे थे जो वास्तव में थी ही नहीं।

बहुत से दार्शनिक जो राइल द्वारा कार्टेजियन गल्पाख्यान का उन्मूलन करने

---

[1] मनोविश्लेषणात्मक व्याख्याओं के स्तर के लिए राइल द्वारा प्रस्तुत 'प्रयोजनों के सिद्धांत' ने आधुनिक चर्चाओं में एक महत्वपूर्ण योग दिया है। इसी विषय पर देखें एस० टोलमिन की एनालिसिस (1948) में तथा उनके उत्तर के लिए एच० डिंगल को (उसी में)। आर० पीटर्स (1949) डब्लू० एफ० आर० हार्डी (1950)। देखें एलेक्जेण्डर एवं मेकिण्टायर काज एण्ड क्योर इन साइकोथेरपी (पी ए एस एस 1955)।

उनक प्रति सहानुभूतिशील ह उनक कल्पना[1] क विश्लेषण स परशान हो गए हैं। कि तु तो भी यह विश्लेषण उनकी इस सामा य निष्पत्ति के अनुरूप ही है कि जब हम यक्तियो को उनक मानसिक कर्मो स जानते हैं तो हम चेतना प्रवाह की किसी अनन्वेषी प्रात्मिक क्रिया के विषय मे कोई अनुमान नही लगा रहे होते हैं। हम तो उन लोगो द्वारा प्रबल रूप स यक्त किए जा रहे लौकिक यवहार का आंशिक विवरण प्रस्तुत कर रहे होते हैं– उस यह बताना है कि कल्पना करना कि ही निजी इयत्ताओ के किसी एक वग पर गहराई स मनन करने की प्रक्रिया नही है। अर्थात् कोई बिम्ब प्रकटाना नही है जसा कि किसी की हत्या करन का अभिनय करना किसी विचित्र प्रकार की वास्तविक हत्या कर देने जसा नही है। इसी तरह एवरेस्ट के देखन की कल्पना करना वास्तविक रूप से एवरेस्ट का बिम्ब देख लेना नही है। यदि कोई यक्ति एवरेस्ट दखन की कल्पना करता है तो न तो उसकी आखो के समक्ष वास्तव म एवरेस्ट होता ही है और न कोई बनावटी पहाड ही जो उसकी कृत्रिम दृष्टि क समक्ष प्रस्तुत हो। वह तो एवरेस्ट के विषय म प्राप्त अपने ज्ञान का उपयोग कर रहा होता है जिसक जरिए वह बताना चाहता है कि वह कसा दिखाई देगा। कल्पना करना राइल की दृष्टि म एक प्रकार का पूर्वाभ्यास करना है। भविष्य का पूर्वाभास करना है। या फिर बहाना करने का यह एक रूप हो सकता है कि तु निश्चय ही यह आ तरिक दशन नही है। जहा तक पूर्वाभ्यास एव पूर्वाभास सद्धातिक रूप स लौकिक है वसा ही कल्पना करना भी है। इस तरह निजता (प्राइवसी) की आ तरिक किनवन्ती (बिम्बो का जगत्) म तत अभेद्य सिद्ध नही हो पाता।

का सेप्ट आव माइण्ड म राइल ने अपनी ही तरह स दाशनिक मनोविज्ञान की समस्याओ की रचना की है एव उनका हल निकाला है। उनकी इस बात ने विटजनस्टीन को परशान कर दिया था। उनकी कृति डाइलेमाज विटजनस्टीन की मुख्य प्रस्थापनाओ की ओर प्रवत्त है। इसम दाशनिक के समक्ष प्रस्तुत हुई अशमनीय दुविधाओ को हल करन की समस्या पर विचार किया गया है। प्राय दाशनिक के सामने दो प्रकार के निष्कष रहते हैं और य इस तरह स परस्पर जुडे हैं कि इनम से एक पूणत गलत होना चाहिए यदि दूसरा आशिक रूप स सही है तो। बारी बारी स कभी अनक दुविधाओ का विचार करके राइल यह बतान की कोशिश करत हैं कि प्रत्यक अवस्था म सघष स्पष्ट है। उन सिद्धा तो के बीच का एक कृत्रिम सघष जो

---

[1] खें का सेप्ट आव माइण्ड की समीक्षाओ के अतिरिक्त जे० एम० शोटर कृत इमजीनेशन (माइण्ड 1952) तथा उसक साथ ही ए० जी० एन० फ्लू का उत्तर फक्ट एण्ड इमजीनेशन (माइण्ड 1956), बी० एस० ब जामिन आन रिमम्बरिंग (उसी म)। इस म इसी स सम्ब धित प्रश्नो की चर्चा की गई है।

स्वकर्मों से भिन्न श्रेणियों के हैं। और उन्हें समन्वित करने का कोई कारण नहीं दिखाई देता।

उदाहरणार्थ, एक परिचित समस्या लें कि भौतिक शास्त्र किस प्रकार विज्ञान जगत दैनिक जीवन के जगत से सम्बद्ध है। एक ओर जहां भौतिक शास्त्री हमें यह आश्वासन देता है कि वस्तुएं दरअसल दिक के विद्युदणुओं का संयोजनमात्र हैं कि वे वास्तव में रंगीन नहीं हैं, ठोस नहीं हैं या नियत नहीं हैं, इसके दूसरी ओर हम इस बात पर भी पूर्णतः आश्वस्त हैं कि मेजें एवं कुर्सियां वास्तविक हैं, और वे रंगीन हैं, ठोस हैं, एक आकार की हैं आदि आदि। किस प्रकार यह दुविधा पार की जाए? भौतिकशास्त्री के निष्कर्ष राइल की दृष्टि में किसी भी प्रकार हमारे दैनिक जीवन के निर्णय से वस्तुतः संघर्ष में नहीं आते। और इस तरह तथाकथित दुविधा केवल हमारी रुचियों का अन्तर मात्र रह जाती है।

वे अपनी बात को एक दृष्टान्त से सिद्ध करते हैं। एक महाविद्यालय का लेखा परीक्षक (आडिटर) उस विद्यालय के एक उपस्नातक से यह कह सकता है कि महाविद्यालय के लेखे जोखे में विद्यालय का समस्त जीवन आ जाता है उसके खेलकूद मनोरंजन, उसकी शिक्षा आदि सभी उसमें वर्णित हैं। यह लेखापरीक्षक उपस्नातक को धोखा नहीं दे रहा है, क्योंकि दरअसल यह लेखा व्यापक है सही है तथा सब बातों को अपने में समेटता है। तो भी उपस्नातक इस बात से आश्वस्त है कि कुछ ऐसा भी है जो इस लेखे-जोखे से छूट गया है। यही बात ठीक उसी रूप में भौतिक शास्त्री एवं हमारी वास्तविक स्थितियों को व्यक्त करती है कि कोई भी भौतिक परिवर्तन विद्युदणुओं की गति के द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है और उन मामलों में भौतिकी पूर्ण है। तो भी किसी तरह यह जगत् जिससे हम प्रेम करते हैं और जिससे डरते हैं भौतिकशास्त्री के चंगुल से कहीं न कहीं निकल ही जाता है। राइल सुझाते हैं कि उपस्नातक को लेखापरीक्षक के इस दावे की गहराई से जांच करनी चाहिए कि उसके लेखे में महाविद्यालय का पूरा जीवन समेट लिया गया है या नहीं। निस्सन्देह उसके लेखे में यह सब है। इस अर्थ में कि महाविद्यालय की हरेक गतिविधि को आय व्यय के हिसाब से रखा गया है किन्तु उसके लेखे कालेज जीवन के उस पहलू का वर्णन नहीं करते जो उपस्नातक के लिए मनोरंजक या आवश्यक हैं। लेखाकार के लिए पुस्तकालय की एक नयी पुस्तक 25 शिलिंग भर की है। वह किसी श्रेष्ठ आत्मा की मूल्यवान कृति नहीं है। इसी भांति यद्यपि भौतिकी सभी को समेट लेती है तो भी वह उन सभी चीजों का पूरा विवरण नहीं देती। भौतिकशास्त्री तो हमारे चारों ओर व्याप्त जगत के कुछ पहलुओं में ही रुचि रखता है। जिस प्रकार एक लेखापाल का काम तथा उपस्नातक का काम भिन्न है उसी प्रकार भौतिकशास्त्री का काम भी भिन्न है। हर एक अपने रास्ते पर जा रहा है और उसे इस सम्बन्ध में किसी प्रकार की दुविधा का भय नहीं होना चाहिए। अभाव चेष्टा के इस सिद्धान्त के

बहुत से प्रशंसक हैं। विशेषत उन लोगों में से जो बिना विवाद के धार्मिक होना, तथा साथ ही विवेचनाकार दार्शनिक रहना चाहते हैं।

राइल सदैव ही इस बात पर बल देते रहे हैं कि उनका कर्म तनिक भी दार्शनिक कार्य नहीं है और निश्चय ही वे कभी गहन भाषाई विश्लेषण में निरत नहीं होते हैं। ऐसे विश्लेषणों के लिए हमें जे० एल० आस्टिन के निबंधों की ओर अभिमुख होना चाहिए जो ऑक्सफोर्ड में नीति दर्शन के प्राध्यापक थे तथा जिन्होंने अपनी आलोचनात्मक क्षमता के लिए काफी आदर अर्जित किया है किन्तु अपनी इन क्षमताओं के कारण वे बहुत मोटे ग्रन्थों के रचयिता नहीं हो पाये।

हाउ [illegible] टाक' (पी० ए० एस० 1952)[1] नामक उनका निबंध समापण-क्रिया (स्पीच एक्ट) के प्रकारों के अन्तर को बहुत अच्छे ढंग से प्रस्तुत करता है। [illegible] को य जैसा वर्णित करना' क्ष को य कहना तथा यह कहना कि क्ष य है' आदि। निस्संदेह यह सब एक जाँच-पड़ताल का काम ही तो है। क्योंकि आस्टिन का मत है कि दार्शनिकों ने विवरण एवं कथन जैसे शब्दों का भ्रांतिजनक प्रयोग किया है। किन्तु तो भी उनके इस कर्म को भाषाई विश्लेषण का एक ऐसा प्राथमिक रूप माना जा सकता है–जिसमें प्रकट रूप से कोई चिकित्सात्मक ध्येय नहीं है। पी० ए० एस० (1946) द्वारा अदर माइण्ड्स पर आयोजित एक गोष्ठी में उन्होंने अपने एक प्रभावशाली लेख में कहा था कि दार्शनिक सुवाद का संदर्भ अधिक स्पष्ट हो गया है।' किन्तु उस लेख में उठाए गए भाषाई बिन्दु सुन्दर हैं। अपनी प्रकृति में वे राइल की रचनाओं में पाई जाने वाले भाषाई विश्लेषण से कहीं अधिक भाषा वैज्ञानिक हैं। उदाहरणार्थ यह बताने का प्रयास कि हम ठीक तौर पर स्वयं अनुभूतियों से परिचित नहीं हो सकते (अर्थात् जिसे एक व्यक्ति अनुभव कर रहा है उससे) किन्तु हम जिससे परिचित होते हैं वह यह अनुभव मात्र होता है कि अमुक अमुक स्थिति अनुभव की जा रही है। (अर्थात् वह क्या अनुभव कर रहा है यह ज्ञान) आस्टिन का कहना है कि मैं जानता [illegible] कि वह क्या अनुभव कर है जैसे वाक्य में क्या एक प्रश्नवाचक संयोजक का कार्य निबाहता है। एक संबंधवाची संयोजक का जिसे' के पर्याय का नहीं। आस्टिन से पूर्व किसी ने भी इतने सुन्दर ढंग से इस विषय पर ऐसी व्याकरण[2]सम्मत बात नहीं कही थी।

---

[1] आलोचनात्मक टिप्पणी के लिए देखें डी० आर० कज़िन 'हाउ नाट टु टाक (एनालीसिस 1954) जे डब्लू रॉक्सबी कार्क्स फिटिंग एण्ड मैचिंग (एनालीसिस 1955)।

[2] कोई भी देख सकता है कि ऑक्सफोर्ड दर्शन या भाषाई दर्शन पर चर्चा करना कितना खतरे [illegible] भरा हुआ है। इसमें कुछ सार तो है ही क्योंकि ऑक्सफोर्ड दर्शन

ऑस्टिन कृत 'अदर माइण्ड्स' समर्पण क्रियाओं की एक विशेष श्रेणी की ओर ध्यान आकर्षित करता है जिन्हें उन्होंने प्रग्मनकारी उक्तियों की संज्ञा दी थी। दार्शनिकों ने साधारणतया यह मान लिया था कि भाषा शुद्ध रूप से वर्णनात्मक ही है। ऐसी स्थिति में 'मैं जानता हूं स प है' जैसे वाक्य से अभिमुख होकर वे विशिष्ट संज्ञान क्रिया (अर्थात् जानने की क्रिया) की खोज में निकल पड़े हैं—जिसे ज्ञानकथनों से वर्णित किया जाता है, और जो आस्था कथनों से भिन्न है। किन्तु वास्तव में 'मैं जानता हूं' का काम वही है जैसा कि 'मैं दावा करता हूं' का है। यह एक स्वीकारोक्ति के बराबर है। इसमें वही शक्ति है जो 'आप मुझ पर विश्वास कर सकते हैं' या 'आप इस पर मेरा वचन ले लें' जैसे कथनों में रहती है। यही कारण है कि हम यह नहीं कह सकते कि 'मैं जानता हूं कि यह सब ऐसा है किन्तु मैं गलत भी हो सकता हूं।' केवल इसीलिए नहीं कि जानने की क्रिया दोष रहित है, अपितु इसलिए कि ऐसा कोई भी कथन इस तरह की स्वीकारोक्ति के एक साथ प्रविष्ट होने तथा उससे विमुख रहने की बात के बराबर ही है।

ऑस्टिन की विचार परम्परा को एस० ई० टालमिन जैसे कैम्ब्रिजवादियों द्वारा आगे बढ़ाया गया। बाद में जाकर वे ऑक्सफोर्ड के निवासी हो गए। यह परम्परा 'प्रोबेबिलिटी' (पी ए एस 1950) नामक निबंध में देखी जा सकती है। सम्भाव्यता सिद्धान्त के दर्शनमना प्रचना विचारक (जो असीम वर्गों की जटिलता से परेशान हुए या फिर सम्भाव्यता के कलन की स्पष्टता से मोहित हो गये।) अपने विश्लेषणों का समारम्भ एक बहुत ही विशद बात को लेकर करते हैं। उन्हें इस बात से प्रारम्भ करना चाहिए कि ऐसी सामान्य अभिव्यक्तियों को कि 'मैं सम्भवत आऊंगा।'[1] हम कैसे प्रयुक्त करते हैं। तभी यह स्पष्ट होगा कि 'स सम्भवत प है'

का वृहदंश एक विशिष्ट रुचि का है। और एक पुर्तगाली लाल शराब के स्थान पर स्पेन की एक सूखी सफेद शराब का स्मरण दिलाता है। इसमें शम्पेन की भांति बहुधा झाग नहीं उठते। किन्तु इसके साथ ही यह जान लेना महत्वपूर्ण है कि ऑस्टिन एवं राइल में क्या अन्तर है। विशेष रूप से वे किन मार्गों पर अलग हो जाते हैं यह जानना। वास्तव में यह भी स्मरण रखना चाहिए कि ऑक्सफोर्ड में भी अनेक दार्शनिक हैं। आद्म नील एवं वेल्श, दृष्टान्त के रूप में रखे जा सकते हैं। ये सब किसी ने किसी पुरानी परम्परा पर काम कर रहे हैं।

[1] विभेद के लिए देखें एन० जे० रसेल द्वारा इसी गोष्ठी में प्रस्तुत एक लेख गतिविज्ञान (डायनैमिक्स) संबंधी वैज्ञानिक सिद्धान्त क्या उसकी व्याख्या एवं उसके द्वारा दिए जा सकने वाले औचित्य की क्षमता पर निर्भर करता है? या बिना औचित्य के वह इसकी व्याख्या कर सकता है? विशेषतया इन भाषासंबंधी प्रयोगों पर कि शक्ति, गति, कारण आदि आदि सामान्य जीवन से इनका क्या

मानलो औचित्य खोजने की बजाय हम केवल यह पूछें कि क्या आगमनात्मक तर्क पर विश्वास करना उचित है ? तब स्ट्रासन का कहना है कि इसका उत्तर निश्चित रूप से हां ही है क्योंकि 'युक्तियुक्त' होने का अर्थ है किसी कथन के प्रति आस्था की एक विशेष मात्रा रखना जो उसके पक्ष मे दिए जाने वाले प्रमाणों के अनुपात में ही हो । तब आगमन की युक्तियुक्तता विश्लेषणात्मक है। इस तरह आगमन युक्तियुक्त या उचित है यह बताने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता । हम भली भांति यह पूछ सकते हैं कि क्या अमुक अमुक प्रकार की आस्था रखने का कोई औचित्य हमारे पास है ? किन्तु हम यह नहीं पूछ सकते कि आगमनात्मक तर्क सामान्यत उचित है या नहीं । स्ट्रासन का कथन है कि भूमि संबंधी कानून भी वैधानिक हैं या नहीं इस पर क्या कोई प्रश्न उचित कहा जा सकता है ?

स्ट्रासन स्वीकारते हैं कि दार्शनिक इस प्रकार के मतवाद से असंतुष्ट हैं । उनकी शिकायत है कि आगमन पर रही उनकी शंका बिल्कुल दूसरी ही तरह की हैं । किसी न किसी तरह वे यह अनुभव करते हैं कि इस संबंध में उनके साथ छल हुआ है । वे यह आपत्ति करने पर तुल जाते हैं कि क्या यह संभव नहीं है कि वस्तुओं का पता लगाने का कोई अन्य मार्ग भी मनुष्य खोज सके और तब क्या वह प्रणाली आगमन की प्रणाली के स्थान पर काम में लाई जाय तो क्या यह अधिक उचित नहीं होगा ? इस तरह अंतत क्या यह बताना जरूरी नहीं है कि प्रयोग के लिए आगमन की प्रणाली ही क्या युक्तियुक्त प्रणाली है ? स्ट्रासन के अनुसार यह संभावना सही नहीं हैं । क्योंकि यदि इस मार्ग के पक्ष की पुष्टि के लिए कहा जाए कि अमुक व्यक्ति ने आगमन से भी अधिक उचित कोई युक्ति खोज निकाली है तो इस बात को सिद्ध करने के लिये भी उस आगमनात्मक युक्ति का ही सहारा लेना होगा । ऐसे तर्कवाक्यों की पुष्टि उन्हें इसी प्रकार करनी होगी कि ऐसा ऐसा करके मुझे सही उत्तर मिलता है और ये तर्कवाक्य भी ऐसे होंगे जो स्वयं आगमन पर आधारित होंगे । इसीलिए स्ट्रासन कहते हैं कि वास्तव में यह मुहावरा कि वस्तुओं की खोज करने की ऐसी सफल प्रणाली निकल सकती है जिसका कोई आगमनात्मक आधार न हो स्वयं में वदतोव्याघात है ।

यह स्पष्ट हो जाता है कि स्ट्रासन विश्लेषणात्मक एवं वदतोव्याघात तथा स्वयं विरोधी जैसे शब्दों का मुक्त रूप मे प्रयोग करते हैं । कदाचित लैबेनीज के बाद किसी ने भी इन शब्दों का इतने विश्वासपूर्वक प्रयोग नहीं किया है । इसमें आश्चर्य नहीं कि उन्होंने प्रबल रूप से विश्लेषणात्मक एवं समन्वयात्मक प्रणाली के भेद का क्वाइन के प्रहारों के विरुद्ध भी बचाव[1] किया है ।

---

[1] पी० ग्राइस के सहकार मे लिखित टू डोग्माज आव एम्पिरिसिज्म (पी० आर० 1956) मे ग्राइस ने जो स्ट्रासन के शिक्षक रहे थे न केवल स्ट्रासन को ही

अन्तत यह झगडा स्ट्रासन एव रसल पर जाकर रुक जाता है। यहा से ही आक्सफोड के प्रति शकालु रसल के दाशनिक विचार आक्सफोड के तकशास्त्रियो के के लिए सदव ही आलोचना का विषय रहे हैं, जो उनम जमन अमरीकी आकारीकरण प्रभाव भी देखते हैं, जिस पर व गहरा अविश्वास करते हैं। स्ट्रासन कृत 'आन रेफरिंग' (माइण्ड 1950) इस आलोचना का सर्वाधिक प्रभावशाली स्वर है– जो आकार वादियो क 'पवित्र' सिद्धान्त (रसल कृत विवरण सिद्धान्त) पर एक[1] प्रबल प्रहार है।

स्ट्रासन के अनुसार रसेल न दो जुडवा गलतिया की। उ”होने ”स तथ्य का अनदेखा कर दिया कि एक वाक्य के अनेक प्रयोग हो सकते हैं एव उ”होन गलती म यह मान लिया कि यदि एक सत्यकथन को कहन के लिए साथक वाक्य का प्रयोग नही किया गया तो इससे एक गलत कथन ही उत्पन्न होगा। रसल की त्रिविधा सत्य असत्य एव निरथक एक बार यह जान लेने पर ही ध्वस्त हो जाती है कि एक वाक्य निरथक या साथक हो सकता है किन्तु कभी सत्य या असत्य नहीं होता, कि एक तकवाक्य सत्य या असत्य हो सकता है किन्तु कभी निरथक नही होता। अनेक अवसरो पर जिनमे वाक्यो का प्रयोग होता है सत्यासत्य का प्रश्न सदव ही नही होता। एक वाक्य से स्ट्रासन का यही आशय है कि अभिव्यक्तिया तथा श”दो का समूह।' एक ही वाक्य से बिल्कुल भिन्न कथन कहे जा सकते हैं यथा फ्रास का राजा बुद्धिमान

अपितु अ”य भाषाई विचारको को भी काफी प्रभावित किया। एक प्राणवान विवचक शिक्षक हाने पर भी उ”होंने बहुत कम लिखा। ”नफोरमल लोजिक पर देखें राइल डाइलमाज तथा उनका निबंध ”फ सो एण्ड विकोंज (फिलोसोफिकल अनालिसिस सपा०, ब्लक, 1950) जहा उ”होने यह बात बताई है कि व कान्सप्ट आव माइण्ड में सामा”य कथन अनुमान सबधी सुविधाए मात्र हैं। उनकी यह बात समष्टिगत कथनो पर रेम्से एव मिल द्वारा कही गई बातो मे काफी मिलती है।

1 मैंने इस निबंध की व्याख्या लोजिकल थ्योरी के आधार पर की है। देखें सेलस 'प्रीसपोजिंग' एव स्ट्रासन का उत्तर (पी० आर० 1954) मे। इसमे उ”होने कुछ अशा म अपनी धारणा म सशोधन किया है। आर० क्लाक 'प्रीसपोजीश”स, नेम्स एण्ड डेस्क्रिप्शन्स (पी० क्यू० 1959) भी देखें। जो कुछ इस पुस्तक के आठवें अध्याय के टिप्पणी म दृष्टान्तो के विषय मे कहा गया है वह भी देखें। गिलर के बारे मे अध्याय 7 देखें। पी० टी० गीच रसल्स थ्योरी आव डेस्क्रिप्शन्स' एनालिसिस 1949) देखें। एच० एल० हाट ए लोजिशिय”स फेरी टल (पी आर 1951) म परम्परागत अरस्तू-तकशास्त्र के प्रयोग का एसा ही विवरण देता है। हाट साधारण भाषाई तकनीक का वज्ञानिक दशन मे प्रयुक्त करन के लिए विख्यात रहे हैं। व आजकल आक्सफोड म विधिशास्त्र के आचाय हैं।

है' यह वाक्य लुई चौदहवें अथवा लुई पन्द्रहवें के विषय में भी हो सकता है। इसी वाक्य का प्रयोग एक मजाक के लिए भी हो सकता है जिसका अर्थ है कि फ्रांस का राजा ही यूरोप भर में एक मात्र बुद्धिमान शासक है – या फिर उसका उपयोग केवल एक कहानी कहने के लिए भी हो सकता है। पहले के अतिरिक्त बाद के अन्य सभी विषयों में यदि कोई यह कहने लगे कि 'लेकिन यह तो असत्य है' तो यह बिलकुल गलत रूप से उस प्रणाली को समझना होगा जिसके अनुसरण में मैं इस वाक्य का प्रयोग कर रहा हूं। वे तो वाक्यों के प्रयोग को वाक्यों की रचना से समन्वित करते हैं।

इसी प्रकार एक व्यक्ति को जो यह कहता है कि 'फ्रांस का राजा बुद्धिमान है' उसके इस वाक्य के उत्तर में कोई यह कहे कि इस गणतन्त्र के युग में फ्रांस का कोई राजा ही नहीं तो यह बात रसल के अनुसार वक्ता के विरोध की हुई। यदि फ्रांस का कोई राजा नहीं है तो उसका बुद्धिमान होना सही हो या गलत इसका भी कोई प्रश्न नहीं उठता। रसल के विवरण का सिद्धान्त इस मान्यता से शुरू होता है, कि चूंकि 'फ्रांस का राजा बुद्धिमान है' यह वाक्य न सत्य है न निरर्थक इसलिए यह गलत होना चाहिए और चूंकि यह स्पष्ट ही फ्रांस के राजा का विवरण नहीं प्रस्तुत करता (क्योंकि ऐसा कोई राजा है ही नहीं) अतः इसे किसी अन्य के वर्णन परक होना चाहिए। भीषण दार्शनिक संघर्ष के बाद रसेल अन्त में इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि ममा तर्कवाक्य वास्तव में किन्हीं तार्किक रूप से सिद्ध मुख्य नामों के ही विधेय हैं–और यह काम उन्होंने इस उलझन का निवारण करने के लिए किया ताकि वे ऐसे नामों के न होने को भी सिद्ध कर सकें। किन्तु स्ट्रासन के शब्दों में यदि हम यह सबसे पहले जानलें कि यह प्रश्न कि 'फ्रांस का राजा बुद्धिमान है' की कोई सार्थकता है या नहीं इस प्रश्न से बिल्कुल भिन्न है कि वास्तव में फ्रांस का कोई राजा है या नहीं' (इसमें अर्थ तभी होगा यदि हम इसे किसी के विषय में कहते हुए बोलें) दूसरे यह जान लें कि यह वाक्य इस बात को सिद्ध करने के लिए ही नहीं कहा गया है (यद्यपि निस्सन्देह यह साधारणतः इस अभिप्राय को या धारणा को व्यक्त करता है) कि वास्तव में फ्रांस का एक राजा भी है, तो इस ज्ञान से इस तरह विवरण के सिद्धान्त का आधार जड़ से ही कट जाता है।

आकारी तर्कशास्त्रियों ने अपना पूरा ध्यान अपेक्षाकृत सन्दर्भच्युत वाक्यों से ही जोड़ा है। ऐसे वाक्यों से जैसे 'सब व्हेल मछलियां स्तनधारी हैं' जिन्हें साधारणतया उस समय तक प्रयोग में नहीं लाया जाता जब तक कि हमें व्हेल के विषय में यह नहीं कहना होता कि वे स्तनधारी हैं। यह बात इस स्थिति को स्पष्ट करती है कि उन्होंने क्यों वाक्यों और कथनों के भेद को भुला दिया है। यदि उन्होंने उन वाक्यों को ही देखा होता जिसमें 'मैं' जैसे शब्द या 'गोल मेज' जैसे वाक्यांश हो

(जिन्हें विभिन्न अवसरों पर विभिन्न वाक्यो और कथनो मे प्रयुक्त किया जा सकता है) तो इस तरह वाक्यों एव कथनो मे यह भेद उन्हे समझ म आ जाना चाहिए था।

लाजिकल थ्योरी मे स्ट्रासन यह स्पष्ट करते हैं कि उन्हे ऐसी आकारी प्रणाली की रचना मे कोई आपत्ति नही है। उनके विचार म आकारी प्रणालिया उपयोगी हैं यदि वे सदर्भच्युत बातचीत के लिए काम म ली जाए जैसे कि गणित या भौतिकी मे। एक आकारी तकशास्त्र को इस तरह प्रतिदिन के तकशास्त्र से पूरित किया जाना चाहिए क्योंकि यह स्वय ने साधारण बोलचाल की भाषा के साथ चलने मे अक्षम है। यदि   तो' तथा 'नही और 'एव' जैसे आकार साधारण प्रयोग से ही तकशास्त्रियो के लिए हैं। किन्तु इसके बावजूद भी बहुत सी ऐसी निष्पत्तिया हैं जिन्हे तकशास्त्री अनदेखा कर गए है। आकारी तकशास्त्री प्रभावपूर्वक ऐसे तर्कों का औचित्य नही दे सकते जो सामयिक सबन्धो पर निर्भर है या फिर विशिष्ट स्थानो या समय से आबद्ध हैं। स्ट्रासन के अनुसार ये अभाव एक साधारण भाषाई तकशास्त्र के माध्यम से पूरे किए जा सकते हैं, (जिसका प्रारम्भ ही इस प्रश्न से होता है कि ऐसी कौनसी दशाए है जिनमे हम अमुक अमुक प्रकार की अभिव्यक्तिया या उनके वर्ग प्रयुक्त करते हैं?) चाहे वह उतना व्यवस्थित एव सुन्दर न हो जितना आकारी तकशास्त्र है। तो भी इससे एक ऐसी बौद्धिक क्रिया का आकार मिलता है जो अभी तक अपनी समानता जटिलता तथा ग्रहणशीलता म अतुलनीय रही है।[1]

ओक्सफोड के अन्य दाशनिक शिक्षको म से जो सवविख्यात है वे हैं एफ० वसमैन। वैसमैन ने चिंतन का प्रारम्भ एक तकसम्मत वस्तुस्थितिवादी की हैसियत म किया। किन्तु ये सदव ही विटजनस्टीन के बहुत निकट रहे हैं। एरकेन्तनिस मे छपे समान्यता (1930) पर उनके निबन्ध (जैसा कि पहले बताया जा चुका है) विटजनस्टीन के विचारो का स्पष्टीकरण एव विकास ही था। और कुछ हद तक यही बात उनकी कृति इण्ट्रोडक्शन टू मैथेमेटिकल[2] थिंकिंग (1936) पर भी लागू होती है। वसमैन

---

[1] एक आकारवादी के उत्तर के लिए देखें, क्वाइन कृत मिस्टर स्ट्रासन एण्ड लोजिकल थ्योरी' (माइण्ड 1953)। स्ट्रासन ने उनकी दृष्टि मे एक समथ दाशनिक जाच-पडताल की है किन्तु आकारी तकशास्त्र की शक्ति को बहुत गलत समझ लिया है। देखें टोलमिन कृत व्हाट सार्ट आव डिसीपलिन इज लोजिक? (1953 म प्रोसीडिंग्स आव एलेवन्थ कांग्रेस आव फिलोसोफी म प्रकाशित)।

[2] 1951 मे इसका अंग्रेजी अनुवाद प्रकाश म आया था। वसमैन का कहना है कि उन्होने गणित पर विटजनस्टीन की बहुत सी हस्तलिपिया देखी हैं। ए० एम्ब्राम फिनिटिज्म एव द लिमिट्स आव एम्पिरिसिज्म' (माइण्ड 1937) नामक निबध को विटजनस्टीन के गणित दशन का सव प्रथम केम्ब्रिज के बाहर प्रस्तुतीकरण

पूर्णत: इस दृष्टिकोण को अमान्य कर देते हैं कि गणित को तर्क पर आधारित माना जा सकता है। उनके अनुसार गणित (यहाँ तक कि स्वाभाविक अंकों का अङ्कशास्त्र भी) किसी वस्तु पर आश्रित नहीं होगा। यह आवश्यक सत्यों से प्रारम्भ न होकर परिपाटी से प्रारम्भ होता है। इसके तर्कवाक्य न तो सत्य है न असत्य। उनके विषय में हम यही कह सकते हैं कि वे मूलभूत परिपाटियों से या तो मेल खाते हैं या बेमेल रहते हैं। यदि हमें चुनना पड़े तो हम एक भिन्न अङ्कशास्त्र बना लेने से कोई रोक न सकेगा और इस अङ्कशास्त्र की भिन्न परिपाटियाँ होंगी। हम सरलता से ऐसे जगत की कल्पना कर सकते हैं जिनमें सामान्य रूप से हम जिस गणित का प्रयोग करते हैं उससे भिन्न एक नये गणित का चलन अपेक्षाकृत अधिक मान्य हो जाय। गणित दर्शन का तब अङ्कशास्त्र का वर्णन करके संतुष्ट हो जाना चाहिए, और उसे उसकी स्थापना करने का प्रयास छोड़ देना चाहिये क्योंकि यहाँ केवल परिपाटी ही अंतिम है।'

विटजनस्टीन की भाँति वे कहते हैं कि अङ्क धारणाओं के एक परिवार को रूपायित करते हैं। अङ्क कोई ठोस इकान्यात्मक धारणा नहीं है। ठीक यही बात अङ्कशास्त्र पर लागू होती है। जिसे हम अङ्क या एक तरह का अङ्कशास्त्र कहने को तैयार हैं, वह हमारी परम्परा पर निर्भर करता है आकारी दबाओं पर कतई नहीं। उनका खुलापन इन धारणाओं के पक्ष का एक बिंदु है क्योंकि यह हमें नयी गणितीय क्रियाओं को विद्यमान शब्दावली में मूर्तिमान करने की स्वतन्त्रता दे देता है। और यह एक ऐसी समान्यता है–जिसे कोई भी स्थिति नियत एवं पूर्व–परिभाषित धारणा कभी मंजूर नहीं करेगी।

वसमैन का परम्परावाद तथा उसके साथ मुक्त स्थिति' पर दिया गया उनका बल उनके तमाम दार्शनिक निबंधों में देखा जा सकता है जिसे पी० ए० एस० एम० एवं एन० एल० 1 द्वारा संयोजित एक गोष्ठी में वेरीफाएबिलिटी नामक निबन्ध के पढ़े जाने से काफी अभिव्यक्ति मिली थी। वे नए दृष्टिकोण से तर्कसम्मत वस्तुस्थितिवाद के आरम्भिक संघटनवादी संस्करण की तीव्र आलोचना करके अपनी चर्चा का प्रारंभ करते हैं। उनके अनुसार संघटनवाद के प्रति मूलभूत आपत्ति यही है कि भौतिक पदार्थ संबंधी वाक्य के सब शब्दों की मुक्त स्थिति होती है। तब यदि हम ऐंद्रिय संवेदनों की एक इकाई का ऐसा आकलन करना चाहें जो भौतिक

करने का श्रेय दिया जाता है। देखें एक अन्य निबन्ध 'आर देयर थ्री कोंसीक्यूटिव सेवेन्स इन द एक्सपेन्शन आव पाई?' (मिशीगन एकेडेमी आव साइन्स आर्ट्स एण्ड लेटर्स 1936), गेस्किंग मैथेमेटिक्स एण्ड द वर्ल्ड (एल० एल० 2)। विटजनस्टीन के गणित संबंधी भाषण 1956 में जाकर काफी देर बाद छपे।

पदार्थ सबधी कथनो के (जैसे 'वह एक बिल्ली है' के) सत्य को स्थापित करने के लिए पर्याप्त एव आवश्यक हैं तो हमे तत्काल ही इस प्रकार की आपत्ति का सामना करना होगा कि मानलो ये सारी शर्तें पूरी हो जाती हैं किन्तु बिल्ली के रूप मे आपने जिस वस्तु का विवरण दिया है यदि वह एकाएक किसी विशालकाय जानवर मे बदल जाय तब आप क्या कहेगे ? इन प्रश्नो का वसमैन के विचार मे कोई निश्चित उत्तर नही है। केवल मात्र इसीलिए कि बिल्ली की एक मुक्त स्थिति है। हम नही जानते हम ऐसे वक्त क्या कहेगे ? हम यह बताने के लिए कोई विवश नही कर सकता कि एकाएक विकसित हो गया बिल्ली का वह विशाल स्वरूप बिल्ली होगा या नही ? वसमैन का कथन है कि किसी के द्वारा अनदेखा कर देने से ही बिल्ली सबधी धारणा मे निश्चित सीमाओ का बाधा जाना सभव नही है। तथ्य यह हैं कि हम कभी भी एक भौतिक पदार्थ के विषय मे पूरी तरह से नही जान सकते। और न कभी उसका पूरा विवरण ही दे सकते हैं। सदैव इस बात का अवसर है कि इसमे से बिल्कुल अप्रत्याशित गुण भी प्रकट हो सकते हैं।

वसमैन के निष्कर्षानुसार अनुभववादी कथन कभी भी पूर्णत सत्यापनीय (निरूपणीय) नही हैं क्योंकि परीक्षणो का कोई भी उपकरण उनकी सचाई को सिद्ध नही कर सकेगा। यह निष्कर्ष आश्चर्यजनक नही है। वसमैन ने जब तक वरीफाइबिलिटी लिखा था तब तक एक तो यह बात स्वीकार ली गई थी। किन्तु वसमैन इससे भी आगे जाना चाहते हैं। वे कहते हैं कि एक अनुभववादी तर्कवाक्य किन्ही प्रत्यक्ष दर्शनात्मक तर्कवाक्यो के व्यक्त होने को अपने मे समाहित नही करता। यदि ऐसा होता तो फिर अनुभव से ही सघर्ष मे अपने द्वारा उसे खण्डित भी किया जा सकता था। वास्तव में ऐसा सघर्ष किसी अनुभववादी तर्कवाक्य का उन्मूलन करने के लिए पर्याप्त नही है। हमारे पर्यवेक्षणो एव हमारी प्रत्याशाओं के मध्य उपजती हुई कोई गलती यह कहकर भी हटाई जा सकती है कि मैं इतनी अधिक सतर्कता से विचार कर नहीं पा सकता।' जो कुछ हम कहने के अधिकारी हैं वह यह है कि एक अनुभव किसी तर्कवाक्य का या तो पक्षधर या विपक्षी या फिर उसे शक्ति देने वाला या कमजोर करने वाला ही हो सकता है। कभी भी वह उसे सिद्ध या असिद्ध नही करता।

सामान्य तौर पर ऐसे परम्परागत तार्किक सबधसूचक (जैसे विरोधाभास) केवल एक ही प्रकार के भाषाई ढाचें मे प्रकट हो सकते हैं-(उदाहरण के लिए यान्त्रिकी के दो साध्यो के बीच मे या एक ही गतिसूचक[1] मे सबधित दो पर्यवेक्षणों

---

[1] ये ढाचें आगे भी लग्वेज स्ट्रेटा (एल० एल० 1) नामक निबंध मे चर्चित हुए हैं। भिन्न भिन्न साचो का अन्तर भिन्न तर्क से प्रकट होगा। सत्य, साधक, विरोधाभासी, निरूपणीयता आदि सभी का अलग अलग अर्थ है। खास तौर पर

अध्याय १९

अस्तित्ववाद पर एक पष्ठलेख

यदि मैं, उन सीमाओ म काय करते हुए जिन्हे मैंने इस पुस्तक के वण्यविपय क लिए बाधा है, अस्तित्ववाद के बारे मे कुछ भी न कहू तो भी मुझ पर कोई आरोप औचित्य की सीमा मे लगाया नही जा सकता। प्रथम तो इसलिए कि समकालीन ब्रिटिश दशनशास्त्र की प्रमुख प्रवत्तियो पर इसका प्रभाव बिल्कुल नही रहा है दूसरे जहा तक इसकी चर्चा हुई है अस्तित्ववाद को तत्वदशन की अपेक्षा नीति धर्मात्मक (ethico-religious) चिन्तन के प्रेरक क रूप म गभीरता पूर्वक अपनाया गया है। व्यावसायिक दाशनिको ने अधिकाश म कधो को तिरस्कार सहित उचकाकर इसकी उपेक्षा की है।

फिर भी इसकी पूण उपेक्षा करना एक प्रकार की कायरता ही होगी चाहे यह निणय कि ही अ शा मे स्वागत–योग्य क्यो न हो। अस्तित्ववाद ब्रिटिश दाशनिको की चेतना की सीमा–रेखा पर अवस्थित है। ब्रिटिश दाशनिको की दष्टि म यह योरप महाद्वीपीय अतिरेको एव उसके विचारो के खुरदरेपन का प्रतीक है। इसकी गतिविधियो का रेखांकन करते हुए (यदि एक बडी तथा दुरूह पुस्तक न लिखी जाकर यही अन्यत्र जो कुछ भी प्रयास किया जा सकता है उसमे) ब्रिटिश तथा लटिन ट्यूटोनिक दशनशास्त्र के मध्य वतमान मूलभूत विरोधो की तीव्रता पर विवेचन को केन्द्रित किया जा सकता है। इस बारे म मैंने पहल भी बलपूर्वक कहा है किन्तु कुछ सामान्य रूप म।[1]

---

[1] अधिक व्यापक भूमिका के लिए देखे आर० जोलिवट लेस डाक्टरि ■ एग्जि स्टेंश्यलिस्टस (1952), के एफ० रीनहाट द एग्जिस्टेंशलिस्ट रिवोल्ट (1952) एच० ज० ब्लखम सिक्स एग्जिस्टेंश्यलिस्ट थिंकस (1952) एफ० एच० हीनेमान एग्जिस्टेंश्यलिज्म एण्ड द मोडन प्रेडिकामेण्ट (1953)। इस विषय पर एक विशिष्ट रूप मे किये गए प्रहार के लिए देखें एन० बोबियो द फिलोसोफी आव डिकेडण्टिज्म (1944 पूरा अग्रेजी सस्करण 1948 मे)। एम० ग्रीन ड्रेडफुल फ्रीडम (1948)। आर० आई० पी० 1949 के विशेषाक मे लम्बी पुस्तकसूची दी गई है जिसमे इटालवी किताबो की भी सूची है साथ ही विवेचनात्मक निबधो का विवरण भी। देखें के० डगलस ए क्रिटिकल बिब्लियोग्राफी आव एग्जिस्टेंश्यलिज्म (1949), एफ० कपल्सटन कण्टेम्पोरेरी फिलोसोफी (1956)। यहा यह उल्लेखनीय है कि इनम स अनेक पुस्तकें उपमार्गीय विचारको द्वारा लिखी गई।

यहां किसी को ब्रिटिश कट्टरता (दूसरे के विचारों का अस्वीकार) पर उपदेश देने का मिथ्याचरण हो सकता है। निश्चय ही, समसामयिक ब्रिटिश दार्शनिकों का महाद्वीपीय सहयोगियों के प्रति रुख कभी कभी उस प्रसिद्ध अखबारी पोस्टर की याद दिलाता है जो ब्रिटिश नहर में एक ऐसे कोहरे का प्रदर्शन करता है जिससे योरप महाद्वीप बिलकुल अलग थलग रह जाता है। फिर भी कम से कम तर्क एवं ज्ञानमीमांसा के क्षेत्र में ब्रिटिश दार्शनिक का यह विरोध कुछ उचित कहा जा सकता है। वह कह सकता है कि यह एकाकीपन एवं कट्टरता तो उसके योरप महाद्वीपीय सहयोगियों में है न कि उस स्वयं में। क्योंकि जहां ब्रिटिश दार्शनिक योरप के डेकार्टे, उसके लेबनीज एवं उसके काण्ट को जानता है वहां महाद्वीपी दार्शनिक संभवतः बर्कले, ह्यूम तथा रसल से सर्वथा अपरिचित हैं। यदि ब्रिटिश प्रशिक्षित दार्शनिक के लिए नव महाद्वीपी तात्विकों को धैर्यपूर्वक पढ़ना कठिन है, तो इसी लिए कि वह कार्टेजियन बुद्धिवाद (तर्कवाद) और जर्मन प्रत्ययवाद की अनुभववादी आलोचनाओं का उत्तर देने का प्रयत्न ही नहीं करती उनकी उपेक्षा कर देती है। इस प्रकार, उदाहरणार्थ, न तो कार्ल यास्पर्स की बृहत् पुस्तक फीलोसफी में और न ही (उसके ही समान विशालकाय) फिलोसोफिकल लोजिक (1947) में बर्कले या ह्यूम के बारे कहीं एक भी उल्लेख मिल पाता है। और यदि सार्त्र के बीइंग एण्ड नथिंगनेस का प्रारम्भ बर्कले की एक प्रसिद्ध उक्ति के उद्धरण से हुआ भी है तो भी सार्त्र शीघ्र ही इस बात को स्पष्ट होने से रोक नहीं सकते कि वे बर्कले की कृतियों का ध्यानपूर्वक नहीं पढ़ सके हैं।[1]

तो हमारे सम्मुख यही तथ्य रह जाता है कि यदि अधिकांश ब्रिटिश दार्शनिक यह विश्वास किए बैठे हैं कि महाद्वीपीय तत्वदर्शन एकांगी आडम्बरपूर्ण तथा बुद्धिनाशक हैं तो महाद्वीपी दार्शनिकों की यह धारणा भी अशक्त नहीं है कि ब्रिटिश अनुभववादिता असांस्कृतिक, फिलिस्तीनी, पदाति एवं आत्मनाशक है। यदि अस्तित्ववाद ब्रिटिश अनुभववादिता के किन्हीं पक्षों का प्रतिबिम्बन करता भी है तो वह उसे तुड़ा मुड़ा और विद्रूप करके पेश करता है जैसे कि मेले ठेलों में लगे (Fun-fair) दर्पणों में चेहरा टेढ़ा मेढ़ा दिखा करता है। इससे होता यह है कि जो रूप प्रमुखतः तर्कप्रधान तथा सामान्य प्रतीत होता था वह अकस्मात् विद्रूप और विचित्र दीखने लगता है।

---

[1] सार्त्र उन्हें इस सिद्धान्त के हामी बतलाते हैं कि 'होने का अर्थ प्रत्यक्षीकृत होना ही है।' 'भौतिक पदार्थों पर इसे प्रयुक्त नहीं किया जा सकता' बर्कले की इस सीमा को वे अवहेलना कर जाते हैं, और बड़ी संजीदगी से कह देते हैं कि बर्कले का सिद्धान्त इसलिए पर्याप्त नहीं है कि प्रत्यक्ष होने के लिए जिस प्रकार प्रत्यक्षीकरणीय वस्तु आवश्यक है उसी प्रकार प्रत्यक्षद्रष्टा की भी तो आवश्यकता है।

समवत अस्तित्ववाद को बहुत ही आसानी क साथ मनुष्य और उसके ससार क उस विचार की प्रतिक्रिया कहा जा सकता है जो प्लेटो के रिपब्लिक म समाहित है। प्लेटो के लिए अस्तित्व भाव एक नगण्य तथा द्वितीय स्तर की विधि है वतमान वस्तुए वहीं तक वास्तविक हैं जहाँ तक वे किसी रूप या सार (एसेंस) क रूप मे प्रतिभासित हो। प्लेटो के अनुयायियो के कथनानुसार विश्व को जसा कि यह वास्तव म है देखना सारो के समूह को एक ज्ञेय पद्धति को ही देखना है। इसी प्रकार वयक्तिकता एक दोप है । मनुष्य अपनी वास्तविक प्रकृति को तभी ढूढ सकता है जबकि वह स्वय को एक फलन म एक काय म पूणत निमग्न करदे जस एक दाशनिक या एक सरक्षक अथवा एक नागरिक बन जाना । सुशासक तो रूपो' स और सुनागरिक आदत की शक्ति स प्रभावित होता है। दोनो म स किसी को भी न तो अपनी पस द की फल वेदना सहनी होती है न कभी स्वय को वचनबद्ध करना होता है। अत अस्तित्ववादी कहेगा कि न तो शासक को और न नागरिक को यह पता है कि व्यक्ति होना क्या चीज है।

अस्तित्ववाद की जडे जमन रूमानियत (स्वच्छ दतावाद) म है जो कि व्यक्तित्व के नाम पर १८ वी सदी क नवज्ञान के विरुद्ध एक विरोधपत्र था। अधिक सीधे रूप मे इसक उद्गम का श्रेय या कम स कम इसकी पूववर्ती सरणि डालने का श्रेय डेनमाक निवासी सॉरेन कीकगाद तथा जमन नीतिशास्त्री फ्रेडरिक नीत्शे को है। न तो नीत्शे और न ही कीकगाद कोई विधिसम्मत दाशनिक थे। व दोनो वस्तुत निश्चय ही विधिसम्मत दशनशास्त्र के विरुद्ध थ। किन्तु इससे अस्तित्ववाद पर उनके शक्तिशाली प्रभाव को कोई नही रोक सका। वास्तव मे विटिश दृष्टिकोण के अनुसार स्वय अस्तित्ववाद अपने विभिन्न रूपो म दशनशास्त्र विरोधी है।

कीकगाद ने विशाल[1] परिमाण म लिखा है कभी स्वय के नाम से, कभी कल्पित नामा से जसे कि 'न्यायाधिकारी या चरित्रभ्रष्ट छात्र' नामो से क्योंकि

---

[1] उनकी अधिकाश रचनाओं का अग्रेजी अनुवाद हो चुका है। और अब कीकगाद साहित्य की मात्रा भी काफी है। देखें ए कीकगाद एन्थोलोजी सपा आर० ब्रेटल (1946) या फिर आई बोचेंस्की की पुस्तक बिब्लियोग्राफिशे आईन फुह्‌रुंगेन (1948)। डब्लू० लाउरी कीकगाद (1938), आर० जोलिवट इण्ट्रोडक्शन टू कीकगाद 1946, (अग्रेजी अनुवाद 1950), एम० विशाग्रोद कीकगाद एण्ड हीडगर (1953), जे० हाल एटयूड कीकगादियने (1938) जे० कोपिन्स द माइण्ड आव कीकगाद (1953)। कीकगाद ने समसामयिक नकारात्मक धमदशन एव साहित्य पर भी गहरा प्रभाव डाला था। हेनरिक इब्सन के माध्यम से। देखें, विशेषत इब्सन कृत ब्रेण्ड (1866)।

उसकी समझ मे सत्य का सर्वोत्तम उद्घाटन जीवन की विपरित आदतो के नाटकीय सामुख्य से ही हो सकता है। किन्तु वह कहीं भी अपने शुद्ध दाशनिक विचारो को सीधे तौर पर प्रस्तुत नही करता है। उसका दशन सदा एक नीति धार्मिक सदभ मे उद्भूत होता है, जो कि उसकी दृष्टि मे प्रश्नो के इस सारभूत प्रश्न का कि मैं ईसाई कसे हो सकता हू समाधान निकालने के लिए एक आंशिक प्रयत्न है।[1]

उसकी विचारणा मे ईसाइयत के दो शक्तिशाली शत्रु हैं विचाररहित चच गामी धार्मिक और हीगलवादी। विचार रहित चच गामी को यह सुनकर धक्का लगेगा कि उसे ईसाई बनना सीखना चाहिए। वह सोचता है कि वह पूणत ईसाई है। क्योंकि वह ईसाई समाज मे रहता है। वह ईसाई उफ सु नागरिक है (जसे कि कुछ भिन्न परिस्थितियो म वह मुसलमान या हि दू होता) पर इसलिए नही कि उसन ऐसा होने के लिए प्रयत्न करना निश्चित किया है। तो उसकी ईसाइयत वयक्तिकता विमुक्त है अर्थात् एक कमवादी का धम कम है। इसी प्रकार हीगलवादी भी दशन को अवयक्तिक बनान का प्रयत्न करता है, वह गुरुघटाल बनकर दशनशास्त्र पर निणय देता है, मानो दशन शास्त्र कभी वैयक्तिक दाशनिको के प्रयासो के अतिरिक्त और कुछ नही हो सकता है।

इतना तो कीकगाद भी मानने को तयार हैं कि अमूत अवयक्तिक विचारण का भी कोई मूल्य है कि तु इस मानवीय स्थिति पर लागू करना सवथा असमव है। उसन लिखा है, 'सदा ही यह मानव से दूर चला जाता है, इसका अस्तित्व या अन स्तित्व, वस्तुपरक दृष्टिकोण क अनुसार बिलकुल सही तरीक स असीमतया उदासीन हो जाता है'। उदाहरणाथ गणित मेरे अस्तित्व या अनस्तित्व की कोई परवाह नहीं करता। किन्तु कीकगाद के तर्कानुसार किसी अ तर्विरोध के बिना इस अमूतता को इसके सुदूरतम बि दु तक [आत्मपरकता या विषयिगतता (सब्जेक्टिविटी) का पूणत उ मूलन करके] ले आना समव नही है। क्योंकि गणित भी मानव की ही उद्भावना है। इस अथ म, उसके तर्कानुसार अस्तित्व (मानव प्राणी का अस्तित्व) सार (ऐसेंस) स पूववर्ती है, अवैयक्तिक विचारणा की अमूतताओ से पूव तर है। और अस्तित्वयुक्त विषयी (subject) (जो कि विज्ञान से पूव तर है) किसी वैज्ञानिक वस्तु के रूप मे स्वय परिवर्तित नही हो सकता। कीकगाद ने अपने जनल मे लिखा है, इसे (विज्ञान को) पौधो पशुओ और तारो के बारे म ही विवचन करने दिया जाय, किन्तु मानव भावना (spirit) के बारे मे उस तरह विवेचन करना घृणास्पद

---

[1] खास तौर पर द्रष्टव्य फीलोसोफीकल फ्रेग्मेण्टस एव द कांसेप्ट आव द ड्रेड (1844) क आमुख देखें तथा कनक्लूडिंग अनसाइंटिफिक पोस्टस्क्रिप्ट (1846)।

समवत अस्तित्ववाद को बहुत ही आसानी क साथ मनुष्य और उसके ससार क उस विचार की प्रतिक्रिया कहा जा सकता है जो प्लेटो के रिपब्लिक म समाहित है। प्लेटो क लिए अस्तित्व मात्र एक नगण्य तथा द्वितीय स्तर की विधि है, वतमान वस्तुए वही तक वास्तविक हैं जहा तक वे किसी रूप या सार (एसेंस) क रूप मे प्रतिभासित हो। प्लेटो के अनुयायियो के कथनानुसार विश्व को जसा कि यह वास्तव मे है देखना सारो के समूह की एक ज्ञेय पद्धति को ही देखना है। इसी प्रकार, वयक्तिकता एक दोष है। मनुष्य अपनी वास्तविक प्रकृति को तभी ढूढ सकता है जबकि वह स्वय को एक फलन मे एक काय म पूणत निमग्न करदे जसे एक दाशनिक या एक सरक्षक अथवा एक नागरिक बन जाना। सुशासक तो रूपों स और सुनागरिक आदत की शक्ति से प्रभावित होता है। दोनो म स किसी को भी न तो अपनी पस द की फल वदना सहनी होती है न कभी स्वय को वचनबद्ध करना होता है। अत अस्तित्ववादी कहेगा कि न तो शासक को और न नागरिक को यह पता है कि व्यक्ति होना क्या चीज है।

अस्तित्ववाद की जडे जमन रूमानियत (स्वच्छन्दतावाद) मे है जो कि व्यक्तित्व क नाम पर १८ वी सदी क नवज्ञान के विरुद्ध एक विरोधपत्र था। अधिक सीधे रूप म इसक उद्गम का श्रेय या कम स कम इसकी पूववर्ती सरणि डालने का श्रेय डेनमाक निवासी सारेन कीकगाद तथा जमन नीतिशास्त्री फ्रेडरिक नीत्शे को है। न तो नीत्शे और न ही कीकगाद कोई विधिसम्मत दाशनिक थे। वे दोनो वस्तुत निश्चय ही विधिसम्मत दशनशास्त्र क विरुद्ध थ। किन्तु इससे अस्तित्ववाद पर उनके शक्तिशाली प्रभाव को कोई नही रोक सका। वास्तव म ब्रिटिश दृष्टिकोण के अनुसार स्वय अस्तित्ववाद अपने विभिन्न रूपो म दशनशास्त्र विरोधी है।

कीकगाद ने विशाल[1] परिमाण म लिखा है कभी स्वय के नाम से, कभी कल्पित नामो से जसे कि न्यायाधिकारी या चरित्रभ्रष्ट छात्र' नामो से क्योंकि

---

[1] उनकी अधिकाश रचनाओ का अग्रेजी अनुवाद हो चुका है। और अब कीकगाद साहित्य की मात्रा भी काफी है। देखें ए कीकगाद योलोजी सपा आर० ब्रेटल (1946) या फिर आई बोचेंस्की की पुस्तक बिब्लियोग्राफिशे आईन फुरुजोन (1948)। डब्लू० लाउरी कीकगाद (1938) आर० जोलिवेट इण्ट्रोडक्शन टू कीकगाद 1946, (अग्रेजी अनुवाद 1950), एम० विशोग्राद कीकगाद एण्ड हीडेगर (1953), जे० हाल एट्यूड कीकगादियने (1938), जे० कोपि स द माइण्ड आव कीकगाद (1953)। कीकगाद ने समसामयिक नकारात्मक धमदशन एव साहित्य पर भी गहरा प्रभाव डाला था। हेनरिक इब्सन के माध्यम से। देखें, विशेषत इब्सन कृत ब्रेण्ड (1866)।

उसकी समझ में सत्य का सर्वोत्तम उद्घाटन जीवन की विपरित आदतों के नाटकीय सामुख्य से ही हो सकता है। किन्तु वह कहीं भी अपने शुद्ध दार्शनिक विचारों को सीधे तौर पर प्रस्तुत नहीं करता है। उसका दर्शन सदा एक नीति धार्मिक संदर्भ में उद्भूत होता है, जो कि उसकी दृष्टि में प्रश्नों के इस सारभूत प्रश्न का कि मैं ईसाई कैसे हो सकता हूँ समाधान निकालने के लिए एक आंशिक प्रयत्न है।[1]

उसकी विचारणा में ईसाइयत के दो शक्तिशाली शत्रु हैं विचाररहित चर्चगामी धार्मिक और हीगलवादी। विचार रहित चर्च गामी को यह सुनकर धक्का लगेगा कि उसे ईसाई बनना सीखना चाहिए। वह सोचता है कि वह पूर्णतः ईसाई है। क्योंकि वह ईसाई समाज में रहता है। वह ईसाई उर्फ सुनागरिक है (जैसे कि कुछ भिन्न परिस्थितियों में वह मुसलमान या हिंदू होता) पर इसलिए नहीं कि उसने ऐसा होने के लिए प्रयत्न करना निश्चित किया है। तो उसकी ईसाइयत वैयक्तिकता विमुक्त है अर्थात् एक कर्मवादी का धर्म कर्म है। इसी प्रकार हीगलवादी भी दर्शन को अवैयक्तिक बनाने का प्रयत्न करता है वह गुरुघंटाल बनकर दर्शनशास्त्र पर निर्णय देता है, मानो दर्शन शास्त्र कभी वैयक्तिक दार्शनिकों के प्रयासों के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकता है।

इतना तो कीर्कगार्द भी मानने को तैयार हैं कि अमूर्त अवैयक्तिक विचारणा का भी कोई मूल्य है किन्तु इस मानवीय स्थिति पर लागू करना सर्वथा असम्भव है। उसने लिखा है, 'सदा ही यह मानव से दूर चला जाता है इसका अस्तित्व या अनस्तित्व, वस्तुपरक दृष्टिकोण के अनुसार बिलकुल सही तरीके से असीमतया उदासीन हो जाता है'। उदाहरणार्थ, गणित मेरे अस्तित्व या अनस्तित्व की कोई परवाह नहीं करता। किन्तु कीर्कगार्द के तर्कानुसार किसी आंतर्विरोध के बिना इस अमूर्तता को इसके सुदूरतम बिंदु तक [आत्मपरकता या विषयिगतता (सब्जेक्टिविटी) का पूर्णतः उन्मूलन करके] ले जाना संभव नहीं है। क्योंकि गणित भी मानव की ही उद्भावना है। इस अर्थ में, उसके तर्कानुसार अस्तित्व (मानव प्राणी का अस्तित्व) सार (एसेंस) से पूर्ववर्ती है, अवैयक्तिक विचारणा की अमूर्तताओं से पूर्वतर है। और अस्तित्वयुक्त विषयी (subject) (जो कि विज्ञान से पूर्वतर है) किसी वैज्ञानिक वस्तु के रूप में स्वयं परिवर्तित नहीं हो सकता। कीर्कगार्द ने अपने जर्नल में लिखा है, 'इसे (विज्ञान को) पौधों पशुओं और तारों के बारे में ही विवेचन करने दिया जाय, किन्तु मानव भावना (spirit) के बारे में उस तरह विवेचन करना घृणास्पद

---

[1] खास तौर पर द्रष्टव्य फिलोसोफीकल फ्रैग्मेन्ट्स एवं द कॉन्सेप्ट ऑव द ड्रेड (1844) के प्रामुख देखें तथा कनक्लूडिंग अनसाइंटिफिक पोस्टस्क्रिप्ट (1846)।

सम्भवतः अस्तित्ववाद को बहुत ही आसानी के साथ मनुष्य और उसके संसार के उस विचार की प्रतिक्रिया कहा जा सकता है जो प्लेटो के रिपब्लिक में समाहित है। प्लेटो के लिए अस्तित्व भाव एक नगण्य तथा द्वितीय स्तर की विधि है वर्तमान वस्तुएं वहीं तक वास्तविक हैं जहां तक वे किसी रूप या सार (एसेंस) के रूप में प्रतिभासित हों। प्लेटो के अनुयायियों के कथनानुसार विश्व को जैसा कि यह वास्तव में है देखना सारों के समूह की एक ज्ञेय पद्धति को ही देखना है। इसी प्रकार, वैयक्तिकता एक दोष है। मनुष्य अपनी वास्तविक प्रकृति को तभी ढूंढ सकता है जबकि वह स्वयं को एक फलन में एक कार्य में पूर्णतः निमग्न कर दे, जैसे एक दार्शनिक या एक संरक्षक अथवा एक नागरिक बन जाना। सुशासक तो 'रूपों' से और सुनागरिक आदत की शक्ति से प्रभावित होता है। दोनों में से किसी को भी न तो अपनी पसंद की फल वेदना सहनी होती है न कभी स्वयं को वचनबद्ध करना होता है। अतः अस्तित्ववादी कहेगा कि न तो शासक को और न नागरिक को यह पता है कि व्यक्ति होना क्या चीज है।

अस्तित्ववाद की जड़ें जर्मन रूमानियत (स्वच्छन्दतावाद) में हैं जो कि व्यक्तित्व के नाम पर १८ वीं सदी के नवज्ञान के विरुद्ध एक विरोधपत्र था। अधिक सीधे रूप में इसके उद्गम का श्रेय या कम से कम इसकी पूर्ववर्ती सरणि ढालने का श्रेय डेनमार्क निवासी सॉरेन कीर्कगार्द तथा जर्मन नीतिशास्त्री फ्रेडरिक नीत्शे को है। न तो नीत्शे और न ही कीर्कगार्द कोई विधिसम्मत दार्शनिक थे। वे दोनों वस्तुतः निश्चय ही विधिसम्मत दर्शनशास्त्र के विरुद्ध थे। किन्तु इससे अस्तित्ववाद पर उनके शक्तिशाली प्रभाव को कोई नहीं रोक सका। वास्तव में ब्रिटिश दृष्टिकोण के अनुसार स्वयं अस्तित्ववाद अपने विभिन्न रूपों में दर्शनशास्त्र विरोधी है।

कीर्कगार्द ने विशाल[1] परिमाण में लिखा है कभी स्वयं के नाम से, कभी कल्पित नामों से जैसे कि 'न्यायाधिकारी' या 'चरित्रभ्रष्ट छात्र' नामों से क्योंकि

---

[1] उनकी अधिकांश रचनाओं का अंग्रेजी अनुवाद हो चुका है। और अब कीर्कगार्द साहित्य की मात्रा भी काफी है। देखें, ए कीर्कगार्द एन्थोलोजी सम्पा० आर० बेटल (1946) या फिर आई० बोचेंस्की की पुस्तक बिब्लियोग्राफिशे आइन फुरुजोम (1948)। डब्लू० लाउरी कीर्कगार्द (1938), आर० जोलिवेट इण्ट्रोडक्शन टू कीर्कगार्द 1946, (अंग्रेजी अनुवाद 1950), एम० विशोग्रोद कीर्कगार्द एण्ड हीडेगर (1953), जे० व्हाल एट्यूड कीर्कगार्दियने (1938), जे० कोपिन्स द माइण्ड आव कीर्कगार्द (1953)। कीर्कगार्द ने समसामयिक नकारात्मक धर्मदर्शन एवं साहित्य पर भी गहरा प्रभाव डाला था। हेनरिक इब्सन के माध्यम से। देखें, विशेषतः इब्सन कृत ब्रेण्ड (1866)।

भावना, जिससे प्रेरित होकर हम प्रतिबद्ध होते हैं। अगर हमारा चुनाव गलत होता तो, उसके विचार मे, इससे अपनी त्रुटियां हमें ज्ञात हो जायेंगी, जबकि उदासीन अप्रतिबद्ध वस्तुपरक व्यक्ति पर्याप्त उत्साह के साथ कभी भी प्रतिबद्ध नही होते, इसीलिये वे नही जान सकेंगे कि उन्होने गलती कहां की है। उसने आगे कहा है कि हम उछालो और निर्णय के द्वारा, (न कि प्रथम प्रमेय से तर्कशील निगमन के माध्यम से) स्वयं का अन्वेषण कर सकते हैं और मानवीय स्थिति को समझ सकते हैं। हेगेलवादियो के विरुद्ध कीर्कगार्द तर्क प्रस्तुत करता है कि प्रथम प्रमेय इसीलिए प्रथम है कि हम इसे ऐसा बना देते है क्योंकि हम (चुनाव के स्वैच्छिक कर्म से) यह निश्चित करते हैं कि कहां से हम प्रारम्भ करेंगे। इसी प्रकार सत्य के मार्ग की ओर प्रत्येक बड़ा कदम एक स्वतन्त्र निर्णय है। कीर्कगार्द का कहना है कि सौंदर्य शास्त्रीय से वैज्ञानिक, और फिर वैज्ञानिक से नैतिक तथा नैतिक से धार्मिक दृष्टिकोण के अनुसार हमारी प्रगति प्रमेय से निष्कर्ष तक किसी व्यवस्थित और आकारी रूप से उपयुक्त कदम के रूप में तर्कसंगत नही ठहराई जा सकती। यह हर मामले मे वस्तुओं को बिल्कुल नए प्रकार से देखने की दिशा में एक उछाल है।

मानवीय स्थिति जैसी कि कीर्कगार्द ने देखी है, अपनी स्वकीय प्रकृति के कारण हैं, क्योंकि एक अस्थायी अस्तित्व भी चिरंतनता (इटर्नल) से सबद्ध है। उसका कहना है कि सार-समूह का अनुचिन्तन मात्र अस्तित्वपरक इस विरोधाभास (Paradox) की ओर ले जाने में असमर्थ है (न ही शरीरधारी ईश्वर की अवतार भावना के इस विशिष्टत ईसाई विरोधाभास की ओर ले जा सकता है।) हीगल द्वारा ईसाइयत को तर्कसंगत बनाने के प्रयत्न की विरोधास्पदता पर विशेषत आक्रमण करते हुए वह कहता है कि अब हमारा मार्गदर्शन कल्पनात्मक (Speculative) दर्शन शास्त्र नही, बल्कि हमारी नैराश्य जनित गहन भावनायें ही कर सकती हैं जो कि धार्मिक दृष्टि से प्रकाशजनक हैं। असांस्कृतिक फिलिस्तीनी व्यक्ति निराशा से यों भागने का प्रयत्न करता है कि वह ऐसा प्रदर्शित करता है मानो वह पूर्णत अस्थायी तथा संकुचित एवं व्यावहारिक उद्देश्यो मे ही निरत रहेगा। इस प्रकार उनके लिए प्रयत्न करते हुए वह मानव सुलभ हर वस्तु के प्राप्त करने की आशा रखता है। किन्तु इस बहाने को बनाए रखने के लिए उसे स्वयं को ऐसे फैशन में रहने के लिए मजबूर करना पड़ता है। फिर भी महान कठिन क्षणों में उसे निराशा का सामना करना ही पड़ता है। वह व्यक्ति जो ईसाई बनने का प्रयत्न करता है अपनी निराशा का सामना करके इसके परिणामों को देखकर ही स्वयं को जान पाता है,' कीर्कगार्द यहां सुकरात के ध्येय को चालू रखते हुए यह बतलाते हैं।

तो कीर्कगार्द के चिन्तन का सार है ईसाईयत। इसके विपरीत नीत्शे[1] इस

---

[1] अध्याय 5 भी देखें।

और अधार्मिक है जिससे नीतिपरकता एवं धार्मिक एषणा कमजोर[1] हो जाती हो। उसने यह तर्क भी दिया है कि विषयी अपनी स्वकीय प्रकृति के कारण एक ऐतिहासिक प्राणी है और यहां रहता है, और अब अपने भविष्य व अपनी मुक्ति के बारे में भावनापूर्ण रूप से संलग्न (involved) है। इसके विपरीत, हीगल के तमाम बहानों के बावजूद अमूर्त विषय-परक जांच से इस ऐतिहासिक परिवर्तन में सन्निहित गतिमयता और वैयक्तिकता के बारे में कुछ भी पता नहीं चलेगा।

जब दार्शनिक हमें विषयपरक बनने और हमारे मात्र वैयक्तिक दृष्टिकोण को छोड़ने के लिए आग्रह करते हैं तो कीर्कगार्द के विचारानुसार उनका तात्पर्य यही है कि हमें अस्तित्वों को अस्वीकार कर देना चाहिए तथा अपना संपूर्ण ध्यान सार-समूहों पर केंद्रित करना चाहिए। कीर्कगार्द ने सुझाव दिया है कि यदि हमें सत्य तक पहुंचना है तो हम बिलकुल विपरीत दिशा में चलना चाहिए। उसका कहना है कि सौंदर्यबोध के साथ जीवित रहना ही पर्याप्त नहीं है। संभावनाओं की वास्तविकता के बारे में स्वयं को अप्रतिबद्ध रखते हुए उनसे खेलना या बौद्धिक रूप से अर्थात् प्लेटोनिक तरीके से सार समूह के अनुचिन्तन में निमग्न रहना भी पर्याप्त नहीं है।[2] ऐसा करने से वस्तुतः वे सत्य जो हमसे सदा संबद्ध हैं, (निश्चय ही यहां कीर्कगार्द का ध्यान ईसाई सत्य की ओर ही है) कभी हमारे हाथ नहीं आएंगे क्योंकि सत्य तो अस्तित्व से बंधा है न कि सार समूह से। सत्य वस्तुतः विषयिगत या आत्मपरक (सब्जेक्टिव) है कीर्कगार्द के अनुसार सत्य केवल वही है जिसे हमने प्रयत्न करके जाना है प्रतिबद्धता के द्वारा सामना करते हुए, इसे अपनी प्रकृति का अंग बनाते हुए तथा अपने प्रयत्नों द्वारा ग्रहण किया है। उसका विचार है कि समाज हमें वस्तुपरक बनाने को मजबूर करता है' यह हमसे अपेक्षा रखता है कि हम अपनी वैयक्तिकता को एक नियतता (Type) में और अपने ज्ञान को अमूर्त साधारणीकरणों में निमग्न हो जाने दें। अतः हमारे लिए विषयिपरक या आत्मपरक होना आसान नहीं है, किन्तु किसी अन्य रूप में हम अमूर्तताओं से अस्तित्व की ओर नहीं जा सकते। यह मजबूरी है।

हम किससे प्रतिबद्ध हैं यह कीर्कगार्द के लिए अधिक महत्वपूर्ण नहीं है, महत्वपूर्ण यह है कि हम किस प्रकार प्रतिबद्ध हैं। ऊर्जा, लगन तथा चुनाव करने में सहायक

---

[1] दर्शनशास्त्र को मानवीकरणमुक्त (डी-एंथ्रोपोमोर्फाइज) किए जाने के संबंध में इस विचार से विपरीत विचारधारा के लिए देखें एलेक्जेण्डर की रचनाएं। इसके अलावा ब्रितानी व्यक्तित्वमूलक प्रत्ययवाद से अस्तित्ववाद की समानता नोट करें। (विशेषतः सेथ पर लिखा अध्याय देखें)

[2] विभेद के लिए देखें संटयाना लाइफ आव द स्पिरिट।

भावना, जिससे प्रेरित होकर हम प्रतिबद्ध होते हैं। अगर हमारा चुनाव गलत होता तो, उसके विचार में, इससे अपनी त्रुटियां हमें ज्ञात हो जायेंगी, जबकि उदासीन, अप्रतिबद्ध वस्तुपरक व्यक्ति पर्याप्त उत्साह के साथ कभी भी प्रतिबद्ध नहीं होते, इसीलिये वे नहीं जान सकेंगे कि उन्होंने गलती कहां की है। उसने आगे कहा है कि हम उछालों और निर्णय के द्वारा, (न कि प्रथम प्रमेय से तर्कशील निगमन के माध्यम से) स्वयं का अन्वेषण कर सकते हैं और मानवीय स्थिति को समझ सकते हैं। हेगलवादियों के विरुद्ध कीर्कगार्द तर्क प्रस्तुत करता है कि प्रथम प्रमेय इसीलिए प्रथम है कि हम इसे ऐसा बना देते हैं क्योंकि हम (चुनाव के स्वच्छिक कर्म से) यह निश्चित करते हैं कि कहां से हम प्रारम्भ करेंगे। इसी प्रकार सत्य के मार्ग की ओर प्रत्येक बड़ा कदम एक स्वतन्त्र निर्णय है। कीर्कगार्द का कहना है कि सौंदर्यशास्त्रीय से वैज्ञानिक, और फिर वैज्ञानिक से नैतिक तथा नैतिक से धार्मिक दृष्टिकोण के अनुसार हमारी प्रगति प्रमेय से निष्कर्ष तक किसी व्यवस्थित और आकारी रूप से उपयुक्त कदम के रूप में तर्कसंगत नहीं ठहराई जा सकती। यह हर मामले में वस्तुओं को बिल्कुल नए प्रकार से देखने की दिशा में एक उछाल है।

मानवीय स्थिति जैसी कि कीर्कगार्द ने देखी है, अपनी स्वकीय प्रकृति के कारण है, क्योंकि एक अस्थायी अस्तित्व भी चिरंतनता (इटर्नल) से संबद्ध है। उसका कहना है कि सार-समूह का अनुचिन्तन मात्र अस्तित्वपरक इस विरोधाभास (Paradox) की ओर ले जाने में असमर्थ है (न ही शरीरधारी ईश्वर की अवतार भावना के इस विशिष्टतः ईसाई विरोधाभास की ओर ले जा सकता है।) हीगल द्वारा ईसाइयत को तर्कसंगत बनाने के प्रयत्न की विरोधास्पदता पर विशेषतः आक्रमण करते हुए वह कहता है कि अब हमारा मार्गदर्शन कल्पनात्मक (Speculative) दर्शन शास्त्र नहीं, बल्कि हमारी नैराश्य-जनित गहन भावनायें ही कर सकती हैं जो कि तात्त्विक दृष्टि से प्रकाशजनक हैं। असांस्कृतिक फिलिस्तीनी व्यक्ति निराशा से यों भागने का प्रयत्न करता है कि वह ऐसा प्रदर्शित करता है मानो वह पूर्णतः अस्थायी तथा संकुचित एवं व्यावहारिक उद्देश्यों में ही निरत रहेगा। इस प्रकार उनके लिए प्रयत्न करते हुए वह मानव सुलभ हर वस्तु के प्राप्त करने की आशा रखता है। किन्तु [illegible] बहाने को बनाए रखने के लिए उसे स्वयं को ऐसे फैशन में रहने के लिए मजबूर करना पड़ता है। फिर भी महान कठिन क्षणों में उसे निराशा का सामना करना ही पड़ता है। वह व्यक्ति जो ईसाई बनने का प्रयत्न करता है अपनी निराशा का सामना करके इसके परिणामों को देखकर ही 'स्वयं को जान पाता है' कीर्कगार्द यहां सुकरात के ध्येय को चालू रखते हुए यह बतलाते हैं।

तो कीर्कगार्द के चिन्तन का सार है ईसाईयत। इसके विपरीत, नीत्शे[1] इस

---

[1] अध्याय 5 भी देखें।

और अधार्मिक है जिससे नीतिपरकता एव धार्मिक एषणा कमजोर[1] हो जाती हो। उसने यह तक भी दिया है कि विषयी अपनी स्वकीय प्रकृति के कारण एक ऐतिहासिक प्राणी है और यहा रहता है, और अब अपने भविष्य व अपनी मुक्ति के बारे में भावनापूर्ण रूप से सलग्न (involved) है। इसके विपरीत, हीगल के तमाम बहानों के बावजूद अमूर्त विषय-परक जाच से इस ऐतिहासिक परिवर्तन में सन्निहित गतिमयता और वैयक्तिकता के बारे में कुछ भी पता नहीं चलेगा।'

जब दार्शनिक हमें विषयपरक बनने और हमारे मात्र वैयक्तिक दृष्टिकोण को छोड़ने के लिए आग्रह करते हैं तो कीर्कगार्द के विचारानुसार उनका तात्पर्य यही है कि हमें अस्तित्वों को अस्वीकार कर देना चाहिए तथा अपना सपूर्ण ध्यान सार-समूहों पर केन्द्रित करना चाहिए। कीर्कगार्द ने सुझाव दिया है कि यदि हमें सत्य तक पहुचना है तो हम बिलकुल विपरीत दिशा में चलना चाहिए। उसका कहना है कि सौंदर्यबोध के साथ जीवित रहना ही पर्याप्त नहीं है। सभावनाओं की वास्तविकता के बारे में स्वय को अप्रतिबद्ध रखते हुए उनसे खेलना या बौद्धिक रूप से अर्थात् प्लेटोनिक तरीके से सार समूह के अनुचिन्तन में निमग्न रहना भी पर्याप्त नहीं है।[2] ऐसा करने से वस्तुत वे सत्य जो हमसे सदा सबद्ध हैं (निश्चय ही यहा कीर्कगार्द का ध्यान ईसाई सत्य की ओर ही है) कभी हमारे हाथ नहीं आएगे क्योंकि सत्य तो अस्तित्व से बधा है, न कि सार समूह से। सत्य वस्तुत विषयिगत या आत्मपरक (सब्जेक्टिव) है कीर्कगार्द के अनुसार सत्य केवल वही है जिसे हमने प्रयत्न करके जाना है प्रतिबद्धता के द्वारा सामना करते हुए, इसे अपनी प्रकृति का अग बनाते हुए तथा अपने प्रयत्नों द्वारा ग्रहण किया है। उसका विचार है कि समाज हमें वस्तुपरक बनाने को मजबूर करता है' यह हमसे अपेक्षा रखता है कि हम अपनी वैयक्तिकता को एक नियतता (Type) में और अपने ज्ञान को अमूर्त साधारणीकरणों में निमग्न हो जाने दें। अत हमारे लिए विषयिपरक या आत्मपरक होना आसान नहीं है किन्तु किसी अन्य रूप में हम अमूर्तताओं से अस्तित्व की ओर नहीं जा सकते। यह मजबूरी है।

हम किससे प्रतिबद्ध है यह कीर्कगार्द के लिए अधिक महत्वपूर्ण नहीं है, महत्वपूर्ण यह है कि हम किस प्रकार प्रतिबद्ध हैं। ऊर्जा, लगन तथा चुनाव करने में सहायक

---

[1] दर्शनशास्त्र को मानवीकरणमुक्त (डी–एंथ्रोपोमोर्फाइज) किए जाने के सबध में इस विचार [illegible] विपरीत विचारधारा के लिए देखें एलेक्जेण्डर की रचनाएं। इसके अलावा ब्रितानी व्यक्तित्वमूलक प्रत्ययवाद से अस्तित्ववाद की समानता नोट करें। (विशेषत सेथ पर लिखा अध्याय देखें)

[2] विभेद के लिए देखें सैंटयाना लाइफ आव द स्पिरिट।

भावना, जिससे प्रेरित होकर हम प्रतिबद्ध होते हैं। अगर हमारा चुनाव गलत होता तो, उसके विचार में, इससे अपनी त्रुटियाँ हमें ज्ञात हो जायेंगी, जबकि उदासीन, अप्रतिबद्ध वस्तुपरक व्यक्ति पर्याप्त उत्साह के साथ कभी भी प्रतिबद्ध नहीं होते, इसीलिये वे नहीं जान सकेंगे कि उन्होंने गलती कहाँ की है। उसने आगे कहा है कि हम उछालों और निर्णय के द्वारा, (न कि प्रथम प्रमेय से तर्कशील निगमन के माध्यम से) स्वयं का अन्वेषण कर सकते हैं और मानवीय स्थिति को समझ सकते हैं। हेगेलवादियों के विरुद्ध कीर्कगार्द तर्क प्रस्तुत करता है कि प्रथम प्रमेय इसीलिए प्रथम है कि हम इसे ऐसा बना देते हैं क्योंकि हम (चुनाव के स्वैच्छिक कर्म से) यह निश्चित करते हैं कि कहाँ से हम प्रारंभ करेंगे। इसी प्रकार सत्य के मार्ग की ओर प्रत्येक बड़ा कदम एक स्वतंत्र निर्णय है। कीर्कगार्द का कहना है कि सौंदर्य शास्त्रीय से वैज्ञानिक, और फिर वैज्ञानिक से नैतिक तथा नैतिक से धार्मिक दृष्टिकोण के अनुसार हमारी प्रगति प्रमेय से निष्कर्ष तक किसी व्यवस्थित और आकारी रूप से उपयुक्त कदम के रूप में तर्कसंगत नहीं ठहराई जा सकती। यह हर मामले में वस्तुओं को बिल्कुल नए प्रकार से देखने की दिशा में एक उछाल है।

मानवीय स्थिति जैसी कि कीर्कगार्द ने देखी है, अपनी स्वकीय प्रकृति के कारण है, क्योंकि एक अस्थायी अस्तित्व भी चिरंतनता (इटर्नल) से संबद्ध है। उसका कहना है कि सार-समूह का अनुचिन्तन मात्र अस्तित्वपरक इस विरोधाभास (Paradox) की ओर ले जाने में असमर्थ है (न ही शरीरधारी ईश्वर की अवतार भावना के इस विशिष्ट ईसाई विरोधाभास की ओर ले जा सकता है।) हीगल द्वारा ईसाइयत को तर्कसंगत बनाने के प्रयत्न की विरोधाभासदता पर विशेषतः आक्रमण करते हुए वह कहता है कि अब हमारा मार्गदर्शन कल्पनात्मक (Speculative) दर्शन शास्त्र नहीं, बल्कि हमारी नैराश्य-जनित गहन भावनायें ही कर सकती हैं जो कि तात्विक दृष्टि से प्रकाशजनक हैं। असांस्कृतिक फिलिस्तीनी व्यक्ति निराशा से यों भागने का प्रयत्न करता है कि वह ऐसा प्रदर्शित करता है मानों वह पूर्णतः अस्थायी तथा संकुचित एवं व्यावहारिक उद्देश्यों में ही निरत रहेगा। इस प्रकार उनके लिए प्रयत्न करते हुए वह मानव भुलन हर वस्तु के प्राप्त करने की आशा रखता है। किन्तु इस बहाने को बनाए रखने के लिए उसे स्वयं को एक फान में रहने के लिए मजबूर करना पड़ता है। फिर भी महान कठिन क्षणों में उस निराशा का सामना करना ही पड़ता है। वह व्यक्ति जो ईसाई बनने का प्रयत्न करता है अपनी निराशा का सामना करके इसके परिणामों को देखकर ही 'स्वयं को जान पाता है,' कीर्कगार्द यहाँ सुकरात के ध्येय को चालू रखते हुए यह बतलाता है।

तो कीर्कगार्द के चिन्तन का सार है ईसाईयत। इसके विपरीत, नीत्शे[1] द्वारा

---

[1] अध्याय 5 भी देखें।

अनुमान से प्रारंभ करता है कि ईश्वर मर चुका है। उसने यह तर्क प्रस्तुत किया है कि मानव मानवीय स्थिति का पुनः परीक्षण इस तथ्य को ध्यान में रखकर करना सीखे कि ईश्वर की सत्ता में विश्वास रखना संभव नहीं रहा है। यदि कीर्कगार्द की समस्या यह है कि मैं ईसाई कैसे बनूँ? तो नीत्शे की समस्या है कि नास्तिक के रूप में मैं कैसे जिऊँ?

तथापि नीत्शे और कीर्कगार्द के मध्य समानता के कई महत्वपूर्ण बिन्दु हैं जिससे यह मात्र एक आकस्मिक घटना नहीं रही है कि उनका प्रभाव अस्तित्ववाद में घुलमिल गया है। दोनों ही दार्शनिक मानवीय स्थिति के साथ भिन्नमार्गी होते हुए भी भावनात्मक रूप से लगाव रखते हैं। वे दोनों संपूर्ण के अमूर्त के, वस्तुगतता के तथा प्रणालीबद्धता के दर्शन को भ्रम कहकर खण्डित कर देते हैं, दोनों के लिए जीवन तर्कशास्त्र से बड़ा है। नीत्शे ने लिखा है यह बात दरअसल महत्वपूर्ण है और इससे ही सारा फर्क पड़ता है कि क्या एक विचारक अपनी उन समस्याओं के साथ वैयक्तिक संबंध रखता है जिनसे वह अपना भविष्य अपनी आवश्यकता और अपनी उच्चतम प्रसन्नता देखना चाहता है, अथवा वह उन्हें केवल अवैयक्तिक रूप से सूक्ष्म निरीक्षण दृष्टि के पंजों की पकड़ में लेकर अनुभव करना चाहता रहता है। यह कहने वाला कीर्कगार्द भी हो सकता था या अन्य कोई भी अस्तित्ववादी ऐसा कह सकता है। पुनः कीर्कगार्द और नीत्शे, दोनों 'सार समूह' को एक ऐसी युक्ति समझते हैं जिसे कि मनुष्य विश्व को पालतू बनाने तथा इसे किंचित निरपेक्ष व स्थिर बना देने के काम में लेते हैं। वास्तविक जगत, उनके कथनानुसार, ऐतिहासिक तथा अस्तित्वपरक है जैसा कि एक साहसी मानव, अभिकर्त्ता के रूप में उसे देखता है किन्तु वह अमूर्त विचार द्वारा ग्राह्य नहीं है परे स्थित है क्योंकि विचार का काम स्वाभाविक तौर पर नियत नमूनों (टाइप्स) से ही पड़ता रहता है। और कीर्कगार्द की तरह नीत्शे भी असांस्कृतिक फिलिस्तीनी व मध्यकोटि के उस व्यक्ति पर कटुतापूर्वक आक्रमण करता है जिसका उच्चतम आदर्श स्वयं का अधनिमग्न करना कर्त्तव्य का पुनः करना तथा एक मानव की अपेक्षा मानव बनना है।

जर्मनी के दो अग्रणी अस्तित्ववादी हैं, येस्पर्स एवं हेडेगर जो स्वभाव तथा पद्धति में बिलकुल विभिन्न, ध्रुवीय दूरी पर स्थित हैं। येस्पर्स किसी भी रूप में विधिसम्मत तत्वशास्त्री नहीं हैं चाहे उसने तत्वशास्त्रीय विषयों पर बड़ी पुस्तकें लिखी हों। उसका रुचि-केन्द्र अच्छा जीवन है। उसका तत्वशास्त्र आनुषंगिक है जो प्राथमिक रूप से चिकित्सात्मक काम करता है। वह वस्तुपरकता को दार्शनिक रुग्णता (malaise) से ग्रस्त होने से हमें ठीक करने का दावा करता है। दूसरी ओर है हेडेगर वृहत् ट्यूटोनिक स्तर का तत्वशास्त्री है। वह स्वयं के लिए ज्ञानमीमांसा के दलदल में से दर्शनशास्त्र को शास्त्रीय तात्विकी (Ontology) के विस्तृत खुले

मैदानों में [जहा सत्ताशील (वीग) व असत्ताशील (नाट वीग) पर विवेचन होता है] ले भान का दय मरता है। वह वस्तुत इन्कार करता है कि उसे उचित तौर पर अस्तित्वादी ही कहा जाए, क्योंकि वह, अपने कथनानुसार, सार समूह का एक अमूत सिद्धात बना रहा है, किन्तु एक ओर तो वह कीर्केगाद के, और दूसरी ओर सात्र के, इतना निकट है कि उसके विरोध निरथक से रह गए है।

यास्पस[1] ने अपना जीवन सन् 1913 मे जनरल साइकोपथोलोजी प्रकाशित करके मनो-रोगवैज्ञानिक (Psycho Pathologist) के रूप म शुरू किया था। किन्तु उसने शीघ्र ही निणय किया कि तद्गत रुचि एव महत्ता के होते हुए भी मनोरोगविज्ञान आत्म (Self) का पूर्ण विवेचन नही कर सकता। आत्म, जो कि निणय लेता है, अर्थात् अधिकृत आत्म (तुलनीय काट की पारवर्ती आत्मा) उस अनधिकृत (या अनुभववादी) आत्म स किंचित ऊपर है जो हमारी शारीरिक बनावट, हमारी आनुवंशिक मूलपरम्पराओ तथा हमारे सामाजिक ढाचों से बना है, जिनका अध्ययन मनोवैज्ञानिक करता है, और कुछ अशो म उनकी व्याख्या भी करता है। आधुनिक समाज म व्याप्त खतरा, जैसा कि यास्पस ने कहा है, यह है कि हमे पूर्ण रूप स स्वय को अपने अनधिकृत आत्म म पहचानना पड़ता है। पीडा अपराध व मृत्यु जसी अंतिम स्थितियो का महत्व यही है कि वे हमे इस अनधिकृत आत्म के खोखलेपन को पहचानने के लिए बाध्य करती है। इन कठिन परिस्थितियो म हम यह समझने लगते हैं कि सासारिक अस्तित्व पर कोई भरोसा नहीं किया जा सकता।

अनाधिकृत आत्म का अस्तित्व कुछ एसा है जिसका यास्पस ने विद्यमान होना' बतलाया है। इसको वस्तुपरक वैज्ञानिक जाच के द्वारा ढूढा तथा वर्णित किया जाना चाहिए। यास्पस विज्ञानविरोधी नहीं है, न ही वह सोचता है कि ससार की काय-पद्धति को जानने के लिए विज्ञानातिरिक्त कोई और अच्छा उपाय है। किन्तु पूर्ण वस्तुपरकता का आदश उसकी विचारणा मे मोटे तौर पर सकुचित सीमाओ मे प्रतिबद्ध है। मनुष्य के विज्ञान (जिसका उल्लखनीय उदाहरण इतिहास है) रुचि से

---

[1] केवल उनकी लघु पुस्तकें ही अग्रेजी मे अनूदित हुई हैं। देखें द पेरेनियल स्कोप आव फिलोसोफी (1949) [जो देर फिलोसोफिश ग्लौबे (1948) का अनुवाद है] एव वे टू विज़डम (1951) [जो इनफुहरूग इन डाइफिलोसोफी (1950) का अनुवाद है।] अस्तित्ववाद के लिये सामान्य पुस्तकें पढ़ें– ई० ऐलन द सेल्फ एण्ड इट्स हेज़र्ड्स ए गाइड टू द थोट आव काल यास्पस (1951), जे० टी० टाबरक स एक्ज़िस्टेंस द एथिक्स काल यास्पस (1945), जे० एन० हार्ट गाड ट्रासेंडेंस एण्ड फ्रीडम इन द फिलासोफी आव कार्ल यास्पर्स आर० एम० (1950) भी देखें।

शून्य, तथा धूलि सम शुष्क हैं [यह तक उसने दिया है,] यदि उनका अध्ययन तत्व शास्त्रीय अन्तर्दृष्टि से नही किया जाए और मूल्यो की किसी विधि द्वारा उन तक पहुँचा न जाए। अन्तर्दृष्टि एव मूल्य दोनों ही विज्ञान के क्षेत्र से बाहर स्थित हैं। अन्त मे वह कहता है कि दर्शनशास्त्र विज्ञान से शुरू होता है किन्तु उस बिन्दु पर ठहर नही सकता।

अनधिकृत आत्म की तुलना मे अधिकृत आत्म ऐसा नही है जिसे कि विज्ञान ढूढे। यह तो एक प्रकार का अस्तित्व है जिसे यास्पस ने 'अपने आप मे विद्यमान होना' कहा है। बस। क्योंकि यह स्वय मे मात्र एक सम्भावना है, चुनाव की मात्र क्षमता है। यह उसके सुझाव के अनुसार अनधिकृत आत्म पर अधिकार करके तथा इसके माध्यम से काम करके ही सक्रिय हो सकता है। तथापि अधिकृत आत्म के लिए ससार का कोई अर्थ है जिसे अनधिकृत आत्म अपने साधनो से कभी भी ढूढ नही सकता। अनधिकृत आत्म को सम्मिलित करते हुए, विश्व अधिकृत आत्म के लिए एक विधान (Code) है, चिन्हों की एक व्याख्येय पद्धति है। यह उस पारवर्ती स्थिति की ओर (उसकी ओर जो अपने आप मे विद्यमान है) उछाल लगाने की शुरूआत है। यास्पस के अनुसार आत्मा की यह व्याख्यात्मक गतिविधि कोई दर्शनशास्त्र नही है। दर्शनशास्त्र का सम्बन्ध उन सब तत्वों से है जो ज्ञेय हैं जिनमे सब समा जाता है। अच्छा विज्ञान तथा अच्छा तत्वशास्त्र अच्छा दर्शनशास्त्र हो सकता है। यदि यास्पस वस्तुस्थितिवादी के इस कथन के विरोध मे तर्क देता है कि दर्शनशास्त्र को विज्ञान नही बनाया जा सकता तो प्रत्ययवादी के इस कथन के विरुद्ध भी वह पूर्ण विश्वास रखता है कि विज्ञान इससे विभेद का उपयुक्त बिन्दु है।

फिर भी वैज्ञानिक अपनी कार्यगत सामग्री से विवश है जबकि (यास्पस के द्वारा वर्णित उसके काम के अनुसार) तत्वशास्त्री इस प्रकार विवश नही है। विश्व के बारे मे अधिकृत आत्म द्वारा व्याख्या करने का निर्णय एक स्वतन्त्र निर्णय हैं। पारवर्ती वस्तुपरक विज्ञान जैसी कोई चीज नही हैं। यास्पस ने अन्त मे कहा है कि तत्वशास्त्र अपना औचित्य नही बता सकता क्योकि इसका प्रदर्शन नही हो सकता हमे इसके बारे मे कुछ पता नही हैं, तत्वशास्त्री तो इतना ही कर सकता है कि मनुष्य की उन शक्तियो से अपील करे जो उसे दार्शनिक विचार की ओर प्रेरित करें। अब तक तत्वशास्त्रीय सत्य आत्मपरक हैं विषयिगत हैं।

तथापि तत्वशास्त्र मात्र स्वेच्छात्मक (आरबिट्ररी) नही हैं ऐसा यास्पस हमे समझाने का प्रयत्न करता हैं। उसका कहना हैं कि तत्वशास्त्री उन चिन्तको के समाज के अन्तर्गत काम करता है जिन्होंने परस्पर मिलकर दार्शनिक परम्पराए बनाई हैं अर्थात् शाश्वत दर्शनशास्त्र की स्थापना की हैं। तत्वशास्त्रियो को इस परम्परा के

सम्मुख नत होना चाहिए। इसके साथ ही वे दार्शनिक भी, जो यास्पर्स के नैतिक दृष्टिकोण के प्रति सहानुभूतिपूर्ण प्रवृत्ति रखते हैं उसके तत्वशास्त्र को उद्भ्रांतिजनक रूप से तरल अनिश्चित तथा एकांगी कहकर तिरस्कृत करते हैं। शाश्वत दर्शनशास्त्र में, जैसा कि इसे वह देखता है, स्पष्टतः तथा विधिसम्मत ढांचे का (जो सामान्यतया दर्शनशास्त्र का सामान्य लक्षण माना जाता है) अभाव है। कुल मिलकर यास्पर्स की प्रशंसा तत्वशास्त्री की अपेक्षा आधुनिक सभ्यता के आलोचक के रूप में ही की जाती है।

इसके विपरीत हैडेगर निश्चयतः अपने विचित्र तरीके से एक रीतिसंगत तत्वशास्त्री हैं, चाहे उसकी वृहद् रीतिसंगत रचना 'बींग एण्ड टाइम'[1] (1927) कभी पूर्ण न हो पाई हो। मूलतः वह रोमन कैथोलिक है और उसकी प्रारम्भिक दार्शनिक शिक्षा स्कूलवादी नैपुण्य पर आधारित थी जिससे कि इस बात का पता चलता है कि वह सारे अस्तित्व 'भाव' और 'अभाव' के बारे में इतने स्वाभाविक रूप से बात कैसे करता रहता है। बाद में उसने विंडलबैंड तथा रिकर्ट के अधीन अध्ययन किया जिससे कि सम्भवतः उसने वास्तविकता की ऐतिहासिक प्रकृति पर बल प्राप्त किया और अन्त में उसने हुस्सल के साथ काम किया, जो इस समय तक पारवर्ती संघटनवादी बन चुका था, और हैडेगर पर जिसका प्रभाव अत्यधिक रहा है[2]।

इंगलैंड में हैडेगर को बहुधा इस बात का भयानक उदाहरण माना जाता है कि तत्वशास्त्र कितना अर्थहीन हो सकता है। कार्नेप ने हैडेगर के 'ह्वाट इज मेटाफिजिक्स' से जिस एक स्थल को तत्वशास्त्र के बेहूदा स्वरूप को चित्रित करने के लिए उद्धृत किया है उसे क्लासिकल उदाहरण का दर्जा मिल चुका है। वस्तुतः

---

[1] डब्लू ब्रोक एग्जिस्टेंस एण्ड बींग (1949) में पदान्वय देखें। इसमें हैडेगर के बहुत से निबन्ध हैं, जैसे "ह्वाट इज मेटाफिजिक्स?" (1929) तथा 1943 का इसका परिशिष्ट। देखें, एम० विश्चोप्रोड कीर्केगार्द एण्ड हैडेगर (1954), ए० डे० वाउल्हेन्स ला फिलोसोफी डी मार्टिन हडेगर (1942), एम० ग्लिकमैन "ए नोट आन द फिलोसोफी आफ हैडेगर" (जे० पी० 1938) के० लोविथ हैडेगर प्रोब्लेम एण्ड बैकग्राउण्ड आव एक्जिस्टेंशियलिज्म' (सोशल रिसर्च 1948), पी० मेरलन 'टाइम–कोन्शसनैस इन हुसर्ल एंड हैडेगर" (पी० पी० आर० 1947), डब्लू एच वर्कमीस्टर 'एन इण्ट्रोडक्शन टू हैडेगर्स एग्जिस्टेंशल फिलोसोफी" (पी० पी० आर० 1941), एम० ग्रीन मार्टिन हैडेगर (1957)।

[2] अमरीकी विख्यात संघटनवादी एम० फार्बर द्वारा की गई पी० पी० आर० 1945 में हैडेगर की कटु आलोचना देखें।

'निषेधबोध (निहिलेशन) न तो जो विद्यमान है उस का निमूलन है, और न ही यह निषेध से उदभूत होता है। कोई वस्तु स्वय का निमूलन नहीं करती।' जैसे वाक्य व्यक्ति पर यही प्रभाव छोड़ते हैं कि वास्तव मे कही बड़ी गलती हो गई है।

आयर ने "लैंग्वेज ट्रूथ एण्ड लोजिक" नामक अपनी पुस्तक म हमे आश्वासन दिया है कि हैडेगर पथभ्रष्ट हो गया है क्योंकि उसने यह गलत धारणा बनाली है कि प्रत्येक शब्द का एक नाम होता है, चू कि अकिंचित 'कुछ नहीं' (nothing) शब्द की कोई इयत्ता भी होनी चाहिए जिसका कि यह नाम है। किन्तु आयर द्वारा हैडेगर की तात्त्विकी की कर्णप्रिय और सीधी सादी व्याख्या को पर्याप्त मानना कठिन है, क्योंकि हैडेगर स्पष्टत कहता है कि 'अकिंचित' 'कुछ नही' न तो वस्तु है और न ही ऐसी कोई चीज जो विद्यमान हो। 'अकिंचित न तो स्वय ही उद्भूत होता है और न ही अस्ति से पृथक कोई ऐसी चीज है जो कि उससे अनुबधित हो।' अत कुल मिलाकर हैडेगर 'अकिंचित को ही मूर्त रूप नही दे रहा है। हम उसकी तात्त्विकी का मूल अन्यत्र खोजना होगा।

वस्तुत जो वह करने की कोशिश कर रहा है वह है कीर्केगार्द कृत मानवीय स्थिति के विश्लेषण को तत्वशास्त्र (ontology) म परिवर्तित करना जिससे कि यह तात्त्विकी पद्धति का स्वरूप धारण करले। इस प्रकार वह हुसर्ल मनोविज्ञान विरोधी कार्यक्रम का अनुसरण कर रहा है, यद्यपि हम अनुभव करते हैं कि हैडेगर की तात्त्विकी तभी सार्थक है जब हम इसका अनुवाद पुन मनोवैज्ञानिक शब्दावली म करे।[1]

वह भाव के तीन भेदों म स्पष्ट अन्तर बताता है। दासें अर्थात् मानव प्राणी सम्बन्धी वारेंदेन (विद्यमानता) अर्थात् सामान्य वस्तुओं की ओर जुहादें (उपयोज

---

[1] सम्भ आर० वडयेव नामक रूस के अस्तित्ववादी धर्मवेत्ता की टिप्पणी। हैडेगर ने बडे व्यग्यात्मक ढग स कीर्केगार्द के कथ्य को युक्ति-युक्त बनाने का प्रयास किया है और उसने उसे एक अनुवाद एव शास्त्रीय प्रणाली का रूप द दिया है। उन्होंने विशुद्ध रूप के अस्तित्ववादी अनुभव को सीधी सादी युक्तियुक्त पदावली मे बदल दिया है जो उसकी मूल आत्मा के लिए बिल्कुल अनुपयुक्त है। ऐसा करके उसने एक असत्य एव सकुचित भाषा का आविष्कार किया है—जबकि यही इस सिद्धान्त का ऐसा गुण है जिस पर ही उसकी सारी मौलिकता टिकी है। यहा यह बात महत्वपूर्ण है कि हैडेगर ने फिलोसोफी आव बीं' कभी पूरी नही की। और जिस अश म उसने उसे पूर्ण किया है उसम मानवी स्थिति का ही विश्लेषण मात्र है। उसके बहुत से आलोचक यह आपत्ति करते है कि इस विश्लेषण से एक सामान्य तात्त्विकी के निर्मित होने का कोई जरिया नही है।

नायता) अर्थात् औजार की उपयोगिता। कोई भी व्यक्ति इस तत्वशास्त्रीय वर्गीकरण की विचित्रता को तुरन्त ही देख सकता है। हमारा स्वाभाविक एतराज यह है कि मानवीय आवश्यकता की दृष्टि से ही औजार का कुछ भी महत्व है जिससे कि जोहावे विद्यमानता का कोई विशिष्ट प्रकार नहीं है बल्कि यह कुछ वस्तुओं और हमारे बीच के मध्य का एक संबंध है। यह तो हैडेगर की संघटनात्मक पद्धति की विशेषता है कि वह इस प्रकार की आलोचना के प्रति पूर्ण उपेक्षा रखता है। उसका तर्क यह है कि वस्तुएं हमारे उद्देश्य के लिए लाभप्रद हैं या व्यर्थ इसी रूप में वे स्वयं को हमारे निकट प्रकट करती हैं अतः इसी से पता चलता है कि वे हैं क्या। यही उनका स्वरूप है।

उसने सुझाव दिया है कि मानव प्राणी का 'दासें' (जो कि उसकी विशिष्ट सत्वशास्त्रीय स्थिति है) इसमें निहित है कि वह यहां अथवा वहां विद्यमान नहीं है, किन्तु अपनी प्रकृति के कारण उसका स्वरूप है संसार के समग्र स्थानों में गति, अथवा एक गतिविधि। किसी को यह नहीं कहना चाहिए कि वह संसार में भ्रमण करता है, क्योंकि इससे यह संकेत मिलेगा कि वह प्रथम तो दिक् व काल में एक बिन्दु पर था और बाद में दूसरे पर। वास्तव में यह उसकी प्रकृति है कि वह सदा ही स्वयं से आगे रहे, तथा एक ऐसी चीज के रूप में रहे जो कि भविष्यत् है, भावी है। दासें (जैसी कि हैडेगर ने पदार्थ की व्याख्या की है) ‘संसार में पूर्वत विद्यमान स्वयं का अग्रवर्ती” और संसार में सम्प्राप्त वस्तुओं से संबद्ध सत्ता के समान’ है। आत्म तथा संसार जैसी दो वस्तुएँ कहीं नहीं हैं, वहां तो ‘संसार में आत्म’ ही है।

चूंकि यह मानव प्राणी का स्वभाव है कि वह स्वयं का अग्रवर्ती रहे अतः हैडेगर के विचार में, मृत्यु का अनुभव उसके लिए अत्यधिक महत्व का है। मृत्यु एक ऐसी स्थिति मात्र नहीं है जो कि व्यक्ति को किसी विशिष्ट समय पर पृथक् कर दे, यह तथ्य हमारी प्रकृति के निर्माण में सहायता करता है कि हम विलीन होंगे। मन की स्वयं के लिए चिंता, इसके द्वारा इस बात का अभिज्ञान कि आवश्यक रूप से उसका रूप भावी (भविष्य) है, इस सत्ता के विरुद्ध इसके सर्वाधिक घातक रूप में ला खड़ा करता है, मानो यह उसका विनाश हो।

हम अपनी मृत्यु को रीतिरिवाजों में आवृत करके छिपा सकते हैं। हैडेगर के तर्क के अनुसार यह व्यवस्था इस पद्धति की परिचायिका है जिसमें मानव प्राणी अपने दासें अर्थात् अपने अधिकृत भाव से परे हट सकता है। वह ‘एक आदमी नहीं बल्कि आदमी बन जाता है। वह वही करता है जो प्रत्येक करता है वह वर्तमान में रहने का प्रयत्न करता है वह अपनी मृत्यु के कठोर तथ्य को इस

सामान्य मृदु विचार में परिवर्तित कर देता है कि 'मानव मरणशील है।' कीर्केगार्द तथा यास्पर्स की तरह हैडेगर इस अस्तित्व से पलायन में हमारे युग की मूल बुराई को देखता है। शास्त्रीय तात्विकी समयानुप्राणित सत्ता की अपेक्षा स्थिरता पर बल डालते हुए विस्तृततर दुर्व्यवस्था का एक लक्षण मात्र है। अस्तित्व को फलितीकृत करने का एक प्रयत्न मात्र है।

जैसा कि मैंने कहा है बींग एण्ड टाइम अपूर्ण है। इसके प्रकाशन के बाद हैडेगर ने निबन्धों के अतिरिक्त कुछ भी प्रकाशित नहीं किया और उनमें सर्वोत्तम निबंध ह्वाट इज मेटाफिजिक्स (1929) है, जिसमें तर्कशास्त्र पर जोरदार आक्रमण उपलब्ध है। उसका कहना है कि यद्यपि तर्कशास्त्र को 'अकिंचित्' का नकार के रूप में उपयोग करना पड़ता है किन्तु वह इसे समझ नहीं सकता। वह 'अकिंचित' की बात को बेहूदा मानकर तथा इस आधार पर टाल देता है कि अकिंचित् तो विचार की विशिष्ट वस्तु हो ही नहीं सकता। किन्तु हैडेगर का कहना है कि यही बात 'जो है' के लिए भी लागू होगी जिसे कि एक समग्रता समझा जाता है। तथापि हैडेगर कहता है कि, जब कभी हम अपने सामने किसी वस्तु को देखते हैं तो हम उसे समग्रता का एक अंग समझने लगते हैं। विशेषतः हमें यह अनुभूति तब होती है जबकि हम ऊबे हुए हों। ऊब (वस्तुतः वह गहन ऊब जो अस्तित्व के महाशून्य में से प्रसन्नता की तरह इधर उधर भटकती रहती है) 'जो है' को प्रकट करती है। इसी प्रकार वह आगे कहता है कि आतंक हमें अकिंचित का ज्ञान कराता है। हैडेगर के अनुसार तत्वशास्त्री दृष्टि से आतंक प्रथम महत्व की प्रवृत्ति है। आतंक की स्थिति में (जिसे फ्रायड ने घबराहट या चिन्ता कहा है।) हम किसी विशिष्ट वस्तु से नहीं डरते और फिर भी हम पूर्णतया आतंकित हैं अकिंचित् से भयभीत। हैडेगर के तर्क के अनुसार इससे यह तथ्य उभर जाता है कि अकिंचित को नकार के रूप में न्यूनीकृत नहीं किया जा सकता क्योंकि अकिंचित् से भयभीत होने को 'भयभीत न होने' में नहीं बदला जा सकता। आतंक अकिंचित की आशंका नहीं है क्योंकि उसका कहना है कि अकिंचित कभी भी वस्तु नहीं हो सकता। फिर भी हैडेगर समझते हैं कि आतंक हम अकिंचित का 'जो है' के साथ घनिष्ठ रूप से सबद्ध स्वरूप प्रदर्शित करता है। आतंक में हम 'जो है' जो कुछ भी नहीं की अपरिमेय पृष्ठभूमि में, हैडेगर उन्मूलन के तट पर प्रकम्पित होते देखते हैं। और तब हैडेगर के कथनानुसार उस भौतिक अनुभूति में हमें अंतिम तत्वदर्शन की समस्या का सामना करना पड़ता है आखिर कोई भी चीज है ही क्यों? अकिंचित् ही क्यों नहीं?

यास्पर्स की दार्शनिक रचनाओं में ईश्वर का मुख्य रूप पारवर्ती सत्ता का रहा है। उसकी उत्तरकालीन कृतियों में ईश्वर का उल्लेख पूर्ण रूप से ईसाई धर्म

का अतिशय लिए है। दूसरी और हैडेगर को सामान्यतया नीत्शेवादी नास्तिक के
रूप स पढा जाता है, किन्तु वह इस व्याख्या को अमान्य ठहराता है। उसने अपने
लटर आन ह्यूमेनिज्म म¹ शिकायत की है कि "चूंकि हमने नीत्शे की इस उक्ति
की ओर लोगो का ध्यान आकर्षित किया कि ईश्वर मर चुका है, तो वे कहने
लग कि हम नास्तिकता का उपदेश देते हैं। क्योकि इस कल्पना से अधिक तक
सगत क्या बात होगी कि कोई भी व्यक्ति जो (वतमान युग मे) ईश्वर की मृत्यु
का अनुभव करता है पूर्णतया ईश्वरविहीन व्यक्ति माना जाय।" वास्तव मे वह
यह तक प्रस्तुत करता है कि वह ईश्वर की उस कल्पना को ओर मुखातिव है
और उसे ही मानता है जिसक अनुसार ईश्वर सर्वोच्च मूल्य के रूप मे देखा जाता
है। और उसकी सत्ता की समस्या का सामना करने से इ कार किया जाता है।
तथापि हैडेगर की अपनी तात्विकी ईश्वर की सत्ता के बार म किसी भी तरह
निश्चित नहीं है।

फ्रेंच अस्तित्ववाद मे धार्मिक प्रश्न अधिक स्पष्ट है। गब्रियल मार्सेल² एक
परिवर्तित कथोलिक है तो जीन पाल सात्र समझौता न करने वाला कट्टर नास्तिक है।
वस्तुत अस्तित्ववाद फ्रास मे भयकर धम-दशनात्मक विवादो का तूफानी केन्द्र
रहा है। मार्क्सवादियो ने बूर्जुआ वयक्तिकता की अभिव्यक्ति के रूप मे अस्तित्व
वाद की निंदा की है। यद्यपि मार्सेल यास्पस का बहुत बडा प्रशसक है, फिर भी
वह प्रत्ययवाद से स्वय को मुक्त करने के लिए किए गए सघष के परिणामस्वरूप

---

[1] एक फ्रासीसी अस्तित्ववादी के बहुत से प्रश्नो का उत्तर लिखते हुए हैडेगर
अपने आप को सात्र से अलग कर रहे हैं।

[2] अभी अभी मासल ने (जा अस्तित्ववाद की कथालिको द्वारा की गई आलो
चना से प्रभावित हो गए हैं, 1950) यह मानने से इन्कार किया है कि वे एक
अस्तित्ववादी हैं। कि तु वे सगव यह घोषणा करते हैं कि उ होंने फ्रास म अस्तित्ववाद
का प्रवतन किया। 1947 म वास्तव म ई॰ गिल्सन एव उनके कुछ साथियो ने
एक ग्रन्थ एग्जिस्टेंशयलिज्मे खेहतन गेबरील मारसल नाम से निकाला। सात्र
की रचनाए इण्डेक्स मे हैं। मासल के लिए देखें, एम॰ डी कोट ला फिलोसोफी
डी गेबरील मारसल। मासल एक नाटककार भी है तथा नाटक एव दशन के सबधों
के विषय मे वे अपनी एक विशेष धारणा रखते हैं। इनके लिए देखें, जी॰ फेसड द्वारा
मासल की ला सोइफ (1978) नामक पुस्तक पर लिखा गया आमुख। पी॰ रिकूअर
कृत गेबरील मासल एन काल यास्पर्स फिलोसोफी दू मिस्तोरी एन फिलोसोफी
दी पराडोक्स (1947) में मासल एव यास्पस की तुलना देखें। डब्लू॰ ई॰ होकिंग
मासल एण्ड द ग्राउण्ड इस्यूज आव मेटाफिजिक्स (पी॰ पी॰ आर॰ 1954)।

अस्तित्ववाद तक स्वतन्त्रतापूर्वक पहुच सका है।[1] इस सघष का चित्रण डायरी रूप मे उसके मेटाफिजिकल जनल (1947) म हुआ है जो कि इसकी समग्र अनन्तिमता, वयक्तिक स्वरूप एव अस्पष्टता के होते हुए भी (अथवा सभवत यह कहना चाहिए कि इन विशिष्टताओ के कारण ही) मार्सेल के इस दाशनिक आदश का सर्वोत्तम प्रतिनिधित्व करता है कि तत्वमीमासीय स्तर तक अन्त प्रविष्ट होने के लिए सघष निरन्तर चलता रहना है पर कभी सफल नही होता इस सघष का चित्रण अस्पष्ट होता है पर जानबूझ कर नही बल्कि इसलिए कि तत्वमीमासीय स्तर स्पष्टता से परे विद्यमान रहता है। वह कहता है कि वह अपने[2] गिफ्फोड लेक्चस से बस इसलिए सतुष्ट नही है कि वे आवश्यकता से अधिक स्पष्ट हैं और बहुत ज्यादा रीतिसगत हैं, यद्यपि बहुत ही कम ब्रिटिश पाठक इनके बारे मे यह शिकायत करना चाहेगे।

मार्सेल के मेटाफिजिकल जनल म अस्पष्टतया सुझाए गए सिद्धान्त उसके एक्जिस्टेंस एण्ड आब्जेक्टिविटी'[3] म कुछ सीमा तक स्पष्ट कर दिए गए हैं। यह निबन्ध कीर्केगाद की पद्धति की तरह प्रत्ययवाद पर आक्रमण के साथ शुरू होता है जिसे (अफलातूनवाद के अनुसार) यथाथ का बुद्धिगम्य के साथ (अर्थात सार समूह या मूल्यो के साथ) तादात्म्य के रूप म समझा जा सकता है। मार्सेल के तर्कानुसार आदशवाद वस्तुओ को शुद्ध पदार्थों म बदल लेता है। इसे वस्तुओ की उपस्थिति दिखाई नही देती यह इस तथ्य को बताता है कि वे केवल 'सार' के शरीर-धारी के रूप मे ही हमारे सम्मुख विद्यमान नही है बल्कि वे हमारे ऊपर अपनी सत्ता के द्वारा हमे निकटतया प्रभावित करती हैं।

अन्त मे वस्तुत प्रत्ययवादी अस्तित्व की वास्तविकता में भी सदेह करता है। यह कहकर अस्तित्व की निन्दा की जाती है कि यह स्व-विरोधी है, तथा

---

[1] खास तौर पर एग्लो-सक्सन प्रत्ययवाद से। आर एम एम (1915-19) मे उन्होने रोयस पर एक लम्बा निबध लिखा जो 1945 म एक अलग ग्रथ के रूप प्रकाशित हुआ। उन्होने ब्रेडले का भी गहन अध्ययन किया था जिनका प्रभाव उन पर अन्त तक रहा।

[2] 1950 मे द मिस्टरी आव बीग एज ए रिफ्लेक्शन एण्ड मिस्ट्री तथा फेथ एण्ड रीएलिटी जसे सामान्य शीर्षकों मे प्रकाशित हुआ।

[3] आर० एम० एम० (1925) मे प्रकाशित। अग्रेजी के अनुवाद के रूप में (परिशिष्ट सहित) इसका पुन प्रकाशन हुआ जो मेटाफिजिकल जनल (1952) मे छपा था। कदाचित् अस्तित्ववादी धारणा की फ्रास की धरती पर यह सवप्रथम आवृत्ति थी।

जहा तक इसकी वास्तविकता का सबध है, यह सार समूहो मे अथवा तक मात्रसार याने परमात्म म सवथा निमग्न रहता है। किन्तु मार्सेल कहता है कि, वास्तव मे किसी को इस बात पर सदेह नहीं हो सकता है कि किसी चीज का अस्तित्व है या नही। हम यह सदेह अवश्य कर सकते हैं कि जोंस ईमानदार है या नही क्योकि उसकी ईमानदारी उसके अस्तित्व से पृथक्करणीय है, किन्तु अस्तित्वयुक्त पदार्थों तथा उनके अस्तित्व क मध्य ऐसा पार्थक्य नही हो सकता। इस प्रकार प्रत्ययवादी मात्र एक धर्मादेश को लेकर चलता ह, वह अस्तित्व का मानने से सवथा इन्कार करता ह। अपने ही तरीके स वह प्रत्येक कथन को कल्पित आकार म रख देता ह मानो कि निश्चयात्मक एव दृढ अस्तित्ववादी कथनो द्वारा मात्र सामान्य सभावनाओ के मध्य रहे सबधो को आरोपित करने के अतिरिक्त अन्य कुछ नही किया गया ह।

मार्सेल ने यास्पर्स के साथ सहमति प्रकट करते हुए कहा ह कि ससार के बारे मे इस तरह की बातचीत का भी एक मूल्य होता ह। किन्तु मनोवैज्ञानिक की साधारण मान्यताओ एव परस्पर मानवी सम्बन्धो तथा त्रासदी से कांपने वाल मानवीय जीवन के मध्य बहुत बड़ा अन्तराल है, इस अन्तराल का अस्तित्व हमारे सम्मुख साधारणीकृत विचारणा की अपर्याप्तता को स्पष्ट कर देता ह जो एक वास्तविक अपर्याप्तता है।

कल्पना कीजिए कि दार्शनिक इस बारे मे (जसे कि प्रत्ययवाद के विरुद्ध) यह धारणा कर लेता ह कि अस्तित्व सभी स देहो से परे ह। इसस उसका तात्पय क्या ह ? मार्सेल का कहना ह कि इसका निश्चय ही यह अर्थ नही ह कि कुछ ऐसे अनुभववादी कथन भी होते हैं जो सन्देहास्पद नही हैं और यह अर्थ भी नही ह कि यह तो एक सामान्य अस्तित्व ही ह जिसके बारे म हम सन्देह नही कर सकते, क्योकि सामान्य अस्तित्व तो एक खोखली एव पुराणपथी कल्पना ह। मार्सेल ने आगे तक प्रस्तुत किया है कि, कि असन्देहस्पद तो विश्व का अस्तित्व है जा इयत्ता क रूप मे नही बल्कि उस विशिष्टता को नकारता ह जो, सक्षेप मे ब्रैडले के अनुभव या मार्सेल के कथनानुसार निरपेक्ष उपस्थिति कही जा सकती ह।

मार्सेल कहता है कि मानव इस विश्व मे अपनी भूमिका (काय) तुरत ही प्रारभ कर देता ह। इस काय की चेतना उसे अप्रत्यक्ष रूप से (सदेशो या सवेदनाओ के माध्यम से) नही होती, बल्कि प्रत्यक्षत अपने शरीर के साथ तादात्म्य के अनुभव स होती ह। यहा तक तो मार्सेल स्वय को अनुभववादी कहना चाहेगा। पर साधारण दृष्टिकोण से शरीर एक ऐसा साधन ह जो वस्तुओ के सन्देशों को ग्रहण करता ह और उन्हे मस्तिष्क तक प्रेषित कर देता है। इसका तात्पय यह

हुआ कि मैं अपने शरीर से उसी प्रकार सबद्ध हूँ जसे कि किसी रेडियो सट मे होता। मार्सेल ने सुझाव दिया है कि शरीर के बारे मे इस प्रकार बात करते हुए मैं उस अन्य पुरुष (तृतीय व्यक्ति) का दृष्टिकोण अपना रहा हूँ जो इस प्रकार के झूठे व काल्पनिक अशरीरीकरण के द्वारा मेरे व्यक्तित्व को मेरे शरीर से भिन्न मानता है। तथापि इसके आगे की विचारणा जिसे मार्सेल द्वितीय विचारणा बताता है उसके तर्क के अनुसार शीघ्र ही मुझे प्रदर्शित कर देती है कि यह भेद पूर्णत कृत्रिम है। मेरा शरीर एक ऐसे अभिन्न अर्थ म मेरा है कि कोई और वस्तु उतनी मेरी[1] हो ही नही सकती। इस प्रकार (जसा कि उसने लिखा है) विचारणा का काय चीरफाड एव वियोजन नही है बल्कि इसके विपरीत, निरन्तरता म उस सजीव तन्तु को उसकी समग्र निरन्तरता म पुन स्थापित करना है जिसे कि विश्लेषण निकाल फेंक देता है।

पुन एक बार ब्रेडले का प्रभाव प्रत्यक्ष है। ब्रेडले ने भी कहा था कि दार्शनिक विचारणा उस टूटन को ठीक करती है जिसे चिन्तन अनुभूति म बदल डालता है। किन्तु जहा, ब्रेडले के कथनानुसार द्वितीय विचारणा हमे पूर्ण की ओर ले जाती है वहा मार्सेल इसी म सतुष्ट है कि यह हम रहस्यो मे बहुत्व की ओर ले जाए। वह कहता है कि सर्वप्रथम हम यह मानते हैं कि मस्तिष्क से शरीर को सबद्ध करने की एक समस्या है अर्थात् एक बौद्धिक पहेली है जिसे बौद्धिक साधनों से ही हल करना है। किन्तु हम शीघ्र ही पता चल जाता है कि यह पहेली उस पहेली के समानान्तर कतई नही है जो कि सूर्य के धब्बो या वायुमडलीय उपद्रवों से सबधित हो? या उस पहेली से जिसमे हम रुचिविहीन दर्शक के तौर पर प्रविष्ट होते हैं, क्योंकि मस्तिष्क एव शरीर के मध्य सबध को जानने के लिए हम स्वय पर विचारणा के लिए प्रेरित होते हैं विश्व में हमारी अपनी स्थिति (एव विश्व के प्रति हमारे दृष्टिकोण) के परिणमन (इम्प्लिकेशन) पर विचारणा करने के लिए विवश हो जाते हैं।

एक रहस्य म यही तो विशेषता होती है कि वह प्रथम विचारणा के वस्तुपरक स्तर पर हल नही किया जा सकता, क्योंकि यह हमे अपने अस्तित्व पर विचार करने के लिए पीछे धकेल देता है। दूसरा उदाहरण ईश्वर का अस्तित्व है। ईश्वर की सत्ता भी मार्सेल के कथनानुसार बौद्धिक प्रमाणों [illegible] आगे नही ठहरती। मार्सेल टोमवादी नही है। प्रथम विचारणा से यह कल्पना की जा सकती है कि ईश्वर का अस्तित्व एक समस्या है उसी तरह जसे कि मगल ग्रह पर जीवन है या नही यह एक

---

[1] यह कथ्य बींग एण्ड हैविंग (1935) नामक एक अन्य तत्वमीमांसीय पत्रिका म और पल्लवित किया गया है।

समस्या है। किन्तु द्वितीय विचारणा से यह प्रदर्शित होता है कि ईश्वर का अस्तित्व हमारे अपने अस्तित्व के साथ घनिष्ठ रूप से बंधा है, हमारी अपनी तात्विकीय प्रकृति पर ध्यान ही (न कि आकारी या औपचारिक प्रमाण) ईश्वर की ओर जाने का मार्ग है।[1]

सामाजिक-नीत्यात्मक पक्ष की दृष्टि से मार्सेल, समाज के द्वारा मानव को एक टाइप बनाए जाने पर आक्रमण में भाग लेता है जो एक सामान्य अस्तित्ववादी क्रिया करता है। वह लिखता है, 'मुझे क्रमवादी विश्व के द्वारा उत्पन्न की गई उदासी (दुख) की कठोरतायुक्त अभिव्यक्ति पर बल डालने की कतई आवश्यकता नहीं है। सेवानिवृत्त कर्मचारी की भयावह आकृति अथवा उन नगरीय रविवारों को स्मरण करना पर्याप्त होगा जबकि पास से गुजरने वाले लोग ऐसे लगते हैं गोया कि वे जिन्दगी से भी सेवानिवृत्त हो चुके हैं। तथापि इस बात से डर कर जिसको कि वह सार्त्र के अस्तित्ववाद के अनुशासनविहीन तथा तर्करहित पक्ष कहकर निन्दा करता है, वह इन दिनों टी० एस० एलियट[2] के तरीके से परम्परा के मूल्य एवं महत्ता पर बल डालने लगा है। अब अस्तित्ववाद के लिए (जैसा कि संसार सामान्यतः इसे समझता है,) हमें दर्शनशास्त्र के बहुचर्चित फरिश्ते अर्थात् जे पी सार्त्र[3] की ओर मुड़ना पड़ेगा।

अंग्रेजी भाषी देशों में सार्त्र को सामान्यतया पम्फलेटियर (पर्चा लिखने वाला) या एक ऐसा साहित्यिक व्यक्ति कहकर टाल दिया जाता है जो सम्भवतः

---

[1] देखें, ऑन द ऑण्टोलोजिकल मिस्ट्री", जो मूलतः मार्सल के नाटक 'ले मॉण्डे कासे' के साथ प्रकाशित हुआ, तथा अंग्रेजी में इसका अनुवाद द फिलोसोफी ऑव एग्जिस्टेंस (1948) पुस्तक में इस विषय के प्रथम निबन्ध के रूप में प्रकाशित हुआ।

[2] उदाहरणार्थ देखें द डिक्लाइन ऑव विजडम (1954) नाम से संकलित निबन्ध। द फिलासोफी ऑव एग्जिस्टेंस में 'एग्जिस्टेंस एण्ड ह्यूमन फ्रीडम' नामक निबन्ध सार्त्र पर है।

[3] देखें आर० ट्रोइसफोण्टेंस ले चॉइस द ज्यां पाल सार्त्र (1935), जी० वरेट ल ऑण्टोलोजी दी सार्त्र (1948), पी० डेम्पसी द साइकोलोजी ऑव सार्त्र (1950) जो शीर्षक में सुझाए गए कथ्य से भी व्यापक क्षेत्रों को घेरता है। आई० मरडोक सार्त्र (1953), ए० जे० एयर नावेलिस्ट फिलोसोफर ज्यां पाल सार्त्र (होराइजन 1945), डी० एम टयूलोक सार्त्रियन एग्जिस्टेंशियलिज्म' (पी० क्यू० 1952), डब्लू० डेसा द ट्रैजिक फिनाले (1954), एच० मारक्यूस एग्जिस्टेंशियलिज्म रिमार्क्स ऑन ज्यां पाल सार्त्रस ल एत्रे एत् ले निआन्त" (पी० पी० आर० 1947)।

युद्धोत्तर यूरोपीय सस्कृति का क्षीयमणता को चित्रित करने वाले की दष्टि से रुचिकर है किन्तु दाशनिक के रूप म सवथा निरथक है । तथापि फास म वह बींग एण्ड नथिग नस नामक उस वृहत् तात्विकीय क ग्र थ के लेखक के रूप म विख्यात है जो अत्यधिक समादत है अ शत इसलिए कि इसन जमनो को उनक खुद के ही तात्विकोकरण के खेल मे हरा दिया है और अ शत इसलिए कि इसके माध्यम स हुसल, यास्पस हैडेगर जसे जमन दाशनिको के विचार फ्रेंच सस्कृति मे प्रसारित किए गए हैं ।

बींग एण्ड नथिगनस[1] की के द्रीय महत्ता को स्वीकार करते हुए भी हम सात्र को उचित रीति से उसक सव प्रथम उप यास ला ना से (1938) क माध्यम से ही समझ सकते है । यह उपन्यास ढिलाई से परिहित गुप्त वश मे आध्यात्मिक आत्मकथा है जिसम सात्र के अस्तित्ववाद के प्रमुख तत्व (थीम) सवेगात्मक, न कि तत्वशास्त्रीय सदभ म उल्लिखित[2] हैं । ससार को तकत्मक अथवा बुद्धिवादी दष्टिकोण से समझने का प्रयत्न वस्तुत शनु है अ शत सात्र न इससे अधिक कुछ नही किया है कि नाटकीय रूप से उसी बात पर बल दे जिसे ब्रिटिश अनुभववादियो न अधिक शीतलता स स्थापित किया है कि आकस्मिकता अर्थात् नृशस वास्तविकता की व्याख्या छद्मवेषी आवश्यकता के रूप मे कभी नही की जा सकती है ।

फिरभी सात्र आकस्मिकता को मात्र स्वीकार करन स सतुष्ट नही है । वह इस कोटि का तकवादी है कि अस्तित्व की आकस्मिकता से इसक बेहूदा तकविहीन तथा[3] यहा तक कि अश्लील होन का निणय कर लता है । ला नाउसे मे रोक्विन्तो

---

1 एच० बार्निस न इसका अनुवाद लम्बा भूमिका क साथ 1950 मे अ ग्रेजी मे किया है ।

2 द डायरी आव एण्टोइन रोकेन्तों (1949) क रूप म अनूदित । इसी का एक अमरीकी अनुवाद भी है जो इसी तिथि पर नोशिया के शीपक से प्रकाशित हुआ है । जिस कहानी क नाम स उनकी सकलन पुस्तक ल मूर (1939) का नाम पडा है उस पढना भी लाभदायक है । उनक निब धो के सग्रह ल माउसेस (1943) तथा हुइस–क्लास (1945) को पढा जा सकता है । उनकी उप यास शृ खला ले चेमींस दे ला लिबर्टो (1945) सात्र क नीतिशास्त्र की अस्पष्ट प्रकति को स्पष्ट करती है । ये सभी साहित्यिक रचनाए अ ग्रेजी म भी अनूदित हो गई हैं । सात्र की नीतिशास्त्र का विचित्र प्रकृति को उसकी शिष्या सीमोन द बुआए की मस्ट वी बन डी सादे ? (19˙3) तथा रोमन ए क्लेफ द मैण्डारि स (1954) म और भी स्पष्ट रूप से देखा जा सकता हैं ।

3 अ ग्रेजी मुहावरा ब्रूट फक्ट (कटु सत्य) म इसकी तुलना करें । ट्रीटीज के बुक I म ह्यूम को कुछ अतिनाटकीय निष्कर्षों को सात्र की गम्भीर बचनों के साथ

सोचता है कि ' एक निरर्थक वस्तु नहीं है, किन्तु इसका अस्तित्व भी नहीं है ' । इसके विपरीत वह जड़ (वह एक पेड़ की जड़ को देख रहा है) इस मात्रा में अस्तित्व रखती है जिसकी मैं व्याख्या नहीं कर सकता । गाँठदार, अचंचल तथा नामविहीन इसकी स्थिति मुझे आकर्षित करती है मेरी आँखों को भरती है तथा निरंतर मुझे इसके स्वकीय अस्तित्व की ओर वापिस खींच ले जाती है । मेरा यह कहना व्यर्थ है कि 'वह एक जड़ है ।' मैं स्पष्टतः देखता हूँ कि जड़ से लेकर चूषण पम्प (सक्शन पम्प) के रूप अपने कार्य से किसी के द्वारा उस कठोर तथा भरपूर कच्छप चर्म तक अपना मार्ग बना सकना असम्भव है । कार्य कुछ भी व्याख्या नहीं करता । सार्त्र का सुझाव है कि किसी वस्तु की गुणवत्तायें जो कि इसका अस्तित्व बनाती हैं, तर्कशीलता के दृष्टिकोण में कृत्रिम हैं । संक्षिप्ततः इसी बात को अधिक तकनीकी रूप से यों कह सकते हैं कि परिभाषा की जाय तो अस्तित्व कोई आवश्यकता नहीं है । अस्तित्व रखना तो बस विद्यमान होना है । अस्तित्वपरक वस्तुयें दृश्य बनती है । उनसे हम स्वयं मिल सकते हैं किन्तु उन्हें कभी नियमित नहीं कर सकते । सार्त्र कहता है कि संसार को तर्कसंगत कार्यप्रणाली में निमग्न करके आकस्मिकता को आँखों से ओझल कर देना स्वयं को संसार वास्तव में क्या है इस दृष्टि से अन्धा बना लेना है ।

इसी प्रकार स्वयं को कर्म एवं कर्तव्यों में निमग्न हो जाने देना स्वयं को दृष्टि से ओझल हो जाने देना है । ला नाउसे कर्तव्य के उस स्वरूप पर जो मध्यवर्ग ने समझ रखा है एक कटु आक्रमण है (जो कि सार्त्र ने इस प्रकार अभिव्यक्त किया है गम्भीर व्यक्ति, सीधे कार्यमार्ग के कारण प्रकाशमान) इसको सार्त्र ने आत्मा की मौत कहकर प्रताड़ना की है । बूर्जुआ नैतिकता पर किए गए इस आक्रमण में कोई नवीनता नहीं है । सार्त्र अपना काम कठोर एवं रूक्ष व्यक्तिवाद की उस फ्रेंच परम्परा के भीतर करता रहा है जो कि अंग्रेज व्यक्ति[1] को (एक आइरिश व्यक्ति से बिलकुल

भलीभाँति विभेद के उदाहरण के रूप में रखा जा सकता है । ह्यूम सन्देहवाद को सामाजिक सम्बन्धों में छोड़ देने का आग्रह करते हैं । ऐसी विस्मृतिशीलता को उभारने की बात मात्र भी समाज के विरोध में कहते हैं । संसार की बेहूदगी को एलबर्ट कामू द्वारा ले मिथ डी सिसीफी (1922) में अधिक सशक्त ढंग से प्रस्तुत किया गया है । किन्तु कामू अस्तित्ववादी नहीं हैं । वे यह विश्वास नहीं करते कि बेहूदगी को तात्विक रूप दिया जा सकता है । देखें एल० रोथ वत ए कण्टेम्पोरेरी मोरेलिस्ट एल्बर्ट कामू (फिलोसोफी 1955) ।

[1] इस तरह सार्त्र के रोकेन्तो एवं जोयस के स्टीवन डेडलस में काफी साम्य है । और ऐसे समय में स्विफ्ट का स्मरण भी हो आता है ।

असमान रूप म) बहुत ही परेशान करती रही है, किन्तु यह फ्रास मे पर्याप्त रूप से प्रचलित है और सक्षिप्त रूप मे इसे एक वर्णनात्मक मुहावरे पुग्रर एपाते [illegible] बुजुंग्रा के द्वारा प्रकट किया जा सकता है।

तो वह अनुभूति जिसे सार्त्र ने ला नाउसे कहा है हैडेगर को उस ऊब का स्वकीय रूपान्तर है, जिसके माध्यम से हम जो विद्यमान हैं उसे देख पाते हैं। किन्तु सार्त्र की दृष्टि स यह विश्व को ठोस व क्रूर तथ्यो के एक समूह के रूप म देखना है। वह समझता है कि मानव प्राणी के लिए यह विश्व बहुत भारी पडता है। यह एक ऐसा विश्व है जिसम प्राणी को गतिमान् होना तथा सास लेना असमव सा प्रतीत होता है। किन्तु सार्त्र ने सुझाव रखते हुए कहा है कि यदि मैं इसकी आकस्मिकता (Contingency) का सामना साहस के साथ करू तो साथ ही यह देखू गा कि इसमे मरे लिए भी स्थान है। ठीक इसलिए कि (जैसा कि कोई कह सकता है) मुझे किसी स्थान की आवश्यकता ही नही है, और इसका यह अर्थ हुआ कि काम करने की एक क्षमता मात्र हू, एक ऐसा प्राणी जिसकी प्रकृति ही विशिष्टत कुछ भी न होना' है। (तुलनीय अधिकृत आत्मा पर यास्पर्स के विचार)।

मानव स्वतन्त्रता के सम्बन्ध म सार्त्र-कृत कल्पना की निरपेक्षता उसके दर्शन शास्त्र की विचित्रतम विशेषताओं का स्रोत है। ला नाउसे का नायक एक इतिहासकार है तथा अपनी आध्यात्मिक धर्मयात्रा के मध्य मे वह न केवल विश्व की आकस्मिकता को पहचान लेता है बल्कि भूतकाल के साथ उसकी सम्बन्धहीनता को भी जो कि उसके लिए अधिक आश्चर्योत्पादक है। वह भूतकाल से आकर्षित हुआ था क्योकि इससे प्रवहमान वतमान को एक द्वितीय आयाम मिलने की प्रतीति हो रही थी। उसने एक बार यह सोचा था कि प्रत्येक घटना अपनी भूमिका अदा करने के बाद एक सन्दूक मे शान्तिपूवक गम्भीरता क साथ अपना स्थान ग्रहण कर लती हैं और एक आनरेरी घटना बन जाती है अत अकिंचित् की कल्पना करना कितना कठिन है? किन्तु बाद म उसक विचार बदल गए 'अब मैं जानता हू कि वस्तुऐं पूर्णत वसी ही है जसी कि वे दिखाई दती है– और उनक पीछे अन्य कुछ नही है। न केवल ईश्वर बल्कि भूतकाल भी मर चुका है। अन्त म सार्त्र ने कहा है कि यह मानना भूल होगी कि भूत ने हमारा निर्माण किया हो सकता है हमारे कृत्यो म से प्रत्यक इस अर्थ म स्वतन्त्र है कि वह जो कुछ घटित हो गया है उससे पूर्णतया असबद्ध अर्थात् अकिंचित् के द्वारा इससे पृथक कृत कर दिया गया है। हमारी प्रकृति भविष्य क बारे मे हमार चुनाव से निर्मित है न कि उस ढाच से जो कि भूतकाल म बना था और अब हमारे बारे म पूर्णत निश्चय करता है। उसके विचारानुसार, कवल इसी तथ्य क कारण हम स्वतन्त्र हो सकते हैं।

परपरागत दृष्टिकोण क अनुसार स्वतन्त्र इच्छा' उस प्रकृति से किसी किसी

अवसर पर होने वाली विभिन्नता (भाग भेद) स प्रगट होती है जो सामान्यत हमारा निश्चय करती है। इसके विपरीत सात्र की दृष्टि से मनुष्य या तो पूर्णत स्वतन्त्र है या फिर वह पूर्णत पूव निर्धारित, निश्चयीकृत होता है। यदि उसकी प्रकृति ऐसी है जैसा कि इस मुहावरे का साधारण अर्थ होता है (एक स्थायी स्वरूप जिस पर उसकी मर्जी का कोई स्थान नही) तो उसकी प्रकृति ही उसका निश्चय करेगी। सात्र का निष्कर्ष है कि तब, जबकि उसकी प्रकृति केवल मात्र सम्भाव्यक्षमता (पोटेंशलिटी) ही हो तो वह स्वतन्त्र हो सकता है। ल सुर्सी मे, जो कि सात्र की औपन्यासिक शृंखला मे द्वितीय उपन्यास है, मैथ्यू नामक केन्द्रीय पात्र इस प्रकार सोचता है "मानव प्राणी के लिए विद्यमान होना स्वय को चुनना है उसके पास ऐसी कोई भी चीज अन्तस् के बाह्य या अन्तराल स नही आती जिस वह प्राप्त या स्वीकार कर सके, इस प्रकार स्वतन्त्रता विद्यमान होना मात्र नही है बल्कि एक मानव का विद्यमान होना है अर्थात् उसका न होना। मनुष्य का अस्तित्व केवल नथिंग (कुछ नही अकिंचित्) क रूप म है। यदि वह कुछ भी (किंचित्) होता तो वह स्वतन्त्र न होता।

सात्र ने यह स्वीकार किया है कि ससार का यह चित्र जो कि हीं अशो म एक ओर तो कठोर तथ्यो से और दूसरी तरफ सपूर्ण स्वतन्त्रता सेबना है, कई तरह से भयानक है। गभीर व्यक्ति जिन्ह सात्र ने ले सालाउब कहकर परे हटा दिया है, इसकी सत्यता को स्वीकार नही करते। वे स्वय द्वारा निर्मित सुस्थिर जगत म आश्रय खोजते है चाहे वह जगत विज्ञान का हो या धम का। किन्तु उन्ह विज्ञान या धम मे वास्तविक स्थिरता नही मिलती। वस्तुत उनका जगत ठोस होना तो दर किनार, लुजलुजा अथवा चिपचिपा ह।

■ विस्क्यू का वर्णन बिइंग ऐंड नथिंगनेस के एक विशिष्ट भाग म विस्तार से हुआ है, उसम इसे सभी बुराइयो का टाइप बताया गया ह। यह एक ऐसी बात ह जिसके बारे म हम यह विश्वास के साथ कल्पना करत हैं कि हम इसे समझ लग हम प्रयुक्त कर सकेंगे। या स्वतन्त्रतापूवक व्यवहार कर सकेंगे। किन्तु वस्तुत यह हम ही फास लेती ह। (यदि विटजनस्टीन बोतल मे घुसी मक्खी को बाहर निकलन का माग दिखाने की आशा रखता ह तो सात्र उसे मक्षिका भक्षी कागज से मुक्त कर देने की आशा रखता ह।) चिपचिपापन न केवल वस्तुओ की बल्कि मानव प्राणियों की विशेषता ह, इस प्रकार की विशेषता कि हाथ मिलाने या मुस्कराहट के कारण मित्रता मे बाध लेती ह किन्तु यह हमारे अपन ही विचारो का मरणातक बन्धन बन जाता ह, इस रूप मे कि वे हम भूतकाल स चिपटाकर पकडे रहते हैं। यह प्रवचना जनक ह, ठीक इसलिए कि यह सम्भाव्य वस्तुओ के वास्तविक घनत्व तथा कठोर तथ्यो व स्वातन्त्र्य की तरलता के मध्य एक समझौता ह। यह हम ठोस वस्तु की तरह दृढतापूवक रोकता नही। हम जानते हैं कि ठोस के साथ हम कहा स्थित

ै। कि तु चिपचिपा म हमे दलदल की तरह निगल जाता ह। विश्व का चिपचिपापन जसी कड़वी चरपरी विशषताओ पर बल डालने स सात्र को खिन्नतामय तथा विषादमय होने का यश मिला ह। किन्तु उसने उत्तर मे कहा ह कि उदास तो तुच्छ था ह। उसने ल एक्जिस्तांसियलिज्म एस्त० अ ह्यूमनिज्म (1946)[1] में *पूछा ह कि 'चरिटे बिगिन्स एट होम' जसी तुच्छ सा कहावत स बडी विषादमय बात क्या हो सकता ह?*

ला नाउसे जसे उपन्यास म अथवा ले शमिज्द ला लिबर्ते म भी हम जगत् को स्पष्टत मनकी पात्रों की आंखो स देख रहे हैं। उदाहरणार्थ ला नाउसे का नायक कभी नही जान पाता कि किसी व्यक्ति या उद्देश्य मे स्वय को लगा देना किस कहते हैं। अत हम सात्र के उपन्यासों को मनोवैज्ञानिक अध्ययन की दृष्टि स पढते हैं और यह एक दूसरी बात ह कि इस विदीर्ण-मानसीय दृष्टिकोण को एक तात्त्विकी के रूप म अभिव्यक्त किया जाए जसा कि सात्र न बीइंग एण्ड नथिगनस म दिखलाने का प्रयत्न किया ह। वस्तुत यह तक दिया जा सकता ह कि अस्तित्ववादी तात्त्विकी को तो पहल म ही निराकृत कर दिया गया ह। हम रोक्विती को नहीं कहने योग्य बात को भी कहने की अनुमति देत हैं मेथ्यू को यह कहने देते हैं कि म तस जसी कोई चीज नही ह, दरअसल कही कुछ भी नही ह। मैं कुछ नही हू। मैं स्वतन्त्र हू क्योंकि उपन्यासकार को यह अधिकार ह कि वह स्वकीय पात्रों की इस भावना का वणन करे कि व स्वय का क्या समझते हैं। किन्तु यदि हम इन कथनो की व्याख्या शाब्दिक सत्य के रूप मे करने का कहा जाए तो हमारी दाशनिक चेतना तुरत ही जाग खडी हो जाती ह। हम तुरन्त पूछना चाहते हैं कि अपनी रिक्तता को हम पहचान ही कसे सकते हैं *जबकि हम कुछ भी नहीं हैं ताकि इसे पहचान* सकें। और पहचानी जान वाली हमारी रिक्तता क्या भावना की वास्तविक

---

[1] इस सक्षिप्त पुस्तक का अनुवाद अग्रेजी म भी हुआ ह तथा उसका भ्रामक शीषक एग्जिस्टेंशियलिस्ट,1947 ह। तथा साथ ही एग्जिस्टेंश्यलिज्म एण्ड ह्यूमनिज्म (1948) भी उसका एक शीषक ह इसमे सात्र यह तक दने की कोशिश करते हैं कि वे व्यक्तिवादी नही ह। यदि हम मे से कोई किसी प्रकार एक स्वतन्त्र व्यक्ति के रूप मे कोई निणय करता ह (जसे हार मानने की बजाय मरने का निणय करना) तो एसा निणय वह मानवता के लिए पसन्द करता ह।' यह एक गम्भीर प्रश्न ह कि सात्र इस कथन को तात्त्विकी के साथ समन्वित कर सकत हैं या नहीं—किन्तु निस्सदेह फ्रांसीसी प्रतिवाद से मुठभेड का उनका अनुभव उनमे यह भावना छोड गया कि मानव मात्र मे एक साधम्य ह एक ठोस इयत्ता ह। यह बात उनकी आरम्भिक रचनाओं म नही मिलती।

स्थिति नही होनी चाहिये ? अर्थात यह तत्वशास्त्रीय ग्रथ मे रिक्तता नही होनी चाहिय क्या ?

निश्चयत मानव प्रकृति के बारे मे रोचक विचार समूह को निबद्ध करन पर भी (जबकि इसम यह होना नही चाहिए था) सात्र की बीइग ऐड नथिगनस सामान्यतया दार्शनिक प्रशिक्षण प्राप्त अग्रेजी पाठक को असीम रूप से एकाकी लगेगी सात्र का प्रारम्भिक दृष्टिबिन्दु वस्तुत पर्याप्त रूप मे परिचित ह । उमने तक प्रस्तुत किया ह कि आकारी रूपो से परे और कोई परवर्ती वस्तु नदी है । वस्तु स आकार को केवल इसीलिए पृथक कहा जा सकता ह कि वस्तु प्रत्यक्ष सन्निकर्षों की एक असीम श्रृखला ह । किंतु सात्र पूछता ह कि आकारो के होने के बारे म क्या स्थिति है ? उसका तक यह है कि उनका होना अपने आप मे केवल एक ऐसी चीज नही हो सकता जो कि केवल आकारयुक्त ह । "सघटना के होने को होन की सघटना के रूप मे नही कहा जा सकता है ।' अत अन्त मे तुरन्त ही आकारो के विश्लेषण क समय भी हम उस किसी चीज को जिसका अन्तर्जात होना ात है पहचानने के लिए बाध्य हो जात हैं ।

सात्र ने जिस दृष्टिकोण को वकन का बताया है वह यह है कि होना बस दिखाई देना है । वकले का यह दृष्टिकोण वदतो व्याघात है क्योकि यदि आकार है तो वहा कोई होगा भी जिसे कि दिखाई दने वाला दिखाई देता है । सात्र के अनुसार यह होना ही चेतना है । चेतना विषयी का पार-सघटनात्मक हाना है । ब्रेन्टानो तथा हुसल के साथ सहमत हाकर वह कहता है कि सम्पूर्ण चेतना इरादतन (इन्टेशनल) होती है । यह विषयवस्तु तक पहुच जाती है । और उसके तक के अनुसार इस प्रकार पहुचते हुए चेतना साथ ही साथ स्वय के प्रति भी सचेतन होनी चाहिये ।

यहा उसका तक असाधारण रूप से आदिमकालिक है । उसने लिखा है यदि मरी चतना टबल क प्रति सचतेन होन की चतना न होती, तो यह उस टेबल की चेतना होती बिना इस बात की उसे चेतना हुए । दूसरे शब्दो म यह स्वय के प्रति अनान युक्त चेतना होती, अर्थात् एक अचतन चतना जो अपन आप म असगत है । अपने आपक बारे म यह चेतना सात्र के अनुसार, आत्मचतेना है, वस्तु के रूप म आत्म की चेतना आत्मचतेना नही है । यह कार्टेजियन सिद्धान्त के कोजिटो स पूर्वतर है जो कि (किसी के अपन आप के होन स विभिन्न) हमारे स्वय के होन पर प्रतिफलित होती है । उमने आगे तक दिया है कि इस प्रकार को आत्म चेतना किसी वस्तु क होने का अस्तित्व सार-समूह क एक प्राणी होन को एक मात है । सार समूह इसलिए हात हैं, क्योकि आत्म चतन प्राणी का स्वय ही पहले से अस्तित्व हाता है । यह सार समूह की कसा से अस्तित्वयुक्त नही होता । इस प्रकार, अस्तित्व सार-समूह से पूर्वतर है ।

इस स्थिति म सात्र बीइग के अनुसरण मे अच्छी तरह सपृक्त है। बीइग एण्ड नथिगनस के बहुत थोडे से पृष्ठो के बाद ही हमारे सामने ऐसे वाक्य आने लगते हैं बीइग है। बीइग स्वय के अदर है। जो है वही बीइग है।' ऐसे वाक्य जो तत्त्वमीमासा की वस्तुस्थितिवादी परोडियो की परोडी जस लगते हैं। फिर भी दो बातें इस तत्वशास्त्र को अपने पूववर्तियो मे पृथक करती हैं। प्रथम तो न होने (नाटबीग) के बारे मे सात्रकत विश्लषण और द्वितीय मनोवज्ञानिक सिद्धान्तों को तत्वशास्त्रीय शब्दावली म अनूदित करने के लिए उसका प्रयत्न।

वह हेडगर के साथ इस बात में सहमत है- कि न होने को नकारात्मक निणय के साथ एकीभूत नही कर सकते, क्योकि हमे नथिग (अकिंचित्) की एक अ त प्रेरणा (अन्त साक्ष्य) होती है, ऐसी अन्त प्ररणा जो निणय स पूवतर होती है। वह कहता है 'मान लो मैं किसी कफे म किसी मित्र की प्रतीक्षा कर रहा हू। मै चारो ओर देखता हू और कहता हू पीटर तो यहा है ही नही। तो यह किसी भी रूप मे इस प्रकार क स्वीयात्मक अस्वत स्फुरित तथा नकारात्मक निर्णय का समानाथक नही हैं कि इस कफे मे कटरबरी का आचबिशप नही है। इस कफे म पीटर की अनुपस्थिति व्याप्त हो रही है इस प्रकार की अनुभूत अनुपस्थिति सार्त्र के कथनानुसार नकारात्मक निर्णय का अनादि प्राथमिक मूल हैं।' अन्त म वह कहता है कि नथिगनस (अकिंचित्) की सत्ता हमारे बीइग स आती है। हम अभावकारी (निहिलटेर)के क्योकि यह तो केवल हमारे लिए ही है कि पीटर अनुपस्थित हैं। और है वह कहता है कि हम इस प्रकार का निषेध इसलिए कर सकते हैं क्योकि हमारे अभ्यतर म अकिंचित' मौजूद हैं। इसी प्रकार हमारे कत्यो के मध्य 'अकिंचित' है बस इसीलिए कि वे सतत रूप से उस अस्वतन्त्र अनवरत सम्पूर्ण' के भाग नहीं बनते जिसम प्रत्येक कत्य अपने पूववर्ती कृत्यो द्वारा पूवनिर्धारित हो जाते हैं। यह इसलिए है (जसा कि मैथ्यू न कहा है) कि स्वतन्त्रता कोई बीइग नही है यह तो मनुष्य का बीइग होना हैं अर्थात उसका स्वकीय नान बीइग।

इस प्रकार सात्र की तत्वशास्त्रीय विचारणाए तत्वदर्शनीय स्वतन्त्रता के सिद्धा त को इसकी सुदूरतम स्थिति तक ढकेलने के लिए एक जानबूझ कर किया गया प्रयत्न है। वह तो सपूण स्वतन्त्रता के उद्देश्य की प्राप्ति के लिए ही बीइग और नाटबीइग के युगल विचारो के साथ इस प्रकार की अस्पष्टता से खिलवाड करता है। हम यह महसूस करने को विवश हैं कि इस स्वतन्त्रता के चारों ओर कुछ याधिकीय कारणो जसी बात अवश्य है माने कोई मनोरोगी (न्यूराटिक) स्वय को यों समझ बठा हो कि उसकी चिन्ता तो साहस है, कि नष्ट करने की उसकी प्रवृत्ति निर्माणात्मक है। ज्यो ज्यो सात्र आगे लिखता है हम उसकी तात्विकी को प्रायड कृत व्याख्याओ द्वारा समझने के लिय स्वय को विवशीकृत सा पाते हैं।

जो कुछ वह कहता है उसका इतना कम अथ निकलता है कि हम इसको व्याख्या स्वप्न या व्यक्तिगत फटेसी के रूप म करने के लिए आमादा हो जाते हैं।

किन्तु सात्र हम सचत करता है। वह वस्तुत फायड कृत व्याख्या हम पर जान बूझ कर लाद रहा है। उदाहरणाथ वह 'चिप-चिपे' के बारे म जो लिखते हैं उसम बहुत ही स्पष्ट रूप म योन शब्दावली है। इस प्रकार वह अपने अतिम बल शाली दाव पेचो का माग तयार करता है। उसन तक दिया है कि स्वय योन आवेगो के प्रतीक तत्वशास्त्रीय आवश्यकताओ के अनुरूप हैं, उस से अधिक कुछ नही हैं। यदि कोई फायडवादी सात्र के तत्वशास्त्र मे सवत्र योन प्रतीको को देखता है तो, सात्र के सुझाव के अनुसार यह इसलिए है कि फायडवादी अपने तत्वशास्त्रीय एकाकीपन को छुपाना चाहता है। एक ऐस प्राणी के एकाकीपन को छिपाना चाहता है जो इस अश्लील आकस्मिक सभा यता से भरे तथा ईश्वर विहीन विश्व मे, जिसमे कोई मूल्य नहीं रह गये हैं (स्वय द्वारा निमित मूल्यो का छोडकर) यदि जीवित रह सकता है तो बस केवल स्वय के इस प्रकार के स्वतन कृत्यो द्वारा ही रह सकता है। फायडवादी इस सिद्धात की आड मे शरण लेना चाहता है कि यह एकाकीपन योन आवश्यकता स अधिक कुछ नही है उसे तुष्ट करना भी मानवीय सामथ्य व चातुय से बाहर की कोई बात नहीं है। फायडवादिया को सात्र ने यह उत्तर दिया है एक ऐसा उत्तर जिसे तत्वशास्त्रीय मनोविश्लेषण के तौर पर विस्तृत रूप से तयार किया गया है। सात्र के शब्दशास्त्राय स्रोतो को देखते हुए जो कुछ वह सामान्य भाषा के आलोचकों को कह सकता है अच्छा हो कि उसे कहने की बजाय रम कल्पना के लिए ही छोड दें।

पुस्तक–सूची

[यह सूची लेखकों के कुलनाम के अकारादि-क्रम से है। साथ में उनके जन्म मृत्यु के ईस्वी वर्ष का उल्लेख है। इस सूची मे जिन लेखको का नाम है, उनकी केवल महत्त्वपूर्ण कृतिया ही उल्लिखित है। उन्ही लेखको को लिया गया है जिन्होंने उल्लेखनीय परिमाण मे लिखा है, सिवा कुछ अपवादो के। जो पुस्तकें अंग्रेजी मे हैं उनके प्रकाशन वर्ष कोष्ठको मे नही है। अन्य भाषाओ की कृतियो मे प्रकाशन वर्ष कोष्ठक मे मिलें तो उसका अर्थ है कि उस वर्ष उस कृति का अंग्रेजी अनुवाद निकला। शोध लेख आदि के साथ उनके प्रकाशन करने वाली शोध पत्रिकाओ के नाम भी दिये हैं। उनका परिचय आरम्भ में देखें।]

अरबन, विल्बर मार्शल (1873)	द इन्टेलिजिबल वर्ल्ड (मेटाफिजिक्स एण्ड वेल्यूज 1925) लग्वेज एण्ड रियलिटी 1939 बियांड रियलिज्म एण्ड आइडियलिज्म 1949 ह्यूमनिटी एण्ड डीटी 1951
अमसन, जेम्स ओपी (1915-)	फिलोसोफिकल एनलीसिस 1956
अलक्जेंडर, सेम्यूअल (1859-1938)	मोरल आर्डर एण्ड प्रोग्रेस, 1889, लॉक 1908 फाउंडेशंस एण्ड स्केच प्लान आव ए कानेशनल साइकॉलोजी (ब्रिटिश जर्नल० साइको० 1911)
अवनेरियस रिचर्ड हायनरिख लुडविग (1843-1896)	फिलोसफी आल्स देनकन दर वल्त 1876 क्रितिक डर रीनन आरफाहरुग 1888-90
आइंस्टीन, एलबर्ट (1879-1955)	यूबर डाइ स्पेजियल उ द दाई एलगेमोन रिलेतिवितात्स थियरी, गमीनवर्स्ता दलिख 1917 इसका अनुवाद रिलटिविटी, दी स्पेशल एण्ड दी जनरल थ्योरी ए पापुलर एक्सपाजीशन," (1920) के रूप मे छपा। ज्योमट्री उन्द अर्फाहरुग 1921 [साइडलाइट्स आन रिलटिविटी II–ज्योमट्री एण्ड एक्सपीरियेंस (1922)]

	दा एवोल्यूशन आफ फिजिक्स , 1938 आटोबायोग्राफीकल नोटस' —तथा ए रिप्लाई टु क्रिटिसिज्म्स अलबर्ट आइंसटीन फिलोसफर साइंटिस्ट, सम्पादक पी ए शिल्प 1949 मे छपे हैं।
आयर, अल्फ्रेड ज्यूल्स (1910)	लग्वेज, ट्रूथ एण्ड लाजिक 1936 द फाउंडेशंस आव एम्पिरिकल नालेज 1940 थिंकिंग एण्ड मीनिंग 1947 फिलोसोफिकल एसेज 1954 फिलोसोफिकल स्केप्टीसिज्म (सी०बी०पी० III) 1956 दी प्रोब्लम आफ नालेज 1956 परसेप्शन (बी० पी० एम०) 1957
आरन रिचड आइथेमर (1901)	दा नेचर आफ नोइंग 1920 जोन लाक 1937 दा थ्योरी आफ यूनीवर्सल्स 1952 द रेशनल एण्ड दी इम्पीरिकल सी० बी० पी० III 1656
आस्टिन जॉन लगशॉ (1911-)	अदर माइंड्स (परिचर्चा, पी० ए० एस० एस०) 1946 ट्रूथ (परिचर्चा पी० एस० एस०) 1852 हाऊ [illegible] टाक (पी० ए० एस० एस०) 1950
ईटन, रेल्फ मुनरो (1893–1932)	सिंबोलिज्म एण्ड ट्रूथ 1925 जनरल लाजिक 1937
एंगेल्स फ्रायडरिख (1820–9895)	हेरन यूजेन डूहरिंगस अम्वालजग दर विसेनशाफट 1878 (इंगलिश ट्रांसलेशन नहीं हुआ।) एल फयरबाख [illegible] उण्डर असगग दर क्लासिसकेन फिलोसोफी 1888 (1934) दियालेकटिक दर नेचर 1927 (1940)
एण्डरसन जॉन (1893)	दी नोअर एण्ड दी नोन (पी० ए० एस० 1926) एम्पिरिसिज्म (ए० एम० पी० 1627) रियलिज्म एण्ड सम आफ इटस क्रिटिक्स (ए एफ पी 1930) डिजाइन (ए एफ पी० 1935)

एक्टन हेरल्ड बी (1908)	दा इल्यूजन आफ दा इपोक 1955
एडमसन, राबट (1852–1902) -	आन दी फिलोसफी आफ का ट 1879 दा डेवलपमेंट आफ माडरन फिलोसफी 1903 ए शॉट हिस्ट्री आफ लोजिक 1911
एडिंगटन, सर आथर स्टेनली (1829–1944)	दी नेचर आफ दी फिजीकल वल्ड 1928 दा फिलोसफी आफ फिजीकल साइ स 1939
एबट, टामस किंग्समिल (1829–1993)	साइट एण्ड टच 1864
एमट, डोरोथी मेरी (1904)	ह्वाइटहेड्स फिलोसोफी आफ आर्गेनिज्म 1932 दा नेचर आफ मेटाफिजिकल थिंकिंग 1245
एलिस राबट लेसली 1897–1859)	दी मेथेमेटिकल एण्ड अदर राइटिंगस आफ राबट लेसली एलिस, 1863
करखाफ गुस्ताफ राबट, (1824–1887)	वरलस अ जन उवर मेथेमटिक फिजिक 1676 (फोथ एडिशन 1897) वरलेस अजेन अवर मेकानिक शीपक स पुन प्रका
कार हबट विडन (1857–1931	ए थ्योरी आव मोनेडस 1919 आइडियालिज्म एज ए प्रिंसिपल इन साइस एण्ड फिलोसफी (सी० बी० पी० 1924) कोजीटटस कोजीटेटा 1930
कारनप, रूडोल्फ (1891)	दर लोजीके आफ वड दर वेल्ट 1928 स्केइनप्रोब्लम इन दर फिलोसफी 1928 एवरिस दर लोजिस्टिक 1929 डाई फिजीकालिसके स्पाक आल्स यूनीवसल स्पाक दर विसनशाफ्ट (अर्के० 1932) [दा युनिटी आफ साइ स (1934)] लोजिस्क सिनटेक्स दर स्पाक 1934 (1937) फिलोसफी एण्ड लोजिकल सिनटेक्स 1935 स्टेबिलिटी एण्ड मीनिंग (पी० एस० सी० 1936) लोजिकल फाउन्डेशन्स आफ दा यूनिटी आफ साइंस (यू० एस० वोल्यूम I न० I 1938)

	फाउ डेशस आफ लोजिक एण्ड मेथेमेटिक्स (यू एस० वाल्यू० न० 3, 1939) इ ट्राडक्शन टू सेमेनटिक्स 1942 दा फरमलाइजेशन आफ लोजिक 1942 मीनिंग एण्ड नेसेसिटी स्टडी इन सेमंटिक्स एण्ड मोडल लोजिक 1947 लोजिकल फाउ डेशन आफ प्रोबेबिलिटी 1950 द कांटीन्यूयम आफ इडक्टिव मेथड्स 1950 ईनफ्यूहरग इन डाइ सिम्बोलिक लोजिक 1951
की स जॉन मेनाड (1883–1946)	ए ट्रीटीज आन प्रोबेबिलिटी, 1921
की स, जॉन नेविल (1852–1949)	स्टडीज एण्ड एक्सरसाइजेज इन फारमल लोजिक 1884
कॅप स्मिथ, नॉरमन (1872)	स्टडीज इन दी कोर्टेजियन फिलोसफी 1902 ए कमेंटरी टू कांटस क्रिटीक आफ प्योर रीजन 1918 प्रोलेगोमना टू एन आइडियलिस्ट थ्योरी आफ नोलज 1924 दा नचर आफ यूनीवस रम (माइण्ड) 1927 न्यू स्टडीज इन दी फिलोसफी आफ डेकार्ट 1952
कॅपबल, चाल्स आर्थर (1997)	स्केप्टिसिज्म एण्ड क सट्रक्शन 1931 इन डिफेंस आफ फ्री विल 1938 सेल्फ एक्टीविटी एण्ड इटस मोडस (सी बी पी III 1956)
कॅपबल, नॉरमन रॉबट (1880 1949)	फिजिक्स दी इलीमट्स 1920 व्हाट इज साइस ? 1921 एन अकाउंट आफ दी प्रिंसिपल आफ मञरमट एण्ड कलकुलेशन 1938
केयड एडवड (1835–1908)	ए क्रिटिकल अकाउंट आफ ी फिलोसफी आफ कांट 1877 हीगल 1883 दी सोशन फिलोसोफी एण्ड रीजन आफ का ट 1885

केयड, जॉन (1820–1906)	एन इंट्रोडक्शन टु दी फिलासफी आव रिलीजन 1880
केस, टॉमस एच, (1844–1825)	फिजिकल रियलिज्म 1888
करोल, लुइस,	देखें डाजसन, चार्ल्स, लुटविज
कलकिन्स, मेरी ह्वाइटन (1863–1930)	दा परसिस्टंट प्रोब्लमस आफ फिलोसफी 1907
	दी फिलोसोफीकल ग्रेडो आफ एन एब्सोल्यूटिसटिक परसोनलिस्ट (सी ए पी I 1930)
कसिरर, अन्स्ट (1874–1945)	दास अरकेंतनिस प्रोब्लम इन दर फिलासाफी उन्द विशेनशाफ्ट दर 'यूरेनजाइत 1906–20 वाल्यू 4, 1950। इंगलिश मे दी प्रोब्लम आफ नालज' नाम से।
	सब्सटेन्ज बेरिफ उन्द फक्शन्स बेरिफ 1910
	स्टेंस थ्योरी आफ रिलेटिविटी 1923
	फिलोसोफी दर सिम्बोलिसकेन फारमेन 1923 31 (1953)
	स्पाक उन्द माइथोस 1925 (1946)
	डाई प्लेटोनिस्क रेनाइसँस इन इंगलड उन्द
	हा [illegible] ल वा [illegible] काम्ब्रज, 1932 (1953)
	दाई फिलोसोफी दर आफक्लारुग 1932 (1951)
	एन एसे आन मेन, 1944
	दी मिथ आफ दी स्टेट, 1946
	गैलोलिय ोज प्लेटोनिज्म, स्टडीज एण्ड ऐसेज इन
	दी हिस्ट्र ी आफ साइस, सपा० एम एफ एशले
	मोटाग 1946
	सि 'रट' तथा लाइफ (कान्टेम्पोरेरी फिलोसफी मे)
	'द फिलोसफी आफ अर्नस्ट कसीरर, सपा० पी०ए०
	शि ल्प 1949 मे पुस्तकसूची भी है।
कोम्ट, आगस्ट (1798–1857)	डो फिलोसोफी पोजिटिव, 1830–42
	कोर प्त अनुवाद 1853 में)
	(सं. ोस्सरल' आसाम्बल पाजिटिविज्म 1848
	'डिसर 65)
	(18 म दो पोलीटिक पोजिटिविस्ट 1851–54
	सिस्ट 75–79)
	(18

कोटारबि स्की, तादेउज्ज (1886)	एलीमेंटस आफ एपिसटमोलोजी आफ फारमल लोजिक एण्ड मथोडालोजी 1929 (पोलिश भाषा मे। उस भाषा म 'एलीमेंटा टयोरजी पाज्नानिय लोजिकी फारमलनिञ मेटोडोलोजी नाउक' शीपक है।)
कोफी, पीटर 1976–1943	दा साइ स आफ लोजिक 1912 एपिस्टेमोलोजी 1917
कोलिंगवुड, राबिन जोज (1889–1943)	स्पेक्यूलम मटिस 1924 ऐस आन फिलोसाफिकल मेथड 1933, ओटाबायग्राफी 1939 ऐसे आन मेटाफिजिक्स 1940 दी न्यू लवाइथन 1942 दी आइडिया आफ नेचर, 1943 दी आइडिया आफ हिस्ट्री 1946 (पी बी ए 1943 म पुस्तकसूची)
कोहेन, मारिस रेफायल (1880 1947)	दी फेथ आफ लोजीशियन (सी०ए०पी० 1930) रीजन एण्ड नेचर 1931 एन इन्ट्रोडक्शन टू लोजिक एण्ड साइंटिफिक मेथड (ई० नजल के सहकार मे) 1934 ए प्रेफस टू लोजिक 1944 ए ड्रीमस जरनी 1949 रीजन एण्ड ला 1950 अमेरिकन थाट 1954
कोहेन हरमैन (1824–1914)	काटस थ्योरी दर रिनेन अर्फारग 1871 सिस्टम दर फिलोसोफी 1902–12
कोटुरेट लुई (1868–1914)	ला लोजिक्यू डी लाइबिज 1901 एल एलजेब्रा डी ला लोजिक 1905 (1914) दाई प्रिंसिपेन दर नोजिक एनसाइकिलो (1921) (एनसायक्लोपेडिया आफ फिलोसोफिकल साइसेज 1913)
कॉफमेन, फलिक्स (1895)	मैथोडनलेरे दर सोजियाल्विसेनशाफट 1936 (1944)

क्रेटन, जेम्स एडविन, (1861-1924)	स्टडीज इन स्पेकुलेटिव फिलोसोफी 1925
क्रोचे, बेनडिटो (1866–1952)	फिलोसोफिया डेला स्पिरिटो (1) एस्टेथिया कम साइंजा डेल ऐक्स्प्रेस जन लिंगुस्टिका जनरल 1902–1909 (2) लोजिक कम साइंजा डेल कौंसेट्टोप्यूरो 1909 (1917) (3) फिलोसोफिया डेला प्रेक्टिका इकोनोमिया एंडेथियका 1909 1915 (4) टियोरियाय स्टोरिया डेला स्टोरियाग्राफिया 1917 (1921) मैटेरियलिसनो स्टोरिको एण्ड इकोनोमिया मोरालिस्टिका 1900 (1914) सेग्गियो सुल हीगल 1907 (व्हाट इज लिविंग एण्ड व्हाट इज डेथ इन फिलोसफी आफ हीगल 1915) ला फिलोसोफी डी जी वाइको 1911 (1913) 'सेल्वसत्दारस्टेलग', दाई फिलोसफी दर गेजनवट इन सेल्वस्तदारसोलजन वाल्यू 4, 1923 ला लेटलिचुरा इटालियाना (वॉल्यू 75) 1951
क्वाइन, विलर्ड वान ओरमन (1908)	मैथेमेटिकल लोजिक 1940 सप्लीमेंट्री लोजिक 1941 मथड्स ऑफ लोजिक 1950 फ्राम ए लाजिकल प्वाइंट आफ व्यू 1953
क्लिफर्ड, विलियम किंगडन (1845–1879)	सीइंग एण्ड थिंकिंग 1879 लेक्चर्स एण्ड एसेज 1879 दी कामनसेंस आफ दी एक्जेक्ट साइंसेज 1885
गिवसन, विलियम रेल्फबाइस (1869 1935)	दी प्राब्लम आफ फ्रीडम (परसनल आइडियलिज्म, सपा० एच स्टुअर्ट 1902) रूडोल्फ यूकन्स फिलोसफी आफ लाइफ 1906 दी प्राब्लम आफ लोजिक 1908

गिल्सन, एटिन हैनरी (1884)	ला लिबरटे चेज डकाट एट ला थयेओलोजी 1912 इडेक्श स्कोलेसटिको कार्टेजियन 1913 लो टोमिज्म 1920 दी फिलोसोफी आफ टॉमस एक्विनस 1924 इट्यूडस दे फिलोसोफी मैडीएवल 1921 सेंट टामस ड अक्यून 1925
गुडमैन हैनरी नेलसन (1906)	दा स्ट्रक्चर ऑफ एपियरेंस 1951 फक्ट फिक्शन एण्ड फारकास्ट 1954
गोडेल कुत (1906)	यूबर फारमल अनउटेसचीडवेअर साटजा न्र प्रिंसपिया मैथेमेटिक उ द वरवानउतर सिस्टम मोनात्सशफ्ते दर माथयूफिजिक्स 1931
ग्रीन टामस हिल (1831 1882)	इ टोडक्शन टू ह्यूम्स ट्रीटीज प्रालेगामेना ट एथिक्स 1883 वक्स 1885–8
ग्रेलिंग–कुर्त (1886)	मैंनजेनलेहरें 1924 द लोजिकल पेराडोक्सेज (माइण्ड 1931)
ग्रोटे, जोन (1863 1866)	*एक्सप्लोरेशिया फिलोसोफिका भाग I, 1865* भाग II 1900
चच अलोंजो, (1903)	ए नोट आन दी ऐंतशीदुंग प्राबलम (जे एस एल) 1931 ए फारमूलेशन आफ दी लाजिक आफ सेन्स एण्ड डिनोटेशन' स्टक्चर मैथड एण्ड मीनिंग मे सम्पादक पी हैनल एच एम कालन व एस के ल जर 1951 इ ट्रोडक्शन टू मैथेमेटिकल लाजिक 1956
जेंटील जुवानी (1874–1944)	टयोरिया जनराल डे लो स्पिरिटो कम ऐटो पुरो 1916 (1922) आर० डब्ल्यू होलमस दि आइडियलिस्म आफ जुवानी ज टील 1931 म पुस्तकसूची भी है
जेफ्रीज हेरल्ड (1909)	साइ टिफिक इनफरेंस 1931 थयोरी आफ प्रोबेबिलिटी 1931 (बी० जेफ्रीज के सहकार म लि०) मैथड्स आ फमैथमेटिकलफिजिक्स 1946

जोर्जेनसन जाजन (1894)	ए ट्रीटीज आव फारमल लोजिक 1931
जोसफ, हॉरेस विलियम	इन्ट्रोडक्शन टू लाजिक 1906
ब्रिडले (1867–1943)	एंशियेंट एण्ड माडन फिलोसफी 1935
टाउलमिन स्टीवन एडेलसटन (1922)	एन एग्जामिनेशन आफ दि प्लेस आफ रीजन इन ऐथिक्स, 1950 दि फिलोसफी ऑफ साइन्स
टार्स्की, एलफ्रड (1902)	इन्ट्रोडक्शन टू लाजिक एण्ड टू दी मैथेडोलोजी आफ डिडक्टिव साइन्सेज 1934 अनडिसाइडेबल थ्योरीज 1953 स्टडीज इन लोजिक एण्ड दी फाउन्डेशन्स आफ मेथेमेटिक्स 1956
टेनाट फ्रेडरिक रॉबट (1866)	फिलोसाफिकल थियोलोजी वाल्यूम I दि सोल एण्ड इटस फैकल्टीज 1928 वाल्यूम II दि वल्ड दी सोल एण्ड गाड 1930 दि नेचर आव बिलीफ, 1943
टेलर, अल्फ्रेड एडवड (1869–1945)	एलीमेंटस आव मैटाफिजिक्स 1903 दि फ्रीडम आव मैन 1825 प्लेटो, दि मैन एण्ड हिज वक, 1926 दि फेथ आफ ए मोरालिस्ट 1930 फिलोसोफिकल स्टडीज 1934 डज गॉड एग्जिस्ट ? 1945
टॉमसन विलियम (1819–1890)	आउटलाइन आव दि लाज आफ थाट 1842
ट्वारडोस्की, कासीमीर (1866–)	आइडी एण्ड परसप्शन 1892
डाउस हिक्स	देखें हिक्स जाज डाउस
डाजसन, चाल्स लुटविग– (1832–1898)	दि गेम ऑव लाजिक 1887 ए लाजिकल पराडोक्स (माइण्ड 1894) ह्वाट दि टाटवाज सेड टू एक्लीज (माइण्ड 1895) सिबोलिक लाजिक 1897

डा'सों, मार्टिन सिरिल, (1888–)	दि नेचर आव बिलीफ, 1931 बिलीफ एण्ड रीजन, 1944
डि ब्रोग्लो (प्रिंस) लुई विक्टर (1892–)	ला फिजीक नोविले एत लेस क्वान्टा 1937 (द रिवाल्यूशन इन फिजिक्स, 1954) मैतियर एत ल्यूमियर 1937 (1939)
डि मारगन, आगस्टस (1806–1871)	एन एस आन प्रोबेबिलिटाज फारमल लॉजिक, 1847 आन दी सिलाजिज्म (विभिन्न शीर्षकों एव भिन्न भिन्न परिशिष्टों सहित इस विषय पर इनके 5 आपलेख तकपदों पर प्रकाशित हैं, ट्रान्जेक्शन आव द कम्ब्रिज फिलोसोफिकल सोसायटी मे जिल्द 8 (1849) जिल्द 9 (1856) जिल्द 10 (1864) सिलेबस आव ए प्रोपोस्ड सिस्टम आफ लोजिक, 1860 ए बजट आव पराडोक्सेज 1872
डिंगल हर्बट, (1890–)	साइंस एण्ड ह्यूमन एक्सपीरिएँस 1932 थ्रू. साइंस टु फिलोसफी 1937
ड्यूकास, कुर्त जान, (1881–)	नेचर माइंड एण्ड डेथ 1951 फिलोसफी एज ए साइस 1941
ड्यूई, जॉन (1859–1952)	साइकोलॉजी, 1887 हाउ वी थिंक ? 1910 स्टडीज इन लाजीकल थ्योरी, 1903 दि इनफ्लुऐंस आव डारविन अपोन फिलोसफी एण्ड अदर ऐसेज एसेज इन एक्सपेरीमेंटल लाजिक 1916 रिकान्सट्रक्शन इन फिलोसफी 1910 एक्सपीरिएँस एण्ड नेचर 1925 द क्वस्ट फार सरटेन्टी 1929 फ्राम अब्सोल्यूटिज्म टु एक्सपेरिमेंटलिज्म (सी० ए० पी० II 1930) लाजिक द थियरी आव इन्क्वायरी 1938 एक्सपीरियंस नालेज एण्ड वेल्यू (द फिलोसोफी

	आव जान डयूई, सपा० पी०ए० शिल्प 1939) नोइग एण्ड द नोन 1949 ए० एम० बेंटली के सहकार म लिखी गई हैं।
ड्रेक, डयूरेंट	दी एप्रोच टु क्रिटिकल रियलिज्म' (ऐसेज इन क्रिटिकल रियलिज्म 1920) माइण्ड एण्ड इटस प्लेस इन नेचर 1925
डुहेम, पियरे (1861–1916)	ला थ्योरी फिजिक सन आब्जेट एट सा स्ट्रक्चर, 1906 (1954) ली सिस्टम डू मण्डे 1913 17
ड्यूहरिंग, यूजन कार्ल (1833–1921)	कुसस दर फिलोसफी 1875
नन सर टामस पर्सी (1870–1944)	द एम्स एण्ड अचीवमेंटस आफ साइंटिफिक मेथड 1907 आर सेकेंडरी क्वालिटीज इनडिपेंडेंट आफ परसप्शन ' (पी० ए० एस० 1909) साइंटिफिक आबजेक्टस एण्ड कामन-सेंस थिंग्स (पी० ए० एस० 1923)
निकोड जीन, (1893–1924)	ए रिडक्शन इन दी नम्बर आफ प्रिमिटिव प्रोपोजी श स आफ लाजिक प्रोसी० केम्ब्रिज फिलो० सोसा० 1916, फाउ डेशन आफ ज्योमेट्री एण्ड इ डकशन
नीत्शे फ्रायडरिख (1844–1900)	आलसो स्पाक जारायुस्त्रा 1883 जसइटस वान गट उ द बोस 1886 कम्प्लीट वक्स, 18 जिल्दें 1909।
नटलशिप रिचड लुइस (1846–1892)	फिलोसोफीकल लक्चरस एण्ड रिमेंस, 1887।
नेटाप पॉल (1854–1924)	प्लेटो स आईडीनलहर 1903 लोजिक 1904।
नेजल, अर्नस्ट (1901–)	एम०आर० काहेन क साथ लिखित एन इन्ट्रोडक्शन टू लोजिक एण्ड साइ टिफिक मेथड 1934 प्रिंसिपल आफ दी थ्योरी आफ प्रोबबिलिटी (यू० एस० वाल्यू न० 6, 1939)

	लोजिक विदाउट ग्राटोलोजी, नचरलिज्म एण्ड दा ह्यूमन स्प्रिट" मपादक, एच० क्रिकोरियन 1944 सोवरन रीजन 1954
नौल, विलियम केलवट (*1906–*)	प्राबबिलीटी एण्ड इ डक्शन 1949 द प्रॉविस प्राव लाजिक, (सी० बी० पी०) 1956
नेलसन, लियोनार्ड (1882–1927)	डाई क्रिटिस्क मथड उन्द दास वरहल्टनिस दर साइकालोजी जर फिलोसफी 1904 ऊबर दास सोजन एन्ट प्रकॅटनिश्र प्राबलम 1908 डाई सोक्रेटिक मेथड 1929, (1949)
न्यूमन, जौन हनरी(1801 1890)	ऐसे इन एड आफ ग्रामर आफ एसेंट 1870
न्यूरथ ग्रॉटो (1882–1945)	ली डेवलमट डू सरकल दी वियना एट ल अवनिर डी ल इम्पीरिज्म लोजिक एक्चुअलिटीस 1935 यूनीफाइड साइ स एज इनसायक्लापडिक इ टग्रेशन (यू० एस०, वाल्यू० I न० I 1938) फाउ डेशन ग्राफ ग्रे सोशल साइ सेज (यू एस वाल्यू II न० 4 1 944) यूनीवसल जारगन एण्ड टरमीनोलोजी (पी ए एस 1940)
पियर्स डेविड एफ (1921–)	हायपोथटिक्ल्स (एनालिसिस 1950) यनीवसल्स (पी० क्यू० 1951 एल एल II) द कॉम्पेटीबिलिटीज ग्रॉफ कलस (एल एल II 1953)
पियर्सन कार्ल (1857–1936)	दी ग्रामर ग्राफ साइंस 1892
पियर्स, चार्ल्स सेंतियागो सेंडर्स (1839–1914)	स्टडीज इन लाजिक 1883 कलक्टेड पपस 1931–5
पीयनो, ग्यूसेप (1858–1932)	फारमूलाइरिस दी मथमटिक्स 1895 (1908)
पैटन, हर्बट जेम्स (1887	काटस मेटाफिजिक ग्राफ एक्सपीरिय स 1939 इन डिफेंस ग्राफ रीजन 1951 दी मोडन प्रेडिकामेट 1955

पप, आपर (1921–)	दी ए प्रायोरी इन फिजीकल थ्योरी 1946 एलीमेंटस आफ एनालीटिक फिलोसोफी 1949
परी, रेल्फ बाटन (1876–)	ए रियलिस्टिक थ्योरी आफ इंडेपेंडेंस', दा न्यू रियलिज्म 1912 प्रेजेंट फिलोसोफीकल टेंडेंसीज 1912 दा थॉट एण्ड केरेक्टर आफ डब्ल्यू जेम्स 1935
पॉइनकेयरे हेनरी (1853–1912)	ला साइंस 'एट ल हायपोथिसिस 1902 (1905) ना वलर ला साइंस 1905 साइंस एट मेथड 1908 जी बी हाल्सटेड द्वारा किया दा फाउंडेशंस आव साइंस 1913 में इन तीनों का अंग्रेजी अनुवाद छपा है।
पॉपर, कार्ल रेमन्ड (1902)	लोजिक दर फासचुंग 1935 'दी पावर्टी आफ हिस्टोरीसिज्म', इकोनोमिका 1949–5 द ओपेन सोसाइटी एण्ड इटस एनीमीज 1945 लोजिक विदाउट एजम्पशंस (पी० ए० एस० 1946) न्यू फाउंडेशंस आफ लोजिक (माइंड) 1949 दी व्यूज कंसनिंग ह्यूमन नालेज (सी० बी० पी० III) 1956 फिलोसोफी आफ साइंस, ए परसनल रिपोर्ट (बी पी एम 1957)
प्राइस हेनरी हेबरली, (1899–)	परसेप्शन 1932 ह्यूम्स थ्योरी आफ दी एक्सटर्नल वर्ल्ड 1940 थिंकिंग एण्ड एक्सपीरियंस 1953 सम आस्पेक्टस आफ दी कॉनफ्लिक्ट बिटवीन साइंस एंड दि रीजन 1953
प्रायर आर्थर नारमन, (1914–)	लाजिक एण्ड दी बसिस आफ एथिक्स 1949 फारमल लाजिक 1955
प्रिंगल-पेटीसन, ए० एस०	देखें, सेथ ए०
प्लैंक मक्स (1858 1947)	द फिलासफी आव फिजिक्स 1936

फयरबाख, लुडविग, (1805–1872)	दास वेसन देस क्रिसटेंटम्स 1841 (1854) सामृतलिख वक 1846–66
फारबर, मारविन (1901	दी फाउंडेशन आफ फिनोमिनालोजी 1943
फिंडले जॉन नोमियर (1903–)	मीनाग्स थ्योरी आफ आवजक्ट्स 1933 सम रीएक्शस टू रीसेंट केम्ब्रिज फिलासफी (ए० ज० पी०) 1940–41 टाइम ए ट्रीटमट आफ सम पजल्स (ए० जे० पी० तथा एल एल I) 1941 एन एग्जामिनशन आफ टॅसेश (सी० बी० पी०) 1956
फिशर क्यूनो (1824–1907)	सिस्टम दर लोजिक उन्द मेटाफिजिक 1852 गेशिप्टे दर यूरेन फिलासफी 1854–77
फिस्के, जोन (1842–1901)	आउटलाइन्स आफ कोस्मिक फिलोसफी 1874 दी आइडिया ऑफ गाड 1886
फीग्ल, हर्बट (1902–)	थ्योरी उन्द अफहरुग इन दा फिजिक 1929 'लोजीकल ईम्पीरिसिज्म', टवन्टीयथ सेनचुरी फिलोसफी, सपा० डी० रून्स 1943 दि प्रिंसिपाइज नान डिमप्यूटान्डम ? 'आन दी मीनिंग एंड दी लिमिटस आफ जस्टीफिकेशन' (फिलोसोफीकल एनालिसिस) सपा० एम० ब्लेक 1950
फुलटन, जोज स्टुअट (1859–1925)	ए सिस्टम आफ मेटाफिजिक्स, 1904
फेकनर, गुस्टाव थियोडोर (1801 1897)	जेन्ड अवेस्ता 1851
फरियर, जेम्स फ्रेडरिक (1808 1864)	इंसटीटयूटस आफ मेटाफिजिक्स 1854 फिलोसोफिकल वक्स आफ दी लंट जेम्स फ्रेडेरिक फेरियर, 1875–88
फ्रेजर, अलक्जेंडर कपबल (1819 1914)	दी फ्लिोसफी आफ थीइज्म, 1895 7 बकल एन्ड स्पिरिचुअल रियलिज्म, 1908
फ्रेंक, फिलिप (1884–)	इंटरप्रेटेशन्स एंड मिसइंटरप्रेटेशंस आफ मॉडन फिजिक्स 1938

	बिटवीन फिजिक्स एंड फिलोसफी, 1941 फाउंडेशन्स श्राफ फिजिक्स (यू० एस०) वाल्यूम न० सेवन 1946
फ्रेंकलिन क्रिस्टीन लड (1847–1930)	श्राव दी एलजबरा श्राफ लोजिक, स्टडीज इन लोजिक मेम्बस श्राफ जोंस हापकिंस यूनिवर्सिटी द्वारा लिखित 1883
फ्रेगे गाटलाब, (1848–1925)	(श्र) बेग्रिफशिफ्ट 1879 डाई ग्रुंडलाजेन दर मथमेटिक 1884 (1950) (स) ग्रुंडगजेस्टेजा दर मथमेटिक 1893–1903) पी० गीच तथा एम० ब्लेक कृत फिलोसोफीकल राइटिंग्स श्राफ गाटलाब फ्रेगे’ (1952) मे (श्र) तथा (स) का श्राशिक श्रनुवाद हुश्रा है कुछ श्रन्य शोधलेख तथा समीक्षाएँ भी इसमे ह ।
पिलट राबट (1838–1910)	थीइज्म 1877 एंटी-थीइस्टिक थ्योरीज 1879
बटलर सेमुश्रल (1835 1902)	लाइफ एण्ड हैबिट 1877 इवोल्यूशन श्राल्ड एण्ड न्य 1879
बगमान गुस्ताव 1906)	दी मेटाफिजिक्स श्राफ लोजिकल पोजिटिविज्म 1954
बगसा, हनरी लुइ (1859–1941)	लेस डोनीस इमीजियेटस डी ला कांशस 1889 [टाइम एण्ड फ्री विल’ (1910)] मेटीयर एट मेमायर 1896 (1911) ली रायर 1906 (1911) इंट्रोडक्शन ए ला मेटाफिजिक रियू डी मेटाफिजिक *1903 (1913)* ल एवोल्यूशन क्रिएटरिस 1907 । ल इनर्जी स्पीरीचुश्रल 1919 (माइण्ड एण्ड एनर्जी 1920) ला परसेप्शन दू चेंजमट 1911 क्यूरी एट सायमल्टेनीटी 1922

	ले ड्यूक्स सोर्सेज डी ला मारल एट डी ला रिलीजन 1932 (1935) ला पेंसी एट ले मूवाट 1934 द क्रियटिव माइण्ड 1946
बर्लिन, इसाइया (1909)	वेरीफिकेशन (पी ए एस) 1938 काल मार्क्स 1939 एम्पीरिकल प्रापाजीशन्स एण्ड हायपोथेटिकल स्टटमेंटस (माइण्ड) 1950 लोजिकल ट्रासलेशन (पी० ए० एस०) 1950 हिस्टारिकल इनवीटेबिलिटी 1954
बूल, जार्ज (1815–1864)	दा मथमटिकल एनालिसिस आफ लाजिक 1847 एन इनवेस्टीगेशन आफ दी लाज आफ थॉट 1854 जाज बूल्स कलक्टेट लाजीकल वक्स 1916 स्टडीज इन लोजिक एण्ड प्रोबेबिलिटी 1952
बूतराक, एमिल (बाउट्राउ) (1845–1921)	डी ला काटिनजेंस डेन लाइस डी ला नेचर 1874 (1916) ल आइडी डी लोई नेचुरली 1895
बूश्नर, लुडविग फ्रायडरिख, (1824–1899)	क्राफ्ट उन्द स्टाफ, 1855 (1864) डाई स्टेलग डस मसकेन इन दर नेचर 1869 (1872)
बूखलर जस्टस (1914–)	चार्ल्स पियर्सेज एम्पीरीसिज्म 1939 नेचर एण्ड जजमट 1955
बेंजमिन एब्राम कोर्नेलियस (1897–)	दी लाजिकल स्ट्रक्चर आफ साइन्स, 1936 एन इन्ट्रोडक्शन टू दी फिलोसोफी ऑफ साइन्स,' 1937 'फिलोसफी इन अमेरिका बिटवीन टू वार्स, फिलोसाफिक थाट इन फ्रास ऐंड दी यूनाइटेड स्टेट्स, मथा० एम फारबर 1950 ऑपरेशनिज्म 1955
बेन, एलक्जेंडर (1818–1903)	दी सेंसेज एण्ड दी इन्टेलक्ट 1855 दी इमोशन्स एण्ड दी विल 1859

	लोजिक डिडक्टिव एण्ड इंडक्टिव 1870 आटोबायोग्राफी 1904
बेन्स, टामस स्पेंसर (1823–1887)	ऐसे आन दी न्यू एनलीटिक आफ लोजिकल फार्म्स, 1850
बेलफोर (प्रथम अर्ल) आयर–जेम्स (1843–1930)	ए डिफेंस ऑफ फिलोसोफिक डाउट 1879 दी फाउंडेशंस आफ बिलीफ (1895)
बेली सम्युअल (1791–1870)	ए रिव्यू आफ बकलेस थ्योरी आफ विज़न 1842 लेटस आन दी फिलोसफी आफ दी ह्यूमन माइंड 1855–63
बेवन एडविन रॉबर्ट (1870–1943)	सिम्बोलिज्म एण्ड बिलीफ 1938
बाउन, बोर्डन पार्कर (1847–1910)	परसोनेलिज्म *1908*
बोखेन्स्की (बोचेंस्की) इनोसेंटियस एम० (1902)	ला लोजिक डी थियोफ्रास्टे 1947 प्रसिस डी लोजिक मथेमेटीक 1948 एनसियेंट फारमल लोजिक 1951
बोमेन आर्चिबाल्ड एलन (*1883–1936*)	स्टडीज इन दी फिलोसोफी आफ रीजन 1938 *ए सेक्रामेटल यूनीवर्स 1938* परसोनलिज्म 1908
बोल्जानो बर्नार्ड फ्रेंसिस्कस	विस्सनशाफ्टस्लेहर 1836
जोहान 1781–1848)	पराडाक्सियन डेस अनएंडलिचेन 1851 (1950)
बोर्न मैक्स (1882–)	दा रस्टलेस यूनीवर्स 1935 एक्सपेरिमेंट एण्ड थ्योरी 1943 नेचुरल फिलोसफी आफ कॉज एण्ड चांस *1949*
बोसांके बर्नार्ड (1848–1823)	नॉलेज एण्ड रियलिटी 1885 लाजिक 1888 हिस्ट्री आफ एस्थटिक 1892 फिलोसाफिकल थ्योरी आफ दी स्टेट 1899 दा प्रिंसिपल्स आफ इंडीविजुअलिटी एण्ड वेल्यू 1972

	दी वल्यू एण्ड डेसटिनी आफ दी इन्डीविजुअल 1913 दी डिस्टिंक्शन बिटवीन माइण्ड एण्ड इटस आब्जेक्टस 1913 इम्पलीकेशन एण्ड लीनियर इनफरेंस 1920 दी मीटिंग आफ एक्स्ट्रीम्स इन कोंटेम्परेरी फिलोसफी 1921 लाइफ एण्ड फिलोसफी (सी॰ बी॰ पी॰ १९२४) बर्नार्ड बोसांके एण्ड हिस फ्रेंडस, सपा॰ जे एच म्यारहेड 1935
ब्राइटमैन, एडगर शफील्ड (1884–1653)	परसनलिटी एण्ड रिलीजन 1934
ब्राउवर, लुइटजन एकबर्टस जन (1881–)	इन्टयूशनिज्मे एन फारमलिज्मे 1912 अनुवाद, बुलेटिन॰अमे॰मैथे॰ सोसाइटी (1913) कान्सनेस, फिलोसफी एण्ड मथमेटिक्स (प्रोसीडिंग्स दशम इन्टरने॰ कांग्रे॰ फिलो॰) 1949 इन्ट्यूशनिज्म 1956
ब्रिजमैन, पर्सी विलियम्स (1182)	दी लाजिक आफ मॉडन फिजिक्स 1927 दी नेचर आफ फिजीकल थ्योरी 1936 रिफलक्शन्स आफ ए फिजीसिस्ट 1950 दी नेचर आफ सम आफ आवर फिजीकल कान्सेप्टस 1952
ब्रिटन, काल विलियम्स (1902–)	कम्यूनिकेशन, ए फिलासोफिकल स्टडी आफ लग्वेज 1936 जान स्टुअर्ट मिल 1953
ब्रुंशविग, लियोन (1969–1944)	लेस एटेपस डी ला फिलोसफी मेथेमेटिक 1912 एल एक्सपीरियेंस ह्यूमैन एड ला केजुअलटी फिजिक 1622 लेस प्रोग्रेस डी ला कॉन्शस डस ला फिलोसफी आक्सीडेंट 1927 ला कानेसास डी सोई 1931 ला फिलोसफी डी ले इस्पिरिट 1949

	लोजिक, डिडक्टिव एण्ड इन्डक्टिव 1870 आटोबायोग्राफी 1904
बेन्स टामस स्पेंसर (1823–1887)	ऐस आन दी न्यू एनलीटिक आफ लोजिकल फार्म्स, 1850
बेलफोर (प्रथम अर्ल)	ए डिफेंस आफ फिलोसोफिक डाउट 1879
आयर–जेम्स (1843–1930)	दी फाउन्डेशन्स आफ बिलीफ (1895)
बेली सम्युअल (1791–1870)	ए रिव्यू आफ बकलेस थ्योरी आफ विज़न 1842 लेटर्स आन दी फिलोसफी आफ दी ह्यूमन माइंड 1855-63
बेवन एडविन रॉबर्ट (1870–1943)	सिम्बोलिज्म एण्ड बिलीफ 1938
बाउन, बोडन पार्कर (1847–1910)	परसोनेलिज्म 1908
बोखेन्स्की (बोचेन्स्की) इनोसेंटियस एम० (1902)	ला लोजिक डी थियाफारस्टे 1947 प्रेसिस डी लोजिक मथेमेटीक 1948 एनसियेंट फारमल लोजिक 1951
बोमैन आर्चिबाल्ड एलन (1883–1936)	स्टडीज इन दी फिलोसोफी आफ रीजन 1938 ए सेक्रामटल यूनीवर्स 1938 परसोनलिज्म 1908
बोल्जानो, बनर्ड प्लेसिडस जोहान 1781–1848)	विस्सनशाफ्टस्नेहर 1836 पराडोक्सियन डेस अनऐंडलिचेन 1851 (1950)
बोन मैक्स (1882–)	दा रेस्टलेस यूनीवर्स 1935 एक्सपेरिमेंट एण्ड थ्योरी 1943 नेचुरल फिलोसफी आफ काज एण्ड चास 1949
बोसांके बनर्ड (1848–1823)	नालेज एण्ड रियलिटी 1885 लाजिक 1888 हिस्ट्री आफ एस्थटिक 1892 फिलोसाफिकल थ्योरी आफ दी स्टेट 1899 दा प्रिंसिपल्स आफ इन्डीविजुअलिटी एण्ड वेल्यू 1972

दी वेल्यू एण्ड डेसटिनी आफ दी इंडीविजुअल 1913
दी डिस्टिंक्शन बिटवीन माइण्ड एण्ड इट्स आब्जेक्ट्स 1913
इम्पलीकेशन एण्ड लीनियर इनफरेंस 1920
दी मीटिंग आफ एक्स्ट्रीम्स इन कोटेम्परेरी फिलोसफी 1921
लाइफ एण्ड फिलोसफी (सी० वी० पी० १९२४)
बनार्ड बोसांके एण्ड हिस फ्रेंडस, सपा० जे एच म्योरहैड 1935
परसनलिटी एण्ड रिलीजन 1934

ब्राइटमैन, एडगर शफील्ड (1884–1653)

ब्राउवर, लुइटजन एक्बर्टस जन (1881–)
इन्ट्यूशनिज्मे एन फारमेलिज्मे 1912
अनुवाद, बुलेटिन०अमे०मैथे० सोसाइटी (1913)
कान्शसनेस, फिलोसफी एण्ड मेथेमेटिक्स (प्रोसीडिंग्स दशम इन्टरने० कांग्रे० फिलो०) 1949
इन्ट्यु्शनिज्म 1956

ब्रिजमैन, पर्सी विलियम्स (1182)
दी लाजिक आफ माडन फिजिक्स 1927
दी नचर आफ फिजीकल थ्योरी 1936
रिफलैक्शस आफ ए फिजीसिस्ट 1950
दी नेचर आफ सम आफ आवर फिजीकल कॉंसेप्टस 1952

ब्रिटन, काल विलियम्स (1902–)
कम्यूनिकेशन, ए फिलोसोफिकल स्टडी आफ लंग्वेज 1936
जान स्टुअर्ट मिल 1953

ब्रुंशविग, लियोन (1969–1944)
लेस एटेपस डी ला फिलोसफी मैथमेटिक 1912
एल एक्सपीरियेंस ह्यूमैन एट ला केजुअलटी फिजिक 1622
लेस प्रोग्रेस डी ला कॉंशस डस ला फिलोसफी आक्सीडेंट 1927
ला कोनसास डी सोई 1931
ला फिलोसफी डी ले इस्पिरिट 1949

ब्रेंटानो फ्राज क्लीमेस	सायकोलोजी वोम इम्पीरिस्केन स्टेंडपक्टे 1874
(1838–1917)	वोम अ्रसप्रुग मिटलिचर अर्कैंतनिस 1889 (1902)
	डाई वीर फासेन दर फिलोसफी 1895
	वोम डेजाइनगाटस 1929
	वाहरहेइट उन्द एवीडेंज, 1930
	केटीगारियनलहर 1933
ब्रेथवेट, रिचड बेवन	दी आइडिया आफ नेसेसरी कनेक्शन (माइंड) 1927–8
(1900-)	साइंटिफिक एक्सप्लनेशन 1953
	एन एम्पीरिसिस्टस व्यू आफ दी नेचर आफ रिलीजियस बिलीफ 1955
	थ्योरी आफ दी गेम्स एज ए टूल फार दी मोरल फिलोसफर 1955
	प्रोबेबिलटी एण्ड इन्डक्शन (बी० पी० एम,) 1957
ब्रेडले, फ्रासिस हर्बट	दी प्री–सपोजीशस आफ क्रिटीक्ल हिस्ट्री 1874
(1846–1924)	एथीक्ल स्टडीज 1876
	दी प्रिंसपल्स आफ लाजिक 1883
	एपीयरेंस एण्ड रिएलिटी 1893
	एसे आन ट्रूथ एण्ड रियलिटी 1914
	कलेक्टेड ऐसेज 1935
ब्राड, चार्ल्स डनबर	परसेप्शन, फ्रिजिक्स एण्ड रियलिटी 2914
(1887-)	साइंटिफिक थॉट 1923
	क्रिटीकल एण्ड स्पेकुलेटिव फिलोसफी (सी बी पी) 1924
	दी माइंड एण्ड इटस प्लेस इन नेचर 1925
	फाइव टाइप्स आफ ऐथीकल थ्योरी 1930
	दी प्रिंसपल आफ डिमाण्सट्रेटिव इंडक्शन (माइंड) 1930
	एन एग्जामिनेशन आफ मैकटेगाटस फिलोसफी 1933–38
	एथिक्स एण्ड दि हिस्ट्री आफ फिलोसफी 1952
	रिलीजन फिलोसफी एण्ड फिलोसोफिकल रिसर्च 1953

ब्लाशाड, ब्राड (1892–)	दी नेचर आफ थाट 1939 करेंट स्ट्रिक्चस ऑन रीजन (पी० आर० 1945) ऑन फिलोसोफिकल स्टाइल 1954
ब्लक, मक्स (1609–)	दी नेचर आफ मैथेमेटिक्स 1933 लग्वेज एण्ड फिलोसफी 1949 प्राब्लम्स आफ एनालिसिस 1954
मासल, गब्रियल (1889–)	जनल मटाफिजीक 1927 (1952) एतरे एट एवियोर 1935 (1949) दि फिलोसफी आफ एग्जिस्टेंस 1948 *दी मिस्ट्री आफ बीग 1950*
मारीचल, जोसफ (1878–1944)	लो प्वाइट डी डिपाट डोला मेटाफिजिक 1923–6
मार्जेनो, हेनरी (190–)	लिंडसे क सह्कार म फाउडेशन आफ फिजिक्स (1939) दी नेचर आफ फिजीकल रियलिटी, 1950
मिचल सर विलियम (1906–)	दी स्ट्रक्चर एण्ड ग्रोथ आफ दी माइंड 1907 दी प्लेस आफ माइण्डस इन दी वल्ड 1933
मिल, जॉन स्टुअर्ट (1966–1873)	ए सिस्टम आफ लोजिक 1843 डिसर्टेश स एण्ड डिसक्श स 1869 75 एग्जामिनेशन आफ सर विलियम हेमिल्टन्स फिलोसफी 1865 आगस्ट कोम्ट एण्ड पाजीटिविज्म 1866 सम्पादक जेम्स मिल एनालिसिस आफ दी फेनोमीना आफ दी ह्यूमन माइण्ड 1869 आटोबायोग्राफी 1873 थी ऐसेज आन रिलीजन 1874 सेप्ट लॉकस सर ल एटरेट लेस प्रोमियस प्रिंसिपल्स [एम० मेकमोन जे० आर० हाइडस तथा जे० एम० मैकम्रिमोन कृत बिबलियोग्राफी आफ दी पब्लिश्ड वक्स आफ जे० एस० मिल देखें]
मिलहॉड, गेस्टन (1858–1918)	एस्साई सुरलस कंडीशंस एट लस लिमिटस् डी ला सर्टीट्यूड लाजिक 1894 ली रेशनल, 1898

मोड, जॉज हवट (1863–1931)	दी फिलोसफी ग्राफ दी प्रेजेंट 1932 माइड, सेल्फ एण्ड सोसाइटी 1934 मूवमट्स ग्रॉफ थॉट इन दी नाइनटीथ सेनचुरी, 1936 दी फिलोसफी माफ दी एक्ट 1938
मीनोग, एलेक्सियस वॉन (1853–1930)	ह्यूम स्टडीन, 1877–82 ग्रण्डरसकह्जेन जर वरथयोरिय, 1894 प्रबर प्रसाहेमेन 1902 प्र टरसचनजेन जर गेजॅस्टॅड थ्योरी उन्द साइकोलोजी 1904
मीसेज रिचड वान (1883–1953)	वार्शीनलिखकीत स्टटेटिस्टिक उन्द वार्हेहि, 1928 (1939) क्लीस लेहबक डेस पोजीटिविजमस 1939 (पोजिटिविज्म 1951) (स्टडीज इन मेथमेटिक्स एण्ड मेकेनिक्स प्रेजेंटेड टू रिचड वोन मिसेज मे) 1954
मूर, जाज एडवड (1873–)	फ्रीडम, (माइण्ड 1898) दी नचर ग्राफ जजमेंट', माइण्ड 1899 नेसेसिटी माइण्ड 1900 प्रिंसीपिया एथिका 1903 फिलोसोफिकल स्टडीज 1922 ए डिफेंस ग्राफ कामनसेंस (सी० बी० पी० II) 1925 प्रूफ ग्राफ एक्सटनल वल्ड (पी० बी० ए० 1939) एन ग्राटोबाइयोग्राफी, ए रिपलाई टू माई क्रिटिक्स, द फिलोसफी ग्राफ जी० ई० मूर मे सम्पादक पी० ए० शिल्प 1942 सम मेन प्रोब्लम्स ग्राफ फिलोसफी 1953 विजुग्रल सेंस डेटा (बी० पी० ए०) 1957
मेयरसन, एमिली (1856–1933)	ग्राइडेंटिटी एट रियलिटी, 1908 (1903) डी ल एक्सप्लीकेशन डॅस लेस साइंसेज 1621 ला डीडक्शन रिलेटिविस्ट 1925 ड्यू केमिनमेंट डी ला पॅस 1931 एसेज 1936

मेस, सेसिल अलेक (1894-)	दी प्रिंसिपल्स आफ लाजिक 1933 इन्ट्रोस्पेक्शन एण्ड एनालिसिस (फिलोसोफिकल एनालिसिस-सम्पादक एम ब्लैक 1950) सम ट्रेन्ड्स इन दी फिलोसफी आफ माइण्ड' (बी० पी० एम० 1957)
ईके जी जान स्टुअट (1860–1935)	आउटलाइन्स आफ मेटाफिजिक्स 1902 एलीमेंट्स आफ कन्सट्रक्टिव फिलोसोफी 1917
मैकटेगट, जान–मैकटेगट एलिस, (1866–1925)	स्टडीज इन दी हीगेलियन डाइलेक्टिक 1896 स्टडीज इन हीगेलियन कास्मोलाजी 1910 सम डागमास आफ रिलीजन, 1906 ए कमट्री ऑन हीगल्स लोजिक 1910 दी नेचर आफ एग्जिसटेंस, 1921–7 एन आटोलोजिकल आइडियलिज्म (सी० बी० पी० I) 1924 फिलोसोफिकल स्टडीज 1934
मैकमरे, जान 1891-)	रीजन एण्ड इमोशन 1935 दा बाउन्डरीज आफ साइंस 1959
मैनसल हेनरी लागवील (1820–1871)	प्रोलगामेना लोजिक 1851 दा लिमिटस आफ रिलिजियस थाट 1858 दा फिलोसफी आफ दी कडीशण्ड, 1866
मैरिटेन, जेक्विज (1882-)	इन्ट्रोडक्शन जनरल ए ला फिलोसफी 1920 एन इन्ट्रोडक्शन टू फिलोसफी 1933 ल आडर डस कासेप्टस ला पिटाइट लोजिक 1923 (इन्ट्रोडक्शन टु लाजिक 1937–समीक्षा 1946 एज फारमल लाजिक) डिस्टिंगगुर पाउर यूनिरर आउ लस डिग्रेस ड्यूमवियर 1932 (दी डिग्री आफ नॉलेज) (1938) लीका सर ल इतर एत लस प्रिमियस प्रिंसिपस डी ला रेजन स्पकुलटिव 1934 ए प्रिफेस टू मेटाफिजिक्स, 1939

मोड, जॉज हबट (1863-1931)	दी फिलोसफी ग्राफ दी प्रेजेंट 1932 माइड, सेल्फ एण्ड सोसाइटी 1934 मूवमेंटस ग्रॉफ थॉट इन दी नाइनटीथ सेन्चुरी, 1936 दी फिलोसफी ग्राफ दी एक्ट 1938
मोनाग एलेक्सियस वॉन (1853-1930)	ह्यूम स्टडीन, 1877-82 अण्डरसकह्ंजेन जर वरथेयोरिय 1894 प्रबर अन्नाहेमेन 1902 म टरमचनजेन जर गेजेंस्टेंड थ्योरी उन्द साइकोलोजी 1904
मीसेज, रिचड वॉन (1883-1953)	वार्शानलिखकीत स्टटेटिस्टिक उन्द वार्हेट, 1928 (1939) क्लीस लेहबक वेस पोजीटिविजमस 1939 (पोजिटिविज्म, 1951) (स्टडीज इन मेथमेटिक्स एण्ड मेकेनिक्स प्रेजेंटेड टु रिचड वोन मिसेज म) 1954
मूर, जाज एडवड (1873-)	फ्रीडम (माइण्ड 1898) दी नचर ग्राफ जजमेंट', माइण्ड 1899 'नेसेसिटी माइण्ड 1900 प्रिंसीपिया एथिका 1903 फिलोसोफिकल स्टडीज 1922 ए डिफेंस ग्राफ कामनसेंस (डी० बी० पी० II) 1925 प्रूफ ग्राफ एक्सटनल वल्ड (पी० बी० ए० 1939) एन ग्राटोबाइयोग्राफी, ए रिपलाई टु माई क्रिटिक्स द फिलोसफी ग्राफ जी० ई० मूर मे सम्पादक पी० ए० शिल्प 1942 सम मेन प्रोब्लम्स ग्राफ फिलोसफी 1953 विजुग्रल सेंस डेटा (बी० पी० ए०) 1957
मेयरसन, एमिली (1856-1933)	ग्राइडेंटिटी एट रियलिटी, 1908 (1903) डी ल एक्सप्लीकेशन डंस लेस साइंसेज 1621 ला डीडक्शन रिलेटिविस्ट 1925 ड्यू केमिनमेंट डी ला पेंस 1931 एसेज 1936

मेस, सेसिल प्रलेक (1894-)	दी प्रिंसिपल्स ग्राफ लोजिक 1933 इन्ट्रोस्पेक्शन एण्ड एनालिसिस (फिलोसोफिकल एनालिसिस-सम्पादक एम ब्लक 1950) सम ट्रडस इन दी फिनोसफी ग्राफ माइण्ड' (बी० पी० एम० 1957)
मैके भी जान स्टुग्रट (1860-1935)	ग्राउटलाइ स ग्रॉफ मेटाफिजिक्स 1902 एलीमेंटस ग्राफ़ कन्सट्रक्टिव फिलोसोफी 1917
मैकटेगट, जान-मैक्टेगट एलिस (1866-1925)	स्टडीज इन दी हीगेलियन डाइलेक्टिक 1896 स्टडीज इन हीगेलियन कास्मोलोजी 1910 सम डागमास ग्राफ रिलीजन 1906 ए कमेंट्री ग्रान हीगल्स लोजिक 1910 दी नेचर ग्राफ एग्जिसटेंस, 1921-7 एन ग्रादोलोजिकल ग्राइडियलिज्म (सी० बी० पी० I) 1924 फिलोसोफिकल स्टडीज 1934
मैकमरे जान 1891-)	रीजन एण्ड इमोशन 1935 दा बाउडरीज ग्राफ साइंस 1959
मैनसल, हेनरी लागवील (1820-1871)	प्रोलेगामेना लोजिक 1851 दा लिमिटस ग्राफ रिलिजियस थाट 1858 दा फिलोसफी ग्राफ दी कडीशण्ड, 1866
मैरिटेन, जेक्विस (1882-)	इन्ट्रोडक्शन जनरल ए ला फिलोसफी *1920* एन इन्ट्रोडक्शन टु फिलोसफी 1933 ल ग्राडर डस कासेप्टस ला पिटाइट लोजिक 1923 (इन्ट्रोडक्शन टु लाजिक 1937-समीक्षा 1946 एज फारमल लाजिक) डिस्टिंगुर पाडर यूनिरर ग्राउ लस डिग्रेस ड्यूसेवियर, 1932 (दी डिग्री ग्राफ नॉलेज) (1938) लोकासर ल इतर एत लस प्रिंसिपस प्रिंसिपस डी ला रेजन स्पकुलटिव 1934 ए प्रिफेस टु मेटाफिजिक्स, *1939*

	ह्यू मेनिज्म इ टेग्रल 1936 (द ह्यू मानिज्म 1938) दी रेंज आफ रीजन 1952 सी० ए० फीचर कृत दी फिलोसफी आफ जेक्स मेरीटेन, 1953
मैविन, वाल्टर टेलर (1872–1944)	एन इ ट्रोडक्शन टु सिस्टेमटिक फिलोसफी 1903 दी इमसीपशन आफ मेटाफिजिक्स फ्राम एपिस्टेमोलोजी वि न्यू रियलिज्म 1912 ए फस्ट बुक इन मेटाफिजिक्स, 1912
मैल्कम, नामन एड्रियन (1911–)	दी नेचर आफ ए टेनमट (माइण्ड 1940) आर नेससरी प्रोपोशीश स रियली वरबल ? (माइण्ड) 1940 मूर एण्ड आर्डीनरी लग्वज (दी फिलोसफी आफ जी० मूर, सम्पा० पी० ए० शिल्प 1942) दी वेरीफिकेशन आग्यू मेट (फिलोसोफिकल एनालिसिस सम्पा० एम ल्क 1950
मैश, अर्न्स्ट (मैख) (1838–1916)	डाई मकनिक इन इहर एटविक्लग 1883 दी साइस आफ मिकेनिक्स (1893) बरटॅग जर एनालाइस डर समफिन्ड्यू जेन 1886 (1897) डाई एनालाइस दर इम्पफाइजेन 1900 क रूप म पुन प्रका० पापुलर विशनफापरलिकन वारलस आनेजन 1896–(1898) अर्कॅतनिस उन्द इरटग 1905
मारिस, चाल्स डब्लू (1901–)	लाजिकल पोजिटिविज्म प्रेगमटिज्म एण्ड साइटिफिक एम्पीरिसिज्म (एक्चुअलिटीज 1937) साइटिफिक एम्पीरिसिज्म, (यू० एस० वाल्यूम न० I 1638) फाउ डेशन आफ दी थ्योरी आफ साइन्स (यू एम वाल्यूम I न० 2 1938) साइस लग्वज एण्ड बिहेवियर 1946
मागन, सी० लॉयड (1852–1936)	इ सटिक्ट एण्ड एक्सपीरिए स 1912 इमरजेंट एवाल्यूशन 1923

रसल (तृतीय आर्ल), बर्ट्रेंड आर्थर विलियम (1872)	एन एसे आन दी फाउण्डेशन्स आफ जियोमेट्री 1997
	ए क्रिटिकल एक्सपोजीशन आफ दी फिलासफी ऑफ लेबनिज 1900
	दि प्रिंसपल्स आफ मेथेमटिक्स 1903
	मीनोंग्स थ्योरी आफ कम्प्लक्सेज एण्ड असम्पशंस (माइण्ड) 1904
	आन डिनोटिंग माइण्ड 1905
	(ए० एन० व्हाइटहेड के सहकार में) प्रिंसिपिया मैथमेटिका 1010–13
	फिलोसोफिकल एसेज 1910
	दी प्राब्लमस आफ फिलोसफी 1912
	आवर नालेज आफ दी एक्सटर्नल वर्ल्ड 1914
	मिस्टीसिज्म एण्ड लोजिक 1917
	फिलोसफी आफ लाजिकल एटोमिज्म (मोनिस्ट) 1918–19
	इन्ट्रोडक्शन टु मैथमेटिक्स फिलोसफी 1919
	लोजिकल एटोमिज्म (सी० बी० पी० I 1924)
	दी एनालिसिस आफ मैटर 1927
	एन आउटलाइन आफ फिलोसफी 1927
	दा लिमिटस आफ एम्पीरिसिज्म (पी० ए० एस० 1936)
	एन इन्क्वायरी इन्टू मीनिंग एण्ड ट्रुथ 1940
	माई मेंटल डवलपमेंट एण्ड ए रिपलाई टु क्रिटिक्स, दी फिलोसफी आफ बर्ट्रेंड रसल सम्पा० पी० ए० शिल्प 1944
	ए हिस्ट्री आफ वस्टर्न फिलासफी 1945
	ह्यूमन नालेज एण्ड इटस स्कोप एण्ड लिमिट 1948
	लाजिक एण्ड नालेज 1959
राइट, चान्सी (1830–1875)	फिलोसोफिकल डिस्कशन्स 1877 (1941)
राइट जार्ज हेनरिक वॉन (1916-)	द लाजिकल प्राब्लम आव इंडक्शन फार्म एण्ड कंटेंट इन लाजिक) 1949

	ए ट्रीटीज ऑन इडक्शन एण्ड प्राबबिलिटी 1951 एन एसे इन मोडल लाजिक 1951
राइल गिलबट (1900-)	आर देयर प्रोपोजीशन्स ? (पी० ए० एस०) 1929 सिस्टेमेटिकली मिसलीडिंग इक्सप्रेशस (पी० ए० एस० 1931 तथा एल एल I) फिनोमेनोलोजी (पी० ए० एम० एस०) 1933 टॅकिंग साइडस इन फिलासफी (फिलो०) 1937 केटेगारीज (पी० ए० एस०) 1938 तथा (एल एल II) फिलोसोफिकल आग्यु मटस 1945 दा कान्सेप्ट ऑफ माइण्ड, 1949 इफ, सो एण्ड बिकाज, (फिलोसाफिकल एनालिसिस, सम्पा० मेक्स ब्लेक 1950) फीलिंग (पी० क्यू०) 1950 डाइलेमाज 1954 सेंसेशन (सी० बी० पी० III 1956) दी थ्योरी आफ मीनिंग (बी०पी०एम०) 1957 दी कान्सेप्ट आफ माइण्ड एला स्पिरिटो कम कम्पाटमटो" के इतालवी अनुवाद मे पुस्तक सूची देखें। सम्पा० एफ रोमोलडी 1955
राधाकृष्णन सर्वपल्ली (1888-)	दी रेन आफ रिलीजन इन कान्टेम्परेरी फिलोसफी 1920 रिपलाई टु क्रिटिक्स, दि फिलोसफी आफ एस आर (सम्पा० शिल्प) 1952
रिकट, हायनरिख (1863-1936)	कलचर विसेनशाफ्ट उन्द नेचर विसनशाफ 1899
रिचो आयर डविड (1891-)	साइटिफिक मेथड 1923 नेचुरल हिस्ट्री आफ माइण्ड 1936 एसेज इन फिलोसफी 1948
रीकनबाख (राइकनबक) हैंस (1891-1933)	वारषोनलिखकीतलहर 1935 (1949) एक्सपारियेन्स एण्ड प्रेडीक्शन 1938 फिलोसाफिक फाउडेशन्स आफ क्वान्टम मकनिक्स, 1944

	एलीमटस ग्राफ सिम्बोलिक लोजिक 1947 दी राइज ग्राफ साइटिफिक फिलोसफी 1951
रेनोवियर, चाल्स (1819–1903)	एसस डी क्रिटिक जेनरल 1854–64
रमजे, फ्रैंक प्लपटन (1903–1930)	दी फाउंडेशन्स ग्राफ मेथमेटिक्स एण्ड अदर लोजिकल ऐसेज 1931
रेशडाल हेस्टिग्स (1858–1924)	'पर्सनालिटी ह्यूमन एण्ड डिवाइन" पर्सनल ग्राइडियलिज्म सम्पा० एच स्टूग्रट 1902 दी थ्योरी ग्राफ गुड एण्ड ईविल 1907
राइस जोसिया (1855–1916)	दी रिलीजियस ग्रास्पक्टस ग्राफ फिलोसफी, 1885 दी स्पिरिट ग्राफ माडन फिलासफी 1892 दी वल्ड एण्ड दी इन्डीविजुग्रल 1900 राइसे'स लोजिकल एसेज, सम्पा० डी० एस० रॉबिनसन, 1951 पी० ग्रार 1916 मे पुस्तक सूची
राबटसन जाज क्रूम (1842–92)	हाब्स 1186 फिलोसोफिकल रिमस 1894
राबिन्सन रिचड (1902–)	दी प्रोविन्स ग्राफ लाजिक 1931 प्लटोज ग्ररलियर डायलेक्टिक, 1941 डेफीनिशन 1950
रांजस ग्राथर केनियन (1908–)	दी प्राब्लम ग्राफ एरर" ऐसेज इन क्रिटिकल रियलिज्म 1920 व्हाट इज ट्रुथ ? 1923
रोमेन्स, जाज जॉन (1848–1894)	ए कैंडिड एग्जामिनेशन ग्राफ थीइज्म 1878 माइण्ड, मोशन एण्ड मोनिज्म 1895
लवजाय, ग्राथर ग्रानकिन (1873–)	दी रिवोल्ट ग्रगेस्ट ड्यूग्रलिज्म 1930 दी ग्रेट चेन ग्राफ बीग 1936 ऐसेज इन दी हिस्ट्री ग्राफ ग्राइडियाज 1946
लाड जाज ट्रंबुल (1842–1921)	फिलोसफी ग्राफ नालेज 1897 ए थ्योरी ग्राफ रियलिटी 1899

लाड-फ्र कलिन त्रिस्टीन	फ़ैंकलिन, त्रिस्टीन लाड देखें
ली राय एड्वाड (1870)	ला पॅंस इ्ट्यूटिव 1929–30
लीयमन, म्राटो (1840–1912)	कॅंट उ द डाई एपीजोनेन 1865
लीविस क्लेरॅस प्रर्विंग (1883–)	ए सर्वे माफ सिम्बोलिक लाजिक 1918 माइण्ड एण्ड दी वल्ड मॉडर 1929 जी० एच० लगफोर्ड के सहकार म सिम्बोलिक लाजिक 1932 एन एनालिसिस पाफ नॉलिज एण्ड वेल्यूएशन 1946
लेवीज जॉज हेनरी (1817-1878)	प्रॉब्लम्स माफ लाइफ एण्ड माइण्ड 1874-9
लैन्ज फ्रायडरिख एलबट (1828–1875)	डाई गेसेपिफट डेम मेटेरियालिज्म उन्द त्रितीक साइनर बिड्यूटग इन दर गेजेनवाट 1866 (1879) लाजिक स्टडीन, 1877
लेयड जॉन (1887–1946)	प्राब्लम्म माफ गी सल्फ 1917 ए स्टडी इन रियलिज्म 1920 हाउ आवर माइण्डस मे गो वियाण्ड देमसेल्वस इन देयर नोइग ? (सी वी पी I 1924) नालेज, बिलीफ एण्ड प्रोपीनियन 1930 थीइज्म एण्ड कॉस्मोलोजी 1940 माइण्ड एण्ड डीटी 1941 प्रान ह्यूमन फ्रीडम 1947
लॅंजर, सूसन के (1895–)	एन इण्ट्रोडक्शन टु सिम्बालिक लाजिक 1937 फिलोसफी इन ए यू की, स्टडी इन दी सिम्बोलिज्म मॉफ रीजन राइट एण्ट प्राट 1942
लेजरोविज मोरिस (1909)	ए एम्ब्रोम के सहकार म 'फण्डामटल्स माफ सिम्बोलिक लोजिक' 1948 दी स्ट्रक्चर माफ मेटाफिजिक्स 1955

	एलीमेंट्स आफ सिम्बोलिक लोजिक 1947 दी राइज आफ साइंटिफिक फिलासफी 1951
रेनोवियर, चार्ल्स (1819–1903)	एसस डी क्रिटिक जनेरल 1854–64
रमजे, फ्रैंक प्लमटन (1903–1930)	दी फाउंडेशन्स आफ मेथेमेटिक्स एण्ड अदर लोजिकल ऐसेज 1931
रेशडाल हेस्टिंग्स (1858–1924)	"पर्सनालिटी, ह्यूमन एण्ड डिवाइन," पर्सनल आइडियलिज्म सम्पा० एच स्टुअर्ट 1902 दी थ्योरी आफ गुड एण्ड ईविल 1907
राइस जोसिया (1855–1916)	दी रिलीजियस आस्पेक्ट्स आफ फिलोसफी, 1885 दी स्पिरिट आफ माडर्न फिलासफी 1892 दी वर्ल्ड एण्ड दी इन्डीविजुअल 1900 राइसे'स लोजिकल एसेज, सम्पा० डी० एस० रॉबिनसन 1951 पी० आर 1916 में पुस्तक सूची
राबर्टसन जार्ज क्रूम (1842–92)	हाब्स 1186 फिलासोफिकल रिमेंस 1894
राबिन्सन रिचर्ड (1902–)	दी प्रोविन्स आफ लाजिक 1931 प्लेटोज अरलियर डायलेक्टिक, 1941 डेफीनिशन 1950
रॉजर्स आर्थर केनियन (1908–)	'दी प्राब्लम आफ एरर' ऐसेज इन क्रिटिकल रियलिज्म 1920 व्हाट इज ट्रूथ? 1923
रोमेन्स, जार्ज जॉन (1848–1894)	ए कैंडिड एग्जामिनेशन आफ थीइज्म 1878 माइण्ड मोशन, एण्ड मोनिज्म 1895
लवजाय आर्थर आन्किन (1873–)	दी रिवाल्ट अगेंस्ट ड्यूअलिज्म 1930 दी ग्रेट चेन आफ बीग 1936 ऐसेज इन दी हिस्ट्री आफ आइडियाज 1946
लाड जार्ज ट्रम्बुल (1842–1921)	फिलोसफी आफ नालेज 1897 ए थ्योरी आफ रियलिटी 1899

लाड-फ्रैंकलिन, क्रिस्टीन	फ्रैंकलिन क्रिस्टीन लाड देखें
ली राय एडुवार्ड (1870)	ला पेंसे इन्टूटिव 1929-30
लीबमन ओटो (1840-1912)	कॅंट उ द डाई एपीगोनन 1865
लीविस क्लेरेंस इर्विंग (1883-)	ए सर्वे ऑफ सिम्बालिक लाजिक 1918 माइण्ड एण्ड दी वर्ल्ड ऑर्डर 1929 सी० एच० लंगफोर्ड के सहकार में सिम्बोलिक लॉजिक 1932 एन एनालिसिस आफ नॉलिज एण्ड वल्यूएशन 1946
लेवीज, जॉर्ज हेनरी (1817-1878)	प्राब्लम्स आफ लाइफ एण्ड माइण्ड 1874-9
लेन्ज फ्रेडरिक एलबर्ट (1828-1875)	डाई गेशिख्टे डेस मटेरियालिज्म उ द क्रिटीक साइनर बिडयूटुंग इन दर गेजनवार्ट 1866 (1879) लॉजिक स्टडीन, 1877
लेयर्ड, जॉन (1887-1946)	प्रॉब्लम्स ऑफ दी सेल्फ 1917 ए स्टडी इन रियलिज्म 1920 हाउ आवर माइण्डस मे गो बियॉण्ड देमसेल्वस इन देयर नोइंग ? (सी बी पी I 1924) नॉलिज, बिलीफ एण्ड ओपीनियन 1930 थीइज्म एण्ड कॉस्मोलोजी 1940 माइण्ड एण्ड डीटी 1941 ऑन ह्यूमन फ्रीडम 1947
लैंगर, सुसन के (1895-)	एन इण्ट्रोडक्शन टु सिम्बालिक लाजिक 1937 फिलोसफी इन ए न्यू की, स्टडी इन दी सिम्बालिज्म ऑफ रीजन राइट एण्ड आर्ट 1942
लेजरोविट्ज मोरिस (1909)	ए एम्ब्रोस के सहकार में, 'फण्डामेटल्स आफ सिम्बोलिक लोजिक' 1948 दी स्ट्रक्चर आफ मेटाफिजिक्स 1955

लर्लेंड पियरे एंड्रे (1867-)	लक्चरस मुर ला फिलासफी डस साइ स 1893 लेस थ्योरीज डी एज इ डक्शन एट डी एक्सपरीमटेशन 1929
लनजन विक्टर एफ० (1890-)	दी नेचर श्राफ फिजीफ्ल थ्योरी 1231 प्रासीजस प्राफ एम्पीरिकल साइस, (यू० एस० वाल्यूम० १ न० ८) 1938 कजुग्रलिटी इन नेचुरल साइस 1954
लशलियर, ज्यूल्स (1829–1909)	ड्यू फडामट डी एल इडक्शन 1871
लारी साइमन सोमर्वील (1829–1909)	मटाफिजिक नावा एट वटुस्टा 1884 सिन्थेटिक 1906
लात्जे, रूडोल्फ हरमन (1817–1881)	मटाफिजिक 1841 लोजिक 1843 (1884) माइक्रोकासमास 1856-64 (1885) सिस्टम डर फिलोसफी 1874–9 1884
ल्यूकासीविज़ जन (1878–1956)	दी शार्टेस्ट एक्जिग्रयम, (प्रोसीडिंग्स ग्राव रायल ग्राइरिश एका० 1948 एरिस्टोटल्स सिलोजिस्टक 1951
वारनाक, जेफ्रे जे० (1923)	वरीफिकेशन एण्ड दी यूज ग्राफ लग्वेज (ग्रार० ग्राई० पी०) 1951 मटाफिजिक्स इन लोजिक (पी०ए० एस०) 1951 बकले 1953 एवरी इवेंट हेज ए काज (एस० एल० II) 1953
वाड जेम्स (1843–1925)	नचुरलिज्म एण्ड एग्नोस्टिसिज्म 1899 दी रीत्म ग्राफ एंडस 1611 सायकोलोजी प्रिसपल्स 1918 एथइस्टिक मोनेडिज्म (सी बी पा II) 1925 एसेज इन फिलोसफी 1927
वाकर लेसली जे (1877-)	थ्यारीज ग्राफ नालज 1910
विडलबड विलहेल्म (1848–1915)	ग्राइनलेटिंग इन डाई फिलोसफी 1914 (1921)

विटजनस्टीन, लुडविग (1889-1951)	ट्रैक्टेटस लोजिको-फिलोसोफिकस 1922 सम रिमार्क्स आन लोजीकल फाम (पी० ए० एस० एस०) 1929 फिलोसोफिकल इंवस्टिगशंस 1953 फिलोसोफिकल रिमाकस आन दी फाउंडेशंस आफ मथेमेटिक्स 1956
विलियम्स, डोनल्ड करी (1899-)	दी ग्राउंड आफ इंडक्शन 1947 प्रोवेबिलिटी इंडक्शन एण्ड दी प्राबीडेंट मेन' फिलोसोफिकल थाट इन फ्रास एंड दी युनाइटेड स्टेटस, सम्पा० एम फारबर 1950
विलसन, जान कुक (1849-1915)	आन एन इवोल्यूशनिस्ट थ्योरी ऑफ एक्जियम्स 1889 स्टेटमेंट एण्ड इनफेरेंस 1926
विजडम आर्थर जान टेटेंस डिबर (1904-)	लोजिकल कंसट्रक्शंस (माइण्ड) 1931-3 प्रोब्लम्स आफ माइण्ड एण्ड मेटर 1934 अदर माइण्डस 1952 फिलोसफी एण्ड सायकोएनालिसिस 1953
वीनबर्ग, जूलियस रूडोल्फ (1908-)	एन एक्जामिनेशन आफ लोजिकल पोजिटिविज्म 1936
वील, हरमन (1885-)	डास कोंटीनुयम 1918 फिलासोफी डर मथेमेटिक उंद नेचर विशेंसखाफ्ट 1926 (1949)
वुडब्रिज, फ्रेडरिक जेम्स यूजीन (1867-1940)	दा रिएल्म आफ माइण्ड 1926 कंफेशंस (सी० ए० पी० I)I 1930 एन एसे आन नेचर 1940
वूजर जोसफ हेनरी (1894-)	बायोलोजिकल प्रिंसिपल्स 1929 दी एक्सिओमेटिक मथड इन बायोलोजी 1937 दी टेकनीक आफ थ्योरी कंसट्रक्शन (यू० एस० वाल्यूम II न० पाच) 1939 बायालाजी एंड लेंग्वेज 1952
वन, जॉन (1834-1923)	दी लोजिक आफ चास, 1866 सिम्वालिक लाजिक 1881

लेलेंड, पियरे एंड्रे (1867-)	लेक्चरस सुर ला फिलासफी डस साइ स 1893 *लेस थ्यारीज डी एज इ डक्शन एट डी एक्सपेरीमटेशन* 1929
लेनजन, विक्टर एफ० (1890-)	दी नेचर माफ फ़िजीकल थ्योरी 1231 प्राब्रोजस माफ एम्पीरिकल साइस, (यू० एस० वाल्यूम० १, न० ५) 1938 कजुअलिटी इन नेचुरल साइस 1954
लशेलियर, ज्यूल्स *(1829–1909)*	ड्यू फडामट डी एल इ डक्शन 1871
लॉरी साइमन सोमर्वील (1829–1909)	मटाफिजिक नोवा एट बटुस्टा 1884 सिन्थटिक 1906
लाट्जे रुडोल्फ हरमन (1817–1881)	मेटाफिजिक 1841 लाजिक 1843 (1884) माइक्रोकासमास 1856–64 (1885) सिस्टम डर फिलासफी 1874–9 1884
ल्यूकासीविक्ज जन (1878–1956)	दी शार्टेस्ट एक्जियम, (प्रोसीडिंग्स माव रायल माइरिश एका० 1948 एरिस्टोटल्स सिलोजिस्टक 1951
वारनाक, जेफ्रे जे० (1923)	वरीफिकेशन एण्ड दी यूज माफ लग्वेज (मार० माई० पी०) 1951 मटाफिजिक्स इन लाजिक (पा०ए० एस०) 1951 बकल 1953 एवरी इवेंट हेज ए काज (एस० एल० II) 1953
वाड, जेम्स (1843–1925)	नेचुरलिज्म एण्ड एग्नोस्टिसिज्म 1899 दी रील्म माफ एन्डस 1611 सायक्लोजी प्रिसपल्स 1918 एथेइस्टिक मोनडिज्म (सी बी ५१ II) 1925 एसेज इन फिलोसफी 1927
वाकर लेसली जे (1877-)	थ्योरीज माफ नालेज 1910
विडलबड विलहेल्म (1848–1915)	माइनलेटिंग इन डाई फिलोसफी 1914 (1921)

विटजनस्टीन, लुडविग (1889-1951)	ट्रैक्टेटस लोजिको-फिलोसाफिक्स 1922 सम रिमार्क्स ऑन लोजीकल फार्म (पी० ए० एस० एस०) 1929 फिलोसाफिकल इन्वेस्टिगेशंस 1953 फिलोसोफिकल रिमार्क्स आन दी फाउंडेशंस आफ मेथेमेटिक्स 1956
विलियम्स, डोनल्ड करी (1899-)	दी ग्राउंड आफ इंडक्शन 1947 'प्रोबेबिलिटी इंडक्शन एण्ड दी प्राबीडेंट मेन' फिलोसोफिकल थाट इन फ्रांस एंड दी युनाइटेड स्टेटस, सम्पा० एम फारबर 1950
विलसन, जॉन कुक (1849-1915)	ऑन एन इवोल्यूशनिस्ट थ्योरी ऑफ एक्जियम्स 1889 स्टेटमेंट एण्ड इनफेरेंस 1926
विजडम, आर्थर जान टेरेंस डिबर (1904-)	लोजिकल कंसट्रक्शंस, (माइण्ड) 1931-3 प्रोब्लम्स आफ माइण्ड एण्ड मेटर 1934 अदर माइण्डस 1952 फिलोसफी एण्ड सायकोएनालिसिस 1953
वीनबर्ग, जूलियस रूडोल्फ (1908-)	एन एक्जामिनेशन आफ लोजिकल पोजिटिविज्म 1936
वील, हरमन (1885-)	डास कोंटीनुयम 1918 फिलोसोफी डर मेथमेटिक उंद नेचर विसेंसखाफ्ट 1926 (1949)
वुडब्रिज, फ्रेडरिक जेम्स यूजीन (1867-1940)	दा रिएल्म ऑफ माइण्ड 1926 क्रेषांस (सी० ए० पी० I)I 1930 एन एसे आन नेचर 1940
वूजर जोसफ हेनरी (1894-)	बायोलोजिकल प्रिंसिपल्स 1929 दी एक्सिओमेटिक मेथड इन बायोलोजी 1937 दी टेकनीक आफ थ्यारी कंसट्रक्शन (यू० एस० वाल्यूम II न० पांच) 1939 बायालोजी एंड लेंग्वेज 1952
वेन, जॉन (1834-1923)	दी लोजिक आफ चांस, 1866 सिम्बालिक लाजिक 1881

	दी प्रिंसिपल्स आफ एम्पिरिकल आर इंडक्टिव लाजिक 1889
वाहिंजर, हैंस (1852–1933)	कोमेंटर जर क्रिटिक डर रेनेन वरनुफ्ट 1882–92 फिलोसफी डेस अल्स आब 1911 (1929)
वसमैन, फ्रायडरिख (1896–)	लाजिस्के एनालाइस डेस वाहरशीनलिखकाइटस बेगरिफस अर्के० 1930 इंफ्यूहरंग इन डास मथमेटिक्स डेनकेन 1936 (1951) वेरीफियेबिलिटी (पी० ए० एस० एस० 1945 एण्ड एल एल I) एनालीटिक सिंथेटिक (एनालिसिस) 1949–52 लग्वग स्ट्रटा (एल० एल० II) 1953 हाऊ आई सी फिलोसफी (सी० बी० पी० III) 1956
वब, क्लीमेंट चार्ल्स जूलियन (1865–)	गॉड एण्ड पर्सनलिटी 1919 डिवाइन पर्सनलिटी एण्ड लाइफ 1920 आउटलाइंस आफ ए फिलासफी ऑफ रिलीजन (सी० बी० पी० II) 1924 रिलीजियस एक्सपीरियेंस 1945
वलेस विलियम (1844–1897)	दी लोजिक आफ हीगल 1874 लेक्चर्स एण्ड एसेज आन नेचुरल थियोलाजी एण्ड एथिक्स 1898
वल्श विलियम हेनरी (1913–)	रीजन एण्ड एक्सपीरियेंस 1947 एनट्रोडक्शन टु दी फिलोसफी आफ हिस्ट्री 1951
व्हाइटहैड अल्फ्रेड नार्थ (1961–1941)	ए ट्रीटीज आन यूनीवर्सल एलजबरा 1898 आन मैथेमेटिकल कान्सेप्टस आफ दी मैटीरिएल वर्ल्ड फिलो० ट्रांस० रायल सोसाइटी 1906 एन इंट्रोडक्शन टु मैथमटिक्स 1911 दी आर्गनाइजेशन आफ थाट, 1917 एन इन्क्वायरी कन्सर्निंग दी प्रिंसिपल्स आफ नेचुरल नालेज 1919 दी कान्सेप्ट आफ नेचर 1920 दी प्रिंसिपल आफ रिलेटिविटी 1922

	साइंस एण्ड दी माडर्न वर्ल्ड 1925 सिम्बोलिज्म इट्स मीनिंग एण्ड इफेक्ट 1928 प्रोसेस एण्ड रियलिटी 1929 एडवेंचर्स ऑफ आइडियाज 1933 आटोबायोग्राफीकल नोट्स एक्सप्लनेटरी नोट्स, मेथमेटिक्स एण्ड दी गुड, इममोरटेलिटी (दी फिलोसफी आफ ए० एन० व्हाइटहैड, सम्पा० पी० ए० शिल्प (1941) में एसेज इन साइंस एण्ड फिलोसफी 1947
शिलर, फर्डिनेंड कॅनिंग स्काट (1864–1937)	एक्सियम्स एज पोस्चुलेट्स, (पर्सनल आइडियलिज्म सम्पा० एच स्टुट) 1902 ह्यूमैनिज्म 1903 स्टडीज इन ह्यूमैनिज्म 1907 फॉरमल लाजिक 1912 प्राब्लम्स आफ बिलीफ 1924 लाजिक फार यूज 1919 व्हाई ह्यूमैनिज्म ? (सी० बी० पी० 1) 1924
शेफर, हेनरी मारिस (1883–)	इनएफेबिल फिलासफीज (जे० पी० 1909) ए सेट आफ फाइव इंडिपेंडेंट पोस्चुलेट्स फॉर एलजबराज, एम० मेथ द्वारा अनुवादित (देखें, स्ट्रक्चर मेथड एण्ड मीनिंग एसेज इन ऑनर आफ हेनरी एम० शेफर सपा० पी हेनल, एच एम कालन ए तथा एस० के० लेंगर 1951)
श्रोडर, फ्रायडरिख विलेहेल्म अर्न्स्ट (1841–1902)	वरलेसुन्जेन अबर डाई एलजेबरा डर लाजिक 1890–1905 अबरिस डर एलजेबरा डर लोजिक 1909–10
श्लिक, मारित्ज (1882–1936)	राय उन्द जाइट इन डर गगनवारटाईजेन फिजिक 1917 आजगेमेन अर्केनतनिसलहर, 1918 फ्राजेन डर एथिक, 1930 (प्रॉब्लम्स आफ एथिक 1939) फेक्ट एण्ड प्रोपोजीशन्स (एनालिसिस 1935) गसाम्मेलट आफसाज 1926–36, 1938, जसटज काँजालिताट उन्द वाहरशीनलिखकीत 1948

सात्र ज्याँ पाल (1909–)	ल इमेजिनेशन, 1938 (1948) एसक्यूइस ड्यून थ्योरी देस इमोशस 1940 (1948) ल एट्रो एटल नीभट 1943 (1956) ल एक्सिस्टेंशियलिज्म ऐस्ट अन ह्यूमानिज्म 1946 (एक्जिसटेंशीलिज्म 1947) सिचुएशस 194769 (वाल्यू० I लिटरेरी एण्ड फिलोसोफिकल एसेज नाम मे प्रकाशित 1955)
सिगवट, क्रिस्तोफ (1830–1904)	लाजिक 1873–78 (1895)
सिजविक, अल्फ्रेड 1850–1943)	फलसीज 188२ दी प्रोसेस आफ आर्ग्यूमेंट 1893 दा यूज आफ वर्डस इन रीजनिंग 1901 दी एप्लीकेशस आफ लोजिक 1910
सिजविक हेनरी (1838–1900)	मेथडस आफ एथिक्स 1875 फिलोसफी इटस स्कोप एण्ड रिलेश स 1902 फिलोसफी आफ कॅंट एण्ड अदर लेक्चस एण्ड एसेज 1905
सेथ एंड्रू (बाद मे प्रिंगल पटीसन के नाम से जाने गये) (1856–1931)	स्काटिश फिलोसफी 1885 हीगेलीयनिज्म एण्ड पर्सनलिटी 1887 दी आइडिया आफ गाड 1917 दी आइडिया आफ इम्मोरटेलिटी 1922 दी बालफोर लक्चरस इन रियलिज्म 1933
सेंटयाना जाज (1863–1952)	दी लाईफ आफ रीजन 1905–6 केरेक्टर एण्ड ओपीनियन इन दी युनाइटेड स्टेटस 1920 स्कप्टिसिज्म एण्ड एनीमल फथ 1923 रियेल्मस आफ बीग मे दा रियेल्म आफ ऐसेज 1927 दा रियेल्म आफ मेटर 1930 दा रियेल्म आफ ट्रूथ 1938 दा रियेल्म आफ स्पिरिट 1940 दी वक्स आफ जाज सेंटयाना 1936–40

	ए जनरल कन्टेन्ट एपालाजिया आ मदा मुधा (दी रिसर्चा आफ जोन गॅटपाना मग्गाइक, पी॰ डिल्ला) 1940
सेलर्स, रॉय वुड (1880-)	क्रिटिकल रियलिज्म 1916
	दा फिलासफी आफ फिजीकल रियलिज्म 1932 (पी॰ पी॰ आर॰ म 1954)
सोरेल, जार्ज (1847-1922)	रिफ्लेक्शन्स सुर ला वायोलेंस, मूल फ्रेंच में प्रका॰ 1905, 1908 (1914) में पुस्तकाकार में प्रकाशित व अनूदित
	दी लयूटीलिटी दु प्रैग्मेटिज्म 1921
स्टर्लिंग, जेम्स हचिसन (1820-1909)	दी सीक्रेट आफ हीगल 1865
स्टाउट, जार्ज फ्रेडरिक (1860-1944)	एनालिटिक साइकोलॉजी 1896
	ए मैनुअल आफ साइकॉलोजी 1899
	स्टडीज इन फिलासफी एण्ड साइकालोजी 1930
	माइण्ड एण्ड मैटर 1931
	गॉड एण्ड नेचर, 1952
स्टीफन, सर लेसली (1832-1904)	इंग्लिश थॉट इन दी एटीन्थ सेन्चुरी, 1876 (1908)
	साइन्स आफ एथिक्स 1882
	एन एग्नास्टिक्स एपालोजी 1893
	दी इंग्लिश यूटिलिटेरियन्स 1900
स्टीवेन्सन, चार्ल्स लेसली	पर्सुएसिव डेफीनीशन्स (माइण्ड) 1938
	एथिक्स एण्ड लैंग्वेज 1944
स्टेबिंग, लिज़ी सूजन, (1885-1943)	प्रैग्मटिज्म एण्ड फ्रेंच वालण्टरिज्म 1915
	ए मॉडर्न इन्ट्रोडक्शन टु लाजिक, 1930
	फिलासफी एण्ड दी फिजीसिस्ट्स 1941
	आइडियल्स एण्ड इल्यूजन्स 1941
	फिलासोफीकल स्टडीज एसेज इन मेमोरी आफ एल॰ एस॰ स्टेबिंग में प्रका॰ 1948
स्टेस, वाल्टर टेरेन्स (1886-)	दी थ्योरी आफ नॉलेज एण्ड एक्जिस्टेंस 1932
	दी नेचर आफ द वर्ल्ड 1940
स्ट्रॉन्ग, चार्ल्स ऑगस्टस (1852-1940)	व्हाई दी माइण्ड हेज ए बॉडी ? 1903
	दी ओरीजिन आफ कांशसनेस 1918
	ए क्रीड ऑफ स्केप्टिक्स (1936)

सात्र, ज्यां पाल (1909–)	ल इमेजिनेशन, 1938 (1948) एसक्यूइस ड्यून थ्योरी डेस इमोशस 1940 (1948) ल एट्रो एटले नीअट 1943 (1956) ल एक्सिटशियलिज्म ऐस्ट ग्रन ह्यूमानिज्म 1946 (एक्जिसेंटशीलिज्म 1947) सिचुएशस 194769 (वाल्यू॰ I ' लिटरेरी एण्ड फिलोसोफिक्ल एसज नाम से प्रकाशित 1955)
सिगवड, क्रिस्तोफ (1830–1904)	लाजिक 1873–78 (1895)
सिजविक ग्रल्फ्रेड 1850–1943)	फलसीज 188२ दी प्रोसस ग्राफ ग्राग्यूमेंट 1893 दा यूज ग्राफ वडस इन रीजनिंग 1901 दी एप्लीकेंशस ग्राफ लोजिक 1910
सिजविक हेनरी (1838–1900)	मेथडस ग्राफ एथिक्स 1875 फिलोसफी इटस स्कोप एण्ड रिलेश स 1902 फिलोसफी ग्राफ कैंट एण्ड ग्रदर लेक्चस एण्ड एसेज 1905
सेथ एंड्रू (बाद मे प्रिंगल पटीसन के नाम से जाने गये) (1856–1931)	स्काटिश फिलोसफी 1885 हीगेलीयनिज्म एण्ड पसनलिटी 1887 दी ग्राइडिया ग्राफ गाड 1917 दी ग्राइडिया ग्राफ इम्मोरटेलिटी 1922 दी बालफोर लक्चरस इन रियलिज्म 1933
सेंटयाना जाज (1863–1952)	दी लाईफ ग्राफ रीजन 1905–6 केरेक्टर एण्ड ग्रोपीनियन इन दी युनाइटेड स्टेटस 1920 स्कप्टिसिज्म एण्ड एनीमल फेथ 1923 रियल्मम ग्राफ बीग म दा रियेल्म ग्राफ ऐसेज ' 1927 दा रियेल्म ग्राफ मेटर, 1930 दा रियेल्म ग्राफ ट्रुथ 1938 दा रियेल्म ग्राफ स्पिरिट 1940 दी वक्स ग्राफ जाज सेंटयाना 1936–40

	ए जेनरल कन्फेशन, एपोलोजिया प्रो मेटा सुग्रा (दी फिलोसफी ग्राफ जार्ज सैंटयाना, सम्पादक पी० शिल्प) 1940
सेलस, राय वुड (1880–)	क्रिटिकल रियलिज्म 1916 दा फिलोसफी ग्राफ फिजीकल रियलिज्म 1932 (पी० पी० ग्रार० म, 1954)
सॉरल, जार्जिस (1847–1922)	रिफ्लेक्शस सुर ला वायोलेंस, लेखों के रूप म प्रका० 1905, 1908 (1914) मे पुस्तकाकार म प्रकाशित व ग्रनूदित, डी एल इूटीली टी ड्यू प्रेग्मेटिज्म 1921
स्टर्लिग, जेम्स हचिसन (1820–1909)	दी सीक्रेट ग्राफ हीगल 1865
स्टाउट, जार्ज फ्रेडरिक (1806–1944)	एनालीटिक सायकोलोजी 1896 ए मेनुग्रल ग्राफ सायकालोजी, 1899 स्टडीज इन फिलोसफी एण्ड सायकोलोजी 1930 माइण्ड एण्ड मैटर 1931 गॉड एण्ड नेचर, 1952
स्टीवन, सर लेसली (1832–1904)	इंग्लिश थाट इन दी एटीथ सेन्चुरी, 1876 (1908) साइंस ग्राफ एथिक्स 1882 एन एगनोस्टिक्स एपोलोजी 1893 दी इंग्लिश यूटीलिटेरियन्स 1900
स्टीवेन्सन, चार्ल्स लेसली	पस्यु एसिक डेफीनीशन्स (माइण्ड) 1938 एथिक एण्ड लैंग्वेज 1944
स्टेबिंग, लिजी सूजन, (1885–1943)	प्रग्मटिज्म एण्ड फ्रेंच वालन्टरिज्म 1915 ए माडर्न इन्ट्रोडक्शन टु लोजिक, 1930 फिलासफी एण्ड दी फिजीसिस्टस 1941 ग्राइडियल्स एण्ड इल्यूजन्स 1941 फिलोसाफीकल स्टडीज ऐसज इन मेमोरी ग्राफ एल० एस० स्टेबिंग म प्रका० 1948
स्टस, वाल्टर टेरेन्स (1886–)	दी थ्योरी ग्राफ नालज एण्ड एक्जिस्टेंस 1932 दी नचर ग्राफ द वल्र्ड 1940
स्ट्रोंग चार्ल्स ग्रोगस्टस (1852–1940)	व्हाई दी माइण्ड हज ए बॉडी ? 1903 दी ग्रारीजिन ग्राफ कांशसनस 1918 ए क्रीड ग्राफ स्कपटिक्स (1936)

सात्र, ज्यां पाल (1909–)	ल इमेजिनेशन, 1938 (1948) एसक्यूइस ड्यून थ्योरी डेस इमोशस 1940 (1948) ल एट्रो एटल नीग्रट 1943 (1956) ल एक्सिटेंशियलिज्म ऐस्ट अन ह्यूमानिज्म 1946 (एक्जिसटेंटशीलिज्म 1947) सिचुएशस 194769 (वाल्यू॰ I लिटरेरी एण्ड फिलोसोफिक्ल एसेज नाम से प्रकाशित 1955)
सिगवट, क्रिस्तोव (1830–1904)	लाजिक 1873–78 (1895)
सिजविक अल्फ्रेड 1850–1943)	फलसीज 1883 दी प्रोसेस आफ आग्यूमट 1893 दा यूज आफ वडस इन रीजनिंग 1901 दी एप्लीकेशस आफ लोजिक 1910
सिजविक हेनरी (1838–1900)	मेथडस आफ एथिक्स 1875 फिलोसफी इटस स्कोप एण्ड रिलेश स 1902 फिलोसफी आफ कट एण्ड अदर लेक्चस एण्ड एसेज 1905
सेथ एंड्रू (बाद मे प्रिंगल पटीसन के नाम से जाने गये) (1856–1931)	स्काटिश फिलोसफी, 1885 हीगलीयनिज्म एण्ड पसनलिटी 1887 दी आइडिया आफ गाड 1917 दी आइडिया आफ इम्मोरटेलिटी 1922 दी बालफोर लक्चरस इन रियलिज्म 1933
सेंटयाना जाज (1863–1952)	दी लाईफ आफ रीजन 1905–6 केरेक्टर एण्ड ओपीनियन इन दी युनाइटेड स्टेटस 1920 स्केप्टिसिज्म एण्ड एनीमल फेथ 1923 रियेल्मस आफ बीग मे दा रियेल्म आफ ऐसेंज 1927 दा रियेल्म आफ मेटर 1930 दा रियेल्म आफ ट्रुथ 1938 दा रियेल्म आफ स्पिरिट 1940 दी वक्स आफ जाज सेंटयाना 1936–40

	ए जेनेरल कन्फेशन, एपोलाजिया प्रो मेटा सुग्रा (दी फिलोसफी आफ जॉर्ज सेंटयाना, सम्पादक, पी० शिल्प) 1940
सेलर्स, राय वुड (1880-)	क्रिटिकल रियलिज्म 1916 दा फिलोसफी आफ फिजीकल रियलिज्म 1932 (पी० पी० आर० म 1954)
सोरेल, जार्जिस (1847-1922)	रिफ्लेक्शन्स सुर ला वायोलेंस, लेखों के रूप में प्रका० 1905, 1908 (1914) में पुस्तकाकार मे प्रकाशित व अनूदित डी एल इलूटीलो टी प्रग्मेटिज्म 1921
स्टर्लिंग, जेम्स हचिन्सन (1820-1909)	दी सीक्रेट आफ हीगल 1865
स्टाउट, जार्ज फ्रेडरिक (1806-1944)	एनालीटिक सायकोलोजी 1896 ए मेनुअल आफ सायकालोजी 1899 स्टडीज इन फिलोसफी एण्ड सायकोलोजी 1930 माइण्ड एण्ड मैटर 1931 गाड एण्ड नेचर, 1952
स्टीफन, सर लेसली (1832-1904)	*इंग्लिश थॉट इन दी एटीथ सेन्चुरी*, 1876 (1908) साइंस आफ एथिक्स 1882 एन एग्नोस्टिक्स एपोलोजी 1893 दी इंग्लिश यूटीलिटेरियन्स 1900
स्टीवन्सन, चार्ल्स लेसली	पर्सुएसिव डेफीनीशन्स (माइण्ड) 1938 एथिक्स एण्ड लैंग्वेज 1944
स्टेबिंग, लिजी सूजन, (1885-1943)	प्रैग्मटिज्म एण्ड फ्रेंच वालन्टरिज्म 1915 ए मॉडर्न इन्ट्रोडक्शन टु लोजिक, 1930 फिलासफी एण्ड दी फिजीसिस्ट्स 1941 आइडियल्स एण्ड इल्यूजन्स 1941 फिलोसोफीकल स्टडीज ऐसेज इन मेमोरी आफ एल० एस० स्टेबिंग म प्रका० 1948
स्टेस, वाल्टर टेरेन्स (1886-)	दी थ्योरी आफ नालेज एण्ड एक्जिस्टेंस 1932 दी नेचर आफ द वर्ल्ड 1940
स्ट्रांग चार्ल्स ऑगस्टस (1852-1940)	व्हाई दी माइण्ड हेज ए बाडी ? 1903 दी आरीजिन आफ कान्शसनेस 1918 ए क्रीड आफ स्कपटिक्स (1936)

हीडगर, मार्टिन (1889–)	सेन उन्द जाइट 1927 वाज इस्ट मेटाफिजिक ? 1929 (एक्जिटेंस एण्ड बाग मे प्रका॰, सम्पादक, डब्ल्यू ब्राक, 1949) इनफ्यूहरंग इन डाई मेटाफिजिक, 1953
हीसेनबग वनर (1901–)	वा डलजन इन डेन ग्र डलजन डर नेचर विशेन शाप्ट 1935 फिलोसोफिक प्रोब्लम्स आफ न्यूक्लियर साइंस (1952)
हुक सिडनी (1902–)	दी मेटाफिजिक्स आफ प्रोग्मेटिज्म 1927 टुवडस दी अडरस्टेंडिग आफ काल मावस 1933 फ्राम हीगल टु मावस 1936
हेम्पेल, काल गुस्ताव (1905–)	दी फक्शन आफ जनरल लाज इन हिस्ट्री (जे॰ पी॰ 1942) इस्डीज इन दी लाजिक आफ क फरमेशन (माइण्ड 1945) फडामटल्स आफ कासप्ट फारमशन इन एम्पीरिकल साइस (यू॰ एस॰ वाल्यूम सकिड, न॰ सेवन) 1952
हयर, रिचड मरविन (1919–)	इम्पेरेटिव सेंटेंसेज (माइण्ड) 1949 दी लग्वेग आफ मारल्स, 1952
हल्महोल्ज हरमन वान (1821-1894)	उबर देन असप्र ग उ द डाई विडियूटग डर जिओमट्रिसकेन एक्जियम 1870 इ डक्शन उन्द डिड्यूक्शन 1873 स्क्रिप्टन जर अकेंटनिस थ्योरी 1921
हैकल, अ स्ट हायनरिख (1834–1919)	डाई वल्टरायसेल 1899)1900)
हैमिल्टन सर विलियम (1788-1959)	डिस्कशस आन फिलोसफी एण्ड लिटरेचर ', एजुकेशन एड यूनीवर्सिटी रिफाम, 1852 दी वक्स आफ टामस रीड का सपादन किया 1956–63 लेक्चस आन मटाफिजिक्स एण्ड लोजिक 1859–60
हैम्पशायर, स्टुअट एन॰ (1914–)	स्केपटिसिज्म एण्ड मीनिंग (फिलोसफी) 1950 स्पिनोजा 1951

	दी एनाटामी आफ पर्ज़लमेंट (माइण्ड 1952
	आइडेंटिफिकेशन एण्ड एसिमिलेशन (सी० बी० पी० III) 1946
	दी इण्टरप्रेटेशन आफ मॉडल्स (बी० पी० एम०) 1957
हैलेट, हराल्ड फास्टर (1886-)	एटरनिटास ए स्पिनोजिस्टिक स्टडी 1930
हैरिस विलियम टोरी (1835-1923)	हीगेल्स फर्स्ट प्रिंसिपल 1869
	फिलासफी इन आउटलाइन 1883
हैरिसन फ्रैडरिक (1831-1923)	फिलासफी आफ कामन सेंस 1907
	पाजिटिव एवोल्यूशन आफ रिलीजन 1912
हॉकिंग, विलियम अर्नेस्ट (1873-)	दी मीनिंग आफ गॉड इन ह्यूमन एक्सपीरियेंस, 1912
	ह्यूमन नेचर एण्ड इट्स रिमेकिंग 1918
	टाइप्स आफ फिलासफी 1929
हॉजसन शैडवर्थ हालवे	टाइम एण्ड स्पेस 18 5
	दी फिलासफी आफ रिफ्लेक्शन 1878
	दी मेटाफिजिक आफ एक्सपीरियन्स 189x
होर्नली रीनहोल्ड फ्रायड रिक अल्फ्रेड (18880-1943)	स्टडीज इन द कन्टेम्पररी मेटाफिजिक्स 1920
	मैटर, लाइफ माइण्ड एण्ड गॉड 1922
	स्टडीज इन फिलासफी, 1952
होल्ट, एडविन बिसल (1873-1949)	दी प्लेस आफ इल्यूजरी एक्सपीरियेंस इन ए रियलिस्टिक वर्ल्ड (दी न्यू रियलिज्म) 1912
	दी कॉन्सेप्ट आफ कॉन्शसनेस 1914
हूवीसन, जार्ज होम्स (1834-1914)	दी कान्सेप्शन आफ गॉड 1897
	दी लिमिट्स आफ एवोल्यूशन 1901

पारिभाषिक शब्दावली

(हिन्दी–अंग्रेजी)

अकिंचित्	Nothing
अंकशास्त्र	Arithmetic
अजैव	Inorganic
अधिगणित	Metamathematics
अधिभाषा	Metalanguage
अधितर्कशास्त्र	Metalogic
अनीश्वरवाद	Agnosticism
अनुभव	Experience
अनुभववाद	Empiricism
अनुभवसाहचर्य	Association
अनुभूति	Feeling Experience
अनेकिक	Polyadie
अन्तरिम	Ultimate
अन्तर्निवेश	Introjection
अंतःसाक्ष्य	Intuition
अन्तिम	Ultimate
अभिमंडन	Vindication
अर्थक्रियावाद	Pragmatism
अर्थविज्ञान	Semantics
अर्थशास्त्र	Economicys
अल्पाश्रयी अनुमान	Trivial Inference
अवकाश	Space
अवन्यूनित	Reduced
अवशेष	Residue
असत्ताशील	Not being
अस्तित्ववाद	Existentialism
अस्वगुण निर्देशक	Non connotative
अहम	Ego
आकस्मिकता	Contingency
आकारी	Formal

आख्यानिक	Mythical
आगमन	Induction
आणविक	Molecular, Atomic
आणविक भौतिकी	Atomic Physics
आत्मपरक	Subjective
आत्मवाद	Idealism
आदिम	Primitive
आदिमकालिक	Primitive
आधारभूत तर्कवाक्य	*Basic proposition*
आध्यात्मिक	Spiritual
आनुभविक	*Empirical*
आपकर्मी	*Automaton*
आयाम	Dimension
इयत्ता	Entity
उद्देश्य	Object
उद्देश्यवाद	Teleology
उन्मूलन	*Annihilation*
उपकरणवादी	Instrumentalist
एकदिक	Monadic
इन्द्रिय	Sense
ऐन्द्रिय संवेदन	Sense-data
कर्ता	Subject
कल्पनात्मक	Speculative
कुछ नहीं	Nothing
केवलात्मवाद	*Solipsism*
गतिविज्ञान	Dynamics
गुण	Quality
गुणन	Multiplication
चलांक	Variable
चाक्षुष	Visual
चेतना	Consciousness

पारिभाषिक शब्दावली

(हिंदी–अंग्रेजी)

अकिंचित्	Nothing
अंकशास्त्र	Arithmetic
अजैव	Inorganic
अधिगणित	Metamathematics
अधिभाषा	Metalanguage
अधितर्कशास्त्र	Metalogic
अनीश्वरवाद	Agnosticism
अनुभव	Experience
अनुभववाद	Empiricism
अनुभवसाहचर्य	Association
अनुभूति	Feeling Experience
अनेकिक	Polyadic
अन्तरिम	Ultimate
अन्तर्निवेश	Introjection
अन्तःसाक्ष्य	Intuition
अन्तिम	Ultimate
अभिमंडन	Vindication
अर्थक्रियावाद	Pragmatism
अर्थविज्ञान	Semantics
अर्थशास्त्र	Economicys
अल्पाश्रयी अनुमान	Trivial Inference
अवकाश	Space
अवन्यूनित	Reduced
अवशेष	Residue
असत्ताशील	Not being
अस्तित्ववाद	Existentialism
अस्वगुण निर्देशक	Non connotative
अहम	Ego
आकस्मिकता	Contingency
आकारी	Formal

आख्यानिक	Mythical
आगमन	Induction
आणविक	Molecular, Atomic
आणविक भौतिकी	Atomic Physics
आत्मपरक	Subjective
आदर्शवाद	Idealism
आदिम	Primitive
आदिमकालिक	Primitive
आधारभूत प्रकथन	Basic proposition
आध्यात्मिक	Spiritual
आनुभविक	Empirical
आरकता	Automaton
आयाम	Dimension
इयत्ता	Entity
उद्देश्य	Object
उद्देश्यवाद	Teleology
उन्मूलन	Annihilation
उपकरणवादी	Instrumentalist
एकदिक	Monadic
ऐन्द्रिय	Sense
ऐन्द्रिय संवेदन	Sense data
कर्ता	Subject
कल्पनात्मक	Speculative
कुछ नहीं	Nothing
केवलात्मवाद	Solipsism
गतिविज्ञान	Dynamics
गुण	Quality
गुणन	Multiplication
चलांक	Variable
चाक्षुष	Visual
चेतना	Consciousness

जीवशास्त्र	Biology
जैव	Organic
जैविकी	Biology
तत्व	Element
तत्वदर्शन	Metaphysics
तत्वमीमांसा	Metaphysics
तत्ववादी	Metaphysician
तत्वशास्त्र	Ontology
तर्क कथन	Proposition
तर्कवाक्य	Syllogism
तर्कशास्त्र	Logic
तर्क सम्मत	Logical
तात्त्विकी	Ontology
तादात्म्य	Identification
तार्किक अनुगणन	Ratiocination
त्रैत	Trichotomy
दत्त सामग्री	Data
दिक	Space
द्वयिक	Diadic
द्वैत	Dichotomy (Duality)
धर्मदर्शन	Theology
धारणा	Concept
नकार	Negation
नकारात्मक	Negative
नकारात्मकता	Negativity
नव	Neo
नाममात्रवाद	Nominalism
नास्तिक	Agnostic Atheist
नास्तिकवाद	Atheism
निरूपण	Verification
निरूपणीय	Verifiable
निर्बन्ध	Unconditioned

নির্ণয়	Judgement
নিষ্ক্রিয় অনুক্রম	Passive Sequecity
ন্যূনীকরণ	Reduction
পঞ্চায়ামী	Five-dimensional
পদার্থবাদী	Materialist
পরমাত্ম	Absolute
পরিমাণ	Quantity
পরিমাণন	Quantification
পরিবর্তন	Flux
পরীক্ষ্যতা	Testability
পর্যবেক্ষণ	Observation
পারমাণবিক	Atomic
পারবর্তী	Transcendental
পুনর্মুদ্রিত	Reprinted
পুষ্টীকরণ	Confirmation
পুষ্টীকরণীয়তা	Confirmability
পূর্ণান্বয়বাদ	Synechism
পূর্ববর্তিতা	Priority
প্রকৃতিবিজ্ঞান	Natural Sciences
প্রতিরূপবাদ	Representationalism
প্রতীক	Symbol
প্রত্যয়	Idea
প্রত্যয়নিরূপতা	Correspondence
প্রত্যয়বাদ	Idealism
প্রত্যয়াত্মক	Ideal
প্রয়োজন	Object
প্রয়োগবাদ	Experimentalism
প্রাকল্প	Hypothesis
প্রাণী	Being
ফলনীভূত	Functionalised
যুক্তিবাদী	Rational, Rationalist
ব্রহ্মাণ্ডবিজ্ঞান	Cosmology

जीवशास्त्र	Biology
जैव	Organic
जैविकी	Biology
तत्व	Element
तत्वदर्शन	Metaphysics
तत्वमीमांसा	Metaphysics
तत्ववादी	Metaphysician
तत्वशास्त्र	Ontology
तर्क कथन	Proposition
तर्कवाक्य	Syllogism
तर्कशास्त्र	Logic
तर्क सम्मत	Logical
तात्विकी	Ontology
तादात्म्य	Identification
तार्किक अनुगणन	Ratiocination
त्रैत	Trichotomy
दत्त सामग्री	Data
दिक्	Space
द्वयिक	Diadic
द्वैत	Dichotomy (Duality)
धर्मदर्शन	Theology
धारणा	Concept
नकार	Negation
नकारात्मक	Negative
नकारात्मकता	Negativity
नव	Neo
नाममात्रवाद	Nominalism
नास्तिक	Agnostic Atheist
नास्तिकवाद	Atheism
निकषण	Verification
निकषणीय	Verifiable
निर्बन्ध	Unconditioned

पारिभाषिक शब्दावली

निर्णय	Judgement
निष्क्रिय अनुक्रमण	Passive Sequecity
न्यूनीकरण	Reduction
पंचायामी	Five-dimensional
पदार्थवादी	Materialist
परमार्थ	Absolute
परिमाण	Quantity
परिमाणन	Quantification
परिवर्तन	Flux
परीक्ष्यता	Testability
पर्यवेक्षण	Observation
पारमाणविक	Atomic
पारवर्ती	Transcendental
पुनर्मुद्रित	Reprinted
पुष्टीकरण	Confirmation
पुष्टीकरणीयता	Confirmability
पूर्णान्वाद	Syncecism
पूर्ववर्तिता	Priority
प्रकृतिविज्ञान	Natural Sciences
प्रतिरूपवाद	Representationalism
प्रतीक	Symbol
प्रत्यय	Idea
प्रत्यभिमुखता	Correspondence
प्रत्ययवाद	Idealism
प्रत्ययात्मक	Ideal
प्रयोजन	Object
प्रयोगवाद	Experimentalism
प्राक्कल्प	Hypothesis
प्राणी	Being
फलनीकृत	Functionalised
बुद्धिवादी	Rational, Rationalist
ब्रह्माण्डविज्ञान	Cosmology

भाग्यवाद	Tychism
भावात्मक	Emotive
भूत	Past
भूत	Stuff
भौतिकवाद	Materialism
भौतिकतावाद	Physicalism
भौतिकी	Physics
मध्य	Middle
मध्य, विलगित	Middle Excluded
मन संघटन	Psychic Phenomena
मनस्तत्वविधान	Psychologism
मनस्तात्त्विकी	Psychology
मनोरोगविज्ञान	Psychopatholog
मनोरोगवैज्ञानिक	Psychopathologist
महाद्वीप	Continent
मुक्त	Free
मूलभूत एषणा	Vital urge
मृत्युलेख	Obituary
यतिवाद	Epistemology
यथार्थवाद	Realism
यथोचित	*Precise*
रीतिविधान	Methodology
रूपाकार	Pattern
वदतो व्याघात	Contradiction in terms
वर्ग	Sqare
वर्ग	Class
वर्णनात्मक	Descriptive
वस्तुगत	Objective
वस्तुपरक	Objective
वाक्यशैली	Syntax
विकल्प	Alternative

विकासवाद	Evolution, ism
विद्यमान	Being
विद्युत्पुज	Aura
विधेय	Predicate
विधेयपरिमाणन	Predicate-quantification
विरोधाभास	Contradiction
विरोधास्पद	Paradox
विरोधास्पदी	Paradox,doxical
विवरणात्मक	Descriptive
विवृत	Descriptive
विषय	Subject
विषयी	Subject
विषयिगत	Subjective
विषयवस्तु	Subject matter, Content
वृत्त	Circle
वैचारिक पूर्णक	Ideal Whole
सकर्मक	Transitive, Objective
सकल्पात्मक	Conative
सकेतन	Denoting
सघटना	Phenomenon
सघटनावाद	Phenomenology
सवेदन	Sensation
सदर्भ	Reference
सत्य	Truth, true
सत्यफलन	Truth function
सत्यापन	Verification
सत्ता	Being
सत्ताशील	Being
सदेहवाद	Scepticism
सन्निहित	Immediate
समन्वयात्मक	Synthetic
सह परिवर्तन	Concomitant Variation
साकेतिक मुहावरा	Denoting Phrase

सांख्यिक	Statistician, Statistical
सांख्यिकी	Statistics
सांख्यिकीकार	Statistician
सापेक्ष	Relative
सापेक्षवाद	Relativism
सापेक्षता	Relativity
सामान्यीकरण	Generalisation
सार तत्व	Essence
सार्थकता	Meaning, Utility Usefulness
सार्वभौम	Universal
सूचक	Pointer Index
स्थापना	Assertion
स्मृति ग्रंथ	Memoir
स्वगुणनिर्देशक	Connotative
स्वयंचल	Automobile Automative
स्वेच्छात्मक	Arbitrary
हेत्वनुमान	Syllogism
ज्ञानमीमांसा	Epistemology
ज्ञानाश्रित	Cognitive